

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

# श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

ŚRĪVIDYĀRNĀVATANTRAM

भाषाभाष्योपेतम्



भाषाभाष्यकारः

श्रीकपिलदेवनारायण

‘स्वरूपावस्थित’



## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of  
hinduism  
server!



## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of  
hinduism  
server!

॥ श्रीः ॥  
चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

496

—♦—

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

# श्रीविद्यारण्वितन्त्रम्

## भाषाभाष्योपेतम्

उत्तरार्द्धम् \* प्रथमो भागः

( एकोनविंशतिशतुर्विंशशास्त्रम् )

भाषाभाष्यकारः

श्री कपिलदेव नारायण  
'स्वरूपावस्थित'



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन  
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित—प्रकृत ग्रन्थ के सशीर्षक संस्कृत विषयस्थान-क्रम-भाषाटीका, चित्र आदि का सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा स्वायत्तीकृत है। इसके किसी भी अंश का कहीं भी किसी भी प्रकार से प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना उपयोग नहीं किया जा सकता।

ISBN { 978-93-80326-46-7 (Set)  
{ 978-93-80326-49-8 (Vol. II, Pt. 1)

प्रकाशक :

### चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स नं. 1129

वाराणसी-221001

दूरभाष : (0542) 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : 2012

मूल्य : 7500.00 (1-5 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान :

### चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड, दिल्लीगंज

नई दिल्ली-110002

दूरभाष: (011) 32996391, टेलीफैक्स: (011) 23286537

\*

### चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर,

पोस्ट बॉक्स नं. 2113, दिल्ली-10007

\*

### चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स नं. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

THE  
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA  
496



**ŚRĪVIDYĀRNAVATANTRAM**  
*of*  
**ŚRĪ VIDYĀRANYAYATI**

Sanskrit Text with Hindi Commentary

Uttarārdha \* Part One  
( 19-24 Śvāsas )

*Commented by*  
**Sri Kapildev Narayan**  
Svarūpāvasthita



Chaukhamba Surbharati Prakashan  
Varanasi (India)

© All rights reserved.

No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronical or mechanical, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher.

*Publishers :*

**CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN**

(*Oriental Publishers & Distributors*)

K. 37/117, Gopal Mandir Lane

Post Box No. 1129

Varanasi 221001

Tel. : 0542 2335263

e-mail : csp\_naveen@yahoo.co.in

*Also can be had from :*

**CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE**

4697/2, Ground Floor

Gali No. 21-A, Ansari Road

Daryaganj, New Delhi 110002

Tel. : 011 23286537

e-mail : chaukhamba\_neeraj@yahoo.com



**CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN**

38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar

Post Box No. 2113

Delhi 110007



**CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN**

Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)

Post Box No. 1069

Varanasi 221001

## द्वित्राः शब्दाः

श्री विद्यारण्य यति-प्रणीत महनीय ग्रन्थ श्रीविद्यार्णवतन्नम् के उत्त्रीसर्वे से चौबीसर्वे श्वास-पर्यन्त प्रकृत तृतीय भाग में ‘कलौ देवो महेश्वरः’ इस उक्ति के परिप्रेक्ष्य में शिवपूजन की विस्तृत विधि विवेचित करने के पश्चात् षोडशी विद्या, नित्या-पूजन, नानाविध यन्त्र-मन्त्र एवं काली आदि मन्त्रों के साथ-साथ उनकी पूजन विधियाँ भी निरूपित की गई हैं।

प्रकृत उत्त्रीसर्वे श्वास में सर्वप्रथम षडङ्ग मन्त्रों की वासना स्पष्ट की गई है। तदनन्तर अपने शरीर में योगपीठ न्यास, पीठशक्ति न्यास, मूल मन्त्र-न्यास की विधि प्रदर्शित करते हुये विविध न्यासों के फल का कथन किया गया है। तत्पश्चात् मुद्राओं को बनाने एवं उनके त्याग करने का बीज मन्त्र, तारा बीज, ध्यान का द्वैविद्यत्व, अन्तर्यजन का प्रकार एवं पूजा चक्र के स्थापन आदि की विधि निरूपित करने के पश्चात् कादि मत की रीति से पूजा यन्त्र के प्रतिष्ठा की विधि विशद् रूप से विवेचित की गई है। अनन्तर पूजा-द्रव्यों का शोधन, अन्तरग्नि कार्य एवं उसके मन्त्ररूप श्लोक बताये गये हैं। आगे अन्तर्याग-सम्बन्धी द्रव्यों का परिगठन करते हुये पीठपूजा का प्रकार, उस पर आधार शक्ति आदि का ध्यान, रत्नसिंहासन के पादरूप धर्म आदि का ध्यान, पर्यङ्गस्थित पद्म का वर्णन करते हुये मूर्ति की कल्पना करने की विधि स्पष्ट करने के साथ-साथ अर्चन मन्त्र को भी उद्घाटित किया गया है। तदनन्तर अपने इष्टदेव की पूजा के अङ्गरूप में पार्थिव लिङ्ग का विधान बताने के उपरान्त कामनानुसार लिङ्गार्चन की संख्या, विशेष फलों की प्राप्ति के लिये विशेष द्रव्यों से लिङ्ग-निर्माण का विधान, ऋतु के अनुसार पुष्ट से निर्मित लिङ्ग के अर्चन का फल, रत्ननिर्मित लिङ्गों में एक-दूसरे की अपेक्षा उत्तमत्व, उत्तम-मध्यम-अधम के भेद से लिङ्ग के तीन प्रकार बताते हुए लिङ्ग की आराधना का सर्वश्रेष्ठत्व निरूपित किया गया है। इसके पश्चात् अपने-अपने मार्ग से पूजा का विधान बताते हुये युग के अनुसार लिङ्ग की विशालता-न्यूनता का निरूपण करने के पश्चात् हुये कलियुग में पार्थिव पूजन का महत्व बताते हुये उसका श्रेष्ठत्व निरूपित किया गया है। तदनन्तर वेदोक्त रीति से पार्थिव-पूजन, पार्थिव पूजन हेतु उचित स्थान एवं मृत्तिका को निर्देशित करते हुये नवाक्षर शैव मन्त्र का उसके ऋषि-ध्यान आदि के साथ उद्धार बताया गया है। तत्पश्चात् कामदुधा मन्त्र को बताते हुये वैदिक रीति से शिवपूजन की विधि निर्दिष्ट करने के उपरान्त पारद लिङ्ग का निर्माण एवं उसके पूजन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला फल, जया विद्या, आद्य मूर्ति को बारह भेद, चौबीस प्रकार की मूर्तियों का वर्णन, शूद्र आदि द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति के प्रणाम करने का निषेध, शालिग्राम शिला के लक्षण एवं उसके वर्णों की भिन्नता के अनुसार उसके गुण एवं दोष, शालिग्राम शिला के निष्काम अर्चन में दोषों का अभाव, लक्षण के अनुसार उसकी विविध संज्ञायें, शालिग्राम शिला में विष्णु की पूजा का माहात्म्य प्रदर्शित करते हुये शालिग्राम की बहुलता होने पर प्राप्त होने वाले विशेष फलों का कथन किया गया है। तदनन्तर अर्चन में आवाहन आदि की आवश्यकता, आवाहन का स्वरूप, सकलीकरण का स्वरूप, देवशुद्धि, दीपिनी मन्त्र का उद्धार बताते हुये ‘मुद्रा’ शब्द का अर्थ निरूपित किया गया है। इसके उपरान्त उपचारों का भेद, उनके निवेदन का प्रकार, द्विजों के लिये वैदिक पूजा से पूर्व तान्त्रिक पूजा की करणीयता, गणेश आदि पाँच देवताओं के वैदिक मन्त्र, आसन आदि उपचार, पाद्य एवं आचमन का समय, शिव को शंखस्नान कराने में मतभिन्नता, देव को प्रदेय वस्त्रादि का निर्णय, गन्ध आदि के देवता, गन्ध के भेद, पुष्टों के भेद एवं उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता, विशेष देवताओं के अर्चन में विशेष प्रकार के पुष्टों का निषेध, पुष्ट अर्पित करने की विधि, पुष्टों के बासी होने के दोषादोष का निरूपण करते हुये पुष्टोपचार प्रदान करने के पश्चात् लयाङ्ग पूजन का विधान निरूपित किया गया है। तत्पश्चात् देवता का षडङ्ग ध्यान, षट्डङ्ग पूजा का स्थान, आवरण पूजन में पूर्व आदि दिशा की कल्पना, अङ्ग मन्त्रों द्वारा होम एवं पूजन

में नमः एवं स्वाहा लगाने का विधान, प्रत्येक आवरण पूजन के अन्त में पूष्य अर्पित करने का मन्त्र, लोकपाल एवं उनके अस्त्रों का ध्यान बताने के साथ-साथ आवरण पूजन के अन्त में देवी के अर्चन का मन्त्र बताया गया है। इसके पश्चात् धूप में मिलाये जाने वाले विविध द्रव्यों का भाग, घणटा बजाने का समय एवं उसका मन्त्र, धूप-दीप का निवेदन एवं उनके रखने का स्थान, पुरुष द्वारा दीप बुझाने से होने वाला दोष, नैवेद्य द्रव्य का संस्कार एवं उसके निवेदन का प्रकार, नित्य होम का विधान, पूजास्थान में भूतबल की अनिवार्यता, नित्य होम में अग्न्याधान का अनावश्यकत्व, उत्तरापोशन, ताम्बूल-समर्पण एवं देवता को की जाने वाली आरती की विधि प्रदर्शित की गई है। अनन्तर मन्त्र-जप का प्रकार, मन्त्रशुद्धि का लक्षण, जप की संख्या, उसके नियम, जप के उपरान्त स्तुतिपाठ, शूद्रों द्वारा वैदिक के साथ-साथ पौराणिक स्तुतिपाठ का भी निषेध, आराधन एवं उद्घासन का प्रकार, निर्माल्य निवेदित करने की विधि, किसी प्रकार की त्रुटि के विना पूजा-समापन के लिये सूर्य को अर्घ्यादान बताते हुये निर्माल्य-धारण एवं देवता के प्रसाद को ग्रहण करने की विधि निरूपित की गई है। इसके पश्चात् यह बताया गया है कि शिव-विष्णु आदि में अन्तर मानने से दोष लगता है। तदनन्तर नित्य पूजा में आवश्यक क्रिया की विधि प्रदर्शित करते हुये प्राणायाम-न्यास आदि न करने पर लोक में प्राप्त होने वाली निन्दा, देश-काल के अनुसार मानसिक पूजन की विधि, प्रतिदिन के प्रति प्रहर में किये जाने वाले कार्य, आतुर-सूतक आदि अवस्थाओं में करणीय विधियाँ, पूजा का त्रिविधत्व, पूजा में समर्थता-असमर्थता, समर्थ होते हुये भी विस्तार से पूजा न करने पर होने वाले दोष एवं कामना के अनुसार पूजा के स्थान का निरूपण किया गया है।

बीसवें श्वास में नित्य पूजन की विधि निरूपित करते हुये साधकों के लिये प्रातःकृत्य की विधि, तात्त्विक स्नान, तीर्थशक्तियों का ध्यान, गंगामन्त्र, स्वयं को अभ्युक्तित आदि करने का मन्त्र, भस्म-धारण की विधि, तात्त्विक सन्ध्या, दीक्षितों के लिये प्रातः-मध्याह्न एवं सायं सन्ध्या की अवश्यकरणीयता, सूर्य को अर्घ्यादान आदि की विधियाँ निरूपित की गई हैं। तदनन्तर पूजामण्डप के द्वार की पूजा, विघ्नोत्सारण, दीपनाथ के अर्चन के पूर्व आधार शक्ति का पूजन, आश्रमानुसार सृष्टि आदि न्यास, ऋग्वेदोक्त अग्निसूक्त, कालीमत में चक्रप्रतिष्ठा की विधि एवं उसके प्रयोग, प्रतिष्ठित यन्त्र में शिवपूजा की पद्धति को स्पष्ट करते हुये संक्षिप्त रूप से नित्य पूजा की विधि प्रतिपादित की गई है। तत्पश्चात् कालीमत में देवता के मन्त्र एवं यन्त्रों के पार्थिव स्वरूप के ज्ञान का प्रकार, कादि मत में उसको जानने के लिये छः प्रकार की रश्मयों का वर्णन, षट्कर्मानुसार षोडश नित्याओं का स्थूल-सूक्ष्म आदि सामान्य-विशेष ध्यान, कालीमत में देवता आदि के स्वरूप-ज्ञान हेतु रश्मक्रम, विद्या अथवा मन्त्र के छन्दज्ञान का क्रम, षोडशी विद्या के रश्मवृन्द, पराप्रासाद मन्त्र की रश्मयों एवं उसके छन्दज्ञान का क्रम तथा काली विद्या के छन्दज्ञान की विधि प्रदर्शित की गई है। इसके आगे कादिमत में कामेश्वरी नित्या का प्रयोग एवं उसके यन्त्र-निर्माण की विधि, समय यन्त्र के उद्धार का क्रम एवं यन्त्रों के विविध फल बताते गये हैं। इसी प्रकार भगमालिनी, कामेश्वरी, नित्यक्लिना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महावज्रेश्वरी एवं शिवदूती नित्याओं के प्रयोग की विधियाँ स्पष्ट करते हुये उनके विविध यन्त्र तथा उन यन्त्रों के फल भी बताये गये हैं। साथ ही इसी श्वास में अमृतपञ्चक को भी स्पष्ट किया गया है।

इक्कीसवें श्वास के प्रारम्भ में त्वरिता नित्या के प्रयोग की विधि को स्पष्ट करते हुये काम्य होम विधि, उसके यन्त्रोद्धार एवं यन्त्र-निर्माण की विधि निरूपित की गई है। तदनन्तर निग्रह यन्त्र-निर्माण की विधि, कुलसुन्दरी नित्या के प्रयोग की विधि, विद्या का त्रयीमयत्व, त्रैपुरकन्दा विद्या के भेद, सम्पत्करी विद्या एवं उसके ध्यान-विधान आदि, यन्त्र-विनियोग, नित्यानित्या की विधि-यन्त्र एवं उसके फल, वज्रयन्त्र एवं उसका फल, साधक के शरीर में डाकिनी आदि का स्थान, नीलपत्ताका नित्या के प्रयोग की विधि, सिद्धिकौतुक विद्या के दश भेद, छत्तीस योगिनी विद्यायें, चौंसठ चेटक विद्यायें एवं उनके यन्त्रों का उद्धार बताया गया है। साथ ही यक्षिणी एवं चेटक के साधन का प्रयोग भी बताया गया है। आगे विजया नित्या के प्रयोग एवं उससे सम्बद्ध यन्त्र, सर्वमङ्गला-प्रयोग, मन्त्र के पूरश्वरण का विधान, मातृकाक्षरों की

शक्तियों के नाम, मूल विद्या के स्वरूप की विविधता, एक सौ चौवालीस यन्त्र, उनके विनियोग का प्रकार, लघु मन्त्र-पूजा का विधान, द्वादशार चक्र का निर्माण, द्वारशार चक्र में लघुपूजा, षोडश नित्याओं के नाम-रूप-विद्या द्वारा द्वादशार चक्र में पूजा, द्वादशार चक्र में ही ललिता पूजा, षोडश नित्याओं के नाम-विद्या के भेद से कोष्ठवज्र यन्त्र का निर्माण, यन्त्रप्रयोग एवं फल तथा सर्वमंगला विद्या के जप के फल बताये गये हैं। इसके पश्चात् ज्वालामालिनी नित्या की प्रयोग-विधि बताते हुये उसका पुरश्रणक्रम, सच्चद दश यन्त्रों का निर्माण एवं उनके विशेष प्रयोग, रोगावेश-हेतु यन्त्र-निर्माण, आकर्षण-वशीकरण आदि के यन्त्र, यामलवेध, वश्य आदि प्रयोग, वैरिनिग्रह यन्त्र, घृत आदि में जय-प्रदायक यन्त्र, शत्रुस्तम्भन यन्त्र, लक्ष्मी-वस्त्र एवं आभूषण की प्राप्ति, लोक एवं स्त्री-वशीकरण-सिद्धि आदि विषय गुम्फित किये गये हैं। तदनन्तर यन्त्रों पर अभिषेक करने से प्रहरोष की शान्ति, नवग्रह-शान्ति, यन्त्र-रचित स्वर्णपत्र आदि के दान का फल, जठराग्नि की वृद्धि के उपाय, यन्त्रों में सूर्य आदि के अर्चन का फल, समस्त ग्रहों के पूजन का फल, शत्रु-मर्दन की विधि, समस्त विद्याओं की अक्षरांशधि के भस्म से स्नान, आगेयाक्षर-युक्त यन्त्र से जठराग्नि-वृद्धि एवं यन्त्र-निर्माण की विधि वर्णित है। विचित्रा नित्या के प्रयोग का विवेचन करते हुये काम्य होम एवं निग्रह होम की विधि, अभिचार कर्म-कर्ता द्वारा स्वयं के रक्षा की विधि, तर्पण-प्रक्रिया, छब्बीस प्रकार के यन्त्रों की निर्माण-प्रक्रिया, कोष्ठवज्र यन्त्र-रचना, नक्षर-वार-तिथियों में अर्चन का क्रम, तिथियों के वृक्ष-देवता-नक्षत्र एवं योनियाँ, रोगशान्ति के समय को जानने की विधि, छः आधारों में यन्त्रों की भावना का फल, पचास मिथुनों को बलि प्रदान करने का फल आदि विषय विवेचित किये गये हैं। कुरुकुल्ला नित्या के प्रयोगक्रम में मूल विद्या के पुरश्रण का प्रकार, बहुविध होम से बहुविध फल की प्राप्ति, कुरुकुल्ला के यन्त्र का निर्माण एवं उसका प्रयोग, द्वितीय विद्या से कोष्ठवज्र यन्त्र का निर्माण एवं उसके चार प्रयोग, प्रथम मूल विद्या से यन्त्र-निर्माण, सप्ताक्षरी विद्या से यन्त्र-निर्माण, त्रयोदशाक्षरी विद्या से आठ यन्त्रों का निर्माण, दो सौ इक्कीस कोष्ठवज्र यन्त्र का निर्माण, मन्त्रदेवता की भावना आदि विषय स्पष्ट किये गये हैं।

इसी प्रकार वाराही नित्या के प्रयोग के क्रम में मूल देवता का पुरश्रण, विविध प्रयोगों के अनुसार नित्या का ध्यान, स्तम्भन का प्रयोग, मार्ग में रक्षा की विधि, युद्ध में विजय प्राप्त करने हेतु विहित ध्यान, रिपुमारण-क्रोधस्तम्भन-सैन्य-विदारण आदि की विधियाँ एवं तत्सम्बद्ध ध्यान, शत्रुवश्यकर प्रयोग, मारण प्रयोग, लक्ष्मी-प्राप्ति योग, होम द्रव्यों के भेद से फल में वैभिन्न, मारण-ऐश्वर्यप्राप्ति-वश्यादि प्रयोगों में किया जाने वाला होम, शत्रुसेना को स्तम्भित करने का यन्त्र, सर्वस्तम्भन यन्त्र, स्तम्भकर कोष्ठ यन्त्र, अभीष्ट प्रदान करने वाला महावज्र यन्त्र, वज्रवज्र यन्त्र, समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला यन्त्र आदि बनाने की विधियाँ प्रदर्शित की गई हैं। तदनन्तर कौतुक प्रकरण में सिद्धसारस्वत विद्या एवं उसके साधन की विधि, मृत्युञ्जय विद्या, त्रिपुरा विद्या, प्रयोग-ध्यानादिसहित गारड़ मन्त्र, सर्पविष को नष्ट करने वाला औषध, अश्वारूढ़ा विद्या, अन्नपूर्णा विद्या, नवात्म विद्या, देवीहृदय विद्या, गौरी विद्या, लक्ष्मसुवर्णदा विद्या, निष्क्रयप्रदा विद्या, अभीष्टवादिनी विद्या, मांतङ्गिनी विद्या, राज्यलक्ष्मी विद्या, सिद्धलक्ष्मी विद्या आदि का उनके ध्यान एवं साधन-प्रकार सहित विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् नित्या के अर्चन चक्र का निर्माण, ललिता विद्या का गोपालस्वरूपत्व, सिद्धगोपाल यन्त्र, छः प्रकार के गोपाल मन्त्र एवं उनके यन्त्रों का ध्यान, षोडश नित्याओं की अपने में वासना, शात्रू-ज्ञान-ज्ञेय-अंकुश आदि, ललिता विद्या का अक्षरार्थ, ब्रह्मविद्या धारण का लक्षण, दश प्रकार के यम-नियम, प्रत्याहार-लक्षण, जालन्धर बन्ध-लक्षण, मर्मस्थानों की संख्या, उड्याण बन्ध-मूल-शक्ति-चालन आदि, ब्रदागार्ल में प्रवेश का फल, उत्क्रान्ति विधि, बुद्धि के पचास भेदों का निर्णय, वेधमयी दीक्षा आदि विषयों का विवेचन करते हुये श्वास का समापन किया गया है।

बाईसवें श्वास में सर्वप्रथम रमा मन्त्र का उद्धार, उसके ध्यान, यन्त्र एवं अर्चन आदि के प्रयोग की विधि बताई गई है। तदनन्तर लक्ष्मी के अन्य मन्त्रों का उद्धार, समस्त मण्डपादि देवी का ध्यान, यजन आदि की विधि, कामनानुसार

होम द्रव्य, अभिषेक, महालक्ष्मी के अन्य यन्त्र, मन्त्रराज का ध्यान एवं प्रयोग, चतुर्दशाक्षर-एकादशाक्षर मन्त्र, साप्राज्य-लक्ष्मीप्रद यन्त्र एवं उनके प्रयोग, सप्ताक्षर मन्त्र, श्रीसूक्त-विधान, लक्ष्मी मन्त्र का जप करने वालों के लिये नियम, श्रीसूक्त यन्त्र की विधि, नवरात्र में महालक्ष्मी की पूजा एवं प्रयोग, महालक्ष्मी शतनामस्तोत्र, लक्ष्मीहृदय स्तोत्र आदि की विधियों का विशद् विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् दुर्गा के मन्त्र एवं ध्यान, सिंहमन्त्र एवं पूजा तथा प्रयोग, दौर्ग यन्त्र-निर्माण, महिषमर्दिनी मन्त्र एवं उसके प्रयोग, जयदुर्गा मन्त्र एवं उसके प्रयोग, शूलिनी तथा वनदुर्गा मन्त्र एवं उसके प्रयोग और प्रयोगों की विविधता के अनुसार अलग-अलग ध्यान, काम्य द्रव्य यजन, वनदुर्गा यन्त्र, दुर्गास्तुति, महालक्ष्मी आदि का ध्यान, आग्नेय मन्त्र का प्रयोग एवं आग्नेयास्त्र के प्रयोग की विधि का विवेचन करते हुये श्वास का समापन किया गया है।

तेर्वेसवें श्वास में दिनास्त्र एवं कृत्यास्त्र का विधान, विनियोगादि सहित लवणदुर्गा के मन्त्र, देव प्रतिमा का प्रमाण, लवण मन्त्र, मन्त्रदेवता का ध्यान, साध्य नक्षत्रवृक्ष, प्रयोगसहित अन्नपूर्णेश्वरी मन्त्र का विधान, अन्नपूर्णा स्तोत्र, प्रयोग-विधि-सहित अन्नप्रदा मन्त्र का विधान, यन्त्रविधिसहित अश्वारूढ़ा मन्त्र, प्रयोगसहित गौरी मन्त्र, बशीकरण मन्त्र, यन्त्रसहित पद्मावती मन्त्र, प्रयोगसहित ज्येष्ठ लक्ष्मी मन्त्र, प्रयोगसहित त्रिपुरा के विविध मन्त्रों को उद्घाटित किया गया है। इसके अनन्तर नित्यक्लिनी मन्त्र, उसके प्रयोग एवं होम की विधि; प्रयोग-विधिसहित वाग्वादिनी क्लिनी मन्त्र, प्रयोग-होमसहित वहिवासिनी मन्त्र, ब्रह्मप्रस्तारिणी मन्त्र, शिवदूती मन्त्र, त्वरिता मन्त्र को स्पष्ट किया गया है। तदनन्तर नक्षत्रयोनियाँ, अनुग्रह यन्त्र, निग्रह यन्त्र, कालीमन्त्र, यम मन्त्र, निग्रह यन्त्र की रचना एवं उसके प्रयोग, त्रिकण्टकी विद्या, महामाया वैष्णवी विद्या, वैष्णवी एवं महामाया के अन्य मन्त्र, बगलामुखी के ब्रह्मास्त्र विद्या का विधान आदि विषय सरल रूप में पूर्णतया स्पष्टता से विवेचित किये गये हैं। अन्त में स्थिरमाया बीज को स्पष्ट करते हुये उसके पूजन की विधि, बगलामुखी का प्रयोग एवं साधना आदि के साथ बगलामुखी यन्त्र एवं बगलामुखी स्तोत्र को गुम्फित करते हुये श्वास की समाप्ति की गई है।

अन्तिम चौबीसवें श्वास में सर्वप्रथम काली के विविध मन्त्रों का निरूपण किया गया है। इसमें श्यामा मन्त्र, गुह्यकाली मन्त्र, भद्रकाली मन्त्र, श्मशान काली मन्त्र, महाकाली मन्त्र एवं उनके पूजन की विधि आदि मन्त्रभेदसहित वर्णित हैं। तदनन्तर तारा के विवेचन क्रम में तारामन्त्र के विविध भेद, शापोद्धार विद्या एवं वधूबीज को बताते हुये इन विद्याओं के साधना का स्थान एवं पूजन प्रयोग भी स्पष्ट किये गये हैं। इसके पश्चात् कोमल आसन का लक्षण एवं आसन का परिमाण बताया गया है। आगे तारागुरुपंक्ति, बलिमन्त्र, मन्त्र का ध्यान एवं होम, कुल्लुका के ज्ञान की आवश्यकता, तारा के भेद, एकजटा विद्या के भेद, नीलसरस्वती विद्या के भेद, वारीश्वरी चित्रेश्वरी-कुलजा-कीर्तिश्वरी-अन्तरिक्ष सरस्वती-घटसरस्वती-नीला सरस्वती-किणि सरस्वती के मन्त्र, तारा के बलिदान हेतु द्रव्य, तारा के राजस-तामस-सात्त्विक ध्यान, पद्मावती मन्त्र, श्यामा मन्त्र, तारामन्त्र, पञ्चदशी मन्त्र के भेद, पञ्चमी के भेद, सुन्दरी के भेद बताते हुये श्रीविद्या-पूजन की सामान्य एवं विशेष पद्धतियाँ तथा सामान्य एवं विशेष अर्च की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुये श्वास का समापन किया गया है।

## विषयानुक्रमणी

**विषया:**

षडङ्गमन्त्राणां वासना  
नेत्रमन्त्रस्यैकवचनान्तत्वव्यवस्था  
स्वदेहे योगपीठकल्पनम्  
तच्छक्तिन्यासः  
मूलमन्त्रन्यासः  
न्यासफलाभिधानम्  
मुद्रायाः बन्धनपरित्यागयोः बीजमन्त्रकथनम्  
ध्यानस्य द्वैविध्येन निरूपणम्  
अन्तर्यजनप्रदर्शनम्  
पूजाचक्रस्थापनादिप्रकारः  
कादिमतरीत्या पूजायनप्रतिष्ठाविधिः  
पूजाद्रव्यशोधनम्  
अन्तर्गिनिकार्यवर्णनम्  
पीठपूजार्चनप्रकारः  
पीठे आधारशक्त्यादिध्यानानि  
रत्नसिंहासनपादरूपयर्थादिध्यानानि  
तत्पोपरिस्थपद्मवर्णनम्  
ततच्छक्तिपूजनप्रकारः  
मूर्तिकल्पनार्चनमन्त्रोद्घारः  
इष्टदेवतायाः पूजाङ्गत्वेन पार्थिवलङ्गविधानम्  
यथाकामं लिङ्गार्चनसङ्ख्या  
फलविशेषार्थं लिङ्गनिर्माणद्रव्यविशेषणिर्णयः  
यथर्तुपौष्ट्रिलङ्गार्चनफलानि  
रत्नमयलङ्गेष्वन्योन्यापेक्षया श्रेष्ठतानिरूपणम्  
उत्तमादिना लिङ्गे त्रैविध्यम्  
लिङ्गाराधनमेव परं साधनम्  
स्व-स्वमार्गेणैव पूजाविधानम्  
यथायुगं लिङ्गविशेषाशास्त्रं कलौ  
पार्थिवार्चाप्रशंसा च  
खण्डाखण्डविभागविषयः

**पृष्ठाङ्कः विषया:  
एकोनविंश श्वासः**

१	वेदोक्तविधिना पार्थिवार्चाकथनम्	१८
२	पार्थिवार्चास्थान-मृद्वर्धनम्	१८
२	नवाक्षरशैवमन्त्र-तदृद्यादिषडङ्गध्यानादिक्रमः कामदुघामनश्च	१८
३	वैदिकमार्गेण शिवपूजा	२१
४	पारदलिङ्गविधानं तदर्चनफलञ्च	२१
४	जयाविद्योद्घारः	२२
४	आदिमूर्तिर्मूर्तिद्वादशकभेदः	२२
५	चतुर्विंशतिमूर्तिवर्णनम्	२३
५	शूद्रादिप्रतिष्ठितार्थितायां मूर्तीं नमस्यनिषेधः	२४
६	ब्राह्मणस्य सन्तप्तक्रांत्याद्युक्तनिषेधः	२५
७	शालग्रामशिलालक्षणानि	२६
८	शालग्रामशिलानां वर्णादिषेदेन गुणदोषवर्णनम्	२६
८	निष्कामार्चनविषये उक्तदोषाभावः	२६
९	तासां लक्षणविशेषेण संज्ञाविशेषाः	२७
९	सालग्रामशिलायां हरिपूजामाहत्म्यम्	३०
१०	सालग्रामबाहुल्ये फलविशेषः	३४
११	तत्रावाहनाद्यवश्यकार्यत्वम्	३४
११	आवाहनस्वरूप-तत्पर्यायनिर्णयः	३५
११	सकलीकरणस्वरूपम्	३५
१२	देवशुद्धिः	३५
१३	मुद्राशब्दनिरुक्तिः	३६
१४	उपचारानिवेदनप्रकारः	३७
१५	द्विजानां वैदिकपूर्वकमेव तान्त्रिकपूजा	३७
१६	गणेशादिपञ्चदेवतानां वैदिकमन्त्राः	३७
१६	आसनाद्युपचारनिर्णयः	३८
१६	पाद्याचमनयोः समयाभिधानम्	३९
१७	शिवस्य शङ्खस्नापने मतभेदः	४०
१७	प्रदेयवस्त्रादिनिर्णयः	४०
१७	गन्धादिकानां तत्तदैवतवर्णनम्	४०

विषया:	पृष्ठांकः	विषया:	पृष्ठांकः
गच्छभेदलक्षणानि	४१	जपप्रकारः	५१
पुष्पभेदतदनुपयोगनिरूपणम्	४२	मन्त्रशुद्धिलक्षणम्	५१
देवताविशेषे पुष्पविशेषनिषेधः	४३	जपसङ्कुचानियमस्तवपाठेऽपि निषेधतत्कलवचनम्	५१
पुष्पार्पणनिर्णयः	४३	शूदाणा पौराणिकस्तवपाठेऽपि निषेधतत्कलवचनम्	५२
पर्युषितदोषादोषविचारः	४४	आराधनोद्भासनप्रकारः	५२
पुष्पोपचारान्ते लयाङ्गाचर्वनम्	४४	निर्माल्यनिवेदनविधिः	५३
आवरणार्चायां प्राचीकल्पना	४५	अच्छिद्रार्थं भास्करार्थदानम्	५४
अङ्गपूजायां होमपूजनयोर्नमः स्वाहान्ततानिर्णयः	४५	निर्माल्यधारण-प्रसादस्वीकारास्वीकारव्यवस्था	५४
प्रत्यावरणार्चान्ते पुष्पार्पणमन्त्रः	४५	शिवविष्वादीनामन्तरकरणे दोषः	५५
लोकपालतदस्त्राणां ध्यानानि	४६	नित्यपूजायामावश्यकक्रियाविधानम्	५६
आवरणार्चान्ते देव्यर्चनमन्त्रः	४७	प्राणायामन्यासाद्यकणे निन्दाश्रवणम्	५६
धूपद्रव्यभागानिरूपणम्	४७	देशकालविशेषे मानसपूजनम्	५७
घण्टाचालनसमयतन्मन्त्रकथनम्	४७	दिने प्रतियामं कर्तव्यताविभागः	५७
धूपदीपानिवेदनतस्थापनादि	४८	मधुपर्कप्रतिविधिः	५८
पुंसो दीपनिर्वापदोषः	४८	आतुरसूतकाद्यवस्थायां किञ्चत्व्यता	५८
नैवेद्यद्रव्यस्संकारतन्त्रिवेदनप्रकारः	५०	पूजायाः त्रेधालक्षणम्	५९
नित्यहोमविधिः	५०	आराधने समर्थसमर्थविधिः	५९
पूजास्थाने भूतवलिः	५०	समर्थस्य विस्तारकरणे दोषः	६०
नित्यहोमेऽन्याधानाभावः	५०	कामनाभेदेन पूजास्थानम्	६०
उत्तरापोशानताम्बूलारात्रिकवर्णनम्	५०		
<b>विंशः श्वासः</b>			
नित्यपूजाप्रयोगे साधकस्य प्रातःकृत्यविधिः	६१	कालीमते रश्मक्रमः	१०१
भस्मधारणविधिः	६४	विद्याया: मन्त्रस्य वा छन्दोज्ञानक्रमः	१०२
तान्त्रिकसन्ध्या	६६	षोडशीविद्याया रश्मवृन्दसङ्कलनं छन्दोज्ञानक्रमश्च	१०३
दीक्षितसन्ध्यात्रयावश्यकता	६७	कालीविद्यायाश्छन्दोज्ञानविधिः	१०४
पापनिः सारणकर्मसाक्षिनिरूपणम्, सूर्यार्थदानविधिः, पूजामण्डपद्वारपूजा-विघ्नोत्सारणादि-दीपनाथार्चापूर्वमाधारशक्ति पूजा च यथाश्रमं सुष्ट्यादिन्यासक्रमः	६७	कादिमते कामेश्वरेनित्याप्रयोगः	१०५
प्राणायामप्रयोगपूर्वपीठन्यासः ऋग्वेदोक्ताग्निसूक्तञ्च	७१	यन्त्ररचनाप्रकारः	१०५
कालीमते चक्रप्रतिष्ठाविधिस्तत्रयोगश्च	७४	समययन्त्रयोरुद्धारक्रमः	१०६
प्रतिष्ठितयन्ते शिवपूजापद्धतिः	७५	यन्त्राणां फलानि	१०८
नित्यपूजासंक्षेपप्रकारः	८७	भगमालिनीनित्याप्रयोगविधिः तद्यन्त्ररचनाक्रमश्च	११०
देवतामन्त्रयन्त्राणां कालीमते पार्थिवादिस्वरूपज्ञानविधिः	८८	अमृतपञ्चकोद्धारः	१११
कादिमते तु तज्ज्ञानार्थं षड्विधरशिमप्रदर्शनम्	८८	यन्त्राणां विनियोगः	१११
कालीमते देवतादिस्वरूपज्ञानाय रश्मक्रमप्रदर्शनम्	९९	अमृतार्णीर्यन्त्ररचनासङ्कलनम्	१११
		प्रोक्तयन्त्राणां फलानि	११२
		कामेश्वरादीनां साधारणचक्रतदर्चनविधिः	११२
		नित्यक्लिन्नाप्रयोगविधिः	११४

( ११ )

**विषया:**

- यन्त्राणामुद्घारः  
यन्त्रान्तरोद्घारः  
यन्त्राणां विनियोगः  
भेरुण्डानित्याप्रयोगविधिः  
वह्निवासिनीनित्याप्रयोगविधिः

**पृष्ठाङ्काः:**

- ११७  
११८  
११८  
१२०  
१२५

**पृष्ठाङ्काः**

- १२९  
१३२  
१३४  
१३५

**एकविंशः श्वासः:**

- त्वरितानित्याप्रयोगविधिः  
काम्यहोमविधिः  
यन्त्रोद्घारतद्रचनाप्रकारः  
निगडयन्त्राणि तदचनाप्रकारश्च  
कुलसुन्दरीनित्याप्रयोगविधिः  
विद्यायास्त्रीमयत्वविवरणम्  
सम्पत्करीविद्यातद्घ्यानविधानादि  
यन्त्रविनियोगः  
नित्यानित्याप्रयोगविधिः  
नित्यानित्यायन्त्रतफलानि  
नित्यानित्यायन्त्रफलानि  
वत्रयन्त्रनिर्माण-तत्कलानि  
डाकियादीनां देहे स्थाननिरूपणम्  
नीलपताकानित्याप्रयोगविधिः  
सिद्धिकौतुकविधानम्  
विद्याया दशधा भेद प्रदर्शनम्  
षट्प्रिंशशद्यक्षिणीनामविद्या:  
चतुष्प्रष्ठिचेटकनामविद्या:  
विद्यायन्त्रोद्घारः  
यक्षिणीचेटकसाधनप्रयोगः  
विजयानित्याप्रयोगविधिः  
विजयानित्यायन्त्रम्  
सर्वमङ्गलाप्रयोगविधिः  
लघुमन्त्रपूजाविधानम्  
षोडशनित्यानामविद्याभेदादिभिः  
कोष्ठरूपवत्रयन्त्रनिर्माणम्  
यन्त्रप्रयोगफलानि  
ज्वालामालिनीनित्याप्रयोगविधिः  
दशयन्त्रनिर्माणम्  
दशयन्त्रप्रयोगविशेषः

- १४०  
१४०  
१४१  
१४३  
१४६  
१४६  
१४८  
१५०  
१५०  
१५१  
१५१  
१५२  
१५३  
१५५  
१५६  
१५७  
१५८  
१५९  
१६२  
१६४  
१६५  
१६८  
१७१  
१७२  
१७२  
१७३  
१७४  
१७४

- १७५  
१७६  
१७६  
१७७  
१७७  
१७७  
१७७  
१७७  
१७७  
१७७  
१७८  
१७८  
१७८  
१७८  
१७८  
१७८  
१७९  
१७९  
१७९  
१८०  
१८१  
१८२  
१८३  
१८३  
१८४  
१८४  
१८५  
१८५  
१८६  
१८६  
१८७

विषया:	पृष्ठांकः	विषया:	पृष्ठांकः
स्वप्रसारणात् त्रयोदशाक्षे:		नवात्मिका विद्या	१९९
यन्त्राईकोपदेशस्तद्विनियोगश्च	१८९	देवीहृदयविद्या ध्यानादि	१९९
एकविंशत्यधिकद्विशतकोष्टुपवत्त्रयन्त्रनिर्माणादि	१८९	गौरीविद्या तत्साधनध्यानादि	२००
वाराहीनित्याप्रयोगविधिः	१९०	लक्ष्मिवर्णद्य विद्या तत्साधनञ्ज	२००
प्रयोगेषु ध्यानभेदः	१९०	निष्क्रत्यप्रदा विद्या तत्साधनादि	२००
वश्यविधानम्	१९०	अभीष्टवादिनी विद्या	२००
स्तम्भनप्रयोगः	१९०	मातङ्गिनीविद्या तद्व्यानादि	२०१
मार्गरक्षाविधानम्	१९१	राज्यलक्ष्मीविद्या	२०१
समरविजयध्यानम्	१९१	महालक्ष्मीविद्या तद्व्यानादि	२०१
रिपुमारणप्रयोगादि	१९१	सिद्धलक्ष्मीविद्या तद्व्यादि	२०२
क्रोधस्तम्भनध्यानम्	१९१	नित्यार्चनचक्रनिर्माणम्	२०२
सेनाविद्रावणादि तद्व्यानञ्ज	१९२	ललिताविद्याया गोपालस्वरूपत्वम्	२०२
स्तम्भनीयपञ्चाङ्गादिकम्	१९२	सिद्धगोपालमन्त्रः	२०३
रिपुवश्यप्रयोगः	१९२	षड्विध्योपालमन्त्रः	२०३
मारणप्रयोगः	१९२	तेषां यन्त्राणां ध्यानानि	२०३
लक्ष्मीप्राप्तिप्रयोगः	१९२	सकलदेवतानामपरेकोपायौषधयोगादिविधानाम्	२०३
होमद्रव्यभेदेन फलभेदः	१९२	षोडशनित्यानां स्वात्मत्वेन वासना	२०४
ऐश्वर्यप्राप्तिहोमः	१९३	ब्रह्मविद्याप्रवचनम्	२०५
वश्यादिकरणहोमः	१९३	क्षुरिकाधारणायोगलक्षणानि	२०८
रिपुसेनास्तम्भनयन्त्रम्	१९३	धारणालक्षणम्	२१०
सर्वस्तम्भनयन्त्रम्	१९४	दशथा यमाः	२१०
रोगशान्तिकरयन्त्रम्	१९४	दशथा नियमाः	२१०
स्तम्भकरकोष्टयन्त्रम्	१९५	प्रत्याहारलक्षणम्	२१०
अभीष्टदमहावत्रयन्त्रम्	१९५	जालस्थरबन्धः	२११
वत्रवज्राभिधयन्त्रम्	१९६	मर्मस्थानसंख्यादि	२१२
अखिलसिद्धिकरयन्त्रम्	१९६	उड्याणामूलबन्धशक्तिचालनानि	२१३
कौतुकप्रकरणम्	१९६	रसनामूले सिराबन्धच्छेदः	२१४
सिद्धसारस्वतविद्या	१९७	ब्रह्मार्गलप्रवेशफलम्	२१५
विद्यासाधनप्रकारः	१९७	उत्क्रान्तिविधिः	२१६
मृत्युञ्जयविद्या	१९७	कालवञ्चनप्रकारः	२१६
त्रिपुटाविद्यास्वरूपं तस्या: षड्ङादिकञ्ज	१९७	पञ्चाशतुद्विभेदनिर्णयः	२१७
गारुडमन्त्रतप्तयोगध्यानादि	१९७	वेधमयो दीक्षा	२१८
भुजगविषनाशनमौषधम्	१९८	निःश्वाससंख्याभेदः	२१८
अश्वारुद्धविद्या तद्व्यादि	१९८		
अन्त्रपूर्णविद्या तद्व्यानसाधनप्रकाराः	१९९	द्वाविंशः श्वासः	
		नवात्मविद्या	१९९

विषया:	पृष्ठांकः	विषया:	पृष्ठांकः
रमामन्त्रोद्धारः	२२०	महालक्ष्मीशतनाम	२५५
रमाध्यानम्	२२०	लक्ष्मीहृदयस्तोत्रम्	२५८
तद्यन्त्रयजनादिप्रयोगः	२२०	दुर्गामन्त्रोद्धारस्तद्वचानादि	२६३
विनियोगफलम्	२२३	सिंहमनोरुद्धारः	२६४
यन्त्रान्तरोद्धारः	२२३	पूजाप्रयोगविधानम्	२६५
लक्ष्मीमन्त्रान्तर- तत्त्वयोगविधयः	२२५	दौर्गयन्त्रविधिः	२६६
समण्डपादेवीध्यानं यजनादिप्रयोगश्च	२२७	माहिषमदिनीमन्त्रप्रयोगः	२६६
यथाकामं होमद्रव्यविधिः	२३१	जयदुर्गामन्त्रः	२६९
अभिषेकविधिः	२३२	शूलिनिदुर्गामन्त्रप्रयोगः	२७०
महालक्ष्मीयन्त्रान्तरम्	२३४	वनदुर्गाप्रयोगविधिः	२७३
मन्त्रराजध्यानप्रयोगविधिः	२३४	प्रयोगभेदेन ध्यानभेदः	२७५
चतुर्दर्शैकादशाणांदिमन्त्रोद्धारः	२३६	काम्यद्रव्ययजन विधानम्	२७५
साप्राज्यलक्ष्मीमन्त्रयन्त्रादिप्रयोगः	२३८	वनदुर्गायन्त्रोद्धारः वनदुर्गास्तोत्रञ्च	२७८
सप्तार्णमन्त्रः	२३९	नवार्णविधानोत्तलक्ष्मीपूजापद्धतिः	२७९
श्रीसूक्तविधानम्	२३९	महालक्ष्म्यादीनां ध्यानानि	२८१
श्रीमन्त्रजापिनां नियमाः	२४३	आनेयमन्त्रप्रयोगः	२९२
श्रीसूक्तयन्त्रविधिः	२४५	आनेयास्त्रप्रयोगविधिः	२९४
नवरात्रे महालक्ष्मीपूजाप्रयोगः	२४६		
		<b>त्रयोक्तिंशः श्वासः</b>	
दिनास्त्रकृत्यास्त्रविधानम्	२९९	त्रिपुरामन्त्रः	३२३
लवणदुर्गामन्त्राणां विनियोगादि	३०४	त्रिपुटामन्त्रप्रयोगः	३२४
लवणमन्त्रविधानम्	३०६	त्रिपुटामन्त्रान्तरप्रयोगः	३२५
प्रतिमाप्रमाणम्	३०८	नित्यविलत्रामन्त्रोद्धारादि	३२६
लवणमन्त्रस्तेषां मन्त्रदेवतादयानानि च	३१०	नित्यविलत्राप्रयोगहेमविधिः	३२७
साध्यनक्षत्रवृक्षाः	३११	नित्यविलत्रामन्त्रप्रयोगहेमविधिः	३२८
अत्रपूर्णेश्वरीमन्त्रप्रयोगः	३१४	नित्यविलत्रामन्त्रान्तरप्रयोगविधिः	३२०
अत्रप्रदामन्त्रविधानम्	३१६	नित्यविलत्रामन्त्रान्तरप्रयोगविधिः	३३१
अत्रप्रदाप्रयोगविधिः	३१६	वाग्वादिनीकिलत्रामन्त्रप्रयोगः	३३२
अश्वारूढामन्त्राः	३१७	तत्त्वयोगकाम्यहेमविधिः	३३५
अश्वारूढायन्त्रविधिः	३१९	वज्रप्रस्तारिणीविद्योद्धारादि	३३६
गौरीमन्त्रोद्धारः	३१९	तत्काम्यहोमद्रव्यविधानम्	३३८
गौरीमन्त्रप्रयोगः	३२०	वज्रप्रस्तारिणीमन्त्रान्तरम्	३४०
वशीकरणमन्त्रोद्धारः	३२१	शिवदूतीमन्त्रोद्धारादि	३४०
पद्मावतीमन्त्रः	३२१	शिवदूतीमन्त्रप्रयोगाकाम्यहेमविधिः	३४२
पद्मावतीयन्त्रोद्धारः	३२२	त्वरितामन्त्रोद्धारादि	३४२
ज्येष्ठलक्ष्मीमन्त्रः	३२२	नक्षत्रयोनयः	३४७

( १४ )

विषया:	पृष्ठाङ्कः	विषया:	पृष्ठाङ्कः
अनुग्रहयन्त्रणि	३४७	मन्त्रान्तरम्	३५३
यन्त्ररचनाप्रकारः	३४८	महामायावैष्णवीमन्त्रः तत्रयोगश्च	३५३
यन्त्रान्तरम्	३४८	नित्यकर्मादित्यागे निमित्ताभिधानम्	३५६
यन्त्रान्तरम्	३४९	ब्रह्मास्त्रविद्याबगलामुखीविधानम्	३५७
निग्रहाख्ययन्त्रोद्घारः	३५१	स्थिरमायाबीजोद्घारः	३५७
कालीविद्या	३५१	पूजाविधिः	३५८
यममन्त्रोद्घारः	३५१	बगलामुखीप्रयोगः	३६०
निग्रहान्तरचनाप्रकारः	३५२	साधनदिनिर्णयः	३६१
त्रिकण्टकीविद्योद्घारादि	३५३	तद्यन्तरचनाप्रकारः	३६६
<b>चतुर्विंशति श्वासः</b>			
बगलामुखीस्तोत्रम्	३६९	ताराभेदाः	४०२
कालीमन्त्रप्रकरणम्	३७३	एकजटाविद्याभेदः	४०३
श्यामामन्त्रः	३७३	नीलसरस्वतीविद्याभेदविधिः	४०४
पूजाप्रयोगः	३७४	वाणीश्वरीमन्त्रः	४०६
पूजायन्त्रपीठपूजादि	३७७	चित्रेश्वरीमन्त्रः	४०६
मन्त्रान्तरतत्पूजाप्रकाराः	३८०	कुलजामन्त्रः	४०७
गुह्यकालीमन्त्रभेदाः	३८४	कीर्तिश्वरीमन्त्रः	४०७
भद्रकाली विद्या	३८६	अन्तरिक्षसरस्वतीमन्त्रः	४०७
श्मशानकालीविद्या	३८६	घटसरस्वतीमन्त्रः	४०७
महाकालीविद्या	३८६	नीलामन्त्रः	४०७
पूजायन्त्रम्	३८७	किणि सरस्वतीमन्त्रः	४०७
ताराप्रकरणम्	३८७	ताराबलिद्रव्यम्	४०८
ताराविद्याभेदाः	३८७	गुणभेदेन त्रिधा ध्यानम्	४०८
शापोद्घारविद्या वधूबीजोद्घारश्च	३८८	मन्त्रान्तरोद्घारः	४०९
एतासां विद्यानां साधनस्थानम्	३८९	पद्मावतीमन्त्रोद्घारः	४११
तत्पूजाप्रयोगः	३९०	श्यामामन्त्राणांप्रसिद्धोद्घारक्रम	४१२
कोमलासनलक्षणम्	३९१	तारामन्त्रोद्घारक्रमः	४१५
आसनपरिमाणम्	३९२	पञ्चदशी भेदा	४१६
सारस्वतविशेषयन्त्रान्तरम्	३९३	पञ्चमीभेदाः	४१७
तारागुरुपंक्तित्रयम्	३९८	सुन्दरीभेदाः	४१८
बलिमन्त्रः	३९९	श्रीविद्यापद्धतिः	४१९
मन्त्रध्यान-विद्याहोमौ	४००	श्रीविद्याविशेषपद्धतिः	४२३
कुल्लुकाजानावश्यकता	४०१	श्रीविद्याविशेषस्नानम्	४२४
रहस्यपुरश्वरणम्	४०१	सामान्यविशेषार्थ्योरावश्यकत्वम्	४४०

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

# श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

(श्रीविद्या का सम्पूर्ण ग्रन्थ)

उत्तरार्द्धम् : प्रथमो भागः

( १९ - २४ श्वासात्मकः )

सर्वजन-विज्ञेय भाषा टीका से अलंकृत श्रीविद्यारण्य यति-प्रणीत प्रकृत श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् ग्रन्थ का संशोधित एवं संस्कृत मूल पाठ तथा भाषा टीका प्रकाशक द्वारा पूर्णतया स्वायत्तीकृत हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति प्राप्त किये विना इसके किसी भी अंश को जिस किसी भी रूप में प्रकाशित अथवा उद्धृत नहीं किया जा सकता।



यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि इस ग्रन्थ 'में पठित किसी भी मन्त्र अथवा यन्त्र का सद्गुरु से आज्ञा प्राप्त किये विना प्रयोग नहीं करना चाहिये; अन्यथा करने पर होने वाले किसी भी प्रकार के अनिष्ट के लिए स्वयम्भू उपासक स्वयं उत्तरदायी होगा।

॥ श्रीः ॥  
 श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं  
**श्रीविद्यार्णवितन्त्रम्**  
 भाषाभाष्योपेतम्

\* उत्तरार्द्धम् : प्रथमो भागः \*

**अथैकोनविंशः श्वासः**

**नारदपञ्चरात्रे—**

मन्त्राभिमृष्टयोः पाण्योः पल्लवेऽङ्गानि विन्यसेत् । मूलाद्युगपदग्रान्तं	व्यापकत्वेन नारद ॥१॥
अङ्गुष्ठेनाचरेत्यासमन्त्याङ्गुलिसमाश्रयम् । अङ्गुष्ठविषयन्यासं	तर्जनीशिरसैव हि ॥२॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे में कहा गया है कि हे नारद! मन्त्राभिमृष्ट हाथों की अंगुलियों से अपने शिर से पैरों तक व्यापक न्यास करना चाहिये। अंगुठे और अन्तिम अंगुलि को मिलाकर न्यास करना चाहिये एवं अंगुठे में तर्जनी से न्यास किया जाता है। यही करन्यास होता है।

षडङ्गमन्त्राणां वासना

**षडङ्गमन्त्राणां वासना तु प्रथमतन्त्रे—**

बुद्धिगम्यं च हन्मतम् । नत्या प्रणाम उक्तो हि हृदासौ क्रियतेऽधुना ॥१॥  
 नमस्क्रिया बुद्धिगम्या हृच्छैरर्थः: शिरो मतम् । स्वाहया च ततः: स्वस्य विषयाहरणं मतम् ॥२॥  
 ततः: शिरोऽणुना सम्यक् प्रोक्तोच्चर्विषयाहृतिः: । शिखा महो वषट् चाङ्गं शिखयात्मतनुर्महः ॥३॥  
 प्रोक्तः कवः स्यादग्रहणे तद्युतं कवचं पदम् । हुं महः कवचेनास्य महसा गृह्णते ततः ॥४॥  
 शरीरं मन्त्रिणस्तद्वन्नेत्रं दृष्टिश्च दर्शनम् । वौषट्वाच्यं तच्च दृशि तेन स्यात्तन्महः स्मृतम् ॥५॥  
 नेत्रं ह्यसुः क्षेपवाची तद्वत्रः सुखनार्थकः । फट्कोऽग्निस्तेन चानिष्टमाक्षिष्य परिपालयेत् ॥६॥ इति।

**गौतमीये—**

इज्यमानो हृदात्मायं हृदये स्याच्चिदात्मनः । क्रियते तत्परत्वं तु हन्मन्त्रेण ततः: परम् ॥१॥  
 सर्वज्ञादिगुणोपेतं संविद्वृपे चिदात्मनि । क्रियते विषयाहारः शिरोमन्त्रेण धीमता ॥२॥  
 हृच्छिरोरुपचिद्वाममयताभावना दृढा । क्रियते निजदेहस्य शिखामन्त्रेण सादरम् ॥३॥  
 मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन तेजसा । सर्वतो वर्तमन्त्रेण क्रियतेऽनन्यसंवृतिः ॥४॥  
 यद्यदाति परं ज्ञानं संविद्वृपे परात्मनि । हृदयादिमयं तेजः स्यादेतत्रेत्रसंज्ञकम् ॥५॥  
 आध्यात्मिकादिरूपं यत्साधकस्य विनाशयेत् । अविद्यामख्यातं तत्परं धाम समीरितम् ॥६॥ इति।

षडङ्ग न्यास—हृदय में नमः से न्यास करे। शिर में स्वाहा से करे। शिखा में वषट् से न्यास करे। कवच में हुं से न्यास करे। नेत्रों में वौषट् से न्यास करे। फट् से अख न्यास करे।

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि हृदय में आत्मा का वास होता है; इसलिये नमः बोलकर वहाँ न्यास किया जाता है। शिर में सर्वज्ञतादि गुणों से युक्त चिदात्मा विषयाहरण करता है, इसलिये स्वाहा से वहाँ न्यास किया जाता है। हृदय एवं शिर चित का निवास स्थान है, इस भावना को शिखा दृढ़ करती है, इसलिये यहाँ वषट् से न्यास किया जाता है। मन्त्र वाचन से मन्त्रात्मक देह में तेज उत्पन्न होता है, इसलिये उसकी रक्षा के लिये कवच न्यास हुं बोलकर किया जाता है। संविद् रूप परमात्मा का परम तेजमय ज्ञान हृदय में नेत्र देते हैं, इसलिये वौषट् बोलकर नेत्रों में न्यास किया जाता है। साधक के आध्यात्मिक ज्ञान का विनाश अविद्या करती है; जोकि अस्त्र के प्रयोग से परम धाम में चली जाती है; इसलिये 'फट्' बोलकर अस्त्रन्यास किया जाता है।

### नेत्रमन्त्रस्यैकवचनान्तत्वव्यवस्था

अत्र केचित् षडङ्गन्यासे 'नेत्रयाय वौषट्' इति प्रयोगं वदन्ति, तत्र प्रमाणं चिन्त्यम्। वस्तुतस्तु—'हृदय-शिरसोः शिखायां कवचाक्षयस्त्रेषु सह चतुर्थीभिः' इति प्रपञ्चसारवचनात्। 'षडङ्गं विन्यसेन्मन्त्री हृच्छरक्ष शिखा ततः। कवचं नेत्रमन्त्रं च' इति दक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्। 'हृदयं च शिरो देवि शिखा च कवचं ततः। नेत्रमन्त्रं च्यसेत् डेन्त्' मिति ज्ञानार्णववचनाच्च चतुर्थेऽकवचनत्वैव दर्शनात् नेत्रायेति तत्त्वम्। अत एव—

पवित्रमनलारुदं कमलं गोपनाङ्कितम्। केवलः शङ्करश्चान्ते सरुकं (सरेफं) पश्चिमामुखम् ॥१॥

अनितं वामृताधारसंस्थितं प्रोद्धरेत्ततः। धरेशं केवलं दत्त्वा नेत्राय व्यक्षरं पदम् ॥२॥

तदन्ते वौषटित्युक्तं नेत्रमन्त्रोऽप्यवं स्मृतः।

इति नारदपञ्चरात्रे स्पष्ट एवोक्तः। अन्यथा द्विनेत्रदैवतपक्षे 'नेत्राभ्यां' इत्यादिपदान्तरप्रक्षेपापत्तिः।

दोनों नेत्रों के लिये न्यास करने के क्रम में द्विवचन का प्रयोग न कर एकवचन का ही प्रयोग किया जाता है; क्योंकि प्रपञ्चसार, दक्षिणामूर्तिसंहिता एवं ज्ञानार्णव का ऐसा ही निर्देश है। इसलिये नारदपञ्चराज में भी कहा गया है कि बीजों के बाद त्र्यक्षर नेत्राय और 'वौषट्' कहकर दो नेत्रों में ही न्यास करना चाहिये; अन्यथा दो नेत्रों के लिये 'नेत्राभ्यां' यह द्विवचनान्त प्रयोग करना पड़ता।

### स्वदेहे योगपीठकल्पनम्

#### प्रपञ्चसारे—

संदेक्षितो मनुस्मिं प्रतिज्ञपुमिच्छन् कुर्यात्रिजेन वपुषैव सुयोगपीठम्।

अंसोरुयुग्मपदसाननाभिमूलपार्शद्वैर्विहितगात्रसमुज्जवलं च ॥१॥

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि इस मन्त्र में दीक्षित साधक जप करने की इच्छा होने पर अपने देह का योगपीठ के रूप में चिन्तन करे। अंसों, ऊरुओं, पैरों, मुख, नाभिमूल एवं पार्श्वों में मूल मन्त्र से न्यास करके अपने शरीर को दीपित्मान बनाये।

#### तच्छक्तिन्यासः:

पथ्येऽनन्ताद्यैरपि सज्जानात्मानिकैर्यजेन्मन्त्री। पीठाख्यमन्त्रपश्चिमं मिति पदापादाचार्यः। ईशानशिवः—'आधाराख्यां यजेच्छक्तिं हृदयेऽसे च दक्षिणो। धर्मं ज्ञानं च सव्यांसे ऊर्वोर्वामान्ययोरपि। वैराग्यसंज्ञमैश्वर्यं' मिति। अनन्ताद्यैरित्यापदेन पद्मसूर्यसोमवह्निसत्त्वरजस्तमआत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मज्ञानतत्त्वमायातत्त्वकलातत्त्व-विद्यातत्त्वपरतत्त्वानां ग्रहणम्। उत्तरतत्त्वे—

मूलाधारे तु मण्डूकं रुद्रं कालाग्निसंज्ञकम्। स्वाधिष्ठानेऽथ नाभ्यब्जे प्रकृतिं मूलपूर्विकाम् ॥१॥

आधारशक्तिं हृदये विन्यस्य साधकोक्तमः। कूर्मानन्तौ वराहं च धरणीं च सुधार्णवम् ॥२॥

रलद्वीपं च विन्यस्य तत्र स्वर्णमहीधरः। तदूर्ध्वे नदनोद्यानं तत्मध्ये मणिमण्डपम् ॥३॥

कोटिसूर्यप्रभं हेमप्राकारपरिवेष्टितम्। रलमण्डपमध्यस्थां वेदिकां हेमनिर्मिताम् ॥४॥

विन्यस्य तस्य मध्यस्थं रलसिंहासनं शुभम् । शरीरे स्वस्य धर्माद्यैः पीठकल्पनमाचरेत् ॥५॥  
दक्षिणांसे न्यसेद्धर्मं ज्ञानं वामांसके न्यसेत् । वामोरुमूले वैराग्यमैश्वर्यं दक्षिणे न्यसेत् ॥६॥  
मुखेऽर्थं वामपार्श्वं चाज्ञानं नाभिमण्डले । अवैराग्यं दक्षपार्श्वं चानैश्वर्यं न्यसेत्क्लमात् ॥७॥  
धर्मादीन् पीठपादांश्च गात्राण्यन्यान् प्रकल्पयेत् । हृदयनन्तं न्यसेत्तमिन् पदं तत्कर्णिकोपरि ॥८॥  
अर्कं च केसरे सोमं पत्रे वहिं ततो न्यसेत् । तेषां कला न्यसेत्तमण्डले तत्र तत्र वै ॥९॥ इति।  
तत्र तत्र तन्मण्डलन्याससमय एवेत्यर्थः । वैशब्दस्त्वेवकारार्थवाचकः ।

न्यसेद्दुण्ट्रयं पश्चात्सत्त्वादिकमतः परम् । आत्मान्तरात्मपरमात्मविज्ञानात्मकान् न्यसेत् ॥१०॥  
ज्ञानमायाकलाविद्यापरतत्त्वानि च क्रमात् । पीठमन्त्रं प्रविन्यसेत्ततो देशिकसत्तमः ॥११॥  
देहात्मके ततः पीठे ध्यायेदिष्टां च देवताम् । इति।

अथ पीठाख्यपश्चिममिति, पीठमन्त्रमनन्तरमिति, पीठमन्त्रं प्रविन्यसेदिति च प्रपञ्चसार-शारदातिलका-दिग्न्यवचनैः पीठशक्तिन्यासो नास्तीति प्रतीयते।

उत्तरनन्त्र में कहा गया है कि मूलाधार में मण्डूक कालार्णिरुद्र, स्वाधिष्ठान नाभि पद्म में मूलमन्त्र के साथ प्रकृति और हृदय में आधार शक्ति का न्यास करे। वहीं पर कूर्म, अनन्त, वराह, धरणी, सुधासगर, रत्नद्वीप एवं स्वर्ण मेरु का न्यास करे। उसके ऊपर नन्दन वन में करोड़ों सूर्य के समान प्रभायुक्त एवं स्वर्ण प्राकार से वेष्टित मणिमण्डप का न्यास करे। उस रलमण्डप के मध्य में सोने की वेदी का न्यास करे। उसके मध्य में रलसिंहासन का न्यास करे। अपने शरीर में धर्मादि पीठ की कल्पना करे। दाँयें कन्धे में धर्म, बाँयें कन्धे में ज्ञान, वामोरु मूल में वैराग्य एवं दक्षोरु मूल में ऐश्वर्य का न्यास करे। मुख में अर्थर्म, वाम पार्श्व में अज्ञान, नाभिमण्डल में अवैराग्य एवं दक्ष पार्श्व में अनैश्वर्य का न्यास करे। इस प्रकार धर्मादि पीठों, पैरों आदि की कल्पना अपने शरीर में करे एवं हृदय की कमल कर्णिका में अनन्त, केसर में सूर्य और पत्र में चन्द्र का न्यास करने के बाद अग्नि का न्यास करके उनके साथ ही उनकी कलाओं का न्यास करे। उसके बाद सत्त्वादि गुणत्रय का न्यास करे। आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, विज्ञानात्मा का न्यास करे। ज्ञान, माया, कला, विद्या, परतत्त्वों का न्यास करे। तब पीठ मन्त्रों का न्यास करे। इस प्रकार के देहात्मक पीठ में इष्ट देवता का ध्यान करे।

### मूलमन्त्रन्यासः

अथ मूलमन्त्रन्यासः । तत्र श्रीरुद्रयामले—  
प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रेण साधकः । विन्यसेत्तदृष्टिच्छन्दोदैवतानि यथाविधि ॥१॥  
कराङ्गन्यासमुख्यांस्तु न्यासानन्यान् समाचरेत् । तत्तत्कल्पोदितान् मन्त्री ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥२॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे—  
एवं न्यासं पुरा कृत्वा करयोर्विहरेत्ततः । मूलमन्त्रादिसर्वस्य न्यस्तमन्त्रगणस्य च ॥१॥  
यस्य मन्त्रस्य ये न्यासाः कर्तव्याः सिद्धिमिच्छता । ततो मन्त्रपुटैर्वर्णैर्मर्तुकायाः सबिन्दुभिः ॥२॥  
विन्यसेन्मन्त्रवित्सम्यक् शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना । अथ वाङ्गकरन्यासांस्ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥३॥ इति।

मूल मन्त्र-न्यास—रुद्रयामल में कहा गया है कि मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करने के बाद साधक उस मूल मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता का न्यास करे। तदनन्तर करन्यास, अंग न्यास करते हुये अन्यान्य न्यास करे। इस प्रकार अपने कल्पोक्त न्यासों को करने के बाद मुद्रा दिखाये। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि पहले न्यास करके मूल मन्त्रादि सभी मन्त्रों से न्यास करे। सिद्धि की इच्छा से जिस मन्त्र से न्यास करे, उसी मन्त्र को मातृका वर्णों से पुटित करके शास्त्रोक्त रीति से सम्यक् रूप से न्यास करे। अथवा अंगन्यास एवं करन्यास करके मुद्राओं को प्रदर्शित करे।

**श्रीकुलार्णवि—**

आगमोक्तेन मार्गेण न्यासान्तित्यं करोति यः । देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥१॥  
यो न्यासकवचच्छब्दो मन्त्रं जपति तं प्रिये । दृष्ट्वा विघ्नाः पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ॥२॥  
अकृत्वा न्यासजातं यो मूढात्मा कुरुते जपम् । विघ्नः स बाध्यते नूनं व्याप्रैमृगशिशुर्यथा ॥३॥ इति।

**कालिकापुराणे—**

न्यासानां प्रचुरत्वे हि फलानामपि भूरिता । उक्तन्यासो न हि त्याज्यस्त्वधिकं तु समाचरेत् ॥१॥ इति।

श्रीकुलार्णव में कहा गया है कि आगमोक्त मार्ग से जो नित्य न्यास करता है, उसे देवताभाव प्राप्त होकर मन्त्रसिद्धि मिलती है। न्यास और कवच से युक्त होकर जो साधक मन्त्र का जप करता है, उसे देखकर विघ्न वैसे ही दूर भाग जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग जाते हैं एवं बिना न्यास किये जो जप करता है, उस मूर्ख को विघ्न वैसे ही बाधा उत्पन्न करते हैं, जैसे व्याप्र मृगशावक को बाधा करते हैं। कालिकापुराण में कहा गया है कि न्यासों की प्रचुरता से फलों की प्राप्ति भी भरपूर मात्रा में होती है। अतः उक्त न्यासों का परित्याग कभी नहीं करना चाहिये, अपितु उससे अधिक ही न्यास करना चाहिये।

**मुद्रायाः बन्धनपरित्यागयोः बीजमन्त्रकथनम्**

**उत्तरतन्त्रे—**

वाग्भवस्य द्वितीयेन कामराजेन भैरव । मुद्राया बन्धनं कार्यं मूलमन्त्रेण दर्शितम् ॥१॥  
परित्यागस्तु मुद्रायास्ताराबीजेन वाचरेत् । प्रान्तादिचन्द्रबिन्दुभ्यां षष्ठस्वरसमन्वितम् ॥२॥

**ताराबीजमिति प्रोक्तम्.....। इति।**

**प्रान्तादिर्दिक्षाराः । अन्यत्सुगमम्।**

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि वाग्भव के बाद कथित कामराज मन्त्र से मुद्रा का निर्माण करे एवं मूल मन्त्र के द्वारा उसका प्रदर्शन करे। मुद्रा का परित्याग करने पर ‘स्त्री हूँ’—इस ताराबीज का जप करे।

**ध्यानस्य द्वैविध्येन निरूपणम्**

**तथा—**

ध्यानं कुर्यात्ततो मन्त्री तत्तत्कल्पोक्तवर्त्मना । ध्यानमात्मेष्टदेवस्य वेदनं मनसा मतम् ॥१॥

तदेव द्विविधं प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं तथा । आत्मनो हृदयाभ्योजं कण्ठिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥२॥

प्रफुल्लं सोमसूर्यानिमण्डलेन विराजितम् । स्वीयेष्टदेवतां तत्र ध्यायेदागमबोधिताम् ॥३॥

एवं यद्वेदनं तद्धि सगुणं ध्यानमुच्यते । यज्जीवब्रह्मणोरैक्यं सोऽहं स्यादिति वेदनम् ॥४॥

तदेव निर्गुणं ध्यानमिति ब्रह्मविदो विदुः । इति।

**ध्यानं तु तत्तत्कल्पेषु वक्ष्यते।**

तदनन्तर साधक कल्पोक्त मार्ग से ध्यान करे। इष्टदेव का मानसिक चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है, एक सगुण और दूसरा निर्गुण। अपने हृदयकमल के उज्ज्वल कण्ठिका केसर में प्रफुल्ल सूर्य, सोम एवं अग्नि-मण्डल में विराजित इष्टदेवता का ध्यान आगमोक्त रूप में करे। इस प्रकार के ध्यान को सगुण ध्यान कहते हैं। जिस ध्यान में जीव और ब्रह्म में ऐक्य की भावना करते हुये सोऽहं की भावना की जाती है, उसे ब्रह्मविद् निर्गुण ध्यान कहते हैं।

**अन्तर्यजनप्रदर्शनम्**

**योगिनीतन्त्रे—**

अथान्तर्यजनं वक्ष्ये यथावदवधारय । वामनाडीं समाकृत्य किञ्चिदाकुञ्ज्येष्टदम् ॥१॥

अन्तर्यागमिदं देवि कथितं गुरुभाषितम् । इति।

फेल्कारिणीतन्त्रे—‘आराध्य मनसा भक्त्या बाह्यपूजामथाचरेत्’ इति। गौतमीये—‘पूजां च मानसीं कुर्यात्ततोऽर्थस्थापनं चरेत्’ इति। उत्तरतन्त्रे—

ध्यात्वा हृष्टर्यजेत्वीठं न्यासपार्गेण मन्त्रिवत् । तस्मिन् पीठे स्थितामिष्ठदेवतामुक्तविग्रहाम् ॥१॥  
ध्यात्वा यजेच्चन्दनाद्यमानसैर्भेजनान्तिर्गैः । भोजनावसरे चान्तवैश्वदेवं समाचरेत् ॥२॥  
मूलाधारे स्मरेत्कुण्डं कुण्डल्यग्निसमुद्भवम् । आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मचतुरस्तकम् ॥३॥  
धर्मधर्मान्विते तत्र मूलमन्त्रपुरःसरम् । अमुं जुहोमि स्वाहेति प्रत्येकं जुहुयात्ततः ॥४॥  
अहन्तासत्यपैशुन्यकामक्रोधादिकं हविः । मन एव स्रुवः प्रोक्तः सुषुम्णा सुगुदीरिता ॥५॥  
तदन्ते तम्यये भूत्वा यथाशक्ति जपेन्मनम् । तज्जपं सर्वसम्पत्त्यै देवतायै समर्पयेत् ॥६॥ इति।

जपनिवेदनमन्त्रस्तु ‘गुह्याती’ ति प्रागेवोक्तः । लक्षसागरे—

इत्यं जपं यथाशक्ति कृत्वा देवि समर्पयेत् । गुरुं प्रणाम्य विधिवत्यूजाचक्रं समुद्धरेत् ॥१॥ इति।

अन्तर्यजन को बताते हुये योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि अब अन्तर्यजन को कहता हूँ, उसे यथावत् धारण करो। वाम नाड़ी से श्वास लेकर कुछ देर तक हृदय को सिकोड़ने को ही गुरुओं ने अन्तर्याग कहा है। फेल्कारिणी तन्त्र में कहा गया है कि मानसिक पूजा के बाद भक्तिसहित बाह्य पूजा करे। गौतमीय तन्त्र के अनुसार मानसिक पूजन के बाद अर्थस्थापन करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि ध्यान करने के बाद साधक को न्यास के समान ही पीठ पर अन्तर्याग करना चाहिये। उस पीठ पर अवस्थित इष्ट देवता का ध्यान करके उनकी पूजा गन्धादि नैवेद्य मानसिक उपचारों से करे। भोजन के समय और बाद में वैश्वदेव करे। मूलाधार में कुण्ड कल्पित करे उसमें कुण्डलिनी से उत्पन्न अग्नि है। उसमें आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा के चतुरस्त कुण्ड में मन्त्र से ‘जुहोमि स्वाहा’ कहकर प्रत्येक का हवन करे। अहंकार, असत्य, पैशुन्य, काम, क्रोध आदि की आहुति मनरूपी स्रुव से सुषुम्णा मार्ग में प्रक्षिप्त करे। इसके बाद तम्य होकर यथाशक्ति मन्त्र जप करे। उस जप को सभी सम्पत्तियों के आकरस्वरूप देवता को समर्पित करे। लक्षसागर में कहा गया है कि इस प्रकार यथाशक्ति जप करके देवी को समर्पित करे। तदनन्तर गुरु को प्रणाम करके चक्र का विधिवत् उद्धार करे।

पूजाचक्रस्थापनादिप्रकारः

सिद्धीश्वरतन्त्रे—

प्रणाम्य श्रीगुरुं भक्त्या साधकः कुङ्कुमादिभिः । स्वर्णादिरचिते पीठे पूजाचक्रं समुद्धरेत् ॥१॥  
संस्थाप्य पुरतो देवि शुभे पीठे सुरेश्वरि । दद्यात् पुष्पाङ्गलिं तत्र मूलमन्त्रेण साधकः ॥२॥ इति।  
अत्र पूजाचक्रविधिस्तु प्रागेव प्रदर्शितः।

सिद्धीश्वर यामल में कहा गया है कि भक्ति से गुरु को प्रणाम करके साधक कुङ्कुमादि से स्वर्णादि से निर्मित पीठ पर पूजाचक्र बनावे। अपने सामने स्थापित उस पीठ पर मूल मन्त्र से पुष्पाङ्गलि प्रदान करे।

कादिमतरीत्या पूजायन्त्रप्रतिष्ठाविधिः

अथ कादिमतरीत्या पूजायन्त्रप्रतिष्ठाविधिः । तत्र श्रीतन्त्रराजे—

चक्रे देव्यां तथा शिष्ये प्रतिष्ठा त्रिविधोच्यते । सा च तत्त्वविदा कार्या संप्रदायानुरोधिना ॥ इति।

चक्रे पूजाचक्रे। देव्यां देवीमूर्तौ। देवीत्युपलक्षणं तेन स्वेष्टदेवतामूर्तौ। तत्त्वविदा चन्द्रसूर्यनाडीपथपृथिव्या-दिपञ्चतत्त्वोट्यकालतत्कलविदा, अथवा आत्मज्ञानविदा। संप्रदायानुरोधिना गुरुपारम्पर्यक्रमवेत्त्वगुरुमण्डलपूजकत्व-नित्यनिमित्तकोपास्तिनिरतत्वविशिष्टेनेत्यर्थः। तथा—

स्थिरे शुभग्रहोपेतेऽनुकूले गुणशालिनि । मुहूर्ते कारयेद्विद्वान् पूर्णायां वा शुभे दिने ॥ इति ॥

स्थिरे स्थिरलग्ने । दुष्प्रहाक्रान्तस्य निषेधत्वादाह—शुभग्रहोपेते इति । तथाप्येतादृशगुणविशिष्टस्या-ष्टमचतुर्थद्वादशस्थप्रतिकूलतादोषदुष्टत्वादाह—अनुकूले इति । तथापि निर्दिष्टमुहूर्तप्राप्त्यर्थवादादाह—गुणशालिनीति । तथा च स्वल्पदोषेऽधिकगुणे इत्यर्थः । मुहूर्ते कारयेदिति । तथा—

**क्षेत्राज्यद्वयं**: प्रथमं नारिकेलाभ्मसा ततः । अभिषिच्याथ तोयेन क्वथितेनाक्षरौषधैः ॥१॥

**आवाहाभ्यर्थ्य**: तल्लग्ने चक्रे संस्थाप्य पूजयेत् । नित्यातत्त्वाप्तिकालोत्थविद्याभ्यर्थ्य ताः क्रमात् ॥२॥

**स्पृशञ्जपेत्**: कराप्रेण श्रीचक्रं पूजयेदपि । एवं दिनत्रयं कृत्वा ततो नित्यक्रमं भजेत् ॥३॥

**गन्धैः**: पुष्पैर्वैधूपैर्दीपैर्वैद्यतर्पणैः । त्रिरात्रं पूजयेद्वेवां योगिनीयोगिभिः समम् ॥४॥

एवं देवीप्रतिष्ठायां क्रमः सान्निध्यकारकः । इति ।

**लक्षसागरे—**

**आदौ** वेदोदितैर्मन्त्रैरग्न्युत्तारणमाचरेत् । धातुनिर्मितचक्राणां मूर्तीनां च विशेषतः ॥१॥ इति ॥

अग्न्युत्तारणप्रकारस्तु प्रयोगे वक्ष्यते ।

अथ पात्रासाधनं, तत्त्वकारस्तु प्राप्तेव प्रपञ्चितः ।

**कादिमतरीति** से पूजायन्त्र-प्रतिष्ठा—तत्त्वराज में कहा गया है कि पूजायन्त्र की प्रतिष्ठा तीन प्रकार से की जाती है—चक्र में, देवी की मूर्ति में एवं शिष्य में । उसे अपने सम्प्रदाय के अनुसरण करने वाले तत्त्वज्ञ को करना चाहिये । तत्त्वज्ञ का तात्पर्य आत्मज्ञानी से है । सम्प्रदाय का अनुसरण करने वाले का तात्पर्य यह है कि वह साधक गुरुपरम्परा को जानने वाला, गुरुमण्डल का पूजक एवं नित्य-नैमित्तिक पूजा को करने वाला हो । यह भी कहा गया है कि स्थिर लग्न में, शुभ ग्रह-समन्वित एवं अनुकूल गुणयुक्त मुहूर्त में पूर्णिमा तिथि में चक्र की प्रतिष्ठा करे या किसी दिवस में करे । प्रतिष्ठा क्रम में पहले मधु-गोघृत-दूध से यन्त्र को धोकर उसे नारियल जल से धोये । तब मन्त्राक्षर औषध के क्वाथ से धोकर उसे पोंछे । लग्न में चक्र को स्थापित करके उसका आवाहन-पूजन करे । नित्या तत्त्व से प्राप्त कालोत्थविद्या से क्रम से उसका अर्चन करे । कराग्र से स्पर्श करके श्रीचक्र का पूजन एवं जप करे । इस प्रकार तीन दिनों तक करने के बाद नित्य क्रम का आश्रयण करे । गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तर्पण से तीन रातों तक देवी का पूजन योगिनियों एवं योगियों के साथ करे । देवी-प्रतिष्ठा का यह क्रम सान्निध्य प्रदान करने वाला होता है । लक्षसागर में कहा गया है कि धातुनिर्मित चक्रों और मूर्तियों का पहले वैदिक मन्त्रों से आग्न्युत्तारण करे । अग्न्युत्तारण की विधि प्रयोग में द्रष्टव्य है ।

### पूजाद्रव्यशोधनम्

**शारदातिलके—**

आत्मानं यागवस्तूनि मण्डलं प्रोक्षयेद्द्वारुः । प्रोक्षणीपात्रतोयेन मनुनान्यानपि क्रमात् ॥१॥ इति ॥

**श्रीकुलार्णवे—**

**पूजाद्रव्याणि** संप्रेक्ष्य मूलास्त्राभ्यां विधानवित् । दर्शयेद्देवनुपुद्रां च द्रव्यशुद्धिः प्रकीर्तिता ॥१॥ इति ॥

**रुद्रयामले—** ‘अप्रोक्षितं नैव दद्यान्नप्रोक्षितः समर्चयेत्’ इति । शारदातिलके—

**न्यासक्रमेण** देहे स्वे धर्मादीन् पूजयेत्तः । पुष्पादैः पीठमन्त्रनं तस्मिन्यद्य च देवताम् ॥१॥

**पञ्चकृत्वः** पुनः कुर्यात्पुष्पाङ्गलिमनन्यथीः । उत्तमाङ्गे हृदाधारे पादे सर्वाङ्गिके क्रमात् ॥२॥

**विना** निवेद्यं गन्धाद्यैरुपचारैः समर्चयेत् । गुरुपदिष्टविधिना शेषमन्यत् समापयेत् ॥३॥

सर्वमेतत् प्रयुज्ञीत प्रोक्षण्यद्धिः समाहितः । इति ।

**धर्मदीनित्युपलक्षणम्** । तेन मण्डुकादिपीठमन्वता योगपीठन्यासस्थानेषु पूज्या इत्यर्थः ।

शेषं जपादिकम् । उत्तरतन्त्रे—

मूलाधारगते कुण्डे पूर्वोक्ते चतुरस्तके । पूर्ववज्जुहुयामन्त्री धर्माधर्मादिकं हविः ॥१॥ इति।

शारदातिलक में कहा गया है कि गुरु स्वयं अपना, यागवस्तु का और मण्डल का प्रोक्षण प्रोक्षणीपात्रस्थ जल से मन्त्र द्वारा करे। श्री कुलार्णव में कहा गया है कि विधि के ज्ञाता को मूल मन्त्र एवं अस्त्रमन्त्र से पूजाद्रव्यों का शोधन करके धेनुमुदा दिखाने से द्रव्यों की शुद्धि होती है। रुद्रयामल में कहा गया है कि अप्रोक्षित द्रव्यों का कभी भी अपेण नहीं करना चाहिये और न ही अप्रोक्षित द्रव्यों से अर्चन करना चाहिये।

शारदातिलक में कहा गया है कि न्यासक्रम से अपने देह को योग्य बनाकर उसमें धर्मादि का पूजन करने के बाद उस पीठ में मन्त्रसहित पुष्टादि से देवता का पूजन करे। पुनः देवता के पञ्च कृत्यों को करके पुष्टाङ्गलि प्रदान करे। उत्तमांग हृदय आधार पैर सभी अंगों में पूजा बिना नैवेद्य के गन्धादि उपचारों से करे। गुरु के उपदेशानुसार शेष अन्य जपादि कार्यों को करके पूजा समाप्त करे। इन सभी उपचारों का प्रयोग प्रोक्षण के बाद ही करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि मूलाधारगत पूर्वोक्त चतुरस्तके कुण्ड में धर्म-अधर्म आदि की आहुति पूर्ववत् निषिद्ध करे।

### अन्तरनिकार्यवर्णनम्

प्रकाशोदये—

अथवाभ्यन्तरे कार्यमग्निकार्यं ब्रवीमि तत् । चिदग्निमण्डले दण्डमूले कुण्डलिस्त्रपिणि ॥१॥

ऋग्वकुण्डे हुनेदुद्यत्सूर्यमण्डलवर्चषि ।

अत्र ऋग्वचतुरस्तयोः कुण्डयोर्विकल्पः ।

वासनेऽन्यनसंदीपे पञ्चभिक्षु समीरणैः ॥२॥

सन्धुक्षिते प्रजुहुयादक्षवृत्तीरनन्तरम् । मूलविद्यां समुच्चार्यं हुनेत्सप्ताहुतीस्ततः ॥३॥

मन्त्रस्तुपं पठेच्छ्लोकं परं गुरुतरं परात् । धर्माधर्महविर्दीपे आत्माग्नौ मनसा सुचा ॥४॥

सुषुम्नावर्त्मणा नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोप्यहम् । स्वाहान्तेनाहुतिं दत्त्वा हुनेत् पूर्णाहुतिं गुरुः ॥५॥

मूलविद्यां समुच्चार्यं श्लोकमन्यं पठेदमुम् । प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीसुचम् ॥६॥

धर्माधर्मकलास्तेहपूर्णविहौ जुहोप्यहम् । स्वाहान्तेनाहुतिं हुत्वा प्राणायामनिरोधतः ॥७॥

निरस्तनिखिलोपाधिमात्मानं चिन्मयं स्मरेत् । इति।

ज्ञानार्णवे—

पुण्यपापे हविर्देवि कृत्याकृत्ये हविः प्रिये । सङ्कल्पश्च विकल्पश्च धर्माधर्मौ हविः प्रिये ॥१॥ इति।

हवनप्रकारास्तु प्रयोगे वक्ष्यते। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—‘अष्टोत्तरसहस्रं तु कृत्वान्तर्यागमादरात् । जपेत् प्रतिदिनं मन्त्री’ इति। अन्तर्देवे, यागः पूजा। उत्तरतन्त्रे—

आत्मपूजां विधायेव्यं यथाशक्ति जपं चरेत् । स्वेष्टदैवतपात्मानं भावयन् यत्पानसः ॥१॥

एतेनाष्टोत्तरसहस्रं तु शक्तपरम्।

प्रकाशोदय में कहा गया है कि अथवा मध्य में अग्निकार्य (हवन) करना चाहिये। एतदर्थं दण्डमूल में कुण्डलिनी-रूप त्रिकोण कुण्ड में नवेदित सूर्यमण्डल की आभा के समान अग्निमण्डल में हवन करे। अग्निमण्डल को पाँच प्राणों से वासना रूपी इंधन से प्रज्वलित करे। तदनन्तर अक्षवृत्ति से हवन करे। मूल विद्या से सात आहुति डाले। परम गुरु के मन्त्ररूप श्लोकों का पाठ करे। तब आत्माग्नि में मन की सुचा और धर्म-अधर्म के हवि से हवन करे। सुषुम्ना मार्ग से ‘नित्यमक्षवृत्तीः जुहोप्यहम् स्वाहा’ कहकर हवन करे। गुरु से प्राप्त मूल विद्या से पूर्णाहुति प्रदान करे। तब इस मन्त्र का पाठ करे—

प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीसुचम् । धर्माधर्मकलास्तेहपूर्णविहौ जुहोप्यहम् स्वाहा ॥

तदनन्तर प्राणायाम से श्वास को निरुद्ध करके अपनी सभी उपाधियों को निरस्त करके आत्मा को चिन्मयरूप में समरण करे। ज्ञानार्थि में कहा गया है कि पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प, धर्म-अर्थम् की हवि से आहुति डाले। मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि अन्तर्याग में एक हजार आठ आहुतियों से हवन करके इतना ही जप प्रतिदिन करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार आत्मपूजा करके मन को नियन्त्रित कर आत्मा और इष्टदेवता में ऐक्य की भावना करते हुये यथाशक्ति एक सौ आठ या एक हजार आठ जप करे।

### पीठपूजार्चनप्रकारः

तथा—

अर्थोदेकेन संप्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। पूजाचक्रं ततस्तत्र पीठपूजां समाचरेत्॥१॥  
देवस्योत्तरतः पूजा गुरुपङ्क्षेस्ततः परम्। महागणपतिः पूज्यो दक्षिणे चन्दनादिभिः॥२॥

उत्तरतः उत्तरदिशि। तेन देवस्य दक्षिणभुजसमीप इति। आवाहनमुत्तरत्र तथा वक्ष्यते। रुद्रयामले—  
सर्वाधो मण्डुकाधारे रुदः कालानलो विभुः। रक्षां करोतु या नित्यं मे मूलप्रकृतिस्तथा॥१॥  
ततश्चाधारशक्तिर्या मम रक्षां करोतु सा। कूर्मस्तु सततं पायादनन्तो रक्षयेत्सदा॥२॥  
तस्य मूर्धिं स्थितशक्तीं वराहः परिरक्षतु। दन्ते तस्य स्थिता पृथ्वी पातु नित्यं वसुन्थरा॥३॥  
समुद्रः सर्वदा पातु सुरलैरमृतैर्जलैः। रत्नद्वीपस्तु मे रक्षां करोतु स्वर्णपर्वतः॥४॥  
पातु मां नन्दनोद्यानं रक्षन्तु कल्पपादपाः। अधस्तेषां सदा पातु विचित्रा रत्नभूमिका॥५॥

श्रीरत्नमन्दिरं पातु सततं पातु वेदिका। इति।

भैरवयामले—

रक्तवर्णं महाकायं मण्डुकं प्रथमं यजेत्। तत्र कालाग्निरुद्रं च दशबाहुसमन्वितम्॥१॥  
पञ्चवक्त्रं रक्तकृष्णवर्णदक्षापराङ्गकम्। तदूर्ध्वं मूलप्रकृतिं बन्धुकाभां वराभयाम्॥२॥ इति।

तदनन्तर अर्थोदेक से पूजाचक्र को प्रोक्षण करे। तब पीठपूजा करे—देव से उत्तर तरफ अर्थात् देवता की दक्ष भुजा के समीप गुरुपंक्ति की पूजा करे। देवता के दक्ष भाग में महागणपति की पूजा करे। तदनन्तर निम्न रक्षास्तोत्र का पाठ करे—  
सर्वाधो मण्डुकाधारे रुदः कालानलो विभुः। रक्षां करोतु या नित्यं मे मूलप्रकृतिस्तथा॥।  
ततश्चाधारशक्तिर्या मम रक्षां करोतु सा। कूर्मस्तु सततं पायादनन्तो रक्षयेत्सदा॥।  
तस्य मूर्धिं स्थितशक्तीं वराहः परिरक्षतु। दन्ते तस्य स्थिता पृथ्वी पातु नित्यं वसुन्थरा॥।  
समुद्रः सर्वदा पातु सुरलैरमृतैर्जलैः। रत्नद्वीपस्तु मे रक्षां करोतु स्वर्णपर्वतः॥।  
पातु मां नन्दनोद्यानं रक्षन्तु कल्पपादपाः। अधस्तेषां सदा पातु विचित्रा रत्नभूमिका॥।

श्रीरत्नमन्दिरं पातु सततं पातु वेदिका।

भैरवयामल में कहा गया है कि लालवर्ण विशाल शरीर मण्डुक की पूजा पहले करे। तब दश बाहुओं से युक्त, पाँच मुखों वाले, लाल एवं काले वर्ण के दक्ष ऊपर अंगों वाले कालाग्नि रुद्र की पूजा करे। उसके ऊपर बन्धुक पुष्प की आभा वाली, वर-अभय मुद्रायुक्त हाथों वाली मूल प्रकृति की पूजा करे।

### पीठे आधारशक्त्यादिध्यानानि

उत्तरतन्त्रे—

अथः पीठस्य रक्ताभां पाशाङ्कुशवराभयान्। हस्ताब्जैर्दधर्थतीं सम्यग्यजेदाधारशक्तिकाम्॥१॥  
तस्या उपरि संपूज्य कूर्मः स्वर्णसिंचिर्दृढः। सहस्रशिरसं तत्र शुक्लवर्णमिलंकृतम्॥२॥  
नीलवर्णं महाकायमनन्तं सम्यगर्चर्येत्। पीताम्बरधरं तत्र नीलवर्णं सुभूषणम्॥३॥

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं पोत्रिणं यजेत् । ब्रीहप्रशुकहस्ताब्जां वराभयधरां शुभाम् ॥४॥  
तदंष्ट्रोपरि नीलाभां धरां धीरः समर्चयेत् । इति।

रत्नद्वीपो नवरत्नमयद्वीपः । उक्तं श्रीतन्त्रराजे—‘नवरत्नमयं द्वीपं नवखण्डविराजितम् । पुष्टं नीलं च वैदूर्यम्’ इति विलोमेन नव रत्नमयानि खण्डानि ध्येयानीत्यर्थः । तत्रैव कुरुकुल्लापटले—‘पश्चिमं पुष्टरागं तु संप्राप्यावतरेत् ततः’ इति उक्तत्वात् । रत्नमन्दिरं नवरत्नमयं माणिक्यमयं वा ‘स्वर्णग्राकारवेष्टिं विचित्रमण्डपम्’ पिति उत्तरतन्त्रवचनात् । ‘अमृताब्धौ मणिद्वीपे कल्पवृक्षबनोज्जवले । स्वर्णप्राकारसंवीतं स्मरेन्माणिक्यमण्डपम्’ इति देवीयामलवचनाच्च। वेदिका स्वर्णमयी । ‘विचित्रमण्डपं तत्र पूजयेत् स्वर्णवेदिकम्’ इत्युत्तरतन्त्रात् । उत्तरतन्त्रे—‘रत्नसिंहासनं तत्र पूजयेन्म-ण्डलावितम्’ इति । मण्डलावितं तत्त्वपूजाचक्ररूपमण्डलसमवितमित्यर्थः ।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है पीठ के नीचे लाल वर्ण की पाश-अंकुश-वर-अभययुक्त हाथों वाली आधारशक्ति की पूजा सम्पूर्ण रूप से करे । उसके ऊपर स्वर्णभ दृढ़ कूर्म की पूजा करे । तब हजार शिर वाले, शुक्ल वर्ण, अलंकृत, नील वस्त्रधारी महाकाय अनन्त की पूजा करे । वहीं पर पीताम्बरधारी, नीलवर्ण, सुन्दर भूषण से भूषित, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी वराह की पूजा करे । उसी वराह के कर-कमल में धान्य एवं सस्य तथा वर-अभय मुद्राधारीणी पृथ्वी का अर्चन करे ।

#### रत्नसिंहासनपादरूपधर्मादिध्यानानि

तत्पादेषु यजेत्सम्यगाग्नेयादिशिवान्तकम् । धर्मं वृषतनुं रक्तवर्णमादौ समर्चयेत् ॥१॥

सिंहाकारं ततो ज्ञानं श्यामवर्णं समाहितः । भूताकारं च वैराग्यं पीतवर्णं यजेत्ततः ॥२॥

कृष्णवर्णं गजाकारमैश्वर्यं साधु पूजयेत् । अग्रदेशं समारभ्य चतुर्दिक्षु समर्चयेत् ॥३॥

अधर्मादीशं पीठस्य चित्रग्रात्रधिया पुनः । इति।

वामकेश्वरतन्त्रे—‘मध्ये मायां तथा विद्यां पूजयेत् साधकोत्तमः’ ।

उसके पैरों में अग्नि से ईशान तक वृषभरूप लाल वर्ण के धर्म का पूजन पहले करे । तब सिंहाकार, श्यामवर्ण ज्ञान की सावधानी पूर्वक पूजा करे । तदनन्तर भूत के आकार वाले, पीले वर्ण के वैराग्य की पूजा करे । तब कृष्ण वर्ण हाथी के समान ऐश्वर्य की पूजा करे । देवी के आगे से प्रारम्भ करके चारों दिशाओं में अधर्मादि का पूजन पीठ में करे । वामकेश्वरतन्त्र में कहा गया है कि मध्य में माया और विद्या की पूजा करे ।

#### तत्पोपरिस्थपद्मवर्णनम्

उत्तरतन्त्रे—

तत्पाकारं ततोऽनन्तं पीठमध्ये समर्चयेत् । तस्य मूर्धिं यजेत् पद्मं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥१॥

आनन्दकन्दमभ्यर्थ्य च संविनालमनन्तरम् । प्रकृत्यात्मकपत्राणि विकारात्मककेसरान् ॥२॥

तत्त्वरूपां कर्णिकां च मातृकावर्णविग्रहाम् । इति।

लिङ्गपुराणे—

तस्य पूर्वदलं साक्षादणिमामयमक्षरम् । लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा ॥१॥

प्राप्तिश्वेत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य तु । ईशित्वं नैऋत्यं पत्रं बशित्वं बायुगोचरम् ॥२॥

सर्वज्ञत्वं तथैशानं कर्णिका सोम उच्चते । सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याथः पावकः स्वर्यम् ॥३॥ इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि तब तत्पाकार अनन्त की पूजापीठ मध्य में करे । उसके मूर्धा पर सभी लक्षणों से युक्त कमल की पूजा करे । आनन्दकन्द की पूजा करके संविनाल की पूजा करे । उस कमल के दल प्रकृत्यात्मक हैं और केसर विकारात्मक हैं । तत्त्वरूपा कर्णिका मातृका वर्णों के स्वरूप वाली है ।

लिङ्गपुराण में कहा गया है कि श्रीचक्र का पूर्वदल साक्षात् अणिमामय अक्षर है। उसके दक्षिण में लघिमा, पश्चिम में महिमा, उत्तर में प्राप्ति, आग्नेय में प्राकाप्य, नैऋत्य में ईशित्व, वायव्य में वशित्व एवं ईशान में सोप की स्थिति है। चन्द्र और सूर्य के नीचे स्वयं अग्नि का वास है।

### तत्त्वचक्षिपूजनप्रकारः

उत्तरतन्त्रे—

पत्रकोशेषु पद्मस्य सत्त्वादीन् क्रमतो यजेत्। सत्त्वपूर्वान् गुणान् सूर्येन्द्रग्नीनां मण्डलानि च ॥१॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यानादीन्नीन् यथाक्रमम् । इति।

सम्मोहनतन्त्रे—

विधिरूपः सत्त्वगुणो रजः प्रकृतिरूपकम् । तमोगुणो मोहरूपः प्रोक्तास्त्वेवं गुणाक्षयः ॥१॥ इति।

वामकेश्वरतन्त्रे—

.....ज्ञानतत्त्वात्मकं यजेत्। कालतत्त्वात्मकं चैव विद्यातत्त्वात्मकं तथा ॥६॥

परतत्त्वात्मकं चैव क्रमेण परिपूजयेत्। चतुर्दिक्षु च मध्ये च'..... ॥२॥ इति।

प्रपञ्चसारे—

मध्येऽनन्तं पद्मस्मिंश्च सूर्यं सोमं वह्निं तारवर्णीर्विभक्तैः ।

सत्त्वादीन्श्च त्रीन् गुणानात्मयुक्तान् शक्तीः किञ्चल्केषु मध्ये यजेच्च ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

केसरेषु ततो मध्ये पूर्वादिषु यथाक्रमम् । तत्त्वमन्त्रोक्तपीठस्य नव शक्तीः प्रपूजयेत् ॥१॥

पीठमन्त्रेण गन्धादैः पीठमध्ये ततो यजेत् । इति।

सनक्तुमारसंहितायाम्—

प्रागाद्यष्टसु पत्रेषु कर्णिकायां यजेन्मुने । चतुर्थ्या नमसा युक्तैः स्वैः स्वैरेव च नामभिः ॥१॥

मध्ये पुष्पाञ्जलिं दद्यात् पीठमन्त्रेण मन्त्रवित् । इति।

यजेत् प्रादक्षिण्येन। 'एताः प्रदक्षिणं पूज्याः' इति मन्त्रतत्रप्रकाशवचनात्। पूर्वादिवित्यत्र पश्चिमस्यैव पूर्वत्वम्। 'स्वरा: षोडश देवेशि युग्मयुग्मप्रभेदतः। दलाष्टकेषु संलेख्या: पश्चिमादिप्रदक्षिणम्' इति ज्ञानान्विय यन्त्रे वर्णविन्यासदर्शनात्। आवरणार्चनायां देवाग्रे प्राच्यभिधानाच्च अत्रापि तथा कल्पनात्। 'दक्षिणे च तथा गुरुम्' इति सङ्कर्षणवचनाच्च। नारदपञ्चारात्रे, गुरुवर्चयां—'मण्डले देवदेवस्य दक्षिणे मण्डलोपरि। गुरुस्मर्चये' दिति। अत एव देवदेवस्योत्तरत इति पूर्वोक्तस्यापि पूजामण्डलस्योपरि पूजा ज्ञेया। धर्मादिपूजायामायेवमेव देवाग्रे कल्पितप्राच्य-नुसारेणैवानेयादि कल्पयेत्। अत्र भाविनि भूतवदुपचारा। 'आवाहा मन्त्रेण मुने' इत्यनन्तरमावाहनोक्ते। भूताकारमिति—भूता देवयोनिः 'भूतोऽभी देवयोनयः' इति कोशात्। तत्स्वरूपं तु—'रक्तवश्वधारा: कृष्णा नखदंष्ट्रासुदंष्ट्रिका (?)। कर्त्रीखट्वाङ्गहस्ताश्च राक्षसा घोरस्तपिणः। भूतास्तथैव दीनास्याः' इति भूतामरोक्तस्वरूपा पीठशक्तयः पीठमन्त्रा-सत्तत्कल्पे वक्ष्यन्ते।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि पद्म के पत्रकोशों में क्रमशः सत्त्वादि गुणों की पूजा करे। सूर्य, चन्द्र, अग्निमण्डल में ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि का पूजन यथाक्रम करे। सम्मोहनतन्त्र में कहा गया है कि सतोगुण विधिरूप, रजोगुण प्रकृतिरूप एवं तमोगुण मोहरूप होता है। वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि चारो दिशाओं और मध्य में ज्ञान, काल, विद्या, परतत्त्व का क्रमशः पूजन करे। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि इस पद्म के मध्य में अनन्त, सूर्य, चन्द्र, अग्नि का का पूजन प्रणव से करे। सत्त्वादि तीन गुणों से युक्त आत्मशक्ति का पूजन मध्य किंजल्क में करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि केसर के

मध्य में पूर्विदि क्रम से उनके मन्त्रोक्तं पीठ में नव शक्तियों की पूजा करे। तदनन्तर पीठमन्त्र से गत्यादि से पीठमध्य में पूजन करे। सनत्कुमारसंहिता में कहा गया है कि पूर्विदि आठ पत्रों की कर्णिका में उनके चतुर्थ्यन्त नामों के साथ नमः लगाकर पूजा करे एवं मध्य में पीठमन्त्र से पुष्पाङ्गलि समर्पित करे। यह पूजा प्रदक्षिणक्रम से करे—ऐसा मन्त्रतन्त्रप्रकाश का वचन है।

### मूर्तिकल्पनार्चनमन्त्रोद्घारः

उत्तरतन्त्रे—

पीठशक्तीनीर्वाभ्यर्थ्यर्थं केसरेषु च मध्यतः। वरदाभयधारिण्यः पीठं पीठाणुना यजेत् ॥१॥  
मूलमन्त्रं समुच्चार्य षष्ठ्यन्तं देवनाम च। मूर्ति च कल्पयामीति मूर्ति मध्ये विनिक्षिपेत् ॥२॥  
पुनर्मूलं समुच्चार्य देवनाम च पूर्ववत्। मूर्ति च पूजयामीति तां पुष्पेण समर्चयेत् ॥३॥  
पूजामूर्तेः शिरः कुर्यात्कुसुमोपहितं सदा। पूजाकालं विना तस्या नोपरि भ्रामयेत्करम् ॥४॥

अथेष्टदेवताप्रीत्यै यजेदायतनान्यपि । इति।

आयतनानि प्रागेवोक्तानि। प्रागेव शिवलङ्घप्रामाणविधिरपि प्रदर्शितः।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि नव पीठशक्तियों का अर्चन केसर के मध्य में करे। वर-अभय मुद्राधारिणी की पूजा पीठमन्त्र से करे। मूल मन्त्र के बाद षष्ठ्यन्तं देवनाम से मूर्ति कल्पित करके मध्य में उसकी पूजा करे। जैसे—‘मूर्ति कल्पयामि’। ‘मूर्ति पूजयामि’ कहकर फूल चढ़ावे। मूर्ति के शिर पर फूल चढ़ाते हुये पूजा करे। पूजाकाल के अलावा उसके ऊपर हाथ न घुमावे। इष्टदेवता की प्रीति के लिये आयतन पूजा भी करे। आयतन-पूजा का कथन पहले हो चुका है।

### इष्टदेवतायाः पूजाङ्गत्वेन पार्थिवलङ्घविधानम्

अथेष्टदेवताया पूजाङ्गत्वेन पार्थिवविधानम्।

नारद उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं हितम्। तत्सर्वं कथयस्व त्वमनुग्राहोऽस्मि ते विभो ॥१॥  
सर्वपापक्षयकरं सर्वारिष्टनिवारणम्। सर्वाशयकरं चैव कलौ सर्वत्र सिद्धिदम् ॥२॥

ईश्वर उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि शिवपूजाविधानकम्। यस्यानुष्ठानमात्रेण कृतकृत्यो भवेत्तरः ॥३॥  
अकृत्वा पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत्। वृथा भवति सा पूजा स्नानदानादिकं वृथा ॥४॥  
शुद्धां मृदं समानीय पुनः शोध्य विशेषतः। लिङ्गाकारं ततः कुर्याद्यथोक्तविधिना पुमान् ॥५॥  
पूजयेत् सविधानेन पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम्। अखण्डं कारयेद्यत्वाद्वक्ष्यमाणैश्च नामभिः ॥६॥  
मृदाहरणसङ्घट्प्रतिष्ठाहानमेव च। स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम् ॥७॥  
हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्। पशुपतिः शिवश्चैव महादेव इति क्रमात् ॥८॥  
द्विखण्डं यः करोत्येवं तस्य पूजापि निष्फला। पवक्षजम्बुफलाकारं सर्वकामप्रदं शिवम् ॥९॥  
विवरं यः करोत्येवं हनिपीडाकरं भवेत्। कुर्यात्साक्षात्स्वबीजेन मूलमन्त्रेण पूजनम् ॥१०॥  
चतुर्दशस्वरोपेतो हकारो बिन्दुसंयुतः। शिवप्रसादजनकः शिवप्रणवसंजकः ॥११॥  
शर्वो भवश्च रुद्रोग्नो भीम ईशानसंजकः। महादेवः पशुपतिमूर्तिभिश्चैव पूजयेत् ॥१२॥  
क्षितिरापोऽनलो वायुराकाशः सोमसूर्यकौ। यजमान इति हृष्टौ मूर्तयः परिकीर्तिः ॥१३॥

नारद उवाच

देव केन विधानेन कर्तव्यं सर्वकामदम्। यस्यानुष्ठानमात्रेण कृतकृत्यो भवेत्तरः ॥१४॥

इष्टदेवता के पूजाङ्गत्वं रूप से पार्थिव विधान—नारद ने ईश्वर से कहा कि हे प्रभो! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

के परम हितसाधन को कृपा करके बतलाइये, जो सभी पापों का विनाशक, सभी अरिष्टों का निवारक, सर्ववश्यकर और कलियुग में सर्वत्र सिद्धिदायक है। ईश्वर ने कहा—हे नारद! सुनो, अब उस शिवपूजन विधान को कहता हूँ, जिसके अनुष्ठानमात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पार्थिव लिङ्ग का पूजन किये बिना जो अन्य देवताओं का पूजन करता है, उसकी वह पूजा व्यर्थ होती है। उसके स्नान, दान भी व्यर्थ होते हैं। पार्थिव-पूजन के लिये शुद्ध मिट्टी लाकर उसे विशेष प्रकार से शोधित करे। उससे यथोक्त विधि से लिङ्गाकृति बनावे। इस उत्तम पार्थिव लिङ्ग का पूजन विधि-विधान से करे। तत्त्व नामों से अखण्ड रूप से उसकी पूजा करे। मन्त्र से मिट्टी लावे। उस मिट्टी से आकृति बनावे, उसे प्रतिष्ठित करे, उसमें देवता का आवाह करके उसे स्नान कराकर उसका पूजन कर उससे क्षमा माँग कर विसर्जन करे। हर, महादेव, महेश्वर, शूलपाणि, पिनाकधुक, पशुपति, शिव, महादेव—इन नामों से क्रम से पूजन एवं विसर्जन करे। पार्थिव लिङ्ग को दो खण्ड में बनाकर पूजा करने से वह पूजा निष्कल होती है। पके जामुन के फल के बराबर लिङ्ग सर्वार्थसिद्धिदायक होता है। चिपटा लिङ्ग हानि एवं पीड़ाकारक होता है। स्वबीज के साथ मूल मन्त्र से पूजा करे। बिन्दु सहित चौदहवाँ स्वर और ऐवं ह अर्थात् ‘हौं’ शिव की कृपा प्रदान करने वाला शिव का प्रणव है। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईशान, महादेव, पशुपति नामक आठ मूर्तियों की पूजा करें। ये आठों भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सोम, सूर्य, यजमान मूर्तिस्वरूप होते हैं। नारद ने कहा कि हे देव! सर्वकामद कौन सा विधान है, जिसके अनुष्ठान से मनुष्य कृतकृत्य होता है।

### यथाकामं लिङ्गार्चनसङ्घचा

#### ईश्वर उवाच

मुने सर्वप्रयत्नेन पार्थिवं लिङ्गमुन्तम् । कर्तव्यं हि नृभर्नितं कामुद्दिश्य यत्नतः ॥१५॥  
 अखण्डं पार्थिवं लिङ्गं द्विखण्डं स्थावरं मतम् । पूर्वोक्तेन विधानेन पूज्यं लिङ्गं तु पार्थिवम् ॥१६॥  
 संख्या पार्थिवलिङ्गानां यथाकामं निगद्यते । विद्यार्थी लिङ्गसाहसं धनार्थी शतपञ्चकम् ॥१७॥  
 पुत्रार्थी सार्धसाहसं कान्तार्थी शतपञ्चकम् । मोक्षार्थी कोटिगुणितं भूकामस्तु सहस्रकम् ॥१८॥  
 रूपार्थी त्रिसहस्रं च तीर्थार्थी द्विसहस्रकम् । सुहृत्कामी त्रिसहस्रं वस्त्रार्थी च शताष्टकम् ॥१९॥  
 मारणार्थी सप्तशतं मोहनार्थी शताष्टकम् । उच्चाटनपरश्वैव सहस्रं च यथोक्तिः ॥२०॥  
 स्तम्भनं तु सहस्रेण मारणं शतपञ्चकम् । निगडान्मुक्तिकामस्तु सहस्रं सार्धमीरितम् ॥२१॥  
 महाराजभये पञ्चशतं चोरादिसङ्कटे । शतद्वयं तु डाकिन्या भये पञ्चशतं तु वा ॥२२॥  
 दारिद्र्ये पञ्चसाहस्रमयुतं सर्वकामदम् । एकं पापहरं प्रोक्तं द्विलिङ्गं चार्थसिद्धिदम् ॥२३॥  
 त्रिलिङ्गं सर्वकामानां कारणं परमीरितम् । उत्तरोत्तरमेव स्यात् पूर्वोक्तं गणनावधि ॥२४॥ इति।

ईश्वर ने कहा—हे मुनो! मनुष्यों को कामना के उद्देश्य से नित्य उत्तम पार्थिव लिङ्ग बनाना चाहिये। पार्थिव लिङ्ग अखण्ड बनता है एवं स्थावर लिङ्ग दो खण्डों में बनता है। पूर्वोक्त विधान से पार्थिव लिङ्ग का पूजन करना चाहिये। कामना के अनुसार पूजन में लिङ्गों की संख्या होती है। विद्यार्थी एक हजार लिङ्ग बनावे। धनार्थी पाँच सौ लिङ्ग बनावे। पुत्रार्थी पन्द्रह सौ लिङ्ग बनावे। मोक्षार्थी एक करोड़ लिङ्ग बनावे। भूमि की कामना से एक हजार लिङ्ग बनाना चाहिये। रूपार्थी तीन हजार, तीर्थार्थी दो हजार, सुहृत्कामी तीन हजार, वस्त्रार्थी एक सौ आठ, मारणार्थी सात सौ, मोहनार्थी आठ सौ ऐवं उच्चाटन के लिये एक हजार लिङ्ग बनावे। स्तम्भन के लिये एक हजार, मारण के लिये पाँच सौ, जेल से छुटकारे के लिये डेढ़ हजार, महाराजभय में पाँच सौ, चोरादि संकट में दो सौ, डाकिनी के भय में पाँच सौ, दरिद्रता-निवारण में पाँच हजार और सर्वार्थ-सिद्धि के लिये दश हजार लिङ्ग बनावे। एक लिङ्ग पापविनाशक, दो लिङ्ग धनदायक ऐवं तीन लिङ्ग सभी कामनाओं का पूरक है। इस प्रकार कामनानुसार पूजन में लिङ्गों की संख्या कही गई है।

#### ग्रन्थान्तरे—

लिङ्गानामयुतं कृत्वा महाराजभयं हरेत् । सहस्राणि तथा पञ्च निगडान्मुक्तये ध्रुवम् ॥१॥

कारागृहादिमुक्त्यर्थमयुतं कारयेद्गुधः । डाकिन्यादिभये सप्तसहस्रं कारयेत्ततः ॥१॥  
 सहस्रं पञ्चपञ्चाशदसुत्रो हि प्रकारयेत् । लिङ्गानामयुतेनैव कन्यकां सततं लभेत् ॥२॥  
 एवं लिङ्गार्चनेनैवमतुलां श्रियमानुयात् । लक्षणेकं तु लिङ्गानां यः करोति नरो भुवि ॥४॥  
 शिव एव भवेत्सोऽपि नात्र कार्या विचारणा ।

ग्रन्थान्तर में कहा गया है कि दश हजार लिङ्ग बनाने से महाराजभय का हरण होता है। डेढ हजार लिङ्ग से बन्धन से छुटकारा होता है। दश हजार लिङ्ग बनाने से मनुष्य कारागृह से छुटता है। डाकिनी आदि के भय होने पर सात हजार लिङ्ग बनावे। पुत्रप्राप्ति के लिये एक हजार पाँच सौ पचपन लिङ्ग बनावे। दश हजार लिङ्ग बनाने से कन्या प्राप्त होती है। इस प्रकार लिङ्गार्चन से अतुल सम्पत्ति मिलती है। पृथ्वी पर एक लाख लिङ्गार्चन करने वाला साक्षात् शिव के समान हो जाता है।

### फलविशेषार्थं लिङ्गनिर्माणद्रव्यविशेषनिर्णयः

अर्चा पार्थिवलिङ्गानां कोटियज्ञफलप्रदा ॥५॥

भुक्तिदा मुक्तिदा नित्यं तत्तत्कामार्थदा नृणाम् । ब्रह्मस्वपरिहारार्थं सौवर्णं लिङ्गमर्चयेत् ॥६॥  
 लवणेन च सौभाग्यं पार्थिवं सार्वकामिकम् । अनेकगुणसम्भूतं रेतोत्यं परिकीर्तिम् ॥७॥  
 ग्रामदं तिलपिष्ठोत्यं तुषोत्यं मारणे स्मृतम् । अन्नोत्थमन्नदं प्रोक्तं गुडोत्यं प्रीतिवर्धनम् ॥८॥  
 गन्धोत्यं भोगदं चैव शर्करोत्यं सुखप्रदम् । यवपिष्ठोद्भवं लिङ्गं वंशकामोऽर्चयेत्युमान् ॥९॥  
 तण्डुलानां च पिष्टेन पुत्रबाहुल्यमानुयात् । सर्वरोगविनाशाय गोमयोत्यं प्रपूजयेत् ॥१०॥  
 केशास्थिसम्भवं लिङ्गं सर्वशत्रुविनाशनम् । आसुरं लवणोत्यं च सर्वलोकवशङ्करम् ॥११॥  
 स्तम्भने रजनीपिष्ठसम्भवं लिङ्गमुत्तमम् । तण्डुलोद्भवपिष्टानां लिङ्गं विद्याप्रदं स्मृतम् ॥१२॥  
 दधिदुग्धोद्भवं लिङ्गं कीर्तिलक्ष्मीसुखप्रदम् । धान्यदं धान्यजं लिङ्गं फलोत्यं फलदं भवेत् ॥१३॥  
 पुण्यार्थं सर्वसौभाग्यमुक्ताधात्रीफलोद्भवम् । नवनीतोद्भवं लिङ्गं कीर्तिसाग्राज्यदायकम् ॥१४॥  
 दूवार्गुदूचीसम्भूतमप्त्युनिवारणम् । इक्षुदण्डोद्भवं लिङ्गं स्फुटमुच्चाटयेत्परम् ॥१५॥  
 इन्द्रनीलमयं लिङ्गं बहुपोषणकामकृत् । स्फटिकं बहुस्वामित्वफलदं मुनिभिः स्मृतम् ॥१६॥  
 पितृणां मुक्तये पूज्यं लिङ्गं रजतसम्भवम् । हेमजं सत्यलोकस्य प्राप्तये पूजयेत्युमान् ॥१७॥  
 पूजयेत्ताप्रजं लिङ्गं पुष्टिकामो हि मानवः । कृषिकामस्तु सततं लिङ्गं पित्तलसम्भवम् ॥१८॥  
 कीर्तिकामोऽर्चयेलिङ्गं सदा कांस्यसमुद्भवम् । शत्रुमारणकामस्तु लिङ्गं लोहमयं सदा ॥१९॥  
 ज्वरशान्त्यै चदनजमर्चयेद्विधिवत् सदा । कर्पूरसम्भवं लिङ्गं शान्तिकामोऽर्चयेत्सदा ॥२०॥  
 कस्तूरीसम्भवं लिङ्गं गन्धकामो हि पूजयेत् । लिङ्गं गोरोचनोत्यं च रूपकामस्तु पूजयेत् ॥२१॥  
 कान्तिकामस्तु सततं लिङ्गं कुङ्कुमकेसरम् । श्वेतागरुसमुद्भूतं महाबुद्धिविवर्धनम् ॥२२॥  
 धारणाशक्तिं लिङ्गं कृष्णागरुसमुद्भवम् । यक्षकर्दमसम्भूतं लिङ्गं प्रीतिविवर्धनम् ॥२३॥  
 गोधूमपिष्टजं लिङ्गं गोकामो हि प्रपूजयेत् । मुद्रपिष्टमयं लिङ्गं पूजयन्मुक्तिमानुयात् ॥२४॥  
 माषपिष्टमयं लिङ्गं नित्यमिष्ठार्थसिद्धिम् । चणकोद्भवपिष्टेन लिङ्गं बुद्धिविवर्धनम् ॥२५॥  
 लिङ्गं ब्रीहिमयं पूज्यं धान्यकामेन नित्यशः । यवधान्यमयं लिङ्गं सर्वरिष्टनिवारणम् ॥२६॥  
 यः करोति तिलैः श्वेतस्तदद्वीपे च महीयते । यः कृष्णौश्च तिलैः सम्यग्लिङ्गं कृत्वार्चयेत्रः ॥२७॥  
 कामेशश्च प्रियो नित्यं भवेत्स्त्रीणां हि मानवः ।

पार्थिव लिङ्ग पूजन से करोड़ों यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं। मनुष्यों को भोग, मोक्ष, काम, अर्थ होते हैं। ब्रह्मस्व-हरण के पाप से छुटकारे के लिये सोने के लिङ्ग की पूजा करे। नमक के लिंग की पूजा से सौभाग्य प्राप्त होता है। पार्थिव

लिंग समस्त कामनाओं को देने वाला होता है। बालू से निर्मित लिंग अनेक गुणों से युक्त होता है। तिल-पिष्ठ से बने लिंग के पूजन से श्राम का लाभ होता है। भूसे से निर्मित लिंग का पूजन मारण कर्म में किया जाता है। अत्र से निर्मित लिङ्ग अत्र प्रदान करने वाला होता है। गुड़ से बना लिंग प्रीति बढ़ाने वाला होता है। गन्धनिर्मित लिंग से भोग प्राप्त होता है। शक्कर से निर्मित लिङ्ग से सुख प्राप्त होता है। यवपिष्ठ से निर्मित लिङ्ग वंशवृद्धि करता है। चावल के आँटे से निर्मित लिंग बहुत पुत्र देने वाला होता है। समस्त रोगों के नाश के लिये गोबर से निर्मित लिंग की पूजा करनी चाहिये। केश एवं अस्थि से निर्मित लिंग समस्त शत्रुओं का विनाशक होता है। आसुरी लवण से निर्मित लिंग समस्त लोकों को वश में करने वाला होता है। हल्दी-चूर्ण से निर्मित लिंग से स्तम्भन होता है। तण्डुलचूर्ण से निर्मित लिंग विद्या देने वाला होता है। दही एवं दुग्ध से निर्मित लिङ्ग कीर्ति, लक्ष्मी एवं सुख देने वाला होता है। धान्यनिर्मित लिंग धान्य देने वाला एवं फलनिर्मित लिंग फल देने वाला होता है। मुक्ताफल (कोंहड़ा) या आँवलाफल से निर्मित लिङ्ग समस्त सौभाग्य एवं पुण्य देने वाला होता है। मक्खन से निर्मित लिंग कीर्ति एवं साम्राज्य देने वाला होता है। दूर्वा एवं गुड़ची से निर्मित लिंग अपमृत्यु का निवारक होता है। ईख से निर्मित लिंग उच्चाटनकारक होता है। इन्द्रनील (नीलम) से बना लिंग सम्प्रतां देने वाला होता है। स्फटिक से निर्मित लिंग असंख्य लोगों का स्वामित्व प्रदान करता है। रजत-निर्मित लिंग के पूजन से पितरों की मुक्ति होती है। स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिये सुवर्णनिर्मित लिङ्ग की पूजा करनी चाहिये। ताप्र-निर्मित लिंग से पुष्टि प्राप्त होती है। पीतल-निर्मित लिंग का पूजन कृषि कार्य हेतु किया जाता है। कीर्ति चाहने वाले को काँसे से निर्मित लिंग की पूजा करनी चाहिये एवं शत्रुमृत्यु की कामना वाले को सदा लौहनिर्मित लिंग की पूजा करनी चाहिये। ज्वरशान्ति के लिये सदा चन्दन-निर्मित लिंग की पूजा करनी चाहिये एवं शान्ति चाहने वालों को कर्पूर-निर्मित लिंग का अर्चन करना चाहिये। गन्ध की कामना वाले कस्तूरी से बने लिंग का अर्चन करना चाहिये एवं गोरोचन से बने लिंग की पूजा रूप चाहने वाले को करना चाहिये। कान्ति चाहने वाले को बराबर कुङ्गम एवं केशरनिर्मित लिङ्ग का अर्चन करना चाहिये। श्वेत अगर से बने लिङ्ग की पूजा से महाबृद्धि की वृद्धि होती है। काले अगर से निर्मित लिङ्ग के पूजन से धारणा शक्ति बढ़ती है। यक्षकर्दम के लिङ्ग से प्रीति की वृद्धि होती है। गाय की कामना से गेहूं के चूर्ण से बने लिङ्ग की पूजा करनी चाहिये। मूंग के चूर्ण से बने लिङ्ग के पूजन से मुक्ति मिलती है। उड़दचूर्ण लिङ्ग से नित्य इष्ट अर्थ की सिद्ध होती है। चने के वेसन से निर्मित लिङ्ग के पूजन से बुद्धि बढ़ती है। धान्यनिर्मित लिङ्ग की पूजा से धान्य प्राप्त होते हैं। यव धान्यमिश्रित लिङ्ग से सभी अरिष्टों का निवारण होता है। उजले तिल से निर्मित लिङ्ग के पूजन से श्वेत द्वीप में वास प्राप्त होता है। जो मनुष्य काले तिल से सम्पूर्ण रूप से लिङ्ग बनाकर पूजन करता है, वह कामदेव के समान खियों का प्रिय होता है।

यथर्तुपौधलिङ्गार्चनफलानि  
ग्रीष्मे च मल्लिकापूष्यसम्बवं लिङ्गमुत्तमम् ॥२८॥

पूजयित्वा नरो भक्त्या प्राप्नोति महतीं कृषिम् । वर्षासु पूजयेद्वक्त्या लिङ्गं कनकपूष्यजम् ॥२९॥  
 इह चामुष्मिके लोके सुखीभवति चात्मनः । नीलोत्पलमयं लिङ्गं कृत्वा शरदि मानवः ॥३०॥  
 पूजयेत्परमां सिद्धिं भक्त्या प्राप्नोति नित्यशः । हैमन्त्रीयैश्च कुसुमैलिङ्गं कृत्वा मनोरमम् ॥३१॥  
 भक्त्या चाभ्यर्थ्य मतिमान् शिवेन सह मोदते । शिशिरे सर्वपुष्टोत्यं लिङ्गमभ्यर्थ्य मानवः ॥३२॥  
 सर्वपापं विहायाशु ब्रह्मणा सह मोदते । येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि वस्तुनः ॥३३॥  
 कृत्वा लिङ्गं समभ्यर्थ्य प्राजापत्यमवान्यात् । विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः ॥३४॥  
 महाहानिर्भवेत्स्य सर्वत्रास्य दुरात्मनः । कृत्वा सर्वाणि दानानि ब्रतानि विविधानि च ॥३५॥  
 तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गार्चतः । कृताः स्मृताः । कलौ लिङ्गार्चनं श्रेष्ठं यथा लोके प्रदृशयते ॥३६॥  
 ततोऽन्यनिर्वास्ति नास्तीति शास्त्राणामेष निश्चयः । भक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं विविधापन्निवारणम् ॥३७॥

पूजयित्वा नरो नित्यं शिवसायुज्यमान्यात् ।

गर्मी में बेलाफूल से निर्मित लिङ्ग की पूजा करने से खेतीबारी में सफलता होती है। वर्षा ऋतु में धन्तूर के फूल से बने लिङ्ग की पूजा करने से इस लोक में और परलोक में सुख प्राप्त होता है। शरत् काल में नीलोत्पल के लिङ्ग की पूजा भक्तिपूर्वक करने से दुर्लभ सिद्धि प्राप्त होती है। हेमन्त ऋतु में फूलने वाले मनोरम पुष्पों से निर्मित लिङ्ग की पूजा से शिव साक्रिय प्राप्त होता है। शिशिर में होने वाले पुष्पों से निर्मित लिङ्ग का पूजन करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में जाता है। जिस किसी भी प्रकार से किसी भी वस्तु से लिङ्ग बनाकर पूजन करने से प्राजापत्य की सिद्धि होती है। जिस दुरात्माका समय बिना लिङ्गपूजन के व्यतीत होता है, उसकी सर्वत्र महाहनि होती है। सभी दान, ब्रत, तीर्थ, नियम, यज्ञों के फल लिङ्गार्चन से ही प्राप्त होते हैं। कलियुग में संसार में लिङ्गार्चन जैसा श्रेष्ठ है, वैसा दूसरा कोई अर्चन नहीं है। यह शास्त्रों का निर्णय है। लिङ्ग भूक्ति-मुक्ति का प्रदायक और सभी विपत्तियों का निवारक होता है। इसके नित्य पूजन से मनुष्य शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।

### रत्नमयलिङ्गेच्चन्योन्यापेक्ष्या श्रेष्ठतानिरूपणम् लिङ्गानामपि सर्वेषां पर्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ॥३८॥

कृत्वा सम्पूज्य विधिवत्स्वर्वान्कामानवाप्नुयात् । पाषाणसम्भवं लिङ्गं संपूज्य परया मुदा ॥३९॥  
इह कामानवानोति सदा चानुन्तमं सुखम् । पाषाणात्स्फाटिकं श्रेष्ठं स्फाटिकात्यद्वारागजम् ॥४०॥  
पद्मरागाच्च काश्मीरं काश्मीरात्पुष्परागजम् । पुष्परागादिन्द्रनीलमिन्द्रनीलाच्च गोमदम् ॥४१॥  
ततो गारुत्मतं श्रेष्ठं तस्मान्माणिक्यसम्भवम् । माणिक्याद्विद्विमं श्रेष्ठं विद्वुमान्मौक्तिकं परम् ॥४२॥  
मौक्तिकाद्राजतं श्रेष्ठं सौवर्णं राजतात्परम् । सौवर्णाद्वीरकं श्रेष्ठं हीरकात्पारदं स्मृतम् ॥४३॥  
पारदाद्वाणं श्रेष्ठं ततः श्रेष्ठं न विद्यते । नर्मदाजलमध्यस्थं बाणलिङ्गमिति स्मृतम् ॥४४॥  
सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गदानव्रतानि च । त्रिसन्ध्यं योगसिद्ध्यादि बाणलिङ्गे च संस्थितम् ॥४५॥  
बाणासुरार्चितं लिङ्गं बाणलिङ्गं तदुच्यते । अभ्यर्च्य विधिवद्वक्त्या शिवलोके महीयते ॥४६॥  
बाणलिङ्गेन चण्डेशो न च निर्माल्यकल्पना । सर्वं बाणार्थितं ग्राहं शक्त्या भक्त्या नचान्यथा ॥४७॥  
बाणलिङ्गे स्वयं भूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते । चान्द्रायणशतं ज्ञेयं शम्भुनैवेद्यभक्षणम् ॥४८॥  
ग्राह्याग्राह्यविभागोऽयं बाणलिङ्गे विधीयते । तदर्पितं तिलं चिह्नं ग्राहं प्रसादसंज्ञया ॥४९॥  
बाणे च रजते रत्ने स्फटिके हेमनिर्मिते । काश्मीरे चन्द्रकान्ते च लिङ्गे स्वयं भूते तथा ॥५०॥  
सदा सन्निहितो देवः सत्यं सत्यं न संशयः । शिवनाभिमयं लिङ्गं नित्यं पूज्यं महात्मभिः ॥५१॥

एतच्च सर्वलिङ्गेभ्यः शास्त्रं पूजाविधानकैः ।

सभी लिङ्गों में पर्थिव लिङ्ग उत्तम होता है। इस लिङ्ग की विधिवृत् पूजा से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। पत्थर से बने लिङ्ग के पूजन से इहलोक में परम प्रसन्नता सहित सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है और सदैव उत्तम सुख मिलता है। पत्थर से निर्मित लिङ्ग से श्रेष्ठ स्फटिक-निर्मित लिङ्ग होता है। स्फटिक से श्रेष्ठ पद्मराग का लिङ्ग होता है। पद्मराग से श्रेष्ठ काश्मीर होता है। काश्मीर से श्रेष्ठ पुष्पराग का लिङ्ग होता है। पुष्पराग लिङ्ग से श्रेष्ठ नीलम का लिङ्ग होता है। नीलम से श्रेष्ठ गोमेद का लिङ्ग होता है और इससे श्रेष्ठ गारुत्मत लिङ्ग होता है। गारुत्मत से श्रेष्ठ माणिक्य लिङ्ग होता है। माणिक्य से श्रेष्ठ मूँगा का लिङ्ग होता है। मूँगे से श्रेष्ठ मोती का लिङ्ग होता है। मोती के लिङ्ग के श्रेष्ठ चाँदी का लिङ्ग और चाँदी से श्रेष्ठ सोने का लिङ्ग होता है। स्वर्णलिङ्ग से श्रेष्ठ हीरे का लिङ्ग और हीरे से श्रेष्ठ पारे का लिङ्ग होता है। पारद लिङ्ग से श्रेष्ठ बाणलिङ्ग होता है। इससे श्रेष्ठ कोई लिङ्ग नहीं होता। नर्मदा जल के मध्य में स्थित लिङ्ग को बाण लिङ्ग कहते हैं। सभी तीर्थ, यज्ञ, सांग दान, ब्रत, त्रिकाल सन्ध्या, योगसिद्धि का बाण लिङ्ग में वास रहता है। बाणासुर द्वारा अर्चित लिङ्ग को बाणलिङ्ग कहते हैं। इसका विधिवृत् अर्चन भक्तिपूर्वक करने पर शिवलोक का वास मिलता है। बाणलिङ्ग के निर्माल्य में चण्डेश्वर का अधिकार नहीं है। शिव स्वयं बाणलिङ्ग होकर चन्द्रकान्त के हृदय में रहते हैं। इस पर चढ़े नैवेद्य के भक्षण से

सौं चान्द्रायण व्रत का फल मिलता है। बाणलिङ्ग में ग्राहा-अग्राहा दो पक्ष हैं। बाणलिङ्ग में तिल का चिह्न होने पर वह प्रसाद लिङ्ग के रूप में ग्राहा है। बाण, चाँदी, रत्न, स्फटिक, सोना, काश्मीर का चन्द्रकान्त और स्वायंभुव लिङ्ग में शिव जी सदैव सन्त्रिहित रहते हैं, यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है। शिव के नाभिस्वरूप लिङ्ग का पूजन महात्माओं को नित्य करना चाहिये। यह लिंग पूजा के लिये अन्य सभी लिंगों से श्रेष्ठ कहा गया है।

### उत्तमादिना लिङ्गे त्रैविध्यम्

उत्तमं मध्यमं नीचं त्रिविधं लिङ्गमीरितम् ॥५२॥

चतुरङ्गुलमुच्छ्रायं रम्यं वेदिकया शिवम् । उत्तमं लिङ्गमाख्यातं मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः ॥५३॥

तदर्थं मध्यमं प्रोक्तं तस्यार्थं वाधमं सृष्टम् । एवं लिङ्गं समासाद्य श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥५४॥

पूजयित्वा लभेत्कामान्मनसा चाभिलाषितान् ।

उत्तम मध्यम निकृष्ट—तीन प्रकार के लिङ्ग होते हैं। मुनियों और तन्त्रज्ञों के अनुसार वेदी से चार अंगुल ऊपर स्थित लिङ्ग उत्तम होता है। दो अंगुल उच्च लिङ्ग मध्यम होता है एवं एक अंगुल उच्च लिङ्ग अधम होता है। इस प्रकार स्थापित लिङ्ग का पूजन श्रद्धा-भक्ति से करने पर सभी इच्छित काम और अभिलाषाओं की पूर्ति होती है।

### लिङ्गाराधनमेव परं साधनम्

शास्त्राण्यालोड्य सर्वाणि तदर्थान्यिरभाव्य च ॥५५॥

पुरुषार्थप्रदं तत्त्वं निश्चितं लिङ्गपूजनम् । सर्वमूर्तीः परित्यज्य कर्मजालं विशेषतः ॥५६॥

भक्त्या परमया विद्वाँलिङ्गमेवं प्राप्नुयेत् । लिङ्गार्चिनेऽर्चितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥५७॥

संसारार्णवमग्नानां नान्यतारणसाधनम् । अज्ञानतिमिरास्थानां विषयासक्तचेतसाम् ॥५८॥

प्लवो नान्योऽस्ति जगतो लिङ्गाराधनमन्तरा । ब्रह्मादयः सुराः सर्वे मुनयो यक्षराक्षसाः ॥५९॥

गच्छवक्षारणाः सिद्धा दैतेया दानवास्तथा । पूजयित्वा महाभक्त्या लिङ्गं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥६०॥

अचिराल्लेभिरे नूनं सर्वान् कामान् समीहितान् ।

सभी शास्त्रों का आलोडन करके, उनके अर्थों को जानकर यह निश्चित किया गया है कि लिङ्गपूजन से पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। सभी मूर्तियों को छोड़कर विशेषतः कर्मजाल को त्यागकर विद्वान् परम भक्ति से शिवलिङ्ग का पूजन करे। भवसागर में डूबते सभी स्थावर-जंगमों को तरने का साधन लिङ्गार्चन ही है। इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा साधन नहीं है। अज्ञान तिमिर से अन्यों एवं विषयासक्त चेतना वालों के लिये संसार में लिङ्गार्चन के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा नहीं है। इस सर्वार्थ सिद्धिदायक लिङ्ग की पूजा महाभक्ति से ब्रह्मादि सभी देवता, सभी मुनि, यक्ष-रक्षस-ग-स्थर्व-चारण-सिद्ध-दैत्यदानव करते हैं। वे सभी थोड़े ही दिनों में अपने सभी अभिलिपित वस्तुओं को प्राप्त कर लेते हैं।

### स्व-स्वमार्गोणैव पूजाविधानम्

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो शूद्रो वाप्यनुलोप्तजः ॥६१॥

पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्त्वमन्त्रेण साधकः । द्विजानां वैदिकेनापि मार्गेणाराधनं परम् ॥६२॥

अन्येषामपि जन्तुनां वैदिकेनापि मन्त्रतः । तत्रोक्तदीक्षितानां च तत्रेणापि विधानतः ॥६३॥

स्मृतमाराधनं शाश्वोर्नैव वैदिकवर्त्मना । वैदिकानां च सर्वेषां पूजा वैदिकमार्गतः ॥६४॥

कर्तव्या नान्यमार्गेण चेत्याह भगवाञ्छिवः । दधीचिंगौतमादीनां शतसम्बद्धचेतसाम् ॥६५॥

न जायतेऽन्यवत्सर्पि शर्मावैदिकवर्त्मना । यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा ॥६६॥

अन्यत्समाचरन्मत्यों न स कर्मफलं लभेत् । तत्रापि पर्थिवं लिङ्गं क्षिप्रसिद्धिप्रदं भवेत् ॥६७॥

पार्थिवेन तु लिङ्गेन बहुसिद्धिमवानुयात् ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अनुलोमज सभी को लिङ्गपूजन तत्त्व मन्त्रों से करते हैं। द्विजों के लिये वैदिक मार्ग से आराधना श्रेष्ठ कही गई है। अन्य लोग भी वैदिक मन्त्र से आराधना करते हैं। तान्त्रिक मत में दीक्षित साधक को तान्त्रिक मन्त्रों से विधानपूर्वक आराधना करनी चाहिये। स्मार्तों को शिव-आराधना वैदिक मार्ग से नहीं करनी चाहिये। वैदिकों को सभी पूजन वैदिक मार्ग से ही करना चाहिये। वैदिकों को अन्य मार्ग से भगवान् शिव की आराधना नहीं करनी चाहिये। दधीचि गौतम आदि सैकड़ों सम्बद्ध चित्त वाले दूसरे मार्ग पर नहीं जाते हैं, केवल वैदिक मार्ग से ही पूजा करते हैं। जो वैदिक मार्ग का अनादर करके एवं स्मार्त मार्ग को भी छोड़कर अन्य मार्ग से आराधना करते हैं, उन्हें कर्मफल नहीं मिलता। इनमें भी पार्थिव लिङ्ग शीघ्र सिद्धिदायक है। पार्थिव लिङ्ग से बहुत सिद्धियाँ मिलती हैं।

यथायुगं लिङ्गविशेषप्राशस्त्वं कलौ

पार्थिवाचार्यांशंसा च

कृते रत्नमयं लिङ्गं त्रेतायां हेमसम्भवम् ॥६८॥

द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे। अष्टमूर्तिषु सर्वासु मूर्तिवैं पार्थिवी परा ॥६९॥  
 एवं पार्थिवलिङ्गे तु नित्यं सन्त्रिहितः शिवः। यथा सर्वेषु देवेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठो महेश्वरः ॥७०॥  
 तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते। यथा सर्वेषु वेदेषु प्रणवश्च महान् स्मृतः ॥७१॥  
 तथैव पार्थिवं श्रेष्ठं प्राराध्यं पूज्यमेव हि। पार्थिवाराधनं पुण्यमायुर्धनविवर्धनम् ॥७२॥  
 प्रसन्नं तुष्टिदं श्रीदं कार्यसाधनसिद्धिदम्। यथासर्वोपचारैक्ष भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥७३॥  
 पूज्यतेवार्थिवं लिङ्गं शास्त्रोक्तविधिना नरः। पञ्चसूत्रविभागं च पार्थिवं न विचारयेत् ॥७४॥  
 आकारमात्रं रचयेत्सर्वसिद्धिप्रदायकम्। द्विखण्डमत्र कुर्वणो नैव पूजाफलं लभेत् ॥७५॥  
 रत्नं हेमजं लिङ्गं पारदं स्फटिकं तथा। पार्थिवं पिष्टजं पौष्णं माषजं तु प्रकारयेत् ॥७६॥

सत्ययुग में रत्नमय लिङ्ग का, त्रेता में स्वर्ण लिङ्ग का, द्वापर में पारद लिङ्ग का और कलियुग में पार्थिव लिङ्ग का पूजन श्रेष्ठ होता है। सभी आठ मूर्तियों में पार्थिव मूर्ति पाया है। इस प्रकार पार्थिव लिङ्ग में शिव सदैव सन्त्रिहित रहते हैं। जैसे सभी देवों में बड़े शिव हैं वैसे ही सभी लिङ्गों में पार्थिव लिङ्ग श्रेष्ठ है। जैसे सभी देवों में प्रणव श्रेष्ठ है, वैसे ही पार्थिवलिङ्ग श्रेष्ठ आराध्य और पूज्य है। पार्थिव लिङ्ग का आराधन पुण्य, आयु एवं धन का विवर्द्धक होता है। यह प्रसन्नता, तुष्टि, लक्ष्मी एवं कार्यसाधन में सिद्धिप्रद है। यथोपलब्ध सभी उपचारों से भक्ति-श्रद्धा से पार्थिव लिङ्ग का पूजन शास्त्रोक्त विधि से करना चाहिये। पार्थिव लिङ्ग में पञ्चसूत्र विभाग का विचार नहीं होता। आकारमात्र बनाने से ही सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। इसका निर्माण खण्डों में नहीं करना चाहिये। करने से पूजा फल नहीं मिलता। रत्न, स्वर्ण, स्फटिक, पारद, पार्थिव, पिष्टज, पौष्ण और माषज लिङ्ग अखण्ड बनाना चाहिये।

खण्डाखण्डविभागविश्वयः

अखण्डं तु चरं लिङ्गं द्विखण्डमचरं स्मृतम्। खण्डाखण्डविभागोऽयं चराचरतया स्मृतः ॥७७॥  
 वेदिका तु महाविष्णुलिङ्गं देवो महेश्वरः। अतोऽपि स्थावरं लिङ्गं स्मृतं शेषे द्विखण्डता ॥७८॥  
 वेदिका तु महादेवी गिरिजा शिववल्लभा। पिण्डिका तु महेशानो द्वयोर्योगो द्विखण्डता ॥७९॥  
 द्विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं हि विधानतः। अखण्डं जङ्घमं प्रोक्तं शैवसिद्धान्तवेदिभिः ॥८०॥  
 द्विखण्डं तु चरं लिङ्गं कुर्वन्नज्ञानमोहितः। नैव सिद्धान्तवेतारो मुनयः शास्त्रपारगाः (?) ॥८१॥  
 अखण्डं स्थावरं लिङ्गं द्विखण्डं चरमेव च। ये कुर्वन्ति नरा मूढा न पूजाफलमाप्नुयुः ॥८२॥  
 तस्माच्चास्त्रोक्तविधिना द्विखण्डं चरसंज्ञितम्। विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं परया मुदा ॥८३॥  
 अखण्डे तु चरे पूजा सम्पूर्णफलदा स्मृता। द्विखण्डे स्थावरे पूजा सम्पूर्णफलदायिनी ॥८४॥  
 द्विखण्डे तु चरे पूजा महाहानिः प्रजायते। अखण्डे स्थावरे पूजा न पूजाफलदायिनी ॥८५॥

श्रीविद्या० ३-३

अखण्ड को चर लिङ्ग कहते हैं एवं द्विखण्ड को अचर लिङ्ग कहते हैं। खण्ड अखण्ड-विभाग का यह चर-अचर कहा गया है। वेदिका विष्णु है और लिङ्ग महेश्वर है। इसी से द्विखण्ड लिङ्ग को स्थावर लिंग कहते हैं। शिववल्लभा महादेवी गिरिजा वेदी एवं पिण्डी साक्षात् महादेव होते हैं; अतः दोनों के योग से द्विखण्डता होती है। स्थावर लिङ्ग को द्विखण्ड विधान से बनाना चाहिये। शैव-सिद्धान्तज्ञानियों ने अखण्ड को जंगम लिङ्ग कहा है। अज्ञान से मोहित होकर चर लिङ्ग को जो दो खण्डों में बनाते हैं, उन मूँदों को पूजाफल नहीं मिलता। इसलिये शास्त्रोक्त विधि से द्विखण्ड चर लिङ्ग और अखण्ड स्थावर लिङ्ग बनावे। अखण्ड चर लिङ्ग का पूजन सम्पूर्ण फलदायक होता है। द्विखण्ड स्थावर लिङ्ग पूजा से भी सम्पूर्ण फल मिलता है। द्विखण्ड चर लिङ्ग की पूजा से महाहानि होती है। अखण्ड स्थावर लिङ्ग में पूजा से फल नहीं मिलता।

### वेदोक्तविधिना पार्थिवार्चाकथनम्

अथ वैदिकभावानां पार्थिवार्चा निगद्यते । वेदोक्तविधिना सम्प्रक्सम्पूर्णफलसिद्धये ॥८६॥  
सुत्रोक्तविधिना स्नात्वा संध्यां कृत्वा यथाविधि । ब्रह्मयज्ञं विधायादौ तत्सत्परणमेव च ॥८७॥  
नैमित्तं सकलं कर्म विधायानन्तरं पुमान् । पूजयेत्यरया भक्त्या पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ॥८८॥

वैदिकों के लिये पार्थिव पूजन का विधान कहता हूँ; क्योंकि सम्पूर्ण फल-प्राप्ति के लिये वैदिक विधि से ही उन्हें पूजा करनी चाहिये। सूकोक्त विधि से स्नान करके यथाविधि सन्ध्या करके ब्रह्मयज्ञ करके तर्पण करे। इसके बाद सभी नैमित्तिक कर्मों को करे। तब परम भक्ति से उत्तम पार्थिव लिङ्ग का पूजन करे।

### पार्थिवार्चस्यान-मृदूणनम्

नदीतीरे तडागादौ पर्वते काननेऽपि वा । शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ॥८९॥  
शुद्धप्रदेशसम्भूतां मृदमाहत्य यत्नतः । विप्रे गोरा स्मृता शोणा बाहुजे वैश्यजातिके ॥९०॥  
पीता शूद्रे तु कृष्णा स्यादथवा यत्र या भवेत् । संग्राहा मृत्तिका लिङ्गनिर्माणार्थं प्रयत्नतः ॥९१॥  
आनीय शुद्धदेशे तु संस्थाप्य मृदमुत्तमाम् । संशोध्य च जलैः शुद्धैः पिण्डीकृत्य शनैः शनैः ॥९२॥  
पश्चाल्लिङ्गं विधायाशु क्रमेणानेन भक्तिमान् । प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैः पूर्वोक्तैर्नामभिः क्रमात् ॥९३॥  
कर्तव्या मतिया पूजा भक्त्या परमया मुदा । प्राणायामत्रयं कुर्यात् मूलमन्त्रेण देशिकः ॥९४॥  
भूतशुद्धिं विधायादौ विन्यसेन्मातृकामयम् । पञ्चब्रह्मयं न्यासमष्टात्रिंशत्कलात्मकम् ॥९५॥ इति।  
अत्र दशविधमातृकान्यासकरणाशक्तौ अन्तर्मातृकाबहिर्मातृकाश्रीकण्ठादिमातृकाष्टात्रिंशत्कलात्मकम् ॥९६॥ इति।  
न्यासचतुष्टयमावश्यकम्।

नदीतट पर या तालाब के किनारे या पर्वत पर या जंगल में या शिवालय में या पवित्र स्थान में पार्थिव अर्चन करना चाहिये। पार्थिव लिंग-निर्माण हेतु शुद्ध प्रदेश से मिट्टी लाकर उसे स्थापित करे। विप्र को गोरी मिट्टी, क्षत्रियों को लाल, वैश्यजाति को पीली मिट्टी और शूद्रों को काली मिट्टी लेनी चाहिये या जहाँ जैसी मिट्टी उपलब्ध हो, लिङ्ग बनाने के लिये ले आये। मिट्टी लाकर उसे शुद्ध देश में स्थापित करके उस मिट्टी का शोधन करे; फिर शुद्ध जल से सानकर धीरे-धीरे पिण्डी बनावे। तब भक्तिसहित क्रमशः लिङ्ग बनावे। फिर पूर्वोक्त चतुर्थ्यन्त नाम के पहले ३० लगावे तब भक्ति से प्रसन्नतापूर्वक पूजा करे। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। भूतशुद्धि करके मातृका न्यास करे। पञ्च ब्रह्मय न्यास और अङ्गतीस कलात्मक न्यास करे।

दशविध मातृका न्यास करने में अशक्त होने पर अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका, श्रीकण्ठादि मातृका, अङ्गतीस कला न्यास—यह न्यासचतुष्टय अवश्य करना चाहिये।

### नवाक्षरशैवमन्त्र-तदृष्णादिषडङ्गध्यानादिक्रमः

#### कामदुषामन्त्रश्च

तथा—  
अर्धादिपात्राण्यासाद्य शैवे पीठे शिवं यजेत् । उपचारैः प्रथलेन शैवमुद्राः प्रदर्शयेत् ॥९६॥

पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्राणायामत्रयं चरेत् । प्रणवं पूर्वमुद्भृत्य महाप्रासादमुद्भरेत् ॥१७॥  
चिन्तारलं समुद्भृत्य भुवनेशीमनन्तरम् । पञ्चाक्षरो महेशस्य मूलमन्त्रो नवाक्षरः ॥१८॥

‘अ० हौं क्षम्ब्रयूं हीं नमः शिवायः’ इति नवाक्षरः।

वामदेव ऋषिश्छन्दो गायत्रं निचृदन्वितम् । पाथिर्विश्वरनामादिचिन्तामणिरितीरिता ॥१९॥  
देवता कथिता बीजं महाप्रासादसंज्ञितम् । शक्तिस्तु भुवनेशानी नतिः कीलकमुच्यते ॥१००॥  
विनियोगः समाख्यातः पुरुषार्थचतुष्टये । चत्वारि बीजानुच्चार्यं सर्वज्ञाय हृदीरितम् ॥१०१॥  
तथैव नित्यतृपाय शिरसे वह्निवल्लभा । वदेदनादिबोधाय शिखायै वषडित्यथ ॥१०२॥  
स्वतन्त्रशक्तये प्रोक्त्वा कवचाय हुमीरितम् । अलुप्तशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्चरेत् ॥१०३॥  
अनन्तशक्तये प्रोक्त्वा अस्त्राय फडिति क्रमात् । एवं षड्ङ्गं विन्यस्य ध्यायेदेवमतन्द्रितः ॥१०४॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।

सदा रमनं हृदयारबिन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥१०५॥

वन्दे महेशं सुरसिद्धसेवितं भक्तैः सदा पूजितपादपद्मम् ।

ब्रह्मोन्द्रविष्णुप्रमुखेश्व वन्दितं ध्यायेत्सदा कामदुर्घं प्रसन्नम् ॥१०६॥

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं

रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।

पद्मासीनं समन्नात् स्तुतमरगणैर्व्याघ्रकृतिं वसनं

विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥१०७॥

एवं ध्यात्वा महामन्त्रं जपेन्नियतमानसः । यथाशक्ति ततः कुर्यात्माणायामषड्ङ्गकम् ॥१०८॥

गुह्यातिगुह्यगोपा त्वं गृहणास्मलकृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर ॥१०९॥

इत्युच्चार्यं जपं हस्ते दक्षे देवस्य चार्ययेत् । प्रदक्षिणनमस्कारैः परितोष्य मुहुर्मुहुः ॥११०॥

प्रार्थयेत् परया भक्त्या देवदेवं जगहुरुम् । जय देव जगत्राथ जय शाश्वत शङ्कर ॥१११॥

जय सर्वसुराध्यक्षं जय सर्वसुरार्चितं । जय सर्वगुणातीतं जय सर्ववरप्रद ॥११२॥

जय नित्यनिराधारं जय विश्वम्भराव्यय । जय विश्वैकवन्दोशं जय नागेन्द्रभूषण ॥११३॥

जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्थशेखर । जय कोट्यकर्कसङ्काशं जयानन्तगुणालय ॥११४॥

जय रुद्रं विरुपाक्षं जयाचिन्त्यं निरङ्गनं । जय नाथं कृपासिन्यो जय दुःखार्तिभङ्गन ॥११५॥

जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारणं प्रभो । प्रसीद मम देवेशं संसारात्तर्स्य बिभ्यतः ॥११६॥

सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वरं । महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतौजसः ॥११७॥

महाशोकनिमग्नस्य महारोगातुरस्य च । ऋणभारपरीतस्य दह्मानस्य कर्मभिः ॥११८॥

ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर । दीर्घमायुः सदारोगयं यशोवृद्धिर्बलोन्नतिः ॥११९॥

ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर । शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु नवग्रहाः ॥१२०॥

नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः । दुर्भिक्षमारीसन्तापाः शमं यान्तु महीतले ॥१२१॥

वसुसस्यसमृद्धिं च ममानन्दं सदा दिश । प्रदोषे वापि पूजान्ते प्रार्थयेऽक्तितत्परः ॥१२२॥

प्रसन्नोऽभीप्तिं देवो ददाति गिरिजापतिः । एवं संप्रार्थ्यं तत्तेजो वहत्रासापुटाध्वना ॥१२३॥

समानीय स्वहृदये महासंहारमुद्रया । शिवलिङ्गं तु नद्यादौ संस्थाप्य विहरेत्सुखी ॥१२४॥ इति।

अत्र प्रागुक्तपार्थिवेश्वरचिन्तामणिमन्त्रो वा जपत्व्यः, कामदुधामन्त्रो वा, कामदुधामन्त्रस्तु—

षडक्षरं समुच्चार्य प्रपन्नेति पदं तथा । पारिजाताय चोच्चार्य वह्निजायां समुद्भरेत् ॥१२५॥  
षोडशाणो महेशस्य मन्त्रः कामदुधाह्यः ।

‘ॐ नमः शिवाय प्रपन्नपारिजाताय स्वाहा’। एतस्य न्यासध्यानादिकं प्राग्वत्।

अर्थादि पात्रासादन करके शैव पीठ में शिव की पूजा उपचारों से करे। तदनन्तर शैव मुद्रा दिखावे। तीन पुष्पाङ्गलि देकर तीन प्राणायाम करे। प्राणायाम मन्त्र नवाक्षर है— ॐ हौं क्ष्यू हौं नमः शिवाय। इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, छन्द गायत्री निचृत, देवता पार्थिवेश्वर चिन्तामणि, बीज महाप्रासाद है, शक्ति भुवनेशी एवं नमः कीलक है। पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—

ॐ हौं क्ष्यू हौं सर्वज्ञाय हृदयाय नमः ।

ॐ हौं क्ष्यू हौं नित्यतृपाय शिरसे स्वाहा ।

ॐ हौं क्ष्यू हौं अनादिबोधाय शिखायै वषट् ।

ॐ हौं क्ष्यू हौं स्वतन्त्रशक्तये कवचाय हुम् ।

ॐ हौं क्ष्यू हौं अलुपतशक्तये नेत्रप्रयाय वौषट् ।

ॐ हौं क्ष्यू हौं अनन्तशक्तये अस्त्राय फट् ।

इस प्रकार षडङ्ग न्यास करके देव का इस प्रकार ध्यान करे—

कर्पूर-सदृश गौर वर्ण वाले, करुणा के सागर, सासार के मूलस्वरूप, सर्वों की माला धारण करने वाले, हृदय में सदा रमन करने वाले भवानी-सहित भव को मैं प्रणाम करता हूँ। सुरों एवं सिद्धों से सदा सेव्यमान, भक्तों से सदा पूजित चरणों वाले, ब्रह्मा-विष्णु आदि प्रमुख देवताओं द्वारा सदा स्तूप्यमान प्रसन्न कामदुका का मैं सदा ध्यान करता हूँ। चाँदी के पर्वत के समान, मनोरम चन्द्रमा का मुकुट धारण किये, रत्नों के समान शोभायमान अंगों वाले, परशु-मृग-वर-अभय हाथों में धारण किये, प्रसन्नतापूर्वक पद्मासन पर विराजमान, देवताओं द्वारा बराबर स्तूप्यमान, व्याघ्रचर्म धारण करने वाले, विश्व के आदिभूत, विश्व के कारणस्वरूप समस्त भय को दूर करने वाले, पाँच मुख वाले एवं तीन नेत्र वाले महेश का मैं ध्यान करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करने के बाद एकाग्र मन से महामन्त्र का यथाशक्ति जप करे तब षडङ्ग न्यास करके प्राणायाम करके इस मन्त्र को बोलते हुये जप का समर्पण करे—

गुह्यातिगुह्यागोपा त्वं गुह्याणस्मक्तं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्रसादात् सुरेश्वर ॥

प्रदक्षिणा एवं नमस्कार से बार-बार देवता को परितुष्ट करे। तब इस प्रकार प्रार्थना करे—

जय देव जगत्राय जय शाश्वत शङ्कर ।

जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित । जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद ॥

जय नित्यनिराधार जय विश्वबराव्य । जय विश्वेकवन्द्येश जय नागेन्द्रभूषण ॥

जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर । जय कोट्यर्कसङ्काश जयानन्तगुणालय ॥

जय रुद्र विरुपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन । जय नाथ कृपासिन्द्यो जय दुःखार्तिभञ्जन ॥

जय दुस्तरसंसरसागरोत्तरण प्रभो । प्रसीद मम देवेश संसारार्तस्य विभ्यतः ॥

सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर । महादारिक्ष्यमग्नस्य महापापहतौजसः ॥

महाशोकनिमग्नस्य महारोगातुरस्य च । ऋणभारपरीतस्य दह्मानस्य कर्मभिः ॥

ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर । दीर्घमायुः सदारोग्यं यशोवृद्धिर्बलोत्रतिः ॥

ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर । शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु नवग्रहाः ॥

नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः । दुर्भिक्षमारीसन्तापाः शामं यान्तु महीतले ॥

वसुस्यसमृद्धिं च ममानन्दं सदा दिशा ।

प्रदोष काल में या पूजा के अन्त में भक्तित्पर होकर प्रार्थना करे। इससे गिरिजापति शंकर प्रसन्न होकर अभीप्सित फल प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्रार्थना के बाद प्रवहमान नासापुट से अपने हृदय में देव को संहार मुद्रा से ले आये एवं शिवलिङ्ग को नदी आदि जलाशय में डालकर सुखी होकर विहार करे। यहाँ पर पूर्वोक्त पार्थिवेश्वर चिन्तामणि मन्त्र या कामदुधा मन्त्र का जप करना चाहिये। कामदुधा षोडशाक्षर मन्त्र इस प्रकार है— ३० नमः शिवाय प्रपत्रपारिजाताय स्वाहा। इसके न्यास-ध्यान आदि नवाक्षर शैव मन्त्र के समान ही किये जाते हैं।

### वैदिकमार्गेण शिवपूजा

अथ वैदिकमार्गेण पूजां वक्ष्ये शिवस्य वै । सद्योजातेति मन्त्रेण मृत्तिकाग्रहणं भवेत् ॥१ २६॥  
 वामदेवेति मन्त्रेण जलैः संशोध्य यत्नतः । अधोरेण च मन्त्रेण लिङ्गीकरणमुत्तमम् ॥१ २७॥  
 ततस्तप्तुरुषायेति बाणं कुर्याद्विचक्षणः । ईशान इति मन्त्रेण वेदीबाणं समाचरेत् ॥१ २८॥  
 पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण उपचारैः समर्चयेत् । भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि ॥१ २९॥  
 उग्राय चोग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने । एधिमत्रेश्व वा पूजा कर्तव्या शुभमिच्छता ॥१ ३०॥  
 यः कृत्वा पार्थिवं लिङ्गं पूजयेच्छुभवेदिकाम् । इहैव पुत्रवाज्छीमांसतो रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥१ ३१॥  
 त्रिसन्ध्यं योऽर्चयिलिङ्गं कृत्वाभिज्ञस्तु पार्थिवम् । दशैकादशकं यावत्स्य पुण्यफलं शृणु ॥१ ३२॥

अनेनैव स्वदेहेन रुद्रतुल्यो भवेन्नरः ।

अब शिव के वैदिक मार्ग से पूजन-विधान को कहता हूँ। सद्योजात मन्त्र से मिट्ठी लावे। वामदेव मन्त्र से जल मिलाकर उसे साने। अधोरमन्त्र से उत्तम लिङ्ग बनावे। ततपुरुष मन्त्र से बाण बनावे। ईशान मन्त्र से वेदीबाण का समाचरण करे। पञ्चाक्षर मन्त्र से उपचारों से उसकी पूजा करे। अथवा कल्प्याण चाहने वालों को निम्नलिखित मन्त्र से पूजा करनी चाहिये—  
 भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि। उग्राय चोग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने ॥।

पार्थिव लिङ्ग बनाकर शुभ वेदी पर उसे आसीन कराकर जो उसकी पूजा करता है, वह इस लोक में पुत्र प्राप्त करके अन्त में रुद्रतुल्य को प्राप्त होता है। जो तीनों सन्ध्याओं में दश या ग्यारह पार्थिव लिङ्गों की पूजा करता है, वह इसी देह में रुद्रतुल्य हो जाता है।

### पारदलिङ्गविधानं तदर्चनफलञ्च

अथ पारदलिङ्गस्य विधानं वच्च नारद ॥१ ३३॥

नित्यसंपादनाशक्तौ प्रकारान्तरमुच्यते । निष्क्रत्रयं हेमपत्रं रसेन्द्रं नवनिष्ककम् ॥१ ३४॥  
 अम्लेन मर्दयेद्यामं तेन लिङ्गं तु कारयेत् । दोलायन्ते सारनाले जप्त्वारस्य दिनं पचेत् ॥१ ३५॥  
 तल्लिङ्गं पूजयेन्नित्यं सुशुभैरुपचारकैः । लिङ्गकोटिसहस्रस्य यत्फलं सम्पर्गचनात् ॥१ ३६॥  
 तत्फलात्कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्वेत् । ब्रह्महत्यासहस्राणि गोहत्यानियुतानि च ॥१ ३७॥  
 तत्क्षणाद्विलयं यान्ति रसलिङ्गस्य दर्शनात् । स्पर्शनातप्राप्यते मुक्तिरिति सत्यं शिवोदितम् ॥१ ३८॥  
 वाड्मायाश्रीअघोरेण मन्त्रराजेन चार्चयेत् । अष्टादशभुजं शुभ्रं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥१ ३९॥  
 प्रेतारूढं नीलकण्ठं रसलिङ्गं विचिन्नयेत् । तस्योत्सङ्गे महादेवीमेकवक्त्रां चतुर्भुजाम् ॥१ ४०॥  
 अक्षमालाङ्कुशौ दक्षे वामे पाशाभये शुभे । दधतीं तपदेहमाभां पीतवस्त्रां विभावयेत् ॥१ ४१॥

अब पारदलिङ्ग का विधान कहता हूँ। ऐसा नित्य करने में अशक्त होने पर इसका विकल्प कहता हूँ। तीन निष्क = ४८ ग्राम हेमपत्र एवं नव निष्क = १४४ ग्राम रसेन्द्र (पारा) को अम्ल में एक प्रहर तक घोटे और उससे लिङ्ग बनावे। दोलायन्त में जप्त्वारी नीबू के रस में दिन भर पकावे। उससे लिङ्ग बनाकर उत्तम उपचारों से उसकी नित्य पूजा करे। एक हजार करोड़ लिङ्गार्चन का जो फल मिलता है, उससे करोड़गुण अधिक फल इस पारद लिङ्ग के अर्चन से मिलता है। इस लिङ्ग

के दर्शन मात्र से ही हजार ब्रह्महत्या एवं दश हजार गोहत्या के पाप नष्ट हो जाते हैं और उसके स्पर्श से मोक्ष मिलता है, ऐसा सत्य शिव ने कहा है। 'ऐं हीं श्रीं अयोर ॐ हौं क्षर्षू हौं नमः शिवाय' से अर्चन करे। अर्चन के बाद अद्वारह भुजाओं वाले, शुभ्र, पञ्चमुख, त्रिलोचन, प्रेत पर सवार, नीलकण्ठ पारदलिंग का चिन्तन करे। उनकी गोद में एक मुख वाली, चतुर्भुजा, बाँये हाथ में पाश एवं अधय तथा दाहिने हाथ में अक्षमाला एवं अंकुश धारण करने वाली, स्वर्ण सदृश कान्ति वाली एवं पीले वस्त्रों वाली महादेवी का स्मरण करे।

### जयाविद्योद्धारः

**वाऽमायाश्रीकामराजशक्तिबीजरसाङ्कुशा** । यै नमो द्वादशार्णैषा जयाविद्या रसाङ्कुशी ॥१४२॥  
**अनया पूजयेद्वीं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । नन्दिभृङ्गिमहाकालान् कुमारान्सर्वदिक्कमात् ॥१४३॥**  
**पूजयेत्राममन्त्रैस्तु प्रणवादिनमोऽन्तकैः । सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रवान्यनवान् भवेत् ॥१४४॥**  
**पराप्रासाददीक्षा च पारदेश्वरपूजनम् । महिमःस्तुतिपाठश्च नात्पस्य तपसः फलम् ॥१४५॥**  
**पराप्रासादभन्नेण रसलिङ्गं समर्चयेत् । षण्मासाभ्यन्तरेणैव सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥१४६॥ इति।**

द्वादशवर्णा रसांकुशी विद्या—ऐं हीं श्रीं क्लीं हीं रसांकुशायै नमः—इस द्वादशाक्षरी जया विद्या से देवी का पूजन गन्धाक्षत पुष्पों से करे। नन्दी भृंगी महाकाल कुमार की पूजा चारों दिशाओं में उनके नाम के पहले ॐ और अन्त में नमः लगाकर करें; जैस—ॐ नन्दै नमः। ॐ महाकालाय नमः आदि। इस प्रकार की पूजा से पूजक की सभी कामनाएं पूरी होती हैं एवं वह पुत्रवान् और धनवान होता है। पराप्रासाद दीक्षा, पारदेश्वर पूजन, महिम स्तोत्र का पाठ अल्प तपस्या से नहीं प्राप्त होते। परा प्रासाद मन्त्र—स्त्रौं हस्तौं से रसलिङ्ग का अर्चन निरन्तर छः महीनों तक करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

### आदिमूर्त्तिर्मूर्तिद्वादशकभेदः

**हयशीर्षपञ्चरात्रे—**  
**आदिमूर्तिर्वासुदेवः सङ्कर्षणमथासृजत् । प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च स्वयमेवासृजत्प्रभुः ॥१॥ इति।**

तथा—

**चतुर्मूर्तिः परः प्रोक्त एकैको भिद्यते त्रिधा । केशवादिप्रभेदेन मूर्तिद्वादशकं स्मृतम् ॥१॥**  
**पङ्कजं दक्षिणे दद्यात्पाञ्चजन्यं तथोपरि । वामोपरि गदा यस्य चक्रं चाधो व्यवस्थितम् ॥२॥**  
**आदिमूर्त्तिर्मूर्तिर्वासुदेवः भेदोऽयं केशवेति प्रकीर्त्यते । अधरोत्तरभावेन कृतमेतत् यत्र वै ॥३॥**  
**नारायणाख्या सा मूर्तिः स्थापिता भुक्तिमुक्तिदा । सव्याधः पङ्कजं यस्य पाञ्चजन्यं तथोपरि ॥४॥**  
**दक्षिणोध्वं गदा यस्य चक्रं चाधो व्यवस्थितम् । आदिमूर्त्तिर्मूर्तिर्वासुदेवः भेदोऽयं पाधवेति प्रकीर्तिः ॥५॥**  
**दक्षिणाधः स्थितं चक्रं गदा यस्योपरि स्थिता । वामोध्वं संस्थितं पद्मं शङ्खं चाधो व्यवस्थितम् ॥६॥**  
**सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं गोविन्देति प्रकीर्तिः । दक्षिणोपरि पद्मं तु गदा चाधो व्यवस्थिता ॥७॥**  
**वामोध्वं पाञ्चजन्यं च चक्रं चाधो व्यवस्थितम् । सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं विष्णुरित्यभिधीयते ॥८॥**  
**दक्षिणोपरि शङ्खं च चक्रं चाधोः प्रदश्यते । वामोध्वं पङ्कजं यस्य गदा चाधो व्यवस्थिता ॥९॥**  
**मथुरूदननामायं भेदः सङ्कर्षणस्य तु । दक्षिणोध्वं गदा यस्य पङ्कजं चाध्यथः स्थितम् ॥१०॥**  
**वामोध्वं संस्थितं चक्रमधः शांखः प्रदश्यते । ब्राह्मण्डगं वामपादं दक्षिणं शेषपृष्ठगमम् ॥११॥**  
**बलिबन्धनसंसंक्षयं वामनं चाप्यथः स्थितम् । वामोध्वं कौमुदी यस्य पुण्डरीकमधः स्थितम् ॥१२॥**  
**दक्षिणोध्वं सहस्रां पाञ्चजन्यमधः स्थितम् । सप्ततालप्रमाणेन वामनं कारयेत्सदा ॥१३॥**  
**ऊर्ध्वं दक्षिणतश्क्रमधः पद्मं व्यवस्थितम् । वामोध्वं कौमुदी यस्य पाञ्चजन्यमधः स्थितम् ॥१४॥**

पद्मा पद्मकरा वामपार्षे यस्य व्यवस्थिता । स्थितो वाप्युपविष्टो वा सानुरागो विलासवान् ॥१५॥  
 प्रद्युम्नस्य तु भेदोऽयं श्रीधरति प्रकीर्त्यते । दक्षिणोर्ध्वे महाचक्रं कौमुदी तदधः स्थिता ॥१६॥  
 वामोर्ध्वे नलिनं यस्य त्वधः शङ्खो विराजते । हषीकेश इति ज्ञेयः स्थापितः सर्वकामदः ॥१७॥  
 दक्षिणोर्ध्वे पुण्डरीकं पाञ्चजन्यमधस्तथा । वामोर्ध्वे संस्थितं चक्रं कौमोदी तदधः स्थिता ॥१८॥  
 पद्मनाभेति सा मूर्तिः स्थापिता मोक्षदायिनी । दक्षिणोर्ध्वे पाञ्चजन्यमधस्तात् कुशेशयम् ॥१९॥  
 सव्योर्ध्वे कौमुदी यस्य हेतिराजमधः स्थितम् । अनिरुद्धस्य भेदोऽयं दामोदर इति स्थितः ॥२०॥

एतेषां तु त्रियः कार्यः पद्मवीणाधारा: शुभाः । इति ।

विष्णु आदि मूर्ति के बारह भेद—हयशीर्ष पञ्चरात्र में कहा गया है कि आदि मूर्ति वासुदेव ने अपने को संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप में सृजित किया। इन चारों मूर्तियों ने अपने को तीन-तीन रूपों में विभक्त किया। इससे केशव आदि बारह मूर्तियाँ प्रकट हुईं। आदिमूर्ति वासुदेव के प्रथम भेद केशव है। इनके दाहिने निचले हाथ में पद्म है, ऊपर वाले दाँयें हाथ में पाँचजन्य शङ्ख है। इनके ऊपर वाले बाँयें हाथ में गदा है एवं नीचे वाले बाँयें हाथ में चक्र है। भुक्ति-मुक्तिप्रदायक नारायण के नीचे वाले दाँयें हाथ में पाञ्चजन्य और ऊपर वाले दाँयें हाथ में पद्म है। ऊपर बाँयें हाथ में चक्र और नीचे वाले बाँयें हाथ में गदा है। जिनके निचले बाँयें हाथ में कमल, ऊपर वाले बाँयें हाथ में पाँचजन्य, ऊपर वाले दाँयें हाथ में गदा और निचले दाँयें हाथ चक्र हैं इन्हे माधव कहा जाता है। आदिमूर्ति वासुदेव, केशव, नारायण एवं माधव—ये चार हैं।

सङ्कर्षण के भेद गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन हैं। गोविन्द के निचले दाँयें हाथ में चक्र, ऊपर वाले दाँयें में गदा, ऊपरी बाँयें में कमल और निचले बाँयें में शङ्ख है। विष्णु के ऊपरी दाँयें में कमल, निचले दाँयें में गदा, ऊपरी बाँयें में पाँचजन्य एवं निचले बाँयें में चक्र है। मधुसूदन के ऊपरी दाँयें हाथ में शङ्ख, नीचे चक्र, वामोर्ध्व में पद्म एवं नीचे गदा है। प्रद्युम्न के भेद वामन, त्रिविक्रम और श्रीधर हैं। वामन के दक्षिणोर्ध्व में गदा, नीचे पंकज, वामोर्ध्व में चक्र और नीचे शंख है। त्रिविक्रम के वामोर्ध्व में कौमोदकी, नीचे पद्म, दक्षिणोर्ध्व में चक्र एवं नीचे पाँचजन्य है। श्रीधर के दक्षिणोर्ध्व में चक्र, नीचे पद्म, वामोर्ध्व में कौमोदकी और नीचे शङ्ख है। इनके बाँयें अंक में हाथ में कमल लिये पद्मा स्थित रहती हैं, जो सदैव अनुगगिनी रहती हैं। अनिरुद्ध के भेद हषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर हैं। हषीकेश के दक्षिणोर्ध्व में चक्र, नीचे गदा, वामोर्ध्व में पद्म एवं नीचे शङ्ख होता है। पद्मनाभ के दक्षिणोर्ध्व में पद्म, नीचे शङ्ख, वामोर्ध्व में चक्र और नीचे गदा होता है। दामोदर के दक्षिणोर्ध्व में शङ्ख, नीचे पद्म, वामोर्ध्व में गदा और नीचे चक्र रहता है।

### चतुर्विंशतिमूर्तिवर्णनम्

सिद्धार्थसंहितायां तु चतुर्विंशतिमूर्तयः उक्ताः—

वासुदेवो गदाशङ्खचक्रपद्मधरो मतः । पद्मं शङ्खं तथा चक्रं गदां वहति केशवः ॥१॥  
 शङ्खं चक्रं गदापद्मं धते नारायणः सदा । गदां चक्रं तथा शङ्खं पद्मं वहति माधवः ॥२॥  
 चक्रं पद्मं तथा शङ्खं गदां च पुरुषोत्तमः । पद्मं कौमोदकीं शङ्खं चक्रं धते हाथोक्षजः ॥३॥  
 सङ्कर्षणो गदाशङ्खपद्मचक्रधरः स्मृतः । चक्रं गदां पद्मशङ्खो गोविन्दो धरते भुजैः ॥४॥  
 गदां पद्मं तथा शङ्खं चक्रं विष्णुर्बिर्भिति यः । चक्रं शङ्खं तथा पद्मं गदां च मधुसूदनः ॥५॥  
 गदां सरोजं चक्रञ्च शङ्खं धते च्युतः सदा । शङ्खं कौमोदकीं चक्रमुपेन्द्रः पद्ममुद्दहेत् ॥६॥  
 चक्रशङ्खगदापद्मधरः प्रद्युम्न उच्यते । पद्मं कौमोदकीं चक्रं शङ्खं धते त्रिविक्रमः ॥७॥  
 शङ्खं चक्रं गदां पद्मं वामनो वहते सदा । पद्मं चक्रं गदां शङ्खं श्रीधरो वहते भुजैः ॥८॥  
 चक्रं पद्मं गदां शङ्खं नरसिंहो बिभर्ति यः । पद्मं सुदर्शनं शङ्खं गदां धते जनार्दनः ॥९॥  
 अनिरुद्धश्क्रकगदाशङ्खपद्मलसद्भुजः । हषीकेशो गदां चक्रं पद्मं शङ्खं च धारयन् ॥१०॥

पद्मनाभो वहेच्छङ्गं पद्मं चक्रं गदां तथा । पद्मं चक्रं गदां शङ्गं धत्ते दामोदरः सदा ॥११॥  
शङ्गं चक्रं सरोजं च गदां वहति यो हरिः । शङ्गं कौमोदकीं पद्मं चक्रं कृष्णो बिभर्ति यः ॥१२॥  
एताश्च मूर्तयो ज्ञेया दक्षिणाथः करकमात् । इति।

सिद्धार्थसंहिता में चौबीस मूर्तियों का उल्लेख मिलता है; जिनका विवेचन इस प्रकार है—

१. वासुदेव के हाथों में गदा, शङ्ग, चक्र, पद्म हैं।
२. केशव के हाथों में पद्म, शङ्ग, चक्र, गदा रहते हैं।
३. नारायण के हाथ में शङ्ग, चक्र, गदा, पद्म होते हैं।
४. माधव के हाथ में गदा, चक्र, शङ्ग, पद्म होते हैं।
५. पुरुषोत्तम के हाथों में चक्र, पद्म, शङ्ग, गदा होते हैं।
६. अधोक्षेज के हाथों में पद्म, गदा, शङ्ग, चक्र होते हैं।
७. सङ्कर्षण के हाथों में गदा, शङ्ग, पद्म, चक्र होते हैं।
८. गोविन्द के हाथों में चक्र, गदा, पद्म, शङ्ग होते हैं।
९. विष्णु के हाथों में गदा, पद्म, शङ्ग, चक्र होते हैं।
१०. मधुसूदन के हाथों में चक्र, शङ्ग, पद्म, गदा रहते हैं।
११. अच्युत के हाथों में गदा, पद्म, चक्र, शङ्ग रहते हैं।
१२. उपेन्द्र के हाथों में शङ्ग, गदा, चक्र, पद्म रहते हैं।
१३. प्रस्तुन के हाथों में पद्म, गदा, चक्र, शङ्ग रहते हैं।
१४. त्रिविक्रम के हाथों में पद्म, गदा, चक्र, शङ्ग होते हैं।
१५. वामन के हाथों में शङ्ग, चक्र, गदा, पद्म होते हैं।
१६. श्रीधर के हाथों में पद्म, चक्र, गदा, शङ्ग होते हैं।
१७. नरसिंह के हाथों में चक्र, पद्म, गदा, शङ्ग होते हैं।
१८. जनार्दन के हाथों में पद्म, चक्र, शङ्ग, गदा होते हैं।
१९. अनिरुद्ध के हाथों में चक्र, गदा, शङ्ग, पद्म होते हैं।
२०. हवीकेश के हाथों में गदा, चक्र, पद्म, शङ्ग होते हैं।
२१. पद्मनाभ के हाथों में शङ्ग, पद्म, चक्र, गदा रहते हैं।
२२. दामोदर के हाथों में पद्म, चक्र, गदा, शङ्ग रहते हैं।
२३. हरि के हाथों में शङ्ग, चक्र, पद्म, गदा रहते हैं।
२४. कृष्ण के हाथों में शङ्ग, गदा, पद्म, चक्र होते हैं।

निचले दाँयें हाथ से प्रारम्भ करके निचले बाँयें हाथ तक के क्रम से अख धारण करके ये चौबीस मूर्तियाँ अवस्थित रहती हैं।

**शूद्रादिप्रतिष्ठितार्चितायां मूर्तैः नमस्यानिषेधः**

**एवमेता विष्णुमूर्तयः शिवलिङ्गं वा शूद्रैः पूजिता ब्राह्मणादिभिर्पूज्या न नमस्याश्च इत्याहुः । बृहत्तारदीये धर्मभगीरथसंवादे धर्मवाक्यानि—**

प्रायश्चित्तविहीनानि पापानि शृणु भूपते । सर्वपापानि यान्वत्र तानि त्वं सर्वभूपते ॥१॥

समस्तपापतुल्यानि महानरकदानि च । यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेद्द्विजः ॥२॥

न तस्य निष्कृतिर्हन्त प्रायश्चित्तशतैरपि । नमेद्यः शूद्रसंस्पृष्टलिङ्गं वा हरिमेव वा ॥३॥

स सर्वयातनाभोगी यावदाचन्द्रतारकम् । पाखण्डपूजितं लिङ्गं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत् ॥४॥  
 सर्ववेदविदो वापि सर्वशास्त्रविदोऽपि वा । आभीरपूजितं लिङ्गं नत्वा नरकमशुते ॥५॥  
 योषिद्धिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेत्यु यः । स कोटिकलसंयुक्त आकल्यं रौरवं व्रजेत् ॥६॥  
 यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्धिर्यथाविधि । तदा प्रभृति शूद्रश्च योषितो वा न संस्पृशेत् ॥७॥  
 स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नरेश्वर । स्थापने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य च ॥८॥  
 अर्चितं राजशार्दूल स्वने वापि न पूजयेत् । यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेद्द्विजः ॥९॥  
 इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुषिके किमु । शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा ॥१०॥  
 केशवं शङ्करं वापि स्पृष्ट्वा नरकमशुते । बौद्धालयं विशेषस्तु महापद्मापि च द्विजः ॥११॥  
 न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि । बौद्धाः पाखण्डिनः प्रोक्ता यतो वेदविनिन्दकाः ॥१२॥  
 तस्माद्द्विजस्तात्रेक्षेत यदि देवेषु भक्तिमान् ।

उपर्युक्त विष्णुमूर्तियाँ या शिवलिङ्गं यदि शूद्र द्वारा पूजित हों तो वे ब्राह्मणादि द्वारा पूज्य या नमस्कारयोग्य नहीं होते, जैसा कि बृहत्त्रादीप में धर्म-भगीरथ संवाद में धर्म ने कहा है कि जो प्रायश्चित्त नहीं करते उनके पापों को सुनो। जो शूद्र से अर्चित लिङ्ग और विष्णु को बिना प्रायश्चित्त के प्रणाम करते हैं, उन्हें सभी पाप लगते हैं और वे नरकगामी होते हैं। सैकड़ों प्रायश्चित्त करने पर भी उनके पाप नष्ट नहीं होते, जो शूद्र से सृष्टि लिङ्ग या शालिग्राम को प्रणाम करते हैं। जो पाखण्ड-पूजित लिङ्ग को प्रणाम करता है और पाखण्ड करता है, वह यातना का भोग तब तक करता है जब तक चन्द्र-तारा रहते हैं। सभी वेदों और शास्त्रों के ज्ञाता होने पर भी जो कोल-भील द्वारा पूजित लिङ्ग को प्रणाम करता है, वह नरक में जाता है। स्त्रियों से पूजित लिङ्ग या शालिग्राम को जो ब्राह्मण नमस्कार करता है, वह अपने करोड़ों कुल के साथ कल्यपर्यन्त रौरव नरक में रहता है। मन्त्रज्ञों के द्वारा विधिवत् स्थापित लिङ्ग का स्पर्श स्त्रियों और शूद्रों को नहीं करना चाहिये। स्त्रियों, अनुपनीतों और शूद्रों को शंकर या विष्णु की मूर्ति को स्थापित करने का अधिकार नहीं है। उनके द्वारा अर्चित लिङ्ग का पूजन स्वप्न में भी न करे। जो द्विज शूद्र द्वारा संस्कृत लिङ्ग या विष्णुमूर्ति को प्रणाम करता है, वह इस लोक में ही बहुत दुःख प्राप्त करता है, तब अच्छे लोक उसे कैसे प्राप्त हो सकते हैं? शूद्र या अनुपनीत या स्त्री या पतित केशव या शंकर को छूने से नरकगामी होता है। महान् आपत्ति में भी जो द्विज बौद्धालय में बैठता है तो सैकड़ों प्रायश्चित्त के बाद भी उसे पापों से छुटकारा नहीं होता। वेदनिन्दक होने के कारण बौद्ध पाखण्डी कहे गये हैं; अतः द्विज यदि देवभक्त हो तो उनकी ओर दृष्टिपात भी न करे।

## ब्राह्मणस्य सन्तप्तशंखारिलिङ्गंक्लिततनुं नरः ॥१३॥

यस्तु सन्तप्तशंखारिलिङ्गंक्लिततनुं नरः ॥१३॥

सम्भाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्वर्तुर्दश । चक्राङ्किततनुर्यन्त्र न तत्र दिवसं वसेत् ॥१४॥

यदि तिष्ठेन्महापापो सहस्रब्रह्महा भवेत् । गङ्गास्तानरतो वापि अश्वमेधरतोऽपि वा ॥१५॥

चक्राङ्किततनुं दृश्वा पश्येत्सूर्यं जपन्नरः । जपेत्स पौरुषं सूक्तमन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥१६॥

लिङ्गाङ्किततनुं दृश्वा पश्येत्सूर्यं नरेश्वर । जपेच्च शताङ्गियमन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥१७॥

ब्राह्मणस्य तनुर्ज्ञया सर्वदेवसमाश्रया । सा चेत्सन्तापिता राजन् किं वक्ष्यामि तदेनसः ॥१८॥

चक्राङ्किततनुर्वापि राजलिङ्गंक्लितोऽपि वा । नाधिकारी परिज्ञेयः श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु ॥१९॥ इति।

जो देवभक्त संतप्त शङ्क-लिङ्गाकित शरीर वाले हैं, उसे द्विज न देखे। उनके साथ बातचीत करने से जब तक चौदह इन्द्र होते हैं तब तक वह रौरव नरक में रहता है। जहाँ चक्रांकित शरीर वाला रहता है, वहाँ एक दिन भी न ठहरे। यदि वहाँ ठहरता है तो हजार ब्रह्महत्या का महापाप उसे लगता है। गंगास्तान में रत या अश्वमेधकर्ता भी यदि चक्रांकित शरीर को देखता है तो उसे सूर्य को देखते हुए पुरुषसूक्त का जप करना चाहिये; अन्यथा वह रौरव नरक में जाता है। लिङ्गाकित शरीर को देखने पर सूर्य को देखते हुए शतरुद्री का जप करना चाहिये; अन्यथा रौरव नरक में जाता है। ब्राह्मण के शरीर में सभी देवताओं

का वास होता है। वह यदि इस प्रकार संतापित होता है तो उसके पापों की गणना नहीं की जा सकती। चक्रांकित या लिङ्गांकित ब्राह्मण श्रौत-स्मार्त कर्मों का अधिकारी नहीं होता।

### शालग्रामशिलालक्षणानि

अथ शालग्रामलक्षणानि स्कान्दे—

स्निधा कृष्णा पाण्डुरा च पीता नीला तथैव च । रक्ता रूक्षा च वक्रा च महास्थूलाप्यलाञ्छिता ॥१॥  
कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका । बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राथवा पुनः ॥२॥  
मग्नचक्राथवा काचिद्दग्नन्यक्राप्यथोमुखी । इति।

शालग्राम शिला के लक्षण—स्कन्दपुराण में कहा गया है कि शालग्राम स्निध, काला, पाण्डुर, पीला, नीला, लाल, रूक्ष, टेढ़ा, महास्थूल, अलांछित, कपिल, चित्र-विचित्र, भग्न, बहुत चक्रों वाला या एकचक्री, बड़े मुख वाला, बृहत् चक्र वाला अथवा लग्न चक्र, मग्नचक्र, थोड़ा भनें चक्र अथवा अधोमुख होता है।

### शालग्रामशिलानां वर्णादिभेदेन गुणदोषवर्णनम्

अथैतासां वर्णादिभेदेन गुणदोषो तत्रैव—

स्निधा सिद्धिकरी मन्त्रे कृष्णा कीर्ति ददाति च । पाण्डुरा पापदमनी पीता पुत्रफलप्रदा ॥१॥  
नीला संदिशते लक्ष्मीं रक्ता राज्यप्रदायिनी । रूक्षा चोद्देगदा नित्यं वक्रा दारिद्र्यदायिनी ॥२॥  
स्थूला निहन्ति चैवायुर्निष्फला तु अलाञ्छिता । कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका ॥३॥  
बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राथवा पुनः । मग्नचक्राथवा या स्याद्दग्नन्यक्राप्यथोमुखी ॥४॥

पूजयेद्वा प्रमादेन दुःखमेव लभेत सः। इति।

अग्निपुराणे—

तथा व्यालमुखी भग्ना विषमा बद्धचक्रिका । विकारावर्तनाभिश्च नारसिंही तथैव च ॥१॥  
कपिला च भ्रमावर्त रेखावर्त च या शिला । दुःखदा सा तु विज्ञेया सुखदा न कदाचन ॥२॥  
स्निधा श्यामा तथा शुक्ला पीता वा समचक्रिका । घोणीमूर्तिरनन्ताख्या गम्भीरा सम्पुटा तथा ॥३॥  
सूक्ष्मा मूर्तिश्च सुमुखी पूजिता सिद्धिदायिका । धात्रीफलप्रमाणा या करेणोभयसम्पुटा ॥४॥  
पूजनीया प्रयत्नेन भक्त्या तां तु प्रपूजयेत् । पूजिते फलमार्जोति इह लोके परत्र वै ॥५॥ इति।

इनके वर्णभेद से गुण-दोष स्कन्द पुराण में ही वर्णित निम्न प्रकार के प्राप्त होते हैं—स्निध शालग्राम सिद्धिप्रद, काला कीर्तिप्रद, पाण्डुर पापनाशक, पीला पुत्रदाता, नीला लक्ष्मीदायक, लाल राज्यप्रदायक, रूक्ष उद्गेप्रद, टेढ़ा दारिद्र्यप्रद, स्थूल प्राणान्तक, अलांछित निष्फल होता है। कपिल, कर्बुर, भग्न, बहुचक्री, एकचक्री, बृहन्मुख, बृहच्चक्र, लग्नचक्र, मग्नचक्र, भग्नचक्र या अधोमुख शालग्राम का यदि कोई प्रमादवश भी पूजन करता है तो उसे दुःख ही प्राप्त होता है।

अग्निपुराण में कहा गया है कि व्यालमुख, भग्न, विषम, बद्धचक्र, विकृत आवर्त नाभि वाला, नारसिंह, कपिल, भ्रमावर्त, रेखावर्त शालग्राम दुःखप्रद होता है। ये कभी सुखदायक नहीं होते। स्निध, श्याम, शुक्ल, पीला, समचक्र, घोणीमूर्ति, अनन्ताख्य, गम्भीर, सम्पुट, सूक्ष्म, सुन्दर शालग्राम पूजित होने पर सिद्धिदायक होते हैं। आँखें के फल के बराबर अथवा करसम्पुट में समाहित होने वाला शालग्राम पूज्य होता है। यत्पूर्वक भक्ति से इनकी पूजा करनी चाहिये। इनकी पूजा करने से ऐहिक और पारलौकिक दोनों फल प्राप्त होते हैं।

### निष्कामार्चनविषये उक्तदोषाभावः

दोषाश्वैते सकामार्चनविषयाः। अत उक्तं श्रीभगवता स्कान्दे—

खण्डितं स्फुटितं भग्नं सालग्रामे न दोषभाक् । इष्टा तु यस्य या मूर्तिः स तां यत्नेन पूजयेत् ॥१॥

चक्रं वा केवलं तत्र पद्मेन सह संयुतम् । केवला वनमाला वा हरिलक्ष्या सह स्थिता ॥१॥

**मुख्याः स्तिंगथादयस्त्वत्र मुख्या रक्तादयो मताः । मुख्याभावे त्वमुख्या हि पूज्या इत्युच्चते परैः ॥३॥** इति।

शालग्राम के ये दोष सकाम अर्चन के विषय हैं; स्कन्दपुराण में भगवान् में कहा है—खण्डित, स्फुटित या भग्न शालग्राम में दोष नहीं होते। जिसे जो मूर्ति इष्ट हो, उसकी वह यत्पूर्वक पूजा करे। जिस शालग्राम में केवल चक्र हो, या उसके साथ पद्म हो, केवल वनमाला हो या विष्णु-लक्ष्मी से युक्त हो, वह शालग्राम मुख्य माना जाता है। स्तिंगथ और रक्त भी मुख्य माना जाता है। मुख्य के न होने पर अमुख्य का पूजन भी होता है, यह भी किसी का कहना है।

### तासां लक्षणविशेषण संज्ञाविशेषाः

अथैतासामेव लक्षणविशेषण संज्ञाविशेषो ब्राह्मे श्रीभगवद्ब्रह्मसंवादे—

**निवसामि सदा ब्रह्मन् सालग्रामारुद्यवेशमनि । तत्र च मुख्यचक्राङ्गभेदे नामानि मे शृणु ॥१॥**

द्वारदेशे समे चक्रे दृश्यते नान्तरायके । वासुदेवः स विज्ञेयः शुक्लाभश्चातिशोभनः ॥२॥

**प्रद्युमः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतदीपित्सत्यैव च । सुषिरं छिद्रबहुलं दीर्घाकारं तु तद्वेत् ॥३॥**

अनिरुद्धस्तु नीलाभो वर्तुलश्चातिशोभनः । रेखाद्वयं तु तद्वारि पृष्ठं पद्मेन लाञ्छितम् ॥४॥

सौभाग्यं केशशो द्याच्यतुष्कोणो भवेत् यः । श्यामं नारायणं विद्यावान्निर्भिचक्रं तथोपरि ॥५॥

दीर्घरेखासमोपेतं दक्षिणे सुषिरं पृथु । ऊर्ध्वे मुखं विजानीयादद्वारे च हरिरूपिणम् ॥६॥

कामदं मोक्षदं चैव हार्थदं च विशेषतः । परमेष्ठी च शुक्लाभः पद्मचक्रसमन्वितः ॥७॥

**बिल्वाकृतिस्तथा पृष्ठे सुषिरं वापि पुष्कलम् । कृष्णवर्णस्तथा विष्णुः स्थूले चक्रे सुशोभने ॥८॥**

द्वारोपरि तथा रेखा दृश्यते मध्यदेशतः । कपिलो नारसिंहस्तु पृथुचक्रः सुशोभनः ॥९॥

**ब्रह्मचार्यधिकारी स्यात्पूजनं नान्यथा भवेत् । ब्रह्मचर्येण पूज्योऽसावन्यथा विघ्नदो भवेत् ॥१०॥** इति।

### क्वचिच्च—

**कपिलोऽस्थिविन्दुः स्यात्कपिलः पञ्चविन्दुकः । ब्रह्मचर्येण पूज्यः स्यादन्यथा सर्वविघ्नदः ॥१॥**

स्थूलं चक्रद्वयं मध्ये गुडलाक्षासवर्णकम् । द्वारोपरि तथा रेखा पूजा कार्या सुशोभना ॥२॥

**स्फुटिं विशेषं चक्रं नारसिंहं तु कापिलम् । संपूज्य मुक्तिमानोति संग्रामे विजयी भवेत् ॥३॥** इति।

लक्षणविशेष से शालिग्राम के नामविशेष—ब्रह्मपुराण में भगवान् एवं ब्रह्मा के संवाद में भगवान् ब्रह्मन्! मैं सालग्राम में सदैव रहता हूँ। मुख्य चक्रांक भेद से उनके नाम सुनिये। समद्वार देश में बिना अन्तराय के जिस शालग्राम में चक्र होता है और जो शुक्ल वर्ण का सुन्दर होता है, उसे वासुदेव कहते हैं। सुषिर, छिद्रबहुल, दीर्घाकार, पीले सालग्राम में सूक्ष्म चक्र होने पर उसे प्रद्युम कहते हैं। नीलाभ सुन्दर वर्तुल सालग्राम में द्वार पर दो रेखा और पीठ पर कमल का चिह्न होने पर उसे अनिरुद्ध कहते हैं। केशव चौकोर होता है और यह सौभाग्यप्रदायक होता है। काले रंग का जो सालग्राम नामिचक्र के ऊपर विद्यमान हो, उसे नारायण कहते हैं। जिसमें दीर्घ रेखा हो, दक्षिण में बड़ा छेद हो, जिसका द्वार ऊपर की ओर हो, उसका नाम हरि है; यह कामद, मोक्षद और धनद होता है। परमेष्ठी शुक्लाभ पद्म, चक्र समन्वित होता है। बेल की आकृति, पीठ पर बड़ा छेद, काला रंग एवं स्थूल चक्र से सुशोभित सालग्राम को विष्णु कहते हैं। जिसके द्वार पर रेखा हो, मध्य देश में चक्र हो और वर्ण कपिल हो उसे नारसिंह कहते हैं। इसके पूजन का अधिकार केवल ब्रह्मचरियों को ही होता है, दूसरों को नहीं। ब्रह्मचारी से इतर द्वारा पूज्य होने पर ये विघ्नकारक होते हैं।

### पद्मपुराणे, कार्तिकमाहात्म्ये—

**यस्य दीर्घं मुखं पूर्वं कथितैर्लक्षणैर्युतम् । केसराकारिका रेखा नारसिंहो मतः स तु ॥१॥** इति।

ब्राह्मे—

वराहं शक्तिलिङ्गे च चक्रे च विषमे स्मृते । इन्द्रनीलनिभं स्थूलं विरेखालाञ्छितस्थलम् ॥१॥ इति।

पादे च—

वराहाकृतिराभुग्नश्वकरेखास्वलङ्घृतः । वाराह इति संप्रोक्तः……………॥ इति।

ब्राह्मे—

दीर्घा काञ्छनवर्णाभा बिन्दुत्रयविभूषिता । मत्स्याख्या सा शिला ज्ञेया भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥१॥

कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलः परिपूरितः । हरितं वर्णमाधते कौस्तुभेन च चिह्नितः ॥२॥

कूर्माकारा च चक्राङ्गा शिला कूर्मः प्रकीर्तिः । इति।

ब्राह्मे—

हयग्रीवोऽङ्गुशाकारो रेखा: पञ्च भवन्ति हि । बहुबिन्दुसमाकीर्णो दृश्यते नीलसूपकः ॥३॥ इति।

पादे—

हयग्रीवा यथा लम्बरेखा वा या शिला भवेत् । तथा सौम्यो हयग्रीवः पूजितो ज्ञानदो भवेत् ॥४॥

अश्वाकृति मुखं यस्य साक्षमालशिरस्तथा । पद्माकृतिर्भवेद्वापि हयशीर्षस्त्वसौ मतः ॥५॥

वैकुण्ठं नीलवर्णाभं चक्रमेकं तथा ध्वजा । द्वारोपरि तथा रेखा पूजा कार्या सुशोभना ॥६॥

श्रीधरस्तु तथा देवक्षिहितो वनमालया । कदम्बकुसुमाकारो रेखापञ्चकभूषितः ॥७॥

वर्तुलश्वातिचिह्नश्च वामनः परिकीर्तिः । अतसीकुसुमप्रख्यो बिन्दुना परिशोभितः ॥८॥ इति।

अन्यत्र च—

वामनाख्यो भवेदेवो हस्त्वो यः स्यान्महाद्युतिः । वामपाश्चें गदाचक्रे रेखे चैव तु दक्षिणे ॥९॥ इति।

पादे—

चक्राकारेण पङ्क्षः सा यत्र रेखामयी भवेत् । स सुदर्शन इत्येवं ख्यातः पूजाफलप्रदः ॥१॥

दामोदरस्तथा स्थूलो मध्ये चक्रं प्रतिष्ठितम् । दूर्वाभं द्वारि सङ्कीर्ण पीता रेखा तथैव च ॥२॥

उपर्युधश्च चक्रे द्वे नातिदीर्घं मुखे बिलम् । मध्ये च रेखा लम्बैका सा च दामोदरः स्मृतः ॥३॥ इति।

अन्यत्र च—

स्थूलो दामोदरो ज्ञेयः सूक्ष्मरन्ध्रो भवेत्तु यः । चक्रे च मध्यदेशस्ये पूजितः सुमुखः सदा ॥१॥

नानावर्णो ह्यनन्ताख्यो नागभोगेन चिह्नितः । अनेकचक्रसम्भिन्नः सर्वकामफलप्रदः ॥२॥

अनेकचक्रो बहुभिश्चिह्नैरप्युपलक्षितः । अनन्तः स तु विज्ञेयः सर्वपूजाफलप्रदः ॥३॥

विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योद्धर्वे दृश्यते मुखम् । पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥४॥

दृश्यते शिखरे लिङ्गं शालग्रामसमुद्धवम् । तस्य योगीश्वरो नाम ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥५॥

आराध्यं पद्मनाभाख्यं पङ्कजच्छत्रसंयुतम् । तुलस्या पूजयेत्प्रियं दरिद्रस्त्वीश्वरो भवेत् ॥६॥

चन्द्राकृति हिरण्याख्यं रशिमजालं विनिर्दिशेत् । सुवर्णरेखाबहुलं स्फटिकद्युतिशोभितम् ॥७॥ इति।

कहीं पर यह भी कहा गया है कि कपिल वर्ण के सालग्राम में यदि नीचे तीन या पाँच बिन्दु हो तो उसे ब्रह्मचारी ही पूजे; अन्यथा बहुत विघ्न होते हैं। जो सालग्राम स्थूल हो, मध्य में दो चक्र हो, जिसका वर्ण गुड़ या लाह के समान हो, जिसके द्वार पर रेखा हो, उसका पूजन प्रशस्त होता है। जिसमें स्फुटित विषम चक्र हो, वर्ण कपिल हो उसे नारसिंह कहते हैं। इसके पूजन से मुक्ति मिलती है और युद्ध में विजय प्राप्त होता है।

पद्मपुराण में कार्तिक माहात्म्य में कहा गया है कि जिसका मुख दीर्घ हो और जो कथित लक्षण से युक्त हो, जिसमें

केसर के आकार की रेखा हो, उसे नारसिंह कहते हैं। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि वाराह शक्तिलिङ्ग में विषम चक्र होते हैं इसका वर्ण नीलम के समान, स्थूल, बिना रेखा का एवं लाञ्छनयुक्त होता है। पद्म पुराण में कहा गया है कि वाराह सालग्राम की आकृति वाराह मुख के समान होती है। यह चक्ररेखा से अलंकृत होता है। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि जिस दीर्घ सालग्राम का वर्ण सोने के समान हो, जिसमें तीन बिन्दु हों, उसे मत्स्य कहते हैं। यह भोगमोक्षप्रदायक होता है। जिसका पीठ उन्नत वर्तुल हो, वर्ण हरा हो, कौस्तुभ का चिह्न हो, आकार कछुए के समान हो, जिसमें चक्र अंकित हो, उसे कूर्म कहते हैं। ब्रह्मपुराण में ही कहा गया है कि हयग्रीव में अंकुशाकार पाँच रेखाएँ होती हैं। वह बिन्दुयुक्त नीले रंग का होता है। पद्मपुराण में कहा गया है कि हयग्रीव शिला में लम्ब रेखा होती है। सौम्य हयग्रीव पूजित होने पर ज्ञान देते हैं। जिसका मुख अश्व के आकार का हो, शिर पर अश्माला हो या जो पद्माकार हो, उसे हयग्रीव कहते हैं। वैकुण्ठ का वर्ण नीला होता है, उसमें एक चक्र और ध्वजा तथा द्वार पर रेखा होती है; इसका पूजन करना चाहिये। श्रीधर नामक सालग्राम कदम्ब-कुसुमाकार होता है। वह बनमाला और पाँच रेखाओं से युक्त होता है। वामन नामक सालग्राम गोल, बहुत चिह्नयुक्त, अतसी-पृष्ठ के वर्ण वाला एवं बहुत बिन्दुओं से युक्त होता है। अन्यत्र भी कहा गया है कि वामन नामक सालग्राम छोटा होता है, इसमें महाद्युति होती है। इसके बाँयें पार्श्व में गदा, चक्र और दाँयें भाग में रेखाएँ होती हैं। पद्म पुराण में कहा गया है कि चक्राकार रेखा पंक्तियों से युक्त सालग्राम का नाम सुदर्शन है; यह पूजाफल देने में विष्णुता है। दामोदर नामक सालग्राम स्थूल होता है। इसके मध्य में चक्र होता है। दूर्वा के समान इसकी आभा होती है। इसका द्वार संकीर्ण, पीला वर्ण एवं रेखा से यह युक्त होता है। इसके ऊपर-नीचे दो चक्र होते हैं, मुख में छोटा छेद होता है एवं मध्य में एक लम्बी रेखा होती है। अन्यत्र कहा गया है कि स्थूल दामोदर में सूक्ष्म छेद होता है। इसके मध्य देश में चक्र होता है। यह सुमुख सदा पूजनीय होता है। अनन्त नामक सालग्राम नाना वर्णों का होता है। यह नागभोग से चिह्नित होता है। इसमें अनेक चक्र होते हैं। यह सर्वकाम-फलप्रद होता है। अनेक चक्रों एवं बहुत से चिह्नों से युक्त अनन्त सर्व पूजाफल-प्रदायक होता है। सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में और ऊपर जिसमें मुख हों उसे पुरुषोत्तम कहते हैं, यह भोग-मोक्षदायक होता है। जिस सालग्राम के शिखर पर लिङ्ग अङ्कित हो, उसे योगीश्वर कहते हैं; यह ब्रह्मत्या का नाश करता है। कमल एवं छत्रयुक्त पद्मानाभ शालग्राम की तुलसी से नित्य पूजा करने से दरिद्र भी ऐश्वर्य सम्पत्र हो जाता है। चन्द्राकृति स्वर्णिम किरणों से युक्त, सुवर्ण रेखाबहुल, स्फटिक धूति से शोभित सालग्राम का पूजन करना चाहिये।

## पादे—

वक्रीटोद्वा रेखा: पंक्तिभूताश्च यत्र वै। सालग्रामशिला या सा विष्णुपञ्चरसंज्ञिता ॥१॥  
 नागवत् कुण्डलीभूतरेखापंक्तिः स शेषकः। पद्माकारे तु पंक्ती द्वे मध्ये लम्बा च रेखिका ॥२॥  
 गरुडः स तु विज्ञेयश्चतुश्क्रो जनार्दनः। चतुश्क्रः सूक्ष्मद्वारि वनमालाङ्कितोदरः ॥३॥  
 लक्ष्मीनारायणः श्रीमान् भुक्तिमुक्तिफलप्रदः। अर्धचन्द्राकृतिर्देवो हृषीकेश उदाहृतः ॥४॥  
 तमध्यर्च्च लभेत्वर्ग विषयांश्च समीहितान्। वामपार्श्वे समे चक्रे कृष्णावर्णः सबिन्दुकः ॥५॥  
 लक्ष्मीनृसिंहो विष्ण्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः। त्रिविक्रमस्तथा देवः श्यामवर्णो महाद्युतिः ॥६॥  
 वामपार्श्वे तथा चक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे प्रदक्षिणावर्तकृतवनमालाविभूषितः ॥७॥  
 या शिला कृष्णासंज्ञा सा धनधान्यसमृद्धिदा। चतुस्रो यस्य दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वे समीपगाः ॥८॥  
 द्वे चक्रे मध्यदेशे तु सा शिला तु चतुर्मुखा । इति।

## तथा—

एतलक्षणयुक्तास्तु सालग्रामशिला: शुभाः। याश्च तास्वपि सूक्ष्माः स्युस्ताः प्रशस्ततराः स्मृताः ॥९॥ इति।

## तथा च श्रीभगवद्ब्रह्मसंवादे तत्रैव—

यथा यथा शिला सूक्ष्मा महत्पुण्यं तथा तथा । तस्मात्तां पूजयेन्नित्यं धर्मकामार्थसिद्धये ॥१॥

तत्राप्यामलकीतुल्या सूक्ष्मा चातीव या भवेत् । तस्यामेव सदा ब्रह्मन् श्रिया सह वसाम्यहम् ॥२॥ इति ।

पद्मपुराण में कहा गया है कि जिस शालग्राम शिला में वत्रकीटों से बनायी गयी रेखाओं की पंक्ति हो, उसे विष्णु-पञ्चर कहते हैं। नाग के समान कुण्डली की पंक्ति जिसमें हो उसे शेषनाग कहते हैं। जिसमें पद्माकार दो पंक्ति हो और एक लम्बी रेखा हो, उसे गरुड़ कहते हैं। चार चक्रों वाले को जनार्दन कहते हैं। चार चक्र, सूक्ष्म द्वार, वनमाला अंकित उदरयुक्त सालग्राम को लक्ष्मीनारायण कहते हैं। यह पूजक को श्रीमान् बनाकर भोग-मोक्ष फलप्रदायक होता है। अर्ध चन्द्राकृति को हषीकेश कहते हैं। इनकी उपासना से स्वर्गी और विषयभोग मिलते हैं। जिसके वाम पार्श्व में चक्र हो, वर्ण काला हो, जो बिन्दुयुक्त हो उसे लक्ष्मीनृसिंह कहते हैं। यह भोग-मोक्षप्रदायक है। त्रिविक्रम शयाम वर्ण महाद्युतियुक्त होता है। इसके वाम पार्श्व में चक्र और दक्ष पार्श्व में रेखा होती है। प्रदक्षिणावर्त वनमाला से विभूषित शिला का नाम कृष्ण है; यह धन-धान्य-समृद्धिदायक होता है। जिसमें पार्श्वगामी चार रेखा हो और मध्य में चक्र हो, उसे चतुर्मुख ब्रह्म कहते हैं। इन लक्षणों से युक्त सालग्राम शिला शुभ होती है। उनमें भी जो छोटी होती है, वे अधिक शुभदायिनी होती हैं। पद्मपुराण में ही भगवान् एवं ब्रह्मा के संवाद में कहा गया है कि जैसे-जैसे शिला छोटी होती है, वैसे-वैसे यह महान् पुण्यदायक होती है। इसलिये उनकी पूजा धर्म-काम-अर्थ की सिद्धि के लिये करनी चाहिये। उनमें भी आमले के बराबर जो शिला होती है, उसमें लक्ष्मीसहित विष्णु का वास होता है।

### सालग्रामशिलायां हरिपूजामाहात्म्यम्

अथ सालग्रामशिलायां हरिपूजामाहात्म्यं पादो माधमाहात्म्ये—

यः पूजयेद्दर्शं चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे । राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम् ॥१॥  
 यदामनन्ति वेदान्ता ब्रह्म निर्गुणमच्युतम् । तत्रसादो भवेत्वृणां शालग्रामशिलार्चनात् ॥२॥  
 महाकाष्ठस्थितो वह्निर्मथ्यमानः प्रकाशते । अपि पापसमाचाराः कर्मणनिधकारिणः ॥३॥  
 शालग्रामार्चका वैश्या नैव यान्ति यमालयम् । न तथा रमते लक्ष्म्या न तथा स्वपुरे हरिः ॥४॥  
 शालग्रामशिलाचक्रे यथा स रमते सदा । अग्निहोत्रं हुतं तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा ॥५॥  
 येनार्चितो हरिश्चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे । कामक्रोधमदलोभैव्याप्तो योऽन्नं नराधमः ॥६॥  
 सोऽपि याति हरेरोक्तं सालग्रामशिलार्चनात् । यः पूजयति गोविन्दं शालग्रामे सदा नरः ॥७॥  
 आभूतसप्लवं यावन्न स प्रच्यवते दिवः । विना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना मर्खः ॥८॥  
 मुक्तिं यान्ति नरा वैश्य शालग्रामशिलार्चनात् । नरकं गर्भवासं च न तिर्थकृमियोनिकम् ॥९॥  
 न याति वैश्य पापोऽपि शालग्रामेऽच्युतार्चकः । दीक्षाविधानमन्त्रज्ञश्क्रे यो बलिमाहरेत् ॥१०॥  
 स याति वैश्यावं धाम सत्यं सत्यं समोदितम् । नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैर्घूपदीपविलेपनैः ॥११॥  
 गीतवादित्रस्तोत्रादौः शालग्रामशिलार्चनम् । कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः ॥१२॥  
 कल्पकोटिसहस्राणि रमते सन्निधौ हरेः । लिङ्गैस्तु कोटिभिर्दैर्यतफलं पूजितैश्च तैः ॥१३॥  
 सालग्रामशिलायास्तु एकेनापीह तत्फलम् । सालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ॥१४॥  
 तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दशा । सालग्रामशिलायां तु यः श्राद्धं कुरुते नरः ॥१५॥  
 पितरस्त्र तिष्ठन्ति तुपाः कल्पशांतं दिवि । सालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः ॥१६॥  
 कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठं किमु मानुषः । सालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्वानमुत्तमम् ॥१७॥  
 भूचक्रं तेन दत्तं स्यात्सैलवनकाननम् । इति ।

शालग्राम में हरिपूजन का माहात्म्य—पद्मपुराण में माध-माहात्म्य में कहा गया है कि शालग्राम शिला में जो विष्णु का पूजन करता है, उसे प्रतिदिन एक हजार राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। जिसे वेदादि निर्गुण ब्रह्म और अच्युत

के प्रसाद से शालग्राम शिला का पूजन करने वाला युक्त होता है। जैसे लकड़ी के मन्थन से अग्नि प्रकट होती है, वैसे ही पापाचारी होने के कारण कर्मों के अनाधिकारी भी शालग्राम-पूजन से पवित्र हो जाते हैं। शालग्राम की पूजा करने वाले वैश्य यमलोक नहीं जाते। शालग्राम शिला के चक्र में अवस्थित लक्ष्मी और विष्णु जितना प्रसन्न होते हैं उतना प्रसन्न वे अपने लोकों में नहीं रहते। शालग्राम शिलस्थित चक्र में जो हरि की पूजा कर लेता है, उसे अग्निहोत्र करने एवं समस्त पृथ्वी दान करने का फल प्राप्त होता है। काम, क्रोध, लोभ, मद से व्याप्त पुरुष भी शालग्राम में विष्णु की पूजा करने से वैकुण्ठ में जाता है। जो मनुष्य नित्य गोविन्द की पूजा शालग्राम में करता है, वह जब तक प्रलय नहीं होता तब स्वर्ग से च्युत नहीं होता। विना तीर्थ, विना दान, विना यज्ञ, विना मख किये भी शालग्राम में अर्चन मात्र करने से वैश्य भी मोक्ष प्राप्त करता है। शालग्राम में अच्युत का अर्चन करने वाला पापी भी नरक, गर्भवास एवं तिर्यक कृमि योनि में नहीं जाता। दीक्षा विधान और मन्त्र ज्ञाता जो पूजक शालग्राम चक्र में बलि देता है, वह वैष्णव धाम में जाता है यह कथन सत्य है, कलियुग में जो भक्तिपरायण मनुष्य शालग्राम शिला की पूजा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से करता है, उसके समक्ष गाना-बजाना के साथ स्तोत्र पाठ करता है, वह एक हजार करोड़ कल्प तक विष्णु की सत्रिधि में रहता है। एक करोड़ शिवलिङ्ग पूजन का जो फल होता है, वह फल एक ही शालग्राम के पूजन से मिलता है। शालग्राम शिलारूपी केशव जहाँ रहते हैं, वहाँ सुर-असुर, यक्ष और चौदहों लोक रहते हैं। शालग्राम शिला में जो मनुष्य श्राद्ध करता है, उसके पितर तृप्त होकर सौ कल्पों तक स्वर्ग में रहते हैं। शालग्राम शिला के चारों ओर एक कोश के अन्दर यदि कीड़ा भी मरता है तो वह वैकुण्ठ जाता है, तब मनुष्यों के बारे में क्या कहा जाय। चक्रयुक्त शालग्राम शिला का जो दान करता है, वह जंगल-पहाड़-सहित सम्पूर्ण पृथ्वी का दान कर देता है।

### स्कान्दे शिवस्कन्दसंवादे—

सालग्रामशिलायां तु त्रैलोक्यं सच्चाच्चरम् । मया सह महासेन लीनं तिष्ठति सर्वदा ॥१॥  
 दृष्टा प्रणामिता येन स्नापिता पूजिता तथा । पुण्यकोटिसमं पुण्यं गवां कोटिफलं लभेत् ॥२॥  
 कामासक्तोऽपि यो नित्यं भक्तिभावविवर्जितः । सालग्रामशिलां पुत्र सम्पूज्यैवाच्युतो भवेत् ॥३॥  
 सालग्रामशिलाबिम्बं हत्याकोटिविनाशनम् । स्मृतं संकीर्तिं ध्यातं पूजितं च नमस्कृतम् ॥४॥  
 सालग्रामशिलां दृष्ट्वा यान्ति पापान्यनेकशः । सिंहं दृष्ट्वा यथा यान्ति वने मृगगणा भयात् ॥५॥  
 मनः करोति मनुजः शालग्रामशिलाचर्चने । पापानि विलयं यान्ति तमः सूर्योदये यथा ॥६॥  
 कामासक्तोऽथवा कुरुद्धः सालग्रामशिलाचर्चनम् । भक्त्या वा यदि वाभक्त्या कृत्वा मुक्तिमवानुयात् ॥७॥  
 वैवस्वतभयं नास्ति तथा मरणजन्मनोः । यः कथां कुरुते विष्णोः सालग्रामशिलाप्रतः ॥८॥  
 गीतैर्वैद्यस्तथा स्तोत्रैः सालग्रामशिलाचर्चनम् । कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः ॥९॥  
 कल्पकोटिसहस्राणि रपते विष्णुसदानि । सालग्रामे नमस्कारे भावेनापि नरैः कृतः ॥१०॥  
 भयं नैव करिष्यन्ति मद्भक्ता ये नरा भुवि । मद्भक्तिबलदर्पिष्ठा मत्वभुं न नमन्ति ये ॥११॥  
 वासुदेवं न ते ज्येष्ठा मद्भक्ताः पापिनो हि ते । सालग्रामशिलायां तु सदा पुत्र वसाम्यहम् ॥१२॥  
 दत्तं देवेन तुष्टेन स्वस्थानं नाम भक्तिः । पद्मकोटिसहस्रैस्तु पूजिते मयि यत्कलम् ॥१३॥  
 तत्कलं कोटिगुणितं सालग्रामशिलाचर्चने । पूजितोऽहं न तैमन्त्रीर्मितोऽहं न तैनरैः ॥१४॥  
 न कृतं मर्त्यलोके यैः सालग्रामशिलाचर्चनम् । सालग्रामशिलाग्रे तु यः करोति ममाचर्चनम् ॥१५॥  
 तेनाचर्चितोऽहं सततं युगानामेकसप्तिः । किमचिर्तिर्लिङ्गशतैर्विष्णुभक्तिविवर्जितैः ॥१६॥  
 सालग्रामशिलाबिम्बं नार्चितं यदि पुत्रक । अनर्ह मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥१७॥  
 सालग्रामशिलालालनं सर्वं याति पवित्राम् । यो हि माहेश्वरो भूत्वा वैष्णवं लिङ्गमुत्तमम् ॥१८॥  
 द्वैष्टि वै याति नरकं यावदिन्द्राश्चतुर्दश । सकृदध्यर्चिते विष्णौ सालग्रामसमुद्घवे ॥१९॥  
 मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा नूनं सांख्येन वर्जिताः । मल्लिङ्गैः कोटिभिर्दृष्टेर्तकलं पूजितैस्तु तैः ॥२०॥

सालग्रामशिलायां तु एकेनापीहं तद्वेत् । तस्माद्दक्षत्या च मद्भक्तैः प्रीत्यर्थं मम पुत्रक ॥२१॥  
 कर्तव्यं सततं भक्त्या सालग्रामशिलार्चनम् । सालग्रामशिलास्तुपी यत्र तिष्ठति केशवः ॥२२॥  
 तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश । सालग्रामशिलाग्रे तु सकृतिप्रणेन तर्पिताः ॥२३॥  
 वसन्ति पितरस्तस्य न संख्या तत्र विद्यते । प्रमाणामस्ति सर्वस्य सुकृतस्य हि पुत्रक ॥२४॥  
 फलं प्रमाणहीनं तु सालग्रामशिलार्चने । यो ददाति शिलां विष्णोः सालग्रामसमुद्भवाम् ॥२५॥  
 विग्राय विष्णुभक्त्या तेनेष्टं बहुभिर्मखैः । मानुष्ये दुर्लभे लोके सालग्रामशिला नरैः ॥२६॥  
 प्राप्यते न विना पुण्यैः कलिकाले विशेषतः । स धन्यः पुरुषो लोके सफलं तस्य जीवितम् ॥२७॥  
 सालग्रामशिला शुद्धा गृहे यस्य च पूजिता । सत्रियम्बेन्द्रियग्रामं सालग्रामशिलार्चनम् ॥२८॥  
 यः कुर्यान्मानवो भक्त्या स याति परमं पदम् । भक्त्या वा यदि वाभक्त्या यः करोति स पुण्यभाक् ॥२९॥  
 द्वेषेणापि च लोभेन दम्भेन कपटेन वा । सालग्रामोद्भवं देवं दृष्ट्वा पापात्ममुच्यते ॥३०॥  
 अशुचिर्वा दुराचारः सत्यशौचविवर्जितः । सालग्रामशिलां स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत् ॥३१॥  
 तिलप्रस्थशतं भक्त्या यो ददाति दिने दिने । तत्कलं स समाप्नोति सालग्रामशिलार्चने ॥३२॥  
 पत्रं पूष्यं फलं मूलं तोयं दूर्वक्षताः सुत । जायते मेरुणा तुल्यं सालग्रामशिलार्पितम् ॥३३॥  
 विधिहीनोऽपि यः कुर्यात्क्लियामन्त्रविवर्जितः । चक्रपूजामवाप्नोति सम्यक् शास्त्रोदितं फलम् ॥३४॥ इति।

स्कन्दपुराण में शिव-स्कन्द संवाद में भगवान् शिव ने कहा कि हे महासेन! मेरे सहित सचराचर तीनों लोक शालग्राम शिला में लीन रहते हैं। इसके दर्शन, प्रणाम, स्थापन और पूजन से करोड़ों गोदान के फल के समान पुण्य प्राप्त होता है। हे पुत्र! भक्ति-भावरहित कामासक्त भी सालग्राम शिला का पूजन कर अच्युत के समान हो जाता है। सालग्राम शिला मूर्ति के स्मरण, कीर्तन, ध्यान, पूजन एवं नमस्कार करने से करोड़ों हन्त्या के पापों का नाश होता है। शालग्राम शिला को देखते ही अनेक पाप वैसे ही भाग जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर मुग्गण भाग जाते हैं। शालग्राम के अर्चन में जिस मनुष्य का मन लगा रहता है, उसके पाप सूर्योदय के बाद अन्धकार के समान भाग जाते हैं। कामासक्त होकर या क्रुद्ध होकर भक्ति से या भक्ति के बिना भी सालग्राम का पूजन करने से मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है। शालग्राम शिला के आगे जो विष्णु की कथा सुनता है, उसे न तो यमराज का भय होता है और न ही जन्म-मृत्यु का भय होता है। कलियुग में भक्तिपरायण होकर जो मनुष्य गीत वांध स्तोत्र से सालग्राम का अर्चन करता है, वह एक हजार करोड़ कल्पों तक विष्णुलोक में रहता है। जो मनुष्य भाव से ही सालग्राम को नमस्कार करता है। वह मेरा भक्त संसार से किसी से भयभीत नहीं होता। मेरी भक्तिवल से गर्वित होकर जो मेरे प्रभु विष्णु को प्रणाम नहीं करता, जो वासुदेव को नहीं जानता, वह मेरा भक्त भी पापी होता है। हे पुत्र! मैं शालग्राम में सदा निवास करता हूँ, क्योंकि हरि ने तुष्ट होकर अपना नाम और स्थान मुझे दिया है। एक हजार करोड़ कमलों से मेरी पूजा करने का जो फल होता है, उससे करोड़ गुणा अधिक फल सालग्राम शिला के अर्चन से मिलता है। जो पृथ्वी पर सालग्राम की पूजा नहीं करता, उसके मन्त्र से पूजा के योग्य मैं नहीं हूँ और न ही उसके नमस्कार के योग्य हूँ। जो संसार में सालग्राम का पूजन नहीं करता और सालग्राम के सामने मेरी पूजा करता है, उसकी अर्चना मैं स्वीकार नहीं करता। इकहत्तर युगों तक लगातार लिङ्गार्चन का फल भी उसे नहीं मिलता, जो विष्णु की भक्ति से रहित होता है। जो सालग्राम का अर्चन नहीं करता, उसके नैवेद्य पत्र, पुण्य, फल मेरे पूजा के योग्य नहीं होते। सालग्राम शिला के स्पर्श से सब कुछ पवित्र हो जाता है। जो शिवभक्त होकर भी उत्तम वैष्णव लिङ्ग सालग्राम से द्वेष करता है, वह इन्द्र के मन्त्रन्तर अर्थात् एक कल्प तक नरक में रहता है, सालग्राम में जो विष्णु की पूजा करता है, उसे सांख्य से अप्राप्त मोक्ष भी प्राप्त होता है। मेरे एक करोड़ लिङ्गों के पूजन का जो फल है, वह फल एक ही सालग्राम के पूजा से मिल जाता है। इसलिये मेरे भक्तों को मेरी प्रसन्नता के लिये सदा-सर्वदा शालग्राम का पूजन करना चाहिये। शालग्राम स्वरूप केशव जहाँ रहते हैं, वहाँ सुर-असुर, यक्ष और चौदहों भुवनों का वास होता है। सालग्राम के आगे पिण्डदान और तर्पण करने से पितर असंख्य काल तक तृप्त रहते हैं। सभी कर्मों के प्रमाण होते हैं; किन्तु

सालग्राम-अर्चन प्रमाणहीन है। जो सालग्राम शिला को विष्णुभक्त विप्र को दान देता है, उसे बहुत से यज्ञों को करने का फल मिलता है। कलिकाल में दुर्लभ शालग्रामशिला मनुष्यों को बिना पुण्य के नहीं मिलती। संसार में वह पुरुष धन्य है, उसका जीवन सफल है, जिसके शुद्ध घर में सालग्राम की पूजा होती है। जो संयतेन्द्रिय मनुष्य भक्ति से सालग्राम का अर्चन करता है, वह परम पद प्राप्त करता है। भक्ति या बिना भक्ति के भी जो शालग्राम की पूजा करता है, वह पुण्यवान होता है। द्वेष से, लोभ से, दम्भ से या कपट से जो सालग्राम देव को देखता है, वह भी यापों से मुक्त हो जाता है। अपवित्र, दुराचारी, सत्य-शौच से रहित भी यदि सालग्राम को देखता है तो वह पवित्र हो जाता है। सौ प्रस्थ तिल का प्रतिदिन दान करने से जो फल मिलता है, वह फल सालग्राम के पूजन मात्र से ही मिल जाता है। शालग्राम शिला पर अपित पत्र, पुस्त्र, फल, मूल, जल, दूब, अक्षत मेरु गिरि के समान हो जाते हैं। क्रिया-मन्त्रहित एवं विधिविहीन भी यदि सालग्राम का पूजन करता है, तो उसे शास्त्रकथित फल प्राप्त होते हैं।

#### तत्रैवान्यत्र—

स्कन्धे कृत्वा तु योऽध्वानं वहते शैलनायकम् । तेनोऽ तु भवेत्सर्वं त्रैलोक्यं सच्चराचरं ॥१॥  
 ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किञ्चित्कुरुते नरः । तत्सर्वं निर्दहत्याशु सालग्रामशिलार्चनम् ॥२॥  
 न पूजनं न मन्त्राश्च न जपो न च भावना । न स्तुतिनैपस्कराश्च सालग्रामशिलार्चने ॥३॥  
 सालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं योजनत्रयम् । तत्र दानं च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥४॥  
 सालग्रामशिलायां तु यः श्राद्धं कुरुते नरः । पितरस्तस्य तिष्ठन्ति वृपाः कल्पशतं दिवि ॥५॥  
 सालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः । कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं नरः ॥६॥  
 शालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्वानमुत्तमम् । भूचक्रं तेन दत्तं स्यात्शैलवनकाननम् ॥७॥ इति।

#### गरुडपुराणे—

तिष्ठन्ति नित्यं पितरो मनुष्यास्तीर्थग्निगङ्गागयपुष्कराणि ।  
 यज्ञाश्रमेधाद्यापि पुण्यशैलाश्रकाङ्किता यस्य वसन्ति गोहे ॥१॥ इति।

#### पादे—

सालग्रामशिलायां तु यैनरैः पूजितो हरिः । संशोध्य तेषां पापानि मुक्तये बुद्धिदा भवेत् ॥१॥  
 कार्तिके मथुरायां तु सारूप्यं दृश्यते हरिः । सालग्रामशिलायां वै पितृनुदिश्य पूजितः ॥२॥  
 कृष्णः समुद्धरेत्स्य पितृनेतान् सलोकताम् । इति।

#### बृहत्त्रादीये—

सालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः । न बाधन्ते ऽसुरासतत्र भूतवेतालकादयः ॥१॥  
 सालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं तत्पोवनम् । शतं वा पूजितं भक्त्या तदा स्यादधिकं फलम् ॥२॥ इति।

स्कन्दपुराण में ही कहा गया है कि जो सालग्राम को कन्धे पर चढ़ाकर ढोता है, वह सच्चराचर तीनों लोकों को ढोता है। ब्रह्महत्या जो भी पाप मनुष्य से होते हैं। वे सभी सालग्राम के अर्चन से नष्ट हो जाते हैं। सालग्राम के अर्चन में पूजा, मन्त्र, जप, भावना, स्तुति और उपचारों की आवश्यकता नहीं होती। सालग्राम शिला जहाँ रहती है, उसके चारों ओर तीन योजन तक तीर्थ होता है। वहाँ पर किये गये दान-हवन सभी कोटि गुणित हो जाते हैं। सालग्राम शिला में जो श्राद्ध करता है, उसके पितर सौ कल्पों तक तृप्त रहते हैं। सालग्राम के चारों ओर एक कोश तक के क्षेत्र में कोइ भी यदि मरता है तो वह वैकुण्ठ में जाता है। शालग्राम शिला का जो दान करता है, उसे पहाड़-वन-काननसहित भूखण्ड-दान का फल प्राप्त होता है। गरुडपुराण में कहा गया है कि जिस घर में चक्रांकित सालग्राम रहता है, वहाँ पर नित्य पितर, मनुष्य-तीर्थ, अग्नि गङ्गागया, पुष्कर, यज्ञ, अवस्थेध यज्ञ और पवित्र पर्वतों का वास होता है। पद्मपुराण में कहा गया है कि शालग्राम शिला में जो विष्णु का पूजन करता है, उसके पापों को सोखकर सालग्राम मुक्ति की बुद्धि देता है। कार्तिक में मथुरा में सालग्राम में हरि का सारूप्य श्रीविद्या० ३-५

रहता है। वहाँ सालग्राम में पितरों के उद्देश्य से पूजा करने पर कृष्ण उनका उद्धार करके अपने लोक में उन्हें वास देते हैं। वृहत्नारदीय में कहा गया है कि सालग्राम शिला के रूप में जहाँ केशव रहते हैं, वहाँ असुर-भूत-वेताल आदि की बाधा नहीं होती। सालग्राम शिला जहाँ होती है, वहाँ तीर्थ है, वहीं तपोवन है। भक्ति से सौ शालग्राम की पूजा करने पर उससे भी अधिक फल मिलता है।

#### सालग्रामबाहुल्ये फलविशेषः

अथ तासां बाहुल्ये फलविशेषः पाद्म—

सालग्रामा युगा: पूज्या युगेषु द्वितयं न हि । अयुगमा नैव पूज्यन्ते अयुगमेष्वेक एव हि ॥३॥

शिला द्वादश भौ वैश्य सालग्रामसमुद्धवाः । विधिवत् पूजिता येन तस्य पुण्यं वदामि ते ॥४॥

कोटिद्वादशलिङ्गैस्तु पूजितैः स्वर्णपङ्कजैः । यत्स्यादद्वादशकल्पैस्तु दिनेनैकेन तद्वेत् ॥५॥

यः पुनः पूजयेद्बक्त्या सालग्रामशिलाशतम् । तत्कलं नैव शक्तोऽहं वकुं कल्पशतैरपि ॥६॥

इत्याद्यास्तां विस्तरः।

शालग्राम की बहुलता में फलविशेष—पद्म पुराण के अनुसार एक जोड़ी सालग्राम की पूजा करनी चाहिये। दो जोड़ी का पूजन नहीं करना चाहिये। अयुगम सालग्राम की पूजा नहीं करनी चाहिये। अयुगमों में एक ही सालग्राम की पूजा करे। बारह सालग्रामों की विधिवत् पूजा से जो फल मिलता है, उसे कहता हूँ। बारह करोड़ लिङ्गों का स्वर्णकमल से बारह कल्पों तक पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है, वह एक ही दिन में बारह सालग्राम के पूजन से मिलता है। जो भक्तिपूर्वक एक सौ सालग्रामों की पूजा करता है, उसके फल का वर्णन मैं सौ कल्पों में भी नहीं कर सकता।

#### त्रावाहनाद्यवश्यकार्यत्वम्

अत्र केचित् सालग्रामे विष्णोर्नवाहनं कार्यमिति वदन्ति, तत्र प्रमाणं चिन्त्यं वस्तुतस्तु स्कन्दपुराणादिदर्शनादा-वाहनमवश्यं कार्यमिति प्रतीयते। यथा स्कन्दपुराणे—

विप्रः पूर्वं निजे देहे स्मृत्युक्तेन न्यसेद्बृद्धः । ततस्तु प्रतिमायां च सालग्रामे विशेषतः ॥१॥

क्रमेण च ततः पश्चाल्कुर्यादावाहनादिकम् । आवाहयेच्च पुरतो ध्यानसेव्यं द्विजोत्तमः ॥२॥ इति।

अत एवावाहनाद्युद्घासनान्मधिधायोक्तं बौधायनेन—‘सालग्रामे प्रतिमास्वग्नावप्यावाहनदिविसर्जन’मिति। त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—‘सालग्राम’ इत्युपक्रम्य विसर्जनात्मा पूजोक्ता। अत्र—‘सालग्रामशिलायां तु प्रतिष्ठां नैव कारयेत्’ इति प्रतिष्ठामात्रनिषेधादावाहनमावश्यकं विष्णोरन्यदेवतानां चाविरुद्धमिति। ‘आवाह्याचर्दिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत्’ इति भागवतेऽपि भगवता स्वयमभिधानात्। आदिपदेन मन्त्रादयो गृह्णन्ते। तथा मेरुतन्त्रेऽपि सालग्रामशिलालक्षणे—

विष्णोर्भेदा इमे प्रोक्ता अत्रैवावाहयेद्बरिम् । विसर्जयेत् पूजान्ते प्रतिष्ठा नात्र कारयेत् ॥१॥ इति।

सालग्राम में विष्णु का आवाहन—कुछ लोगों के मत से शालग्राम में विष्णु का आवाहन नहीं करना चाहिये; जबकि स्कन्दपुराण आदि के अनुसार आवाहन अवश्य करना चाहिये; जैसा कि कहा भी है कि विप्र पहले अपने देह में सृति के अनुसार न्यास करे। तब प्रतिमा में या विशेषतः सालग्राम में न्यास करके आवाहनादि कर्म करे। तदनन्तर अपने सामने आवाहन करके ध्यान करे। त्रैलोक्यमोहन तन्त्र में भी कहा गया है कि सालग्राम में आवाहन से विसर्जन तक की क्रिया करे; किन्तु प्रतिष्ठा न करे। भागवत में स्वयं भगवान् ने कहा है कि पूजन आदि में आवाहन, स्थापन एवं अंगन्यास करके मेरा पूजन करे। मेरुतन्त्र में भी कहा है कि शालग्राम विष्णु के ही भेद कहे गये हैं; इसमें विष्णु का आवाहन एवं पूजा के अन्त में विसर्जन अवश्य करना चाहिये। केवल प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये।

आवाहनस्वरूप-तत्पर्यायनिर्णयः

आवाहनस्वरूपमुक्तं सिद्धान्तशेखरे—

स्वत एव प्रपूर्णस्य तत्त्वस्येवार्चनादिषु । सादरं

सम्मुखीभावस्तदावाहनमिष्यते ॥१॥ इति।

तत्पर्यायमाह शारदातिलके—

मूलमन्त्रं समुच्चार्य सुषुमावर्तमना सुधीः । आनीय तेजः स्वस्थानाश्रासिकारन्त्रनिर्गतम् ॥१॥

करस्थमातृकाभ्योजे चैतन्यं पुष्ट्यसञ्चये । संयोज्य ब्रह्मरस्येण मूर्त्वावाहयेत्सुधीः ॥२॥ इति।

सुषुमावर्तमना ब्रह्मरस्येण दक्षिणासारन्त्रनिर्गतमिति। गरुडपुराणे—‘आगच्छेति प्रयोगेण मूलमन्त्रेण शङ्कर’।

आवाहनं प्रकर्तव्यमिति। नृसिंहपुराणे—‘आगच्छ नरसिंहे’ति। तत्त्वान्तरे—

आवाहनं स्थापनं च सत्रिधापनमेव च । सत्रिरोधनमित्युक्तं सम्मुखीकरणं ततः ॥१॥

अथावगुण्ठनं प्रोक्तं सकलीकरणं ततः । अमृतीकरणं चैव परमीकरणं तथा ॥२॥

विधाय स्वस्वमुद्राभिः प्राणस्थापनमाचरेत् । इति।

आवाहन का स्वरूप—सिद्धान्तशेखर में कहा गया है कि अर्चनादि में तत्त्वों के समान सालग्राम स्वतः ही परिपूर्ण होते हैं। इनमें आदरसहित सम्मुखीभाव की भावना करना ही इनका आवाहन होता है।

शारदातिलक में आवाहन का पर्याय बताते हुये कहा गया है कि मूल मन्त्र का उच्चारण करके साधक सुषुमा मार्ग से प्रवहमान नासापुट से तेज को अपने हाथ के चैतन्य पुष्ट संचय में नियुक्त करे। उसे ब्रह्मरस्य से जोड़कर मूर्ति में आवाहन करे। गरुडपुराण में कहा गया है कि मूल मन्त्र के साथ ‘आगच्छ’ का प्रयोग कर आवाहन करे। नृसिंह पुराण में भी इसी का अनुमोदन किया गया है।

तत्त्वान्तर में कहा गया है कि तत्त्व मुद्राओं को दिखाते हुये आवाहन, स्थापन, सत्रिधापन, सत्रिरोधन, सम्मुखीकरण, अवगुण्ठन, सकलीकरण, अमृतीकरण, परमीकरण करके प्राणप्रतिष्ठा करे।

सकलीकरणस्वरूपम्

सकलीकरणस्वरूपं च सिद्धान्तशेखरे—

अविभिन्नस्वभावानां यदाभिन्नप्रयोजनम् । अङ्गानामङ्गिना सार्थं सकलीकरणं त्विदम् ॥१॥ इति।

सकलीकरण—सिद्धान्तशेखर में कहा गया है कि अविभिन्न स्वभावों का जो एक प्रयोजन हो उसका अङ्गों को अंगियों को साथ करना ही सकलीकरण कहलाता है।

देवशुद्धिः

श्रीकुलार्णवे—

पीठे देवं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित् । मूलमन्त्रेण दीपिन्या मालिन्याध्योदकेन च ॥१॥

त्रिवारं प्रोक्षयेद्विद्वान् देवशुद्धिरियं प्रिये । पञ्चशुद्धिं विधायेत्यं पश्चाद्यजनमारभेत् ॥२॥

सा पूजा सफला देवि चान्यथा निष्फला भवेत् । इति।

श्रीकुलार्णव में कहा गया है कि पीठ में देवता को प्रतिष्ठा करके मन्त्रज्ञ सकलीकरण करे। मूल मन्त्र दीपिनी मालिनी मन्त्र से अभिमन्त्रित अर्ध्यजल से तीन बार प्रोक्षण करे। इससे देवशुद्धि होती है। इस प्रकार पञ्चशुद्धि करके पूजन का प्रारम्भ करे। यही पूजा सफल होती है; अन्यथा निष्फल होती है।

तथा—

वाग्भवं वदयुग्माने वाग्वादिनि च वाग्भवम् । कामराजं ततः क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदयेति च ॥१॥

महाक्षोभं कुरुयुगं कामराजमतः परम् । तार्तीयं मोक्षशब्दान्ते कुरुयुगमं वदेत्ततः ॥२॥  
स्यात् प्रासादपराम्बान्ते सप्तप्रिंशद्विरक्षरैः । दीपिनीमनुरित्युक्तः सर्वसिद्धिकरः प्रिये ॥३॥ इति।

चकारात् कुरुयुग्मान्ते तार्तीयं तदनु पराप्रासादबीजमित्यर्थः । सप्तप्रिंशदक्षर इत्युक्तेः । वाग्भवकामराज-  
तार्तीया बालाविद्याया एव, सा त्वये वक्ष्यते। पराप्रासादबीजं तु पुरस्तात्रयोगे अस्यैव मन्त्रस्यान्ते द्रष्टव्यम्। तथा—  
सकलीकृत्य तत्प्राणांस्तदीयानीन्द्रियाणि च । प्रतिष्ठाप्यार्थयेद् देवमान्यथा निष्फलं भवेत् ॥१॥ इति।

अत्र केचित्—अस्मिन्नाणप्रतिष्ठां तु प्रतिमापूजनादृते। न क्वचित्तु बुधः कुर्यात्कृत्वा मृत्युमवाप्नयात्’  
इत्युत्तरतन्त्रवचनात्राणप्रतिष्ठा न कार्येत्याहुः । तत्र तस्य वचनस्यावाहनादिरहितस्य स्थणिडलादेः पूजनविषयत्वात्। अत  
एवोक्तं तत्रैव—‘प्रतिमापूजनादृते’ इति। प्रतिमा मूर्तिस्तस्यां मन्त्रमय्यामपि तथात्वात्, अन्यथा कथं सकलीकरणमिति।

उपर्युक्त श्लोकों का उद्घार करने पर सर्वसिद्धिकारक सैतीस अक्षरों का दीपिनी मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट है—ऐं वद वद  
वावादिनि ऐं क्लीं क्लित्रे क्लर्दिनि क्ललेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौ मोक्षं कुरु कुरु हसौं सहौं।

सकलीकरण के बाद उसमें प्राण और इन्द्रियों की प्रतिष्ठा करके देवता का अर्चन करने पर ही अर्चन सफल होता है; अन्यथा निष्फल होता है। कहीं-कहीं पर उत्तरतन्त्र के अनुसार प्राणप्रतिष्ठा का निषेध कहा गया है; किन्तु वह उचित नहीं है, क्योंकि वह वचन आवाहनादि से रहित स्थणिडल आदि में पूजा के सन्दर्भ में है।

#### मुद्राशब्दनिरुक्तिः

उत्तरतन्त्रे—‘मुद्रां प्रदश्य विधिवदुपचारान्त्रकल्पयेत्’। मुद्रास्तत्कल्पोक्तास्तास्त्वये वक्ष्यन्ते। कुलमूला-  
वतारे—

मुदं स्वरूपलाभाख्यां देहद्वारेरेण वात्मनः । या हृष्ययन्त्ययलेन मुद्रास्ताः परिकीर्तिः ॥१॥

मोचयन्ति ग्रहादिभ्यो पापौदं द्रावयन्ति च । मोचनं द्रावणं यस्मान्मुद्रा शास्त्रेषु वर्णिता ॥२॥

इति मुद्राशब्दनिरुक्तिः।

मुद्रा—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि विधिवत् मुद्राओं को प्रदर्शित कर उपचारों को समर्पित करे। मुद्रा के विषय में कुलमूलावतार में कहा गया है कि आत्मा को स्वरूपलाभ के लिये शरीर के द्वारा जो सुगमता से अर्पित किया जाता है, उसे मुद्रा कहते हैं। प्रसन्नता देने से इसका नाम मुद्रा है। यह दुष्ट प्रहों से छुटकारा दिलाती है और पापसमूह का नाश करती है; इस प्रकार मोचन और द्रावण करने से इसका नाम मुद्रा है।

#### प्रपञ्चसारे—

आसने स्वागते चार्ध्ये पाद्ये साचमनीयके । मधुपर्काचमस्नानवसनाभरणान्यपि ॥१॥

सुगन्धसुमनोधूपदीपनैवेद्यचन्दनम् । प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश ॥२॥

अर्ध्यपाद्ये साचमने मधुपर्काचमान्यपि । गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ॥३॥

गन्धादयो निवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिका । सपर्याख्यविधाः प्रोक्तास्तासामेकतमां श्रेयेत् ॥४॥ इति।

अत्र पञ्चोपचारपूजापक्षे अर्ध्यादिस्थापनं नास्ति प्रयोजनाभावात्।

उपचारों के भेद—प्रपञ्चसार में कहा गया है कि आसन, स्वागत, अर्ध्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, स्नान, वसन, आभूषण, गन्ध-पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य, चन्दन—ये सोलह पूजन के उपचार हैं। अर्ध्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य—ये दश भी उपचार हैं। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य—ये पाँच भी उपचार हैं। इस प्रकार सपर्या तीन प्रकार की होती है—षोडशोपचारिका, दशोपचारिका एवं पञ्चोपचारिका। उनमें से किसी एक का आश्रयण कर अर्चन करना चाहिये। पञ्चोपचार पूजा में निष्प्रयोजन होने अर्ध्यादि स्थापन नहीं किया जाता।

## उपचारनिवेदनप्रकारः

भैरवीतत्रे—‘एकैकस्यां ततो मन्त्री प्रणाम्य तु निवेदयेत्। तत्रिवेदनप्रकारमाह नारदपञ्चरात्रे—  
प्रणवान्ते त्रिधा कृत्वा प्राणं व्योमविभूषितम्। इदमिदमिदं पश्चात्पदं दद्यात्पदक्षरम्॥१॥  
गृहाण च ततः स्वाहा मन्त्रः पञ्चदशाक्षरः। योज्यः सर्वोपचारेषु पाद्यादिषु सदैव हि ॥२॥ इति।

प्राणं हकारः। व्योम बिन्दुः। अत्र तृतीयहकारोपरिस्थितबिन्दोरिकारेण सह सन्धिः कार्यस्तदा तु भवति।  
उत्तरतत्रे—

मूलनैवासनं दद्यात् तेन स्वागतमीरयेत्। ततोऽर्थं मूर्धिं दद्याच्च स्वाहामन्त्रेण मन्त्रवित्॥१॥  
पादाब्जे देवतायास्तु हृदा पाद्यं प्रकल्पयेत्। दद्यादाचमनं वक्त्रे देवतायाः सुधाणुना॥२॥

सुधामन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्कं मुखाम्बुजे। इति।

अत्रार्थाचमनीयमधुपर्कमुख्येष्वपि शूद्रैर्मः पदमेव स्वाहादिस्थाने प्रयोक्तव्यं प्रागुक्तयुक्तेः।

उपचार-निवेदन प्रकार—भैरवी तत्र में कहा गया है कि देवता को प्रणाम करते हुये एक-एक उपचारों को उन्हें निवेदित करे। निवेदन मन्त्र नारद पञ्चरात्र के उपर्युक्त दो श्लोकों का उद्धार करने पर पन्द्रह अक्षर का इस प्रकार बनता है—  
‘ॐ हं इदं अर्थं समर्पयामि गृहं स्वाहा’। इसी मन्त्र से क्रमशः उपचारों को समर्पित करना चाहिये।

उत्तरतत्र में कहा गया है कि मूलमन्त्र से आसन प्रदान करे। तब स्वागत करे। तब स्वाहा मन्त्र से मूर्धा में अर्थं प्रदान करे। देवता के चरण-कमलों में पाद का समर्पण नमः से करे। मुख में सुधाबिन्दु से आचमन प्रदान करे। एवं मुखकमल में ही सुधामन्त्र से मधुपर्क प्रदान करे। शूद्र अर्थं, आचमनीय एवं मधुपर्क का समर्पण स्वाहा के बदले ‘नमः’ पद से करे।

द्विजानां वैदिकपूर्वकमेव तात्रिकपूजा

अथात्र—‘वैदिको मिश्रितो वापि विप्रादीनां विधीयते। तत्रिको विप्रभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्तिः।’ इति पद्यापुराणवचनाद् ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यगणेशादिपञ्चदेवतानां तत्तद्वैदिकमन्त्रेण प्रथमं पूजां कृत्वा तत्सततात्रिकमन्त्रेण पूजा कार्या। केवलतात्रिकयजनस्य शूद्रविषयत्वादुक्तवचनात्।

कदाचिदपि न त्याज्यो वेदमार्गो द्विजैः सदा। वेदच्युतानां विप्रत्वं देवत्वं चापि दुर्लभम्॥१॥

वेदः कर्तुं तु नो शक्यस्तत्राणि तु युगे युगे। कल्पं सम्भवैर्विप्रैयज्ञामा कीर्तिः सदा॥२॥

कलिना प्रेरिता विप्रास्तत्त्वपथगामिनः। कामलोभादिभिर्ग्रस्ता ब्राह्मण्येन विदारिताः॥३॥

म्लेच्छास्ते ते भविष्यन्ति क्षीणपुण्याश्र रौरवे। पतिष्ठन्तीति विज्ञाय न वै वैदिकमुत्सज्जेत्॥४॥ इति।

पद्यापुराण के अनुसार वैदिक अथवा मिश्रित पूजा ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों को करनी चाहिये। तत्रिक पूजा विप्रभक्त शूद्र भी कर सकता है। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य गणेशादि पञ्च देवता का पूजन प्रथमतः वैदिक मन्त्रों से करे, तब तत्रिक मन्त्र से पूजा करे। केवल तात्रिक पूजन शूद्र के लिये कर्तव्य होता है।

द्विजों को वैदिक मार्ग का त्याग कभी नहीं करना चाहिये। वैदिक मार्ग के त्याग से विप्रत्व और देवत्व की प्राप्ति दुर्लभ होती है। वैदिक कर्म करने में असमर्थ होकर युग-युग से तात्रिक कर्म करने के कारण उत्पन्न पापों से विप्र प्रसिद्ध होते हैं। कलि से प्रेरित विप्र तात्रिक मार्ग का अनुसरण करते हैं और वे काम, लोभ से ग्रस्त होकर अपने ब्राह्मणत्व का नाश करते हैं। इस प्रकार वे म्लेच्छ होकर अपने पुण्य के नष्ट होने पर रौरव नरक में जाते हैं। अतः विप्र को वैदिक मार्ग का त्याग नहीं करना चाहिये।

गणेशादिपञ्चदेवतानां वैदिकमन्त्राः

तत्र वैदिकमन्त्रास्तु—‘गणानां त्वा’ इति गणपतेः। ‘गौरीर्माया’ इति भुवनेश्वर्यादिगौरीभेदानाम्। ‘यद्वाक्’

इति भारत्याः। श्रीसूक्तं लक्ष्याः। 'जातवेदसे सुनवाम्' इति दुर्गायाः। विष्णोः पुरुषसूक्तम्। रवेः 'आकृष्णोन्' इति। शिवस्य 'नमः शम्भवे' इति 'त्र्यम्बकं यजामहे' इति वा। गणानां त्वेति गृत्समदो गणपतिजगतीः। गौरीर्मिमायेति जगती दीर्घतमाः। आकृष्णोनेति हिरण्यस्तूपः सविता त्रिष्टुप्।

गणेश आदि देवताओं के वैदिक मन्त्र इस प्रकार हैं—गणपति—गणानां त्वा। भुवनेश्वरी आदि गौरीभेद—'गौरीमाया'। भारती—यद्याक्। लक्ष्मी—श्रीसूक्त। दुर्गा—जातवेदसे सुनवाम्। विष्णु—पुरुषसूक्त। सूर्य—आकृष्णोन्। शिव—'नमः शम्भवे' या 'त्र्यम्बकं यजामहे'। गणेश मन्त्र के ऋषि गृत्समद और छन्द जगती है। गौरी मन्त्र के ऋषि दीर्घतमा और छन्द जगती है। सूर्य मन्त्र के ऋषि हिरण्यस्तूप और छन्द त्रिष्टुप् है।

### आसनाद्युपचारनिर्णयः

अथोपचाराः, तत्रादावासनानि—

देवस्य वामभागे तु दद्यान्मूलेन चासनम्। पौष्यं दारुमयं वाञ्छं चार्मकौशेयतैजसम् ॥१॥  
षड्विधमासनं प्रोक्तम् .....। इति।

उत्तरतन्त्रे—

पौष्यं पुष्पादिरचितं कुशसूत्रादिसंयुतम्। अतिप्रीतिकरं देव्या ममाप्यन्यस्य भैरव ॥१॥  
यज्ञदारुसमुद्भूतमासनं चाव्रणं शुभम्। अन्यदारुभवं चापि दद्यादासनमुत्तमम् ॥२॥  
सकीटकक्षीरयुतं दारुसारविवर्जितम्। चैत्यशमशानसम्भूतं वर्जयित्वा विभीतकम् ॥३॥ इति।

चैत्यो ग्रामप्रसिद्धेतुभूतो महान् वृक्षः। दारुमयासने विशेषमाह रुद्रयामले—

शाणिडल्यभद्रसारस्य चासनं हस्तमात्रकम्। सप्ताङ्गुलोच्छ्रुतं दद्याद्विष्टरं वा विचक्षणः ॥१॥

शाणिडल्यो बिल्वः। 'बिल्वे शाणिडल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि' इत्यमरः। भद्रसारश्चन्दनः। 'भद्रसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रिया' मित्यमरः। विष्टरो दर्भमुष्टिः। सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषितम्। विष्टरं सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम्। इति। यद्या विष्टरशब्दस्त्वासनमात्रवाची 'विष्टरे विटपे दर्भमुष्टौ पीठाद्यमासन' मिति हि कोशः। उत्तरतन्त्रे—

कोशजं बाल्कलं शाणवस्त्रमेतदद्वयं स्मृतम्। रोमजं कम्बलं चैव बादरं च चतुष्टयम् ॥१॥  
वास्त्रेषु कम्बलं श्रेष्ठमासनं देवतुष्टये ।

वास्त्रमासनचतुष्टयमित्यर्थः। बादरं कार्पासम्। 'कार्पासं बादरं च त' दिति विश्वप्रकाशकोशाच्च। तथा—सिंहव्याघ्रतरक्षुणां छागस्य महिषस्य च। गजानां च तुरङ्गाणां कृष्णासारस्य चर्मणः ॥१॥

राङ्गवं रङ्गुनामा मृगः काश्मीरदेशे प्रसिद्धः तद्रोमजं 'पामरी' इति लोके प्रसिद्धा कम्बलविशेषः। तथा—

यच्चासनं कुशमयं तदासनमनुत्तमम्। योगपीठस्य सदृशमासनं कौशमुच्यते ॥१॥ इति।

तथा—

सर्वेषां तैजसानां चाप्यासनं श्रेष्ठमुच्यते। वर्जयित्वा लोहमयं कांस्यं सीसकमेव च ॥१॥ इति।

आसन आदि उपचार—देवता के वाम भाग में मूल मन्त्र से आसन प्रदान करे। यह आसन पुष्प का, लकड़ी का, वस्त्र का, चर्म का, कुश का या तैजस के भेद से छः प्रकार का होता है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि फूलों से निर्मित पौष्य आसन जो कि कुश-सूत्रादि संयुक्त होती है, देवी, शिव और अन्य देवताओं को अतिशय प्रीतिकर होता है। छिद्ररहित यशीय लकड़ी का आसन शुभ होता है। अन्य काष्ठों से निर्मित उत्तम आसन भी प्रदान करना चाहिये। दूध वाले वृक्षों की लकड़ी

का अथवा जिसमें धुन लगा हो उस लकड़ी से निर्मित आसन बर्जित है। मन्दिर और श्मशान में उत्पन्न लिसोड़े का आसन भी बर्जित है।

लकड़ी के आसन के सन्दर्भ में रुद्रयामल में कहा गया है कि बेल एवं चन्दन का एक हाथ लम्बा-चौड़ा एवं सात अंगुल ऊँचा आसन देना चाहिये। अथवा एक मुट्ठी कुशा से निर्मित आसन प्रदान करना चाहिये।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि रेशम से बना या वल्कल-निर्मित लाल रंग का आसन, रेयें वाले कम्बल से निर्मित अथवा कार्पासूत्रों से निर्मित इस प्रकार चार प्रकार के वस्त्रनिर्मित आसन होते हैं। इनमें कम्बल का आसन देव तुष्टि के लिये श्रेष्ठ होता है।

सिंह, व्याघ्र, लकड़बग्धा, बकरा, भैंस, हाथी, घोड़ा, काला हरिण के चमड़े का आसन एवं पामरी कम्बल का आसन तथा चन्दन लकड़ी का आसन श्रेष्ठ होता है।

कुशनिर्मित आसन योगीठ के लिये उत्तम होता है। लोहा, कांसा एवं सीसे को छोड़कर शेष समस्त तैजस आसन श्रेष्ठ होता है।

#### पादाचमनयोः समयाभिधानम्

अतः परमर्धदानं, तच्च देवस्य शिरोर्हणायैव शिरसि देयम्। न चैवं पित्रव्येणाव्याप्तिर्विप्रकरे दानादिति वाच्यं, तस्य पितृणां शिरोर्हणायैव तत्र दानादिति सोमशम्भुः—

आगताय तथार्चायां स्नातुमासनगाय च। पूजितागन्तुकामाय दद्यादर्थं विचक्षणः ॥१॥

आगते स्नानकाले च नैवैद्योपक्रमे तथा। पाद्यस्यापि समुद्दिष्टः समयस्त्रिविधो बुधैः ॥२॥

पादे च मधुपक्के च स्नाने वस्त्रोपवीतयोः। भोजने चाचमं दद्यात् ॥३॥ इति।

#### तूर्णायागे—

सुगन्ध्यतैलैरभ्यर्थं सुगन्ध्यामलकादिभिः। उद्वर्तनं विधायाथ तर्पयित्वाथ वारिणा ॥१॥

गन्धोदकैश्च मूलेन यथाशक्त्याभिषेचयेत्। महाभिषेकं सर्वत्र शङ्खैनैव प्रकल्पयेत् ॥२॥

सर्वमन्त्रे प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्याचमं विना। इति।

#### अब्जः शङ्खः। अगस्त्यः—

स्नानं पुरुषसूक्तेन शुद्धशङ्खोदकेन च। क्षीरदध्याज्यमधुभिः खण्डेन च पृथक्पृथक् ॥१॥

नारिकेलोदकेनापि तथा तालफलाम्बुना। गन्धद्रव्यैश्च मधुभिस्तथा गन्धोदकेन च ॥२॥

ऐक्षवेणोदकेनापि सकर्पूरादिगन्धिना। कदलीपनसाप्रोत्यजलेनापि सुगन्धिना ॥३॥

शतं सहस्रमयुतं शक्त्या वाप्यभिषेचयेत्। शङ्खं सम्पूज्य तेनैव सपुष्येण रघूतम् ॥४॥

सकृष्ट्यागुरुरुपैन् धूपयेदन्तरान्तरम्। ततः शुद्धजलैनैव स्नापयेत्तमनन्दधीः ॥५॥ इति।

अर्धदान—अर्थ देवता के शिर पर देना चाहिये। उसके देने के समय निर्धारण करते हुये। सोम शम्भु में कहा गया है कि आगत के लिये अर्चा में, स्नान में, आगन्तुक के पूजन में अर्थ देना चाहिये। आने पर स्नानकाल में और नैवैद्य समर्पण के समय पाद्य प्रदान करना चाहिये। पाद्य, मधुपक्क, स्नान, वस्त्र, उपवीत और भोजन के समय आचमन प्रदान करना चाहिये।

तूर्णायाग में कहा गया है कि सुगन्धित तेल का मर्दन करे। सुगन्धित आमले को उबटन लगाकर जल से तर्पण करे। गन्धोदक से मूल मन्त्र से अभिषेक करे। महाभिषेक शङ्ख से करे। शिव एवं सूर्य के अतिरिक्त सभी के अर्चन में शङ्ख प्रशस्त है।

अगस्त्य ने कहा है कि देवता का स्नान पुरुषसूक्त से शुद्ध शङ्ख जल से, अलग-अलग दूध, दही, आज्य, मधु और शब्दकर से करावे। नारियल जल से, ताड़फल के जल से, गन्धद्रव्य से, मधु से, गन्धोदक से, ईख के रस से, कपूरादि द्वारा सुगन्धित जल से, केला, कटहल एवं आम के रस से सुगन्धित जल से एक सौ, एक हजार या दश हजार बार यथाशक्ति पूजित शङ्ख से पुष्ट सहित अभिषेक करे। इसके बाद काले अगर के धूप से धूपित करे। तब शुद्ध जल से एकाग्र मन से स्नान कराये।

### शिवस्य शङ्खस्नापने मतभेदः

अत्र शिवस्य शङ्खेन स्नपनं निषिद्धं, पुराणे तु शङ्खेन स्नपनं प्रशस्तं श्रूयते। स्कान्दे—

**सुप्रतिष्ठितशंखस्थातीर्थः:** पञ्चामृतैरपि । अभिषिद्य महादेवं रुद्रसूक्तैः समाहितः ॥१॥ इति।

भगवान् शिव का शंखजल से अभिषेक निषिद्ध है; किन्तु पुराणों में शंखजल से शिव को स्नान कराने का निर्देश प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि सुप्रतिष्ठित शङ्खजल एवं पञ्चामृत से शिव का अभिषेक रुद्रसूक्त से सावधानीपूर्वक करो।

### प्रदेवयवस्थादिनिर्णयः:

यामले—

**पीतं कौशेयवसनं विष्णुप्रीतै प्रकीर्तितम् । रक्तं शक्त्यर्कविघ्नानां शिवस्य च सितं प्रिये ॥१॥**  
मलहीनं तथाछिद्रं क्षौमं कार्पासमेव च । इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश—

तैलादिदूषिताद्वोगः सच्छिद्राद्वाच्यता भवेत् । जीर्णाद्विदरिद्रिता कर्तुर्भिलिनात् कान्तिहीनता ॥१॥ इति।

कालिकापुराण—

निर्दशं मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्रावलम्बितम् । परकीयं चाखुदण्डं सूचीविद्धं तथासितम् ॥१॥

उपकेशमध्यातं च श्लेष्मूत्रादिदूषितम् । प्रदाने देवताभ्यश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥२॥  
वर्जयेत् स्वोपयोग्यं च यज्ञादावुपयोजने । इति।

उत्तरतत्रे—

यज्ञोपवीतं दत्त्वाथ भूषणानि समर्पयेत् । तानि नानाविधानि स्युपुकुटादिप्रभेदतः ॥१॥  
**स्त्रीपुंस्रभेदतक्षापि विज्ञेयानि विचक्षणैः । इति।**

रुद्रयामल में कहा गया है कि पीला कौशेय वस्त्र विष्णु को प्रिय है। शक्ति और गणेश को लाल वस्त्र और अन्य को श्वेत वस्त्र प्रिय है। इन वस्त्रों में मलहीन, छिररहित, रेशम या कपास का वस्त्र प्रशस्त कहा गया है। मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि तैलादि से दूषित वस्त्र समर्पित करने से रोग होता है। सिंहद्र वस्त्र के समर्पण से बाचालता होती है। जीर्ण वस्त्र देने से दरिद्रता होती है और मलिन वस्त्र के अर्पण से कान्तिहीनता होती है। कालिकापुराण में कहा गया है कि निर्दश, मलिन, जीर्ण, छिन्न, पहना हुआ, दूसरे का, चूहा से काटा हुआ, सूई से सिला हुआ, काला, बाल लगे, न धुला हुआ एवं श्लेष्म-मूत्रादि से दूषित वस्त्र देवता या पितरों को प्रदान करना वर्जित है। अपने उपयोग के योग्य वस्त्र यज्ञादि में देना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि देवता को यज्ञोपवीत देकर विविध प्रकार के आभूषण मुकुट आदि प्रदान करे। वे आभूषण स्त्रियों एवं पुरुषों को अलग-अलग प्रदान करने चाहिये।

### गन्धादिकानां तत्तदैवतवर्णनम्

योगिनीतत्रे—

गन्धः पुर्णं तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च । यस्य यदीयते वस्त्रमलङ्कारादिकाङ्क्षनम् ॥१॥

तेषां दैवतमुच्चार्यं कृत्वा प्रोक्षणपूजने । उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनामा निवेदयेत् ॥२॥

वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् । अन्नस्य देवता लक्ष्मीरथवापि प्रजापतिः ॥३॥  
सुवर्णं चाग्निदैवत्यं रजतं चन्द्रदैवतम् । हेरकं वारुणं ज्ञेयं रसानां पृथिवी तथा ॥४॥  
जलस्य वरुणो देवः पेयानां वरुणस्तथा । कृसरस्य रमा देवी परमान्नस्य चैव हि ॥५॥  
घृतप्रदीपके विष्णुस्तैलयोगे वनस्पतिः । गान्धर्वश्च तथा धूपो ह्याञ्यं चैवाग्निदैवतम् ॥६॥  
मधु वै वारुणं ज्ञेयं दधि क्षीरं च वैष्णवम् । वानस्पत्यं तथा पुष्पं वैष्णवो गन्ध ईरितः ॥७॥

मालायाश्च तथा दुर्गा सर्वं वा विष्णुदैवतम् । इति।

अत्र पूजन एव देवतोच्चारः 'तेषां दैवतमुच्चार्यं पूजयेच्च विचक्षणः' इति स्वयमभिधानात् । उत्सर्गस्तु मूलमन्त्रेण 'तथोत्सर्गानिवेदने' इति स्वयमभिधानात् ।

योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, अलंकार, दक्षिणा का प्रोक्षण-पूजन करके जिस देवता को देना है, उस देवता के नाम के साथ मूल मन्त्र जोड़कर प्रत्येक वस्तु को निवेदित करे । वरुण बीज 'वं' से सबक प्रोक्षण करे; क्योंकि जल के देवता वरुण हैं । अत्र के देवता लक्ष्मी अथवा प्रजापति हैं । सोने को देवता अग्नि, चाँदी के चन्द्र, हीरे के देवता वरुण तथा रसों के देवता पृथ्वी हैं । जल और पेय पदार्थों के देवता वरुण हैं । खिचड़ी और परमात्मा के देवता लक्ष्मी हैं । धी के दीपक के देवता विष्णु हैं । तैल के देवता वनस्पति हैं । धूप के देवता गन्धर्व और आज्य के देवता अग्नि हैं । मधु के देवता वरुण एवं दही, दूध के देवता विष्णु हैं । पुष्प के देवता वनस्पति हैं । गन्ध के देवता विष्णु हैं और माल के देवता दुर्गा हैं । अथवा सबों के देवता विष्णु हैं ।

#### गन्धभेदलक्षणानि

**कालिकापुराणे—**

चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहाकर्षित एव च । रसः सम्रद्जो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव च ॥१॥  
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिकारकः । गन्धचूर्णं गन्धपत्रचूर्णं सुमनस्तथा ॥२॥  
प्रशस्तगन्धयुक्तानां पत्रचूर्णानि यानि च । तानि गन्धाह्यानि स्युशूर्णजः प्रथमः स्मृतः ॥३॥  
घृष्टो मलयजो गन्धः सकलश्च नमेषुणा । अगस्त्रभृतिश्चैव यस्य पङ्कः प्रणीयते ॥४॥

घृष्टेन घृष्टो गन्धोऽयं द्वितीयः परिकीर्तिः । इति।

**शारदातिलके—**

गन्धश्चन्दनकर्पूरकालागुरुभिरीरितः । देवदार्वगरुब्रह्मसारसारात् तु चन्दनात् ॥१॥  
प्रियादीनां च यो दग्धवा गृह्णते दारुजो रसः । स दाहाकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तिः ॥२॥  
सुगन्धकरवीराद्यं सुगन्धलिता तथा । सुगन्धात्परमे योऽसौ निष्ठीङ्ग्य परिगृह्णते ॥३॥  
स सम्पदोद्भवो गन्धः सम्पर्दज इतीष्यते । मृगनाभिसमुदूतसत्कोशोद्भव एव च ॥४॥

गन्धः प्राण्यङ्गजो ज्ञेयो मोददः स्वर्गवासिनाम् । इति।

कालिका पुराण में कहा गया है कि देवता को श्रिय लगने वाले गन्ध पाँच प्रकार के हैं—चूर्ण, घृष्ट (रगड़ा हुआ), दाह से आकर्षित, रस या सम्पर्दज और प्राणी के अङ्ग से उत्पन्न; जैसे—कस्तूरी या गोरोचन। गन्धचूर्ण, गन्धपत्रचूर्ण, सुगन्धित पुष्प, पत्रचूर्णों में से चूर्ण का गन्ध सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । घृष्ट में चन्दन या अन्य गन्ध वाले नमेषु तथा अगर आदि के लें आते हैं । चूर्ण गन्ध के बाद घृष्ट गन्ध एवं टुकड़ों में श्रेष्ठ होता है ।

शारदा तिलक में कहा गया है कि गन्ध में चन्दन कपूर काला अगर देवदार अगर, ब्रह्मसार आदि चन्दन आते हैं दग्ध काष का रस दूसरा है । दाहाकर्षित गन्ध तीसरा है । जो करवीरादि सुगन्धित पुष्प की लता के निष्ठीङ्गन से गन्ध प्राप्त होता है, उसे सम्पर्दित गन्ध कहते हैं । मृगनाभि से उत्पन्न गन्ध को प्राण्यंगज कहते हैं । ये सभी देवताओं को प्रसन्नता देते हैं

**मन्त्रतन्त्रप्रकाशो—**

पुष्टं पञ्चविधं प्रोक्तं मुनिभिर्नरदादिभिः । परापरोत्तमं चैव मध्यमं च तथाधमम् ॥१॥  
सौवर्णं परमित्युक्तमपरं चित्रवस्त्रजम् । वृक्षगुल्मलतापुष्टमुत्तमं परिकीर्तितम् ॥२॥  
अधमं पत्रतोयादि मध्यमं तु फलात्मकम् । उत्सृष्टं न क्रियायोगं सदा योगं परापरे ॥३॥ इति।

एष यदुत्तरं देवेभ्यो दत्तं तत्सुनः क्रियायोगं न भवतीत्यर्थः । परापरे इति—परं सौवर्णम्, अपरं वास्त्वं, ते चानुत्सृष्टे चेत्सदा योग्ये भवेतां, देवतोपरि सदा धार्ये इत्यर्थः । तयोरेकतरमप्युत्सृष्टं यदि भवति तदा तत्सुनः क्रियायोगं देवपूजायोगं न भवतीत्यर्थः । ज्ञानार्णवे—

पुष्टैः पर्युषितैर्देवि नार्चयेत् स्वर्णजैरपि । निर्मल्यभूतैः कुसुमैरुत्सृष्टैः परमेश्वरि ॥१॥ इति।

निर्मल्यभूतैरुत्सृष्टैर्देविरिति यावत् । अथवोत्सृष्टैः पूजावशिष्टैः । उत्तमपुष्टाण्युत्तरतन्त्रे—

शुक्ला कृष्णा च तुलसी शुक्लं रक्तच्छ पङ्कजम् । केतकीयुगलं जातीद्वयं द्वन्द्वहयारिजम् ॥१॥  
पुष्टाणां दशकं हेतत्प्रशस्तं परिकीर्तितम् । रक्तनीलोत्पले शस्ते मल्लिकाकुमुदं तथा ॥२॥  
कुन्दं कहारकं चैव मन्दारं तगरं पुनः । अर्जुनं किंशुकं रक्तं मन्दारं नागचम्पकम् ॥३॥  
अशोकं बिल्वपुष्टाणि पाटला नवमल्लिका । चम्पकं कर्णिकारं च पारिजाततरुद्धवम् ॥४॥  
शतवर्गोद्भवं पुष्टं कोरण्टकुसुमानि च । इत्यादीनि सुपुष्टाणि गन्धवन्ति लसन्ति च ॥५॥  
तत्तन्त्रविधानेषु विहितानि समर्पयेत् । म्लानानि आम्बुगान्येव शीणानि क्षमागतानि च ॥६॥  
यानि पर्युषितानि स्युः क्रिमिभिर्भक्षितानि च । कोरकाणि च दुष्टानि समाग्रातानि नार्पयेत् ॥७॥ इति।

**मन्त्रतन्त्रप्रकाशो—**

पत्रेषु तुलसी श्रेष्ठा बिल्वं दामनकं शुभम् । मरुवो देवकहारि विष्णुक्रान्ता तथैव च ॥१॥  
अपामार्गोऽथ गान्धारी पत्री सुरभिसंज्ञिता । नागवल्लीदलं दूर्वा कुशपुष्टं तथा मतम् ॥२॥

पत्रं चागस्त्यवृक्षस्य पुष्टं धात्रीफलं तथा । इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में नारदादि मुनियों ने कहा है कि फूल पाँच प्रकार के होते हैं—परा, अपरा, उत्तम, मध्यम और अधम । सोने का फूल पर होता है । चित्रवस्त्र से निर्मित पुष्ट अपर होता है । वृक्ष-गुल्म-लता से उत्पन्न पुष्ट उत्तम होता है । फल वाले पुष्ट मध्यम एवं अधम पत्र-जल आदि के फूल होते हैं उत्सृष्ट फूल क्रिया-योग्य नहीं होते । पर-अपर सर्वदा योग्य होते हैं ।

उत्सृष्ट अर्थात् देवता पर चढ़ा हुआ फूल दुबारा देवता पर नहीं चढ़ाना चाहिये । सौवर्ण एवं वास्त्र पुष्ट सदा धारण के योग्य होता है । शेष पुष्ट एक बार देवता पर चढ़ाने के बाद दुबारे नहीं चढ़ाये जाते । ज्ञानार्णव में कहा गया है कि वासी फूलों से देवता का पूजन नहीं करना चाहिये । सोने का फूल भी निर्मल्य होने पर दुबारा चढ़ाने के योग्य नहीं होता ।

**उत्तम पुष्ट—उत्तरतन्त्र में** कहा गया है कि उजली-काली तुलसी, उजला-लाल कमल, केतकीयुगल, जातीद्वय, पीला-लाल कनैल—इन दश प्रकार के फूलों को पूजा में प्रशस्त कहा गया है । अर्जुन, पलास, लाल मन्दार, नागचम्पा, अशोक, बिल्वपुष्ट, गुलाब, बेला, चम्पा, कर्णिकार, पारिजात वृक्ष से उत्पन्न, शतवर्ग से उत्पन्न पुष्ट, कोरण्टक कुसुम सुगन्धित और सुन्दर होते हैं । उपयुक्त मन्त्रों से इन्हें समर्पित करना चाहिये । म्लान, पानी में गिरे, कटे-फटे, भूमि पर गिरे, बासी, कीड़ों के खाये हुए, दूषित कुड़मल एवं सूखा हुआ फूल को देवता को समर्पित नहीं करना चाहिये ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि पत्रों में तुलसी श्रेष्ठ है । बेल और अशोक शुभ है । मरुवक, कल्हार, विष्णुक्रान्ता, अपामार्ग, गान्धारी, पत्री, सुरभि, नागवल्ली, दूर्वा, कुशपुष्ट, अगस्त्यपत्र एवं धात्रीफल पुण्यदायक हैं ।

## देवताविशेषे पुष्यविशेषनिषेधः

ज्ञानमालायाम्—

नाक्षतरचर्येद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् । न दूर्वया यजेद् दुर्गा बिल्वपत्रैर्दिवाकरम् ॥१॥  
 देवीनामकमन्दारावादित्ये तगरं तथा । गणेशाय च सूर्याय रक्तपुष्यमतिप्रियम् ॥२॥  
 शिवे कुन्दं मदन्ती च यूथिं बन्धूककेतके । जपां रक्तां त्रिसन्ध्ये द्वे सिन्दूरं कुटकानि च ॥३॥  
 मालतीं घुसृणं रक्तहयारिं बर्वरीं त्यजेत् । उत्त्रगन्धमगन्धं च केशक्रिम्यादिदूषितम् ॥४॥  
 अशुद्धपात्रपाण्यङ्गवासोभिः कुत्सितात्मभिः । आनीं नार्पयेच्छम्भोः प्रमादादपि दोषकृत् ॥५॥  
 कलिकाभिस्तथा नेज्यं विना पञ्चजन्मप्यकैः । शुष्कैर्न पूजयेच्छम्भुं पत्रैः पुष्टैः फलैरपि ॥६॥  
 स्नात्वानीतैः पर्युषितयाचितैः कृष्णावर्णकैः । स्वयं विकाशितैः पुष्टैः स्वयं च पतितैर्भूवि ॥७॥  
 वर्जयेद् बृहतीपुष्टं काञ्छनारं कुरण्टकम् । सर्वपुष्टैः सदा पूजा विहिताविहितैरपि ॥८॥  
 कर्तव्या सर्वदेवानां भक्तिरेवात्र कारणम् । इति।

अत्र स्नात्वानीतैर्मध्याह्नस्नानोत्तरमादृत्यानीतैरित्यर्थः । प्रातरुत्थानादिप्रातःकालीनपूजान्तं प्रथमप्रहरकृत्य-  
 मुक्त्वा 'ततः पुष्टफलादीनामुत्थायार्चनमाचरे' दिति द्वितीयप्रहरकृत्यत्वेन नारदपञ्चरात्रे पुष्टाहरणस्योक्तत्वात् ।

ज्ञानमाला में कहा गया है कि विष्णु पर अक्षत न चढ़ाये। गणेश को तुलसी अर्पित न करे। दुर्गा का पूजन दूर्वा से न करे। सूर्य को बेलपत्र न चढ़ावे। शिव का पूजन कुन्द, मदन्ती, यूथिका, बन्धूक, केतकी, लाल अडहुल, मालती, घुसृण, लाल कनैल, वर्वरी से न करे। देवी पर अर्क मन्दार और सूर्य को तारा न चढ़ाये। गणेश और सूर्य को लाल फूल अतिषिय हैं। उत्र गन्ध, गन्धरहित, केश-क्रिमी आदि से दूषित; अशुद्ध पात्र हाथ अंग वस्त्र के द्वारा लाया गया फूल शिव को अर्पित न करे। इन सबों को प्रमाद से चढ़ाने पर भी दोष होता है। कालिका का पूजन बिना कमल और चम्पा के न करे। शिव का पूजन सूखे फूल, पत्र और फल से न करे। स्नान करके लाया हुआ बासी या याचित काले रंग का फूल शिव पर न चढ़ावे। अपने से विकाशित या भूमि पर पतित फूल का अर्पण न करे। बृहतीपुष्ट, काचनार, कुरण्टक आदि सभी विहित-अविहित फूलों से सभी देवता का पूजन करे। भक्तों के लिये पूजा में भक्ति ही मुख्य होती है।

## पुष्टार्पणनिर्णयः

तथा—

पत्रं वा यदि वा पुष्टं फलं नेष्टमधोमुखम् । दुःखदं तत्समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम् ॥१॥  
 चित्रपूजासु सर्वासु न विरुद्धस्य दूषणम् । अघोमुखार्पणं नेष्टं पुष्टाङ्गलिविधौ न तत् ॥२॥  
 लक्षपूजासु सर्वासु पुष्टमेकैकमर्पयेत् । समुदायेन चेत्पूजा लक्षपूजार्पणं न तत् ॥३॥

पुष्टार्पण—नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि देवता को पत्र-पुष्ट-फल को अघोमुख करके अर्पण न करे; यह दुःखद होता है। अपितु वह जैसा उत्पन्न हो, वैसे ही अर्पण करना चाहिये। चित्र पूजा में विरुद्ध दूषण नहीं है। पुष्टाङ्गलि में अघोमुख पुष्ट अर्पण में दोष नहीं है। सभी लक्ष पूजन में एक-एक फूल चढ़ावे। जो समुदाय पूजन है उसमें लक्षपूजार्पण नहीं होता।

## पर्युषितदोषोऽस्ति च

न पर्युषितदोषोऽस्ति जलजोत्पलचम्पके । तुलस्यगस्त्यबकुले बिल्वे गङ्गाजले तथा ॥४॥ इति।

अत्र केचिदुत्पलपददर्शनात् जलजपदेन कमलमात्रं ग्राह्यमिति वदन्ति। तत्र 'तुलस्यां बिल्वपत्रे च जलजेषु च सर्वशः। न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च'। इति भविष्यपुराणवचनात्। उत्तरतन्त्रे—

परारोपितवृक्षेभ्यः पुष्टाण्यानीय चार्चयेत्। अविज्ञाय च तैर्यस्तु निष्कलं तस्य पूजनम् ॥१॥ इति।

**ज्ञानमालायाम्—**

फलेष्वामलं श्रेष्ठं बादरं तिन्तिणीफलम् । दाढिमं मातुलिङ्गं च जम्बीरं पनसोद्धवम् ॥१॥  
कदलीचूतसम्भूतं श्रेष्ठं जम्बूफलं तथा । यजेदेतैः सदा विष्णुं पत्रैः पुष्टैः फलैरपि ॥२॥ इति।  
विष्णुमित्युपलक्षणम्।

**दिवसे दिवसोत्कुल्लैः पुष्टैः पूजा तथा निशि । पुष्पाभावे प्रवालैर्वा कारयेच्यूतकोरकैः ॥३॥ इति।**

जलज, उत्पल और चम्पा में पर्युषित दोष नहीं होता। तुलसी, अगस्त्य, बकुल, विल्वपत्र और गंगाजल में भी पर्युषित दोष नहीं लगता है। दूसरे के द्वारा लगाये गये वृक्ष से अज्ञानतावश फूल लाकर जो देवता का अर्घन करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है।

ज्ञानमाला में कहा गया है कि फल में आमला, इमली, अनार, विजौरा, जम्बरी, कटहल, केला, आम, जामुन—ये सभी श्रेष्ठ हैं। इनके पत्रों, पुष्टों और फलों से विष्णु का पूजन सर्वदा करना चाहिये। दिन में तोड़े गये फूलों से पूजा दिन तथा रात दोनों में करे। फूलों के न होने पर प्रवाल से पूजा करे।

**पुष्पोपचारान्ते लयाङ्गार्चनम्**

**अतः परमावरणपूजा । तत्र पुष्पोपचारान्ते उत्तरतत्रे—**

**मन्त्रसम्पुटितैर्वर्णंर्मातृकायाः सबिन्दुकैः । क्रमेण गन्धपुष्पाद्यैर्देवस्याङ्गे समर्चयेत् ॥४॥**  
**लयाङ्गमर्चयेद् देहे देवस्य मनुवित्तमः । इति।**

**ज्ञानार्णवेऽपि—**‘लयाङ्गमर्चयेद् देहे न्यासस्थानेषु मन्त्रवित्’ इति। शारदातिलके—  
अङ्गादिलोकपालान्तं यजेदावरणान्यपि । केसरेष्वग्निकोणादि हृदयादीनि पूजयेत् ॥५॥  
नेत्रमग्रे दिशास्वस्त्रं ध्यातव्यशाङ्गदेवताः । तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः ॥६॥

वरदाभ्यधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः ।

अङ्गादीति विशेषानभिधाने लोकपालशब्देन तदस्त्राणामप्यादानम्। तत्राग्निकोणादीत्यादिपदस्य क्रमग्राहि-त्वादग्निराक्षसवायव्येशानकोणेष्वङ्गच्छतुष्यं यजेदिति वदन्ति। तत्र ‘अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षवङ्गपूजन’ मिति ज्ञानार्णव-दक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्। ‘हृदयं चाग्निरादिभागे ऐशान्यां च शिरो यजेत्। शिखां निर्दृष्टिदिग्भागे वायव्ये कवचं तथा। अस्त्रमन्तं तथा दिक्षु नेत्रमग्रे प्रपूजयेत्’ इति दक्षिणामूर्तिकल्पवचनात्।

वहौ हृदयमैशान्यां शिरो रात्रिचरे शिखाम्। वायौ वर्म पुरो नेत्रमस्त्रं दिक्षु चतुर्ष्वप्यि ॥७॥

इति कपिलपञ्चरात्रवचनात् चतुर्ष्वपीति दिव्यत्वाच्चतसुष्वित्यर्थः। ‘इष्टवा हृदयमानेव्यामैशान्यां च शिरो यजेत्। शिखा च नैऋत्यां पूज्या वायव्यां कवचं यजेत्। अभ्यर्थ्यं पुरतो नेत्रमस्त्रं दिक्षु समर्चयेत्’ इति सोमशम्भुवचनात्।

पुष्पोपचार के बाद लयाङ्ग पूजन—उत्तरतत्र में कहा गया है कि सानुस्वार मातृकाओं से सम्पुटित मन्त्र से गन्ध-पुष्ट आदि को क्रमशः देवता के अंग में निवेदित करे। इस प्रकार देवता के देह में लयांग पूजा करे। ज्ञानार्णव में भी कहा गया है कि देवता के देह में न्यास स्थानों में लयाङ्ग पूजन करे।

शारदातिलक में कहा गया है कि षडङ्ग पूजन से प्रारम्भ लोकपालों का पूजन करके आवरण पूजन करे। केसर के आग्नेयादि कोनों में हृदयादि का पूजन करे। अग्र में नेत्र का और दिशाओं में अस्त्र का पूजन करे। अङ्गशक्तियों का ध्यान इस प्रकार करे—

तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः। वरदाभ्यधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः ॥

अंगपूजन के सम्बन्ध में दक्षिणामूर्तिकल्प में कहा गया है कि हृदय का पूजन आग्नेय में, शिर का पूजन ईशान में, शिखा का नैऋत्य में, कवच का वायव्य में अस्त्र मन्त्र का पूजन सभी दिशाओं में और नेत्र का पूजन अग्रभाग में करना चाहिये। कपिलपञ्चरात्र में भी कहा गया है कि आग्नेय में हृदय, ईशान में शिर, नैऋत्य में शिखा, वायव्य में कवच, अग्रभाग में नेत्र और चारों दिशाओं में अस्त्र का पूजन करे। इसी का समर्थन सोमशम्भु में भी किया गया है।

### आवरणार्चार्यां प्राचीकल्पना

पूर्वयाम्यान्तरे विष्णोर्हदयं विनिवेशयेत् । शिरः पूर्वोत्तरे दद्याच्छिखां पश्चिमदक्षिणे ॥१॥  
पश्चिमोत्तरदिङ्मध्ये कवचं विन्यसेद्वरेः । अग्रतः केसरोद्देशे नेत्रं दिक्षवस्त्रराट् तथा ॥२॥

इति नारदपञ्चरात्रवचनाच्चेति अत्र 'अथावरणपूजा स्यात्पुरः प्राचीं प्रकल्पयेत्। तदादि परिवाराणां प्रादक्षिण्ये न पूजनम्' इति नृसिंहकल्पवचनात्।

'यष्टुरभिमुखा देवा देवाभिमुखतो दशा प्राच्यादिहरितो ज्ञेयाः पूजाहोमादिकर्मसु' इत्युत्तरतन्त्रवचनात्। 'यत्रैव भास्त्वानुदयं प्रयाति प्राचीमिमां वेदविदो वदन्ति। मध्ये तु सा पूजकपूज्ययोश्च सदागमज्ञैः सततं विचिन्त्या' इति भैरवीतन्त्रवचनात्। देवाग्रं प्राचीं परिकल्प्य तदनुसारेणानेयादिकं कल्पयित्वाङ्गनि पूजयेत्। आवरणदेवताश्वैर्वमेव प्रपूजयेदिति।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि विष्णु के हृदय का पूजन पूर्व-दक्षिण कोण में, पूर्वोत्तर में शिर का, शिखा का पश्चिम-दक्षिण कोण में पश्चिम-उत्तर कोण में कवच का, विष्णु के आगे केसर में नेत्र का एवं दिशाओं में अस्त्र का पूजन करे। स्पष्ट है कि आवरण-पूजन के पहले अपने आगे पूर्व दिशा कल्पित करे। वहाँ से प्रारम्भ करके परिवार का पूजन प्रदक्षिणक्रम से करे। उत्तरतन्त्र में कहा है कि पूजा होम कर्म में देवता के सामने से प्राची आदि दशों दिशाओं को कल्पित करे। भैरवीतन्त्र में कहा गया है कि जिस ओर सूर्य उदित होता है, उसे विद्वान् लोग प्राची दिशा कहते हैं।

इस प्रकार देव के अग्रभाग में प्राची दिशा को कल्पित करके उसी के अनुसार आग्नेयादि कोणों को कल्पित करके अंगों की पूजा करे। आवरणदेवताओं का पूजन भी इसी प्रकार करे।

### अङ्गपूजायां होमपूजनयोर्नमः स्वाहान्ततानिर्णयः

मंहाकपिलपञ्चरात्रे—

शिरः प्रभृतिमन्त्रेषु पूजायां च नमोन्तता । शिरोभिन्नेषु मन्त्रेषु होमे स्वाहान्तता भवेत् ॥१॥ इति।

आवरणदेवतास्तत्कल्पेषु द्रष्टव्याः। मालिनीतन्त्रे—'स्वे स्वे स्थाने चाभिमुखान् पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः'। अभिमुखान् देवस्य। श्रीविद्यावरणपूजायां दक्षिणामूर्तिसंहितायां—'श्रीविद्यासम्मुखीः स्मरे' दित्युक्तेः। तथा सिद्धीश्वरीतन्त्रे—

अधृष्यश्च समर्थश्च मार्तण्डः स्वमरीचिभिः । तद्वद्दैर्निर्जर्देव्यो ध्यातव्याः स्वमरीचिभिः ॥१॥ इति।

मंहाकपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि शिरः प्रभृति पूजा में मन्त्र के अन्त में नमः जोड़े। शिर से भिन्न मन्त्रों में होम में मन्त्र के अन्त में स्वाहा जोड़े। मालिनी तन्त्र में कहा गया है कि अपने-अपने स्थान में अभिमुख रूप में देवता को प्रोक्षणादि से पूजन करे। श्रीविद्या आवरण पूजन के क्रम में दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है कि श्रीविद्या का अपने सामने स्मरण करे। सिद्धीश्वर तन्त्र में कहा गया है कि अधृष्य समर्थ सूर्यकिरणों के समान देवी के अंग के किरण रूप में आवरण-देवियों का ध्यान करे।

### प्रत्यावरणार्चान्ते पुष्पार्पणमन्त्रः

तूर्णायागे—

देवीं ध्यात्वा तच्छ्रीरात्मयूखनिकरं बहिः । विनिःसृत्य स्थिरीभूतं परिवारं विचिन्तयेत् ॥१॥

अभ्यच्चविवरणं त्वाद्यं मूलमुच्चार्थं मन्त्रवित् । सम्भूज्य देवीं संबोध्य वदेन्मन्त्रमिमं ततः ॥२॥  
अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले । भक्त्या समर्पये तु त्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥३॥  
इति पुष्पाङ्गलिं दत्त्वा प्रणमेदतिभक्तिः । प्रत्यावरणमेवं तु तत्तत्रामा समर्पयेत् ॥४॥

इत्यमावरणं सम्यग्भव्यं मनुवित्तमः ।

तूर्णायाग में कहा गया है कि देवी का ध्यान करके उनके शरीर से मयूरखनिकर के रूप में निकल कर स्थिरभूत परिवार का विन्तन करे। पहले आवरण का पूजन करके मूल मन्त्र से देवी को सम्बोधित करके यह मन्त्र पढ़े—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले । भक्त्या समर्पये तु त्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

इस प्रकार पुष्पाङ्गलि देकर भक्ति से प्रणाम करे। प्रत्येक आवरण को नामसहित समर्पित करे। इस प्रकार सम्यक् रूप से आवरण पूजन करे।

### लोकपालतदस्त्राणां ध्यानानि

अन्ते यजेल्लोकपालांस्तदस्त्राणि च क्रमात् ॥५॥

इन्द्रं सुराधिपं पीतं वज्रहस्तं सवाहनम् । अग्निं तेजोऽधिपं रक्तं शक्तिहस्तं सुभूषणम् ॥६॥  
यमं प्रेताधिपं कृष्णं दण्डहस्तं समर्चयेत् । रक्षोऽधिपं निर्वृतिं च खड्गहस्तं सुधूम्रकम् ॥७॥  
पाशहस्तं सुशुभ्राङ्गं वरुणं यादसांपतिम् । वायुं प्राणाधिपं धूम्रमङ्गुशाढ्यकरं यजेत् ॥८॥  
यक्षाधिपं कुवेरं च गदाहस्तं सितं यजेत् । विद्याधिपं शूलहस्तं स्फटिकाभं शिवं यजेत् ॥९॥  
नागाधिपमनन्तं च गौरं चक्रायुधं यजेत् । लोकाधिपं विधातारं रक्तं पद्मकरं यजेत् ॥१०॥  
ऐरावतं तथा मेषं महिषं मृगपूरुषम् । मकरं मृगमत्यैं च वृषं च विपहंसकौ ॥११॥  
इन्द्रादिलोकपालानां वाहनानि विदुर्बृधाः । वत्रं पीतं सितं शक्तिं दण्डं कृष्णं समर्चयेत् ॥१२॥  
खड्गमाकाशसंकाशं पाशं विद्युत्रिभं यजेत् । अङ्गुशं रक्तवर्णं च शुक्लवर्णा गदां यजेत् ॥१३॥  
त्रिशूलं नीलवर्णं च यजेन्मन्त्री ततः परम् । रथाङ्गं कुरुविन्दाभं पद्मं रक्तं समर्चयेत् ॥१४॥

लोकपालायुधान्यवं क्रमेण परिपूजयेत् । इति।

अत्र केचित्—‘अन्ते यजेल्लोकपालान् भूत(मूल)पारिषदान्वितान् । हेतिजात्यधिपोपेतान् दिक्षु पूर्वादितः क्रमात्’ इति शारदातिलकवचनाद्यथास्थितपूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिपूजनमिति वदन्ति, तत्र चतुरायतनदेवतास्थापन-प्रकारेणोक्तयुक्ते: सर्वेषामावरणानां देवाप्रत आरम्भाल्लोकपालावरणस्यावरणत्वाच्च कल्पितप्राच्यनुसारैणव पूजनं युक्तमिति विचारतः प्रतिभातीति।

आवरणपूजन के बाद लोकपालों और उनके अस्त्रों का क्रमशः पूजन करे। लोकपालों एवं उनके आयुधों का ध्यान निम्नवत् है—

इन्द्रं सुराधिपं पीतं वज्रहस्तं सवाहनम् । अग्निं तेजोऽधिपं रक्तं शक्तिहस्तं सुभूषणम् ॥  
यमं प्रेताधिपं कृष्णं दण्डहस्तं समर्चयेत् । रक्षोऽधिपं निर्वृतिं च खड्गहस्तं सुधूम्रकम् ॥  
पाशहस्तं सुशुभ्राङ्गं वरुणं यादसांपतिम् । वायुं प्राणाधिपं धूम्रमङ्गुशाढ्यकरं यजेत् ॥  
यक्षाधिपं कुवेरं च गदाहस्तं सितं यजेत् । विद्याधिपं शूलहस्तं स्फटिकाभं शिवं यजेत् ॥  
नागाधिपमनन्तं च गौरं चक्रायुधं यजेत् । लोकाधिपं विधातारं रक्तं पद्मकरं यजेत् ॥  
ऐरावतं तथा मेषं महिषं मृगपूरुषम् । मकरं मृगमत्यैं च वृषं च विपहंसकौ ॥  
इन्द्रादिलोकपालानां वाहनानि विदुर्बृधाः । वत्रं पीतं सितं शक्तिं दण्डं कृष्णं समर्चयेत् ॥  
खड्गमाकाशसंकाशं पाशं विद्युत्रिभं यजेत् । अङ्गुशं रक्तवर्णं च शुक्लवर्णा गदां यजेत् ॥  
त्रिशूलं नीलवर्णं च यजेन्मन्त्री ततः परम् । रथाङ्गं कुरुविन्दाभं पद्मं रक्तं समर्चयेत् ॥

शारदातिलक के अनुसार यथास्थित पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि का पूजन करे। यह समीचीन नहीं है; क्योंकि सभी आवरणों का पूजन देवाग्र से आरम्भ करके लोकपालों के आवरण का पूजन भी कल्पित पूर्वादि दिशा के अनुसार ही करना युक्तियुक्त है।

### आवरणाचार्नन्ते देव्यर्घनमन्त्रः

पुनर्मूलं समुच्चार्य साङ्गायै सपरीति च। वारायै नाम देव्याश्च चतुर्थन्तमुदीर्य च ॥१॥

नम इत्यर्घेद्यपूष्यादैः साधकस्त्रिधा । ततो यजेद् धूपदीपनैवेदैः सुमनोहरैः ॥२॥ इति।

पुनः मूल मन्त्र का उच्चारण कर सांगायै सपरीतायै कहने के बाद देवी का चतुर्थन्त नाम कहकर नमः लगाकर गन्ध-पूष्यादि से तीन बार देवी का अर्चन करे। तब धूप, दीप एवं मनोहर नैवेद्य से अर्चन करे।

### धूपद्व्यभागनिरूपणम्

#### प्रपञ्चसारे—

सगुगुल्वगरूशीरसिताज्यमधुचन्दनैः । साराङ्गारविनिक्षिप्तैर्मन्त्री नीचैः प्रधूपयेत् ॥१॥ इति।

#### कुलमूलावतारे—

प्रालेयं मलयोद्धवं जतुनखं सर्जं च कुष्टं समं  
सिल्हाख्यागुरुयुग् जटा द्विगुणिता प्रत्येकसञ्चूर्णिता ।  
षड्भागा वरमाक्षिकस्य सुसिता चार्धाष्टभागान्विता  
धूपोऽयं भुवि शंकरेण कथितः श्रीसुन्दरीवल्लभः ॥१॥ इति।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि गुगुल, आग, खश, कपूर, मधु, चन्दन, केसर को अग्नि में डालकर नीचे रखकर साधक धूप दिखावे।

कुलमूलावतार में कहा गया है कि मलय, चन्दन, जतुनख, सर्ज कुष्ट का चूर्ण बराबर-बराबर चूर्णित कर क्षेत्र कृष्ण एवं अगर दो भाग, मधु छः भाग, कपूर आठ भाग को मिलाने से श्रीसुन्दरी का प्रिय धूप बनता है—ऐसा शंकर जी का कथन है।

### घटाचालनसमयतन्मन्त्रकथनम्

#### शैवागमे—

धूपभाजनमन्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्थ्य हृदाणुना । अन्त्रेण पूजितां घण्टां वादयन् गुगुलुं दहेत् ॥१॥ इति।

#### नारदपञ्चरात्रे—

आवाहनेऽर्थ्ये धूपे च स्नाने नैवेद्ययोजने । नित्यमेवं प्रयुज्ञीत तन्मन्त्रामन्त्रितामपि ॥१॥

#### चकारादीपेऽपि। तथा—

पूजाकालं विनान्यत्र हितं नास्या: प्रचालनम् । नानया च विना पूजां कारयेत्सिद्धिलालसः ॥१॥  
दद्यात् तारावसाने च गजध्वनिपदं ततः । मन्त्रमातःपदं चैव स्वाहाक्षरसमन्वितम् ॥२॥

एकादशाक्षरो मन्त्रो घण्टायाः सर्वसिद्धिः । इति।

#### उद्धारः सुगमः।

शैवागम में कहा गया है कि धूपदानी को अन्तर्मन्त्र से पोछकर हृदय में नमः से अर्चन करके अन्त मन्त्र से पूजित घंटी बजाते हुए गुगुल जलावे। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि आवाहन, अर्थ, धूप, दीप, स्नान एवं नैवेद्य समर्पण के समय मन्त्राभिमन्त्रित घण्टा का प्रयोग करना चाहिये। साथ ही यह भी कहा गया है कि पूजाकाल के अतिरिक्त इसे नहीं बजाना चाहिये। सिद्धि की लालसा से इसके बिना पूजा नहीं करनी चाहिये। घंटी पूजन मन्त्र ग्यारह अक्षरों का इस प्रकार है—‘ॐ गजध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा।’ घंटी का यह मन्त्र सर्वसिद्धिदायक है।

## कालिकापुराणे—

वामतस्तु तथा धूपमये वा न तु दक्षिणे । न धूपं वितरेद्भूमौ नासने न घटे तथा ॥१॥  
यथा तथाधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत् । मेदोमज्जासमायुक्तज्ञ धूपान् विनिवेदयेत् ॥२॥  
न यक्षधूपं वितरेत् साधकस्तु कदाचन । इति।

यक्षधूपस्तु रालेति लोके प्रसिद्धः । विष्णुः—धूपार्थं न जीवतानमिति । प्रपञ्चसारे—  
गोसर्पिषा वा तैलेन वर्त्या च लघुगर्भया । दीपितं सुरभिं शुभ्रं दीपमुच्चैः प्रदर्शयेत् ॥३॥ इति।

वाशब्देनोभयोरमिश्रणमुक्तम् । 'न मिश्रीकृत्य दद्याच्य दीपस्नेहान् धृतादिकान् । कृत्वा मिश्रीकृतं स्नेहं  
तामिसं नरकं नयेत्' इति कालिकापुराणवचनात् । तूर्णायागे—

पारावतभ्रमाकारं दीपं नेत्रादि दर्शयेत् । दक्षिणे सर्पिषा दीपं तिलतैलेन वामतः ॥४॥  
सिता वर्तिर्दक्षिणतो रक्ता वर्तिस्तु वामतः । इति।

## कालिकापुराणे—

वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन । कुर्वस्तु पृथिवीतापं यो दीपमुत्सुजेन्नरः ॥५॥  
स ताप्रतापं नरकं प्राप्नोत्येव शतं समाः । इति।

कालिकापुराण में कहा गया है कि देवी के वाम भाग में अथवा आगे धूपपत्र रखे । न कि दक्षिण भाग में । धूप को भूमि पर न विखेरे, न तो आसन पर रखे और न ही घट के भीतर रखे । यथायोग्य आधार पर रखकर उसे निवेदित करे । मेद-मज्जायुक्त धूप को निवेदित न करे । साधक कभी भी यक्ष धूप (राल) न दिखावे । विष्णु को यह धूप नहीं देना चाहिये ।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि गाय के धी या तिलतैल को दीपक में भरकर लघु गर्भ की बत्ती डालकर जलाकर शुभ्र सुर्भित दीपक को ऊँचा करके दिखावे । धी और तेल दोनों को मिलाकर दीपक नहीं दिखाना चाहिये, क्योंकि कालिकापुराण में कहा गया है कि धी और तेल मिलाकर दीपक दिखाने से साधक को नरकगामी होना पड़ता है ।

तूर्णायाग में कहा गया है कि कबूतर के भ्रमण के समान दीप को घुमाकर आँखों के सामने दिखावे । देवता के दक्षिण भाग में गोधृत में उजली बत्ती का दीप जलाकर रखे एवं तिल तेल में लाल बत्ती डालकर जलाते दीपक को वाम भाग में रखे ।

कालिका पुराण में कहा गया है कि वृक्षों पर दीपदान करना चाहिये, भूमि पर दीपदान कभी नहीं करना चाहिये । भूमि पर दीपदान कर पृथिवी को जो तप्त करता है, वह सौ वर्ष तक ताप्र ताप नरक में वास करता है ।

## पुंसो दीपनिर्वापणदोषः:

## रुद्रयामले—

नैव निर्वापयेद् दीपं साधकस्तु कदाचन । यस्तु निर्वापयेद् दीपं तस्य लक्ष्मीर्विनश्यति ॥६॥

कृष्णाण्डच्छेदिका नारी दीपनिर्वापकः पुमान् । विधवा च दरिद्रश्च भवेत् सप्तसु जन्मसु ॥७॥ इति।

रुद्रयामल में कहा गया है कि साधक देवता को अपित दीपक को कभी भी स्वयं न बुझावे । जो दीपक को बुझाता है, उसकी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है । कृष्णाण्ड में छेद करने वाली नारी सात जन्मों तक विधवा होती है और देवार्पित जलते दीपक को बुझाने वाला मनुष्य सात जन्मों तक दरिद्र होता है ।

## नैवेद्यद्रव्यसंस्कारतन्त्रिवेदनप्रकारः:

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—पाद्यमाचयनीयं च दत्त्वा नैवेद्यमर्पयेत्' इति । सनत्कुमारकल्पे—

इत्यं कृष्णं समध्यर्च्यं पञ्चावरणसंयुतम् । कदलीफलसंयुक्तं पायसं विनिवेदयेत् ॥८॥ इति।

ज्ञानार्णवे—

शुद्धस्फटिकसङ्काशां चन्द्ररश्मिसमप्रभम् । लसत्सुवर्णजे पात्रे चारु मृद्दोदनं प्रिये ॥१॥  
हिङ्गजीरमरीचाद्यराद्रकै रचितः शुभः । वटकः कुङ्गमाकारः पायसं हिमसन्निभम् ॥२॥  
दुग्धमावर्तिं सम्यक् शर्करासारपूरितम् । कपिलाधृतसंयुक्तं भूर्जवच्छेभिमण्डकाः ॥३॥  
शर्करा फाणिताशैव सूर्यं मुद्रोद्धरं तथा । नानाविधानि पेयानि व्यञ्जनानि बहूनि च ॥४॥ इति।

उत्तरतत्त्वे—

निधाय स्वर्णजे पात्रे साधारं तच्च मण्डले । संस्थाप्य चतुरस्ते च संस्कुर्यच्छास्त्रमार्गतः ॥१॥  
अस्त्रमन्त्रेण संप्रोक्ष्य चक्रमुद्राभिरक्षितम् । वायुबीजेन संशोष्य वह्निबीजेन संदहेत् ॥२॥  
सृशन् दक्षकराग्रेण सुधाबीजेन मन्त्रवित् । अमृतीकृत्य तत्सर्वं मूलमन्त्रेण तत्पुनः ॥३॥  
सृशन् कराभ्यां विधिवदष्टधा चाभिमन्त्रयेत् । धेनुमुद्रां प्रदश्यर्थं गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥४॥  
देवमध्यर्थ्यं कुर्याच्च पुष्पाङ्गलिमनन्यधीः । हेमपात्रस्थितं द्रव्यं परमात्रं सुसंस्कृतम् ॥५॥  
पञ्चधा षड्सोपेतं गृहण मम सिद्धये । मूलमन्त्रं समुच्चार्यं स्वाहानं जलमर्पयेत् ॥६॥  
कराभ्यां तत्समुद्धृत्य पूजितं च सुधात्मकम् । निवेदयामि भवते सानुगायं जुषाण तत् ॥७॥  
सर्वपूजासु तत्रामा नैवेद्यस्य मनुस्त्वयम् । प्राणसंज्ञस्थापानो व्यानोदानमनू ततः ॥८॥  
समानो डेयुताः सर्वे प्रणवाद्या द्विठान्तकाः । पञ्चमन्त्रा भवन्तीह क्रमेण परिकीर्तिताः ॥९॥ इति।

प्राणादीनां मुद्रास्त्वये वक्ष्यन्ते । नैवेद्यसंस्कारसन्निवेदनप्रकारश्च प्रयोगे वक्ष्यते । सृतिसमुच्चये—

त्रिषु वर्णेषु दातव्यं विष्णावे पाकभोजनम् । खण्डाज्यादिकृतं पाकं न दुष्येच्छृङ्गजन्मनः ॥१॥ इति।  
श्राद्धकल्पे—शूद्रैस्त्वामात्रेनैव दशाहादिं पिण्डं देयमित्युक्तं, तेन देवतानैवेद्यमप्यामात्रेनैव देयं तुल्यन्यायादिति।

मन्त्रतत्त्वप्रकाश में कहा है कि पाद एवं आचमनीय देवर नैवेद्य अर्पित करना चाहिये । सन्तुमारकल्प में कहा गया है कि इस प्रकार पाँच आवरणों सहित कृष्ण का अर्चन करके केला फल के साथ पायस निवेदित करना चाहिये । ज्ञानार्णव में कहा गया है कि शुद्ध स्फटिक के समान एवं चन्द्ररश्मि के समान प्रभा वाला मृदुल भात सोने के पात्र में रखकर, हिंग जीरा मीठ आदि से रचित कुङ्गमाकार बड़ा, बर्फ के समान पायस, शक्करमिश्रित दूध, कपिला धृत संयुक्त, भोजपत्र के समान शोभित मण्डक, शक्कर फाणित सूप, सुन्दर गोदुध निर्मित नानाविध पेय, बहुत से व्यञ्जनों का भोग लगाना चाहिये ।

उत्तरतत्त्व में कहा गया है कि चतुरस्त मण्डल में आधार रखकर उस पर सोने का पात्र रखे । शास्त्र मार्ग से उसे शुद्ध करे । अस्त्र मन्त्र से पात्र का प्रोक्षण करे । चक्र मुद्रा से रक्षण करे । वायुबीज ‘वं’ से सुखावे । अग्निबीज ‘रं’ से तपावे । दाँये हाथ से पकड़कर सुधाबीज ‘वं’ से अमृतीकरण करे । फिर उसका स्पर्श हाथों से करके मूलमन्त्र के आठ जप से उसे अभिमन्त्रित करे । धेनुमुद्रा दिखाकर गन्ध-पुष्प से अर्चन करे । देव का अर्चन करके अनन्य मन से पुष्पाङ्गलि निवेदित करते हुये यह मन्त्र पढ़े—

हेमपात्रस्थितं द्रव्यं परमात्रं सुसंस्कृतम् । पञ्चधा षड्सोपेतं गृहण मम सिद्धये ॥

तदनन्तर मूलमन्त्र बोलकर स्वाहा कहते हुये जल अर्पित करे । तब इस मन्त्र का पाठ करे—

कराभ्यां तत्समुद्धृत्य पूजितं च सुधात्मकम् । निवेदयामि भवते सानुगायं जुषाण तत् ॥

सभी पूजा में देवता के नाम से नैवेद्य अर्पित करे । तब भावाना करे कि देवता भोजन कर रहे हैं, उस समय इन पञ्चप्राणों के मन्त्र पढ़े—३० प्राणाय स्वाहा । ३० अपानाय स्वाहा । ३० व्यानाय स्वाहा । ३० उदानाय स्वाहा । ३० समानाय स्वाहा ।

इन मन्त्रों को कहते हुये देवता के आगे प्राण आदि मुद्राओं को दिखावे । सृतिसमुच्चय में कहा गया है कि विष्णु को पका हुआ भोजन निवेदित करने का तीनों वर्णों को अधिकार है । शक्कर एवं गोदृत से बने पक्वात्र शूद्र अर्पित न करे ।

## नित्यहोमविधि:

ज्ञानार्णवे—‘सङ्कल्प्य परमेशान्ये नित्यहोमविधिं चरेत्’ इति सङ्कल्प्य नैवेद्यम्। उत्तरतन्त्रे—  
इत्यं तु संस्कृते वह्नौ देवमावाह्य मन्त्रवित्। सम्पूज्य मूलमनुगा पञ्चविंशतिमाहुतीः ॥१॥  
हुनेदाज्येन हविषा तिलैर्वा पायसैः शुभैः । तण्डुलैस्तिलमिश्रैर्वा केवलैर्वर्थं पुष्टकैः ॥२॥  
अङ्गावरणदेवानामेकैकामाहुतिं हुनेत्। उद्वास्य वह्निदेवं तु पूजास्थानं व्रजेत्ततः ॥३॥

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि देवी को सङ्कल्पपूर्वक नैवेद्य निवेदित करके नित्य होम विधि का अनुष्ठान करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार संस्कृत अग्नि में मन्त्रज्ञानी देवता का आवाहन करे। मूल मन्त्र से उनका पूजन कर पच्चीस आहुति आज्य से या हवि से या तिल से या पायस से या तिल-चावल से अथवा केवल फूलों से प्रदान करे। आवरण देवताओं को एक-एक आहुति देवे। तदनन्तर अग्नि देवता का उद्वासन करके पूजा स्थान में बैठे।

## पूजास्थाने भूतबलिः

उपविश्यासने मन्त्री दद्याद्बूतबलिं ततः । ईशाने मण्डलं कृत्वा साधारं तत्र निक्षिप्तेऽपि ॥४॥  
अन्नव्यञ्जनतोयाद्यं पात्रे पुष्पादिपूजिते । ध्यात्वा भूतानि संपूज्य ततस्तेभ्यो बलिं हरेत् ॥५॥ इति।  
भूतानां ध्यानं पीठपूजाप्रकरणे प्रोक्तम् । बलिमन्त्रो बल्युत्सग्ग्रिकारश्च प्रागेवोक्तः । उद्वास्य पूजाचक्रे देवं  
स्वात्मनि वह्नौ चेति अग्निसंस्कारः प्रागेवाभिहितः ।

पूजास्थान में आसन पर बैठ कर भूतबलि प्रदान करे। ईशान में मण्डल बनाकर आधार स्थापित करे। उस पर पात्र को पूजकर अन्न व्यञ्जन जल को उस पात्र में रखे और भूतों का ध्यान करके बलि प्रदान करे।

## नित्यहोमेऽग्न्याधानाभावः

संक्षेपप्रकारेऽपि वसिष्ठः—‘अग्न्याधानादिकं कर्म नित्यहोमे न विद्यते’ इति।  
संक्षेपप्रकार में वसिष्ठ ने कहा है कि अग्न्याधानादि कर्म नित्य हवन में नहीं होता।

## उत्तरापोशानताम्बूलारात्रिकवर्णनम्

नारदीये—‘पुनराचमनं दद्यात्करोद्वृत्तनमेव च’। पुनराचमनीयमुत्तरापोशानं चकाराद् गणदूषदन्तधावनादीन्युक्तानि।  
प्रपञ्चसारे—‘पुनर्नैवेद्यमुद्भूत्य पुरोवत्परिपूज्य च। मुखवासादिकं दत्त्वा’ इति। नारायणीये—  
सकर्पूरं च ताम्बूलं दद्यात्रीराजनं तथा। समर्प्य मुकुटादीनि भूषणानि विचक्षणः ॥१॥  
आदर्शयेत् तथादर्शं कल्पयेच्छ्रव्यामरे । इति।

## अगस्त्यः—

कर्पूरशकलोन्मिश्रं नागवल्लीदलैर्युतम् । सुधाबिन्दुसमायुक्तं पूरीफलमनोहरम् ॥१॥  
ताम्बूलं रघुनाथाय दत्त्वा कामानवान्युयात् । इति।

सुधाबिन्दुशूर्णम्। नीराजनमाह सोमशम्भुः—‘शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम्’ इति। नीराजन-शब्देनारात्रिकमुच्यते। तत्र ज्ञानार्णवे—

आरात्रिकं ततः कुर्यात्सविकामार्थसिद्धये । सौवर्णे राजते कांस्ये लोकनेत्रमनोहरम् ॥१॥  
कुङ्कुमेन लिखेत्यद्यं वसुपत्रं वरानने । दीपमेकं कर्णिकायां वसुपत्रेऽष्टदीपकान् ॥२॥  
यवगोधूरचितान् शर्करादुर्गथसंयुतान् । वलयाङ्गितशोभाभिः शोभितान् घृतपूरितान् ॥३॥  
अभिमन्त्र ततो मन्त्री रत्नेश्वर्या ततः परम् । मूलमन्त्रेण चाभ्यर्च्यं ततश्चारात्रिकं चरेत् ॥४॥  
तत्पात्रं तु समुद्भूत्य मस्तकान्तं पुनः पुनः । नववारं महादेव्यास्ततो नीराजनं चरेत् ॥५॥

आरात्रिकं महादेव्याश्क्रमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति।

**रलेश्वरीमन्त्रः प्रागेवोद्भृतः।**

नारदीय में कहा गया है कि पुनराचमन और करोदृत्तन प्रदान करे। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि पुनः नैवेद्य देकर पूर्ववत् पूजन करके मुखवास आदि देवे। नारायणीय में कहा गया है कि कपूरसहित ताम्बूल प्रदान करे। तदनन्तर आरती करके मुकुटादि भूषण अर्पित करे। दर्पण दिखाकर छत्र चामर समर्पित करे। अगस्त्य ने कहा है कि कपूरखण्ड से सुवासित नागबल्ली दल (ताम्बू), सुधाबिन्दु से युक्त मनोहर पूगीफल से समन्वित ताम्बूल रघुनाथ को देने से सभी कामनाएँ पूरी होती हैं। सुधाबिन्दु चूर्ण को कहते हैं। सोमशम्भु के अनुसार नीराजन शब्द का अर्थ आरती है। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि तब सभी काम एवं अर्थ की सिद्धि के लिये आरती करे। एतर्थ सोना, चाँदी, काँसा के सुन्दर पात्र में कुङ्कम से अष्टदल कमल बनाकर एक दीपक उसकी कणिका में एवं आठ दीपक आठों दलों में रखे। सभी दीपक, गेहूँ के आटे में शक्कर-दूध मिलाकर वलययुक्त सुन्दर बनाकर धी से भरे। उन्हें रत्नेश्वरी मन्त्र से मन्त्रित करे। मूल मन्त्र से अर्चन करे। तब आरती करे। उस पात्र को माथे तक ले जाकर नव बार घुमाकर महादेवी की आरती करे। महादेवी को चक्रमुद्रा दिखावे।

जपप्रकारः

**कात्यायनीतन्त्रे—**

**इत्थमारात्रिकं कृत्वा प्रणाम्य परदेवताम् । प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रेण साधकः ॥१॥**

**न्यासं कृत्वा यथापूर्वं देवीं ध्यात्वा हृदम्बुजे । मूलमन्त्रं यथाशक्तिं जपेत्तद्वित्तमानसः ॥२॥ इति।**

कात्यायनी तन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार आरती करके परदेवता को प्रणाम करे। तदनन्तर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके यथापूर्वं न्यास करके हृदयकमल में देवी का ध्यान करे। तदनन्तर देवमय होकर यथाशक्ति मूल मन्त्र का मानसिक जप करे।

**मन्त्रशुद्धिलक्षणम्**

**कुलार्णवे—**

**ग्रथित्वा मातृकावर्णमूलमन्त्राक्षराणि च । क्रमोत्क्रमात् त्रिरावृत्या मन्त्रशुद्धिरितीरिता ॥१॥ इति।**

कुलार्णव में कहा गया है कि मूल मन्त्र के अक्षरों को मातृका वर्णों से ग्रथित करके क्रम-उत्क्रम से तीन बार जप करने से मन्त्र शुद्धि होती है।

जपमङ्ग्लानियमस्तवपाठादि

**शारदातिलके—**

**सहस्रकृत्वः सङ्ग्राम्य मूलमन्त्रमनन्यथीः । तं जपं सर्वसम्प्रत्यै देवतायै समर्पयेत् ॥१॥ इति।**

**नित्यहोमे कालान्तरमाह दक्षिणामूर्तिः—‘यथाशक्ति जपं कृत्वा नित्यहोमं समाचरेत्’ इति। शैवागमे—अष्टोत्तरसहस्रं तु तदर्थं त्रिशतं तु वा । अष्टोत्तरशतं वापि जपेत्रित्यमतन्द्रितः ॥१॥**

जपे जपसमर्पणप्रकारश्च प्रयोगे वक्ष्यते ।

**इत्थं जपं समर्पयाथ घण्टावादनपूर्वकम् । स्तुवीत स्तुतिभिः सम्यक्साधको भक्तिसंयुतः ॥१॥ इति।**

शारदा तिलक में कहा गया है कि एकाग्र बुद्धि से मूल मन्त्र का एक हजार जप करके सभी सम्पत्तियों के लिये उस कृत जप को देवता को समर्पित करे। प्रसंग में नित्यहोम में कालान्तर के बारे में दक्षिणामूर्ति का वचन है कि यथाशक्ति जप करके नित्य हवन करे। शैवागम में कहा गया है कि एक हजार आठ या पाँच सौ या तीन सौ या एक सौ आठ बार नित्य जप तन्द्रारहित होकर करे। जप समर्पण के विषय में कहा गया है कि इस प्रकार जप समर्पण करके घण्टा बजाते हुए भक्तिसहित स्तुतियों से स्तुति करे।

## शूद्राणां पौराणिकस्तवपाठेऽपि निषेधतत्कलवचनम्

उत्तरतत्र—

पौराणिकैर्वेदिकैश्च मूलमन्त्रेण चैव हि। प्रदक्षिणं प्रणामं च कुर्याद्विर्थार्थसाधनम् ॥१॥  
ततः क्षमापयेन्मन्त्रैर्वक्ष्यमाणैर्महेश्वरि । इति।

क्षमापयमन्त्राः प्रयोगे वक्ष्यन्ते। अत्र पौराणिकैर्वेदिकैरिति त्रैवर्णिकपरम्। मूलमन्त्रेणेति शूद्रपरं ज्ञेयम्,  
शूद्राणां पौराणिकस्तवपाठेऽपि निषेधात्। यदुक्तं कालिकापुराणे—

मोहाद्वा कामतः शूद्रः पुराणं संहितां स्मृतिम्। पठन्नरकमाम्बोति पितृभिः सह पापकृत् ॥१॥ इति।

पञ्चरात्राणां तु श्रवणेऽपि नाधिकारः। यदुक्तं नारदपञ्चरात्रे—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां पञ्चरात्रं विधीयते। शूद्रादीनां न तच्छ्रोत्रपदवीमधिरोहति ॥१॥ इति।

तदुक्तं मेरुतत्र—

ब्राह्मणो वेदमन्त्राद्यैः क्षत्रियः संहितादिभिः। पौराणिकाद्यैर्वेश्यस्तु शूद्रस्तु प्राकृतादिभिः ॥१॥

मोहाद्वा कामतः शूद्रः पुराणं संहितां स्मृतिम्। पठन्नरकमाम्बोति पितृभिः सह पापकृत् ॥२॥

यः शूद्रो बुद्धिपूर्वं तु शृणुयाच्छावयेद् द्विजः। वदन्तौ द्वौ दुःखितौ स्तोऽस्मिन् भवेऽन्ते च नारकौ ॥३॥

अधिकारमदाद्यस्तु धनस्य मदतोऽपि वा। शूद्रश्च शृणुयाद्वेदं स निर्वशश्च निर्धनः ॥४॥

अज्ञानाच्चेच्छुतो वेदः श्रावितो वा द्विजन्मना। प्राजापत्यत्रयं कृत्वा तौ द्वौ शुद्धौ भविष्यतः ॥५॥ इति।

उत्तरतत्र में कहा गया है कि धर्म-अर्थ के साधन के लिये द्विज वैदिक या पौराणिक मन्त्रों से तथा शूद्र मूल मन्त्र से देवता की प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करे। तब विहित मन्त्र से क्षमापन करे। कालिका पुराण में कहा भी गया है कि मोह से अथवा कामना से शूद्र यदि पुराण, संहिता, स्मृति का पाठ करता है तो इस पाप से वह पितरों के साथ नरक में जाता है। पञ्चरात्रों को श्रवण करने का भी शूद्रों को अधिकार नहीं है।

जैसा कि नारदपञ्चरात्र में कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये ही पञ्चरात्र का विधान है। शूद्रों को इसे सुनने का भी अधिकार नहीं है।

मेरुतत्र में कहा गया है कि ब्राह्मण वैदिक मन्त्र से, क्षत्रिय संहितामन्त्र से, वैश्य पौराणिक मन्त्र से और शूद्र प्राकृत मन्त्र से पूजा का समापन करे। मोहवश या कामनावश भी शूद्र यदि पुराण, संहिता, स्मृति का पाठ करता है तो इस पाप से वह अपने पितरों के साथ नरक में जाता है। जो शूद्र बुद्धिपूर्वक इन्हें सुनता है और जो द्विज उन्हें सुनता है, वे दोनों नरकगामी होते हैं। अधिकार के मद से या धन के मद से जो शूद्र वेद का श्रवण करता है, वह निर्वश और निर्धन होता है। अज्ञानतावश भी जो शूद्र वेद को सुनता है और जो द्विज उसे सुनता है, वे दोनों ही तीन प्राजापत्य ब्रत का अनुष्ठान करके शुद्ध होते हैं।

## आराधनोद्वासनप्रकारः

शैवागमे—

अर्थ्यपात्रं समुद्धृत्य मूलमुच्चार्य मन्त्रवित्। साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया ॥१॥

तत्सर्वं भगवज्ञम्भो गृहणाराधनं परम्। इत्यर्थोदकमुत्सुज्य किञ्चिद्देवस्य दक्षिणे ॥२॥

करे समर्पयेद्विद्वान् कृतमाराधनं शिवे । इति।

कुलार्णवे—

कृतार्चनादिकं सर्वं समन्त्रोदपुरःसरम् । इतः पूर्वादिमनुना देवतायै समर्पयेत् ॥१॥ इति।

इतः पूर्वमिति मन्त्रः प्रागेव प्रदर्शितः। सनक्तुमारः—‘उद्वासयेत्तो देवं परिवारगणैः सह’ इति। प्रपञ्चसारे—

‘सुत्वेन्दुखण्डपरिमण्डितमौलिमेवमुद्वासयेत्पुनरमुं हृदयाम्बुजे स्वे’ इति। शिवरहस्ये—

रश्मिरूपा महेशस्य पूजिता याश्र देवताः । श्रीशिवाङ्गे विलीनास्ताः सनु सर्वाः शुभावहाः ॥१॥  
 इति पुष्पाङ्गलिं दत्त्वा प्रणाम्य परिभावयेत् । देवस्याङ्गे विलीनं तद्रश्मिवृद्मशेषतः ॥२॥  
 तेजोरूपं शिवं ध्यात्वा क्षमस्वेति पुनः पुनः । क्षमायारोपयेत् स्वीयहृदम्भोजे महेश्वरम् ॥३॥  
 गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर । यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥४॥  
 विसृज्यानेन मन्त्रेण ततः पूरकवायुना । ध्यायंस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा तं स्थापयेद्वृदि ॥५॥  
 तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर । यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥६॥  
 विसृजेत्संहारमुद्यापा ।

संहारमुद्रां बद्ध्वा च तेजोरूपां महेश्वरीम् । विभाव्य पुष्पेणोद्भृत्य वहन्नासाध्वना शिवे ॥१॥  
 प्रवेश्य द्वादशान्तस्थसहस्रारसरोरुहे । विश्राम्य मध्यनाड्या तामानीय हृदयाम्बुजे ॥२॥  
 संस्थाप्य सम्यक् संपूज्य स्वात्मानं तन्मयं स्मरेत् ।

इति हंसपारमेश्वरवचनात् ।

शैवागम में कहा गया है कि मन्त्रवित् अर्थपात्र लेकर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये—

साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया । तत्सर्व भगवञ्चल्लभो गृहणाराधनं परम् ॥

यह कहकर अर्धोदक देकर उसमें से कुछ देवता के दाँयें हाथ में समर्पित करे। कुलार्णव में कहा गया है कि सभी मन्त्रों से अर्चनादि करके ‘इतः पूर्वम्’ मन्त्र से कृत पूजा देवता को समर्पित करे।

सनत्कुमार ने कहा है कि तदनन्तर परिवारसहित देवता का उद्वासन करे। प्रपञ्चसार में भी कहा गया है कि देवता की विधिवत् स्तुति काके अपने हृदयकमल में उनका उद्वासन करे। शिवरहस्य में कहा गया है कि महेश के रश्मिरूप जिन देवताओं का पूजन हुआ, उनके श्री शिव के अंग में विलीन होने की भावना करे। वे सभी मेरे लिये कल्याणकारी हों—ऐसी भावना करते हुये पुष्पाङ्गलि देकर उन्हें प्रणाम करे। तेजोरूप शिव का ध्यान करके बार-बार क्षमा माँगे और क्षमापन के बाद महेश्वर को अपने हृदय कमल में स्थापित करे। तदनन्तर यह मन्त्र पढ़े—

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर । यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥

इस मन्त्र से विसर्जन करके पूरब वायु से ध्यान करके निम्न मन्त्र से अपने हृदय में स्थापित करे—

तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर । यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥

हंसपारमेश्वर में कहा गया है कि तदनन्तर संहार मुद्रा बाँधकर तेजोरूप महेश्वरी की भावना करके चक्र से पुष्प लेकर प्रवहमान नासापुर से द्वादशान्तस्थ सहस्रदल कमल में प्रवेश कराकर विश्राम कराये। तब सुषुम्ना मार्ग से उसे अपने हृदयकमल में लाकर स्थापित करके उनका पूजा करे। तब अपने को देवीरूप में समझे।

#### निर्माल्यनिवेदनविधिः

कुलमूलावतारे—

ऐशान्यां मण्डलं कुर्याद्द्वारपद्मविवर्जितम् । विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिण्याः पूजनाय वै ॥१॥  
 निक्षिप्य तस्मिन्निर्माल्यं मन्त्रेण तु समर्चयेत् । चण्डेश्वरि महादेवि निर्माल्यैश्वन्नादिभिः ॥२॥  
 लेहाचोष्यान्नपानादिनिर्माल्यस्त्रिविलेपनम् । निर्माल्यभोजिन्यै तु भृं ददामि श्रीशिवाज्ञया ॥३॥

इति नैवेद्यशेषं तु दत्त्वा नत्वा विसर्जयेत् । इति।

गणेश्वरपरामर्शिण्याम्—‘लम्बोदराय निर्माल्यमैशान्यां मण्डले न्यसेत्’ इति। संमोहनपञ्चरात्रे—‘विश्र-क्सेनाय निर्माल्यं नैवेद्यं च निवेदयेत्’। शैवागमे—

पूर्वोत्तरदिशि प्रान्ते चण्डेशं मण्डलेऽर्चयेत् । देवदेवस्य निर्माल्यैर्थ्यायिनं चन्द्रशेखरम् ॥१॥ इति।

वामदेवतन्त्रे—

तेजश्छण्डोऽस्य निर्माल्यभोक्ता देवेशि यत्तः । तस्मै समर्पयेन्नित्यं नाजिग्रेन्नाक्रमेच्च तत् ॥२॥ इति।

कुलमूलावतार में कहा गया है कि ईशान दिशा में विना द्वारा और पद्म के निर्माल्यधारिणी के पूजन एवं विसर्जन के लिये एक मण्डल बनावे। उस पर निर्माल्य रखकर मन्त्र से चण्डेश्वरी महादेवी का निर्माल्य-चन्दनादि से अर्चन करे; तदनन्तर निम्न मन्त्र से शेष नैवेद्य प्रदान करते हुये प्रणाम करके उनका विसर्जन करे—

लेह्णोष्यात्रपानादिनिर्माल्यस्तग्विलेपनम् । निर्माल्यभोजिन्यै तु भूयं ददामि श्रीशिवाज्ञाया ॥

गणेशपरामर्शिनी में कहा गया है कि गणेश के लिये निर्माल्य को ईशान मण्डल में रखे। समोहनपञ्चरात्र में कहा गया है कि विश्वक्षेत्र के लिये निर्माल्य एवं नैवेद्य निवेदित करे। शैवागम में कहा गया है कि पूर्वोत्तर दिशा में अन्तिम मण्डल में चण्डेश्वर का निर्माल्य से अर्चन करे एवं देवदेव चन्द्रशेखर का ध्यान करे। वामदेवतन्त्र में कहा गया है कि निर्माल्य के भोक्ता तेजश्छण्ड है। इसलिये उन्हें नित्य निर्माल्य समर्पित करे। इसे स्वयं न तो सूँधे और न ही लाँघे।

### अच्छिद्रार्थं भास्करार्थदानम्

उत्तरतन्त्रे—

ततो भास्करबीजेन सहितेनामुना ततः । मन्त्रेण भास्करायार्थमच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ॥१॥

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे । जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥२॥

ततः कृत्वा द्विलिर्भूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम् । एकाग्रमनसा वानेरच्छिद्रमवधारयेत् ॥३॥

ॐ यज्ञच्छिद्रं तपश्चिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम । अच्छिद्रमस्तु तत्सर्वं भास्करस्य प्रसादतः ॥४॥

भास्करबीजं त्र्यक्षरमन्तः, स मन्त्रस्तत्प्रकरणे बोद्धव्यः ।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि तदनन्तर भास्कर बीजसहित उनके मन्त्र से अच्छिद्रार्थ अर्थ प्रदान करे। अर्थ मन्त्र है—

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे । जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥

तत्पश्चात् हथं जोड़कर निम्न मन्त्र पढ़कर एकाग्र मन से अच्छिद्रावधारण करे—

ॐ यज्ञच्छिद्रं तपश्चिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम । अच्छिद्रमस्तु तत्सर्वं भास्करस्य प्रसादतः ॥

भास्करबीज त्र्यक्षर है—हां हीं सः ।

### निर्माल्यथारण-प्रसादस्वीकारास्वीकारव्यवस्था

विजयमालिनीतन्त्रे—

अर्थतोयेन देवेशि गन्यं पूजावशेषितम् । आलोङ्घ किञ्चिन्मूलेन मन्त्रयेदष्टधा शिवे ॥१॥

प्रोक्षयेतेन तोयेन स्वात्मानं मूलमन्त्रतः । निर्माल्यं मस्तके धार्वं मूलमन्त्रेण मन्त्रिणा ॥२॥

प्राश्य पादोदकं देवि नैवेद्यं विभजेत्रिये । तद्वक्तेभ्यः स्वयं भुक्त्वा तन्मयो विहरेत्सुखम् ॥३॥

न तु शिवादिप्रसादस्वीकारनिन्दावचनविरोधः, तस्याशुचिपरत्वात् । स्कन्दपुराणे तत्रिमाल्यस्वीकारस्यो-कृत्वात् यथा—

ब्रह्महापि शुचिभूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् । तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाब्रते ॥१॥

स्नपयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्तपनोदकम् । त्रिः पिबेत्रिविधं पापं तस्येहापि प्रणश्यति ॥२॥

लिङ्गस्तपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्धाभिषेचनम् । गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्ननः ॥३॥ इति।

तथा—

निर्माल्यं हि तु यो भक्त्या शिरसा धारयिष्यति । अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः ॥१॥  
नरके पतते घोरे तिर्यग्योनौ प्रजायते । इति ।

### कालिकापुराणे—

फलं पुष्टं च ताम्बूलमन्नपानादिकं च यत् । अदत्त्वा तन्महादेव्यै न भोक्तव्यं कदाचन ॥१॥  
पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधकः । तथा तस्यै निवेदैव स्वमर्थमुपकल्पयेत् ॥२॥ इति ।

विजयमालिनी तन्त्र अर्थजल में पूजावशिष्ट कुछ गन्ध मिलाकर मूल मन्त्र के आठ जप से उसे मन्त्रित करे । उस जल से मूल मन्त्र से अपना प्रोक्षण करे एवं मूल मन्त्र से निर्माल्य को अपने शिर पर धारण करे । पादोदक का पान करे । नैवेद्य को भक्तों में बाँटकर स्वयं भी ग्रहण करे और तन्मय होकर सुख से विहार करे । स्कन्दपुराण में शिवनिर्माल्य को ग्रहणीय बताते हुये कहा गया है कि ब्रह्महत्यारा भी पवित्र होकर यदि शिव-निर्माल्य को धारण करता है तो उसके महापाप को भी मैं शिव शीघ्र ही नष्ट कर देता हूँ । जो विधिवत् सान करके लिङ्ग स्नपन जल को तीन बार पीता है, उसके तीनों पापों का नाश हो जाता है । लिङ्ग स्नपन जल से अपने शिर पर जो अधिषेक करता है, उसे गंगासान का फल मिलता है और वह निष्पाप हो जाता है । अपवित्र साथ ही यह भी कहा गया है कि मर्यादाहीन, पापी मनुष्य यदि भक्ति से निर्माल्य को शिर पर धारण करता है, वह घोर नरक में गिरने के बाद भी पुनः तिर्यक् योनि में जन्म लेता है ।

कालिकापुराण में कहा गया है कि फल-फूल-ताम्बूल-अन्न-पानादि कुछ भी महादेवी को समर्पित किये बिना स्वयं ग्रहण न करे । रास्ते में या पर्वत के आगे या सभा में भी साधक देवी को निवेदित करके ही अपने लिये उन्हें ग्रहण करे ।

### शिवविष्ववादीनामन्तरकरणे दोषः

#### वराहपुराणे—

विष्णुरुद्रान्तरं ब्रूयाच्छ्रीगौर्योरन्तरं तथा । नास्तिकानां तु मूर्खाणां वाक्यं शास्त्रविगर्हितम् ॥१॥ इति ।

#### भविष्यपुराणे—

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा लक्ष्मीस्तथा ह्रुमा । उमा यथा तथा गङ्गा चतूर्लयं न विद्यते ॥१॥ इति ।

#### तत्रैव—

विष्णुरुद्रान्तरं यस्तु श्रीगौर्योरन्तरं तथा । गङ्गागौर्योरन्तरं च यो ब्रूते मूढधीस्तु सः ॥१॥

रौत्रवादिषु घोरेषु नरकेषु पतत्यधः । इति ।

#### भविष्योत्तरे—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः । महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते ॥१॥

पावकः कात्तिकेयोऽसौ कात्तिकेयो विनायकः । गौरी लक्ष्मीश्वरी सावित्री शक्तिभेदाः प्रकीर्तिताः ॥२॥

देवं देवीं समुद्दिश्य यः करोति ब्रतं नरः । न भेदस्त्र मन्त्रव्यः शिवशक्तिमयं जगत् ॥३॥ इति ।

#### पद्मपुराणे—

सौराश्र शैवगणोशा वैष्णवाः शक्तियाजकाः । मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षापिः सागरं यथा ॥१॥

एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल । देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याह्वाननामभिः ॥२॥ इति ।

विष्णुवचनं गीतासु—‘अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च’ इति । प्रभुः फलदाता । विष्णुपुराणे—  
यजन् यज्ञान् यजत्येनं जपत्येन जपन् नृप । घनस्तथान्यं हिनस्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः ॥१॥ इति ।

इत्यं सर्वत्र सर्वरूपेण श्रीविष्णोरेव क्रीडितत्वात् स्वेष्टदेवतास्वीपहारस्वीकारो न दोषावह इति प्रतिभाति विचारकाणामिति । अत्रादत्त्वा तदित्यनेन निवेदैवेत्यनेन च किञ्चिद्दोक्तव्यमिति वा, यदेयं तदथ भोक्तव्यमिति

वा विधीयते। अत्र केचिद्विनियुक्तविनियोगदोषाद्वाहत्तापहारप्रसङ्गाच्य पूर्वः पक्षः श्लाघीयान् इति वदन्ति। वस्तुतस्मुकिञ्चिदप्रशोषादिवादाभावात् कर्मान्तराश्रुतेनिर्विदेनभोजनयोरेककर्मकत्वाच्छ्रुतिसंवादात् तत्रदेशितत्वाच्चोत्तरपक्ष एव श्रेयानिति। श्रुतिः—‘तस्माद्विद्वांसो विष्णोर्यद्वतं भक्षयेयुः’ इति। नारदपञ्चरात्रे—

यत्किञ्चित्त्वीयमश्नीयात्पुरो विप्र निवेदितम् । विष्णोर्वाक्यायमनसा मूलं साईशतं जपेत् ॥१॥

इति प्रायश्चित्तप्रयुक्तम्। विप्रेति नारदसम्बोधनम्। नित्यपूजायां संक्षेपप्रकारः प्रयोगे वक्ष्यते।

वराहपुराण में कहा गया है कि जो विष्णु और शिव में या लक्ष्मी और गौरी में भेद मानता है, उन नास्तिकों मूर्खों का कथन शास्त्र द्वारा निन्दित कहा गया है।

भविष्य पुराण में कहा गया है कि जैसे शिव है, वैसे ही विष्णु हैं। जैसी लक्ष्मी हैं, वैसी ही उमा हैं। जैसी उमा है, वैसी ही गंगा है। ये चार रूप नहीं हैं। जो मूर्ख व्यक्ति विष्णु और शिव में, लक्ष्मी और गौरी में एवं गंगा और गौरी में भेद मानता है, वह घोर रौर नरक में जाता है।

भविष्योत्तर पुराण में कहा गया है कि जो ब्रह्मा हैं, वे ही विष्णु हैं। जो विष्णु हैं, वे ही महेश्वर हैं। महेश्वर ही सूर्य हैं और सूर्य ही अग्नि है। अग्नि ही कातिकेय हैं और कातिकेय ही गणेश हैं। गौरी, लक्ष्मी और साक्षिंशक्ति के भेद हैं। देव-देवी के उद्देश्य से जो मनुष्य व्रत करता है, उसमें भेद नहीं मानना चाहिये; क्योंकि संसार शिव-शक्तिमय है।

पद्मपुराण में कहा गया है कि सौर, शैव, गाणपत्य, वैष्णव और शाक्त—सभी एकमात्र मुद्दा विष्णु की ही पूजा करते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे कि वर्षा का जल अन्ततः सागर में ही जाता है। मैं एक ही क्रीड़ा के लिये पाँच नामों में रहता हूँ। जैसे कि उपकारने के लिये देवदत्त अपने पुत्रों को अनेक नाम देता है। गीता में भी विष्णु ने कहा है कि मैं ही सभी यज्ञों का भोक्ता एवं फल प्रदान करने वाला है। विष्णु पुराण में भी कहा गया है कि मनुष्य यज्ञ करते हुये इन्हीं का यजन करता है, जप करते हुये इन्हीं का जप करता है एवं हत्या करते हुये इन्हीं की हत्या करता है; क्योंकि सभी भूतों में विष्णु ही रहते हैं। सर्वत्र सर्व रूप में श्री विष्णु ही क्रीड़ारत है, इसलिये स्वेष देवता के उपहार को स्वीकार करना दोषावह नहीं होता। नारदपञ्चरात्र में भी कहा गया है कि पहले विप्रों को निवेदित करने के पूर्व जो स्वयं भोजन करता है, उसे प्रायश्चित्तस्वरूप वचन तन मन से विष्णु के मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करना चाहिये।

#### नित्यपूजायामावश्यकक्रियाविद्यान्

अथ नित्यपूजायामपि यावत्यावश्यकी क्रिया तामाह, प्रपञ्चसारे—

अथ पुनराचम्य गुरुः प्राग्वदनो विष्ट्रोपविष्टः सन् ।

प्राणायामं सलिपिन्यासं कृत्वा न्यसेत्तदृष्ट्यादीन् ॥१॥ इति।

अत एव प्राणायाम-मातृकान्यास-ऋष्यादिकराङ्गन्यासानभिधायोक्तं त्रैव—‘जपारम्भे मनूनां तु सामान्येयं प्रकल्पना’ इतीयं प्राणायामादिक्रिया प्रकर्षेण कल्प्यते समर्प्यते अधिकार्यते इति प्रकल्पना, अधिकारसम्पादना सामान्या सर्ववर्णाश्रमसाधारणा, तेन तैरेव सर्वेणां पूजाधिकारः। अत एवैतेषामकरणे निन्दा श्रूयते।

नित्य पूजा में जो आवश्यक क्रियायें हैं, उनका निरूपण करते हुये प्रपञ्चसार में कहा गया है कि पुनः आचमन करके गुरु के सामने आसन पर बैठकर प्राणायाम और मातृका न्यास करके ऋष्यादि न्यास करे। प्राणायाम-मातृका न्यास-ऋष्यादि कर अंगन्यास मन्त्रजप के आरम्भ में सामान्य प्रकल्पनायें हैं। इनको करने पर ही समस्त वर्णश्रमियों को पूजा का अधिकार प्राप्त होता है। इसीलिये इनके न करने पर निन्दा प्राप्त होती है।

#### प्राणायामन्यासाद्यकरणे निन्दाश्रवणम्

यथागस्त्यसंहितायाम—

प्राणायामैर्विना यद्यत्कृते कर्म निरर्थकम्। अतो यत्नेन कर्तव्याः प्राणायामाः शुभार्थिभिः ॥१॥ इति।

**दक्षिणामूर्तिकल्पे—**

उपर्युक्त सर्वमन्त्राणां विन्यासेन लिपेविना । कृते तत्रिष्फलं विन्द्यात्स्मादादौ लिपिं च्यसेत् ॥२॥ इति।

**कपिलपञ्चरात्रे—**

ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदा । जप्यते साधितोऽप्येष तत्र तुच्छफलं भवेत् ॥१॥ इति।

**गौतमीये—**

ध्यानं जपार्चना होमः सिद्धमन्त्रकृता अपि । अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलं त्वमी ॥१॥

अत एव विहितानुष्ठाने दोषमाह याज्ञवल्क्यः—

विधिदृष्टं तु यत्कर्म करोत्यविधिना नरः । फलं न किञ्चिदाप्नोति क्लेशमात्रं हि तस्य तत् ॥१॥ इति।

आगस्त्यसंहिता में कहा गया है कि प्राणायाम के बिना जो भी कर्म किया जाता है, वह निरर्थक होता है। इसलिये कल्याण चाहने वालों को यत्नपूर्वक प्राणायाम करना चाहिये। कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि ऋषि, छन्द, देवता का विन्यास किये बिना जो जप किया जाता है, वह साधित होने पर भी तुच्छ फल देने वाला होता है।

गौतमीय में कहा गया है कि अंगन्यास के बिना ध्यान-जप-अर्चन-हवन से सिद्ध मन्त्र फल नहीं प्रदान करते। इसलिये निहित कर्तव्य के अनुष्ठान न करने में दोष बताते हुये। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि विधिदृष्ट कर्म को जो मनुष्य विधि-रहित करता है, उसे कुछ भी फल नहीं मिलता; बल्कि केवल क्लेशमात्र ही प्राप्त होता है।

**देशकालविशेषे मानसपूजनम्**

**उत्तरतन्त्रे—**

प्रवासे पथि दुर्गे वा स्थानाप्राप्तौ जलेऽपि वा । कारागारनिबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि वा ॥१॥

मनोभये समुत्यन्ते सिंहव्याघ्रसमाकुले । परचक्रागमे चैव कुर्यान्मानसपूजनम् ॥२॥

मनसा हृदयस्यान्तर्धात्वा योगाख्यपीठकम् । तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजां तत्र समाचरेत् ॥३॥

मैत्रप्रसाददं स्नानं दन्तधावनकर्म वै । अन्यच्च सर्व मनसा ध्यात्वा कुर्याच्च पूजनम् ॥४॥

यथा पुष्पादिभिः पूजा बहिर्देशे विधीयते । तथा हृद्यपि कर्तव्याः सर्वाश्च प्रतिपत्त्यः ॥५॥ इति।

जले प्रवहणादौ। प्रायोवेशगतो गृहीतानशनव्रतः। अन्यच्च सर्वमिति। मैत्रप्रसाददं दन्तधावनव्यतिरिक्तमित्यर्थः। मैत्रादीनां मानसासम्भवात्। मैत्रम्—‘यः शौचनिरतो विप्रः स वै मैत्र उदाहृतः’ इति भागुरिकृतसमुच्चयलिखित-ब्रह्माण्डपुराणवचनात्।

उत्तरतन्त्र कहा गया है कि प्रवास में, रास्ते में, किला में, अस्थान में जल में, कारागार के बन्धन में, अनशन व्रत में, मनोभय उत्पन्न होने पर, सिंह-व्याघ्र से आक्रान्त होने पर, परचक्रागम में मानसिक पूजन करना चाहिये। मन से हृदय में योगपीठ का ध्यान करके उसी में पृथ्वी के मध्य में पूजा करे। मैत्रप्रसादन, स्नान, दन्तधावन आदि अन्य कर्म मानसिक रूप से करके पूजन करे। जैसे बारह प्रत्यक्ष में पुष्पादि से पूजन किया जाता है, वैसे ही हृदय में सभी उपचारों से पूजन करना चाहिये।

**दिने प्रतियामं कर्तव्यताविभागः**

**नारदपञ्चरात्रे—**

ब्राह्मणमुहूर्तदारभ्य प्रागंशं विप्र वासरात् । जपध्यानार्चनास्तोत्रैः कायवाऽमनसा युतैः ॥१॥

अभिगच्छेज्जगद्योनिं तच्चाभिगमनं स्मृतम् । ततः पुष्पफलादीनामुत्यायार्चनमाचरेत् ॥२॥

भगवद्यागनिष्पत्तिकरणं प्रहरं परम् । ततोऽप्यङ्गेन यागेन पूजयेत्परमेश्वरम् ॥३॥

साधकः प्रहरं विप्र इज्याकालो हि स स्मृतः । श्रवणं चिन्तनं व्याख्या ततः पाठसमन्विता ॥४॥

स्वाध्यायकालं तद्विद्धि कालं तं मुनिसत्तम् । दिनावसाने संप्राप्ते पूजां कृत्वा समध्यसेत् ॥५॥

योगो निशावसानेऽथ विश्रामैरन्तरैः कृतम् । इति ।

विप्रेति नारदसंबोधनम् । आदिपदेन समिदाद्याहरणम् । 'समित्पुष्टकुशादीनां स कालः समुदाहतः' इति वचनात् । अङ्गेन यागेनेति स्वयमेव विवृणोति । 'मध्वाज्येन च दध्ना च पूजा च पशुना च या । त्रितयं तच्च यागाङ्गं तुर्यं मन्ये च पूजनम्' ।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि ब्राह्म मुहूर्त से आरम्भ करके दिन के पहले अंश में जप-ध्यान-अर्चन-स्तोत्र-तन-वचन-मन से करके जगत् योनि में जाने को अभिगमन कहते हैं । तदनन्तर पुष्ट-फल को उठाकर अर्चन प्रारम्भ करे । यह भगवद् यागनिष्ठतिकरण एक प्रहर तक किया जाता है । तब अंग याग से परमेश्वर की पूजा करे । साधक के इस प्रहर को इज्याकाल कहते हैं । श्रवण-चिन्तन-व्याख्या-पाठ को स्वाध्याय काल कहते हैं । दिन के अन्त में पूजा करके योगाभ्यास करे । तब निशावसान तक विश्राम करे ।

#### मधुपर्कप्रतिविधिः

मध्वाज्येनेत्यनेन मधुपर्कं उक्तः, पशुस्तदङ्गम्, विष्णुधर्मोत्तरे—

मधुपार्किकपश्वर्थे ततो मात्रां निवेदयेत् । सहिरण्यं बीजपात्रं द्रविणेन सदैव तु ॥

पशुः कलौ न कर्तव्य इत्याह भगवान् भृगुः । इति ।

द्रविणं दक्षिणा, एतमध्याहूपूजानन्तरं सति सम्भवे कार्यम् ।

विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है कि पशु के बदले मधुपर्क निवेदित करे । मधुपर्क को बराबर दक्षिणासहित सुवर्णपात्र में निवेदित करना चाहिये । कलियुग में पशु-निवेदन नहीं करना चाहिये—ऐसा भगवान् भृगु का वचन है ।

#### आतुरसूतकाद्यवस्थायां किङ्कर्तव्यता

तथा तत्त्वसारसंहितायाम्—

आतुरी सौतिकी धैव त्रासी दौर्बोधकी तथा । साधना भाविनी चेति पञ्चधा भिद्यते पुनः ॥१॥

यदि लङ्घनपर्यन्तो व्याधिरात्मनि दृश्यते । तदा पूजा न कर्तव्या स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥२॥

न स्नानं दन्तकाळं वा कुर्याद्बोमथापि वा । रविमण्डलमालोक्य प्रतिमामथ वा पुनः ॥३॥

मूलमन्त्रं सकृज्जप्त्वा पुष्पं साक्षतमुत्क्षिपेत् । अन्ते व्याधिभिरत्युग्रैः क्लान्तश्वैवोपवासकैः ॥४॥

न दोषोऽस्त्विति संप्रार्थ्य पुनः पूर्ववदाचरेत् ।

इति संप्रार्थ्य जपहोमादिकं कार्यम् ।

यस्तु रोगवशान्मोहवशाद्वोष उपागतः । जपेन क्षालनीयः स्याद् दानेन हवनेन च ॥१॥

ध्यानेनापि मुनिश्रेष्ठ ज्ञात्वा कर्म बलाबलम् ।

इति नारदपञ्चरात्रवचनात् । तथा—

अथ सूतकिनः पूजां वदायागमबोधितायाम् । सात्त्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु वै ॥१॥

बाह्यपूजाक्रमेणैव स्थानयोगेन पूजयेत् । यदि कामी न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत् ॥२॥

त्रासिनो वक्ष्यते पूजा यथैवागमबोधिता । लब्धं वा यदि वालब्ध्यमर्घ्यपात्रादि साधनम् ॥३॥

पूजोदकेन कर्तव्या तच्चेत्तोयं न विद्यते । तदा संपूजयेद् देवं भावनाकुसुमादिभिः ॥४॥

दौर्बोधकीं प्रवक्ष्यामि पूजामागमबोधितायाम् । मूर्खस्त्रीबालवृद्धाश्च दुर्बोधा इति भाविताः ॥५॥

रत्नमण्डपथर्मादिचतुष्कमुरगाम्बुजम् । मूलमूर्तिः षडङ्गानि तेषां पूजा विधीयते ॥६॥  
अन्येषामपि सर्वेषां प्रोक्ता संक्षेपकर्मणि । सर्वेषामेव वस्तुनां अलाभे भावनैव हि ॥७॥  
निर्मलेनोदकेनाथ पूर्णतेत्याह नारदः ।

तत्त्वसारसंहिता में कहा गया है कि साधना पाँच प्रकार की होती है—आतुरी, सौतिकी, त्रासी, दौर्बोधकी और भाविनी। यदि उपवास काल में शरीर में तकलीफ हो तो स्थापितल और प्रतिमा में पूजा न करे। न स्नान, न दतुवन, न हवन करे। सूर्यमण्डल या प्रतिमा को देखकर मूल मन्त्र का जप करके पूष्य और अक्षत उत्क्षिप्त करे। उग्र व्याधि के समाप्त होने पर उपवास से क्लान्त होने पर कुछ दोष नहीं रहता; अतः प्रार्थना करके पूर्ववत् जप-होमादि करे। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि रोग से और मोह से दोष उत्पन्न होने पर उसका मार्जन कर्म के बलाबत को जानकर जप, दान, हवन और ध्यान करना चाहिये।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि सूतक वालों के लिये आगम में कथित पूजा को कहता हूँ। स्नानोपरान्त मानसिक रूप से नित्य कर्म करके बाह्य पूजा क्रम से स्थानयोग से पूजा करे। सकामी या निष्कामी पूर्ववत् नित्य पूजा करे। भयभीतों के लिये आगम बोधित पूजा यह है कि अर्थ प्राप्तादि के लब्ध या अलब्ध होने पर जल से ही पूजा करे। यदि जल भी न मिले तो भावना-कुसुमादि से पूजा करे। दौर्बोधिकी पूजा यह है कि मूर्ख, स्त्री, बालक वृद्ध को दुर्बोध कहते हैं, वे अपने हृदयकमल में रत्नमण्डप धर्मादि चतुष्क का निर्माण कर मूलमूर्ति षडङ्ग का पूजन करें। अन्य सबों के लिये संक्षेप कर्म को कहता हूँ। सभी वस्तुओं के अभाव में भावना के जल से ही पूजा पूर्ण होती है—ऐसा नारद ने कहा है।

### पूजायाः त्रेयालक्षणम्

तथा पुनश्चित्था पूजा उत्तमाधममध्यमा ॥८॥

पत्रपुष्पाम्बुद्धनिष्ठाद्या पूजा चाधमसंज्ञिका ॥९॥

विदिताखिलवेदार्थेन्द्रह्यविद्विरकल्पसैः । क्रियमाणा तु या पूजा सात्त्विकी सा विमुक्तिदा ॥१०॥

राजिष्ठभिस्तपेनिष्ठेभर्गवत्तत्त्ववेदिभिः । या पूजा क्रियते सम्यक् राजसी सा सुखप्रदा ॥११॥

स्त्रीबालवृद्धमूर्खाद्यैर्भक्तैरक्षुद्रमानसैः । या पूजा क्रियते नित्यं तामसी सा प्रकीर्तिं ॥१२॥ इति।

उत्तम मध्यम अधम के भेद से पूजा तीन प्रकार की होती है। पत्र-पूष्य-जल से की गई पूजा अधम होती है। अखिल वेदार्थ ज्ञानी, निष्पाप द्वारा की गई पूजा सात्त्विकी होती है, जो मुक्ति के लिये होती है। तपेनिष्ठ भगवत्तत्त्व के ज्ञाता द्वारा की गई पूजा राजसी पूजा होती है, जो सुखदायिनी होती है। स्त्री बाल वृद्ध मूर्खादि भक्त अक्षुद्रमानस जो पूजा करते हैं, उसे तामसी पूजा कहते हैं।

### आराधने समर्थासमर्थविधिः

उत्तरतन्त्रे—

आराधनासमर्थश्वेद् दद्यादर्चनसाधनम् । यो दातुं नैव शक्वनोति कुर्यादर्चनदर्शनम् ॥१॥

नैकं तु यस्य विद्येत् सोऽधो यात्येव नान्यथा । यस्तु भक्त्या प्रयत्नेन स्वयं संपाद्य चाखिलम् ॥२॥

साधनं चार्जयेद्विद्वान् स समग्रफलं लभेत् । इति।

कुम्भसम्भवः—

स्वस्थः समर्थः कुर्वीत चोत्तमैरेव साधनैः । मध्यमो मध्यमेनैव न्यूनैन्यूनस्तपोधनैः ॥१॥

आपत्त्रश्वेत्समर्थोऽपि न्यूनैरेव समाचरेत् । पूजाकर्म विशेषेण देशकालानुसारतः ॥२॥ इति।

तथा मेरुतन्त्रे—

अथ सूतकिनो नित्यं वैदिकं तु स्मृतीरितम् । कृत्वा तात्रिकपूजादि मनसैव समाचरेत् ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि आराधना में असमर्थ होने पर अर्चन का साधन प्रदान करे। यदि यह देने में भी असमर्थ हो तो पूजा का दर्शन करे। दोनों में से एक भी जो नहीं करता है, वह अधोगामी होता है। जो भक्ति से यत्पूर्वक स्वयं सभी साधनों से पूजा करता है, वह विद्रान् सभी फलों को प्राप्त करता है। अगस्त्य ने कहा है कि स्वस्थ समर्थ को उत्तम साधनों से पूजा करनी चाहिये। मध्यम को मध्यम साधन से पूजा करनी चाहिये एवं तपस्वी को कम से कम साधनों से पूजा करनी चाहिये। आपत्तिग्रस्त होने पर समर्थ भी कृम साधनों से पूजा कर सकता है। इस प्रकार पूजा देश काल के अनुसार सम्पत्र करनी चाहिये। मेरुतन्त्र में कहा गया है कि सूतक लगने पर वैदिक पूजन सम्पत्र करके तान्त्रिक पूजन मन में ही करना चाहिये।

### समर्थस्य विस्ताराकरणे दोषः

**भविष्यपुराणे—**

विभवे सति यो मोहान् कुर्याद्विधिविस्तरम् । न तत्फलमवाप्नोति प्रलोभाक्रान्तमानसः ॥१॥ इति।

भविष्यपुराण में कहा गया है कि धन होने पर भी मोहवंश जो विस्तार से पूजा नहीं करता, उस प्रलोभाक्रान्त को पूजा का फल नहीं मिलता।

### कामनाभेदेन पूजास्थानम्

**शिवयामले—**

शिवपितृवनमेकलिङ्गवृक्षोद्भवजलसङ्गमचत्वरे सुदेशे ।

अपि शिवगदितं विमुच्य शस्तं निजगृह एव तु पूजनं मुमुक्षोः ॥१॥

अरण्ये स्वल्पकामानां सिद्ध्यर्थं पूजनं हितम् । निष्कामानां मुमुक्षूणां गृहे शस्तं सदार्चनम् ॥२॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-

श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्यतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे एकोनविंशः श्वासः ॥१९॥



शिवयामल में कहा गया है कि शिववन, पितृवन, एकलिङ्ग के वृक्ष के नीचे, जलसंगम, चारों सुदेशों में या अन्य भी जो शिव के स्थान कहे गये हैं, उन्हें छोड़कर मुमुक्षु को अपने ही घर में पूजन करना चाहिये। जंगल में पूजा अल्प कामना की सिद्धि के लिये हितकारी होता है। निष्काम और मुमुक्षुओं को अपने घर में ही पूजन करना श्रेष्ठ होता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्यतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव

नारायण-कृत भाषा-भाष्य में एकोनविंश श्वास पूर्ण हुआ



## अथ विंशः श्वासः

नित्यपूजाप्रयोगे साधकस्य प्रातःकृत्यविधिः

अथ नित्यपूजाप्रयोगः। तत्र श्रीमान् साधकेन्द्रो रजनीतुर्यामे शयनाद्विष्णुने समुत्थाय, स्वेष्टदेवतां सूक्त्वा वामपादं भुवि विन्यस्योत्थाय गृहाद्विहर्निर्गत्यावश्यकं कृत्वा हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य, रात्रिवासः परित्यज्ज्ञ धौते वाससी परिधायाचम्य देवतायागमान्दिरं संमार्ज्ज गोमयेनोपलिप्य वितानादिभिरलकृत्य, तत्र स्वासने उपविश्य पूजामूर्तेनिर्माल्यमपकृष्य प्रक्षाल्य संस्थाप्य प्राणायामादित्रयव्यादित्यासपूर्वकं पूर्वदिनपूजावशिष्टपत्रादिना मूर्तिं त्रिरभ्यर्च्च पाद्याचमनीये दत्त्वा, देवाय कर्पूरशकलैर्दन्तधावनं कारयित्वा सुगन्धिजलैर्गण्डूषमुखप्रक्षालनादि दत्त्वा पुनराचमनीयं निवेद्य करास्यप्रोञ्जनाय सूक्ष्मनिर्मलवस्त्रं दत्त्वा, शिरसि श्वेतसहस्रदलकमलकर्णिकायां श्रीगुरुं श्वेतवस्त्राभरणभूषितं वराभयन्यान्मुद्रापुस्तकं चन्द्रकान्तिभिं सुप्रसन्नं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेतमाल्यविभूषितं वामाङ्गगतया रक्तवर्णया रक्तवस्त्राभरणगन्धमाल्यविभूषितया वामकरधृतलीलाकमलया देव्या दक्षिणभुजेनालिङ्गितं त्रिनेत्रं शान्तमन्तर्मुखं शिवरूपिणं ध्यात्वा, तच्चरणारबिन्दयुगलनिः सृतपीयूषधारया स्वदेहमभिक्षितं सञ्चिन्त्य 'श्रीअमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि' इति तहुरुणा तत्सङ्केतकृतनामा, तदज्ञाने 'श्रीगुरुभ्यो नमः। श्रीगुरुपादुकाभ्यो नमः' इति मन्त्रेण वा गन्धादिभिरुपचारैर्मनसा वा संपूज्या।

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तम्।

योगीन्द्रीयीडं भवदुःखवैद्यं श्रीगुरुं नित्यमहं नमामि ॥

इति प्रणम्य स्वहृदि लयं भावयेत्। ततो मूलाधाराद्ब्रह्मरश्चान्तमुद्यत्सूर्यसहस्रप्रभं सुषुमान्तस्तेजोदण्डनिभं मूलमन्त्रं श्यात्वा तत्तेजसा व्याप्तं स्वशरीरं सञ्चिन्त्य वक्ष्यमाणविधिना मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा वक्ष्यमाणव्यादिकरण्डज्ञन्यासान् विन्यस्य हृदयकमले वक्ष्यमाणरूपं देवं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य मूलमन्त्रं यथाशक्तिं जपित्वा जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणम्य,

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीशङ्कर त्वच्चरणाङ्गवैव ।  
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥  
संसारयात्रामनुवर्तमानं त्वदाङ्गया शङ्कर देवदेव ।  
स्पर्धातिरस्कारकलिप्रमादभयानि मां माभिभवन्तु नाथ ॥  
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जनाम्यर्थं न च मे निवृत्तिः ।  
त्वयेन्द्रियाणामधिदैवतेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

एते प्रार्थनाश्लोका गणेशाद्युपासकैर्थायोग्यमूल्याः, इति प्रार्थ्य  
समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले । विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति भूमिं प्रार्थ्य, श्वासानुसारेण तस्यां पादं निधायेष्टदेवतानामोदीर्योत्थाय पदे पदेऽस्त्रमन्त्रं स्मरन् ग्रामाद्विहर्यम्यां नैर्झर्त्यां वा दिशि शरप्रक्षेपदूरमतीत्य दूरं गत्वा प्रमाणोक्तप्रकारेण स्थानादृष्ट्यादीनुद्वास्य यथाविधि मलमूत्रोत्सर्गं प्रमाणोक्तविधिना शौचाचमनादिकं च विधायानिषिद्धिदिनेषु विहितं दन्तकाष्ठमादाय 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' इति मन्त्रेण दन्तधावनं विधाय, दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य पुरतः शुद्धदेशे परित्यज्य, मूलमन्त्रेण मुखं प्रक्षाल्य कुशतिलगन्याक्षतकुसुमधौतवस्त्राण्यादायास्त्रादिमन्त्रितशङ्कुनोद्धृतां शुचिस्थानामृत्किंचं च गृहीत्वा जलाशयं गत्वास्त्र-

मन्त्रादिमन्त्रितजलेन तीरं प्रक्षाल्य, तत्राभिमन्त्रितं कुशादिकं निधायोद्भूतजलेन तीर्थाद्विः कटिशौचं कृत्वा स्वशाखोक्तविधिना वैदिकस्मानं विद्याय तदङ्गतर्पणं कृत्वा तीरं गत्वास्त्रमन्त्रेण मृत्तिकया मूर्धादिपादानं विलिप्य,

**आधारः सर्वभूतस्य विष्णोरतुलतेजसः । तद्वपाश्च ततो जातास्ता अपः प्रणमाप्यहम् ॥**

इति तीर्थजलं प्रणाप्य सम्मुखीकरणमुद्दानं बद्धवा प्राणवायुं निरुन्धन् जलान्तः प्रविश्य, तूष्णीं निमज्ज्यो-मज्ज्य नाभिमात्रे जले स्थित्वा 'अद्येहेत्यादि अमुकोऽहमिष्टदेवतप्रीत्यर्थं तत्रिकस्मानं करिष्ये' इति संकल्प्य, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासांशं कृत्वा, स्वपुरतो जले हस्तमात्रं चतुरत्रं तीर्थं परिकल्प्य,

**ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः सृष्टानि ते रवे । तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर ॥**

इति सूर्यतीर्थं प्रार्थ्य क्रोमित्यङ्गुशमुद्रया सूर्यमण्डलं भित्त्वा,

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नमदे सिस्युकावेरि जलेऽस्मिन् सत्रिधिं कुरु ॥

इति सूर्यमण्डलात् तीर्थमावाह्य पुरः कल्पिततीर्थमण्डले संयोज्य वक्ष्यमाणतीर्थशक्तिमन्त्रेण तीर्थशक्तिमावाह्य तत्र तां ध्यायेत् । यथा—

सर्वानन्दमयीमशेषदुरित्यध्वंसां मृगाङ्गप्रभां त्रक्षीं चोर्ध्वकरद्वयेन दधर्तीं याशं सुरिं च क्रमात् ।

दोभ्या चामृतपूणिहस्तकलशं मुक्ताक्षमालां वरं गङ्गासिन्युसरिद्वयादिसहितां श्रीतीर्थशक्तिं भजे ॥

इति ध्यात्वा, 'ॐ हां ह्रीं हूँ हैँ हैँः सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति एहोहि स्वाहा तीर्थशक्त्यै नमः' इति तीर्थशक्तिं संपूज्य, 'ॐ नमो भगवति अम्बे अम्बालिके अम्बिके महामालिन्यै एहोहि भगवति अशेषतीर्थालिवाले हींश्रीं शिवजटाधिरूढे गङ्गे गङ्गाबिके स्वाहा' इति मन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य तज्जलं हींकारेणावलोऽच्य विमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, कवचमन्त्रेणावगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठक्यास्त्रमन्त्रेण छोटिकाभिः संरक्ष्य, तत्र सचक्रं सावरणं देवं ध्यात्वा जलमयैः पञ्चोपचारैः संपूज्य मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य, तत्र मूलमन्त्रं जपन् हृदि देवं स्मरन् त्रिनिमज्ज्योम्ज्ज्यं कुम्भमुद्रां बद्धवा मूलमन्त्रेण स्वशिरसि त्रिरभिषिद्य,

**ॐ सिसूक्षोनिखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजायते । मातरः सर्वदेवानामापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥**

इति मन्त्रेण चात्मानमभ्युक्ष्य

यमे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि । ललाटे कर्णयोरक्षणोरापस्तु घन्तु वो नमः ॥

इति प्रणाप्य स्वाहानेन मूलमन्त्रेण त्रिराचम्य मूलेन च त्रिः सन्तर्प्य देवं विसृज्य तीरमागत्य, धौते वाससी परिधायोरुक्तरौ मृदाङ्गिश्च प्रक्षाल्याचम्य, प्रमाणोक्तस्ववर्णविहितं तिलकमादौ विद्याय शिवभक्ताङ्गभूतं भस्मत्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यात् । तत्र ब्राह्मणस्योर्ध्वपुण्ड्रं क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रं वैश्यस्यार्धचन्द्राकारं शूद्रस्य वृत्ताकारम् ।

नित्य पूजा प्रयोग—रात के चौथे प्रहर में साधक शयन से दक्षिणांग से उठे। अपने इष्ट देवता का स्मरण करे। वाम पैर भूमि पर रखकर शैव्या पर से उतरे। घर से बाहर जाकर आवश्यक कर्म करके हाथ-पैर धोये। रात में पहने वस्त्र को उतार कर धूला वस्त्र पहन कर आचमन करे। देवता याग मन्दिर को साफ करे, गोब्र से लीपे। चन्दोवा आदि से अलंकृत करे। आसन पर बैठकर पूजा-मूर्ति पर से निर्माल्य हटाकर मूर्ति को धोये, स्थापित करे। तीन प्राणायाम करे। अर्धादि न्यासपूर्वक पूर्वदिवस के पूजा के अवशिष्ट पत्रादि से मूर्ति का तीन बार पूजन करे। पाद्य-आचमनीय देकर देवता को कपूर के टुकड़ों से दतुवन करावे। सुगन्धित जल से कुल्ला कराकर मुख धुलावे। पुनः आचमनीय देकर हाथ-मुँह पोछने के लिये सूक्ष्म निर्मल वस्त्र दे। अपने शिर के श्वेत सहस्रदल कमल की कर्णिका में अपने गुरु का ध्यान करे। गुरु श्वेत वस्त्र एवं आभूषण भूषित हैं। उनके चारो हाथों में वर-अभय-ज्ञान मुद्रा और पुस्तक हैं। उनकी कान्ति चन्द्रमा जैसी है, वे प्रसन्न हैं। श्वेत गन्ध का उनका

अनुलेपन है। गले में श्वेत माला है। उनके बाएँ अंक में लाल वर्ण की लाल वस्त्र-आभरण-गन्ध-माला से भूषित शक्ति विराजमान है। शक्ति के बायें हाथ में लीला कमल है। वे अपने दायें हाथ से गुरु को आलिङ्गित की हुई हैं। गुरु के तीन नेत्र हैं। वे शान्त अन्तर्मुख हैं। शिवरूप में उनका ध्यान करे। उनके चरणकमल से निकलती अमृतधारा से अपने देह के अभिषिक्त होने का चिन्तन करे। तब 'श्रीअमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि' द्वारा गुरु के संकेतकृत नाम से या ज्ञात न होने पर 'श्रीगुरुभ्यो नमः' 'श्रीगुरुपादुकाभ्यो नमः' मन्त्र से गन्धादि उपचारों से उनका मानसिक पूजन करे। तदनन्तर—

आनन्दमानन्दकरं प्रसत्रं ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तम्। योगीन्द्रमीडं भवदुःखवैद्यं श्रीमदगुरुं नित्यमहं नमामि॥

इस मन्त्र से प्रणाम करके भावना करे कि गुरु उसके हृदय में लीन हो गये। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक उगते हुए हजार सूर्य की प्रभा के सदृश सुषुमा में तेजदण्ड के समान मूल मन्त्र का ध्यान करे। उसके तेज से व्याप्त अपने शरीर को देखो। विहित विधि से मूल मन्त्र से तीन प्रणायाम करके यथाविहित क्रम से ऋष्यादि, कर, षडङ्ग न्यास करे। हृदय कमल में यथाविहित रूप में देवता का ध्यान करके मानस उपचारों से उनकी पूजा करे। यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप करके जप समर्पण करे। स्तुति कर प्रणाम करते हुये निम्न श्लोकों का पाठ करे—

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीशङ्कर त्वच्चरणाशैवं। प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये॥

संसारयात्रामनुवर्तमानं त्वदाज्ञया शङ्कर देवदेव। स्पर्धातिरस्कारकलिप्रमादभ्यानि मां माभिभवन्तु नाथ॥

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जनाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः। त्वयेन्द्रियाणामिधैवतेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

इस प्रार्थना श्लोकों का पाठ करके 'समुद्रमेखले'.....'क्षमस्व मे' मन्त्र से भूमि की प्रार्थना करके चलते हुए श्वास के अनुसार भूमि पर पाँव रखे। इष्ट देवता का नाम लेकर उठे। पग-पग पर अस्त्र मन्त्र का स्मरण करते हुए गाँव के बाहर नैऋत्य दिशा में बाणप्रक्षेप से अधिक दूर जाकर प्रमाणोक्त प्रकार से स्थान को देखकर वहाँ से ऋषि आदि को उद्घासित करके यथाविधि मल-मूत्र का त्याग करे। प्रमाणोक्त विधि से शौच-आचमनादि करे। निषिद्ध दिनों में विहित दतुवन लेकर 'कलीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' मन्त्र से दतुवन करे। तब दतुवन को धोकर अपने सामने शुद्ध स्थान में फेंक दे। मूल मन्त्र से मुखशोधन करे। कुश-तिल-गन्ध-अक्षत-फूल-साफ़ वस्त्र लेकर शुद्ध स्थान से अभिमन्त्रित खन्ती से मिट्टी खोदकर उस मिट्टी को लेकर जलाशय तट पर जाय। अस्त्र मन्त्र से मन्त्रित जल से तट को धोकर उस पर अभिमन्त्रित कुशादि रखे। जलाशय से जल लेकर तट पर आकर कटि शौच करे। तदनन्तर अपने शाश्व की विधि से वैदिक स्नान करे, तर्पण करे। तट पर जाकर अस्त्रमन्त्र से शिर से पैर तक मिट्टी का लेप लगाते हुये यह मन्त्र पढ़े—

आधारः सर्वभूतस्य विष्णोरतुलतेजसः। तद्रूपाश्च ततो जातास्ता अपः प्रणमाम्यहम्॥

इस मन्त्र से जल को प्रणाम करके सम्पुर्णी मुद्रा बाँधकर प्राणवायु को निरुद्ध करके जल में प्रवेश करे। दुबकी लगा-लगाकर स्नान करे। नाभि तक जल में खड़े होकर तान्त्रिक स्नान के लिये यथाविधि संकल्प करके मूल मन्त्र से तीन प्रणायाम करे। ऋष्यादि करके षडङ्ग न्यास करे। अपने आगे जल में एक हाथ लम्बा-चौड़ा चतुरस्र तीर्थ कल्पित करके 'ब्रह्माण्डोदरतीथानि करैः स्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर॥' का पाठ करे। सूर्य से तीर्थ की प्रार्थना करके 'क्रों' इस अंकुश मुद्रा से सूर्यमण्डल को भेद कर 'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिंचुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्त्रिंशुं कुरु।' कहकर सूर्य मण्डल से तीर्थ को लाकर अपने आगे कल्पित तीर्थ मण्डल में मिला दे। यथाविधि तीर्थशक्तिमन्त्र से तीर्थशक्ति का आवाहन करके इस प्रकार ध्यान करे—

सर्वानन्दमयीमशेषदुरिध्वंसां मृगाङ्कप्रभां त्र्यक्षीं चोर्ध्वकरदृयेन दधतीं पाशं सृणिं च क्रमात्।

दोर्ध्या चामृतपूर्णहिमकलशां मुक्ताक्षमालां वरं गङ्गासिन्धुसरिदद्वयादिसहितां श्रीतीर्थशक्तिं भजे॥

इस प्रकार ध्यान करके 'ॐ हां ह्रीं हूं हैं हैं हैः सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति एहोहि स्वाहा तीर्थशक्त्यै नमः' इस मन्त्र से तीर्थशक्ति की पूजा करे। 'ॐ नमो भगवति अम्बे अम्बालिके अम्बिके महामालिन्यै एहोहि भगवति अशोषतीर्थालवाले ह्रीं श्रीं शिवजटाधिरूपे गङ्गे गङ्गाम्बिके स्वाहा' के आठ जप से जल को मन्त्रित करे। उसका आलोड़न 'ह्रीं' बोलकर करे। 'वं' से

धेनुमुद्रा से उसे अमृतमय बनावे। 'हुं' से कवचमुद्रा से अवगुण्ठन करे। अस्त्रमन्त्र 'फट्' से चुटकी बजाकर रक्षण करे। उसमें चक्रसहित आवरण देवताओं का ध्यान करे। जलमय पञ्चोपचार से पूजन करे। मूल मन्त्र के आठ जप से मन्त्रित करे। तब मूल मन्त्र का जप कर हृदय में देवता का स्मरण करते हुए तीन डुबकी लगावे। कुम्भमुद्रा बनाकर मूल मन्त्र से अपने शिर का तीन बार अभिसिङ्गन करके 'ॐ सिसुक्षोर्निखिलं विश्वं मुहः शुक्रं प्रजायते। मातरः सर्वदेवानामापो देव्यः पुनन्तु माप॥' इस मन्त्र से अपना अभ्युक्षण करके निम्न मन्त्र से प्रणाम करे 'यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि। ललाटे कर्ण-योरक्षणोरापस्तु घन्तु वो नमः॥'

तदनन्तर स्वाहान्त मूल मन्त्र से तीन आचमन करे। तर्पण करे। तब तट पर आये। धुले वस्त्र पहनकर हाथ-पैर से मिट्टी को साफ करे। प्रमाणोक्त अपने वर्ण के अनुसार तिलक लगावे। शिवभक्त अंगभूत भस्म का त्रिपुण्ड्र लगावे। ब्राह्मण ऊर्ध्व पुण्ड्र, क्षत्रिय प्रिपुण्ड्र, वैश्य अर्द्धचन्द्राकार और शूद्र वृत्ताकार तिलक लगावे।

#### भस्मधारणविधिः

अथ भस्मधारणविधिः—तत्राग्निहोत्रोद्भवं वैवाहाण्यनुद्भवं वा पूर्वोक्तविधिना वक्ष्यमाणविधिना वा संस्कृतशिवाग्नौ प्रमाणोक्तविधिनान्तरिक्षे गृहीतगोमयपिण्डं शुष्कं मूलमन्त्रेण दध्यं देवोद्वासनात् पूर्वमेव गृहीतम-पक्वातिपक्वरहतं वक्षेण शोधितं कर्पूरादिसुवासितं भस्म संगृह्य संस्थाप्य तेन वा त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यात्। तत्र प्रकारस्तु—मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि पिप्पलादऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि श्रीरुद्राय देवतायै नमः, गुह्ये अग्निबीजाय नमः, पादयोः भस्मशक्तये नमः, मम मोक्षार्थे भस्मधारणे विनियोगः। इति ऋष्यादिन्यासं विधाय, अङ्गुष्ठयोः कालाय नमो हृदयाय नमः, तर्जन्योः कलविकरणाय नमः शिरसे स्वाहा, मध्यमयोः बलविकरणाय नमः शिखायै वृष्ट, अनामिकयोः बलप्रमथनाय नमः कवचाय हुं, कनिष्ठिकयोः सर्वभूतदमनाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, करतलकरपृष्ठयोः मनोन्मनाय नमः अस्त्राय फट्, इति विन्यस्य, हृदय-शिखाकवचनेषु प्रागुक्तपञ्चमन्त्रान् विन्यस्य अस्त्रमन्त्रेण तालत्रयं दशदिग्बन्धनं च कृत्वा

विभूते भूतिमानासीद्वामदेवः सदाशिवः। रक्षाबन्धस्तया देवि रक्ष मामनथे सदा ॥

इति विभूतिं प्रणाम्य, 'सद्योजात'मित्यादिपञ्चानुवाकानां सांहितिकी देवतौपनिषदाः ऋषयः प्रथमद्वितीय-चतुर्थानुवाकानां अनुष्टुप् 'अघोरेभ्य' इत्यस्य स्वराडनुष्टुप् अन्त्या गायत्री, सर्वेषां रुद्रो देवता इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा विन्यस्य, 'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥१॥ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥२॥ 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥३॥ तत्पुरुषाय विज्ञाहे महादेवाय धीमहि तत्रो रुद्रः प्रचोदयात्॥४॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मादिपतिर्ब्रह्मोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्॥५॥ इति मन्त्रान् पठित्वा विभूतिमादाय वामकरे निधाय, भस्माभिवन्नणमन्त्रस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि अथर्वशिरसे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीरुद्रदेवतायै नमः। इति विन्यस्य 'अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मन इत्येतानि चक्षुषिभस्मानि' इत्यभिमन्त्र, 'आपो वा' इत्यस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुरापो देवता इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा विन्यस्य 'आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राण वा आपः पश्व आपोऽन्नमापः सप्त्रादापो विरादापः स्वरादापः छन्दांस्यापो ज्योतींष्यापः सत्यमापः सर्व देवता आपो भूर्भुवःस्वरापः ओ'मिति मन्त्रेणाद्द्विः संसिद्ध्या 'मा नस्तोके' इत्यस्य भगवान्ृषिः जगती छन्दो हिरण्यगर्भों देवता इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा विन्यस्य, 'ॐ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीराम्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते' इति मन्त्रेण संमर्द्य, 'तस्माद् ब्रह्ममृदेतत्पाशुपतं

पशुपाशविमोक्षाय' इति मन्त्रेणैकादशवारमभिमन्त्र्य द्वित्या कृत्वैकेन भागेन 'ईशानः सर्वविद्यानां' इति प्रागुक्तमन्त्रेण शिरसि। 'तत्पुरुषाय' इति मुखे। 'अघोरेभ्य' इति बाह्योः। 'वामदेवाय' इति कण्ठादिनाभ्यन्तम्। 'सद्योजात'मिति ऊरुमूलादिपदद्वयपर्यन्तम्। इति सर्वाङ्गे भस्मोद्भूलनं कृत्वा हस्तौ प्रक्षाल्य द्वितीयभागमादाय, शिरसि ॐहींहरहर ॐ नमः शिवाय। ललाटे ब्रह्मणे नमः। हृदये हृत्यवाहनाय नमः। नाभौ स्कन्दाय नमः। कण्ठे पूष्णे नमः। दक्षबाहुमूले रुद्राय नमः। दक्षबाहुमध्ये आदित्याय नमः। दक्षमणिकन्धे चन्द्राय नमः। वामबाहुमूले वामदेवाय नमः। वामबाहुमध्ये प्रभञ्जनाय नमः। वाममणिकन्धे वसुभ्यो नमः। कुकुरि शम्भवे नमः। पृष्ठे हराय नमः। ब्रह्मरञ्जे परमात्मने नमः। इति त्रिपुण्ड्रधारणं कृत्वा वैदिकसंध्यां कृत्वा तात्रिकसंध्यां कुर्यात्। अयं भस्मधारणविधिर्वैवर्णिकानामेव। अन्यैस्तु पञ्चाक्षरेण मूलमन्त्रेण वा त्रिपुण्ड्रधारणं कार्यमिति। शाक्तेस्तु कुङ्कुमयुक्तचन्दनादैव मूलमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रधारणं कार्यमिति।

**भस्म धारण-विधि**—अनिहोत्र से उत्पन्न या विवाहाग्नि से उत्पन्न या पूर्वोक्त विधि से उत्पन्न अथवा संस्कृत शिवाग्नि में प्रमाणोक्त विधि से अन्तरिक्ष में गृहीत गोबर पिण्ड को सुखार कर जलावे। देवोद्ग्रासन के पहले अपक्व-अतिपक्वहित भस्म को लेकर कपड़े से छानकर कपूरादि से सुवासित भस्म को लेकर उससे त्रिपुण्ड्र धारण करे। उसकी विधि यह है—मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि पिष्टलादऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि रुद्राय नमः। गुह्ये अग्निबीजाय नमः। पादयोः भस्मसक्तये नमः। मम मोक्षार्थं भस्मधारणे विनियोगः।

**कर न्यास**—अंगुष्ठयोः कालाय नमः। तर्जन्योः कलविकरणाय नमः। मध्यमयोः बलविकरणाय नमः। अनामिकयोः बलप्रमथनाय नमः। कनिष्ठयोः सर्वभूतदमनाय नमः। करतलकरपृष्ठयोः मनोन्मनाय नमः।

**हृदयादि न्यास**—कालाय हृदयाय नमः। कलविकरणाय शिरसे स्वाहा। बलविकरणाय शिखायै वषट्। बल-प्रमथनाय कवचाय हुं। सर्वभूतदमनाय नेत्रवयाय वौषट्। मनोन्मनाय अस्थाय फट्। इस प्रकार हृदय-शिखा-कवच-नेत्रो में उक्त पाँच मन्त्रों से न्यास करके अस्त्रमन्त्र से तीन ताली बजाकर दशो दिशाओं का बन्धन करे। 'विभूते भूतिमानासीद्वामदेवः सदाशिवः। रक्षाबन्धस्तया देवि रक्ष मामनधे सदा' मन्त्र से भस्म को प्रणाम करे।

'सद्योजातादि' पाँच अनुवाकों के ऋष्यादि का स्मरण करते हुये न्यास करके निम्न मन्त्रों का पाठ करे—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥१॥

**वामदेवाय** नमो ज्येष्ठाय नमः। श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः। कालाय नमः। कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः। सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥२॥

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥३॥

**तत्पुरुषाय** विद्वहे महादेवाय धीमहि तत्रो रुद्रः प्रचोदयात्॥४॥

**ईशानः** सर्वविद्यानीश्वरः। सर्वभूतानां ब्रह्मादिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्॥५॥

इन पाँचों मन्त्रों को पढ़कर विभूति को बाँयें हाथ में लेकर भस्माभिमन्त्रण मन्त्र का ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि अर्थवैशिरसे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीरुद्रदेवतायै नमः। इस प्रकार न्यास करके भस्म को इस मन्त्र से अधिमन्त्रित करे—'अग्निरित भस्म, वायुरित भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्व ह वा इदं भस्म, मन इत्येतानि चर्यूषि भस्मानि'।

तदनन्तर 'आपे वा' मन्त्र के ऋषि आदि का स्मरण करके न्यास करके इस मन्त्र से भस्म को सिञ्चित करे—'आपे वा इदं सर्व विश्वा भूतान्यापः। प्राण वा आपः। पशव आपः। अन्नमापः। सप्त्रांडापो विरांडापः। स्वरांडापः। छन्दांस्यापो ज्योतीष्यापः। सत्यमापः। सर्वा देवता आपे भूर्भुवःस्वरापः ॐ'। 'मा नस्तोके' मन्त्र के ऋष्यादिकों का स्मरण करते हुये न्यास करके भस्म को इस मन्त्र से मले—'ॐ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अशेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भासितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते।' तदनन्तर 'तस्मात् बह्मदेतत्याशुपतं पशुपाशविमोक्षाय' मन्त्र को ग्यारह बार जपकर उसे

मन्त्रित करे। भस्म का दो भाग करे। एक भाग से 'ईशानः सर्वविद्यान्' से शिर में, 'तत्पुरुषाय' से मुख में, 'अघोरेभ्यः' से बाँहें में, 'वामदेवाय' से कण्ठ से नाभि तक, 'सद्योजात' से ऊरुमूल से दोनों पैरों के अन्त तक के सभी अंगों में भस्म लगावे। तदनन्तर हाथ धोकर भस्म के दूसरे भाग को लेकर शिर में—ॐ ही हर हर ॐ नमः शिवाय, ललाट में—ब्रह्मणे नमः, हृदय में—हृव्यवाहनाय नमः, नाभि में—स्कन्दाय नमः, कण्ठ में—पूष्णे नमः, दक्ष बाहु मूल में—रुद्राय नमः, दक्ष बाहुमध्य में—आदित्याय नमः, दक्ष मणिबन्ध में—चन्द्राय नमः, वाम बाहुमूल में—वामदेवाय नमः, वाम बाहुमध्य में—प्रभंजनाय नमः, वाम मणिबन्ध में—वसुभ्यो नमः, ककुट में—शम्भवे नमः, पीठ में—हराय नमः, ब्रह्मरन्ध्र में—परमात्मने नमः मनों को कहो हुये त्रिपुण्ड्र धारण करे। तदनन्तर वैदिक सन्ध्या करके तान्त्रिक सन्ध्या करे। भस्म धारण करने की यह विधि तीन वर्णों के लिये ही है। दूसरे लोग पञ्चाक्षर मन्त्र या मूल मन्त्र से त्रिपुण्ड्र धारण करें। शाक लोग कुड्डुमयुक्त चन्दनादि से मूलमन्त्र के द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करें।

### तान्त्रिकसन्ध्या

अथ तान्त्रिकसन्ध्या—तत्र मूलमन्त्रेणाचम्ब्य शिखां बद्ध्वा मूलेनैव प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रस्यार्था-दिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य, स्वपुरतो वर्मिति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य मूलमन्त्रेण अष्टवारमभिमन्त्र्य, तज्जलबिन्दुभिः कुशैरकारादिक्षकारान्तरैरेकपञ्चाशदक्षरैः स बिन्दुभिः प्रत्यक्षरं शिरः प्रोक्ष्य, मूलेन च त्रिः प्रोक्ष्य, सूर्यमण्डले यथोक्तस्त्वं ध्यात्वा देवं, दक्षिणकरेण जलमादाय वामकराग्रेण त्रिः प्रोक्ष्यावशिष्टं वामकरस्यं जलं वामनासासमीपं नीत्वा तेजोमयं वामनासारन्ध्रेण स्वदेहात्तः प्रविष्टं ध्यात्वा, तेन जलेन स्वदेहात्तः स्थं सकलकलुषं प्रक्षाल्य कृष्णावर्णं तज्जलं दक्षिणानासारन्ध्रेण विनिर्गतं ध्यात्वा दक्षिणकरेणादाय स्ववामभागे वत्रशिलां ध्यात्वा 'ॐ श्लीं पशुहुं फट्' इति पाशुपताक्षेण तस्यामास्फल्य, हस्तौ प्रक्षाल्य मूलमन्त्रेण विराचम्बाञ्जलिना जलमादायोत्थाय स्वेष्टदेवतागायायीमुच्चार्य 'श्रीमहादेव एष तेऽर्थः स्वाहा'। महादेवेत्युपलक्षणम्। इति त्रिरच्छाञ्जलिं सूर्यभिमुखमुक्तिप्य मूलमुच्चार्य 'श्रीमहादेवं तर्पयामि नमः' इति त्रिः संतर्प्य, प्राग्वत् प्राणायामादिकं कृत्वा सूर्यमण्डले देवं ध्यायन् 'ॐ तन्महेशाय विद्याहे वाग्विशुद्धाय धीमहि तत्रः शिवः प्रचोदयात्' इति शिवगायत्रीं तत्तदेवतागायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा मूलमन्त्रं वाषोत्तरशतं जपित्वा जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणम्य सूर्यमण्डलाद् देवं हृदि विसृज्य श्रीगुरुं प्रणमेदिति त्रिषु कालेषु तान्त्रिकसन्ध्याविधिः।

तान्त्रिक सन्ध्या—मूल मन्त्र से आचमन करके शिखा बाँधे। मूल से तीन प्राणायाम करे। मूल मन्त्र से ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करे। अपने आगे 'वं' धेनुमुद्रा से जल को अमृत बनावे। मूल मन्त्र के आठ जप से उसे मन्त्रित करे। उन जलबिन्दुओं से अ से क्ष तक की इक्षावन मातृकाओं से प्रत्येक से अलग-अलग शिर का प्रोक्षण कुश से करे। मूल मन्त्र से तीन बार प्रोक्षण करे। सूर्यमण्डल में पूर्वोक्त रूप से देवता का ध्यान करे। दाँयें हाथ में जल लेकर वाम कराये से तीन बार प्रोक्षण करे। शेष जल को बाँयें हाथ में लेकर बाँई नासा के समीप लाकर उसे तेजोमय मानकर वाम नासाछिद्र को अपने देह के अन्दर प्रविष्ट होने का ध्यान करे। उस जल से अपने देह के सभी कलुषों को धो दे। काले रंग के उस जल को दाँयें नासाछिद्र से निःसृत जानकर दाँयें हाथ में लेकर वाम भाग में वत्रशिला का ध्यान करके 'ॐ श्लीं पशु हुं फट्' इस पाशुपताक्ष से शिला पर पटक दे। हाथों को धोकर तीन आचमन करे। अञ्जलि में जल लेकर उठकर इष्टदेवता के गायत्री का उच्चारण करके 'श्रीमहादेव एष तेऽर्थः स्वाहा' कहकर तीन अर्धाञ्जलि सूर्य की ओर अर्पित करे। मूल मन्त्र बोलकर 'श्रीमहादेवं तर्पयामि नमः' कहकर तीन बार तर्पण करे।

पूर्ववत् प्राणायाम करके सूर्यमण्डल में देवता का ध्यान करते हुये 'ॐ तन्महेशाय विद्याहे वाग्विशुद्धाय धीमहि तत्रः शिवः प्रचोदयात्' इस शिवगायत्री एवं अन्य देवता की गायत्री का जप यथाशक्ति करे। मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करे। कृत जप का समर्पण करके स्तुति करते हुये प्रणाम कर सूर्यमण्डल से देवता को अपने हृदय में विसर्जित करे। श्री गुरु को प्रणाम करे। तीनों कालों में तान्त्रिक सन्ध्या की यही विधि है।

## दीक्षितसन्ध्यात्रयावश्यकता

गणेशाद्युपासकैरप्युक्तयुक्त्या तत्तत्संध्या कार्या, तत्तद्वायत्रार्थदानजपतत्मूलभन्नजपश्च विशेषः। तत्तद्वायत्री  
तत्कल्पे द्रष्टव्या। अत्र—

सन्ध्यालोपो न कर्तव्यः शम्भोराज्ञैवमेव हि। दीक्षितः संध्यया हीनो न दीक्षाफलमश्नुते ॥

इति शिवरहस्यवचनात् संध्यात्रयमावश्यकमिति। स्वसमये न कृता चेत् संध्या तदाष्टोत्तरशतजपं प्रायश्चित्तार्थं  
कृत्वा पूर्वसंध्यां कृत्वा तत्कालसंध्यां कुर्यात्।

गणेशादि के उपासकों को भी उक्त प्रकार से ही तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिये। उपास्य देवता की गायत्री से अर्थदान  
करके मूल मन्त्र का जप करना चाहिये। देवताओं की गायत्री उनके कल्प में देखनी चाहिये। इस सन्दर्भ में शिवरहस्य में कहा  
गया है कि भगवान् शिव की आज्ञा है कि सन्ध्या का लोप नहीं करना चाहिये। सन्ध्याहीन दीक्षित को दीक्षाफल नहीं मिलता।

शिवरहस्य के इस कथन के अनुसार तीनों सन्ध्या करना आवश्यक है। अपने समय पर सन्ध्या न कर सकने पर  
प्रायश्चित्त रूप में एक सौ आठ जप करके पूर्व में न की गई सन्ध्या को करके उस समय की सन्ध्या को करना चाहिये।

पापनिःसारणकर्मसाक्षिनिरूपणम्, सूर्यार्थदानविधिः, पूजामण्डपद्वारपूजा-

विघ्नोत्सारणादि-दीपनाथार्चार्पूर्वमाधारशक्तिं पूजा च

तत्र प्रकृते प्रातः संध्यावन्दनानन्तरं वैदिकतर्पणं निर्वर्त्य मूलेन प्राणायामत्रयब्दिन्यासपूर्वकं स्वपुरतो  
वमिति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य, तत्र देवं सचक्रं साङ्गावरणं ध्यात्वा मूलमन्त्रमुच्चार्यं 'श्री अमुकदेवतां तर्पयामि  
नमः' इत्यष्टोत्तरशतवारं तदर्थमष्टाविंशतिवारं वा देवस्य मुखकमले परमामृतबुद्ध्या तत्तीर्थजलैः संतर्प्यवरणदेवताश्च  
'अमुकं तर्पयामि नमः' इति प्रत्येकमेकैकाङ्गलिना सन्तर्प्य देवं स्वहृदि विसृज्य तीर्थं च सूर्ये विसृज्य गुरुदिक्षमतिग्रहान्  
प्रणाम्य, शुद्धोदकपूर्णपात्रमादाय हृदि स्वेष्टदेवतां स्मरन् मौनी स्वपदमात्रदृष्टिः स्तोत्रादिकं पठन् स्वगृहं गच्छेत्। ततो  
द्वारि स्थितः स्वपापं मनसा सञ्चिन्त्य,

देव त्वं प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभूम्भम्। तत्रिःसारय चित्तान्मे पापं फट्फट्फट् ते नमः ॥

सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः ॥

इति पठित्वा 'हुंफट्' इति क्रोधदृश्या पार्श्वद्वयमूर्ध्वमधश्चावलोक्य सुमना भूत्वा गृहान्तः प्रविश्याङ्गणे  
स्थित्वा पादौ प्रक्षाल्याचम्याङ्गणभूमौ गोमयोपलिपायां सिन्दूरादिना रचितवृत्तमण्डलमध्ये स्वासनमास्तीर्य 'हीं  
आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इत्यासंन सम्पूज्य, तत्र प्राड्यमुख उपविश्य वक्ष्यमाणसूर्यमन्त्रेण प्राणायामत्रयं  
कृत्वा, शिरसि अजाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीसूर्यदेवतायै नमः। इति विन्यस्य सूर्यार्थदाने  
विनियोगः इति कृताङ्गलिवर्देत्। ततः अङ्गूष्ठयोः हाँ हृदयाय नमः। तर्जन्योः हीं शिरसे स्वाहा। मध्यमयोः हृं शिखायै  
वषट्। अनामिकयोः हैं कवचाय हूं। कनिष्ठिकयोः हौं नेत्रवत्याय वौषट्। करतलकरपृष्ठयोः हुः अत्राय फट्। इति  
करयोर्विन्यस्येतानेव पञ्चमन्त्रान् हृदयशिरःशिखाकवचनेत्रेषु विन्यस्यान्नमन्त्रेण तालत्रयदशादिग्बन्धनं च कृत्वा,

रक्ताङ्गुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिष्ठं नमामि ।

पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराङ्गैर्मणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम् ॥

इति सूर्य ध्यात्वा स्वपुरतः पुरस्तात्रयोगप्रकरणे वक्ष्यमाणप्रयोजनतिलकाख्यत्रयक्षरमन्त्रोक्तविधिना साङ्गं  
सावरणं संपूज्य, तदशक्तौ तन्मण्डले साङ्गावरणं ध्यात्वा संपूज्य, स्वपुरतश्चतुरवृत्तत्रिकोणात्मकं मण्डलं कृत्वा  
'श्रीसूर्यार्थारमण्डलाय नमः' इति मण्डलं संपूज्य, तत्र साधारं प्रस्थजलग्राहि ताम्रपात्रं निधाय सूर्यमन्त्रेण शुद्धोदकेनापूर्य  
तिलयवसर्पश्यामाकुशाग्रगन्थाक्षतरक्तपुष्पाणि रक्तचन्दनं च निक्षिप्य कुशैराच्छाद्य तत्पात्रं कराभ्यामाच्छाद्य

सूर्यमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा जानुभ्यामवनीं गतस्तत्पात्रं कराभ्यामस्तकमुद्भूत्य पूर्वोक्तरूपं सूर्यं निजेष्टदेवताभेदेन ध्यायन् 'ॐ हांहांसः सग्रहराशिनक्षत्रयोगकरणपरिवृत् श्रीसूर्य एष तेऽर्थः स्वाहा' इति सूर्यार्थ्यं दत्त्वा, तदर्घाङ्कुपूतं सूर्यं ध्यायन् तन्मनं यथाशक्ति जपित्वा सूर्यं स्तुत्वा प्रणम्य स्वपुरः पूजापक्षे तं विसृज्य, पूजामण्डपद्वारं गत्वा तत्र वक्ष्यमाणविधिना सामान्यार्थं संस्थाप्य, तदशक्तौ ताप्रादिपात्रस्थं जलं धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य तेन जलेन वा पूजामण्डपस्य द्वारं प्रोक्ष्य द्वारस्योर्ध्वशाखाया मध्ये विघ्नाय नमः। तदक्षिणे महालक्ष्यै नमः। वामे सरस्वत्यै नमः। पुनर्मध्ये द्वारश्रियै नमः। द्वारस्य वामदक्षिणशाखयोः गं गणपतये नमः। क्षं क्षेत्रपालाय नमः। शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः। पदानिधिवसुमतीभ्यां नमः। मं मायाशक्त्यै नमः। चिं चिच्छक्त्यै नमः। गं गङ्गायै नमः। यं यमुनायै नमः। धं धात्र्यै नमः। विं विधात्रै नमः। इति द्वन्द्वक्रमेणाधोऽधः संपूज्य, अधो देहल्प्यै नमः। वामदक्षिणयोः नन्दिने नमः। महाकालाय नमः। इति द्वारपालौ संपूज्य, उत्तरद्वारं गत्वा तदर्घाङ्कुपुना प्रोक्ष्य प्राग्वद्विघ्नादिदेहल्प्यन्तं प्रोक्तक्रमेण संपूज्य, द्वारपार्श्वयोः गणेशाय नमः। वृषभाय नमः। इति द्वारपालौ संपूज्य, पूर्वद्वारं गत्वा तथैवाभ्युक्ष्य विघ्नादि देहल्प्यन्तमध्यर्थं द्वारपार्श्वयोः भृङ्गिरिटये नमः स्कन्दाय नमः इति द्वारपालौ सम्पूज्य दक्षिणद्वारं गत्वा तथैवाभ्युक्ष्य विघ्नादिदेहल्प्यन्तमध्यर्थं, द्वारपार्श्वयोः उमायै नमः। इति द्वारपालौ संपूजयेत् वैष्णवे तु नन्द-सुनन्द-चण्ड-प्रचण्ड-बल-प्रबल-भद्र-सुभद्रा: प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण पूजयेत्। गाणेशो वक्रतुण्डैकदण्डमहोदरगजानन-लम्बोदरविकटविघ्नराजधूम्रवणस्तथैव पूज्याः। शाक्तसौरैस्तु ब्राह्मणाद्यष्टमातरस्तु प्राग्वत्पूज्याः। पुनः पश्चिमद्वारं गत्वास्त्रमन्त्रेण सप्तधाभिमन्त्रय,

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः प्रेतगुह्याकाः। ये चात्र निवसन्त्यन्ये देवता भुवि संस्थिताः॥

अपसर्पन्तु ये भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

इत्यन्तेऽस्त्रमन्त्रं जपन् नाराचमुद्रया मण्डपातः प्रक्षिप्य, तस्मान्निर्गच्छतां विघ्नानां स्ववामाङ्गसङ्कोचेन मार्गं दत्त्वास्त्रमन्त्रं पठन् वामपार्षिधितत्रयेण भौमान्, ऊर्ध्वोर्ध्वतालत्रयेणान्तरिक्षगान्, तिगमदृश्यावलोकनेन दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य, दक्षिणपादपुरः सरं शाक्ते वामपादपुरः सरं देहलीमुल्लङ्घ्यान्तः प्रविश्य वाससा द्वारमाच्छाद्य पञ्च-गव्यार्थ्यतोयाभ्यां घण्टावादनपूर्वकं मण्डपस्य नैऋत्यकोणे वास्तुपुरुषाय नमः। तत्रै वास्त्वघीशाय ब्रह्मणे नमः। इति संपूज्य, मण्डपस्येशानकोणे रक्तद्वादशशक्तिपद्मिताय श्रीदीपनाथाय नमः। इति दीपनाथं संपूज्य, अतिरीक्षणं महाकाय कल्पान्तदहनोपमम् भैरवाय नमस्तु भूमिं ममाज्ञां दातुमर्हसि॥

इति भैरवाज्ञां प्रार्थ 'अः फट्' इति मण्डपमध्यस्थां पूजावेदीं गत्वा, शिरसि मेरुपृष्ठाय ऋषये नमः। मुखे सुतलाय छन्दसे नमः। हृदि पृथिव्ये देवतायै नमः। इति विन्यस्य पृथिवीप्राथर्थे विनियोगः इति कृताञ्जलिरुक्तव्या, ॐ पृथिव्यत्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

इति पृथिवीं प्रार्थ, स्वासनस्थानं मूलमन्त्रेण वीक्ष्यास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य तेनैव मन्त्रेण कुशैः सन्ताङ्गं कवचमन्त्रेणाभ्युक्ष्य, तत्र मण्डुकादिवेदिकान्ताः पीठदेवताः सम्पूज्य तत्र चेलाजिनकुशोत्तरं हस्तद्वयमात्रं चतुरस्तं चतुरहूलोच्छ्रुतं स्वासनमास्तीर्य मूलमन्त्रेण द्वादशाभिमन्त्रितेन जलेनाभ्युक्ष्य 'हीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः।' इति संपूज्य, तत्र प्राडमुख उद्दमुखो वा स्वस्तिकवीरसिद्धान्तमेनोपविश्य, आसनस्य स्वदक्षिणाग्रकोणादिच-तुष्कोणेषु प्रादक्षिणयेन गं गणपतये नमः। दुं दुर्गायै नमः। सं सरस्वत्यै नमः। क्षं क्षेत्रपालाय नमः। इति संपूज्य गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याणि स्वदक्षिणभागे निधाय 'हांहृफट्' इति मन्त्रं स्मरन् दिव्यदृश्या विलोक्य कर्पूर-दिवासितशुद्धोदकपूर्णं वामभागस्थं कुम्भं श्रीमिति वामपाणिना संस्पृशन् दक्षिणकराङ्गुल्प्यग्रेण क्षौं इति कुम्भस्थं जलं संस्पृश्य, रमिति दीपशिखां स्पृश्वा करं प्रक्षाल्य कृताञ्जलिर्विमे गुरुभ्यो नमः। दक्षिणे गणपतये नमः। अग्रे

महादेवाय नमः। इति प्रणाप्य, चन्दनसुगन्धपुष्पाणि हस्तैँ इति मन्त्रेणादायास्त्रमन्त्रेण मर्दयित्वा करौ सुरभीकृत्य तत्पुर्यं वापकरेण स्वपूर्धानं परितो गोपिति भ्रामयित्वाद्याय, अं हों

ते सर्वे विलयं यान् तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः । मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके ॥

इति पठित्वास्त्रमन्त्रेण नाराचमुद्रया ईशान्यां दिशि दूरे प्रक्षिप्य, अस्त्रमन्त्रेण पुनः करावन्योन्यमार्जनेन संशोध्यास्त्रमन्त्रेणोर्ध्वंर्ध्वतालत्रयमङ्गुष्ठतर्जन्युव्यशब्देन दशादिग्बन्धनं कृत्वा त्रिशूलमुद्रामुद्रितौ व्यस्तौ मणिबन्धेनान्योन्यसंपृक्तौ करौ स्वपूर्धानं परितोऽस्त्रमन्त्रं स्मरन् प्रादक्षिण्येन त्रिभ्रमियन् अग्निप्राकारत्रयं विद्याय तन्मध्यगतमात्मानं सञ्चिन्त्य मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा भूतशुद्धिं कुर्यात्।

अत्र प्रागुक्तपरिपाठ्या भूतशुद्ध्यादिकं तु, प्रथमतो भूतशुद्धिः, ततः प्राणप्रतिष्ठा, ततोऽन्तर्मार्तुकान्यासः। अत्रान्तर्मार्तुकान्यासो मनसैव कार्यः। 'पुष्पैरनामया वापि मनसा वा न्यसेदणूँ' इति दक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्। 'एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसा नो बहिर्न्यसेत्' इति कुम्भसंभववचनाच्च। अत्र वाशब्दः समुच्चये। अणून् मन्त्रान्। अत्रैव व्यवस्था—पुष्पैर्देवतामूर्तौ, अनामया स्वदेहे, मनसा मूलाधारादिचक्रेषु, तत्र करस्पर्शासंभवात्। अनामया साङ्गुष्ठया 'अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु न्यासः सर्वत्र संमतः' इति पद्मवाहिनीवचनात्। ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासव्यतिरिक्तेष्वियं व्यवस्था ज्ञेया। तत्रानङ्गुष्ठानां सर्वाङ्गुलीनां विहितत्वात् तथैव संप्रदायात्। षटङ्गमन्त्राणामपि पृथक्पृथक्प्रतिपादनाच्छेति।

इसी क्रम में प्रातः सन्ध्यावन्दन के बाद वैदिक तर्पण करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे। अपने आगे 'वं' धेनुमुद्रा से जल को अमृत बनावे। उसमें देवता का चक्र-आवरणसहित ध्यान करे। मूल मन्त्र के बाद 'श्रीअमुक देवतां तर्पयामि नमः' कहकर एक सौ आठ या चौकौन या अद्वौर्इस बार देवता के मुख में परमामृत बुद्धि से उस तीर्थजल से तर्पण करे। आवरणदेवताओं को भी प्रत्येक के नाम से 'तर्पयामि नमः' कहकर एक-एक अङ्गलि जल से तर्पित करे। देवता का विसर्जन अपने हृदय से करे। तीर्थ को सूर्य में विसर्जित करे। गुरु, दिक्षापाल और ग्रहों को प्रणाम करे। शुद्ध जल से पूर्ण पात्र को लेकर हृदय में इष्टदेवता का स्मरण करते हुए मौन होकर अपने पैरों पर दृष्टि रखते हुए स्तोत्रादि पढ़ते हुए अपने घर आये। घर के द्वार पर खड़े होकर अपने पापों का मानसिक चिन्तन करके—

देव त्वं प्राकृतं चितं पापाक्रान्तमभून्ममः। तत्रिःसारय चित्तान्मे पापं फट्-फट्-फट् ते नमः॥

सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥

श्लोक का पाठ करके 'हुं फट्' कहकर क्लूर दृष्टि से द्वार के दोनों ओर और ऊपर-नीचे देखकर सुन्दर मन से घर में प्रवेश करे। आंगन में पैरों को धोकर आचमन करके गोबर से लिपी आंगन-भूमि पर सिन्दूरादि से रचित गोल मण्डल के मध्य में अपने आसन को बिछाकर 'हीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' से आसन की पूजा करके उस पर पूर्वमुख बैठे। विहित सूर्य मन्त्र से तीन प्राणायाम करके न्यास करे। शिरसि अजाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीसूर्यदेवतायै नमः। सूर्यार्थ्य दान विनियोग हेतु करे। तब अंगुष्ठयोः हां हृदयाय नमः। तर्जन्योः हीं शिरसे स्वाहा। मध्यमयोः हूं शिखायै वषट्। अनामिकयोः हैं कवचाय हुं। कनिष्ठयोः हीं नेत्रत्रयाय वौषट्। करतलकरपृष्ठयोः हः अस्राय फट्—इस प्रकार कर न्यास षटङ्ग न्यास करके अस्त्र मन्त्र से तीन ताली बजाकर दश दिग्बन्ध करके निमवत् ध्यान करे—

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिपं नमामि।

पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराङ्गमार्णिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्॥

तदनन्तर अपने आगे पूर्वोक्त प्रयोग प्रकरण में उक्त प्रयोजन तिलकाभ्य ऋक्षर मन्त्रोक्त विधि से सांग सावरण पूजन करे। ऐसा न कर सकने पर उस मण्डल में सांग सावरण का ध्यान करके पूजा करे। अपने आगे चतुरस्र वृत्त त्रिकोणात्मक मण्डल बनाकर उसका पूजन 'श्रीसूर्य आधारमण्डलाय नमः' से करे। उस पर आधार रखकर आधार पर प्रस्थ जलग्राही ताप्र पात्र रखे। सूर्य मन्त्र से शुद्ध जल उसमें भरे। तिल, यव, सरसों, साँवाँ, कुशाग्र, गन्ध, अक्षत, लाल फूल, लाल चन्दन उसमें डाले। कुश से ढक दे। उस पात्र को हाथों से ढक कर सूर्यमन्त्र का एक सौ आठ जप करे। धुटनों को पृथ्वी पर रखकर उस

पात्र को शिर तक ले जाकर पूर्वोक्त रूप सूर्य का इष्टदेव के रूप में ध्यान करते हुये 'ॐ हाँ हीं सः सग्रहराशिनक्षत्रयोगकरण परिवृत्त श्रीसूर्य एष तेऽर्थः स्वाहा' कहकर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे। उस अर्घ्य जल से पूत सूर्य का ध्यान करते हुये उसके मन्त्र का यथाशक्ति जप करे। सूर्य की स्तुति करके प्रणाम करे। अपने आगे पूजा पक्ष में उसे विसर्जित करे।

पूजा मण्डप के द्वार पर जाकर वहाँ यथाविधि सामान्यार्थ्य स्थापित करे। इसमें अशक्त होने पर ताप्रादि पात्रस्थ जल को धेनुमुद्रा से अमृत बनावे। उस जल से पूजामण्डप के द्वार का प्रोक्षण करे। द्वार के ऊपरी शाखा के मध्य में 'विघ्नाय नमः' दक्षिण में, 'महालक्ष्म्यै नमः' बाँये 'सरस्वत्यै नमः' फिर मध्य में 'द्वारश्रियै नमः' द्वार के वाम दक्षिण शाखाओं में 'गं गणपतये नमः' क्षं क्षेत्रपालाय नमः, 'शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः, पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः, मं मायाशक्त्यै नमः, चिं चिच्छक्त्यै नमः, गं गंगायै नमः, यं यमुनायै नमः, धं धात्रै नमः, विं विधात्रै नमः—इस प्रकार द्वन्द्व क्रम से अधो अधः पूजकर नीचे की शाखा में 'देहल्प्यै नमः' से पूजा करे। वाम-दक्षिण में नन्दिने नमः, महाकालाय नमः से द्वारपालों की पूजा करे। उत्तर द्वार पर जाकर अर्घ्य जल से प्रोक्षण करके पूर्ववत् विघ्नादि से देहली तक की पूजा क्रम से करने के बाद द्वारपार्श्वों में गणेशाय नमः, वृषभाय नमः से द्वारपालों की पूजा करे। पूर्व द्वार पर जाकर उसी प्रकार अभ्युक्षण करके विघ्नादि से देहली तक की पूजा करने के बाद द्वारपार्श्वों में भृगुरिट्यै नमः, स्कन्दाय नमः से द्वारपालों की पूजा करे। दक्षिण द्वार पर जाकर उसी प्रकार प्रोक्षण करके विघ्नादि से देहली तक की पूजा करने के बाद द्वारपार्श्वों में उमायै नमः, चण्डेश्वराय नमः से द्वारपालों की पूजा करे।

वैष्णव हो तो नन्द-सुनन्द, चण्ड-प्रचण्ड, बल-प्रबल, भद्र-सुभद्र का पूजन प्रतिद्वार पर दो-दो के क्रम से करे। गणेश का उपासक हो तो वक्रतुण्ड-एकदन्त, महोदर-गजानन, लम्बोदर-विकट, विघ्नराज-धूम्रवर्ण का पूजन उसी प्रकार करे। शाकों और सौरों को ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं की भी पूर्ववत् पूजा करनी चाहिये। पुनः पश्चिम द्वार पर जाकर अस्त्र मन्त्र से सात बार मन्त्रित करके—

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः प्रेतगुहाकाः । ये चात्र निवसन्त्यन्ये देवता भुवि संस्थिताः ॥

अपसर्पन्तु ये भूता ये भूता भुवि संस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्तरस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

श्लोकों को पढ़ने के बाद अस्त्र मन्त्र का जप कर नाराच मुद्रा से मण्डप के भीतर अर्घ्यजल का प्रक्षेप करे। इससे सभी भागते हुए विघ्नों को अपना बाँयाँ आंग सिकोड़कर रस्ता प्रदान करे। अस्त्र मन्त्र पढ़कर बाँयी ऐड़ी को तीन बार पटकर भूमि स्थित विघ्नों को, ऊपर-ऊपर तीन ताली बजाकर अन्तरिक्षगत विघ्नों को एवं तिरछी दृष्टि से जहाँ तक हो सके देखकर दिव्य विघ्नों को उत्सारित करे। दाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर एवं शाक बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर द्वार को पार करके अन्दर प्रवेश करे। वक्षों से द्वार को आच्छादित करके पञ्चग्रन्थ-अर्घ्यजल से घण्टा बजाते हुए मण्डप के अन्दर प्रोक्षण करे। मण्डप के नैऋत्य कोण में 'वास्तुपुरुषाय नमः' से और वहाँ पर 'वास्त्वधीशाय ब्रह्मणे नमः' से पूजन करे। तब मण्डप के ईशान कोण में 'रक्तद्वादशशक्तिसहिताय दीपनाथाय नमः' से दीपनाथ का पूजन करके—

अतितीक्षण महाकाय कल्पान्तदहनोपमः भैरवाय नमस्तुभ्यं ममाज्ञां दातुमर्हसि ॥

इस प्रकार कहकर भैरव से आज्ञा प्रदान करने की प्रार्थना करे। 'अः फट्' कहकर मण्डपस्थ पूजा वेदी के पास जाकर ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि मेरुपृष्ठाय ऋषये नमः। मुखे सुतलाय छन्दसे नमः। हृदि पृथिव्यै देवतायै नमः। पृथिवी की प्रार्थना-हेतु विनियोग करे। तब हाथ जोड़कर इस प्रकार पृथ्वी की प्रार्थना करे—

३० पृथिव्या धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इस मन्त्र से पृथिवी की प्रार्थना करके अपने आसन स्थान को मूल मन्त्र पढ़कर देखे। अस्त्र मन्त्र से उसका प्रोक्षण करे। अस्त्रमन्त्र से ही मन्त्र से कुश से संताङ्कन करे। कवच मन्त्र से अभ्युक्षण करे। तब मण्डूकादि से वेदिका तक पीठदेवता की पूजा करे। वहाँ पर दों हाथ लम्बा-चौड़ा मृगचर्म एवं कुश का चौकोर चार अंगुल मोटा आसन बिछवे। मूल मन्त्र के बारह जप से उसे मन्त्रित करे। जल से अभ्युक्षण करे। हीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः से उसका पूजन करे। उस पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके स्वस्तिक, वीर या सिद्ध आसन लगाकर बैठे। आसन के अपने दाँयों कोण से प्रारम्भ करके चारों कोणों में प्रदक्षिणक्रम से पूजा करे—गं गणपतये नमः, दुं दुर्गायै नमः, सं सरस्वत्यै नमः, क्षं क्षेत्रपालाय नमः। तब गन्ध-पृष्ठ-अक्षतादि पूजा द्रव्यों को अपने दाँयों भाग में रखकर 'हाँ हूँ फट्' मन्त्र का स्मरण करते हुये दिव्य दृष्टि से देखे। अपने बाँये

भाग में कर्पूरादि वासित शुद्ध जल से पूर्ण कलश को 'श्री' कहकर बाँयें हाथ से स्पर्श करे। दक्षिण करांगुल्यग्र से 'झौं' मन्त्र से कलश जल का स्पर्श करे। 'रं' कहकर दीपशिखा का स्पर्श करके हाथों को धोकर हाथ जोड़कर अपने बाँयें 'गुरुभ्यो नमः' दाँयें 'गणपतये नमः' आगे 'महादेवाय नमः' कहकर प्रणाम करे। चन्दन, सुगन्ध एवं फूलों को 'हस्ते' इस मन्त्र से ग्रहण कर अस्त्रमन्त्र 'फट्' से मसल कर हाथों को सुगन्धित करके उस फूल को बाँयें हाथ से अपने मूर्धा के चारों ओर 'रं' कहकर धुमावे और सुंधे। तदनन्तर 'ॐ हौं ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः। मृत्युरोगभयक्लेशः पतन्तु रिपुमस्तके।' पढ़कर अस्त्रमन्त्र से नाराच मुद्रा से ईशान दिशा में दूर फेंक दे। तब अस्त्र मन्त्र से दोनों हाथों को मलकर धोये। अस्त्र मन्त्र से ऊपर-ऊपर अंगूठे और तर्जनी से ताली बजाकर दशों दिशाओं को बाँधकर त्रिशूल मुद्रा से मुद्रित व्यस्त मणिबन्ध से एक-दूसरे को स्पर्श करते हुए हाथों को अपने मूर्धा के चारों ओर अस्त्र मन्त्र से प्रदक्षिण क्रम से तीन बार धुमावे। इस प्रकार अग्नि का तीन घेरा बनाकर उसके मध्य में स्थित अपने को चिन्तन करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे।

यहाँ पर पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार से भूतशुद्धि आदि में पहले भूतशुद्धि, तब प्राण-प्रतिष्ठा, तब अन्तर्मातृका न्यास करे। यहाँ अन्तर्मातृका न्यास मानसिक करे—ऐसा दक्षिणार्थी सहिता में कहा गया है।

#### यथाश्रमं सृष्ट्यादिन्यासक्रमः

ततो बहिर्मातृकान्यासः। अत्र बहिर्मातृकान्यासे केवले बिन्दुयुक्तमक्षराणां वीर्ययोजनार्थमिति संप्रदायः। ततो बिन्दुभातृकान्यासः। ततो विसर्गमातृकान्यासः। ततो बिन्दुविसर्गयुक्तमातृकान्यासः। अत्र यतिवानप्रस्थैरादौ सृष्टिस्ततः स्थितिस्ततः संहार इति कार्यः। गृहस्थैस्तु प्रथमं संहारस्ततः सृष्टिस्ततः स्थितिः कार्या। ब्रह्मचारिभिः आदौ स्थितिस्ततः संहारस्ततः सृष्टिः कार्या। अत्र केचित् 'गृहस्थैः सृष्टिस्थितिसंहारानन्तरं पुनः सृष्टिस्थिती च कार्यं, तेन स्थित्यन्तता स्यात्। एवं ब्रह्मचारिभिः सृष्टिस्थितिसंहारानन्तरं पुनः सृष्टिन्यासः कार्यः। एवं कृते स्थित्यन्तता सृष्ट्यन्तता संहारान्तता च भवति' इत्याहुः। अत्र यथागुरुपदेशं कार्यमिति।

ततस्तारोत्थैकपञ्चाशत्कलामातृकान्यासः। ततः केशवादिमातृकान्यासः। ततः श्रीकण्ठदिमातृकान्यासः। ततो भुवनेश्वरीमातृकान्यासः। ततः श्रीबीजादिमातृकान्यासः। ततः कामबीजादिमातृकान्यासः। ततः श्रीशक्तिकाम-बीजादिमातृकान्यासः। ततः प्रपञ्चयागमातृकान्यासः। ततस्तत्तदेवतोपासकस्तत्तदेवतामातृकान्यासं कृत्वा मूलमन्त्रेण प्राणायामप्रयं कृत्वा योगपीठन्यासं कुर्यात्।

बहिर्मातृका न्यास में केवल बिन्दुयुक्त अक्षरों में वीर्ययोजन किया जाता है। बहिर्मातृका न्यास के बाद बिन्दु-मातृका न्यास, तब विसर्गमातृका न्यास, तब बिन्दु-विसर्गयुक्त मातृका न्यास करना चाहिये। यहाँ यतियों एवं वानप्रस्थों को पहले सृष्टि, तब स्थिति, तब संहारन्यास करना चाहिये। गृहस्थों को पहले संहारन्यास, तब सृष्टिन्यास और अन्त में स्थितिन्यास करना चाहिये। ब्रह्मचारियों को पहले स्थितिन्यास, तब संहारन्यास और अन्त में सृष्टिन्यास करना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मचारी को भी सृष्टि-स्थिति-संहार के बाद पुनः सृष्टिन्यास करना चाहिये। इस प्रकार से स्थित्यन्तता, सृष्ट्यन्तता और संहारान्तता होती है। अतः यहाँ पर गुरु के उपदेशानुसार न्यास करना चाहिये। तदनन्तर तारोत्थ इक्यावन मातृका न्यास, तब केशव मातृका न्यास, तब श्रीकण्ठ मातृका न्यास, तब भुवनेश्वरी मातृका न्यास, तब श्रीबीजादि मातृका न्यास, तब कामबीजादि मातृका न्यास, तब श्रीशक्तिकामबीजादि मातृका न्यास, तब प्रपञ्चयाग मातृका न्यास करने के पश्चात् विविध देवोपासकों को अपने-अपने देवता का मातृका न्यास करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके योगपीठन्यास करना चाहिये।

#### प्राणायामप्रयोगपूर्वपीठन्यासः ऋग्वेदोक्ताग्निसूक्तच्च

तत्र प्राणायामप्रयोगः—तत्र बद्धपद्मासन ऋजुकायः समुपविश्य दक्षिणाङ्गुष्ठेन दक्षिणासापुटं निरुद्ध वामनासापुटेन वायुमाकृष्य स्वोदरे पूरयित्वा कनिष्ठानामिकाभ्यां वामनासापुटं च निरुद्ध हृदि देवं ध्यायन् मूलमन्त्रं जपन् यावच्छक्यं वायुं कुम्भकेन धृत्वा पुनर्दक्षिणासापुटेन शनैः शनैर्वायुं त्यजेदित्येकः प्राणायामः। पुनर्दक्षिणासापुटेन

वायुमाकृष्ण तथैव कुम्भयित्वा पुनर्वामिनासारन्धेण तं वायुं त्यजेदित्यन्यः। पुनर्वामिनासारन्धेण प्रागवद्वायुमापूर्य तथैव कुम्भयित्वा तथैव दक्षिणनासारन्धेण तं वायुं त्यजेदित्यपरः। इत्यं प्राणायामत्रयं कृत्वा, मूलाधारे 'मण्डुकाय नमः' इत्यादिपरतत्त्वात् प्रागुक्तक्रमेण विन्यस्य 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मने शक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः' इति मूर्धादिपादानं व्यापकत्वेन न्यसेदिति योगपीठन्यासः। अत्र योगपीठस्थाने—गाणेशैः सुधारणवस्थाने इक्षुरससमुद्रो विष्णुसूर्योपासकैः क्षीरसमुद्रसत्र तत्त्वीठमन्त्रश्च न्यस्तव्य इति विशेषः।

अत्र मूलमन्त्रन्यासः, स च तत्तत्कल्पेषु बोद्धव्यः। ततस्तत्तत्कल्पोक्तमुद्रा विरच्य स्वेष्टदेवताकल्पोक्तरूपं स्वाभेदेन ध्यात्वा स्वशिरसि मूलमन्त्रेण पुष्पाङ्गलिं दत्त्वा पुनर्हदयकमले ध्यात्वा, योगपीठपुरः सरं मानसैरूपचारैर्देवं साङ्गं सावरणं संपूज्य मानसमेव नैवेद्यं दत्त्वा देवं भुज्ञानं ध्यायन्, मूलाधारे आत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मेत्यात्म-चतुष्काकारचतुरस्त्रे कुण्डमध्ये चिच्छक्तिं कुण्डलिनीं वह्निरूपां ध्यात्वा मूलमन्त्रमुच्चार्य 'अहन्तां जुहोमि स्वाहा'। पुनर्मूलं 'असत्यं जुहोमि स्वाहा' इत्यमहन्तासत्यपैशुन्यकामक्रोधलोभमदमोहमात्सर्वाणि क्रमेण सुषुम्नासुग्युक्तमनः-स्तुवेण हुत्वा प्राणायामर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा गुहोत्यादिना समर्थं श्रीगुरुं प्रणम्य, पुरतश्चन्दनादिलिपे श्रीपण्यर्दीपीरे सौधादिनिर्मिते स्थणिडले वा कुञ्जमादिना तत्तत्कल्पोक्तं पूजाचक्रं, निर्माय, तत्र मूलमन्त्रेण पुष्पाङ्गलिं दद्यात्। यद्वा सुवर्णादिभिः शिल्पिवरैर्निर्मितं पूजाचक्रं चन्दनादिमण्डितं प्राग्वत् पीठे संस्थाप्य पुष्पाङ्गलिं दद्यात्। तत्र स्वर्णरूप्यादिधातुनिर्मितस्य पूजाचक्रस्याम्लरसादिना संशुद्धस्यादौ वैदिकमार्गेणान्युत्तारणं कारयित्वा मधुधृतगोदुर्घनारिकेलजलैः पृथक्पृथगभिषिद्य पञ्चाशद्वॄणीषधिक्वाथजलैस्तत्तन्मन्त्रोषधिक्वाथशजलैर्वार्भिषिङ्गेत्।

अत्र मन्त्रवर्णोषधिग्रहणे मन्त्रवर्णेषु पुनरुक्तवर्णानामोषधयो यस्य वर्णस्य यावत्य आवृत्तयो मन्त्रे दृश्यन्ते तस्यौषधेस्तावन्तो भागा ग्राह्याः। तास्तु प्रागेव प्रदर्शिताः। ततः शुद्धजलैः प्रक्षाल्य चन्दनागरुकर्पूरकसूरीकुञ्जमादिपङ्करालिप्य पुरतः शुभे पीठे संस्थाप्य तच्चक्रं स्पृष्ट्वा मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा संशुद्धस्य तस्य चक्रस्य प्रागुक्त-प्राणप्रतिष्ठामन्त्रे 'अमुकदेवतापूजाचक्रस्य' इत्यादितत्तदेवतानामपूर्वकं देवमावाहा साङ्गं सावरणं संपूज्य महानैवेद्यं बलिदानादिपूर्वकं महोत्सवं प्रत्यहं दिनत्रयपर्यन्तं कुर्यात्। दिनत्रयमपि, प्रथमदिने आवाहितं देवं न विसर्जयेत्। चतुर्थ-दिने नित्यपूजान्ते देवं विसर्जयेत्। इति प्रतिष्ठिते चक्रे नित्यैरपित्तिकादिपूजनं च कुर्यात्। अग्न्युत्तारणं तु ऋग्वेदोक्तग्निसूक्तेनैव वा कार्यम्। सूक्तं तु (ऋ० १० मं० ८० सू०) —

अुग्निः सप्तिं वाजंभुरं द'दात्युग्निर्वारं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम् ।

अुग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जनुग्निनारीं वीरकुक्षिं पुर्णियम् ॥१॥

अुग्नेरप्सः सुमिदस्तु भूद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।

अुग्निरेकं चोदयत्सुमत्ख्यग्निर्वाणि दयते प्रस्त्रणि ॥२॥

अुग्निर्हु त्यं जरतः कणमावाग्निरुद्धर्यो निरदहुज्जरुथम् ।

अुग्निरत्रि धूर्म उरुष्यदुन्तरुग्निर्मेधं प्रजयोसुज्जत्सम् ॥३॥

अुग्निर्दुर्ग द्रविणं वीरपेशा अग्निर्दृष्टिं यः सुहस्रां सुनोति ।

अुग्निर्दिवि हृव्यमा ततानाम्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥४॥

अुग्निरुक्तथैर्हषयो वि हृयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।

अुग्निं वर्यौ अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सुहस्रा परि याति गोनम् ॥५॥

अुग्निं विश्व ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।

अुग्निर्गन्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्व्यूतिर्वृत आ निष्ठा ॥६॥

अग्नये ब्रह्म ऋभवस्तत्क्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।  
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाने महि द्रविणमा यंजस्व ॥७॥

**अथैतस्य प्रयोगः—**तत् एभिमत्रैः प्रथमं प्रतिष्ठितस्य चक्रादिकमग्निशब्दरहितैः शतावृत्त्या शुद्धजलैर-भिषिच्यानन्तरमग्निशब्दसहितैः शतावृत्त्याभिषिञ्चेदित्यग्न्युत्तारणविधिः। ततः प्रत्यहमस्तादिभिः शुद्धजलेन प्रक्षालनं धातुमयचक्रस्य स्फटिकस्य जलेनैव क्षालनं कार्यमिति।

**प्राणायाम प्रयोग—**पदासन में बैठकर शरीर को सीधा रखकर दाँयें अंगूठे से दाँयें नासापुट को निरुद्ध करके बाँयें नासापुट से वायु खींचकर अपने उदर को भरे। कनिष्ठा-अनामा से वाम नासापुट को निरुद्ध करके हृदय में देवता का ध्यान करके यथाशक्ति मूल मन्त्र को जपते हुए कुम्भक से धारण करे। तब दाँयें नासापुट से वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाले। यह प्रथम प्राणायाम होता है। फिर दक्षिण नासापुट से साँस लेकर उसी प्रकार कुम्भक करके पुनः वाम नासापुट से वायु को निकालना दूसरा प्राणायाम होता है। पुनः वाम नासापुट से पूर्ववत् साँस लेकर कुम्भक करके दाँयें नासापुट से उसे निकालना तीसरा प्राणायाम होता है। इस प्रकार से तीन प्राणायाम करके मूलाधार में ‘मण्डुकाय नमः’ इत्यादि परतत्त्व तक उत्त क्रम से न्यास करके ‘ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मने शक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः’ से मूर्धा से पैर तक व्यापक न्यास करे। इसे योगपीठन्यास कहते हैं।

योगपीठ के स्थान में गणेश के उपासक सुधारण्व स्थान में इक्षुरसमुद्र की कल्पना करें और विष्णु एवं सूर्य के उपासक वहाँ पर क्षीरसमुद्र की कल्पना कर अपने-अपने पीठमन्त्रों से न्यास करें।

**मूलमन्त्र न्यास—**यह अपने-अपने कल्प के अनुसार होता है। कल्पोक्त मुद्रा बनाकर अपने इष्ट के कल्पोक्त रूप का अपने से अभेद रूप में ध्यान करके अपने शिर पर मूल मन्त्र से पृष्ठाङ्गलि छोड़े। पुनः अपने हृदय में ध्यान करके योगपीठ करे। अंगों और आवरणों सहित देवता का पूजन मानसोपचारों से करे। मानस नैवेद्य देकर भावना करे कि देवता खा रहे हैं। मूलाधार में आत्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा-ज्ञानात्मा के चतुरस्र कुण्ड में चित् शक्ति कुण्डलिनी का अग्नि का ध्यान करके मूल मन्त्र के साथ ‘अहंतं जुहोमि स्वाहा’ कहकर हवन करे। इसी प्रकार असत्य पैशुन्य काम क्रोध लोभ मद मोह मात्सर्य का सुषुम्ना रूपी सुक् से युक्त मनरूपी सुवा से हवन करे। तदनन्तर प्राणायाम अर्थादि कर षड्ग्रन्थ न्यास करके मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करके ‘गुह्यादि’ मन्त्र से जप को समर्पित करे। गुरु को प्रणाम करे। अपने आगे चन्दनादि लगे हुये बेलकाष्ठ के पीठ पर या सौधादि-निर्मित स्थण्डिल में कुङ्कुमादि से पूजाचक्र बनावे। मूल मन्त्र से उस पर पृष्ठाङ्गलि देवे। अथवा कारीगरों द्वारा सुवर्णादि से निर्मित पूजाचक्र में चन्दनादि लगाकर पूर्ववत् पीठ पर रखकर पृष्ठाङ्गलि प्रदान करे। सोना-चाँदी आदि धातुनिर्मित पूजा चक्र को अम्ल रस से शुद्ध करके प्रथमतः वैदिक मार्ग से अग्न्युत्तारण कर मधु, धी, दूध एवं नारियलजल से अलग-अलग अभिषेक करे। अथवा पचास वर्णांश्चिं वकाथ से या मन्त्रोवधि वकाथ से अभिषेक करे।

तदनन्तर चक्र को शुद्ध जल से धोकर चन्दन, आग, कपूर, कस्तूरी, कुङ्कुमादि का लेप लगाकर अपने आगे शुभ पीठ पर स्थापित करके उसका स्पर्श करते हुए मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करने के बाद उस शुद्ध चक्र पर पूर्वोक्त प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रों से ‘अमुकदेवतापूजाचक्रस्य’ इत्यादि उन-उन देवता का नाम लेते हुये उनका आवाहन करके सांग-सावरण पूजन कर प्रतिदिन महानैवेद्य एवं बलिदान देकर तीन दिनों तक महोत्सव करे। तीन दिनों में भी प्रथम दिन आवाहित देवता का विसर्जन न करे। चौथे दिन नित्य पूजा के बाद देवता का विजर्जन करे। इस प्रकार प्रतिष्ठित चक्र में नित्य-नैमित्तिक पूजन करे। आग्न्युत्तारण ऋग्वेदोक्त निम्न अग्निसूक्त से करे—

अग्निः सर्पिं वाजंभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम्। अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जग्निनर्नारीं वीरकुक्षिं पुरुन्धिम्॥।

आनेरप्तेः समिदस्तु भद्रग्निर्मही रोदसी आ विवेश। अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पर्स्तिणि॥।

अग्निर्ह त्यं जरातः कर्णमावग्निरद्वचो निर्दद्वज्जर्थम्। अग्निरात्रिं धर्म उरुष्वदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयोसृजत्सम्॥।

अग्निर्दा द्रविणं वीरपैशा अग्निर्ग्रीष्मि यः सहस्रां सनोति। अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेधोमानि विभृता पुरुत्रा॥।

अग्निमुखैर्ऋषयो वि हृयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः। अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम्॥  
अग्निं विश ईळते मानुषीर्था अग्निं मनुषो नहुयो वि जाताः। अग्निगान्धर्वीं पथ्यामुतस्याग्नेर्व्यूतिर्घुत आ निषता॥।  
आग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवचामा सुवृक्तिम्। अग्ने प्राव जरितार्दयिविष्टाग्ने महि द्रविणमा यंजस्व॥।

इन मन्त्रों से प्रथम प्रतिष्ठित चक्रादि को अग्नि शब्दरहित इन मन्त्रों की सौ आवृत्ति से अधिषेक करने के पश्चात् अग्नि शब्दसहित सौ पाठ से अधिषेक करे। इसे अन्युतारण कहते हैं। तब धातुचक्र को प्रतिदिन खट्टे द्रव्य के साथ शुद्ध जल से प्रक्षालित करे एवं स्फटिक यन्त्र को जल से प्रक्षालित करे।

### कालीमते चक्रप्रतिष्ठाविधिस्तत्रयोगश्च

अथ कालीमते चक्रप्रतिष्ठाविधिस्तु वामकेश्वरतन्त्रे—

भैरव्यवाच

चक्रभेदं महादेव त्वत्रसादान्मया श्रुतम्। इदानीं श्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाक्रमनिर्णयम् ॥१॥

शङ्कर उवाच

शृणु देवि महाभागे जगत्कारिणि कौलिनि । तस्योद्यापनकर्माङ्गं सर्वकार्यविनिर्णयम् ॥२॥  
स्नात्वा सङ्कल्पयेन्मन्त्री गुरोर्चर्चनमारभेत्। पञ्चगव्यं ततः कृत्वा शिवमन्त्रेण मन्त्रितम् ॥३॥  
तत्र चक्रं क्षिपेन्मन्त्री प्रणवेन समाकुलम्। समुद्भूत्य ततश्कं स्थापयेत्यूर्णपात्रके ॥४॥  
पञ्चामृतेन दुर्गथेन शीतलेन जलेन च। चन्दनेन सुगन्धेन कसूरीकुङ्कुमेन च ॥५॥  
पयोदधिवृतक्षीत्रशक्कराद्यानुक्रमात् । तोयधूपापात्रैः कुर्यात्पञ्चामृतविधिं बुधः ॥६॥  
हाटकैः कलशैर्देवीमष्टभिरपि॒रुरितैः कथायजलसंपत्तैः कारयेत् स्नानमृतम् ॥७॥  
स्नानं समाप्य तां देवीं स्थापयेत्स्वर्णपात्रके ।

यन्त्रराजाय विद्यहे महायन्त्राय धीमहि । तत्रो यन्त्रं प्रचोदयात् ॥८॥  
स्पृष्टवा यन्त्रं कुशाग्रेण गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्। अष्टोत्तरशतं देवि देवताभावसिद्धये ॥९॥  
आत्मशुद्धिं ततः कृत्वा षड्हैर्देवतां यजेत्। तत्रावाहू महादेवां जीवन्यासं च कारयेत् ॥१०॥  
उपचारैः षोडशभिर्हामुद्रादिभिः सदा। फलताम्बूलनैवेद्यैर्देवीं तत्र समर्चयेत् ॥११॥  
पट्टसूत्रादिकं दद्याद्वालङ्कारमेव च। मुकुरं चामरं घण्टां यथायोग्यं महेश्वरि ॥१२॥  
सर्वमेतत्प्रयत्नेन दद्यादात्महिते रतः। ततो जपेत्सहस्रं च सकलेमितसिद्धये ॥१३॥  
बलिदानं ततः कृत्वा प्रणमेच्यक्राजकम्। अष्टोत्तरशतं हृत्वा संपाताज्यं विनिक्षिपेत् ॥१४॥  
होमकर्मण्यशक्तश्वेद् द्विगुणं जपमाचरेत्। धेनुमेकां समानीय स्वर्णशृङ्गाद्यलङ्कृताम् ॥१५॥  
गुरवे दक्षिणां दद्यात्तो देव्या विसर्जनम् ।

अथ प्रयोगः—तत्र साधकः कृतनित्यक्रियः स्वस्तिवाचानपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात्। अद्येहत्यादि अमुकगो-  
त्रोऽमुकशर्मामुकदेवतायाः पूजार्थममुकयन्त्रसंस्कारमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, पञ्चगव्यमानीय हौमित्यष्टोत्तरशत-  
मभिमन्त्र ओमिति यन्त्रं तत्र निक्षिपेत्। तस्मादुत्तोत्त्वं पात्रान्तरे स्थापयेत्। ततः शीतलजलचन्दनकसूरीकुङ्कुमैः  
स्नापयित्वा पञ्चामृतं प्रागवत् हौमिति शोधयित्वा स्थापयेत्।

तत्र क्रमस्तु—क्षीरेण स्नाप्य पुनः शुद्धजलैः स्नाप्य धूपयेत्। एवं दधिधृतमधुशक्कराभिः। ततोऽष्टभिः-  
कलशैः कुङ्कुमगोरोचनाचन्दनमिश्रिततोयैः स्नापयेत् मूलमन्त्रेण सर्वत्र। ततो यन्त्रमुत्तोत्त्वं कुशाग्रेण सृशन् ‘यन्त्रराजाय  
विद्यहे महायन्त्राय धीमहि तत्रो यन्त्रं प्रचोदयात्’ इत्यष्टोत्तरशतवारमभिमन्त्रं प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। ततस्त्रेष्टदेवतामावाह्य

षोडशोपचारैः संपूज्य षडङ्गेन पूजयेत्। तत्र पट्टसूत्रादिकं दत्त्वाष्टोत्रसहस्रं जपेत्। शक्तश्वेद्वलिं दद्यात्। ततोऽष्टोत्रशतहोमं कृत्वा प्रत्याहुति संपातं कुर्यात्। होमासामथ्यें द्विगुणजपः कार्यः। ततो गुरवे सुवर्णालङ्घकृतां गां दक्षिणां च दत्त्वाच्छिद्रावधारणं कुर्यादिति।

कालीमत में चक्रप्रतिष्ठा—वामकेश्वर तन्त्र में महादेव से भैरवी ने कहा कि हे महादेव! आपकी कृपा से मैंने चक्रभेद को सुना; अब मैं प्रतिष्ठाक्रम का निर्णय सुनना चाहती हूँ। तब शंकर ने कहा—महाभागे देविः सुनो, उद्यापन कर्मों के अंगरूप सभी कार्यों का निर्णय कहता हूँ। साधक स्नान करके सङ्कल्प करे। गुरु का अर्चन प्रारम्भ करे। पञ्चगव्य को शिव मन्त्र से मन्त्रित करके ३० का उच्चारण कर चक्र को उसमें डुबो दे। प्रणव से ही उसे बाहर निकालकर पूर्ण पात्र में स्थापित करे। पञ्चामृत, दूध, शीतल जल, चन्दन, सुगन्ध, कस्तूरी, कुङ्कुम से धोकर दूध, दही, धी, मधु, शब्दकर से स्नान कराये। पुनः जल से धोकर धूप दिखाये। कथाय जलपूर्ण आठ स्वर्ण कलशों से स्नान कराये। स्नान के बाद उसे सोने के पात्र में स्थापित करे। तदनन्तर ‘यन्त्रराजाय विद्यहे महायन्त्राय धीमहि तत्रो यन्त्रः प्रचोदयात्’ इस यन्त्रगायत्री से यन्त्र को कुशाग्र से छूकर देवताभाव की सिद्धि के लिये एक सौ आठ जप से मन्त्रित करे। तब आत्मशुद्धि करके देवता का षडङ्ग पूजन करे। उसमें महादेवी का आवाहन करके जीवन्यास करे। मुद्रासहित सोलह उपचारों से पूजा करे। फल ताष्ठूल नैवेद्य समर्पित करे। प्रयत्नपूर्वक यथारोग्य रेशमी वस्त्र अलंकार मुकुर चामर घण्टा आत्मकल्याण के लिये समर्पित करे। तब सभी इच्छित फलों की प्राप्ति के लिये एक हजार जप करे। बलि देकर चक्रराज को प्रणाम करे। एक सौ आठ हवन करके उस पर धी की धारा गिरावे। हवन करने में अशक्त होने पर दो हजार जप करे। सोने से मढ़े सिंग वाली एक गाय लाकर गुरु को दक्षिणा में प्रदान करे। तब देवी का विसर्जन करे।

**प्रयोग—**साधक नित्य कृत्य करके यन्त्र संस्कार करने के लिये स्वस्तिवाचननूर्कं सङ्कल्प करे। तदनन्तर पञ्चगव्य लेकर ‘हौं’ के एक सौ आठ जप से उसे मन्त्रित करके ‘३०’ कहते हुये उसे यन्त्र पर डाल दे। यन्त्र को वहाँ से उठाकर दूसरे पात्र में रखे। तदनन्तर शीतल जल चन्दन कस्तूरी कुङ्कुम से उसे स्नान करावे। पञ्चामृत से पूर्ववत् स्नान कराकर ‘हौं’ द्वारा शोधित करके स्थापित करे।

स्नान का क्रम इस प्रकार है—दूध से स्नान कराने के बाद जल से स्नान कराकर उसे धूपित करे। इसी प्रकार दही, धी, मधु, शब्दकर से स्नान करावे। तब कुङ्कुम गोरोचन चन्दन-मिश्रित जल आठ कलशों में भरकर मूल मन्त्र से आठों से स्नान करावे। तब यन्त्र को उठाकर कुशाग्र से स्पर्श किए हुए पूर्वोक्त यन्त्र को गायत्री के एक सौ आठ जप से मन्त्रित करके उसकी प्रतिष्ठा करे। उसमें इष्टदेवता का आवाहन करके षोडशोपचार से पूजन करके षडङ्ग पूजन करे। तब पट्टसूत्र देकर एक हजार आठ जप करे। यथाशक्ति बलि दान दे। तब एक सौ आठ हवन करके प्रत्येक आहुति से सम्पात करे। हवन में अशक्त होने पर दोगुना जप करे। तब गुरु को सोने से अलंकृत गाय एवं दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे।

#### प्रतिष्ठितयत्रे शिवपूजापद्धतिः

इत्यं प्रतिष्ठितं प्रक्षालितं चन्दनादिमण्डितं पुरतः प्रोक्तपीठे संस्थाप्य, तत्र मूलमन्त्रेण पुष्टाङ्गलिं दत्त्वा प्रागवदर्थादिपात्राण्यासाद्यार्घ्यजलं किञ्चित् पात्रान्तरेणोद्भूत्य तेन जलेन स्वात्मानं पूजाचक्रं पूजाद्व्याणि च मूलमन्त्रेण प्रोक्ष्य तेषु धेनुमुद्रां प्रदर्शय, स्वदेहं गन्धादिभिरलङ्घकृत्य स्वेष्टदेवतारूपं सञ्चिन्त्य स्वशिरसि श्रीगुरुं, मूलाधारे गणपतिं च संपूज्य, प्रागुक्तयोगपीठदेवतास्तत्त्वासस्थानेषु संपूज्य हृदयकमलकेसरेषु तत्त्वीठशक्तीश्च संपूज्य, तत्त्वीठमन्त्रेण सर्वाङ्गेषु पुष्टाङ्गलिं दत्त्वा स्वेष्टदेवतारूपं स्वात्मानं ध्यायन् मूलमन्त्रेण मूर्धिं हृदये गुह्ये पादयोः सर्वाङ्गे च पञ्चस्थानेषु पञ्च पुष्टाङ्गलीन् दत्त्वा धूपदीपनैवेद्यैरत्र प्रागवन्मूलाधारे चतुरस्रं कुण्डं सञ्चिन्त्य तत्र कुण्डल्यात्मकपरमात्मवह्निं सञ्चिन्त्य मूलमन्त्रमुच्चार्यं,

धर्मार्थमहर्विर्दीपे आत्मानौ मनसा सुचा। सुषुम्नावर्त्मना

नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥

पुण्यं जुहोमि स्वाहा। पुनर्मूलं प्रागुक्तश्लोकमन्त्रं च, पापं जुहोमि स्वाहा। इत्यं पुण्यपापे कृत्याकृत्ये  
सङ्कल्पविकल्पै धर्मं च पृथक् हुत्वा पुनर्मूलं,

प्रकाशकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्नानीसुचम् । धर्माधर्मकलास्तेहपूर्णा वह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा ॥

इति धर्माधर्मत्वम् कं सकलप्रपञ्चं पूर्णाहुतित्वेन हुत्वा निरस्तनिखिलोपाधितया निरतिशयसुखानन्दचिद्विलासात्मकं स्वात्मानं ध्यायन्, प्राणायामभ्यदिकरषडङ्ग्न्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा जपं समर्प्य-धर्घजलेन पूजाचक्रमभ्युक्ष्य, चक्रस्योत्तरभागे ऐं गुरुभ्यो नमः। दक्षिणे गं गणपतये नमः। इति संपूज्य पूजाचक्रस्थाधस्तादतलादिसप्तपातालभावनया ३०० मण्डुकाय नमः। एवं कालाग्निरुद्राय नमः। मूलप्रकृत्यै नमः। आधारशक्त्यै नमः। कूर्माय नमः। अनन्ताय नमः। वराहाय नमः। इति संपूज्य, वराहस्य दंष्ट्रोपरि पृथिव्यै नमः। तस्यां सुधार्णवाय नमः। तस्मिन् नवरत्नमयद्वीपाय नमः। तन्मध्ये स्वर्णपर्वताय नमः। तदुपरि नन्दनोद्यानाय नमः। तदुपरि कल्पवृक्षेभ्यो नमः। तेषां मध्ये विचित्ररत्नभूम्यै नमः। तन्मध्ये स्वर्णग्राकाराय नमः। तन्मध्ये रत्नमण्डपाय नमः। तस्यान्तः स्वर्णविदिकायै नमः। तदुपरि रत्नसिंहासनाय नमः। इति तत्तद्वावनया संपूज्य पूजाचक्राधारपीठं सिंहासनत्वेन परिकल्प्य, तस्य चाग्नेयादिकोणचतुष्टयस्य पादचतुष्टये धर्माय नमः। ज्ञानाय नमः। वैराग्याय नमः। ऐश्वर्याय नमः। इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य, स्वाग्रादिपीठस्य गात्रचतुष्टये अर्धार्थाय नमः। अज्ञानाय नमः। अवैराग्याय नमः। अनैश्वर्याय नमः। इति प्रादक्षिण्येन पूजयेत्।

ततः सिंहासनस्य मध्ये, मायायै नमः। विद्यायै नमः। इति मायाविद्ये पट्टसूत्रमयपट्टिकारूपेण लौकिक-मञ्चवदोत्प्रोतरूपेण ग्रथिते स्थिते ध्यात्वा संपूज्य, तदुपरि अनन्ताय नमः। इति तत्पाकारमनन्तं संपूज्य, तस्य मूर्धिं पदाय नमः। आनन्दकन्दाय नमः। संवित्रालाय नमः। तद्वलेषु प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः। तत्केसरेषु विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः। तत्कर्णिकायां पञ्चाशद्वृण्बीजाद्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः। केसरेषु अं अर्कमण्डलाय नमः। कर्णिकायां उं सोममण्डलाय नमः। पत्रेषु मं वह्निमण्डलाय नमः। तथैव, ब्रह्मणे नमः। विष्णवे नमः। रुद्राय नमः। तत्रैव संप्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः। रं प्रकृत्यात्मने रजसे नमः। तं मोहात्मने तमसे नमः। अं आत्मने नमः। अं अन्तरात्मने नमः। पं परमात्मने नमः। हीं ज्ञानात्मने नमः। सिंहासनस्य स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च—ज्ञानतत्त्वात्मने नमः। मायातत्त्वात्मने नमः। कलातत्त्वात्मने नमः। विद्यातत्त्वात्मने नमः। परतत्त्वात्मने नमः। इति संपूज्य, तत्केसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन गणेशादितत्त्वीठस्य नवशक्तीः पीठमन्त्रेण समस्तं पीठं च संपूज्य तत्तमूलमन्त्रमुच्चार्यं ‘श्रीशिवादिपूर्ति परिकल्पयामि’ इति पीठपथ्ये शिवलिङ्गादि तदभावे पुष्पादिकं वा निक्षिप्य ध्यानोक्तां मूर्तिं विभावयेत्। ‘नमः’ इति कल्पितां मूर्तिं पूजयेत्।

इस प्रकार से प्रतिष्ठित प्रक्षालित चन्दनादि से मण्डित चक्र को अपने आगे उक्त पीठ पर स्थापित करे। मूल मन्त्र से पुष्पाङ्गलि देकर पूर्ववत् अर्च्य पात्रादि का स्थापन करे। कुछ अर्ध्य जल दूसरे पात्र में लेकर उससे अपना, पूजाचक्र का एवं पूजा द्रव्य का मूल मन्त्र से प्रोक्षण करे। धेनुमुद्रा दिखाकर अपने देहे को गन्धादि से अलंकृत करके अपने को इष्टदेवता मानकर शिर पर स्वगुरु एवं मूलाधार में गणेश का पूजन करे। पूर्वोक्त योगपीठ देवताओं की उनके स्थानों में पूजा करे। अपने हृदय कमल के केसर में पीठशक्तियों की पूजा करे। पीठमन्त्रों से सभी अंगों में पुष्पाङ्गलि दे। अपने इष्टदेवता के रूप में अपना ध्यान करे। मूल मन्त्र से मूर्धा, हृदय, गुह्य, पैरों और सभी अंगों—इन पाँच स्थानों में पाँच पुष्पाङ्गलि दे। धूप, दीप, नैवेद्य दे। पूर्ववत् मूलाधार में चतुरस्र कुण्ड का चिन्तन करके उसमें स्थित कुण्डल्यात्मक परमात्मानि में मूल मन्त्र के साथ धर्माधर्महिर्विर्दीते आत्माग्नौ मनसा सुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीजुहोम्यहम्।। पुण्यं जुहोमि स्वाहा। पुनः मूल मन्त्र पूर्वोक्त श्लोक मन्त्र पापं जुहोमि स्वाहा—इस प्रकार पुण्य-पाप कृत्य-अकृत्य सङ्कल्प-विकल्प का पृथक्-पृथक् हवन करे। फिर मूल मन्त्र तब

'प्रकाशकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीसुचम्। धर्माधर्मकलासेहपूर्णा वहौ जुहोम्यहं स्वाहा' से धर्माधर्मात्मक सभी पंचकों से पूर्णाहुति देकर अपने को सभी उपाधियों से गहित निरतिशय सुखानन्द चिद्रिलासात्मक समझे।

तदनन्तर प्राणायाम, ऋषि-कर-घडङ्ग न्यासपूर्वक मन्त्र मन्त्र का एक सौ आठ जप करके जप को देवता को समर्पित कर पूजाचक्र का अभ्युक्षण कर चक्र के उत्तर भाग में ऐ गुरुभ्यो नमः, दक्षिण में गं गणपतये नमः से पूजा करे। पूजा चक्र के नीचे अतालादि सात पातालों की भावना कर ३०० मण्डुक्य नमः, कालाग्निरुद्राय नमः, मूलप्रबृत्त्यै नमः, आधारशक्त्यै नमः, कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, वराहाय नमः से पूजा करे। वराह के दाँतों पर पृथिव्यै नमः। उसमें सुधार्षावाय नमः, उसमें नवरत्नमयद्वीपाय नमः, उसके मध्य में स्वर्णपर्वताय नमः, उसके ऊपर नन्दनोद्यानाय नमः, उसके ऊपर कल्पवृक्षेभ्यो नमः, उसके मध्य में विचिरत्नभूत्यै नमः, उसके मध्य में स्वर्णप्रकाराय नमः, उसके मध्य में रत्नमण्डपाय नमः, उसमें स्वर्णगविदिकायै नमः, उसके ऊपर रत्नसिंहासनाय नमः—इन भावनाओं से पूजा करे। पूजा चक्राधार पीठ को सिंहासन के रूप में कल्पित करके आग्नेय आदि चार कोरों में सिंहासन के चारों पैरों में धर्माय नमः, ज्ञानाय नमः, वैराग्याय नमः, ऐश्वर्याय नमः इस प्रकार पूजन प्रदक्षिणक्रम से करे। अपने आगे से पीठ के गात्रचतुष्टय में अधर्माय नमः, अज्ञानाय नमः, अवैराग्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः से प्रदक्षिणक्रम से पूजन करे।

तदनन्तर सिंहासन के मध्य में मायायै नमः, विद्यायै नमः इस प्रकार माया और विद्या को पट्टसूत्रमय पट्टिकारूप में लौकिक मञ्चवत् औत-प्रोत रूप से ग्रथित होकर स्थित रूप में ध्यान करके पूजा करे। उसके ऊपर अनन्ताय नमः से तत्पाकार रूप में अनन्त की पूजा करे। उसकी मूर्धा में पद्माय नमः, आनन्दकन्दाय नमः, संवित्रालाय नमः। पद्म के दलों में प्रकृति-मयपत्रेभ्यो नमः। उसके केसर में विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः। उसकी कर्णिका में पञ्चाशद्विंशीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः। केसरों में—अं अर्कमण्डलाय नमः। कर्णिका में ३०० सोममण्डलाय नमः। पत्रों में मं वह्निमण्डलाय नमः। वहीं पर ब्रह्मणे नमः, विष्णवे नमः, रुद्राय नमः। वहीं पर सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः, रं प्रकृत्यात्मने रजसे नमः, तं मोहात्मने तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, हीं ज्ञानात्मने नमः। सिंहासन के अपने आगे से चारों दिशाओं और मध्य में—ज्ञानतत्त्वात्मने नमः, मायातत्त्वात्मने नमः, कलातत्त्वात्मने नमः, विद्यातत्त्वात्मने नमः, परतत्त्वात्मने नमः। उसके केसर में अपने आगे से प्रदक्षिणक्रम से गणेशादि नव पीठशक्तियों की एवं पीठमन्त्र से सारे पीठ की पूजा करे। उसके बाद मूल मन्त्र बोलकर 'श्रीशिवादिमूर्ति परिकल्पयामि' से पीठ के मध्य में शिवलिङ्गादि अथवा इसके अभाव में पुष्पादि देकर ध्यानोक्त मूर्ति की भावना करे और कल्पित मूर्ति की नमः से पूजा करे।

अथ पञ्चायतनी चेत् मध्ये शिवपूजायां देवस्यानेयादिकोणचतुष्टये सूर्यगणेशदुर्गाविष्णून् संस्थाप्य गणेशादिकमेण तत्त्वकल्पोक्तविधिना तत्त्वाद्यते तत्त्वीठपूजापुरः सरं पृथक्क्षम्यैति साङ्घावरणान् सर्वोपचारैः संपूज्य तत्त्वमन्त्रजप-स्तोत्रपाठप्रणामक्षमापनादिभिः परितोष्येत्। एवं विष्णवादिपूजायां प्रमाणोक्तप्रकारेण कोणेषु देवताः संस्थाप्य प्रमा-णोक्तप्रकारेणायतनदेवताः पूजयेत्। अत्र पञ्चायतनपूजायामपि पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राचीदिशं परिकल्प्य तदनुसारेणाग्नेयादिकं कल्पयेदिति। ततः पुनर्मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं मूलमन्त्रस्यर्थादिकांश्च कृत्वा कराश्यां पुष्पाङ्गलिमादाय पद्ममुद्रां बद्ध्या पूर्वोक्तमातृकाभ्योजत्वेन ध्यात्वा पद्मासनेनोपविष्ट ऋजुकायोऽन्तर्मुखो गुदमेद्योरन्तराले सुषुमान्तश्चतुरस-मध्यस्थ्यतुर्तलपङ्कजदलेषु विद्योतत् वशसार्णचतुष्टयं सकेसरं पीतवर्णं मूलाधारं सञ्ज्ञिन्यं, तन्मध्ये सोमसूर्यानिम-याकथादित्रिखं त्रिकोणं विभाव्य तन्मध्ये सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलं जपाकुसुमप्रभं ज्योतिर्लिङ्गं ध्यात्वा, तदुपरि चिद्रूपां तदित्कोटिप्रभादीप्तां बिसतनुतीयसीं प्रसुप्तभजारीमिव सार्थक्रिवलयेन सर्वान्तर्यामितया स्थितां परब्रह्मविनाभूतां कुण्डलिनीं शक्तिं चिरं विभाव्य, गुरुपदिष्टविधिना गुदाकुञ्चनपूर्वं हूँकारेण तां कुण्डलीनीमुत्थाप्य सुषुमावर्त्मना मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धज्ञायथष्टचक्रभेदेन ब्रह्मरञ्जनीनीत्वा, तत्रस्थपरमामृताम्बुद्धौ परमात्मनि संयोज्य शिवशक्त्यात्मकं तत्तेजो वहन्नासाध्वना निःसार्य करस्थपुष्पाङ्गलौ संयोज्य, मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्रीशिव इहागच्छ इहागच्छ' इति चक्रमध्यस्थितमूर्तेः शिरसि पुष्पाङ्गलिप्रक्षेपेण तत्तेज आवाहनीमुद्रया समावाह्य

तद् ब्रह्मरस्येण प्रविष्टं सञ्चिन्त्य, श्रीशिवादिरूपेण परिणतं ध्यानोक्तरूपं तं ध्यायन् मूलमन्त्रमुच्चार्य ‘श्रीशिव इह तिष्ठ इह तिष्ठ’ इति स्थापनीमुद्रां प्रदर्शय,

देवेश भक्तसुलभ सर्वाभरणसंयुत । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावदत्र स्थिरो भव ॥

इति प्रार्थय, पुनर्मूलमन्त्रमुच्चार्य ‘श्रीशिव इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि’ इति सन्निधापनमुद्रया सन्निधाप्य, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव इह सन्निरुद्धो भव इह सन्निरुद्धो भव’ पुनर्मूलं ‘श्रीशिव इह संमुखो भव इह संमुखो भव’ इति तत्त्वमुद्रया विधाय, पुनर्मूलं ‘श्रीशिव इहावगुणितो भव इहावगुणितो भव’ इत्यवगुणित्य देवस्य हृदयादिष्ट-डङ्गन्यासस्थानेषु षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव सकलीकृतो भव सकलीकृतो भव’ इति सकलीकृत्य, धेनुमुद्रां बद्धधा देवस्य मूर्धिं अमृतवृष्टिं धारयन् मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिवामृतीकृतो भवामृतीकृतो भव’ इत्यमृतीकृत्य महामुद्रां बद्धधा मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव परमीकृतो भव परमीकृतो भव’ इति देवस्य मूर्धिं परमामृतवृष्टिं ध्यात्वा, मूलमन्त्रं ततः ‘ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लित्रे क्लेदिनि क्लेदेय महाक्षोभं कुरु कुरु सौः हसौः’ इति दीपनीमकारादिक्षकारातां मातुकां चोच्चायर्थादेकेन देवं त्रिः प्रोक्ष्य देवस्य हृदयं सृष्टेन् पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेमपदस्थाने श्रीशिवस्येति पदं प्रक्षिप्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रं जपेत्। देवस्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय, मूलमन्त्रमुच्चार्य ‘श्रीशिवाय नमः’ इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा लिङ्गयोनित्रिशूलाक्षमालावराभयमृगखट्वाङ्गकपालडमरुकाख्या दश मुद्राः प्रत्येकं कामबीजेन विरच्य मूलमन्त्रेण प्रदर्शय हृमिति मुच्छेदिति दश मुद्राः प्रदर्शय, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एतत्ते आसनं नमः’ इति वार्क्ष चार्म वास्त्रं पौष्यं तैजसं वा यथासंभवमासनं देवस्य वामभागे विन्यस्य, ‘हंहंहं इदमिदमिदं गृहण स्वाहा’ इति निवेद्य मूलेन पद्ममुद्रां प्रदर्शय, पुनर्मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिवाय नमः’ इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पुनर्मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव कुशलं स्वाहां’ इति कुशलस्वागतप्रश्नं कृत्वा कुशलस्वागतप्रश्नमुद्रे प्रदर्शय, पुनर्मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एष तेऽर्थः स्वाहा’ इति पूर्वस्थापितार्थपात्रादन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदवौर्मितं जलं पात्रान्तरेणोदधृत्य देवस्य शिरसि दत्त्वा ‘ॐ हंहंहं इदमिदमिदं गृहण स्वाहा’ इति निवेद्यार्थमुद्रां प्रदर्शय, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिवाय नमः’ इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पुनर्मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एतत्ते पाद्यं नमः’ इति पाद्यपात्राच्छ्यामाकदूर्वाब्जिविष्णुक्रान्तान्तिं जलं पात्रान्तरेणोदधृत्य देवस्य पादयोर्दत्त्वा ॐ हंहंहमिति मन्त्रेण प्रागवन्निवेद्य, मुद्रां प्रदर्शय मूलं प्रागवत्पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। अत्र सर्वोपचारेषु प्रोक्तमन्त्रेण निवेदनं मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं च प्रत्युपचारं कुर्यात्।

पञ्चायतन पूजा में मध्य में शिवपूजा में देव के आग्नेयादि चारों कोनों में सूर्य-गणेश-दुर्गा-विष्णु को स्थापित करके गणेशादि के क्रम से उनकी कल्पोक्त विधि से उनके-उनके यन्त्र में पीठपूजापूर्वक पृथक्-पृथक् सांगावरण सभी उपचारों से पूजा करे। उनके मन्त्रों का जप, स्तोत्रपाठ, प्रणाम, क्षमापान से उहें सन्तुष्ट करे। इसी प्रकार विष्णु आदि की पूजा में प्रमाणोक्त प्रकार से कोणों में देवताओं को स्थापित करके प्रमाणोक्त प्रकार से आयतन देवताओं की पूजा करे। यहाँ पञ्चायतन पूजा में भी पूज्य-पूजक के मध्य में प्राची दिशा कल्पित करके तदनुसार ही आग्नेयादि कोणों को कल्पित करे। तदनन्तर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादिक न्यास करके अञ्जलि में फूल भरकर पद्ममुद्रा बनाकर पूर्वोक्त मातृका कमल का ध्यान करके पद्मासन में बैठे। ऋजुकाय, अन्तर्मुख, गुदा-मेढ़ के अन्तराल में सुषुम्ना के चतुरस मध्यस्थ चतुर्दल पद्म के दलों में प्रकाशमान वं शं षं सं वर्णचतुष्टय सकेसर पीत वर्ण मूलाधार का चिन्तन करे। उसमें सोम-सूर्याग्निमय अकथादि त्रिरेखात्मक त्रिकोण की भावना करे। उसमें करोड़ सूर्य के समान प्रकाशित, करोड़ चन्द्रमा के समान सुशीतल, अड्डुल-पूल के रंग के समान ज्योतिर्लिंग का ध्यान करे। उसकं ऊपर कोटि विद्युत् प्रभा से दोप्त बिसतन्तुतीयसी प्रसुप्त सर्पिणी के समान साढे तीन वलय में सर्वान्तर्या मीरूप में स्थित पञ्चहाविनाभूता कुण्डलिनी शक्ति की भावना करे। गुरु द्वारा उपदिष्ट विधि से गुदा को आंकुचित करके हुंकार से उस कुण्डलिनी को उठाकर सुषुम्ना मार्ग से मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपुर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञा इस षट्चक्र भेदनपूर्वक ब्रह्मरस्म में ले जाये। वहाँ पर स्थित अमृतसागर में परमात्मा से मिलाकर शिव-शक्त्यात्मक उस तेज को प्रवहमान नासामार्ग से निकालकर करस्थ पुष्पाञ्जलि में जोड़कर मूलमन्त्र के साथ ‘श्रीशिव इहागच्छ इहागच्छ’ कहकर चक्रमध्य-स्थित

मूर्ति के शिर पर पुष्पाञ्जलि को छोड़ दे। उस तेज को आवाहित करके उसे ब्रह्मन्ध्र में प्रविष्ट चिन्तन करके श्री शिवादि रूप में परिगत ध्यानोत्तर रूप में ध्यान करे। मूलमन्त्र के साथ ‘श्रीशिव इह तिष्ठ इह तिष्ठ’ कहकर स्थापना मुद्रा दिखाकर ‘देवेश भक्तसुलभ सर्वाभरणसंयुत। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावदत्र स्थिरो भव’ श्लोक पढ़कर प्रार्थना करे। पुनः मूलमन्त्र के साथ ‘श्री शिव इह सत्रिधेहि इह सत्रिधेहि’ कहकर सत्रिधापन मुद्रा से सत्रिधापित करे। मूलमन्त्र श्री शिव इह सत्रिधस्त्रो भव इह सम्पुद्धो भव कहकर सम्पुद्धिकरण करे। इस प्रकार उन-उन मुद्राओं को दिखावे। पुनः मूल श्री शिव इहावगुणितो भव अवगुणितो भव कहकर अवगुणित करे। तदनन्तर देवता के हृदयादि षडङ्ग न्यासस्थानों में षडङ्ग मन्त्रों का न्यास करे। मूल मन्त्र श्री शिव सकलीकृतो भव सकलीकृतो भव से सकलीकरण करे। धेनुमुद्रा बनाकर देव के मूर्धा पर अमृतधारा वर्षात् हुए मूल श्रीशिव अमृतीकृतो भव अमृतीकृतो भव कहकर अमृतीकरण करे। महामुद्रा बाँधकर मूल श्रीशिव परमीकृतो भव परमीकृतो भव कहकर देवता के शिर पर अमृतवृष्टि का ध्यान करे। मूल मन्त्र ऐं वद वद वागवादिनि ऐं विलन्त्रे क्लेदिनि क्लेदेय महाक्षोभं कुरु कुरु सौः हसौ—इस दीपिनी मन्त्र के साथ अ से क्ष तक की मातृका कहकर अर्घ्योदक से देवता की शिर को तीन बार प्रोक्षित करे। देव के हृदय को स्पर्श करके पूर्वोक्त प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र में ‘मम’ के स्थान पर ‘श्रीशिवस्य’ पद जोड़कर प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र का जप करे। देव की प्राण-प्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र कहकर श्रीशिवाय नमः से तीन पुष्पाञ्जलि छोड़े। लिङ्ग, योनि, त्रिशूल, अक्षमाला, वर, अभय, मृग, खट्टवांग, कपाल, डमरु नामक दश मुद्रा को कल्पी बीज से बनाकर मूलमन्त्र से दिखावे एवं ‘ह’ से त्याग करे। इस प्रकार दश मुद्रा दिखावे। मूलमन्त्र श्री शिव एतते आसनं नमः से यथासम्भव वार्ष, चार्म, वात्र, पौष्ट्र अथवा तैजस आसन देवता के वाम भाग में रखकर हं हं हं इदमिदं गृहाण स्वाहा से निवेदित करके मूल मन्त्र से पद्म मुद्रा दिखावे। पुनः मूल श्रीशिवाय नमः से पुष्पाञ्जलि देकर पुनः मूल श्रीशिव कुशलं स्वागतं कहकर कुशल-स्वागत सम्बन्धी प्रश्न करे। कुशल स्वागत प्रश्न मुद्रा दिखावे। पुनः मूल श्री शिव एष ते अर्थः स्वाहा कहकर पूर्वस्थापित अर्घ्य पात्र से गन्धाक्षत पुष्प यव कुशाग्र तिल सरसों दुर्वायुक्त जल दूसरे पात्र में लेकर देवता के शिर पर डाले। ३५ हं हं हं इदमिदमदं गृहाण स्वाहा से निवेदित करके अर्घ्यमुद्रा दिखावे। मूल श्री शिवाय नमः से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। पुनः मूल श्रीशिव एतते पाद्य नमः से पाद्य दे। पाद्य पात्र से श्यामाक दूर्वा कमल विष्णुकान्तायुक्त जल दूसरे पात्र में लेकर देवता के पैरों में देकर ३५ हं हं हं मन्त्र से पूर्ववत् निवेदित करके मुद्रा दिखावे। मूल से पूर्ववत् पुष्पाञ्जलि प्रदान करे।

तत आचमनीयपात्राज्ञातीफललवङ्गककोलचूर्णयुतजलं पात्रान्तरेणोद्भृत्य, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एतते आचमनीयं सुधा’ इति देवस्य मुखकमले दत्त्वा प्राग्वन्निवेद्याचमनीयमुद्रां प्रदश्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मधुपर्कपात्रमुद्धृत्य, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एष ते मधुपर्कः सुधा’ इति देवस्य मुखकमले दत्त्वा प्राग्वन्निवेद्य मधुपर्कमुद्रां प्रदश्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनराचमनीयपात्रात्पात्रान्तरेण जलमुद्धृत्य, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एतते पुनराचमनीयं सुधा’ इति पुनराचमनीयं दत्त्वा प्राग्वन्निवेद्याचमनीयमुद्रां प्रदश्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, रत्नपादुके उपनीय ‘पादुकायुगमारुह्य भगवन् रत्ननिर्मितम् स्नानमण्डपमायाहि स्नानार्थं शक्तिगगतम्’ इति प्रार्थ्य, पूर्वस्थां दिशि विरचितं स्नानमण्डपं नीत्वा प्राग्वदासनं दत्त्वाद्यपाद्याचमनीयानि प्राग्वन्निवेद्य, सुगन्ध्यतेलादिकमुपनीय ‘श्रीशिव एतते सुगन्ध्यतेलाभ्यङ्गसुगन्ध्य-मलकाद्युद्वर्तनादिकं नमः’ इति सुगन्ध्यमलकाद्युद्वर्तनादिकं च निधाय महाराजोपचारवत्रानाविधैर्जलैरभिषिद्य गङ्गादीर्थादाहृतजलपूर्णकनकलशहस्ताभिर्देवकन्याभिरभिषिक्तं मत्वा, प्राग्वन्निवेद्य स्नानमुद्रां प्रदश्य मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्राग्वदाचमनीयं दत्त्वा, जलापकर्णणार्थं वस्त्रं दत्त्वाङ्ग्रेज्ञेन परिकल्प्य श्वेतदुकूलयुगलमानीय वर्मित वरुणबीजेनाभिमन्त्र्य, जलेनाश्वमन्त्रेण प्रोक्ष्य ‘ब्रह्म्यतिदेवताभ्यां वासोभ्यां नमः’ इति संपूज्य, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एते ते वाससी नमः’ इति वाससी परिधाप्य पूर्ववन्निवेद्य वस्त्रमुद्रां प्रदश्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पूर्ववदाचमनीयं दत्त्वा स्वर्णादिनिर्मितं यज्ञोपवीतमानीय, मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एतते यज्ञोपवीतं नमः’ इति यज्ञोपवीतं दत्त्वा प्राग्वन्निवेद्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा यज्ञोपवीतमुद्रां प्रदश्य प्राग्वदाचमनीयं निवेद्य रत्नपादुके उपनीय,

ॐ पादुकायुगमारुह्यं भगवन् रत्ननिर्मितम् । आगच्छ निर्मितं याम्यमलङ्कारस्य मण्डपम् ॥

इति दक्षिणदिशि तमलङ्कारमण्डपं नीत्वा तत्र सिंहासने उपवेश्य नानाविधालङ्करणानि समुपनीय, प्रावत्प्रोक्ष्य 'नानादैवतेभ्यो मुकुटाभरणेभ्यो नमः' इति संपूज्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतते मुकुटं नमः, एतते कुण्डलं नमः' इति नानाभरणानि तत्तत्रामा समर्थं निवेद्याभरणमुद्रां प्रदर्शय पुष्पाङ्गलिं दत्त्वा, पादुके उपानीय,

पादुके परिधायेमे पञ्चवायापुरःसरम् । यागमण्डपमायाहि परिवारगणैः सह ॥

इति प्रार्थ्यं प्रधानमण्डपं नीत्वा तत्र प्रावक्तलितयोगपीठे देवं समुपवेश्य छत्रचामरादिनानाविधोपकरणहस्तं परिवारदेवतागणं सूर्यात् किरणसमूहमिव देवशरीराद्विनिर्गत्य स्वे स्वे स्थाने समुपविष्टं विशेषानुकूलं प्रधानदेवता-सदृशाकाराभरणायुधादिशोभितं स्थिरीभूतं परितश्क्रमध्ये ध्यात्वा, चन्दनागुरुकर्पूरादिनानागन्धमानीय प्रावत्प्रोक्ष्य 'गन्धवर्दैवताय गन्धाय नमः' इति संपूज्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एष ते गन्धो नमः' इति देवाय गन्धं समर्थं, शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च । मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥

इति प्रपूज्य, मूलमुच्चार्य 'श्रीशिवेमानि ते पुष्पाणि वौषट्' इति नानाविधानि सुगन्धशुभ्रपुष्पाणि समर्थं प्रावत्प्रिवेद्य पुष्पमुद्रां प्रदर्शय देवं संपूज्य देवहृदयादिषु षडङ्गन्यासस्थानेषु षडङ्गत्वेन संपूज्य, 'श्रीशिव परिवारदेवता-पूजनार्थमनुजां देवि' इति देवं प्रार्थ्यं तत्तत्कल्पोक्तावरणदेवताः पूजयेदिति ।

आचमनीय पात्र से जातिफल लवङ्ग कङ्गोल चूर्णयुक्त जल दूसरे पात्र में लेकर मूल श्रीशिव एतते आचमनीयं सुधा कहकर मुखकमल में अर्पित कर पूर्ववत् निवेदित कर आचमनीय मुद्रा दिखावे । पुष्पाङ्गलिं दे । मधुपर्क पात्र लेकर मूल श्री शिव एष ते मधुपर्कः सुधा कहकर मुख में देकर पूर्ववत् निवेदन करके मधुपर्क मुद्रा दिखाकर पुष्पाङ्गलि प्रदान करे । पुनः आचमनीय पात्र से दूसरे पात्र में जल लेकर मूल श्री शिव एतते पुनराचमनीयं सुधा कहकर पुनराचमनीय देकर पूर्ववत् निवेदन करके आचमनीय मुद्रा दिखाकर पुष्पाङ्गलि देवे । रत्नपादुका लेकर कहे—

पादुकायुगमारुह्यं भगवन् रत्ननिर्मितम् । स्नानमण्डपमायाहि स्नानार्थं शक्रदिग्गतम् ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके पूर्व दिशा में विरचित स्नानमण्डप में ले आये । पूर्ववत् आसन देकर अर्घ्यं पाद्य आचमनीय निवेदित करे । सुगन्धित तेल लेकर श्रीशिव एतते सुगन्धतैलाभ्यङ्गसुगन्धामलकाद्बृद्धनादिकं नमः कहकर सुगन्धामलक उद्बृद्धनादि महाराजोपचारवत् नाना प्रकार के जल से अभिषेक करे । गङ्गादि तीर्थ से लाये जल से स्वर्णं कलश द्वारा देवकन्याएँ अभिषेक कर रही हैं—ऐसी भावना करे । निवेदन करके स्नानमुद्रा दिखावे । मूल से पुष्पाङ्गलि अर्पित करे । पूर्ववत् आचमनीय देकर जल पोंछेन के लिये वस्त्र देकर अंगप्रोक्षण की कल्पना करे । दो श्वेत चादर लेकर उसे 'वं' वरुणबीज से मन्त्रित करे । अस्त्रमन्त्र से जल के छोटे अमारकर 'ब्रह्मस्पतिदैवताभ्यां वासोपाभ्यां नमः' से पूजकर मूल श्रीशिव एते ते वाससी नमः से वस्त्र रखकर पूर्ववत् निवेदित करके वस्त्र मुद्रा दिखाकर पुष्पाङ्गलि अर्पित करे । पूर्ववत् आचमनीय देवे । स्वर्णादि निर्मित जनेऊ लेकर मूल मन्त्र श्रीशिव एतते यज्ञोपवीतं नमः कहकर यज्ञोपवीत देकर पूर्ववत् निवेदित कर पुष्पाङ्गलि देकर यज्ञोपवीत मुद्रा दिखाकर पूर्ववत् आचमनीय निवेदित करे । रत्नपादुका लेकर 'ॐ पादुकायुगमारुह्यं भगवन् रत्ननिर्मितम् । आगच्छ निर्मितं याम्यमलङ्कारस्य मण्डपम्' कहकर उसे निवेदित करके अलङ्कारमण्डप में उन्हें लाकर सिंहासन पर बैठाकर नानाविध अलंकारों को उनके समीप रखकर पूर्ववत् प्रोक्षण करके 'नानादैवतेभ्यो मुकुटाभरणेभ्यो नमः' से पूजा करके मूल श्रीशिव एतते मुकुटं नमः, एतते कुण्डलं नमः आदि कहकर नाना आभरणों को उनके नामों से समर्पित करे । निवेदन करके आभरण मुद्रा दिखाकर पुष्पाङ्गलि अर्पित करे । तदनन्तर पादुका लेकर 'पादुके परिधायेमे पञ्चवायापुरःसरम् । यागमण्डपमायाहि परिवारगणैः सह' कहकर प्रार्थना करके प्रधान मण्डप में ले आये । वहाँ पूर्वकल्पित योगपीठ पर देव को बैठाये । छत्र-चामरादि नाना प्रकार के उपकरणों को हाथों में लेकर परिवार देवतागण को सूर्य से किरणसमूह के समान देवशरीर से निकल कर अपने-अपने स्थान में बैठ गये, उनके आकार प्रधान देवता के समान हैं, वैसे ही आभरण एवं आयुध हैं, वे देवता के सभी ओर बैठे हैं—इस प्रकार की भावना करते हुये

उनके मध्य मे स्थित देव का ध्यान करे। चन्दन अगर कपूरादि नाना गन्ध लाकर पूर्ववत् प्रोक्षण करके 'गन्धर्वदेवत्याय गन्धाय नमः' से पूजा करे। मूल मन्त्र श्री शिव एष ते गन्धो नमः कहकर गन्ध समर्पित करे। 'शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च। मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम्' से पूजा करे। 'मूलमन्त्र श्री शिवेमानि ते पुष्पाणि वौषट्' से नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्प चढ़ाकर पूर्ववत् निवेदित करके पुष्पमुद्रा दिखाकर पूजा करे। देव के हृदयादि में षडङ्ग न्यासस्थानों में लयाङ्ग रूप में पूजा करे। 'श्रीशिव परिवारदेवतापूजनार्थमनुजां देह' से देवता की प्रार्थना करके तत्कल्पोक्त आवरण देवताओं की पूजा करे।

**इत्थमङ्गावरणदेवता:** संपूज्य तद्वाहो देवाशाद्यसु दिक्षु क्रमेण—लं इन्द्राय सुराधिपतये पीतवरण्यि वत्र-हस्ताय ऐरावतवाहनाय नमः। रं अग्नये तेजोऽधिपतये रक्तवरण्यि शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः। टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवरण्यि दण्डहस्ताय महिषवाहनाय नमः। क्षं निर्झृतये रक्षोऽधिपतये धूप्रवरण्यि खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः। वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवरण्यि पाशहस्ताय मकरवाहनाय नमः। यं वायवे प्राणाधिपतये कृष्णवरण्यिद्वृशहस्ताय मृगवाहनाय नमः। सं कुबेराय यक्षाधिपतये मौक्तिकवरण्यि गदाहस्ताय नरवाहनाय नमः। हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवरण्यि शूलहस्ताय वृषभवाहनाय नमः। इति संपूज्य इन्द्रेशानयोर्मध्ये आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवरण्यि पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः। निर्झृतिवरुणयोर्मध्ये हीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवरण्यि चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नमः, इति पूजयेत्। एवं विस्ताराशक्तौ लं इन्द्राय नमः। रं अग्नये नमः। टं यमाय नमः। क्षं निर्झृतये नमः। वं वरुणाय नमः। यं वायवे नमः। सं कुबेराय नमः। हं ईशानाय नमः। आं ब्रह्मणे नमः। हीं अनन्ताय नमः, इति प्रावत्संपूज्य इन्द्रादीनां समीपे वं वत्राय नमः। एवं, शं शक्त्यै नमः। दं दण्डाय नमः। खं खड्गाय नमः। पां पाशाय नमः। क्रों अङ्गूशाय नमः। गं गदायै नमः। शं त्रिशूलाय नमः। पं पद्माय नमः। चं चक्राय नमः, इति लोकपालानायुधानि च पूजयेत्। अत्र सर्वत्रावरणपूजायां प्रथमावरणपूजान्ते मूलमन्त्रेण देवं संपूज्य संबोध्य मूलमन्त्रमुच्चार्य

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल । भक्त्या समर्पये तु उभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥

इति देवस्य चरणयोररथ्योदकं पुष्पादिकं दद्यात्। एवं द्वितीयावरणादिव्याघृहनीयम्।

ततो मूलमुच्चार्य 'साहाय्य सावरणाय शिवाय नमः' इति त्रिः पुष्पाङ्गलिना संपूज्यास्त्रमन्त्रेण धूपभाजनं संप्रोक्ष्य हृदयमन्त्रेण धूपभाजनं गन्धादिभिरभ्यर्थ्य, तत्र साराङ्गारात्रिधाय वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य 'कलीं सुरभितेजसे स्वाहा' इति मन्त्रेण गुगुलादिधूपं निक्षिप्य 'गन्धर्वदेवताय धूपाय नमः' इति धूपं संपूज्य, मूलमुच्चार्य

वनस्पतिरसोत्पत्रो गन्धाङ्गो धूप उत्तमः। आध्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति धूपमुत्सुज्य, स्ववामभागे घण्टां निधायास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य तेनैव मन्त्रेण 'घण्टायै नमः' इति त्रिरभ्यर्थ्य 'ॐ गजध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा' इति घण्टामन्त्रेण तां त्रिभरभिमन्त्र्य वामकरेण तां घण्टां वादयन् 'ॐ हंहं हं इदमिदमिदं गृहण स्वाहा' इति मन्त्रेण नीचैर्धूपं निवेद्य, धूपभाजनं देवस्य वामभागे निवेश्य धूपमुद्रां प्रदर्शय देवं संपूज्य, दीपग्राहिण्यां गोधृतं तिलसेहं वा निक्षिप्य तत्र कर्पूरगर्भिणीं वर्ति निधाय हीमिति प्रज्ञाल्य 'विष्णुदेवत्याय धृतप्रदीपाय नमः' 'वनस्पतिदेवत्याय तिलदीपाय नमः' इति तैलदीपश्वेतसंपूज्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, मूलमुच्चार्य, सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः। सबाहायन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इत्युच्चार्य 'श्रीशिव एष ते दीपो नमः' इति दीपमुत्सुज्य प्रावत् घण्टां वादयन् देवस्य पादादिमूर्धनिन् दीपमुच्चैः प्रदर्शय, धर्तश्वेदक्षभागे तैलदीपश्वेदेवस्य वामभागे दीपं निवेश्य दीपमुद्रां प्रदर्शय, देवं संपूज्य प्रावत्स्वरूपस्य पादाचमनीये दत्त्वा स्वर्णदिपात्रे भक्ष्यभोज्यलेह्याच्छ्रेयपेत्यत्मकं पञ्चविधमन्त्रं कट्वम्ललवणतिक्तक्षसायमधुरात्मक-षड्सूपेतनानाविधव्यञ्जनसमेतं नैवेद्यमानीय 'विष्णुदेवत्याय नैवेद्याय नमः' इति संपूज्य देवस्य पुरतः चतुरस्रमण्डले

साधारं तत्यात्रं निधाय, मूलेन वीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्षणीजलेन प्रोक्ष्य तेजैव मन्त्रेण कुशैस्त्रिः संताङ्ग कवचमन्त्रेणाभ्युक्ष्या-धोमुखदक्षिणहस्तोपरि तादृशं वामहस्तं निधाय यमिति वायुबीजेनाष्टवारमभिमन्त्र्य नैवेद्यगतस्पर्शार्दिदोषान् शोषयित्वा, पुनर्वार्महस्तोपरि दक्षिणकरं प्रागवन्निधायाथोमुखवामहस्तेनाच्छादयन् रमिति वह्नीजमष्टवारं जपन् तद्रत्नदोषान् दग्धवा, धेनुमुद्रां प्रदर्शयन् वमित्यमृतबीजमष्टथा जपन्नैवेद्यममृतीकृत्यास्त्रमन्त्रेण नैवेद्यस्योपरि चक्रमुद्रां दर्शयन् तत्सं-रक्ष्य मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य दक्षिणहस्तेन जलं गृहीत्वा

‘हेमपात्रगतं दिव्यं परमात्रं सुसंस्कृतम्। पञ्चथा षड्सोपेतं गृहण परमेश्वर ॥

इति नैवेद्यस्योपरि चुलुकोदकं निक्षिप्य मूलमुच्चार्य ‘श्रीशिव एतते नैवेद्यं नमः’ इत्युत्सृज्य, कराभ्यां तत्यात्रं सूशन् पूर्वोक्तमन्त्रेण निवेद्य पात्रान्तरे धेनुमुद्रायमृतीकृत्य देवस्य दक्षिणहस्ते तेज्जलं किञ्चिदत्त्वा ‘अमृतोपसरणमपि स्वाहा’ इति देवमाचामयित्वा वामकरेण विकचोत्पलसन्निभां ग्रासमुद्रां दर्शयन् दक्षिणकरस्थकनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठयोगेन ‘ॐ प्राणाय स्वाहा’ एवं पुनरस्तर्जनीमध्यमानामिकाङ्गुष्ठयोगेन ‘ॐ उदानाय स्वाहा’ एवं प्रागुक्तपञ्चमुद्राभिः पञ्च ग्रासान् ग्राहयित्वा स्वर्णादिपात्रे जलं धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य,

नमस्ते देवदेवेश सर्वतुपिकरं परम्। अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम् ॥

परमानन्दसंपूर्णं गृहण जलमुत्तमम् ।

इति देवस्य वामभागे जलपात्रं निवेद्य निवेद्य, पुष्पाङ्गलिं दत्त्वास्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धनं कुर्वन् देवं परिते जवनिकां विभाव्य ‘अवात्मकं नैवेद्यं नमः’ इत्यङ्गुष्ठानामिकायोगसूर्पां करद्वयेन नैवेद्यमुद्रां प्रदर्शय देवं भुज्ञानं ध्यायेत्। यथा—

ब्रह्मेन्द्रादैः सरसमभितः सूपविष्टैः समेतो देव्या शिञ्चद्वलयकरया सादरं वीज्यमानः ।

नर्मकीडाप्रहसनपरो हासयन् पङ्क्तिभोज्यान् भुङ्गे पात्रे कनकघटिते षड्सान् देवदेवः ॥

इति ध्यायन् मूलमन्त्रं दशथा जपित्वा जपं समर्थं नित्यहोमं कुर्यात्। अत्र नित्यहोमविधानं तु प्रागेव दर्शितम्।

इस प्रकार अंगावरण देवताओं को पूजकर उसके बाहर देव के अग्रभाग से प्रारम्भ करके आगे दिशाओं में क्रम से इनका पूजन करे—लं इन्द्राय सुराधिपतये पीतवर्णीय वज्रहस्ताय ऐरावतवाहनाय नमः, रं अग्नये तेजोऽधिपतये रक्तवर्णाय शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः, टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवर्णीय दण्डहस्ताय महिषवाहनाय नमः, क्षं निर्वृतये रक्षोऽधिपतये धूप्रवर्णीय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः। वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय नमः। यं वायवे प्राणाधिपतये कृष्णवर्णायाङ्गुष्ठशस्ताय मृगवाहनाय नमः, सं कुबेराय यक्षाधिपतये मौकिकवर्णाय गदाहस्ताय नरवाहनाय नमः, हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय शूलहस्ताय वृषभवाहनाय नमः। इस प्रकार पूजन कर पूर्व और इशान कोण के मध्य में आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवर्णाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः, निर्वृतिवरुणयोर्मध्ये हीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवर्णाय चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नमः। कहकर पूजन करे। इस प्रकार विस्तार से पूजा करने में समर्थ न होने पर लं इन्द्राय नमः। रं अग्नये नमः। टं यमाय नमः। क्षं निर्वृतये नमः। वं वरुणाय नमः। यं वायवे नमः। सं कुबेराय नमः। हं ईशानाय नमः। आं ब्रह्मणे नमः। हीं अनन्ताय नमः, इति प्रागवत्संपूज्य इन्द्रादीनां समीपे वं वज्राय नमः। एवं, शं शक्त्यै नमः। दं दण्डाय नमः। खं खड्गाय नमः। पं पाशाय नमः। क्रों अङ्गुशाय नमः। गं गदायै नमः। शं त्रिशूलाय नमः। पं पद्माय नमः। चं चक्राय नमः से पूजन करो। यहाँ पर सर्वत्र आवरण पूजा में प्रथमावरण पूजा के अन्त में मूल मन्त्र से देवता का पूजन करके देवता को सम्बोधित कर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये ‘अभीष्टसिद्धिं मै देहि शरणागतवत्सल। भक्त्या समर्पये तु भूयं प्रथमावरणार्चनम्’ कहकर देव के चरण में अध्योदक पुष्पादि अर्पित करो। इसी प्रकार द्वितीय आदि आवरण में भी करना चाहिये।

तदनन्तर मूल का उच्चारण कर ‘मूल सांगाय सावरणाय शिवाय नमः’ कहकर तीन पुष्पाङ्गलि देकर पूजा करो। अस्त्र

मन्त्र से धूप पात्र को पोंछकर हृदय मन्त्र से उसका गन्थादि से अर्चन करे। उसमें अंगार रखकर रखे। वं धेनु मुद्रा से उसका अमृतीकरण करे। 'कली सुरभितेजसे स्वाहा' से गुण्गुलादि धूप उसमें डाले। 'गन्धर्वदैवताय धूपाय नमः' से पूजा करे। मूल के साथ 'वनस्पतिरसोत्पत्रो गन्धाढ्यो धूप उत्तमः। आप्नेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्' कहकर धूप दिखावे।

अपने वाम भाग में घण्टा रखकर अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण करके अस्त्रमन्त्र से ही तीन बार उसका अर्चन कर 'ॐ गजध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा' से तीन बार मन्त्रित करे। बाँये हाथ से उस घण्टे को बजाते हुए 'ॐ हं हं हं इटमिदिमिदं गृहाण स्वाहा' कहकर नीचे धूप निवेदन करे। धूपपात्र को देव के वाम भाग में रखकर धूपमुद्रा दिखावे। दीपक में गोदृत या तिल तेल डालकर कर्पूरगर्भिणी बत्ती रखे। 'हीं से उसे प्रज्वलित करे। 'विष्णुदैवत्याय धृतप्रदीपाय नमः' या 'वनस्पतिदैवत्याय तिलदीपाय नमः' से धृतदीप या तैल दीप की पूजा करे। 'वं' धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। मूल के साथ 'सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः। सबाहायन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्' से श्री शिव एष ते दीपो नमः कहकर दीप को पूर्ववत् घण्टा बजाते हुए देव के पैर से मूर्धा तक ऊँचा करके दिखावे। धी के दीपक को देवता के दक्ष भाग में रखे और तैल दीप हो तो देवता के वाम भाग में रखकर दीपमुद्रा दिखावे। देवता की पूजा करके पूर्ववत् पाद्य आचनीय प्रदान करे। स्वर्णादि पात्र में भक्ष्य भोज्य लेह्वा चोष्य पेयात्मक पाँच प्रकार के अत्र एवं कटु अमृत लवण तिक्त कषाय मधुरात्मक छः रसोपेत नाना प्रकार के व्यञ्जन समेत नैवेद्य लेकर 'विष्णुदैवत्याय नैवेद्याय नमः' से पूजा करके देव के आगे चतुरस्र मण्डल में आधार पर पात्र रखकर मूल मन्त्र से वीक्षण करे। अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षणी जल से प्रोक्षण करे। उसी मन्त्र से कुश से तीन बार ताड़ित करे। कवच मन्त्र से अभ्युक्ति करे। अधोमुख दाँयें हाथ पर अधोमुख बाँयाँ हाथ रखकर 'थ' इस वायु बीज के आठ जप से उसे मन्त्रित करके नैवेद्य के स्पर्शादि दोषों का शोधन करे। पुनः बाँये हाथ पर दाँयाँ हाथ पूर्ववत् रखकर अधोमुख हाथों से उसे आच्छादित करे। रं वहिबीज के आठ जप से तदगत दोषों को दाध करे। धेनुमुद्रा दिखाकर वं अमृत बीज के आठ जप से नैवेद्य को अमृत बनावे। अस्त्र मन्त्र से नैवेद्य पर चक्रमुद्रा दिखावे। मूल मन्त्र के आठ जप से उसे मन्त्रित करे। दाँयें हाथ से जल लेकर हैमपात्रगतं दिव्यं परमात्रं सुसंस्कृतम्। पञ्चांश षड्सोपेतं गृहाण परमेश्वर' कहकर नैवेद्य पर चुल्लू भर जल छोड़े। मूल मन्त्र श्री शिव एतते नैवेद्यं नमः से उसे देवता को समर्पित करे। हाथ से उस पात्र का स्पर्श किए हुए पूर्वोक्त मन्त्र से निवेदित करे। दूसरे पात्र को धेनुमुद्रा से अमृत बनाकर उसमें जल डालकर अमृत बनाकर उसमें से थोड़ा जल देवता के दाँयें हाथ में देकर 'अमृतोपस्तरणमासि स्वाहा' कहकर देवता को अचमन करावे। बाँये हाथ मुद्रित कमल के समान ग्रासमुद्रा दिखावे। दाँये हाथ की कनिष्ठा अनामिका अंगूठे को मिलाकर ३० प्राणाय स्वाहा, तर्जनी-मध्यमा-अनामा-अंगुष्ठ के योग से अपनाय स्वाहा—इस प्रकार पूर्वोक्त पाँच ग्रासमुद्रा से अपार्व ग्रास ग्रहण करावे। तब सोने के पात्र से जल लेकर धेनुमुद्रा से उसे अमृत बनाकर 'नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम्। अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्। परमानन्दसंपूर्णं गृहाण जलमुत्तमम्' कहकर वाम भाग में जलपात्र रखकर पुष्पाङ्गलि अर्पित करे। अस्त्र मन्त्र से दिग्बन्ध करे। देव के चारों ओर परदे की भावना करके 'अवात्मकं नैवेद्यं नमः' कहकर दोनों हाथों की अनामिका-अंगूठा के योग से नैवेद्य मुद्रा दिखावे और भावना करे कि देव भोजन कर रहे हैं। साथ ही इस प्रकार ध्यान करे—

**ब्रह्मोद्भावैः सरसम्भितः सूपविष्टैः समेतो देव्या शिञ्चद्वलयकरया सादर्द वीज्यमानः।**

**नर्मकीडाप्रहसनपरो हासयन् पङ्किभोज्यान् भुङ्गे पात्रे कनकघटिते षड्सान् देवदेवः।।।**

इस प्रकार के ध्यान के बाद मूल मन्त्र का दश जप करे। जप समर्पण करके नित्य होम करे।

अत्रैवं विस्ताराशक्तो 'अग्न्याधानादिकं कर्म नित्यहोमे न विद्यते' इति विशिष्टसंहितावचनात् लौकिकाग्नावेव देवदेवं ध्यात्वा संपूर्ज्य मूलमन्त्रेण पञ्चविंशत्याहुतीः षड्ङ्गमन्त्रैश्च षडाहुतीरावरणदेवतानामेकैकामाहुतिं च जुहुयात्। आवरणहोमाशक्तौ मूलमन्त्रेण षड्ङ्गमन्त्रैश्चोक्तसंख्यया जुहुयादिति नित्यहोमं विधाय, पूजास्थानं गत्वा स्वासन उपविश्य मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषड्ङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रेण पुष्पाङ्गलित्रयं दत्त्वा पूजाचक्षस्येशानकोणे चतुरस्रवृत्तत्रिकोणमण्डलं कृत्वा साधारं सव्यञ्जनान्नोदकपूरितं ताप्रपात्रं निधाय 'सर्वभूतानीहागच्छत इह तिष्ठत' इत्यावाह 'सर्वभूतेभ्यो नमः' इति पुष्पादिभिः संपूर्ज्य,

ये रौद्रा रौद्रकर्मणो रौद्रस्थाननिवासिनः । योगिन्योऽप्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥  
भूचराः खेचराश्वैव तथा वै चान्तरिक्षगाः । सर्वे ते प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्वम् बलिम् ॥

इति वामकराङ्गुलिभिरर्थपात्रात्पात्रात्तरेणोद्भूत्य जलधारां बलिपात्रे निक्षिपन् बलिमुत्सृज्य पुष्पाञ्जलिमादाय  
भूतानि यानीह वसन्ति भूतले बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।  
सन्तोषमासाद्य ब्रजन्तु सर्वे क्षमन्तु तान्यत्र नमोऽस्तु तेभ्यः ॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणम्य 'यथासुखं विहरन्तु भूतानि' इति नाराचमुद्रया विसृज्यास्त्रमन्त्रेण शुद्धजलैः  
स्वात्मानं प्रोक्ष्य देवं तृप्तं ध्यात्वा, पात्रात्तरे वमिति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' इति  
देवायोत्तरापोशानं दत्त्वा नैवेद्यं गतसारमुद्भूत्य नैऋत्यां नैवेद्यपात्रं निधाय गोमयाद्विरक्षमन्त्रेण तत्स्थानं शोधयित्वा  
तस्मात् किञ्चिच्छेषमादाय 'निर्मल्यभेजिने नमः' इत्यैशान्यां निक्षिप्य हस्तं प्रक्षालत्य, देवाय करशोधनार्थं सुगन्धिचूर्णादिकं  
करक्षालनाय च दत्त्वा करं क्षालयित्वा, हस्तशोधनार्थं कर्पूरशलाकादि दत्त्वा पुनरगण्डूषजलं दत्त्वा पादौ प्रक्षालत्य  
प्रागवदाचमनीयं दत्त्वा सूक्ष्मवस्त्रेण हस्तौ पादौ प्रोञ्जय्य सुगन्धिचूर्णादिभिः करौ सुरभितौ कृत्वा ताम्बूलमादाय,  
मूलमुच्चार्य

तमालदलकर्पूरपूगभागतङ्गितम् । संशोभितं सुगन्धं च ताम्बूलं प्रतिगृहताम् ॥

'श्रीशिव एतते ताम्बूलं नमः' इति ताम्बूलं समर्प्य प्रागुक्तनिवेदनमन्त्रेण निवेद्य, मूलमन्त्रमुच्चार्य 'सुप्रसन्नाय  
श्रीशिवाय नमः' इति त्रिः पुष्पाञ्जलिना संपूज्य, पुनर्मूलमुच्चार्य 'सुप्रसन्नाय श्रीशिवाय एष गन्यो नमः' एवं गन्य-  
पुष्पधूपदीपेराराधयेत्, इति प्रसन्नपूजां कृत्वा मुकुटं प्रथापादार्शं दर्शयित्वा छत्राचामरव्यजनादिनानविधराजोपचारान्  
परिकल्प्य, दूर्वाक्षतजलान्यादाय मूलमुच्चार्य 'श्रीशिव एतते नीराजनं नमः' इति देवस्य मुकुटोपरि दूर्वादिकं  
निक्षिपेत् । ततः कांस्यादिबृहत्स्थाल्यां चन्दनादिनाष्टदलकमलं कृत्वा तत्र मध्येऽष्टसु दलेषु च पिष्ठमयान् नव घृत-  
पूर्णान् कर्पूरगर्भवर्तिसहितान् निःक्षिप्य हीमिति प्रज्वाल्य, क्वचिच्छतुरस्मण्डले निधाय वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्यास्त्रमन्त्रेण  
चक्रमुद्रया संरक्ष्य 'श्रींह्रींगूर्ंलूप्लंम्लूप्लंह्रींह्रीं' इति रलेश्वरीविद्यया मूलमन्त्रेण च पृथक्पृथगभ्यर्च्च तत्पात्रं कराभ्यामादाय  
मूलमुच्चारन् देवस्य चरणान्मूर्धनिन् मूर्धन्दिचरणान्तं पुनःपुनर्भ्रामयन् नवकृत्वो नीराजयेत् । इति नीराजनविधिः ।

विस्तार से हवन में अशक्त होने पर नित्य होम में अन्याधानादि कर्म नहीं होते—इस विशिष्टसंहिता के वचन के  
अनुसार लौकिक अग्नि में ही देवदेव का ध्यान करके पूजन करना चाहिये। मूल मन्त्र से पच्चीस आहुति डाले एवं षड्ङ्ग मन्त्र  
से छः आहुति डाले। साथ ही आवरण देवताओं को भी एक-एक आहुति प्रदान करे। आवरण होम में अशक्त होने पर मूल  
मन्त्र और षड्ङ्ग मन्त्र से उक्त संख्या में हवन करे। नित्य होम करके पूजा स्थान में जाकर अपने आसन पर बैठकर मूल मन्त्र  
से तीन-तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि कर षड्ङ्ग न्यास कके मूल मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि अर्पण करे। पूजा चक्र से ईशान  
कोण में चतुरस्र वृत्त त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें आधार रखकर उस पर ताप्र पात्र में अन्त्र-व्यञ्जन-जल रखे। 'सर्वभूतानीहागच्छत  
इह तिष्ठत' कहकर आवाहन करे। 'सर्वभूतेभ्यो नमः' से पुष्पादि से पूजा करके—

ये रौद्रा रौद्रकर्मणो रौद्रस्थाननिवासिनः । योगिन्योऽप्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥

भूचराः खेचराश्वैव तथा वै चान्तरिक्षगाः । सर्वे ते प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्वम् बलिम् ॥

इस स्तोत्र का पाठ करके वाम कराङ्गुलि से अर्थं जल दूसरे पात्र में लेकर बलिपात्र में जलधारा गिरावे। बलि देकर  
के पुष्पाञ्जलि लेकर यह मन्त्र पढ़े—

भूतानि यानीह वसन्ति भूतले बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।

सन्तोषमासाद्य ब्रजन्तु सर्वे क्षमन्तु तान्यत्र नमोऽस्तु तेभ्यः ॥

इस मन्त्र से पुष्टाङ्गलि प्रदान करे। प्रणाम करके 'यथासुखं विहरन्तु भूतानि' यह कहकर नाराच मुद्रा दिखाकर विसर्जन करे। अस्त्र मन्त्र से शुद्ध जल से अपना प्रोक्षण करके ध्यान करे कि देवता तृप्त हो गये। दूसरे पात्र में जल लेकर उसे वं धेनुमुद्रा से अमृत बनाकर 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' कहकर देवता को उत्तरापोशन देवे। नैवेद्यगत सार को लेकर नैऋत्य में नैवेद्य पात्र को रखे। गोबर से या अस्त्र मन्त्र से उस स्थान का शोधन करके उसमें से कुछ लेकर 'निर्माल्यभोजिने नमः' से इशान में फेंक दे। हाथों को धोकर देवता की करशुद्धि के लिये सुगन्धित चूर्चा देकर हाथों को धो ले। हाथ-शोधन के लिये कर्पूरशालाकादि देवे। पुनः गण्डूष के लिये जल देकर पैर धोकर पूर्ववत् आचमनीय प्रदान करे। सूक्ष्म वस्त्र से हाथ-पैर का प्रोक्षण करे। सुगन्धित चूर्चादि से हाथ को सुरभित करे। ताम्बूल लेकर मूल मन्त्र के साथ—

तमालदलकर्पूरपूगभागतरङ्गितम्। संशेभितं सुगन्धं च ताम्बूलं प्रतिगृह्णताम्॥

कहकर 'श्रीशिव एतते ताम्बूलं नमः' कहते हुये ताम्बूल देकर पूर्वोक्त निवेदन मन्त्र से निवेदित करे। पुनः मूल मन्त्र 'सुप्रसन्नाय श्रीशिवाय नमः' से तीन पुष्टाङ्गलि से पूजन करे। पुनः मूल 'सुप्रसन्नाय श्रीशिवाय एष गन्धो नमः' से गन्ध पुष्ट धूप दीप से पूजा करे। इसके बाद मुकुट पहनाकर दर्पण दिखावे। छत्र चामर व्यजन आदि नानाविध राजोपचारों को कल्पित करे। दूब अक्षत जल लेकर मूलमन्त्र 'श्रीशिव एतते नीराजन नमः' से देव के मुकुट पर दूर्वादि का निक्षेप करे। तब कांस्यादि के बड़े थाल में चन्दनादि से अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में और आठों दलों में एक-एक पिष्टमय दीपक बनाकर कुल नव दीपक रखे। दीपकों को धी से भेरो। उसमें कर्पूरगर्भित बत्ती रखे। हीं से उसे प्रज्जनित करे। किसी चतुरस्त मण्डल में रखकर वं धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्रमन्त्र से चक्र मुद्रा से संरक्षण करे। 'श्री हीं ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं हीं श्री' इस रत्नेश्वरी विद्या और मूल मन्त्र से पृथक्-पृथक् पूजा करे। तब उस पात्र को हाथों में लेकर मूल मन्त्र बोलकर देव के चरण से मूर्धा तक नव बार धूमाकर नीराजन करे।

**ततः प्रणाम्य मूलमन्त्रस्य प्राणायामपत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं प्राक्ग्रोक्तविधिना प्रतिष्ठिताक्षमालां प्रागुक्तविधिना संपूज्यं, देवं भावयन् मूलमन्त्रं प्रणवोच्चारपूर्वकमष्टोत्तरसहस्रं तदर्थं त्रिशतमष्टोत्तरशतं वा जपित्वा, ओमिति जपं समाप्तं पुनः प्राणायामर्थादिन्यासपूर्वकं जपमालां प्राक्ग्रोक्तविधिना स्वशिरासि निधायार्थोदकमादाय,**

**३५ गुह्यतिगुह्यगोपा त्वं गृहाणासम्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता ॥**

इति देवस्य दक्षिणहस्ते गृहीतोदकदानेन जपं समर्प्य, प्राक्ग्रोक्तविधिनेन जपमालां संपूज्य रहसि निधायपथेत्। अत्र जपमालाभावेऽङ्गुलिभिर्वा जपगणना कार्या। इत्यं जपं विधाय घण्टावादनपूर्वकं शिवसहस्रनामशतनामस्तोत्रादिभिर्देवं स्तुत्वा प्रदक्षिणनमस्कारैः परितोष्य,

यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्टं फलं जलम् । निवेदितं च नैवेद्यं तदगृहणानुकम्पया ॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर ॥

कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम । अनन्तश्वरेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर ॥

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् । तेषु तेष्वचला भक्तिरव्ययास्तु सदा त्वयि ॥

देवो दाता च भोक्ता च देवः सर्वमिदं जगत् । देवो जयति सर्वत्र यो देवः सोऽहमेव हि ॥

इति कृताङ्गलिः प्रार्थं पुनःपुनः प्रणाम्य स्वेष्टार्थार्थार्थानां कृत्वा वृत्तापत्रमुद्धृत्य

साधु वासाधु वा कर्म यद्यादाचरितं मया । तत्सर्वं भगवज्ञभ्यो गृहाणाराधनं परम् ॥

इति कृतमाराधनमर्थोदकदानेन समर्प्य पुनः प्रागवदर्थं दत्त्वा तत्पात्रं स्वस्थाने निवेश्य पुष्टाङ्गलिमादाय 'इतः पूर्वमिति भन्नेण देवस्य पादयोदत्त्वा प्रणाम्य पुष्टाङ्गलिमादाय मूलमुच्चार्य'

रश्मिरूपा महेशस्य पूजिता याश्च देवताः । श्रीशिवाङ्गे विलीनास्ता: सन्तु सर्वसुखावहाः ॥

इति पुष्टाङ्गलिं निक्षिप्य, द्वारदेवताश्चतुरायतनदेवताश्च देवस्याङ्गे विलीना इति विभाव्य 'श्रीशिव क्षमस्व'

इति तालत्रयं दत्त्वा संहारमुद्रां बद्ध्वा

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम्॥

इति पठित्वा निर्माल्यपुष्टेण सह तत्तेजः समुद्भृत्याग्राय नासाध्वना तत्तेजो ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा सुषुमामार्गेण हृदयकमलमानीय

ॐ तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि॥

इति स्वहृदि संस्थाप्य, तत्र यथोक्तरुपं देवं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः संपूज्य स्वाभेदेन ध्यायन् प्राणायामत्र-यर्थादिकरण्डङ्गन्यासान् विधायेशानकोणे चतुरस्त्वेवेष्टिं त्रिकोणमण्डलं कृत्वा, पञ्चायतनी चेदीशानादिकोणचतुरुष्के प्रादक्षिण्येन—लम्बोदराय नमः। चण्डेश्वर्यं नमः। विष्वक्सेनाय नमः। तेजश्चण्डाय नमः, इति गणेशादिनिर्माल्येन संपूज्य, मध्ये चण्डेश्वराय नमः, इति देवस्य निर्माल्यपुष्टादिकं निक्षिप्य, नैवेद्यशेषं किञ्चिदानीय,

लेह्यचोष्यान्नपानादिताम्बूलं स्त्रिगिलेपनम्। निर्माल्यभोजिने तु भृत्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया॥

इति तत्रैव निक्षिप्य स्वकरं प्रक्षालयेत्। अन्यदैवतोपासकैरपि स्वेष्टदेवताङ्गत्वेन पूर्वोक्तस्थापनक्रमेण गणेशादीनं निर्माल्यदेवताः पूज्याः। ततस्ताप्रादिपात्रे गच्छपुष्टान्वितं जलमापूर्वं सूर्याभिमुखः स्थित्वा,

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मान् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने॥

इति पठित्वा 'हांहींसः श्रीसूर्य एष तेऽर्थः स्वाहा' इति सूर्यायार्थं दत्त्वा, कृताङ्गलिः

यज्ञच्छिद्रं तपश्चिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम। अछिद्रमस्तु तत्सर्वं भास्करस्य प्रसादतः॥

इत्यच्छिद्रमवधार्य पूजास्थानं गत्वा पूजाविष्टं गच्छ किञ्चित् स्वावामकरे निधाय तत्रार्घ्यपात्रोदकं किञ्चित् निक्षिप्यालोड्य मूलमन्त्रेणाष्वारमभिमन्त्र्य तेन जलेन स्वात्मानं प्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण निर्माल्यपुष्टं शिरसि निधाय, मूलेनैव चरणोदकं प्राशय नैवेद्यं शिवभक्तेभ्यो विभज्य दत्त्वा, स्वयमपि भूक्त्वा श्रीशिवरूपः सुखं विहरेत्। इति नित्यपूजाविधिः।

अत्र स्कन्दपुराणे शिवनिर्माल्यधारणं तत्रिवेदितभक्षणं च तद्दक्षैः कर्तव्यमित्युक्तत्वादवश्यं कार्यमिति। यत्तु शिवनिर्माल्यधारणनैवेद्यभक्षणादौ निषेधवचनं तदशुचिपरम्। अत्राशुचिरनधिकारी अदीक्षित इति यावत्।

तब प्रणाम करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर ऋष्ट्यादि कर षट्डङ्ग न्यास करे। पूर्वोक्त विधि से प्रतिष्ठित अक्षमाला को पूर्ववर्त पूजकर देवता की भावना करते हुये मूल मन्त्र का प्रणवोच्चापूर्वक एक हजार आठ जप करे। अथवा पाँच सौ या तीन सौ जप करे। ॐ से जप समाप्त करे। पुनः प्राणायाम ऋष्ट्यादि कर षट्डङ्ग न्यास करके पूर्वोक्त विधि से जपमाला को अपने शिर पर रखकर अर्थजल लेकर 'ॐ गृह्णातिगृह्णागोपा त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्सादात्वयि स्थिता' कहकर देव के दाँयें हाथ में गृहीत जल को देकर जप समर्पित करे। पूर्वोक्त विधान से जपमाला को पूजकर एकान्त में रख दे। जपमाला के अभाव में अंगुलि से जपगणना करे। इस प्रकार जप के बाद घण्टा बजाते हुए शिवसहस्रनाम, शतनाम, स्तोत्र आदि से देव की स्तुति करे। प्रदक्षिणा नमस्कार से देव को परितुष्ट करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

यदत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्टं फलं जलम्। निवेदितं च नैवेद्यं तदगृहाणानुकम्पया॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर॥

कर्मणा मनसा वाचा त्वतो नान्या गतिर्मम। अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर॥

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाय्यहम्। तेषु तेष्वचला भक्तिरव्यास्तु सदा त्वयि॥

देवो दाता च भोक्ता च देवः सर्वमिदं जगत्। देवो जयति सर्वत्र यो देवः सोऽहमेव हि॥

इस प्रकार प्रार्थना करके बार-बार प्रणाम करे। अपने इष्ट कार्य को निवेदित करके अर्थपात्र को लेकर 'साधु वासाधु

वा कर्म यद्यदाचरितं मया। तत्सर्व भगवच्छम्भो गृहाणाराधनं परम्' को पढ़कर कृत आराधन को जलदान करके समर्पित करे। पुनः पूर्ववत् अर्थ्य देकर उस पात्र को अपने स्थान में रख दे। पुष्टाङ्गलि लेकर 'इतः पूर्वं' मन्त्र से देव के चरणों में समर्पित करे। प्रणाम करके पुष्टाङ्गलि लेकर मूल मन्त्र 'रश्मिरूपा महशस्य पूजिता याश्च देवताः। श्रीशिवाङ्गे विलीनास्ताः सन्तु सर्वसुखावहाः' कहकर पुष्टाङ्गलि अर्पित करे। द्वारदेवता और चतुरायतन देवता को देवता के अंग में विलीन होने की भावना करे। 'श्रीशिव क्षमस्व' कहकर तीन ताली बजाकर संहारमुद्रा से 'गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवान विदुः परमं पदम्' पढ़कर निर्माल्य पूष्ट के साथ उसके तेज को लेकर सूँधे। नासारन्ध्र से उस तेज को ब्रह्मरन्ध्र में लाकर सुषुमा मार्ग से हृदयकमल में ले आये। 'ॐ तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि' कहकर उसे अपने हृदय में स्थापित करे। देव का ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करे। उनमें और अपने में अभेद की भावना से देव का ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करे। तीन प्राणायाम ऋष्यादि कर षड़ज न्यास करके ईशान कोन में चतुरस्र वैष्टित्रिकोण मण्डल बनाकर पञ्चायतनी हो तो ईशानादि चारों कोनों में प्रदक्षिणक्रम से इस प्रकार पूजा करे—लम्बोदराय नमः। चण्डेश्वर्यै नमः। विश्वक्सेनाय नमः। तेजश्चण्डाय नमः। इस प्रकार गणेशादि का पूजन निर्माल्य से करके मध्य में 'चण्डेश्वराय नमः' कहकर निर्माल्य पूष्टादि चढ़ावे। नैवेद्यशेष में से कुछ लेकर 'लेह्योष्ट्रान्नपानादिताम्बूलं स्विवलेपनम्। निर्माल्यभोजिने तु त्यं ददामि श्रीशिवाज्ञाया' कहकर वहीं पर रख दे। तदनन्तर हाथों को धो ले। अन्य देवों के उपासक को भी स्वेष्ट देवता के अंगत्व से पूर्वोक्त स्थापन क्रम में गणेशादि निर्माल्य देवता की पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर ताप्रा पात्र में गन्ध-पूष्टादि के साथ जल भरकर सूर्य के सामने खड़े होकर 'ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सिवे शुचये सवित्रे कर्मदायिने' पढ़कर 'हां हीं सः श्रीसूर्य एष ते अर्थः स्वाहा' कहकर सूर्य को अर्थ्य प्रदान करे। तदनन्तर हाथ जोड़कर 'यज्ञच्छिद्रं तपश्चिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम। अछिद्रमस्तु तत्सर्वं भास्करस्य प्रसादतः' कहकर अच्छिद्रावधारण करके पूजा स्थान में जाकर पूजावशिष्ट कुछ गन्ध अपने बाँयें हाथ में लेकर उसमें कुछ अर्थ्य जल मिलाकर मूल मन्त्र से आठ बार मन्त्रित करके उस जल से अपना प्रोक्षण करके मूल मन्त्र से निर्माल्य को अपने शिर पर रखकर मूल मन्त्र से चरणोदक पान करे। नैवेद्य को शिवभक्तों में बाँटकर स्वयं भी ग्रहण करके शिवस्वरूप होकर सुख से विहार करे।

#### नित्यपूजासंक्षेपप्रकारः

अथैवं विस्तरतो नित्यपूजां कर्तुमशक्तश्वेत् प्रातरुत्थाय श्रीगुरुं स्मृत्वा प्रणम्य शौचादिकं विधायोक्तविधिना स्मात्वा, स्नानेऽपि विस्ताराशक्तौ निर्मलादिस्नानानन्तरं कुम्भमुद्रया स्वशिरसि त्रिरभिषिञ्चेत्। उक्तविधिना त्रिपुण्ड्रं विधाय, तत्रापि विस्ताराशक्तौ मूलमन्त्रेणाश्विविश्वितावारं देवं संतर्य, सूर्यार्घदाने विस्ताराशक्तौ केवलसूर्यमन्त्रेणैवार्थ्य दत्त्वा गृहं गत्वा प्राग्वद्वूतोत्सादनं कृत्वा प्रागुक्तविधिना पश्चिमद्वारमेव संपूज्य, प्राग्वत् प्रविश्यासनं कल्पयित्वा आसनेऽपि विस्ताराशक्तौ 'हीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इत्यासनं संपूज्योपविश्य, प्राग्वद्विव्याण्यासाद्य भूत-शुद्धिं विधाय, तत्रापि विस्ताराशक्तौ प्राग्वद्वृद्धये जीवात्मानं ध्यात्वा तथैव ब्रह्मरन्ध्रे संयोज्य प्राग्वत् पापपुरुषं ध्यात्वा तथैव यंबीजेन संशोष्य रंबीजेन संदद्व यंबीजेनाल्पात्वं पुनर्ब्रह्मरन्ध्राज्जीवात्मानं हृदयपानीय प्राग्वत् प्राणप्रतिष्ठां मातृकान्यासांश कृत्वा, समस्तमातृकान्यासकरणाशक्तौ केवलमातृकान्यासं श्रीकण्ठादिन्यासं च, तत्राप्यशक्तश्वेत् केवलमातृकान्यासमेव कृत्वा प्राणायामयोगपीठन्यासं मूलमन्त्रन्यासांश कृत्वा ध्यानार्थस्थापनादि सर्वं प्राग्वत् समापयेत्।

पाद्यादिपात्रस्थापनाशक्तौ अर्थ्यपात्रं प्रोक्षणीपात्रं च संस्थाप्य प्रोक्षणीजलेनेव पाद्यादीनि कल्पयेत्। इतोऽपि संक्षेपप्रकारः: शास्त्राहुरुमुखादवगन्तव्यः। इयं संक्षेपपूजा विस्तरतः कर्तुमशक्तानामेव, शक्तौ चेदालस्यादिना विस्तारं त्यक्त्वा संक्षेपेण क्रियते तदा दोषाय भवतीति।

संक्षिप्त नित्य पूजन—विस्तार से नित्य पूजा करने में अशक्त होने पर प्रातः उठकर श्री गुरु को स्मरण कर प्रणाम करके शौचादि की उक्त विधि से स्नान करे। विस्तृत स्नान करने में अशक्त होने पर निर्मल स्नान के बाद कुम्भ मुद्रा से अपने

शिर को तीन बार अभिषिञ्चित करे। उक्त विधि से त्रिपुण्ड्र धारण करे। उसमें भी अशक्त होने पर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म धारण करे। उक्त विधि से सन्श्या-तर्पण-सूर्यार्थदान करे। विस्तार से तर्पण करने में भी अशक्त होने पर मूल मन्त्र से देव का तर्पण अड्डाईस बार करे। सूर्यार्थ दान विस्तार से करने में अशक्त होने पर केवल सूर्यमन्त्र से अर्थदान करे। घर जाकर पूर्ववत् भूतोत्सादन करके पूर्वोक्त विधि से पश्चिम द्वार का पूजन करके पूर्ववत् पूजा स्थान में प्रवेश करके आसन कल्पित करे। इसे भी विस्तार से करने में अशक्त होने पर 'हीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' से आसन को पूजकर उस पर बैठे। पूर्ववत् पूजा द्रव्यों को रखकर भूतशुद्धि करे। इसे भी विस्तार से करने में अशक्त होने पर पूर्ववत् हृदय में जीवात्मा का ध्यान करके उसी प्रकार ब्रह्मरन्ध्र में योजित करे। पूर्ववत् पापपुण्ड का ध्यान करके उसी प्रकार यं बीज से शोषित करे, रं बीज से दहन करे एवं वं बीज से आप्लावित करे। पुनः ब्रह्मरन्ध्र से जीव को हृदय में लाकर प्राण-प्रतिष्ठा करे, मातृकान्यास करे। समस्त मातृका न्यास करने में अशक्त होने पर केवल मातृका न्यास और श्रीकण्ठादि न्यास करे। उसमें भी अशक्त होने पर केवल मातृका न्यास करके प्राणायामसहित योगपीठ न्यास और मूल मन्त्र न्यास करके ध्यान अर्थ स्थापन आदि सबों को पूर्ववत् करे और पूजा समाप्त करे। पाद्यादि पात्र स्थापन न कर सकने पर अर्थपात्र और प्रोक्षणी पात्र स्थापित करे। प्रोक्षणी जल से ही पाद्यादि कल्पित करे। इससे भी संक्षिप्त प्रकार शास्त्र और गुरु से ज्ञातव्य हैं। यह संक्षिप्त पूजन विस्तृत पूजा में असमर्थों के लिये है। करने में सक्षम होने पर भी आलस्य के वर्शीभूत हो विस्तृत पूजा न करने पर दोष होता है।

#### देवतामन्त्रयन्त्राणां कालीमते पार्थिवादिस्वरूपज्ञानविधिः

उत्तरतन्त्रे—

स्वरूपं मन्त्रयन्त्राणां देवतानां विशेषतः । अज्ञात्वा भजते मूढो न सिद्धिं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥१॥

मन्त्रविद्यार्णनिचयं स्वरव्यञ्जनभेदतः । पृथक्पृथग्विभज्यैवं पार्थिवाद्याश्च षड्विद्याः ॥२॥

रश्मयोऽपि समालेख्यास्तेषु पार्थिवसंचयम् । तथैवाप्यं तैजसं च वायव्यं नाभसं क्रमात् ॥३॥

मानसं रश्मवृन्दं च षोडा संयोज्य संलिखेत् । षट्विधेषु च भूयस्त्वं यस्य तत्त्वस्वरूपकम् ॥४॥ इति।

**अस्यार्थः—**मन्त्रे यावत्तो वर्णास्तान् स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्पृथग्विलिख्य प्राक् मन्त्रवीर्यप्रकरणप्रोक्तेषु चतुर्विधेषु रश्मव्यञ्जनतमं रश्मक्रमं गृहीत्वा प्रत्यक्षरस्य षट्विधरशमीन् पृथक्पृथग्विलिख्य, ततः इयन्तः पार्थिवाः, इयन्तः आप्याः, इयन्तस्तैजसाः, इयन्तो वायव्याः, इयन्तो नाभसाः, इयन्तो मानसाः। एवं षट् वृद्धानि कृत्वा तेषु यस्याधिक्यं दृश्यते तत्स्वरूपं मन्त्रयन्त्रदेवतानां ज्ञातव्यम्। इति कालीमते प्रकाशितं रश्मवृन्दमेतस्यापि विवेको विविच्याग्रे वक्ष्यते।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि देवता के मन्त्र-यन्त्र का स्वरूप जाने बिना जो मूढ़ भजन करते हैं, उन्हें कभी भी सिद्धि नहीं मिलती। मन्त्र विद्या वर्ण समूह को स्वर-व्यञ्जन भेद से पृथक्-पृथक् विभाजित करने पर पार्थिवादि छः प्रकार होते हैं। पार्थिव संचय की रश्मयाँ समालेख्य हैं; वैसे ही आप्य, तैजस, वायव्य, नाभस और मानस रश्मवृन्दों को छः प्रकार से योजित करके लिखे। इन छः विधियों में देवी उनके स्वरूप की होती है।

मन्त्र में जितने वर्ण हैं, उन्हें स्वर-व्यञ्जनभेद से पृथक्-पृथक् करके लिखे। पूर्वोक्त मन्त्र वीर्य प्रकरण में कथित चार विधियों में किसी एक रश्मक्रम को ग्रहण करके प्रति अक्षर के षट्विध रश्मयों को अलग-अलग लिखे। तब निश्चित करे कि ये पार्थिव, ये जलीय, ये तैजस, ये वायव्य, ये नाभस और ये मानस रश्मयाँ हैं। इस प्रकार छः वृन्द बनाकर उनमें जिसकी रश्मयाँ अधिक हों, उसी के समान मन्त्र, यन्त्र और देवता जानने चाहिये।

#### कादिमते तु तज्जानार्थं षट्विधरश्मप्रदर्शनम्

कादिमते तु मातृकार्णवे—

ऊर्ध्वामाया इति ख्याता ऊर्ध्ववक्त्राद्विनिर्गताः । पूर्वामायास्तु संप्रोक्ता मन्त्राः पूर्वमुखोद्भवाः ॥१॥

दक्षिणाम्यात् समुद्रोता दक्षिणाम्यायसंज्ञकाः । पश्चिमाननसम्भूताः पश्चिमाम्यायसंज्ञकाः ॥२॥

उत्तरास्यात् सञ्जाता हुतरामायसंज्ञकाः। ऊर्ध्ववक्त्राच्च सम्भूता हूर्ध्वमायाभिधाः स्मृताः ॥३॥  
 पृथिवीजलतेजांसि वायुराकाशमेव च। क्रमेणात्र तु विज्ञेयं धराद्यं भूतपञ्चकम् ॥४॥  
 मानसा रश्मयो ज्ञेया भूतग्रामे तु सर्वतः। ऊर्ध्वमायक्रमे वच्चिम रश्मवृद्धं तु षड्विधम् ॥५॥  
 आकाशार्णेषु दशसु पार्थिवाद्याश्च रश्मयः। एकादिदशपर्यन्तं क्रमात्पार्थिवरश्मयः ॥६॥  
 एकसप्ततिरोऽशीतिपर्यन्तं जलरश्मयः। एकादशोत्तरशताद् विंशोत्तरशतावधि ॥७॥  
 तैजसाश्चैकपञ्चाशतुत्तराच्छतः। क्रमात् षष्ठ्युत्तरशतं यावद्वायव्याः परिकीर्तिः ॥८॥  
 नाभसा रश्मयः सैकचत्वारिंशत्पञ्चतद्वयात्। पञ्चाशदुत्तरशतद्वयं यावत् प्रकीर्तिम् ॥९॥  
 प्रत्यक्षरं तु द्वात्रिंशद्वात्रिंशत्पञ्चाशतांशवः। दशानां वायुवर्णानां वक्ष्ये रश्मक्रमं शृणु ॥१०॥  
 रुद्राद्विंशतिपर्यन्तं पार्थिवा रश्मयः स्मृताः। एकषष्ठिमितात्सप्तत्यन्तमाप्याः प्रकीर्तिः ॥११॥  
 एकोत्तरशताच्चैव दशोत्तरशतावधि। तैजसाः सैकनवतिशताद्यावच्छतद्वयम् ॥१२॥  
 वायव्या रश्मयो ज्ञेयाः सैकत्रिंशत्पञ्चतद्वयात्। चत्वारिंशोत्तरशतद्वयं नाभसरश्मयः ॥१३॥  
 मानसा रश्मयः प्रागवद् द्वात्रिंशत्संमिताश्च ये। तैजसेषु दशार्णेषु पार्थिवाद्याश्च रश्मयः ॥१४॥  
 एकविंशात्क्रमात् त्रिंशद्यावत्पार्थिवरश्मयः। एकपञ्चाशतः षष्ठ्याविदाप्याश्च रश्मयः ॥१५॥  
 सैकचत्वारिंशत्पञ्चाशताद्यावत्सार्थशतं तथा। तैजसा रश्मयः सैकाशीत्युत्तरशतात्क्रमात् ॥१६॥  
 सनवत्पुत्तरशतं वायव्याः संप्रकीर्तिः। शतद्वयात्सैकविंशत्प्रत्रिंशद्विशतं क्रमात् ॥१७॥  
 नाभसा रश्मयो ज्ञेयाः प्रागवन्मानसरश्मयः। आप्येषु दशवर्णेषु क्रमाद्रश्मक्रमं विदुः ॥१८॥  
 सैकत्रिंशत्पञ्चताद्यावच्चत्वारिंशत्पञ्चतान्तः। तैजसा रश्मयश्चैकसप्तत्पूर्वशतात्क्रमात् ॥१९॥  
 साशीतिशतकं यावद्वायव्याः परिकीर्तिः। एकादशोत्तरशतद्वयाद्विंशत्पञ्चतद्वयम् ॥२०॥  
 नाभसा रश्मयो ज्ञेयाः प्रागवन्मानसरश्मयः। पार्थिवार्णेषु दशसु क्रमाद्रश्मक्रमं ब्रुवे ॥२१॥  
 एकचत्वारिंशद्वात्राद्यावत् पञ्चाशतं भवेत्। पार्थिवा रश्मयो ज्ञेयास्तथैकाशीतिः परम् ॥२२॥  
 यावत्रवति चाप्यास्ते सैकत्रिंशत्पत्तात्परे। सत्रिंशत्पञ्चतकं यावतैजसाः संप्रकीर्तिः ॥२३॥  
 सैकषष्ठ्युत्तरशतात्सप्तत्पूर्वशतं तथा। वायव्या रश्मयो ज्ञेया एकोत्तरशतद्वयात् ॥२४॥  
 दशोत्तरं द्विशतकं नाभसा: पूर्ववत् परे। इति।

परे मानसाः। पूर्ववद् द्वात्रिंशत्पर्यन्तं ज्ञेया इत्यर्थः। जयद्रथयामले—  
 ऊर्ध्वमाये नभोवायुतेजोजलधरांशवः। पूर्वमाये पृथिव्यम्बुतेजोऽनिलनभः क्रमः ॥१॥  
 दक्षिणेऽनिलतेजोऽम्बुपृथिवीनभसां क्रमः। पश्चिमेऽम्बुपृथिव्यभ्रपवनालरश्मयः ॥२॥  
 उत्तरेऽनलवाः पृथ्वीनभोवायुक्रमः स्मृतः। इति।

मातृकाण्डे—

षट्पञ्चाशल्लकारस्य चाधारे पार्थिवांशवः। स्वाधिष्ठाने तु द्वाषष्ठिस्तेजसोपान्तरश्मयः ॥१॥  
 मणिपूरे द्विपञ्चाशल्लान्त्यामृतसंख्यकाः। अनाहते यकारस्य चतुःपञ्चाशदानिलाः ॥२॥  
 द्वासप्ततिर्विशुद्धे तु हकारस्य च नाभसाः। आज्ञायां तु चतुष्प्रष्ठिष्ठानते मानसरश्मयः ॥३॥  
 विसर्गस्थे विसर्गस्य कलाशतकमानसाः। इति।

अस्यार्थः—ऊर्ध्वमाये आकाशात्मकेशानमुखोद्भूते देवतामन्त्रयन्त्राणां स्वरूपज्ञानार्थं षड्विधरश्मयः प्रदर्शयन्ते।  
 तत्रादावाकाशवर्णानां ललूङ्गंजणनमशहानां दशानां क्रमेण १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० एवं क्रमेण पार्थिवरश्मयो

ज्ञेयाः। अथाप्यरशमयः—७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०। अथ तैजसरशमयः—१११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०। अथ वायव्यरशमयः—१५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०। अथाकाशरशमयः—२४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०। अथ मानसरशमयः—३२, ३२, ३२, ३२, ३२, ३२, ३२, ३२, ३२, ३२।

अथ वायुवर्णनाम् आग्राएकचटपथषाणां दशानां क्रमेण पार्थिवरशमयः—११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०। अथाप्यरशमयः—६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०। अथ तैजसरशमयः—१०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०। अथ वायव्यरशमयः—१११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, २००। अथाकाशरशमयः—२३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०। मानसरशमयः प्राग्वत्पत्यक्षरं द्वात्रिंशद्वात्रिंशत्क्रमेण ज्ञेयाः।

अथ तैजसरवणानां दशानाम् इद्यैख्छठथफरक्षाणां पार्थिवादिरशमयः। तत्रादौ पार्थिवाः—२१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०। अथाप्यरशमयः—५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०। अथ तैजसरशमयः—१४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०। अथ वायव्यरशमयः—१८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०। अथाकाशरशमयः—२२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०। मानसाः प्राग्वत्।

अथाप्यवणानां दशानाम् ऋत्रूौघड्डादधभवसानां दशानां क्रमेण पार्थिवादिरशमयः। तत्रादौ पार्थिवाः—३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०। अथायाः—११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, १००। अथ तैजसाः—१३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०। अथ वायव्याः—१७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०। अथ नाभसाः—२११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०। मानसाः प्राग्वत्।

अथ पार्थिववणानां उऊओगजडदबललानां क्रमेण पार्थिवादिरशमयः। तत्रादौ पार्थिवाः—४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०। अथायाः—११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, १००। अथ तैजसाः—२२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०। अथ वायव्याः—१६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०। अथ नाभसाः—२०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०। मानसाः प्राग्वज्ज्ञेयाः। इत्यूर्ध्वाम्नायक्रमे रश्मिक्रमः।

कादिमत में षड्विध रश्मियाँ—मातृकार्णव में कहा गया है कि ऊर्ध्वमुख से विनिर्गत होने वाले मन्त्रों को ऊर्ध्वाम्नाय के नाम से जाना जाता है। पूर्वमुख से उद्भूत मन्त्रों को पूर्वाम्नाय कहते हैं। दक्षिण मुख से विनिर्गत मन्त्रों को दक्षिणाम्नाय कहा जाता है। पश्चिम मुख से कथित मन्त्रों का नाम पश्चिमाम्नाय है। उत्तर मुख से कथित मन्त्रों का नाम उत्तराम्नाय है। पृथ्वी जल तेज वायु आकाश को भूतपंचक कहते हैं। सभी भूतों में मानस रश्मियाँ रहती हैं। ऊर्ध्वाम्नाय के क्रम से छः प्रकार की रश्मियाँ को कहता हूँ।

ल लृ अं ड ज ण न म श ह—इन दश आकाश वर्णों में क्रमशः एक से दश तक पार्थिव रश्मियाँ होती हैं। इकहत्तर से अस्ती तक जल रश्मियाँ होती हैं। एक सौ ग्यारह से एक सौ बीस तक तैजस रश्मियाँ होती हैं। एक सौ इक्यावन से एक सौ साठ तक वायव्य रश्मियाँ होती हैं। नाभस रश्मियाँ दो सौ इकतालीस से दो सौ पचास तक होती हैं। प्रत्येक अक्षर में बतीस-बतीस मानस रश्मियाँ होती हैं।

दश वायु वर्ण में रश्मि क्रम सुनो। ग्यारह से बीस तक पार्थिव रश्मियाँ होती हैं। इकसठ से सत्तर तक जलीय रश्मियाँ

होती है। एक सौ एक सौ दश तक तैजस रश्मयाँ होती हैं। एक सौ इक्यानबे से दो सौ तक वायव्य रश्मयाँ होती हैं। दो सौ इकतीस से दो सौ चालीस तक नाभस रश्मयाँ होती हैं। प्रत्येक अक्षरों की मानस रश्मयाँ बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

तैजस दश वर्णों में इक्कीस से तीस तक पार्थिव रश्मयाँ होती हैं। इक्यावन से साठ तक जलीय रश्मयाँ होती हैं। एक सौ इकतालीस से एक सौ पचास तक तैजस रश्मयाँ होती हैं। एक सौ इक्यासी से एक सौ नब्बे तक वायव्य रश्मयाँ और दो सौ इक्कीस से दो सौ तीस तक नाभस रश्मयाँ होती हैं। मानस रश्मयाँ पूर्ववत् होती हैं।

जलीय दश वर्णों में क्रम से रश्मक्रम इस प्रकार का है—इकतीस से चालीस तक पार्थिव रश्मयाँ, इक्यानबे से सौ तक जलीय रश्मयाँ, एक सौ इकतीस से एक सौ चालीस तक तैजस रश्मयाँ, एक सौ इकहतर से एक सौ अस्सी तक वायव्य रश्मयाँ एवं दो सौ ग्यारह से दो सौ बीस तक नाभस रश्मयाँ होती हैं। पूर्ववत् मानस रश्मयाँ होती हैं।

दश पार्थिव वर्णों में रश्मक्रम इस प्रकार का है—इकतालीस से पचास तक पार्थिव रश्मयाँ है। इक्यानबे से एक सौ तक जलीय रश्मयाँ, एक सौ इक्कीस से एक सौ तीस तक तैजस रश्मयाँ, एक सौ इक्सट से एक सौ सत्तर तक वायव्य रश्मयाँ एवं दो सौ एक से दो सौ दस तक नाभस रश्मयाँ होती हैं। मानस रश्मयाँ पूर्ववत् बत्तीस-बत्तीस होती हैं। यही ऊर्ध्वामाय का रश्मक्रम होता है।

जयद्रथयामल में कहा गया है कि ऊर्ध्वामाय में क्रमशः नभ, वायु, तेज, जल, पृथ्वी रश्मयाँ होती हैं। पूर्वामाय में क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, नभ रश्मयाँ होती हैं। दक्षिणामाय में क्रमशः वायु, तेज, जल, पृथ्वी, नभ रश्मयाँ होती हैं। पश्चिमामाय में क्रमशः जल, पृथ्वी, नभ, वायु, अग्नि रश्मयाँ होती हैं। उत्तरामाय में क्रमशः अग्नि, जल, पृथिवी, नभ, वायु रश्मयाँ होती हैं।

मातृकार्णिव में कहा गया है कि मूलाधार में लकार की छप्पन रश्मयाँ होती हैं। स्वाधिष्ठान में बासठ तैजस रश्मयाँ होती हैं। मणिपूर में बावन अमृत रश्मयाँ होती हैं। अनाहत में यकार की चौवन रश्मयाँ होती हैं। विशुद्धि में हकार की बहतर नाभस रश्मयाँ होती हैं। आज्ञाचक्र में चौसठ मानस रश्मयाँ होती हैं। विसर्गस्थ विसर्ग की एक सौ मानस रश्मयाँ होती हैं।

**अथ पूर्वामाये रश्मक्रमः।** तत्रादौ पार्थिवानां दशार्णनां क्रमेण पार्थिवादिरश्मक्रमः। तत्रादौ पार्थिवाः—२४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०। अथाप्याः—१५१, १५२, १५३। १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, अथ तैजसाः—२११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०। अथ वायव्याः—७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०। अथ नाभसाः—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०।

**अथाप्यानां दशार्णनां पार्थिवादिरश्मयः।** तत्रादौ पार्थिवाः—२३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०। अथाप्याः—१९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००। अथ तैजसाः—१०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०। अथ वायव्याः—६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०। अथ नाभसाः—११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०। मानसाः प्राग्वत्।

**अथ तैजसानां दशार्णनां क्रमेण पार्थिवादिरश्मयः।** तत्र पार्थिवाः—२२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०। अथाप्याः—१८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०। अथ तैजसाः—१४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, अथ वायव्याः—५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०। अथ नाभसाः—२१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०। अत्र मानसाः प्राग्वत्।

अथ वायव्यानां दशाणानां पार्थिवादिरशमयः। तत्रादौ पार्थिवाः—२२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०। अथाप्या:—१७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०। अथ तैजसाः—१३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, अथ वायव्याः—११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, १००। अथ नाभसाः—३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०।

अथ नाभसानां दशाणानां पार्थिवादिरशमयः। तत्रादौ पार्थिवाः—२०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०। अथाप्या:—१६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०। अथ तैजसाः—२२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०। अथ वायव्याः—८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०। अथ नाभसाः—४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०। अत्रापि मानसाः प्राग्बत्। इति पूर्वाम्नाये रशिमक्रमः।

पूर्वाम्नाय का रशिमक्रम इस प्रकार है—

पार्थिव उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ल—इन दश वर्णों की पार्थिव रशिमयाँ इकतालीस से पचास तक होती हैं। जलीय रशिमयाँ इक्यानबे सौ एक सौ तक होती हैं। तैजस रशिमयाँ एक सौ इक्कीस से एक सौ तीस तक होती हैं। वायव्य रशिमयाँ एक सौ इक्सठ से एक सौ सत्तर तक होती हैं। नाभस रशिमयाँ दो सौ एक से दो सौ दस तक होती हैं। मानस रशिमयाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

ऋ ऋ औ घ झ ध थ थ व स—इन दस जलीय वर्णों की पार्थिव रशिमयाँ दो सौ इक्तीस से दो सौ चालीस तक होती हैं। जलीय रशिमयाँ एक सौ इक्यानबे से दो सौ तक होती हैं। तैजस रशिमयाँ एक सौ एक से एक सौ दस तक होती हैं। वायव्य रशिमयाँ इक्सठ से सत्तर तक होती हैं। नाभस रशिमयाँ ग्यारह से बीस तक होती हैं। मानस रशिमयाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष—इन दस तैजस वर्णों की पार्थिव रशिमयाँ दो सौ इक्कीस से दो सौ तीस तक, जलीय रशिमयाँ एक सौ इक्यासी से एक सौ नब्बे तक, तैजस रशिमयाँ एक सौ इकतालीस से एक सौ पचास तक, वायव्य रशिमयाँ इक्यावन से साठ तक एवं नाभस रशिमयाँ इक्कीस से तीस तक होती हैं। मानस रशिमयाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

अ आ ए क च ट त प य ष—इन दस वायव्य वर्णों की पार्थिव रशिमयाँ दो सौ इक्कीस से दो सौ तीस तक, जलीय रशिमयाँ एक सौ इक्हत्तर से एक सौ अस्सी तक, तैजस रशिमयाँ एक सौ इक्तीस से एक सौ चालीस तक, वायव्य रशिमयाँ इक्यानबे से एक सौ तक एवं नाभस रशिमयाँ इक्तीस से चालीस तक होती हैं। मानस रशिमयाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

ल लू अं ड ब ण न म श ह—इन दस नाभस वर्णों की पार्थिव रशिमयाँ दो सौ एक से दो सौ दस तक, जलीय रशिमयाँ एक सौ इक्सठ से एक सौ सत्तर तक, तैजस रशिमयाँ एक सौ इक्कीस से एक सौ तीस तक वायव्य रशिमयाँ इक्यासी से नब्बे तक एवं नाभस रशिमयाँ इकतालीस से पचास तक होती हैं। मानस रशिमयाँ प्रत्येक वर्णों की बत्तीस-बत्तीस होती हैं।

अथ दक्षिणाम्नाये रशिमक्रमः। 'दक्षिणेऽनिलतेजोऽम्बुपृथिवीनभसां क्रमः'। अत्रायमर्थः—पूर्वाम्नाये ये पार्थिवादिरशमयः पार्थिवदशाणानामभिहतास्ते दक्षिणाम्नाये वायव्यदशाणानां पार्थिवादिरशमयो ज्ञेयाः। अथ च पूर्वाम्नाये ये आप्यदशाणानां पार्थिवादिरशमयः प्रोक्तास्ते दक्षिणाम्नाये तैजसानां दशाणानां पार्थिवादिरशमयो ज्ञेयाः। अथ च पूर्वाम्नाये ये पार्थिवादिरशमयः प्रोक्तास्तेऽत्र दक्षिणाम्नाये आप्यानां दशाणानां पार्थिवादिरशमयो ज्ञेयाः। अथ च पूर्वाम्नाये ये पार्थिवादिरशमयः प्रोक्तास्तेऽत्र दक्षिणाम्नाये पार्थिवदशाणानां पार्थिवा-दिरशमयो ज्ञेयाः। नाभसा उभयत्र समाना इत्यर्थः। एवं क्रमेण,

पश्चिमेऽम्बुपृथिव्यभ्रपवनानलरशमयोः। उत्तरेऽनलवाः पृथ्वीनभोवायुक्रमः स्मृतः॥

एतद्रीत्या पश्चिमामायोत्तरामाययोः रश्मक्रम ऊहाः। अत्र पञ्चामायेषु क्रमप्राप्तरश्मभ्योऽप्यधिकरशमयो लरवयहठानं वर्णनां षणां पृथिव्यप्तेजोवाव्याकाशमानसाः मातृकार्णवोक्तरीत्या ज्ञेयाः। यथा—मूलाधारे चतुर्दलकमलकर्णिकामध्यस्थलकारस्य षट्पञ्चाशत्पार्थिवरशमयो ज्ञेयाः। स्वाधिष्ठाने षड्दलकमलकर्णिकामध्यस्थवकारस्य द्विपञ्चाशदाप्यरशमयो ज्ञेयाः। मणिपूरे दशदलकमलकर्णिकामध्यस्थरेफस्य द्वाषष्टिसैजसरशमयो ज्ञेयाः। अनाहते द्वादशदलकमलकर्णिकामध्यस्थयकारस्य चतुष्पञ्चाशद्वयव्यरशमयो ज्ञेयाः। विशुद्धे षोडशदलकमलकर्णिकामध्यस्थहकारस्य द्वासप्ततिर्नभसरशमयो ज्ञेयाः। आज्ञायां द्विदलकमलकर्णिकामध्यस्थठकारस्य चतुःषष्ठिर्नासरशमयो ज्ञेयाः। ततो ब्रह्मरन्त्रे सहस्रदलकमलकर्णिकोपरिष्ठाद्विसर्गस्थानस्थितअः कारस्य षोडशशतमानसरशमयो ज्ञेयाः।

दक्षिणामाय में रश्म क्रम—दक्षिण में वायु तेज जल पृथ्वी नभ का क्रम है। पूर्वामाय में जो पार्थिवादि रश्मयाँ पार्थिव दश वर्णों की कही गई है, वे दक्षिणामाय में वायव्य दश वर्णों की रश्मयाँ मानी जाती हैं। पूर्वामाय में जो जलीय दश वर्णों की पार्थिवादि रश्मयाँ हैं, वे दक्षिणामाय में तैजस दश वर्णों की रश्मयाँ होती हैं। पूर्वामाय में तैजस दश वर्णों की जो पार्थिवादि रश्मयाँ हैं, वे दक्षिणामाय में पार्थिव दश वर्णों की रश्मयाँ होती हैं। पूर्वामाय में वायव्य दश वर्णों की जो पार्थिवादि रश्मयाँ हैं, वे दक्षिणामाय में तैजस दश वर्णों की रश्मयाँ होती हैं। नाभस रश्मयाँ दोनों में समान होती हैं। इसी तरह पश्चिमामाय में जल पृथ्वी नभ वायु अग्नि क्रम से रश्मयाँ होती हैं। उत्तरामाय में अग्नि, जल, पृथ्वी, नभ, वायु का क्रम होता है।

पश्चिमामाय में क्रम प्राप्त रश्मयों से अधिक रश्म लरवयहठ—इन छः वर्णों में भी पृथ्वी जल तेज वायु आकाश मानस मातृकार्णवोक्त रीति से ज्ञेय है। जैसे मूलाधार के चतुर्दल कमल कर्णिका मध्यस्थ लकार की छप्पन पार्थिव रश्मयाँ हैं। स्वाधिष्ठान के षड्दल कमल कर्णिका में मध्यस्थ वकार की बावन जलीय रश्मयाँ हैं। मणिपूर के दश दल कमलकर्णिका मध्यस्थ रेफ की बासठ तैजस रश्मयाँ हैं। अनाहत के द्वादश दल कमल कर्णिका मध्यस्थ ‘य’कार की चौकैन वायव्य रश्मयाँ हैं। विशुद्धि के षोडश दल कमल कर्णिका मध्यस्थ हकार की बहतर नाभस रश्मयाँ हैं। आज्ञा के द्विदल कमल कर्णिका मध्यस्थ ठकार की चौसठ मानस रश्मयाँ हैं। तदनन्तर ब्रह्मरन्त्र के सहस्र दल कमल कर्णिका के ऊपर विसर्गस्थानस्थित ‘अः’ की सोलह सौ मानस रश्मयाँ होती हैं।

### श्रीतत्त्वराजे—

अथ षोडशनित्यानां ध्यानानि विविधानि ते । कथयामि शृणु प्राज्ञे वाञ्छितार्थसुरद्रुमान् ॥१॥

एकैकमङ्गलित्वेन तासां तच्छक्तिभिस्तथा । प्रयोगेषु समस्तेषु बाह्याभ्यन्तरतः क्रमात् ॥२॥

प्रिये कीर्त्ये जयावाप्त्यै वश्याकर्षणसिद्धये । ध्यायेद्वैवीः समस्ताश्च लोहिताकारमण्डनाः ॥३॥

विद्याप्त्यै शान्तिके मुक्ताविन्दुकर्पूरसन्निभ्राः । विद्वेषोच्चाटनिधनिग्रहेष्वसिताः स्मरेत् ॥४॥

क्षित्यादिभूतैः सत्त्वादिगुणैरेकसंहतैः । एतद्व्याप्तिसमाप्त्यैर्वर्णाकारैस्तु शक्तयः ॥५॥ इति।

अत्र क्षितिवर्णनां दशानां सत्त्वादियोजनाप्रकारस्तु—सात्त्विकवर्णाः। राजसवर्णाः। तामसवर्णाः। सात्त्विकसात्त्विकाः। राजसराजसाः। तामसतामसाः। सात्त्विकराजसाः। राजससात्त्विकाः। सात्त्विकतामसाः। तामससात्त्विकाः। राजसतामसाः। तामसराजसाः। एवं द्वादशधा क्षितिवर्णाः १२०। एवमाप्यवर्णाः १२०। तैजसाः १२०। वायव्याः १२०। नाभसाः १२०। एवं मानसा अपि ज्ञेयाः। तथा—

धूम्राभाश्चिन्तयेत् सर्वाः प्रोक्तेष्वादिसिद्धये । सर्वत्र स्वसमाकारवर्णशक्तिभिरावृताः ॥१॥

असंख्याताः भवन्त्यासां कात्स्याद्व्यानं तु को वदेत् । को वा शृणोति साकल्यात्ततः किञ्चिद्वदामि ते ॥२॥

भौमाकाराः पीतवर्णाः सर्वाः स्तम्भनकारिकाः। आप्याः सत्त्वगुणाः सर्वाः सिताकाराः समीरिताः ॥३॥

ताः सर्वा ज्ञानकान्तिश्रीकीर्तिसौभाग्यमुक्तिः । आनेयो राजसाः सर्वा लोहिताकारसंयुताः ॥४॥  
 वश्याकर्षणशान्तिश्रीसौभाग्यविजयप्रदाः । वायुरूपा धूम्रवर्णाः सर्वा द्वेषादिकारिकाः ॥५॥  
 नाभसा नीलवर्णस्ता मारणोच्चाटयोः स्मृताः । आसां मुखभुजादेहविधानं शृणु पार्वति ॥६॥  
 एकवक्त्राश्वतुर्वक्त्रा नववक्त्रास्तथापराः । घोडशास्याः पञ्चविंशदशास्या अपि काश्चन ॥७॥  
 षट्ट्रिंशद्वदनाः वक्षपि चत्वारिंशत्र्वाननाः । चतुःषष्ठिमुखास्तद्वदेकाशीतिशताननाः ॥८॥  
 बहुना किं मुखभुजसंख्या साधकवाञ्छया । तथापि दर्शितं किञ्चिद्वक्त्रे वक्त्रे भुजद्वयम् ॥९॥  
 नामस्त्वपातिगा येन तेन सानन्तविग्रहा । न सन्ति नानारूपाश्च भवेयुर्भक्तवाञ्छया ॥१०॥  
 अम्बाया ललितायाः स्युरन्याः पञ्चदशाङ्गाः । ललिताङ्गित्वरूपेण सर्वासामात्मविग्रहाः ॥११॥  
 तेन तासां तु सर्वासां स्वतोऽन्याः परिचारिकाः । तत्तद्वर्णायुधाकारावहनैश्च सुसंयुताः ॥१२॥  
 तथाविधैः स्वस्वशक्तिवृद्देश्वावेष्टिता अपि । इति तासां ध्यानभेदाः प्रोक्ताः स्थूला महेश्वरि ॥१३॥  
 सूक्ष्मरूपाणि च तथा कथयामि तवानन्धे । येन ते साधकाः सर्वे वाञ्छितं प्राप्नुयुः क्षणात् ॥१४॥  
 प्रोक्तेष्वाधारपद्मेषु लोहितात्मैक्यविग्रहाम् । विभाव्य तेजोनिचये तत्र सिद्धिं च चिन्तयेत् ॥१५॥  
 तेन सर्वमभीष्टं तु समवाप्नोत्ययत्नः । पूजातर्पणहोमादिरहितं भावनेन वै ॥१६॥  
 परं तु ध्यानमुदितमखण्डात्मविमर्शतः । निर्वातदीपसङ्काशामात्मनात्मसमीरणात् ॥१७॥

घोडश नित्याओं का ध्यान—तन्त्रराज में कहा गया है कि हे प्राज्ञ! सुनो, मैं तुम्हें सोलह नित्याओं के विविध ध्यानों को कहता हूँ, जो इच्छित फल देने में कल्पवृक्ष के समान हैं। प्रत्येक की अंगांगी शक्तियों को प्रयोगों के लिये बाह्याभ्यन्तर क्रम से कहता हूँ। धन कीर्ति जयप्राप्ति वश्य आकर्षण की सिद्धि के लिये सबों का ध्यान लाल वर्ण का करना चाहिये। विद्याप्राप्ति एवं शान्ति कर्म में इनका ध्यान मोती-बिन्दु और कपूर के समान श्वेत वर्ण का करना चाहिये। विद्वेषण-उच्चाटन-मारण-निग्रह में इनका ध्यान काला वर्ण का किया जाता है। दश क्षिति वर्णों में सत्त्वादि गुणों के अनुसार एक-एक की व्याप्ति वर्ण शक्तियों के रूप में है। सत्त्वादि में योजन प्रकार है—सत्त्विक वर्ण। राजसिक वर्ण। तामस वर्ण। सत्त्विक-सत्त्विक। राजस-राजस। तामस-तामस। सत्त्विक-राजस। राजस-सत्त्विक। सत्त्विक-तामस। तामस-सत्त्विक। राजस-तामस। तामस-राजस। इस प्रकार ये बारह क्षिति वर्ण एक सौ बीस हैं। इसी प्रकार आप्य वर्ण, तैजस, वायव्य नाभस एवं मानसा भी एक सौ बीस-एक सौ बीस होते हैं।

विद्वेषण-सिद्धि के लिये इनका चिन्तन धूम्राभ होता है। सर्वत्र अपने समान आकार वर्ण की शक्तियों से ये घिरी रहती हैं। इनके ध्यान अगणित हैं। कौन सबों को कह सकता है और कौन सबों को सुन सकता है? अतः उनमें से कुछ को कहता हूँ। सभी भौमाकार वर्ण शक्तियाँ पीले रंग की स्तम्भन करने वाली हैं। सभी जलीय वर्ण शक्तियाँ सत्त्वगुण श्वेत रंग की हैं। सभी आप्य ज्ञान-कान्ति-श्री-कीर्ति-सौभाग्य-मुक्तिदायिनी हैं। सभी आनेय राजसा शक्तियाँ लाल रंग की होती हैं, ये वश्य-आकर्षण-शान्ति-श्री-सौभाग्य-विजयप्रदा हैं। वायुरूपा सभी शक्तियाँ धूम्र वर्ण की हैं, ये सभी द्वेषकारिका हैं। नाभस शक्तियाँ नील वर्ण की हैं, मारण उच्चाटन में इनका स्मरण होता है। अब इनके मुख, भुजा, देह का विधान सुनो।

एक मुख, चार मुख, नव मुख, सोलह मुख, पच्चास मुख, छत्तीस मुख, चालीस मुख, चौसठ मुख, इक्यासी मुख, सौ मुख की शक्तियाँ होती हैं। इनके मुख-हाथ की संख्या के बारे में क्या कहा जाय; तथापि साधक की कामना के अनुसार कुछ कहा गया है। किसी के अनुसार प्रति मुख की दो-दो भुजाएँ होती हैं। चाहे वे किसी भी नाम-रूप की हों; पर सभी आनन्दविग्रह होती हैं। भर्तों को कामना के अनुसार ये सभी नाना रूपों से युक्त होती हैं। ललिताम्बा के अंगरूप में पन्द्रह अन्य शक्तियाँ हैं, ये सभी अंगी रूप में उन्हीं के समान हैं। प्रत्येक की उनके समान ही परिचारिकायें हैं। ये भी उन्हीं के आकार, आयुष एवं वाहनों से युक्त हैं। उसी प्रकार की अपनी शक्तिवृन्दों से ये घिरी रहती हैं। ध्यानभेद से उनके स्थूल रूप का वर्णन करता हूँ। उनके सूक्ष्म रूपों को भी कहता हूँ, जिससे सभी साधक वाञ्छितार्थ प्राप्त करते हैं। प्रोक्त मूलाधार पद्म में सभी

लाल वर्ण वाली हैं। उन्हें तेजःपुंज रूप में चिन्तन करने से सिद्धियाँ मिलती हैं। उन्हीं से अनायास सर्वाभीष्ट प्राप्त होते हैं। पूजा-तर्पण-हवन न करने पर भी केवल भावना से ही फल मिलते हैं; परन्तु यथाविधि ध्यान, अपने साथ ऐक्य भावना, दीपदान आदि की भावना करने से यथावाञ्छित फल प्राप्त होते हैं।

स्थूलेन साधयेत्तदिष्टं सर्वं शुभाशुभम् । प्रोक्तक्रमेण देवेशि सततं साध्यसाधकैः ॥१८॥  
 सिद्धस्तु सूक्ष्मरूपेण ध्यानेन सकलेप्तितम् । साधयेत् पररूपं तु साध्यं साधनसिद्धये ॥१९॥  
 ब्रूहि देव महेशान स्थूलसूक्ष्मस्वरूपयोः । ध्यानयोः कर्मणा सिद्धिं विविधां फलयोगतः ॥२०॥  
 तासां तत्त्वकरेषुक्तेष्वायुधान्यव्यप्येषतः । शृणु वक्ष्ये महेशानि क्रमेण तत्र सांप्रतम् ॥२१॥  
 वामदक्षिणयोः स्यातां द्विभुजे च वराभये । पाशाङ्कुशौ चतुर्भुजौ षड्भुजे चापसायकौ ॥२२॥  
 चर्मखड्गौ चाष्टभुजे गदाशूले दशोदिते । मुखपाण्यायुधानां तु रूपसंख्यादिवाञ्छया ॥२३॥  
 यस्मिन् कर्मणि ता देवि यथा स्मरति साधकः । तथा तस्याग्रतो भूत्वा पालयन्ति तमादरात् ॥२४॥  
 सर्वत्र स्मेरवदननयनाः शुभकर्मसु । दंष्टोग्रा भीमनयनवदनाः क्रूरकर्मसु ॥२५॥  
 शुभेषु कर्मस्वासीनाः स्थिताः वाहनगा अपि । शुभेतरेषु ताः सर्वाः प्रयोगेषु तु सर्वदा ॥२६॥  
 हारत्रैवेयमुक्तादिमुद्रिकानुपुरान्विताः । नवरत्नलमयैः सर्वाः स्तबकैश्चोपशोभिताः ॥२७॥  
 वलयैरङ्गदै रत्नमयैरप्यहूलीयैः । विराजमानास्ताः सर्वा दिव्यांशुकधरा अपि ॥२८॥  
 एवं सामान्यमुदितं ध्यानं तासां महेश्वरि ।

स्थूल ध्यान से सभी शुभ-अशुभ इष्ट सिद्ध होते हैं। प्रोक्त क्रम से साधक सर्वदा साधन करे। सूक्ष्म रूप के ध्यान से सभी इप्सित सिद्ध होते हैं। पररूप का साधन साध्य साधन सिद्धि के लिये करे। हे देव महेश! स्थूल-सूक्ष्म रूप के ध्यान से प्राप्त होने वाली विविध सिद्धियों और फल के बारे में कहिये। उनके कररथ आयुधों और अन्य सब कुछ कहिये। हे महेशनि! सुनो, क्रम से उन्हें कहता हूँ। उन सभी द्विभुजी के दो हाथों में वर-अभय होते हैं। चतुर्भुजी के हाथों में वर-अभय-पाश-अंकुश होते हैं। छः भुजी के हाथों में इनके अतिरिक्त धनुष-बाण होते हैं। अष्टभुजी के हाथों में इनके अतिरिक्त ढाल, तलवार रहते हैं। दशभुजी के हाथों में इनके अतिरिक्त गदा-प्रिंशूल रहते हैं। मुख, हाथ एवं अस्त्रों का स्वरूप एवं संख्या इच्छा के अनुसार होती है। साधक अपने कर्म के अनुसार जिस रूप में स्मरण करता है, उसी रूप में साधक के सामने प्रकट होकर वे उसका पालन करती हैं। सभी शुभ कर्मों में इनका ध्यान मुस्कानयुक्त मुख-नयन का किया जाता है। क्रूर कर्मों में इनका ध्यान भयानक दाँत-नेत्र-मुख का किया जाता है। शुभ कर्मों में ये अपने आसन पर बैठी या वाहन पर आरूढ़ रहती हैं। शुभेतर सभी प्रयोगों में सर्वदा वे हार त्रैवेयक मोती मुद्रिका नुपुर से युक्त होती हैं। सभी नव रत्नयुक्त स्तबकों से उपशोभित रहती हैं। वलय अंगद रत्नजटित अंगूठी से युक्त होकर विराजमान रहती हैं। सबों के अंगों में दिव्य रेशमी वक्ष सुशोभित होते हैं। यह उनके सामान्य ध्यान कहे गये हैं।

विशेषं शृणु वक्ष्यामि तत्त्वकर्मसु सिद्धदम् ॥२९॥

गजवाजिरथारूढा विमानस्थाश्च सिंहगाः । व्याघ्रताक्षर्यसमारुढा ध्येया रक्षासु सर्वदा ॥३०॥  
 समरेषु जयावाप्त्यै नृपराष्ट्रादिरक्षणे । पिशाचचोरव्यालादिदुर्गमेऽरण्यवर्त्मनि ॥३१॥  
 ध्यायेत्ता देवताः सर्वाः सर्वशक्तिभिरावृताः । एकैकशः समस्ता वा सुखीभवति निश्चितम् ॥३२॥  
 ऋक्षवानरभल्लूकखरसैरिभवाहनाः । उच्चाटनेषु सर्वास्ता भीमा ध्येयाः सुदारुणाः ॥३३॥  
 कङ्कश्येनबकक्रोञ्चकाककौशिकवाहनाः । विद्वेषणेषु सर्वास्ता धोरप्रहरणाकुलाः ॥३४॥  
 खड्गगोमायुगवयशललीहरिणाश्वगाः । चिन्तयेत् सकलाः सर्वक्षुद्रकर्मसु साधकः ॥३५॥  
 पिशाचवेतालगता ध्येयाः सर्वत्र मारणे । इति वाहनभेदेन फलभेदाः समीरिताः ॥३६॥

सर्वस्ताक्षर्यगता वह्निवायुबाहुद्वयान्विताः । द्विनेत्रास्त्वेकवदना दष्टौष्ठा भीमविग्रहाः ॥३७॥  
 वहन्त्ये वह्निवहं ध्येयाः स्वाकाराशक्तिभिः । भीमारवाभिरभितो वेष्टिता रणपूर्धनि ॥३८॥  
 विजयो भवति क्षिप्रं वैरिसेनाविनाशनः । पलायनात् संग्रहणात् पादयोः पतनेन वा ॥३९॥  
 चतुर्मुखा अष्टभुजा गृह्णत्यो महतीं चमूम् । विभाव्य विजयं युद्धे प्राप्नोत्युक्तक्रमेण वै ॥४०॥  
 नवाननास्तद्द्विगुणभुजा वा भीमविग्रहाः । वामैः कोदण्डनिवहमन्यैर्बाणांश्च बिभ्रतीः ॥४१॥  
 ध्यात्वारिसेनां सकलां शरभिन्नकलेवराम् । वमद्वधिरधानां च विजयं प्रोक्तमानुयात् ॥४२॥  
 अथवा नवभिः खेटमन्यैः खड्गं च बिभ्रतीः । चतुरङ्गा रिपोः सेनाशिष्ठन्दतीस्तरवारिभिः ॥४३॥  
 चिन्तायित्वा रिपुं युद्धे भीमाकारे सुदुर्जये । पत्यश्वेभरथाटोपवायनिः स्वानसङ्कुले ॥४४॥  
 प्राप्नोत्ययलतः क्षिप्रं प्रागुक्तक्रमयोगतः । अथवा नवभिर्हस्तैर्गदा वामैस्तथेतरैः ॥४५॥  
 नखरान् पाणिभिर्भीमान् दधतीः समरे स्मरन् । तद्विन्नचतुरङ्गां च सेनां विजयमानुयात् ॥४६॥  
 तथा स्थूलकुठारौयैः पातयन्तीर्द्धिषां बलम् । विजयी भवति प्रोक्तक्रमाद्वीरो रणाङ्गणे ॥४७॥  
 तथैव चर्मक्षुरिकानिवहैर्निघन्तीर्बलम् । ध्यात्वा वा विजयी भूयात्समरे रोमहर्षणे ॥४८॥  
 निद्रातिमिरहस्ता वा तैः सेनां पृदगतीः स्मरन् । विजयं समरे शशदशनुते शङ्करोपमः ॥४९॥  
 पिशाचसर्पहस्ता वा तैः सेनां पृदगतीः स्मरन् । विजयं समरे शशदशनुते शङ्करोपमः ॥५०॥  
 पाशकर्तरिकाभिर्भावा निघतीः पृतनां रणे । समृत्वा विजयमाप्नोति नृपः प्रोक्तक्रमाद् ध्रुवम् ॥५१॥  
 अङ्गुशक्रकचाभ्यां वा दारयन्तीश्चमूः क्षणात् । चिन्तयन् समरे भीमे विजयी स्यात्सुनिश्चितम् ॥५२॥  
 हलैश्च मुसलैर्नित्यं प्रहरन्तीर्द्धिषां बलम् । स्मरन् प्रविजयं युद्धे प्राप्नोति ध्यानवैभवात् ॥५३॥

विशेष कर्मों की सिद्धि हेतु उनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—हाथी, घोड़े, रथ, विमान सिंह व्याप्र, गरुड़ पर सवार शक्तियों का ध्यान रक्षा कर्म में करना चाहिये। युद्ध में विजय के लिये, राजा-राष्ट्र आदि की रक्षा के लिये, पिशाच चोर सर्प दुर्गम जंगली मार्ग में इन शक्तियों का ध्यान सभी शक्तियों से आवृत एक-एक का या सबों का करने से साधक निश्चित सुखी होता है। क्रक्ष, वानर, भालू, गदहा, सैरिभ पर सवार भयानक सुदारुण ध्यान उच्चाटन में करना चाहिये। गिर्द बाज बगुला क्रौंच कोआ कौशिक पर सवार थोर प्रहार को आकुल सबों का ध्यान विद्वेषण में करना चाहिये। खड्ग, गोमाय, गवय, शलली, हरिण, घोड़े पर सवार सबों का चिन्तन सभी क्षुद्र कर्मों में करना चाहिये। मारण में सर्वत्र पिशाच वेताल पर सवार सबों का ध्यान होता है। वाहनभेद से फल में भी भेद होते हैं। गरुड़ पर सवार, अर्जिन-वायु दो हाथों से युक्त, द्विनेत्र, एक मुखी, दाँतों से होठ चबाती हुई, भयंकर रूप की अग्नि के समान चंचल अपने आकार की शक्तियों से आवृत भयंकर गर्जन वाली का ध्यान रणभूमि में करने से शीघ्र विजय होती है और वैरी सेना का नाश होता है। भागते हुए को पकड़कर पादाघात करती हुई चारमुखी अष्टभुजी शक्तियाँ बड़ी सेना को खा रही हैं—इस रूप के ध्यान से युद्ध में विजय होती है। नव मुखी अड़ारह भुजी भयंकर रूप वाली शक्तियों के बाँयें हाथ में धनुष और दाँयें हाथ में बाणयुक्त होने से सभी शत्रुसैनिकों का शिरविहीन शरीर रुधिरधारा का वमन करते हुये चिन्तन करने से युद्ध में विजय होती है। अथवा नवमुखी तलवार ढाल ली हुई चतुरंगी सेना को तलवार से काटती हुई का चिन्तन करने से युद्ध में भीमाकार दुर्जय, पैदल, अश्वरोही, रथाटोप, वाय, ध्वनि से युक्त सेना को पराजित कर शीघ्र विजय प्राप्त करता है अथवा नवो मुख एवं उससे दुगुने हाथों में से बाँयें में गदा और दाँयें में नखयुक्त अंगुलियों को युद्ध में स्मरण करने से उससे भिन्न चतुरिंगी सेना पर विजय प्राप्त होती है अथवा स्थूल कुठारसमूह से वैरी के बल को काट रही है—ऐसा ध्यान करने से युद्ध में विजयी होता है। इसी प्रकार ढाल तलवार से शत्रु बल को काट रही है—ऐसा ध्यान करने से युद्ध में राजा विजयी होता है। पिशाच सर्प धारण की हुई वे सेना को भूमिगत कर रही हैं—ऐसा ध्यान करने से युद्ध में राजा विजयी होता है। पिशाच सर्प धारण की हुई वे सेना को मोहित कर रही हैं—ऐसा ध्यान से शंकर के समान शत्रु पर भी युद्ध में विजय होती है। पाश कर्तरी लेकर शत्रु को मार रही है—युद्ध में ऐसा

स्मरण करने से विजय मिलती है। अंकुश चक्र से शत्रुसेना को क्षण भर में मार रही है—ऐसा चिन्तन युद्ध में करने पर जीत होती है। हल और मूसल से वैरी के बल पर प्रहर करती हुई का ध्यान युद्ध में करने से वैभव एवं विजय प्राप्ति होती है।

तथा षोडशवक्त्रास्ता द्वात्रिंशद्वाहुभिर्युताः । प्राग्वत् प्रमथितारातिपृतनाश्चिन्तयञ्जपेत् ॥५४॥  
 पञ्चविंशतिवक्त्रा वा पञ्चाशद्वजसंयुताः । तथैकादशभिर्भेदैरायुधैर्निघ्नतीर्बलम् ॥५५॥  
 विचिन्त्य जयमाप्नोति समरे सर्वदा नृपः । तथा स्मरणसंयुक्तः पूजयेतास्तदा गृहे ॥५६॥  
 षट्क्रिंशद्वदना देवीर्द्विसप्तिकराः स्मरेत् । तथैकादशरूपैस्तैः धोरैः प्रहरण्युताः ॥५७॥  
 एकोनपञ्चाशद्वक्त्रा हस्तैस्तदद्विगुणेर्वृताः । प्रहरन्तीस्तथारातीन् स्मृत्वा वा जयमाप्नुयात् ॥५८॥  
 चतुःषष्ठिमुखा देवीः करैस्तदद्विगुणेर्वृताः । प्रहरन्तीः स्मरन् युद्धे जयी भवति निश्चितम् ॥५९॥  
 एकाशीतिमुखा देवीस्तदद्विगुणेण्यभुजैर्युताः । तथाविधैः प्रहरणैः स्मरन् युद्धे जयी भवेत् ॥६०॥  
 शतवक्त्रास्तदद्विगुणकरात्सद्वेतिभिर्युताः । स्मृत्वा विजयमाप्नोति समरे ताश्च षोडशः ॥६१॥  
 एवं वक्त्रकरैर्युक्तास्त्वनेकैरिष्टरूपतः । तथा तैहेतिनिवैव्यर्कुलक्रमहस्तकैः ॥६२॥  
 असंख्याता भवेयुस्ताः साधकाभीष्टसिद्धिदा । एवमुद्भामसमरसङ्कटादिषु विन्नयन् ॥६३॥  
 देवीस्तास्तरति क्षिप्रमापदो मनुजोऽथवा । देवो वा राक्षसो यक्षः किञ्चरो वा भुजङ्गमः ॥६४॥  
 पिशाचो वा गुह्यको वा सिद्धो वा दानवोऽथवा । न कदाचित्स्मरन्त्रित्यं भङ्गमाप्नोति निश्चितम् ॥६५॥  
 चोरादिसङ्कटेऽरण्ये गिरिदुर्गमवर्त्मनि । द्विविधैर्वैरिभिर्जातैः कृच्छ्रे राजभये तथा ॥६६॥  
 क्षुद्रपीडासु भूताप्स्माराराक्षसंकटे । पिशाचाडाकिनीवृद्धब्रह्मराक्षसपीडने ॥६७॥  
 अन्येष्वपि च कृच्छ्रेषु विस्तरेषु महत्स्वपि । स्मरन्त्रित्यं जयेत्सर्वा विपदो ध्यानवैभवात् ॥६८॥  
 एकवक्त्रा द्विभ्युभीष्टधारिकाः । सपादुकाः समागत्य सर्वभरणभूषिताः ॥६९॥  
 स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताः । गायन्तीभिश्च नृत्येषु वनमालाभिरन्विताः ॥७०॥  
 ध्यायत्रभिमतं सर्वमाप्नुयात् षोडशापि ताः । नासाध्यमस्ति भुवने ध्यानादासां महेश्वरि ॥७१॥  
 अलङ्कृतहयारूढाः शक्तिभिश्च तथावृताः । स्मेराननाश्च गायन्तीः स्मृत्वा विश्वं वशं नयेत् ॥७२॥  
 तथाविधा गजारूढास्तथा शक्तिभिरावृताः । सङ्गीतासक्तमहिलावृद्धसङ्कुलमध्यगाः ॥७३॥  
 स्मृत्वा लक्ष्मीमवाप्नोति राजमान्यामतिस्थिराम् । नानाभोगसमेपेतां प्रख्यातां निजवैभवात् ॥७४॥  
 तथाविधरथारूढास्तथा शक्तिभिरावृताः । तथा संगीतसंसक्तशक्तिवृद्धसमन्विताः ॥७५॥  
 स्मरन् भूमिमवाप्नोति राजा चेद्विरिष्टलम् । एवं तत्रिविधध्यानात्सौभाग्यं चातुलं यशः ॥७६॥  
 कदलीकानने रम्ये निर्जने तास्तथा स्मरन् । पादुकासक्तचरणा आगच्छन्तीश्च शक्तिभिः ॥७७॥  
 मण्डलं मासमर्थं वा जपन् विद्यां ततो वसेत् । निधिं संप्राप्य भवने भोगी स्याद्यावदायुषम् ॥७८॥  
 पूर्णारम्भे तथा स्मृत्वा पिधिमाप्नोत्ययन्तः । एवं चम्पकपुन्नागनमेरुबकुलेष्वपि ॥७९॥  
 तथा पर्वतकुञ्जेषु स्मरस्ता वित्तमाप्नुयात् । राजतो धनितोऽन्यस्मादेनासौ स्यात्सुखी चिरम् ॥८०॥  
 समुद्रतीरे पुण्येषु तथा नित्यं स्मरन् धिया । प्राप्नोत्यनर्घरलानि बहूनि ध्यानवैभवात् ॥८१॥  
 समुद्रगासरिमध्यतरुवाटीषु तास्तथा । स्मरन् कनकमाप्नोति वर्णोल्कृष्टमसंख्यकम् ॥८२॥  
 निर्जने विपिने स्मृत्वा प्राप्नोति महिला: शुभा: । रूपयौवनशीलाद्याः प्रेमनिधास्त्वनन्यगाः ॥८३॥  
 उक्तेषु तेषु स्थानेषु हयारूढाः स्मरन् नरः । नृपतिं कुरुते वशं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥८४॥  
 तेषुक्तेषु गजारूढाः स्मृत्वा नारीर्नरात्रपान् । वशीकरोति भुवने प्राणिनश्चाविशेषतः ॥८५॥  
 तथा तेषु रथारूढाः स्मृत्वा देवीस्तथोदिताः । वाञ्छितं समवाप्नोति मुक्तः स्यान्निगडादितः ॥८६॥

सोलह मुख और बत्तीस हाथों वाली का 'वह शत्रुसेना का नाश कर रही है' ऐसा चिन्तन पूर्ववत् करते हुये जप करे पच्चीस मुख और पचास हाथों वाली देवी ग्यारह आयुधों से शत्रुबल का नाश कर रही है—ऐसा चिन्तन करने से राजा सर्वदा युद्ध में विजयी होता है। उसी प्रकार का स्मरण करके वह उसकी पूजा अपने घर में करे। छत्तीस मुख और बहतर हाथों वाली देवी ग्यारह घोर शत्रुओं से शत्रुप्रहार में लगी हुई है, उनचास मुख और अड्डानबे हाथों वाली शत्रु के प्रहार में रत देवी का चिन्तन करने से विजयी होता है। चौसठ मुख और एक सौ अद्वैट्स हाथों वाली शत्रुप्रहार में रत देवी का चिन्तन करने से युद्ध में विजयी होता है। इक्यासी मुख और एक सौ बासठ हाथों वाली शत्रुप्रहार में रत देवी का चिन्तन करने से युद्ध में जयी होता है। सौ मुख और दो सौ हाथों वाली शत्रुप्रहार में रत देवी का चिन्तन करने से युद्ध में विजयी होता है।

इस प्रकार साधक की कामनानुसार मुखों और हाथों से युक्त आयुध वाली आणित देवियाँ साधक की अभीष्टदायिनी होती हैं। इस प्रकार का चिन्तन भयंकर युद्ध के संकट में करना चाहिये ऐसा ध्यान करने से देवी मनुष्य को आपदाओं से पार कर देती है। देव राक्षस यक्ष कित्र सर्प पिशाच गृहाक दानव के भय होने पर ऐसा चिन्तन करे। इस प्रकार स्मरण नित्य यदि न करे तो छत्र भंग होता है। चोरों के संकट, दुर्गम जंगल पर्वत मार्ग में, दो प्रकार के वैरी होने पर, राजभय में, क्षुद्र पीड़ा में, भूत अपस्मार राक्षस संकट में, पिशाच डाकिनी-वृन्द ब्रह्मराक्षस से पीड़ा में या अन्य भयंकर कष्टों में देवी का स्मरण करने से सभी विपदायें नष्ट हो जाती हैं। एक मुख दो आँख दो हाथ वाली खड़ाऊ पहने सर्वार्थरणभूषिता अपने समान शक्तियों से घिरी हुई गाती नाचती वनमाला युक्त इष्ट देवी का ध्यान करने से सभी इच्छायें पूरी होती हैं। इसी प्रकार घोड़श नित्याओं का ध्यान करने से संसार में कुछ भी असाध्य नहीं होता। अलंकृत घोड़े पर सवार उसी प्रकार की शक्तियों से घिरी हुई संगीतासक्त महिला वृन्द संकुल के मध्य में देवी का स्मरण करने से लक्ष्मी मिलती है, राजमान्य होता है, बुद्धि स्थिर होती है एवं नाना भोगों से युक्त होकर अपने वैभव से विख्यात होता है।

उसी प्रकार रथारूढ़ शक्ति से आवृत संगीत में संसक्त शक्तिवृन्द समन्वित देवी का स्मरण करने से राजा शत्रु की भूमिमण्डल को प्राप्त करता है। इस प्रकार के तीन ध्यानों से अतुल सौभाग्य और यश मिलता है। केले के वन में रथ्य निर्जन स्थान में देवी का स्मरण उस रूप में करने से पाटुका पहनकर शक्तियों सहित देवी आती है। चालीस दिन या पन्द्रह दिन तक विद्या का जप करते हुये वहीं निवास करने से साधक को निधि प्राप्त होती है और वह यावज्जीवन घर में भोगों को भोगता है। कसैली के वन में उक्त रूप का स्मरण करते हुये जप करने से निधि बिना यत्न के मिलती है। इसी प्रकार चम्पा, पुत्राण, नम्रे, वकुल बाग में, पर्वतकुञ्जों में जप-ध्यान करने से राजा से, धनिक से या अन्यों से धन मिलता है एवं चिरकाल तक सुखी जीवित रहता है। समुद्रतट में, पवित्र स्थानों में नित्य जप-ध्यान से बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते हैं। समुद्रगामिनी नदियों में या वाटिका में उस प्रकार के ध्यान से असंख्य वर्णोंकृष्ट सोने की प्राप्ति होती है। निर्जन वन में जप-ध्यान से रूप-यौवनशील अनन्य स्वेहयुक्त सुन्दर महिला प्राप्त होती है। उक्त स्थानों में अश्वरूढ़ के स्मरण से मन-काय-वचन-कार्य से राजा वश में होता है। उन्हीं स्थानों में हाथी पर सवार देवी के स्मरण से वांछित सिद्धि होती है एवं निगड़ बन्धन से मुक्ति मिलती है।

**शतवक्त्रास्तद्विगुणभुजास्तेष्वायुधान्यपि । वाञ्छितानि लिखित्वा ताः पटेषु नवसु स्फुटम् ॥८७॥**

**पटांस्तान् पद्ध्यपर्यन्तद्वये संस्थापयेत्था । रथदन्तिहयानां तु तिरस्करणिकायुतान् ॥८८॥**

**प्रतिसैन्याभिमुख्ये तु तांस्तु सम्यकप्रदर्शयेत् । वत्रालिखितनिःसानभेरीपणवर्मदलान् ॥८९॥**

**आहत्य वादयन् शृङ्गशङ्ककाहलकादिकम् । व्रजेदभिमुखं वैरी धावत्याशु पराजितः ॥९०॥**

**तत्सेना संमुखी पश्चान्न जातु भवति ध्रुवम् । इति ध्यानान्यशोषणि कथितानि तवानघे ॥९१॥**

**सूक्ष्मध्यानेन सिद्धानां साधकानां फलोदयः । अतस्तच्छृणु वक्ष्यामि सर्वाभीष्टाप्तिकारकम् ॥९२॥**

**दाढिमीकेसरप्रख्यतेजोरूपाः स्मरन् धिया । तम्ध्ये साध्यस्त्वं च निजवाञ्छानुरूपकम् ॥९३॥**

**समस्ताभीष्टमाप्नोति शुभानयशुभानपि । तथा सुषुमान्तस्तद्वच्चिन्तयेद्वा गमागमम् ॥९४॥**

**तेनाखिलं निजेष्टं तु प्राप्नोति ध्यानवैभवात् । साधकश्च तथा सिद्धस्तयोरेवाशुसिद्धिकृत् ॥९५॥**

**अत्र मूलमन्त्रवर्णा:** स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृताः तत्तद्रश्मिवृन्दसहितास्तत्तद्वृपेण ध्यातव्याः। मातृकावर्णाश्च  
तथैव ध्यातव्या इत्यर्थः। षोडशनित्यासु ललिताया अङ्गत्वेन पञ्चदशनित्याः, पञ्चदशनित्यासु परस्परमङ्गाङ्गत्वेन तत्तमन्त्र-  
वर्णान् स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्पृथग्विभज्य क्षित्यादिभूतवर्णान् विभज्य तत्तद्रश्मिपुञ्जसहितान् भावयेत्। तत्तत्फलं  
भवेत्। इति कादिमते रश्मिक्रमः।

सौ मुखी, आयुध-सहित दो सौ हाथों वाली देवो का नये कपड़े पर चित्र बनाकर उसमें वाढ़ित लिखे। दोनों सेनाओं  
के बीच में स्थापित करे। रथ, घोड़े, हाथी के सामने तिरस्करनी विद्यायुक्त वस्त्र को प्रदर्शित करे। वज्रांकित लकड़ी से ढोल-  
पणव-मर्दल बजवाये; श्रृंगी, शङ्ख, काहल आदि बजवाये। इस प्रकार वैरी के सामने जाने से दौङता हुआ वैरी भाग जाता है  
और वैरी की सेना उसका सामना नहीं कर पाती। इस प्रकार ध्यान का कथन पूरा हुआ; अन्य शेष कहता हूँ। सूक्ष्म ध्यान से  
सिद्ध साधकों को फल प्राप्त होता है। अतः सभी अभीष्टों को देने वाले सूक्ष्म ध्यान को कहता हूँ। अनार पुष्ट के केसर के  
समान तेजरूप का स्मरण बुद्धि से करे। उसमें अपनी इच्छा के अनुसार रूप के साध्य का चिन्तन करे। इससे सभी शुभ-  
अशुभ इष्टों की प्राप्ति ध्यान के वैभव से होती है। साधकसिद्ध को इससे तुरन्त सिद्धि मिलती है।

यहाँ पर मूल मन्त्र वर्णों को स्वर-व्यञ्जन रूप से अलग-अलग करके उनके रश्मिवृन्द के साथ उनके रूप से ध्यान  
करना चाहिये। मातृका वर्णों का ध्यान भी इसी प्रकार करना चाहिये। सोलह नित्याओं में ललिता के अंगरूप से पन्द्रह नित्यायें  
हैं। उन पन्द्रह नित्याओं में अंगागि रूप से उनके मन्त्रवर्णों को स्वर-व्यञ्जनरूप में पृथक्-पृथक् करके पृथ्वी आदि के भूत वर्णों  
को विभाजित करके उनकी रश्मिवृन्दसहित भावना करे। तब उसका फल प्राप्त होता है।

#### कालीमते देवतादिस्वरूपज्ञानाय रश्मिकमप्रदर्शनम्

अथ कालीमते रश्मिकममाह उत्तरतत्रे—

मनूनां प्रस्तुतेयोग्या रश्मयो वर्णसंहतेः। देवतामन्त्रयन्नाणां ज्ञायते यैः स्वरूपकम् ॥१॥  
रश्मिकमस्य विज्ञानाच्छिवोऽभूत्रां संशयः। अकारस्य तु विज्ञेयाः पार्थिवाश्च चतुर्दशः ॥२॥  
आप्याः पञ्च मयूखाः स्युत्सैजसा दश चैव हि। वायव्यास्तस्य संप्रोक्ताः षट्युत्तरशतांशवः ॥३॥  
चत्वारो नाभसा उत्सास्तथा आकारके स्मृताः। चतुर्दश ततः पञ्च ततः षट्युत्तरशतम् ॥४॥  
चत्वारश्चैव चत्वारः इवर्णद्वये पृथक्। शतं सप्तत्युत्तरं च ततः पञ्च ततो दश ॥५॥  
चत्वारश्चैव चत्वारः उऊर्वर्णद्वये पृथक्। चतुर्दश ततो भौमाः नवषष्युत्तरं शतम् ॥६॥  
ततो दश च चत्वारो वेदा ऋऋद्वये पृथक्। चतुर्दश ततः पञ्च ततो दश ततो युगाः ॥७॥  
षट्युत्तरशतं चैव ल्लवर्णद्वये पृथक्। अवर्णस्येव संप्रोक्ता एकारस्य च रश्मयः ॥८॥  
इवर्णस्य यथा प्रोक्ता ऐकारस्य तथा स्मृताः। उवर्णस्येव ओकारे ऋकारस्येव औलिपे ॥९॥  
ल्लवर्णस्येव विज्ञेया अंस्वरस्य च रश्मयः। ल्लवर्णस्येव विज्ञेया अःस्वरस्य च रश्मयः ॥१०॥  
पार्थिवा रश्मयो ज्ञेयाः कवर्णस्य चतुर्दशः। आप्याः पञ्चदश प्रोक्तासैजसाश्च ततः परम् ॥११॥  
वायव्या रश्मयः प्रोक्ताः पञ्चत्रिंशच्छतद्वयम्। नाभसाश्चैव चत्वारः खकारस्य चतुर्दशः ॥१२॥  
पार्थिवा जलजाः पञ्च ततश्चैव शतद्वयम्। सैकचत्वारिंशदनु तैजसा युगसंख्यकाः ॥१३॥  
वायव्या नाभसाश्चोक्ताश्चत्वारो वेदसंख्यकाः। गवर्णे पार्थिवाः पञ्चचत्वारिंशच्छतद्वयम् ॥१४॥  
पञ्चाप्यादश चाग्नेया वायव्या वेदसंख्यकाः। नाभसाश्चैव चत्वारो घवर्णे मनुपार्थिवाः ॥१५॥  
आप्याः शतद्वयं चैव प्रोक्ताः षट्त्रिंशदुत्तरम्। तैजसा दश वायव्याश्चत्वारो नाभसाः स्मृताः ॥१६॥  
पञ्चत्रिंशच्छतद्वये च कार्णस्येव चवर्णके। खर्वर्णस्येव छार्णस्य गवर्णस्येव जाणके ॥१७॥  
घवर्णस्येव झार्णस्य डवर्णस्येव जाणके। चवर्णस्येव टार्णस्य छवर्णस्येव ठार्णके ॥१८॥

शतद्वयं पञ्चनवत्युत्तरं डस्य पार्थिवाः। घस्येव ढस्य संप्रोक्ता जार्णस्येव च णाणके ॥१९॥  
 टस्येव तस्य सम्प्रोक्ता मनवस्थस्य पार्थिवाः। पञ्चाप्या एकनवतिद्विशतं चानु वायुजाः ॥२०॥  
 चत्वारो नाभसाश्वैव डस्येव च दवणके। ढस्येव धस्य संप्रोक्ता णार्णस्येव च नाणके ॥२१॥  
 पार्णस्य पार्थिवाः प्रोक्ताश्चतुर्दश जलीयकाः। पञ्चैव तैजसाः प्रोक्ता दशैकनवतिस्तथा ॥२२॥  
 शतद्वयं तु वायव्याश्वत्वारो नाभसाः स्मृताः। थस्येव फस्य संप्रोक्ता रशमयः क्रमशो बुधैः ॥२३॥  
 बार्णस्य पार्थिवाः पञ्चचत्वारिंश्चत्तांश्वः। आप्याः पञ्चदशानेया वायव्या नाभसाः स्मृताः ॥२४॥  
 चत्वारश्च तथा प्रोक्ता भार्णस्य मनुसंख्यकाः। पार्थिवाश्च सषट्रिंशत्यञ्चसंख्याशतानि च ॥२५॥  
 तैजसा दश वायव्याश्वत्वारो नाभसास्तथा। चतुर्दश मकारे तु रशमयः पार्थिवाः स्मृताः ॥२६॥  
 आप्याः पञ्च दशानेया वायव्या वेदसंख्यकाः। पञ्चत्रिंशत्यञ्चशतं नाभसाः संप्रकीर्तिताः ॥२७॥  
 यार्ण चतुर्दश प्रोक्ताः पार्थिवाः पञ्च नीरजाः। तैजसा रशमयः प्रोक्ता वायव्याश्च ततः परम् ॥२८॥  
 पञ्चत्रिंशत्यञ्चशतं चत्वारो नाभसाः स्मृताः। रेफस्य मनुसंख्याकाः पार्थिवाः पञ्चनीरजाः ॥२९॥  
 सैकचत्वारिंशदनु शतपञ्चकैजसाः। वायव्याश्वैकचत्वारश्वत्वारो नाभसाः स्मृताः ॥३०॥  
 वार्णस्येव लवर्णस्य (रशमयः संप्रकीर्तिताः। वार्णस्य रशमयः प्रोक्ताः) पार्थिवाङ्गे चतुर्दश ॥३१॥  
 सषट्रिंशत्यदृष्टतमाप्या वै दश तैजसाः। वायव्याश्वैव चत्वारश्वत्वारो नाभसाः स्मृताः ॥३२॥  
 मनुसंख्याः शकारस्य पार्थिवाः पञ्च नीरजाः। तैजसा दश वायव्याश्वत्वारो नाभसाः स्मृताः ॥३३॥  
 पञ्चत्रिंशत्यच्चाष्टशतं षकारे मनुसंख्यकाः। पार्थिवाः पञ्च चाप्या वै तैजसाः दश कीर्तिताः ॥३४॥  
 पञ्चत्रिंशत्यच्चाष्टशतं वायव्या वेद नाभसाः। वार्णस्येव सकारस्य हकारस्य चतुर्दश ॥३५॥  
 पार्थिवाः पञ्च चाप्या वै तैजसा दश कीर्तिताः। वायव्याश्वैव चत्वारः सपञ्चत्रिंशदुत्तरम् ॥३६॥  
 सप्ततिसहस्रं च नाभसाः परिकीर्तिताः। लकारस्येव लस्यैव क्षकारस्य चतुर्दश ॥३७॥  
 पार्थिवाः पायसाः पञ्च रशमयः परिकीर्तिताः। सैकचत्वारिंशदनु सप्ततिसहस्रकम् ॥३८॥  
 तैजसा वेद वायव्या नाभसाश्च तथा स्मृताः।

**कालीमत में रशिमक्रम**—उत्तर तन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रों के वर्णों में निहित रशिमयों के द्वारा देवता के मन्त्र-यन्त्रों का स्वरूप ज्ञात होता है। रशिमक्रम के ज्ञान से ही शिव हुये हैं, इसमें संशय नहीं है।

अकार एवं आकार की पार्थिव रशिमयाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य एक सौ साठ एवं नाभस चार हैं। इकार एवं ईकार की पार्थिव रशिमयाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस एक सौ छाछठ, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। उकार एवं ऊकार की पार्थिव रशिमयाँ एक सौ सत्तर, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। ऋकार एवं ऋकार की पार्थिव रशिमयाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य दो एवं नाभस एक सौ साठ हैं। एकार की रशिमयाँ अकार के ही समान हैं। ऐकार की रशिमयाँ इकार के समान हैं। ओकार की रशिमयाँ उकार के समान हैं एवं औकार की रशिमयाँ ऋकार के समान हैं। ‘अं’ स्वर की रशिमयाँ लकार के समान एवं ‘अः’ स्वर की रशिमयाँ भी लकार के समान ही हैं।

ककार एवं चकार की पार्थिव रशिमयाँ चौदह, जलीय पन्द्रह, तैजस पन्द्रह, वायव्य दो सौ पैतीस एवं नाभस चार हैं। खकार की पार्थिव रशिमयाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दो सौ इकतालीस, वायव्य दो एवं नाभस चार हैं। गकार की पार्थिव रशिमयाँ दो सौ पैतीस, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। घकार की पार्थिव रशिमयाँ चौदह, जलीय दो सौ छतीस, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार हैं। डकार की पार्थिव रशिमयाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस दो सौ पैतीस हैं। छकार की रशिमयाँ खकार के समान हैं। जकार की गकार के समान हैं। झकार की घकार के समान हैं। तकार की डकार के समान हैं। टकार की ककार के समान एवं ठकार की खकार के समान रशिमयाँ हैं। डकार

की पार्थिव रश्मयाँ दो सौ पञ्चानबे, जलीय पाँच, तैजस दो सौ इकतालीस, वायव्य दो एवं नाभस चार हैं। ढकार एवं नकार की रश्मयाँ क्रमशः धकार एवं डकार के समान हैं। तकार की रश्मयाँ ककार के समान हैं। थकार की चौदह, पार्थिव, पाँच जलीय, दो सौ इक्यानबे तैजस, चार वायव्य एवं चार नाभस रश्मयाँ होती हैं। दकार की डकार के समान, धकार की ढकार के समान एवं नकार की णकार के समान रश्मयाँ होती हैं। पकार की पार्थिव रश्मयाँ चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य दो सौ इक्यानबे एवं नाभस चार हैं। फकार की रश्मयाँ थकार के समान होती हैं। बकार की पार्थिव रश्मयाँ एक सौ पैतीस, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार होती हैं। भकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच सौ पैतीस, तैजस, दस, वायव्य चार एवं नाभस चार रश्मयाँ होती हैं। मकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस पाँच सौ छत्तीस रश्मयाँ होती हैं। यकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य पाँच सौ पैतीस एवं नाभस चार रश्मयाँ होती हैं। रकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस पाँच सौ इकतालीस, वायव्य इकतालीस एवं नाभस चार रश्मयाँ होती हैं। लकार की रश्मयाँ बकार के समान होती हैं। वकार की पार्थिव चौदह, जलीय आठ सौ छत्तीस, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस चार रश्मयाँ होती हैं। शकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस आठ सौ पैतीस रश्मयाँ होती हैं। षकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य आठ सौ पैतीस एवं नाभस चार रश्मयाँ होती हैं। सकार की रश्मयाँ वकार के समान होती हैं। हकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस दस, वायव्य चार एवं नाभस सत्तर हजार पैतीस रश्मयाँ होती हैं। लकार के समान ही लकार की रश्मयाँ होती हैं। झकार की पार्थिव चौदह, जलीय पाँच, तैजस सत्तर हजार इकतालीस, वायव्य चार एवं नाभस चार रश्मयाँ होती हैं। सारिणी रूप में कालीमत में रश्मयों का विवरण इस प्रकार है—

## कालीमते रश्मक्रमः

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
वर्गा:	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ऋ	ल	लृ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अं	क
भौमा:	१४	१४	१४	१४	१७०	१७०	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१७०	१४	१४	१४	१४
आप्या:	५	५	५	५	५	५	१६९	१६९	५	५	५	५	५	१६९	५	५	१५
तैजसा:	१०	१०	१६६	१६६	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१६६	१०	१०	१०	१५
वायव्या:	१६०	१६०	४	४	४	४	४	४	४	२	२	१६०	४	४	४	२	२३५
नाभसा:	४	४	४	४	४	४	४	४	१६०	१६०	४	४	४	४	१६०	१६०	४

संख्या	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४
वर्गा:	ख	ग	घ	ड	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ડ	ঠ	ণ	ত	থ	দ
भौमा:	१४	२४५	१४	१४	१४	१४	२४५	१४	१४	१४	१४	१४	২৯৫	১৪	১৪	১৪	২৯৫
आप्या:	५	५	२३६	५	१५	५	५	२३६	५	१५	५	५	২৩৬	৫	১৫	৫	৫
तैजसा:	२४१	१०	१०	१०	१५	२४१	१०	१०	१०	१५	২৪১	২৪১	১০	১০	১৫	২৯১	২৪১
वायव्या:	২	৪	৪	৪	২৩৫	২	৪	৪	৪	২৩৫	২	২	৪	৪	২৩৫	৪	২
नाभसा:	৪	৪	৪	২৩৫	৪	৪	৪	৪	২৩৫	৪	৪	৪	৪	৪	৪	৪	৪

संख्या	३५	३६	३७	३८	३९	४०	৪১	৪২	৪৩	৪৪	৪৫	৪৬	৪৭	৪৮	৪৯	৫০	৫১
वर्गा:	ধ	ন	প	ফ	ব	ভ	ম	য	র	ল	ব	শ	ষ	স	হ	ঠ	ক্ষ
ভौमा:	১৪	১৪	১৪	১৪	১৪৫	১৪	১৪	১৪	১৪	১৪৫	১৪	১৪	১৪	১৪	১৪	১৪৫	১৪
আপ্যা:	২৩৬	৫	৫	৫	৫	৫	৫	৫	৫	৫	৫	৫	৮৩৬	৫	৫	৮৩৬	৫
তैजसा:	১০	১০	১০	২৯১	১০	১০	১০	১০	৫৪১	১০	১০	১০	১০	১০	১০	১০	৭০০৪১
वायव्या:	৪	৪	২৯১	৪	৪	৪	৪	৪	৫৩৫	৪১	৪	৪	৪	৮৩৫	৪	৪	৪
নाभसा:	৪	৪	৪	৪	৪	৪	৫৩৬	৪	৪	৪	৪	৮৩৫	৪	৪	৭০০৩৫	৪	৪

मूलाधारस्थपदास्थ कर्णिकायां शिवात्मकः ॥३९॥

षटपञ्चाशद्भिरुचैश्च प्रसरद्विर्दलाब्धिके । आवृतः पृथिवीवर्णः स्वाधिष्ठानाह्वयाम्बुजे ॥४०॥  
 कर्णिकायां द्विषष्टिश्च मयूरैः परिवारितः । तेजोभिव्याप्तपत्रैश्चानलवर्णः शिवात्मकः ॥४१॥  
 मणिपूराख्यचक्रस्थकर्णिकायां समावृतः । द्वासप्ततिमयूरैश्चामृताख्यैरमृतार्णकः ॥४२॥  
 अनाहताख्यचक्रस्थकर्णिकायां शिवात्मकः । चतुःपञ्चाशद्भैश्चावृते मारुतवर्णकः ॥४३॥  
 विशुद्धाख्ये महाचक्रे कर्णिकायां समावृतः । द्वासप्ततिमयूरैश्च नाभसैः शिव एव हि ॥४४॥  
 आज्ञाया: कर्णिकायद्ये मनोवर्णः शिवात्मकः । चतुःषष्ठिमयूरैश्चावृतोऽमृतमयः सदा ॥४५॥  
 सहस्रे महापद्मे कर्णिकायां समावृतः । षट्शताधिकसाहस्रमयूरैर्मनिसैः सदा ॥४६॥  
 दलैः सहस्रसंख्याकैः सहस्रकिरणात्मकैः । षट्शतैः स्वाङ्गभूतैश्च विसर्गात्मा शिवात्मकः ॥४७॥  
 विसर्गस्था मयूराख्य षट्चक्रस्थाश्च रशमयः । सोमसूर्याग्निमयाष्टात्रिंशत्संख्याकलात्मभिः ॥४८॥  
 पञ्चब्रह्मात्ममन्त्राणामष्टात्रिंशत्कलात्मभिः । तेजोभिमिश्रिताः सन्तः प्रसर्पन्तः परस्परम् ॥४९॥  
 वाच्यवाचकरूपेण जगत्स्थावरजङ्घमम् । व्याप्त तिष्ठन्ति वै सर्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः ॥५०॥  
 षोडशार्णा महाविद्या चन्द्रमण्डलरूपिणी । षट्त्रिंशत्तत्त्वसम्पूर्णा सुधावृष्टिमयी सदा ॥५१॥  
 पूर्णमण्डलरूपा च सर्वतेजोमयी परा । इति ।

अत्र पाञ्चभौतिकरश्मीनां सहस्रारस्थितमानसरश्मीनां परस्परप्रतिफलनेन पञ्चाशद्भूतवर्णानां यावन्तो रशमयः सम्भूयन्ते, तावन्तः प्रतिवर्णरशमयो द्वात्रिंशद्वात्रिंशमानसरश्मेष्वये अथव द्वात्रिंशद्वात्रिंशन्मानसरशमयः प्रतिवर्ण प्रतिफलन्तीत्यर्थः।

मूलाधार स्थित पद्म की शिवात्मक कर्णिका के प्रसृत दल में छप्पन रशिमयाँ होती हैं। स्वाधिष्ठान पद्म की कर्णिका में बासठ मयूरों से परिवारित तेजव्याप्त दलों में शिवात्मक अग्निबीज वर्ण है। मणिपूर नामक कमल की कर्णिका में बहतर मयूरों से समावृत अमृता नामक अमृत वर्ण हैं। अनाहत चक्र की कर्णिका में शिवात्मक चौकन मयूरों से आवृत वायव्य वर्ण है। विशुद्धि नामक महाचक्र की कर्णिका में बहतर मयूरों से समावृत नाभस रशिमयाँ हैं। आज्ञा चक्र की कर्णिका में मानस शिवात्मक वर्ण चौसठ मयूरों से आवृत अमृतमय है। सहस्रार महापद्म की कर्णिका में एक हजार छः सौ मयूरों से समावृत मानस रशिमयाँ हैं। हजार दलों में हजार किरणात्मक छः सौ स्वाङ्गभूत विसर्गात्मा शिवात्मक का वास है। विसर्ग में छः चक्रों की रशिमयाँ सोम-सूर्याग्निमय अड़तीस कला के रूप में हैं। पञ्च ब्रह्मात्मक मन्त्रों में अड़तीस कलायें तेजमिश्रित परस्पर प्रसरित हैं। वे सभी वाच्य-वाचक रूप में स्थावर जंगम जगत् को व्याप्त करके सभी सृष्टि स्थिति प्रलयकारिणी शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। षोडशाक्षरी विद्या चन्द्रमण्डलरूपिणी है। वे सभी छतीस तत्त्वों से युक्त हैं एवं सदा सुधा की वृष्टि करती रहती हैं। साथ ही सर्वतेजोमयी, परा एवं पूर्णमण्डलरूपा हैं।

यहाँ पर पांचभौतिक रशिमयों एवं सहस्रारस्थित मानस रशिमयों के परस्पर प्रतिफलन से उत्पन्न पदास वर्ण की जितनी रशिमयाँ उत्पन्न होती हैं, उन प्रति वर्णों की बत्तीस-बत्तीस मानस रशिमयों का समूह होता है और बत्तीस-बत्तीस मानस रशिमयाँ प्रतिवर्ण के अनुसार प्रतिफलित होती हैं।

विद्याया: मन्त्रस्य वा छन्दोऽनक्रमः

ईशानवक्त्रसम्भूतकलानां पञ्चकस्य तु । एकैकस्याः कलायास्तु त्रिशतं विंशदुत्तरम् ॥१॥  
 मानसात्मकरश्मीनां क्रमो ज्ञेयो मनीषिभिः । मन्त्रस्य वाथ विद्याया अष्टषष्ठिमितार्णकाः ॥२॥  
 द्वात्रिंशद्भिर्मानसैश्च गुणिताः पूर्णमानसैः । हताश्वेतत्र यल्लब्धं तच्छन्दस्तन्मनोः स्फुटम् ॥३॥  
 शेषाङ्गपूर्णरूपेण महाविद्या भवत्यसौ । न्यूने न्यूना क्रमस्त्वेवं ज्ञातव्यः सिद्धिमिच्छता ॥४॥

अत्र यस्या विद्याया मनस्य वा स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृता वर्णा यावन्तो जायन्ते, तावन्तो द्वात्रिंशदङ्केन गुणनीयाः। प्रत्यर्णं द्वात्रिंशद्वात्रिंशम्भानसरशिपक्रमत्वात्। अथव पूर्णमानसैः षट्शतोत्तरसहस्रसंख्याकैर्भागहरणेन यल्लब्धं तत्तमन्त्रस्य छन्दो ज्ञेयम्। तत्रापि षड्विंशतोऽधिकं लब्धं चेत्प्राप्यते तदपि षड्विंशता भागहरणेन यदुवर्तिं तच्छन्द इति ज्ञेयम्। तथा पूर्णमानसैर्भागहरणाद्यदुवर्तिं, तत् षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याङ्कश्वेत् सा विद्या महाविद्येति ज्ञेयम्। ततोऽधिकं चेत्तदपि ज्ञेयं, च्यूनं चेत्प्राप्यन् ज्ञेयमित्यर्थः।

अत्र विद्यार्णरूपस्य द्वात्रिंशहुणनेन च। हतेन मानसैश्वापि क्वचिन्नोर्वर्तिं यदि ॥१॥  
लब्धं षड्विंशता चैव हरेल्लब्धं भवेच्च तत्। तच्छन्दः ॥२॥

अस्यार्थः—मनस्य विद्याया वा वर्णाः स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक् कृताः द्वात्रिंशता गुणिताः पूर्णमानसैर्हतां श्वेतेषाङ्को नोर्वर्तिस्तदा लब्धमेव षड्विंशता हरेच्छन्दः प्राप्यते, एवं क्रमः सर्वत्र ज्ञेयः।

मन्त्रविद्यार्णरूपं तु द्वात्रिंशहुणितं यदि। पूर्णतां न लभेद्यत्र दशष्टीकृत्य चाहरेत् ॥३॥

अस्यार्थः—मन्त्रविद्याक्षराणि स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृतानि द्वात्रिंशता गुणयेत् तदा पूर्णता षोडशशतानि न जायन्ते चेद् दशगुणितं कृत्वा षोडशशतैर्भागमाहरेत्। अन्यतर्व प्रागवत्।

ईशान मुखसभूत कलापञ्चक में एक-एक कला की तीन सौ बीस-तीन सौ बीस मानस रश्मयाँ होती हैं। मन्त्र अथवा विद्या के अडसठ वर्ण हैं। बत्तीस मानस से गुणित गुणनफल में पूर्ण मानस से भाग देने पर जो शेष बचता है, उससे छन्द और मन्त्र प्रकट होते हैं। पूर्ण शेषांक रूप में यह महाविद्या है। सिद्धि की कामना वाले इनका क्रम न्यून में न्यून जानना चाहिये।

यहाँ पर जिस विद्या या मन्त्र के स्वर-व्यञ्जनों को पृथक् करने पर जितने वर्ण होते हैं, उनमें बत्तीस से गुणा करे। प्रत्येक वर्ण में बत्तीस-बत्तीस मानस रश्मयों से गुणा करे। एक हजार छः सौ पूर्ण मानस संख्या से भाग देने पर जो लब्धि होती है, वह मन्त्र का छन्द होता है। वहाँ पर लब्धि यदि छत्तीस से अधिक होती है तब छत्तीस से भाग देने पर जो लब्धि होती है, वह मन्त्र का छन्द ज्ञेय है। पूर्ण मानस से भाग देने पर जो लब्धि होती है, वह पाँच सौ छिहत्तर होती है। इसे महाविद्या कहते हैं। उससे कुछ अधिक हो तब भी महाविद्या ज्ञेय है। कुछ कम भी महाविद्या मानी जाती है।

विद्या वर्णों के रूप को बत्तीस से गुणा करने और मानसों से भाग देने पर यदि कुछ भी नहीं बचता तो लब्धि में छब्बीस का भाग देने पर छन्द होता है। अर्थात् मन्त्र या विद्या के स्वर-व्यञ्जन को पृथक्-पृथक् करके बत्तीस से गुणा करे और पूर्ण मानस से भाग देने पर शेष कुछ नहीं बचता, तब लब्धि में छब्बीस से भाग देने पर जो शेष बचे, वही छन्द है। यह क्रम सर्वत्र मान्य है।

मन्त्र-विद्या वर्णों को बत्तीस से गुणा करने पर यदि पूर्णता प्राप्त न हो तो दश से भाग देना चाहिये। मन्त्र विद्या अक्षर के स्वर-व्यञ्जन को पृथक्-पृथक् करके बत्तीस से गुना करने पर यदि सोलह सौ नहीं होता तब दश से गुना करके सोलह से भाग देना चाहिये।

### षोडशीविद्याया रश्मवृन्दसङ्कलनं छन्दोज्ञानक्रमश्च

श्रीविद्यायाश्च षोडश्याः सहस्राणि च विंशतिः। षष्ठ्युत्तरं च त्रिशतं भवेयुर्नभसांशवः ॥१॥

पञ्चोत्तरं च नवतिर्द्विसहस्रं शताष्टकम्। पार्थिवा रश्मयश्चाथ षट्सहस्राणि चैव हि ॥२॥

अष्टौ शतान्येकशिष्टस्तैजसा रश्मयो हृथ। पञ्चसप्तत्युत्तरशतं सहस्रं वायुरशमयः ॥३॥

अष्टादशोत्तरं पञ्चशतं वेदसहस्रकम्। मयूखा ह्यमृतात्मानो वक्ष्ये सङ्कीर्णरश्मकम् ॥४॥

त्रिशतं च चतुःषष्ठिर्विद्यद्वैषु पार्थिवाः। षष्ठ्युत्तरं शतं चाप्यास्तावन्तस्तैजसाः स्मृताः ॥५॥

शतं च चत्वारिंशत्यच्च वायव्याः संप्रकीर्तिताः। चतुर्स्त्रिंशद्वेदशतं पार्थिवा ह्यनलेषु च ॥६॥

शतं च पञ्चपञ्चाशदाप्याश्च शतमेव च । चतुर्विशतिसंख्याका वायव्याः संप्रकीर्तिः ॥७॥  
 तावन्तो नाभसाः प्रोक्तास्तो भूवर्णसञ्चये । त्रिंशदाप्याश्च चानेया अशीतिश्चतुरुत्तरा ॥८॥  
 वायव्याश्च चतुर्विशतावन्तो नाभसाः स्मृताः । सप्तत्युत्साः समुद्दिष्टाः वायुवर्णेषु पार्थिवाः ॥९॥  
 पञ्चविंशतिश्चाप्यास्तु पञ्चाशतैजसाः स्मृताः । नाभसा विंशतिः प्रोक्ताश्चाप्यवर्णेषु पार्थिवाः ॥१०॥  
 अष्टाविंशत्युत्तरं च शतसप्तकमेव च । तैजसाः सप्ततिंश्या अष्टाविंशतिवायुजाः ॥११॥  
 तावन्तो नाभसा ज्ञेयाः सङ्कीर्णा रशमयस्त्वमेव । अन्ये तद्वृत्वर्णस्य तत्तद्वृतांशवो निजाः ॥१२॥ इति।

अन्ये भूतांशवः सङ्कीर्णाः मानसा अपि तत्रैव ज्ञेयाः । ऋधार्णायकमे—मानसाः सहजा, अन्ये सङ्कीर्णा इति केचित् । अत्र यथागुरुपदेशं बोद्धव्यम्।

श्रीविद्या षोडशी में एक हजार तीन सौ छबीस नाभस रशमयाँ होती हैं। दो हजार आठ सौ पच्चानबे पार्थिव रशमयाँ होती हैं। छः हजार आठ सौ इकसठ तैजस रशमयाँ होती हैं। एक हजार एक सौ पचहत्तर वायव्य रशमयाँ होती हैं। चार हजार पाँच सौ अद्वारह रशमयाँ जलीय होती हैं। नाभस्य वर्णों में तीन सौ चौसठ पार्थिव रशमयाँ रहती हैं। एक सौ आठ जलीय रशमयाँ और इतनी ही तैजस रशमयाँ होती हैं। एक सौ चालीस वायव्य रशमयाँ होती हैं। चार सौ चौंतीस पार्थिव रशमयाँ होती हैं। अग्निवर्णों में पाँच सौ पचास जलीय रशमयाँ होती हैं। चौबीस वायव्य रशमयाँ होती हैं। पार्थिव वर्णों की इतनी ही नाभस रशमयाँ होती हैं। तीस जलीय एवं चौरासी तैजस रशमयाँ तथा वायव्य और नाभस चौबीस-चौबीस होती हैं। सतर रशमयाँ वायु वर्णों में पार्थिव होती हैं। पच्चास जलीय एवं पचास तैजस होती हैं। बीस नाभस रशमयाँ होती हैं। जलीय वर्णों में पार्थिव रशमयाँ सात सौ अद्वार्द्वास एवं तैजस एक सौ सात होती हैं। अद्वार्द्वास वायव्य और इतनी ही नाभस रशमयाँ होती हैं। ये सङ्कीर्ण रशमयाँ हैं।

**पराप्रासादमन्त्रस्य पञ्चोत्तरसहस्रकम्** । आप्यास्तथा पञ्चनवत्युत्तरं च शताष्टकम् ॥१॥  
 सहस्रं नाभसाः प्रोक्ताः सङ्कीर्णाः पार्थिवाः स्मृताः । षट्पञ्चाशत्समाख्याताश्शत्वारिंशत्त्वं तैजसाः ॥२॥  
 वायव्याः षोडश प्रोक्ता नाभसाः षोडशैव हि । आप्य दश समाख्याता मानसाः प्राग्वदेव हि ॥३॥ इति।  
 प्रत्यर्णं द्वात्रिंशत्कमेणाष्टाविंशत्युत्तरशतं रशमय इत्यर्थः।

**पराप्रासाददवर्णांश्यं** गुण्यात्तमानसांशुभिः । षट्विंशता हरेच्छेषं लब्धाङ्गेन पुनर्हरेत् ॥१॥  
 तल्लब्धं तस्य मन्त्रस्य छन्दो ज्ञेयं मनीषिभिः । इति।

**पराप्रासादमन्त्रस्य वर्णाः** स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक् कृता द्वात्रिंशदिर्गुणिताः षट्विंशता हताः शेषं लब्धाङ्गेन हृतं तच्छेषं तल्लब्धाङ्गेन हरेत्तल्लब्धं तच्छन्दः इत्यर्थः।

पराप्रासाद मन्त्र में एक हजार पाँच जलीय रशमयाँ होती हैं। एक हजार आठ सौ पच्चानबे नाभस रशमयाँ होती हैं। छप्पन पार्थिव एवं चालीस तैजस रशमयाँ होती हैं। वायव्य सोलह और नाभस भी सोलह होती हैं। आप्य रशमयाँ दश होती हैं। मानस पूर्ववत् होती है। प्रत्येक वर्ण के बत्तीस क्रम से एक सौ अद्वार्द्वास रशमयाँ होती हैं। पराप्रासाद वर्णों के समूह में उसकी मानस रशमयों से गुना करके छबीस से भाग देने पर शेष में लब्धांक से पुनः भाग देवे। उससे प्राप्त अंक को छन्द कहते हैं। आशय यह है कि पराप्रासाद मन्त्रवर्णों के स्वर-व्यञ्जन को अलग-अलग करके बत्तीस से गुणा करके छबीस से भाग देने पर लब्धि मन्त्र का छन्द होता है।

#### कालीविद्यायाश्छन्दोज्ञानविधिः

तथा—

कालिकाया महाविद्यावर्णा द्वात्रिंशता हताः । हताश्च मानसैः पूर्णैः शेषं षट्विंशता हरेत् ॥१॥  
 शेषं लब्धं तु संयोज्य पुनः षट्विंशता हरेत् । शेषं छन्दस्तु विज्ञेयं सम्यक् तत्त्वविशारदैः ॥२॥ इति।

अस्यार्थः—विद्याया वर्णाः स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक् कृताः द्वाविंशद्विर्गुणिताः पूर्णमानसांशुभिर्हृताः शेषं षड्विंशता हरेत् तत्त्वे तत्कलं संयोज्य पुनः षड्विंशता हरेत् तत्त्वे छन्दो ज्ञेयमिति।

रससंख्याः क्षितेर्भागा द्वौ भागावमृतस्य च | द्वाविंशत्यग्निभागाश्च वायुभागाश्चतुर्दशः ॥१॥

पञ्चविंशतिभागाश्च व्योमश्च परिकीर्तिताः | अष्टोत्तरं च द्विशतं सहस्रद्वयमेव च ॥२॥

मानसा रशमयो ज्ञेया भूतभागोद्वांशवः | प्रागुक्तक्रमतो ज्ञेया रशिमक्रम उदाहृतः ॥३॥ इति।

कालिका महाविद्या वर्णों में बत्तीस से गुणा करे। पूर्ण मानस से भाग दे। शेष को छब्बीस से भाग दे। लब्ध शेष को जोड़कर फिर छब्बीस से भाग दे। शेष को तत्त्वविशारद छन्द मानते हैं अर्थात् विद्यावर्णों के स्वर-व्यञ्जन को अलग-अलग करके बत्तीस से गुणा करे, उसमें पूर्ण मानस से भाग दे। शेष में छब्बीस से भाग दे। उस शेष में उसके फल को जोड़ने पुनः छब्बीस से भाग देने पर छन्द होता है।

छः भाग पृथिवी के, दो भाग जल के, बाईस भाग अग्नि के, वायु के चौदह भाग एवं आकाश के पच्चीस भाग होते हैं। दो हजार दो सौ आठ मानस रशिमयाँ होती हैं। भूतभाग से उत्पन्न रशमयाँ पूर्वोक्त क्रम से ज्ञेय हैं।

#### कादिमते कामेश्वरीनित्याप्रयोगः

अथ कादिमते कामेश्वर्यादिनित्यानां प्रयोगविधिर्लिख्यते। हींकलींऐंब्लूंस्ट्रीं इति पञ्चकामा भवन्ति। तत्त्वराजे

(प० ७ श्लोक ३९)—

एषां यन्त्राणि सर्वाणि त्रैलोक्यक्षेभणानि च । तानि क्रमेण कथयाम्याकर्ण्य समाहिता ॥१॥

तेषु पञ्चसु बीजेषु पुनरुक्तविवर्जितैः । योजयेदष्टभिस्तैस्तैः स्वरान् षोडश मायया ॥२॥

आष्टाविंशतिसंयुक्तं शतं तेन भवन्ति वै । तैर्यन्त्राणि विधेयानि पञ्चानां क्रमतः शिवे ॥३॥ इति।

अस्यार्थः—प्रोक्तपञ्चसु बीजेषु द्वितीयबीजस्य जठरे प्रथमबीजं ॥१॥ तृतीयबीजजठरे द्वितीयं बीजं ॥२॥ चतुर्थबीजजठरे तृतीयं बीजं ॥३॥ पञ्चमबीजजठरे चतुर्थं बीजं ॥४॥ चतुर्थबीजजठरे पञ्चमं बीजं ॥५॥ तृतीयबीजजठरे चतुर्थं बीजं ॥६॥ द्वितीयबीजजठरे तृतीयं बीजं ॥७॥ प्रथमबीजजठरे द्वितीयं बीजं ॥८॥ एवमष्टौ बीजानि पुनरुक्तवर्जितानि भवन्ति। एतानि प्रत्येकं षोडशस्वरयुक्तानि कर्तव्यानि, तदा संख्या १२८ बीजानि भवन्ति। एतैर्यन्त्राणि विधेयानीत्यर्थः।

कादिमत में कामेश्वरी आदि नित्याओं की प्रयोगविधि—हीं कलीं ऐं ब्लूं स्ट्रीं—ये पाँच कामबीज हैं। तत्त्वराज में कहा गया है कि इनके सभी यन्त्र त्रैलोक्यमें क्षेभ उत्पन्न करने वाले होते हैं। उन्हें क्रम से कहता हूँ ध्यान से सुनो। उन पाँच बीजों में पुनरुक्ति न करते हुये उनमें आठ स्वरों को जोड़कर उन्हें सोलह माया से जोड़े। इससे वे एक सौ अट्ठार्हस होते हैं। उससे पाँच-पाँच यन्त्र बनाना चाहिये अर्थात् प्रोक्त पाँचों बीजों में से दूसरी बीज के मध्य में प्रथम बीज जोड़े। तृतीय बीज के मध्य में द्वितीय बीज जोड़े। चतुर्थ बीज के मध्य में तृतीय बीज जोड़े। पञ्चम बीज के उदर में चतुर्थं बीज जोड़े। चतुर्थं बीज के उदर में पञ्चम बीज जोड़े। तृतीय बीज के उदर में चतुर्थं बीज जोड़े। द्वितीय बीज के उदर में तृतीय बीज जोड़े और प्रथम बीज के जठर में द्वितीय बीज जोड़े। इस प्रकार आठों बीज पुनरुक्ति से रहित होते हैं। प्रत्येक को सोलह स्वरों से युक्त करे। तब एक सौ अट्ठार्हस बीज बनते हैं। इनसे यन्त्र का निर्माण करना चाहिये।

#### यन्त्ररचनाप्रकारः

यन्त्ररचनाप्रकारमाह—

वृत्तत्रयस्थं षट्कोणं कृत्वा मध्ये स्वमक्षरम् । लिखेत् साध्याख्ययोपेतं षट्कोणेषु च तन्युनः ॥१॥

विभज्य बिन्दुमायाभ्यामध ऊर्ध्वं लिखेत्क्लमात् । वृत्तान्तरालयोर्बाह्ये चतुःषष्ठ्या द्विरालिखेत् ॥२॥

एवं यन्त्राणि पञ्च स्युः पञ्चानां क्रमतः शिवे । इति।

अस्यार्थः—प्रथमतः षट्कोणं कृत्वा तद्विर्वत्तत्रयं विधाय मध्ये साध्यनामसहितं प्रकृतिस्थपञ्चकमेषु

प्रथमं बीजं विलिख्य षट्सु कोणेषु तदेव बीजं विलिख्य प्रोक्ताश्विंशत्युत्तरशतं बीजानि चतुःषष्ठ्या द्विधा विभज्य वृत्तत्रयान्तरालद्वये भ्यन्तरान्तराले बिन्दुयुक्तानि प्रथमचतुःषष्ठ्यबीजानि पड्कृत्याकारेण विलिख्य, तद्वाह्यान्तराले द्वितीयचतुःषष्ठ्यबीजानि विसर्गयुक्तानि लिखेत्, इदं प्रथमं यन्त्रम्। द्वितीयबीजं मध्ये साध्यसहितं विलिख्य षट्कोणेषु द्वितीयमेव बीजं विलिख्य बहिरन्तरालद्वये प्राग्वद्विलिखेदिति द्वितीययन्त्रम्। एवं तृतीयबीजेन तृतीयं यन्त्रम् च चतुर्थबीजेन चतुर्थं यन्त्रम्। पञ्चमबीजेन पञ्चमं यन्त्रम्। इति पञ्च यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः। अथ पञ्चबीजैरेकमेव यन्त्रं लेखनीयमित्याह—

पञ्चभिस्त्वेकमस्त्यन्यद्यन्तं सुमहदद्वृतम्। द्वितीयजठरे त्वाद्यं सनामाभिलिखेत्यर्थः ॥१॥

बहिसृतीयरूपेण षट्कोणेन प्रवेष्येत्। चतुर्थं विलिखेत्कोणेषु षट्स्वपि पार्वति ॥२॥

वेष्येत्पञ्चमैव तद्यन्तं सर्वमोहनम्। इति।

**अस्यार्थः**—द्वितीयबीजस्य कल्पिकारस्य जठरे प्रथमबीजं हीमिति बीजं साध्यनामगर्भं विलिख्य, तद्वाहिसृती-यबीजेन ऐकारेण अधरोत्तरयोगेन षट्कोणं कुर्यात्। अत्र ऐकारस्य त्रिकोणरूपत्वाद्विजद्वयरूपत्रिकोणद्वयेन षट्कोणेनावेष्य षट्कोणेषु चतुर्थबीजं ब्लूकारं विलिख्य पञ्चमबीजेन स्त्रीकारेण षट्कोणाद्विहृवेष्येत्, यथा स्त्रीकारगर्भं सर्वं भाति तथा कुर्यादित्यर्थः। एवं षट्चक्रकाणि जातानि।

यन्त्ररचना का प्रकार—षट्कोण बनाकर उसके बाहर तीन वृत्त बनावे। मध्य में साध्य नाम सहित पाँच कामबीजों में से पहला 'हीं' लिखे। षट्कोण के कोनों में 'हीं' लिखे। प्रोक्त एक सौ अद्वाईस बीजों को चौंसठ-चौंसठ दो भागों में विभाजित करके तीन वृत्तों के दो अन्तरालों में सानुस्वार प्रथम चौंसठ बीजों को पंक्ति के आकार में लिखे। उसके बाहर के अन्तराल में द्वितीय चौंसठ बीजों को विसर्गसहित लिखने से प्रथम यन्त्र बनता है। द्वितीय बीज कल्पीं को साध्य नामसहित मध्य में लिखे। षट्कोण के कोनों में केवल कल्पी लिखे। इसके बाहर दोनों अन्तरालों में पूर्ववत् एक सौ अद्वाईस बीजों को लिखने से द्वितीय यन्त्र बनता है। इसी प्रकार तृतीय बीज से तृतीय यन्त्र, चतुर्थ बीज से चतुर्थ यन्त्र और पञ्चम बीज से पञ्चम यन्त्र बनाने से कुल पाँच यन्त्र बनते हैं।

पाँचों बीजों से एक ही यन्त्रलेखन—द्वितीय बीज कल्पी के जठर में प्रथम बीज हीं को साध्य नामसहित लिखे। तृतीय बीज ऐं को षट्कोणों के कोनों में अधरोत्तर योग से लिखे। ऐकार के त्रिकोण रूप होने के कारण बीज द्वय रूप त्रिकोण द्वय को त्रिकोण से वेष्टित करके छः कोनों में चतुर्थ बीज ब्लू लिखे। पञ्चम बीज स्त्री से षट्कोण को बाहर से वेष्टित करे। इस प्रकार पञ्चम बीज स्त्री के गर्भ में सभी बीज हो जाते हैं। इस प्रकार कुल छः यन्त्र बनते हैं।

#### समययन्त्रयोरुद्धारक्रमः

अथ समययन्त्रयोरुद्धारकममाह—

तस्यापि परतो बाह्ये तैरावेष्यं पुरोदितैः। यन्त्रान्तरं तु जनयेद् बहिर्मातृकयापि च ॥१॥ इति।

प्रोक्तस्त्वद्यन्तस्य बहिर्वृत्तत्रयं विधाय प्राग्वत् १२८ बीजैश्चतुःषष्ठ्या द्विरालिखेत् सप्तमं यन्त्रं भवति। एतस्यैव षष्ठ्यन्तस्य बहिर्वृत्तत्रयान्तरालद्वये प्राग्वद् बिन्दुयुक्तां विसर्गयुक्तां च लिखेत्, इदमष्टमं यन्त्रं भवतीति।

यन्त्राण्यष्टौ भवन्त्वयेवं पञ्चकामात्मकानि वै। तैरसाध्यं जगत्स्वेषु किञ्चित्तु न कदाचन ॥१॥

मनुजं मनुजेशं वा महिलां वा मदाबिलाम्। अष्टसूक्तेषु मध्यस्थं भावयेत् स्वेन तेजसा ॥२॥

एकोभूतं जपेदेतान्यक्षराण्यपि पञ्च वै। तेन ते वशगाः क्षिप्रं यावज्जीवं न संशयः ॥३॥

तेष्वष्टमस्य मध्यस्थमात्मसाध्यं जपारुणम्। तन्मन्त्रान्प्रकाशैश्च तथारुणतरैर्वृतम् ॥४॥

भावयन्नात्मना ग्रस्तं जपेत्ताराक्षराण्यपि। तेन ते वशगाः क्षिप्रं दद्युः प्राणान्यनानि च ॥५॥

तस्य षष्ठस्य मध्यस्थबीजं मन्त्रेण वेष्येत्। प्राग्वन्निजसुषुमान्तर्भावयेद्योनिमुद्रया ॥६॥

एतदृष्टकमध्यस्थं कुम्भं कृत्वा यथाविधि। तेनाभिषिञ्चेद् दौर्भाग्यरोगदारिक्रममुक्तये ॥७॥

कुचन्दनैर्वा सिन्दूरैर्गैरिकैरदरदैस्तु वा। कृत्वा चक्राष्टं भूमौ फलकायां शिलासु च ॥८॥  
 मध्ये विद्यावृतं कृत्वा तत्रावाहाभिपूज्य ताम्। कामेश्वरीं तदग्रस्थो जपेलक्ष्मं पयोव्रतः ॥९॥  
 तेनास्य पूर्वजन्मान्तर्दुष्कृतान्पयान्ति वै। अस्मिञ्जन्मनि सल्लक्ष्मीमवाप्य सुखमेधते ॥१०॥  
 नरं नारीं नृपं वान्यं नगरं वाथ पत्तनम्। देशं जनपदं विश्वं तन्मध्ये प्रविलिङ्ग्य तत् ॥११॥  
 पूजयेदरुणैः पुष्ट्यैर्गत्यैः काश्मीरसम्भवैः। नैवेद्यैः कदलीदुधशर्करापायसादिभिः ॥१२॥  
 मण्डलं वा तदर्थं वा सप्तवासरमेव वा। कन्द्रपरमसामाग्यो जायते नियतं नरः ॥१३॥  
 सुवणादिषु संलिङ्ग्य धारणाद्वरणीतले। लक्ष्मीकान्तिधनारोग्यैरायुः पूर्णमवाप्नुयात् ॥१४॥  
 अनावृत्तेस्तु विद्यार्णैः षोडशस्वरयोजनात्। द्वानवत्या शतं वर्णा जायन्ते मन्त्रसंभवाः ॥१५॥

**अस्यार्थः—**कामेश्वर्या मन्त्रस्यैकादशाक्षरस्यानावृत्ताक्षराणि ‘असकलहरनतयमदव’ इति द्वादशाक्षराणि भवन्ति। ते षोडशस्वरयोगेनाङ्गतः १९२ वर्णा भवन्तीति।

**समय यन्त्रोद्धार क्रम—**उपर्युक्त छठे यन्त्र के बाहर पूर्ववत् तीन वृत्त बनाकर उनके अन्तरालों में एक सौ अड्डाईस बीजों के चौसठ-चौसठ भागों को लिखने से सातवाँ यन्त्र बनता है। इस छठे यन्त्र के बाहर तीन वृत्तों के दो अन्तरालों में पूर्ववत् बिन्दुयुक्त और विसर्णयुक्त चौसठ बीजों को लिखने से अष्टम यन्त्र बनता है।

इस प्रकार कुल आठ पञ्च कामात्मक यन्त्र बनते हैं। इन यन्त्रों से संसार में कुछ भी असाध्य नहीं रहता। साधारण मनुष्य या राजा या स्त्री या मदर्गर्वित किसी के भी नाम को उक्त आठ यन्त्रों के मध्य में लिखकर उन मन्त्रवर्णों के अड्डहुल जैसे लाल प्रकाश से आवृत अपने को मानकर उन पाँच बीजों के साथ नामाक्षरों के जप से साध्य आजीवन वश में हो जाता है। उन आठों के मध्यस्थ अपने साध्य को अड्डहुल के वर्ण का उन वर्णों के लाल प्रकाश से आवृत समझे। अपने को भी लाल प्रकाश से आवृत्त समझकर उन अक्षरों का जप करे तो साध्य वश में होकर अपना प्राण और धन भी दे देते हैं। उक्त छठे यन्त्र के मध्य बीज को मन्त्र से वेष्टित करे। पूर्ववत् सुषुप्ता में योनि मुद्रा से भावना करे। तब साध्य वश में होता है। इन आठ यन्त्रों में यथाविधि कलश स्थापित करके उनके जल से अभिषेक करने पर दुर्भाग्य, रोग, दारिद्र्य से छुटकारा प्राप्त होता है। भूमि या पत्थर पर आठों यन्त्रों को लाल चन्दन या सिन्दूर या गेहूं या दरद से लिखकर मध्य को विद्या से वेष्टित करे। उसमें कामेश्वरी का आवाहन करके पूजा करे। दुर्घाहार पर रुक्षकर उसके सामने एक लाख जप करे। इससे साधक के पूर्वजन्मान्तरों के पापों का नाश होता है और इस जन्म में लक्ष्मीवान होकर वह सुख भोगता है। उसके मध्य में नर, नारी, नृप या अन्य, नगर या पत्तन, देश, जनपद, विश्व को लिखकर लाल फूल गन्ध-केसर से पूजा करे। नैवेद्य में केला दूध शक्वर पायस आदि अर्पण करे। ऐसा चालीस दिनों तक या बीस दिनों तक या सात दिनों तक करने से मनुष्य कामदेव के समान सौभाग्यशाली हो जाता है। सोने आदि पर लिखकर उसे धारण करने पर लक्ष्मी, कान्ति, धन, आरोग्य और पूर्णायु प्राप्त करता है। विद्या वर्णों के स्वर-व्यञ्जनों को पृथक् करके सोलह स्वरों के साथ जोड़ने पर मन्त्र के वर्णों की संख्या एक सौ बानवे होती है अर्थात् कामेश्वरी मन्त्र के ग्योरह अक्षरों के अनावृत अक्षर ‘असकलहरनतयमदव’—ये बारह होते हैं। इनका सोलह स्वर के योग से  $16 \times 12 = 192$  होते वर्ण हैं।

स्वराणां सर्वमन्त्रेषु योजनं केन हेतुना। क्रियते परमेशान तन्मे कथय सांप्रतम् ॥१॥  
 स्वराः षोडश देवेशि व्यञ्जनानि तथा पुनः। पञ्चत्रिंशत् समाड्यातं तयोरन्योन्यसङ्गतैः ॥२॥  
 भारत्या देहभूतैस्तैर्व्यञ्जनैः स्वरयोजनम्। तत्राणयोजनं विद्धि रहस्यं परमेश्वरि ॥३॥  
 भारत्या वर्णरूपाया हसौ नेत्रे समीरिते। प्राणाः स्वराः समाख्याता बिन्दुसर्गाँ तु चेतना ॥४॥  
 अन्यान्यव्यवहानि स्युरन्यानि परमेश्वरि। तेन तद्युक्तिं वर्णाः प्रसीदन्ति न चान्यथा ॥५॥  
 बिन्दुसर्गाँ हसौ तुर्यस्वरश्वेति च पञ्चमम्। भारत्या मातृकादेहे विद्धि चैतन्यजृम्भणम् ॥६॥

तेन तैर्हीनस्तु मन्त्रविद्यास्तथापरे । निष्ठाणदेहवक्तार्यकरणोच्चक्षमा: स्मृता: ॥७॥  
 तेन सर्वत्र तु मया स्वरयोग उदीर्यते । ये ये मन्त्राः प्रोक्तवर्णविहीनास्तैश्च योजयेत् ॥८॥  
 तेन ते बलवन्तः स्युः कार्येषु च फलान्विताः । तस्मात्सर्वत्र संयोगात्स्वरैः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥९॥  
 एवं तैरेव जायन्ते यन्त्राणि सबलानि वै । द्वात्रिंशद्विनियोगांश्च वक्ष्ये तेषामनुक्रमात् ॥१०॥  
 वृत्तद्वयातः षट्कोणं कृत्वा मध्ये निजेष्पितम् । मायागर्भ समालिख्य वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥११॥ इति।

**अस्यार्थः**—प्रथमतः षट्कोणं विलिख्य तद्विर्वृत्तद्वयं विधाय मध्ये साध्यनामगर्भ हींकारं विलिख्य, षट्सु कोणेषु द्वानवत्युत्तरशतवर्णेषु प्रथमतः षट्क्षराणि विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकाक्षरैर्वैष्टयेदिति प्रथमं यन्त्रं भवति। द्वितीययन्त्रस्य षट्सु कोणेषु प्रोक्तवर्णसमुदायस्य प्रथमतः षड्वर्णान् विहाय सप्तमाक्षरतः षड्वर्णान् विलिखेदिति द्वितीयं यन्त्रं भवति। एवं तृतीययन्त्रादिषु च क्रमेण पुनरुक्तवर्जिताः षट्षड्वर्णा लेखनीयाः। अन्यत्समानम्। एवं यन्त्राणि ३२ जायन्ते।

पर्वती ने पूछा—हे परमेशान! सभी मन्त्रों में स्वरों का योजन किसलिये किया जाता है, उसे आप मुझसे कहिये। महादेव ने कहा कि हे देवेश! सोलह स्वरों का योजन पैतीस व्यञ्जनों के साथ इसलिये किया जाता है कि ये सरस्वती के देह से सम्भूत हैं। इससे प्राणयोजन होता है। वर्णरूपा भारती का नेत्र हसौं है। स्वर प्राण है एवं बिन्दु-विसर्ग चेतना हैं। अन्य वर्ण-उनके अवयव हैं। इसलिये इस युक्ति से वर्ण प्रसन्न होते हैं; अन्यथा नहीं। बिन्दु-विसर्ग-ह-सौ-ई—ये पाँच वर्ण भारती के मातृका देह में चैतन्यजृष्णम् करते हैं। उनसे रहित मन्त्र, विद्या और अन्य सभी निष्ठाण देह के समान होकर कार्य करने में असमर्थ होते हैं। इसी प्रलिये सर्वत्र मैं स्वरयोग को कहता हूँ। जो मन्त्र उक्त वर्ण से रहित है, उनमें इनका योजन करना चाहिये। इससे वे बलवान् होते हैं और कार्य का फल देने वाले होते हैं। इसलिये सर्वत्र स्वरसंयोजन से वे सर्वार्थसिद्धि देने वाले होते हैं। इसी प्रकार उनके योजन से यन्त्र सबल होते हैं। उनके बत्तीस व्यनियोगों को अनुक्रम से कहता हूँ। दो वृत्तों के अन्दर षट्कोण बनाकर मध्य में इच्छित कार्य को हीं के गर्भ में लिखकर मातृकाक्षरों से वेष्टित करे। अर्थात् पहले षट्कोण बनाकर उसके बाहर दो वृत्त बनाये। मध्य में साध्यगर्भित हींकार लिखे। एक सौ बानवे अक्षरों में पहले छः को छः कोनों में लिखे। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृकाक्षरों को लिखकर वेष्टित करे। द्वितीय यन्त्र में वर्णों के प्रथम छः अक्षरों को छः कोनों में लिखे। छः वर्णों को छोड़कर सप्तम वर्ण से बाहरवें वर्ण तक लिखने से दूसरा यन्त्र बनता है। इसी प्रकार तृतीय चतुर्थादि यन्त्र पुनरुक्तिरहित छः वर्णों से लिखना चाहिये। इस प्रकार कुल बत्तीस-बत्तीस यन्त्र बनते हैं।

### यन्त्राणां फलानि

#### तेषां फलान्याह—

प्रथमे कनकावादिर्द्वितीये भूषणोदयः । तृतीये कन्यकासिद्धिश्चतुर्थे भूप्रतिग्रहः ॥१॥  
 पञ्चमे वाहनावाप्तिः षष्ठे स्त्रीवश्यमीरितम् । सप्तमे भवनावाप्तिरष्टमे धेनुसङ्घमः ॥२॥  
 नवमे वश्येद्द्वयं दशमे वारणं हयम् । एकादशेन विजयी नरः सप्तसीमनि ॥३॥  
 वादेषु व्यवहारेषु द्यूतेषु द्विविधेष्वपि । द्वादशे चेष्पितावाप्तिः परेणारिविनाशनम् ॥४॥  
 गजवाजिखरोष्ट्राणां नरगोमृगपक्षिणाम् । भुजङ्गमेषमहिषवाजिनां त्वाशु नाशनम् ॥५॥  
 तत्तत्त्वचिं च तद्रक्तलिखितं तत्र तत्र च । स्थापितं मण्डलान्मासासप्तरात्रादथापि वा ॥६॥  
 चतुर्दशेन वृष्टिः स्यात्परेण स्तम्भनं रिपोः । क्रोधवैरिसमुद्योगगमनादेरपि ध्रुवम् ॥७॥  
 षोडशेन धृतेनासौ भूताद्यैर्नैव बाध्यते । ततः परेण यन्त्रेण खातेन धरणीतले ॥८॥  
 रक्षा भवति सर्वत्र प्राणिनां जगति ध्रुवम् । अनन्तरानन्तराभ्यां खननात्कलकद्वये ॥९॥  
 शस्यानां बहुभिः क्लेशैर्नाशः स्याद्दुरुहामपि । देशानामपि वान्योन्यकलहात्पीडनं भवेत् ॥१०॥

अनन्तरेण यन्नेण विरोधो भूभुजां भवेत् । राज्यसन्धितले तस्य खननेनाल्पकालतः ॥११॥  
 एकविंशेन यन्नेण रोगार्ता वैरिणो ध्रुवम् । द्वाविंशेन गवां रोगस्त्रयोविशेन दन्तिनाम् ॥१२॥  
 चतुर्विंशेन वाहानां पञ्चविंशेन भूभुजाम् । षड्विंशेन प्रधानानां रोगावाप्तिर्दृढं भवेत् ॥१३॥  
 सप्तविंशेन तेषां तु प्रोक्तानां कल्पेशनाशनम् । अष्टाविंशेन यन्नेण कृत्या प्रतिनिवर्तते ॥१४॥  
 धारणद्वूषु खननादृक्षाग्रादिषु बन्धनात् । तडगाकूपवायादिष्वर्णात्याति ता ध्रुवम् ॥१५॥  
 ततः परेण यन्नेण वाहानां दन्तिनामपि । रक्षा भवति तद्वूषु खननाद्वारणादपि ॥१६॥  
 द्वाविंशेनाम्बुधौ पोता न क्लिशयन्ति कदाचन । परं प्रयान्ति चाक्लेशाद्विचित्रा यन्त्रशक्तयः ॥१७॥  
 षोडशानां तु नित्यानां प्रत्येकं तिथिषु क्रमात् । तत्तिथौ तद्वज्ञनं जपहोमादिना चरेत् ॥१८॥  
 घृतं च शर्करा दुग्धमपूर्णं कदलीफलम् । क्षीद्रं गुडं नालिकेरं फलं लाजा तिलं दधि ॥२०॥  
 पृथुकं चणकं मुद्रं पायसं च निवेदयेत् । प्रतिपत्तिथिमारभ्य क्रमात् पञ्चदशस्वपि ॥२१॥  
 कामेश्वर्यादिशक्तीनां सर्वासामपि चोदितम् । आद्याया ललितायास्तु सर्वाण्येतानि सर्वदा ॥२२॥  
 निवेदयेच्च जुहुयाद्वह्नौ दद्यान्त्रणामपि । विद्याभक्तिमतां नित्यमभीष्ठावाप्तयेऽनिशम् ॥२३॥  
 तत्तद्विद्याक्षरप्रोक्तपौष्टि तत्प्रमाणतः । संपित्य गुलिकीकृत्य ताभिः सर्वं च साधयेत् ॥२४॥  
 अर्ध्यन्तिर्तर्पणं नित्यं स्नानपानानुयोजनम् । पाटीरसंयुतं भाले धारणं सर्वसिद्धिकृत् ॥२५॥  
 राज्ञां विशेषतो रक्षां कुर्यादैतस्तु नित्यशः । स्नाने पाने धारणे च गुलिकायोजनेन वै ॥२६॥  
 रोगापमृत्युकृत्यादिदोषा ग्रहसमुद्भवाः । न बाधन्ते ततो नित्यमर्चयेत्स्वगृहे क्वचित् ॥२७॥

**इति कामेश्वर्या: प्रयोगविधिः।**

यन्नों के फल—प्रथम यन्त्र से सोना, द्वितीय यन्त्र से गहने, तीसरे से विवाह एवं चौथे से भूमि की प्राप्ति होती है। पाँचवें से सवारी, छठे से स्त्री-वशीकरण, सातवें से भवन-प्राप्ति, आठवें से गोवृन्द की प्राप्ति होती है। नवें से राजा वश में होते हैं। दशवें से हाथी-घोड़े वश में होते हैं। ग्यारहवें से युद्ध में, विवाद में, व्यवहार में, जुए में जीत होती है। बारहवें से कामनाये पूरी होती है। तेरहवें से शत्रु का नाश होता है; हाथी, घोड़ा, गदहा, ऊँट, मनुष्य, गाय, मृग, पक्षी, सर्प, भेड़, ऐसा का शीघ्र नाश उन-उन पशुओं के चमड़े पर उसके लहू से यन्त्र को लिखकर उनके स्थान में स्थापित करने से चालीस, तीस या सात दिनों में होता है। चौदहवें यन्त्र से वर्षा होती है। पन्द्रहवें से शत्रु, क्रोध, वैरी के कार्य एवं गमनादि में स्तम्भन होता है। सोलहवें को धारण करने से भूत आदि की बाधा नहीं होती। सत्रहवें को भूमि में गाड़ने से संसार में प्राणियों की रक्षा होती है। अद्भुतहवें को गाड़ने से फसल की हानि और पेड़-पौधों का नाश होता है। उत्तीर्सवें को फलक पर लिखकर गाड़ने से देशों में परस्पर कलह होता है। बीसवें को दो राज्यों की सीमा के बीच में गाड़ने से दोनों देशों के राजाओं में विरोध होता है। इक्कीसवें से वैरी रोगार्त होता है। बार्डीसवें से गायों को रोग होता है। तेईसवें से हाथियों को रोग होता है। चौबीसवें से वाहनों में रोग होता है। पच्चीसवें से राजाओं को रोग होता है। छब्बीसवें से सामन्तगण रोगग्रस्त होते हैं। सताईसवें से उनके कलेश नष्ट होते हैं। अट्टाईसवें से कृत्या का प्रतिनिवर्तन होता है एवं उसके धारण करने से, गाड़ने से, वृक्षाय में बाँधने से, कूप-तड़ाग-वापी में डाल देने से निश्चित ही उन सबकी रक्षा होती है। उत्तीर्सवें यन्त्र से गूँगा भी बोलने लगता है। तीसवें यन्त्र से वैरी का वाक्स्तम्भन होता है। इकतीसवें यन्त्र से सेना और हाथियों की रक्षा होती है; यदि उसे धारण किया जाय या गाड़ दिया जाय। बत्तीसवें से समुद्र में पोतों के ढूबने का भय नहीं होता और वे बिना कठिनाई के समुद्र पार कर जाते हैं। इस प्रकार यन्त्रशक्ति विचित्र है। षोडश नित्याओं में से प्रत्येक की तिथि के क्रम से उसका भजन-जप-हवन आदि करना चाहिये। नैवेद्य में उन्हें धी, शक्कर, दूध, पूआ, केला, मधु, गुड, नारियल, लावा, तिल, दही, पृथुक, चना, मूँग और पायस—इन पन्द्रह द्रव्यों को पन्द्रह तिथियों में पन्द्रह नित्याओं को क्रमशः अर्पण करना चाहिये। शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ करके पूर्णिमा तक

पन्द्रह तिथियों में क्रमशः पन्द्रह प्रकार के उक्त नैवेद्यों को अर्पण करना चाहिये। पन्द्रह नित्याओं का उदय ललिता से होता है, इसलिये उसकी पूजा प्रतिदिन करनी चाहिये। प्रतिदिन पूजन करके हवन करना चाहिये। श्रीविद्या के भक्तों को भी नैवेद्य का प्रसाद खिलाना चाहिये। इससे नित्य अभीष्ट प्राप्त होते हैं। नित्याओं की विद्याओं के अक्षर के प्रोत्कृत औषधों को प्रमाण के अनुसार पीसकर गोली बनाकर उनसे सब कुछ साधित किया जा सकता है। उन गुटिकाओं को नित्य अर्ध्य-तर्पण-स्नान-पान के बाद ग्रहण करना चाहिये। चन्दन के साथ घिसकर उसका तिलक ललाट में लगाना सर्वसिद्धिकृत होता है। इससे राजा की विशेष रूप से रक्षा होती है। नित्य स्नान-पान-धारण एवं गुटिका-योजन करने से रोग-अपमृत्यु-कृत्यादि दोष एवं ग्रहादि दोष की बाधा कभी नहीं होती है। अतः अपने घर में इसका नित्य अर्चन करना चाहिये।

#### भगमालिनीनित्याप्रयोगविधिः तद्वत्रचनाक्रमश्च

अथ भगमालिनीनित्याप्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (प० ८ श्लोक २४) —

काम्यहोममथो वक्ष्ये नानाभीष्टाप्तिदायकम् । त्रिमध्यक्तैः पुण्डरीकैहर्माद्विग्रान् वशं नयेत् ॥१॥  
 आरग्वद्यैस्तु राजानं करवीरैस्तु वैश्यकम् । उत्पलैर्वश्येच्छुद्रं वनिता जपया हुतैः ॥२॥  
 बिल्वैर्लक्ष्मीर्भवेद्वोमे भूम्याढ्यः कमलैर्हत्तात् । कैरवैर्वहनावाप्तिरपुष्टैर्महद्याः ॥३॥  
 सौभाग्यं चम्पकैः सिङ्घैर रक्तसौगन्धिकैर्हुतेत् । तगरैर्वस्त्रसिङ्घै पुनागैर्भूषणाप्तये ॥४॥  
 मध्यैकैः कन्यकासिङ्घै पलाशैः स्वर्णासिङ्घै । किंशुकैरंशुकावाप्त्ये पाटलैः पशुसिङ्घै ॥५॥  
 रक्तोत्पलैः सर्वसिङ्घै होमयेत् परमेश्वरि । अथ यन्त्राणि वक्ष्यामि वाज्ञितार्थप्रदानि तु ॥६॥  
 चन्दनागुरुकर्पूरकसूरीकुङ्कुमैर्लिखेत् । सर्वाणि सर्वतो यन्त्राण्यभीष्टावाप्तिकामुकः ॥७॥  
 सुवर्णे रजते ताप्ते त्वश्चके भूर्जपत्रके । धारणं मूर्धिं बाहौ वा कण्ठे कठ्यां प्रकोच्छके ॥८॥  
 निधाय क्वापि पूजां वा कुर्याद्यन्नाण्यशेषतः । षट्कोणं वृत्तयोर्मध्ये कृत्वा तम्भ्यतस्तथा ॥९॥  
 योनिं विलिख्य तम्भ्ये मायां साध्यसमित्वाम् । विलिख्य कोणत्रितये बहिः षट्केऽपि संलिखेत् ॥१०॥  
 एकैकं वृत्तयोर्मध्ये शेषाणानि समालिखेत् । बहिमार्तुकयावेष्यं वृत्तान्तर्बिन्दुयुक्तया ॥११॥  
 एवं यन्त्राणि मन्त्राण्देशभिर्देशभिर्भवेत् । चरमेऽपि मृतषष्ठ्यैवं शेषं सम्पूरयेच्छिवे ॥१२॥ इति।

**अस्यार्थः—** प्रथमतस्त्रिकोणं विलिख्य तद्विषयः षट्कोणं कृत्वा तद्विहर्वत्तचतुष्यं विलिख्य मध्ये साध्यनामगर्भ हींकारं विलिख्य त्रिषु कोणेषु प्रथमाक्षरमारभ्य मूलमन्त्रस्याक्षरत्रयं विलिख्य, ततः षट्सु कोणेषु षडक्षराणि विलिख्य तद्विहर्वत्तचतुष्यान्तरालत्रयेऽप्यन्तरालाले मूलमन्त्रस्य दशमबीजं विलिख्य, तत एकादशाक्षरमारभ्य तदन्तरालं यथा पूर्णं भवति तथा पञ्चविंशत्युत्तरशतमूलमन्त्राणः संवेष्य, तद्विहर्न्तराले बिन्दुयुक्तमातृकाक्षरैः संवेष्य तद्विहरन्तराले विसर्गयुक्तमातृकाक्षरैः संवेष्यते । एवं दशभिर्देशभिर्मूलमन्त्राणः कृत्वा त्रयोदश यन्त्राणि विलिख्यावशिष्यमूलमन्त्राक्षरैः पञ्चभिः सहामृतपञ्चकं संयोज्य, दशभिरक्षरैः प्रागवद्यनं विलिख्यामृतपञ्चकं षण्ठीनद्वादशस्वरसंयोगेन षष्ठिबीजानि कृत्वा तानि बिन्दुयुक्तानि विसर्गयुक्तानि च विंशत्युत्तरशतवर्णः प्रथमान्तराले संवेष्य तद्विहरन्तरालद्वये बिन्दुविसर्गमातृकाभ्यां वेष्टयेदिति चरुर्दश यन्त्राणि विलिखेत् ।

भगमालिनी नित्या प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि नाना अभीष्ट-प्रदायक काम्य हवन को अब मैं कहता हूँ। त्रिमधुरात्म कमल के हवन से विप्र वश में होते हैं। आरग्वद से राजा और कनैल से वैश्य, उत्पल से शूद्र और अङ्गहुल के हवन से वनिता वश में होती है। बेल के हवन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। कमल के हवन से भूमि, कैवर से वाहन प्राप्ति, दरपुष्ट के हवन से यश होता है। चम्पा से सौभाग्य एवं रक्तसौगन्धिक के हवन से सिद्धि होती है। तगर के हवन से वस्त्र और पुत्राग के हवन से भूषण मिलते हैं। पल्ली-प्राप्ति के लिये महुआ से, स्वर्णसिद्धि के लिये पलाश से, रेशमी वस्त्र के लिये किंशुक से एवं पशु प्राप्ति के लिये गुलाब से हवन करे। सभी सिद्धियों के लिये लाल उत्पल से हवन करे।

अब वांछित प्रदायक यन्त्रों को कहता हूँ। चन्दन अगर कपूर कस्तुरी कुड्हुम से अभीष्ट-प्राप्ति के लिये सभी यन्त्रों को लिखे। सोने, चाँदी, ताम्बे, रेशमी वस्त्र, भोजपत्र पर लिखकर बाँह, कण्ठ, मूर्धा, कमर में धारण करने से अभीष्ट फल मिलते हैं। अथवा कहीं भी यन्त्र को स्थापित करके पूजा करे। पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर षट्कोण बनावे, उसके बाहर चार वृत्त बनावे। मध्य में साध्य नामार्थित 'ही' लिखे। तीनों कोनों में मूल मन्त्र के पहले तीन अक्षरों को लिखे। छहों कोनों में चौथे से नवें तक के छ: अक्षरों को लिखे। उसके बाहर चार वृत्तों के अन्तरालों में से आध्यन्तर अन्तराल में मूल मन्त्र के दशम बीज को लिखे। तब ग्यारहवें अक्षर से एक सौ पच्चीसवें अक्षर तक लिखे। उसके बाद वाले अन्तराल में सानुस्वार मातृकाओं को लिखे। उसके बाद वाले अन्तराल में विरागयुक्त मातृकाक्षरों को लिखे। इस प्रकार दश-दश मूल मन्त्र के वर्णों से तेरह यन्त्र लिखे। मूल मन्त्र के शेष अक्षरों में अमृतपञ्चक जोड़कर दश अक्षरों से पूर्ववत् यन्त्र लिखे। अमृतपञ्चक में षण्ठहीन बारह स्वरों के योग से साठ बीज बनाकर उन्हें बिन्दु-विसर्ग युक्त करके एक सौ बीस वर्णों से प्रथम अन्तराल को बैठित करे। उसके बाहर दो अन्तरालों में बिन्दु-विसर्ग युक्त मातृकाओं को लिखे। इस प्रकार चौदह यन्त्र बनावे।

### अमृतपञ्चकोद्घारः

**अमृतपञ्चकस्योद्घारमाह तत्रैव—**  
**ज्या कं दावोऽम्बु हृत् स्वेन माययामृतपञ्चकम् । तत्पञ्चकं स्वरैर्भेदादशीतिर्मायया तथा ॥१॥**

तथा अशीतिः।

तैः षण्ठहीनैः षष्ठिः स्यान्मायया च तथा भवेत् । षष्ठ्या शातं समुद्दिष्टं वर्णेष्वमृतविग्रहम् ॥१॥  
 तेषां सर्वत्र तत्रेऽस्मिन् विनियोगो विद्यीयते ।

ज्या जकारः, कं झकारः, दावष्ठकारः, अम्बु वकारः, हत्सकारः, जङ्घठवस इति। स्वेन बिन्दुना पञ्चा मायया विसर्गेण च योगे पञ्चेत्यर्थः। षण्ठहीनस्वरयुक्तेन षष्ठिः। बिन्दुविसर्गार्थ्यां १२०। अमृतपञ्चकषोडश-स्वरसंयोगेन ८०। बिन्दुना विसर्गेण च १६० अक्षराणीत्यर्थः।

अमृतपञ्चकोद्घार—पर ज झ ठ व स—ये अमृत पंचक हैं। इन पाँचों में बिन्दु लगाने से पाँच, माया-विसर्ग योग से पाँच, ऋ ऋ लृ षण्ठ स्वरों को छोड़ने पर शेष बारह स्वरों के योग से  $5 \times 12 = 60$  होते हैं। बिन्दु-विसर्ग लगाने पर १२०। अमृतपञ्चक में सोलह स्वर जोड़ने से  $5 \times 16 = 80$ । बिन्दु-विसर्गयुक्त करने पर १६० अक्षर होते हैं।

### यन्त्राणां विनियोगः

तथा—

**चतुर्दशानां यन्त्राणां विनियोगं शृणु प्रिये । वश्यमारोग्यं विजयं श्रियम् ॥१॥**  
**रक्षां गजाश्वगोमेषमहिषाणामनुक्रमात् । नरनारीनृपाणां च प्रोक्तयोगेन साधयेत् ॥२॥** इति।

इन चौदह यन्त्रों का क्रमशः वश्य, आकर्षण, स्तम्भन, आरोग्य, विजय, श्री, रक्षा, गज, अश्व, गो, मेष, महिष, नर-नारी, नृप का साधन करने के लिये विनियोग किया जाता है।

### अमृतार्ण्यर्थन्त्रचनासङ्कलनम्

तथा—

**अमृतार्णैः समूलार्णैर्लिखिता(ललिता) रहितैस्तु तैः । नित्याचतुर्दशार्णैश्वाप्येकषष्ठ्या शतोन च ॥१॥**  
**षट्पञ्चाशत्समोपेतं चतुःशतमुदीरितम् । तैर्यन्त्रचनायोगं फलानि च शृणु प्रिये ॥२॥** इति।

अमृतार्णः षष्ठ्युत्तरशतवर्णः १६० मूलार्णैः पञ्चत्रिंशच्छतवर्णैः १३५ ललितारहितचतुर्दशनित्यानां मन्त्रार्णा एकषष्ठ्युत्तरशतवर्णा: १६१ सर्वे षट्पञ्चाशदुत्तरचतुःशतवर्णाः ४५६ भवन्ति। तथा—  
 त्रिकोणमष्टपत्राब्जं बहिर्वृत्तद्वयं तथा । विधाय मध्ये मायास्थं कृत्वा नाम त्रिकोणजम् ॥१॥

अन्तरालत्रयस्यं च बहिःपत्राष्टगामि च। चतुर्दशार्णमालिख्य वृत्तमध्ये तु मातृकाम् ॥२॥  
विलिख्याचाहुतजपसेकसिद्धानि योजयेत्। त्रयस्त्रिंशत्तमं यन्त्रं सशक्त्यमृतपञ्चकैः ॥३॥ इति।

**अस्यार्थः**—प्रथमतस्त्रिकोणं विलिख्य तदुपरि वृत्तं कृत्वा, तल्लग्नान्यष्टदलानि विरच्य तद्विर्वृत्तद्वयं कुर्या-दिति यन्त्रं निर्माय मध्ये साध्यनामगर्भं हींकारं विलिख्य त्रिषु कोणेषु तदन्तरालेषु षड्बीजानि विलिख्या षट्दलेष्व-षट्बीजानि विलिखेदिति प्रागुक्तवर्णसमुदायात् प्रथमतश्चतुर्दशाक्षराणि विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकाक्षरैवेष्टयित्वा अस्त्रिंशत्तमयन्त्रस्यावशिष्टमूलवर्णाणि के मायाबीजयुक्तामृतपञ्चकं संयोज्य चतुर्दशाक्षराणि पिधाय प्राग्वत्पूरयेत्।

अमृत वर्ण १६०, मूल मन्त्र के वर्ण १३५, ललितारहित चौदह नित्याओं के मन्त्राक्षर १६१ कुल मिलाकर ४५६ अक्षर होते हैं। इन्हीं से यन्त्रचना की जाती है।

पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर वृत्त बनावे। वृत्त में एष्टदल बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर यन्त्र बनावे। मध्य में साध्य नामगर्भिं हीं लिखे। तीनों कोनों के अन्तरालों में छः बीजों को लिखे। आठ दलों में आठ बीजों को लिखे। पूर्वोक्त वर्णसमुदाय से पहले चौदह अक्षरों को लिखे। इसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृकाओं को लिखे। तैतीस यन्त्रों में अवशिष्ट मूल वर्णाणि के माया बीजयुक्त अमृतपञ्चक जोड़कर चौदह अक्षरों को पूर्ववृत्त लिखे।

#### प्रोक्तयन्त्राणां फलानि

फलानि ३३ यन्त्राणां क्रमेणाह—

ज्वरे घोरे शीतिकायां तथा चातुर्थिंके गदे। स्फोटे मसूरिकायां च नेत्रात्या कुक्षिसम्भवे ॥१॥

यक्षराक्षसगच्छर्वपिशाचोरगपीडने । बालग्रहार्ताै दौर्भाग्ये वन्ध्यात्वे वैरिपीडने ॥२॥

वादे चोन्मादके राजक्रोधे चौरभये तथा। डाकिन्यादिगणैः षट्भिराक्रान्त्यां ब्रह्मराक्षसैः ॥३॥

प्रमेहकामलाष्ठर्दिदोषजेषु त्रिषु क्रमात्। योजयेदुक्तविधिना त्रयस्त्रिंशदितीश्वरि ॥४॥

तैतीस यन्त्रों के फल—घोर ज्वर, शीतला, चातुर्थिक बुखार, चेचक, मसूरिका, नेत्ररोग, पेटसम्बन्धी रोग, यक्ष, राक्षस, गच्छर्व, पिशाच, सर्पीड़ा, बालग्रह, दुर्भाग्य, वन्ध्यात्व, शत्रुपीडन, विवाद, उन्माद, राजभय, चौरभय, डाकिनी आदि छः से आक्रान्त होने पर, ब्रह्मराक्षस से आक्रान्त होने पर, प्रमेह, कामला, छर्दि एवं त्रिदोष—इन तैतीस स्थितियों में क्रमशः तैतीस यन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये एवं कामेश्वरी आदि नित्याओं का साधारण अर्चन करना चाहिये।

#### कामेश्वर्यादीनां साधारणचक्रतदर्चनविधिः

कामेश्वर्यादीनित्यानां साधारणसमर्चनम्। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सर्वाङ्गाङ्गित्वयोगतः ॥५॥

तासां पञ्चदशानां तु मन्त्रवर्णाः समीरिताः। शतद्वयं षण्णवतिः (२९६) तैश्चकं तत्र पूजनम् ॥६॥

प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष्य रेखाविंशतिमालिखेत्। तेन कोष्ठानि जायन्ते चतुरस्त्राणि पार्वति ॥७॥

शतत्रयं त्वेकषष्ठ्या तेष्वीशादिप्रदक्षिणाम्। प्रवेशगत्या विलिखेद्यावत्संख्यं यथान्तरम् ॥८॥

पञ्चष्टिस्तेषु दिक्षु प्रागादिषु चतुष्टयम्। अवशिष्टं भवेत्तेषु दिक्ष्येष्वेकीकृतेषु च ॥९॥

मायां चतुष्टयात्स्थामालिखेद्वच्छितं क्रमात्। एकोनपञ्चाशत्कोष्ठेष्वेकीभूतेषु तत्र वै ॥१०॥

पद्मं चतुर्दशलं बहिर्वृत्तद्वयं तथा। लिखित्वा कर्णिकामध्ये योनि मायोदरां लिखेत् ॥११॥

दलेष्वपि तथा शक्तिं चतुर्दशसु संलिखेत्। भगमालां मध्यशक्त्यामावाह्न्यर्चयेद्वाहिः ॥१२॥

पश्चिमादि तु वाच्यन्तमन्या आवाह्न्य पूजयेत्। यथाक्रमिदं चक्रमासां साधारणं भवेत् ॥१३॥

मध्ये मध्ये तु या पूज्या शोषास्तत्तदलान्त्रिताः। यथाक्रमेण चित्रान्ताः पूजयेद्रक्तविग्रहाः ॥१४॥

चतुरस्त्रद्वयं बाहे कृत्वा द्वाराणि दिक्षु च। द्वाराणां पार्श्वयोः कोणेष्वर्चयेद् द्वादश क्रमात् ॥१५॥

ब्राह्मी माहेश्वरी द्वारे पश्चिमे सव्यदक्षिणे । कौमारी वैष्णवी सौम्ये वाराहैन्द्री च पूर्वके ॥१६॥  
चामुण्डा समहालक्ष्मीर्याप्ये वाक्यादिकोणगाः । देशकालौ तथाकारशब्दौ प्रोक्तकमेण वै ॥१७॥

**अथैतद्यन्नरचनाप्रकारः**—तत्र प्राकप्रत्यगायता विंशतिरेखा दक्षिणोत्तरायता विंशति कोष्ठानि कृत्वा तेषु कोष्ठेष्वीशानगतकोष्ठमारभ्य प्रवेशगत्या प्रादक्षिणयेन पञ्चदशनित्यामन्नाक्षराणि प्रोक्तानि षण्णवत्युत्तरशतद्वयसंख्यकानि (२१६) विलिख्यावशिष्टपञ्चषष्ठिकोष्ठेषु प्रागादिदिक्षु कोष्ठतुष्टयक्रमेण षोडशकोष्ठानि मार्जियत्वा तेषु साध्यनामगर्भ हींकारं प्रतिदिशं विलिख्य मध्येऽवशिष्टान्येकोनपञ्चाशत्कोष्ठान्येकीकृत्य सकर्णिकं चतुर्दशदलकमलं कृत्वा, तद्विहृत्तद्वयं विद्याय कर्णिकामध्ये त्रिकोणं विलिख्य तन्मध्ये हीमिति बीजं विलिख्य, दलेष्वपि मायाबीजं विलिख्य बहिश्वतुरसद्वयं चतुर्द्वारयुक्तं कुर्यादिति यन्त्रं विलिख्य, मध्ये भगमालामावाह चतुर्दशदलेषु पश्चिमादिवाव्यन्तं नित्य-किलत्रादिविचित्रान्नाशतुर्दशं नित्या आवाह पूजयेत् । अत्र मध्ये या नित्या पूज्यते तत्परतो नित्यामारभ्य चतुर्दश नित्या: पूजयेत् । तद्विहृत्तद्वारपाशेषु ब्राह्म्यादिशक्तीं: संपूज्याग्नेयादिकोणेषु देशकालाकारशक्तीः संपूजयेत् ।

‘पन्द्रह नित्याओं के अंगांगित्व योग से मन्त्रवर्णों की संख्या दो सौ छिआनबे होती है। इससे चक्र बनाकर पूजा करे। पूरब से पश्चिम, दक्षिण से उत्तर बीस रेखा खींचे। इससे ३६१ चतुरस्र कोष्ठ बनते हैं। उनमें ईशानादि से प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश गति से विद्या वर्णों के २१६ बीजों को लिखे। शेष ६५ कोष्ठों में से चारों दिशाओं में सोलह कोष्ठों को मिटा दे। उसके चारों कोनों में साध्यगर्भित हीं लिखे। मध्य में अवशिष्ट उनचास कोष्ठों को मिटाकर एक कर दे। मध्य में चर्तुर्दश कमल दल बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। कर्णिकामध्य में त्रिकोण बनावे। उसके मध्य में हीं लिखे। दलों में मायाबीज हीं लिखे। इसके बाद चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनावे। इस प्रकार यन्त्र बनाकर मध्य में भगमाला का आवाहन करे। चौदह दलों में पश्चिम से वायव्य तक शेष चौदह नित्याओं का आवाहन करके पूजन करे। उसके बाहर चारों द्वारों के पार्श्वों में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं का पूजन करे। आग्नेयादि कोणों में देश-काल-आकार शक्ति की पूजा करे।

### तथा—

पूजयेत्प्रोक्तरूपैस्तु प्रोक्तरूपाक्ष ता यजेत् । उपचारैश्वासवैश्व मत्यैः मांसैः सुसंस्कृतैः ॥१॥  
अपूर्पैः पायसैदुर्घटैः सुश्रीतैः सितसंयुतैः । कदलीपनसादैश्व फलैर्घुभिरेव च ॥२॥  
नैवेद्यैः प्रीणयेद् देवीं नृत्यगीतादिभिस्तथा । एकरात्रं त्रिरात्रं च पञ्चरात्रं तु सप्त वा ॥३॥  
नवरात्रं तथा पक्षं मासं पूर्णादिकं तु वा । वर्षं वा फाल्मुनान्तं वा स्यात्समस्तार्तिनाशनम् ॥४॥  
ग्रहाणां प्रातिकूल्येषु दीर्घरोगेषु वैकृते । देवतानामथोत्याते त्रिविधे त्वंभिचारके ॥५॥  
दारित्र्ये विजयप्राप्त्यां दुर्भिक्षे शत्रुपीडने । कृच्छ्रेष्ठ्येषु घोरेषु पूजैषा सर्वकामदा ॥६॥  
पीठे वा सुसमे कृत्वा वेदिकामण्डपे तु वा । कृत्वैतत् प्रोक्तरूपं च प्रोक्तद्रव्यैस्तथार्चयेत् ॥७॥  
नमेरुच्यकाशोकुपुनागबकुलाम्बुजैः । मल्लिकामालातीजातीशतपत्रोत्पलादिभिः ॥८॥  
सुगम्थिभिस्तथान्वैश्व पूजयेत् पूर्णमानसः । एतद्विद्याभक्त्युपस्तियुतनन्यांश्च पूजयेत् ॥९॥  
अथान्यदपि देवेशि चक्रमद्भुतदर्शनम् । योन्यविवाख्यं वनितागवर्पवर्तवत्रकम् ॥१०॥  
षट्विंशाङ्गुलमानेन कृत्वा योनिं समे तले । तत्र घ्यङ्गुलमानेषु सूत्राण्येकादशार्पयेत् ॥११॥  
तेनात्र योन्यो जायन्ते त्रिकोणानि शतात्परम् । चत्वारिंशत्वच्च चत्वारि तेषु मन्नाक्षराणि तु ॥१२॥  
प्रादक्षिण्यप्रवेशेन विलिखेत् निरन्तरम् । मध्येऽवशिष्टनवके नववर्गसमन्विते ॥१३॥  
नाथान् नव लिखेत्पश्चात्साध्याख्यां कर्मसंयुताम् । सर्वत्र विलिखेद्भूमौ भूय आवर्तने तु ॥१४॥  
अर्धात्रे तु तां साध्यां स्मरन्मदनवह्निना । दह्यमानां हतस्वानां मस्तकस्थापिताङ्गलिम् ॥१५॥  
विकीर्णकेशीमालोललोचनामरुणारुणाम् । वायुप्रेष्टपत्ताकास्थपटोपमकलेवराम् ॥१६॥

विवेकविथुरं मत्तां मानलज्जाभयातिगाम् । चिन्तयन्नर्चयेच्चक्रं मध्ये देवीं दिगम्बराम् ॥१७॥  
 जपादाडिमबन्धुकिंशुकाद्यैः समर्चयेत् । अन्यैः सुगच्छिशोफालिकुसुमाद्यैः सुगच्छिभिः ॥१८॥  
 त्रिसप्तरात्रादायाति प्रोक्तरूपा मदाकुला । यावच्छरीरपातं सा छायेवानपगामिनी ॥१९॥  
 प्रयोगः स्पष्टः । इति भगमालिनीप्रयोगः ।

भगमालिनी के उक्त रूप की यथाविधि पूजा सुसंस्कृत मध्य, मास, मछली, पुआ, पायस, शब्दकरयुक्त दूध, केला, कटहल, फल, मधु एवं नैवेद्य से करे । नाच-गान से देवी को प्रसन्न करे । एक रात, तीन रात, पाँच रात, सात रात, नव रात, एक पक्ष-पूरे एक मास, एक वर्ष चैत्र से फाल्गुन तक ऐसी पूजा करे । यह सारे दुःखों का विनाशक है । ग्रहों की प्रतिकूलता में, लम्बी बीमारी में, देवताओं के उत्पात होने पर, तीनों प्रकार के अभिचार में, दरिद्रवस्था में, विजय-प्राप्ति के लिये, अकाल में, शानुपीड़ा में, अन्य घोर कष्टों में यह पूजा सर्वकामदा होती है । समतल पीठ पर वेदी-मण्डप पर यह पूजा उक्त विधि से विहित द्रव्यों से करे । नमेश, चम्पा, अशोक, बकुल, पुनाग, कमल, मल्लिका, मालती, जाती, शतपत्री, कुमुद आदि अन्य सुरभित पुष्पों से पूरे मन से पूजा को । इसी प्रकार की भक्ति से दूसरी देवियों की भी पूजा करे । दूसरे प्रकार के चक्र में अद्भुत वर्णन है । योनि वर्ण नामक यन्त्र वनिता के गर्वरूपी पर्वत के लिये वत्र के समान है । समतल भूमि पर छब्बीस अंगुल मान का त्रिकोण बनावे । उसमें दो अंगुलमान से ग्यारह सत्र स्फालित करे । इससे एक सौ चौवालीस त्रिकोण बनते हैं । उनमें मन्त्राक्षरों को प्रवेश गति से निरन्तर प्रशिक्षण क्रम से लिखे तो  $1\frac{3}{4}$  मन्त्राक्षर  $1\frac{3}{4}$  त्रिकोणों में अंकित होते हैं ।  $1\frac{4}{4} - 1\frac{3}{4} = 9$  अवशिष्ट त्रिकोणों में नव वर्ग-समन्वित नव नाथों को लिखे । तब साध्य नाम एवं कार्य संयुक्त करके इनके बाहर भूमि पर लिखकर इस त्रिकोण यन्त्र को वेष्टित करे । आधी रात में साध्या का अग्नि से दह्यमान योनि, हत्त स्वान्त, मस्तक पर अञ्जलि बाँधे, बिखेरे बाल, अरुणारुण लोल लोचन, वायुप्रेरित पताका के समान डोलते हुए शरीर से, विवेकरहित मत मान लज्जा भयरहित चिन्तन करके चक्रार्चन करे । मध्य में दिगम्बरा देवी का अर्चन अङ्गुल, अनार, बन्धूक-पलाश आदि के फूलों से करे । अन्य का सुवासित शोफालि आदि फूलों से पूजन करे । तब साध्या तीन या सात रातों में उक्त रूप में मदाकुल होकर साधक के पाश आती है और तब तक उसके साथ रहती है, जबतक कि शरीरान्त नहीं हो जाता ।

#### नित्यक्लिन्नाप्रयोगविधिः

अथ नित्यक्लिन्नाप्रयोगविधिः । तत्र श्रीतन्त्रराजे (प० ९ श्लोक २३) —

विद्याया: साधनं सक्यवस्मीहितफलप्रदम् । शृणु देवि प्रवक्ष्यामि प्रयोगाहों यतो भवेत् ॥१॥  
 जिन्द्रियो हविष्याशी त्रिसंध्यार्चार्तो भवेत् । प्राग्वल्लक्षं तदशांशं कुर्याद्दोमं च तर्पणम् ॥२॥  
 मधूकपुष्पैर्घर्वध्वन्यैर्कुलोत्यैरथापि वा । चन्द्रचन्दनकस्तूरीवासितैस्तर्पयेज्जलैः ॥३॥  
 ततो विद्याप्रयोगाहों नित्याचानितस्तथा । सहस्रजापी तद्दक्तः कुर्याद्दुक्तं न चान्यथा ॥४॥  
 पद्मै रक्तैस्त्रिमध्वन्यैर्मालक्षीमवानुयात् । तथैव कैरवै रक्तैरङ्गनास्तु वशं नयेत् ॥५॥  
 समानरूपवत्सायाः शुक्लायाः गोः पयःप्लुतैः । मरिल्कामालतीजातीशतपत्रैहृतैभवेत् ॥६॥  
 कीर्तिविद्याधनरागोग्यसौभाग्यविजयादिकम् । आरवधप्रसूनैस्तु क्षौद्रारक्तैर्हर्वनाद्ववेत् ॥७॥  
 स्वर्णपिति: स्तम्भनं शत्रोः नृपादीनां कृधोऽपि च । आज्ञाकैः करवीरोद्यैः प्रसूनैरसूरणैहृतैः ॥८॥  
 रक्ताम्बराणि वनिताभूपामात्यवशं तथा । भूषावाहनवाणिज्यसिद्ध्यशास्य वाञ्छिताः ॥९॥  
 लवणैः सर्षपैर्गोरितर्वर्बाथ होमतः । तत्त्वैलाक्तैर्निशमध्ये त्वानयद्वाज्ञितां वधूम् ॥१०॥  
 तैलाक्तैर्जुह्यात् कृष्णादरपुष्पैर्निशान्तरा । मासादरातिस्तीव्रातिर्ज्वरिण भवति शुब्रम् ॥११॥  
 आरुष्करघृताभ्यक्तैस्तद्वैज्ञनिशि होमतः । शत्रोदर्देहे व्रणानि स्युर्दःसाध्यानि चिकित्सकैः ॥१२॥  
 आरुष्करघृतं भल्लातकतैलम् । तद्वैर्भल्लातकबीजैः ।

तैरेव दलिताङ्गस्तु रिपुर्याति यमालयम् । तथा तत्त्वैलसंसिक्तैर्बीजैरङ्गोलकैरपि ॥१३॥

मरिचैः सर्षपाज्याकैर्निशि होमातु मासतः । वाञ्छितां वनितां कामज्वरारात्मानयेदधूवम् ॥१४॥  
 मरिचैः सर्षपोपेतैः सप्तरात्रं हुतैर्निशि । धैर्यमानकुलैर्नित्यं दुष्ट्रापामानयेद्धूम् ॥१५॥  
 अन्नाजयैर्जुहुयान्नित्यं शतमष्टोत्तरं तु वा । तेनान्नपूर्णो भवने भोक्ता च भवति प्रिये ॥१६॥  
 शालीभिराज्ययुक्ताभिर्होमाच्छालीमवाप्नुयात् । मुदैर्मुदं घृतैराज्यमिष्टैरिष्टं हुतैर्भवेत् ॥१७॥  
 साध्यक्षवृक्षसम्भूतपिष्ठपादरजःकृताम् । राजीमरिचलोणोत्थां पुत्तर्लीं जुहुयान्निशि ॥१८॥  
 प्रपदाभ्यां च जङ्घाभ्यां जानुभ्यामूरुयुग्मतः । नाभेरथस्ताद्वदयाद्विनेनाकण्ठतस्था ॥१९॥  
 शिरसा च सुतीक्ष्णेन छित्त्वा शङ्खेण वै क्रमात् । एवं द्वादशथा होमान्नारीनराधिपाः ॥२०॥  
 वश्या भवन्ति सप्ताहाज्ज्वरार्तश्चास्य वाञ्छया । प्रयान्ति निधनं चास्य वाञ्छयानन्ययोगतः ॥२१॥

अत्र साध्यनक्षत्रसम्भूतपिष्ठ-साध्यपादरजो धूली-राजीमरिचलवैरोभिः पञ्चद्रव्यैरेकेकपुत्तलिका प्राक्प्र-  
 योगोक्तप्रकारोणं कृतप्राणप्रतिष्ठा । प्रपदाभ्यां १ जङ्घाभ्यां २ जानुभ्यां ३ ऊरुयुग्मतः ४ नाभेरथस्तात् ५ हृदयान्नाभिपर्यन्तं  
 ६ कण्ठतो हृत्पर्यन्तं ७ शिरः ८, एवमाहुत्यष्टकम् । तथा—

पिष्टेन गुडयुक्तेन मरिचैर्जीरकैर्युतम् । कृत्वा पुत्तलिकां साध्यनामयुक्तामथो हृदि ॥२२॥  
 सनामहोमसंपातधृते संपाच्य तां पुनः । स्पृशन् निजकराग्रेण सहस्रं प्रजपेन्मनुप् ॥२३॥  
 अश्वर्च्यं तदधृताभ्यक्तं भक्षयेत्तद्विद्या जपन् । नरनारीनृपास्तस्य वश्याः स्युमरणावधि ॥२४॥

अस्यार्थः—प्राग्वद्वयुक्ततण्डुलपिष्ठमरिचजीरकैः पुत्तलिकां कृत्वा तस्या हृदि साध्यनाम विलिख्य, क्वचिदिनिं  
 संस्थाप्य साध्यनामविदिर्भिर्मूलमन्त्रेण घृतेनैव सहस्रं हुत्योद्देशत्यागं कृत्वा क्वचिद्द्वाण्डे कृत्वा तत्संपातात्ये मूलमन्त्रं  
 जपन् तां पुत्तलिकां पक्वात्रवत् संपाच्य, पुनर्निजकराग्रेण तां स्पृशन् मूलं साध्यविदिर्भितं सहस्रं जपित्वा तस्यां  
 देवतामावाहाभ्यर्च्यं ‘अमुकं मे वशमानय, अमुकदेवतापादुकां पूजयामि’ इति प्रत्यावरणशक्तिं संपूज्य, धूपदीपादिकं  
 सर्वं प्रागवत्समाप्य प्राक्प्रोक्तसंपाताज्यसहितं तां मूलं जपन् तद्विद्या भक्षयेदुक्तफलं भवति । तथा—

तैरेव पिष्टैर्वृत्तं तु कृत्वा तन्मध्यतस्था । साध्यनाम स्फुटं कृत्वा प्राग्वत्संपाच्य भक्षणात् ॥२५॥  
 वश्यास्ते वत्सरं भूयस्तत्रामाणान्वितस्था । कृत्वा विपाच्य खादंस्तु वशयेत्तांस्तदर्थकम् ॥२६॥

अयमर्थः—प्रागुक्तपिष्टैर्वर्तुलाकारां मुद्रां कृत्वा प्राग्वद्वक्षयेद्वत्सरमात्रं वश्या भवेयुः । अथ साध्यनामवि-  
 दर्भितं मूलं जपन् प्रोक्तविधिं विनापि षष्ठ्यासमध्ये वश्या भवेयुः । तदुत्तरं पुनः कुर्यादित्यर्थः ।

नित्यक्षिलन्ना प्रयोग विधि—तन्नराज में कहा गया है कि विद्या का सम्यक् रूप से साधन करने पर वह फलप्रद  
 होती है । जितेन्द्रिय, हविष्यभोजी, त्रिकाल सून्ध्या करने वाला होकर पूर्वत् एक लाख नित्या विद्या का जप करे । जप का  
 दशांश हवन और इसका दशांश तर्पण करे । महाउ के फूलों या बकुल के फूलों को त्रिमधुरात् करके हवन करे । कपूर चन्दन  
 कस्तूरी से वासित जल से तर्पण करे । ऐसा करने से विद्या के प्रयोग की क्षमता प्राप्त होती है । इसके बाद नित्या के पूजन  
 में रत रहकर नित्याभक्त होकर हजार जप करके ही प्रयोग करे; अन्यथा न करे । मध्वक्त लाल कमलों के हवन से लक्ष्मी प्राप्त  
 होती है । उसी प्रकार लाल कुमुद से हवन करने पर वनिता वश में होती है । जिस उजली गाय का बछड़ा भी उजला हो, उसके  
 दूध में भीगे मलिलका, मालाती, जाती, शतपत्री के हवन से कीर्ति, विद्या, धन, आरोग्य, सौभाग्य-विजयादि की प्राप्ति होती है ।  
 आरग्वध फूलों को मधु से प्लुत करके हवन करने से स्वर्णप्राप्ति एवं शत्रु तथा क्रुद्ध राजा का स्तम्भन होता है । गोघृत-  
 मिश्रित लाल कनैल के फूलों से हवन करने पर लाल वस्त्रों वाली वनिता, राजा और अमात्य वश में होते हैं तथा वस्त्र, वाहन  
 और वाणिज्य में वाञ्छित सिद्धि का लाभ होता है । नमक, पीला सरसों और तैलात् अन्य द्रव्यों के हवन से आधी रात में  
 वाञ्छित वनिता प्राप्त होती है । तैलात् काले दरद फूलों से हर दूसरी रात में हवन करने से एक महीने में शत्रु तीव्र ज्वर से

पीड़ित होता है। रात में भल्लातक तेल में भल्लातक बीज भिगोकर हवन करने से शत्रु के शरीर में घाव की पीड़ा इतनी ज्यादा होती है कि निकित्सकों के लिये भी वह दुःसाध्य होती है। उस घाव से पीड़ित अंग वाला शत्रु यमलोक में जाता है तथा भल्लातक तेल से सिक्त उसके बीज एवं अंकोल मरिच सरसों को गोधृत से सिक्त करके एक माह तक रात में हवन करने से कामज्वर से पीड़ित वांछित बनिता उसके पास आती है।

मरिच और सरसों मिलाकर सात रात तक हवन करने से सर्वथा अप्राप्य धैर्यवती, मानवती कुलाङ्गना उसके पास आती है। अत्र और गाय के धी से नित्य एक सौ आठ हवन करने से साधक के घर में अत्रपूर्णा का वास होता है और साधक उसका भोक्ता होता है। आज्यवुक्त शालि चावल के हवन से शाली चावल मिलता है। मूँग के हवन से मूँग मिलता है। धी और गुड़ के हवन से अरिष्ट नष्ट होते हैं। साध्य नक्षत्र के वृक्षों के चूर्ण में साध्य के पैरों की धूल, राई, मरिच, नमक मिलाकर पुतली बनाकर उसके पैरों, जाँधों, घुटनों, दोनों उरुओं, नाभि से नीचे का भाग, हृदय से कण्ठ तक के भाग और शर को तेज हथियार से काटकर बारह हवन करने से नर-नारी, राजा वश में होते हैं और उसकी इच्छा होने पर सप्ताह भर में ज्वर से आर्त होकर मर जाते हैं।

चावल के पिण्ड में गुड़, जीरा, मरिच मिलाकर पुतली बनावे। उसके हृदय में साध्य का नाम लिखे। नाम से हवन करे। सम्पात धृत में उसे पकावे। पुतली पर हाथ रखकर एक हजार मन्त्र का जप करे। पुतली में धी लगाकर पूजा करे। पुतली को साध्य का रूप मानकर उसको खाने की भावना करते हुये जप करे। इससे उसके वश में नर-नारी-राजा आजीवन रहते हैं। आशय यह है कि तण्डुल पिण्ड में जीरा मरिच मिलाकर पुतली बनावे। उसके हृदय में साध्य नाम लिखे। अग्नि स्थापित करे। साध्य नामविदर्भित मूल मन्त्र से एक हजार हवन धी से करे। आहुति रेष का सम्पात किसी पात्र में करे। मूल मन्त्र जपते हुए उस पुतली को सम्पात धी में पकावे। कराप्र से उसका स्पर्श करके साध्य नामविदर्भित मूल मन्त्र का एक हजार जप करे। उसमें देवता का आवाहन करके 'अमुकं मे वशमानय, अमुकदेवतापादुकां पूजयामि' से प्रत्येक आवरण देवता का पूजन धूप-दीपादि से करके पूजा समाप्त करे। पूर्वोक्त सम्पात गोधृत सहित उस पुतली को माध्य मानकर मूल मन्त्र का जप करते हुये उसको भक्षण करने की भावना करने से उक्त फल मिलता है।

उसी प्रकार के पिण्ड से वृत बनावे। उसमें साध्य नाम लिखे। पूर्ववत् पकाकर उसका भक्षण करे तो एक वर्ष में साध्य वश में होता है। उस पिण्ड में उसके नाम वर्णों को मिलाकर उसे पकावे और खा जाय तो छः महीनों में ही साध्य वश में हो जाता है। आशय यह है कि पूर्वोक्त पिण्ड से वर्तुलाकार मुद्रा बनाकर खा जाय तो साल भर में साध्य वश में होता है। साध्य नामविदर्भित मूल मन्त्र जप करने पर उक्त विधि के बिना भी छः महीनों में साध्य वश में होता है। इसका अर्थ यह है कि इसके बाद भी पुनः क्रिया करे।

#### तथा—

- नारिकेलफलाम्भोभिस्तर्पणाद्वनिता वशाः । कर्पूरवासितैस्तोयैर्मनुष्याः स्युर्वशे स्थिताः ॥२७॥  
 तर्पणाल्लवणाम्भोधिजलैः सर्वेऽस्य किङ्कराः । तथा लवणयुक्तेन तोयेन बनिता वशाः ॥२८॥  
 शुद्धन वारिणा मासं तदर्थं सप्तरात्रकम् । तर्पयेद्यस्य नामैव स तस्य स्याद्वशेऽनिशाम् ॥२९॥  
 केतकैर्वासितैरन्दुयुक्तैः केलफलोदकैः । तर्पणाद्वनिता वश्या दृश्यः प्राणान्त्रिजं धनम् ॥३०॥  
 नमेरुवासितैस्तोयैस्तर्पणाद्वूमिपा वशम् । चम्पकैर्वासितजलैस्तर्पणं सर्वरञ्जनम् ॥३१॥  
 पाटलीशतपत्राभ्यां वासितैस्तर्पणं जलैः । सर्वलोकचमत्कारकारी भवति नित्यशः ॥३२॥  
 कस्तूरीवासिताम्भोभिस्तर्पणं सर्वसिद्धिकृत् । इन्द्रुचन्दनसौरभ्यवासिताम्भःप्रतर्पणम् ॥३३॥  
 वाञ्छितार्थसुसंसिद्धिं मण्डलात्कुरुते ध्रुवम् । सकुमिश्रजलैराद्यो धनधान्यादिभिश्चिरम् ॥३४॥  
 गुडमिश्रजलै रात्रौ तर्पणं विघ्ननाशनम् । चिङ्गाफलरसोपैर्जलैद्वेषाय तर्पयेत् ॥३५॥  
 उण्णोदकैः समरिचैस्तर्पयेद्वैरमृत्यवे । केवलोष्णोदकैस्तस्य तीव्रज्वरसमुद्वबः ॥३६॥

निष्पत्रसोपेतैरम्बुभिस्तर्पणं द्विषाम् । जायते न्योन्यवैरस्यं येन ते नाशमाप्नयुः ॥३७॥  
 तथैव सर्षपतिलैस्तर्पणाद्वैरिणो भृशाम् । अतीसारादिभिर्दोषैरौदरैः कलेशमाप्नयुः ॥३८॥  
 स्पष्टार्थः।

नारियल-जल से तर्पण करने पर वनिता वश में होती है। कपूरवासित जल से तर्पण करने पर मनुष्य वश में होते हैं। समुद्र के नमकीन जल के तर्पण से सभी उसके किंकर हो जाते हैं। उसी प्रकार नमकमिश्रित जल के तर्पण से सिद्धियाँ वश में होती हैं। शुद्ध जल से एक महीना, एक पक्ष या एक सप्ताह भर जिसके नाम से तर्पण किया जाता है, वह वश में हो जाता है। केतकी-वासित कपूर-मिश्रित केलाफल के रस से तर्पण करने पर वनिता वश में होकर अपना प्राण-धन सब कुछ दे देती है। नमेरुवासित जल से तर्पण करने पर राजा वश में होता है। चम्पावासित जल के तर्पण से सभी खुश रहते हैं। गुलाब शतपत्री-वासित जल से तर्पण करने पर साधक नित्य सर्व लोक चमत्कारी होता है। कस्तूरी-वासित जल के तर्पण से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। कपूर-चन्दन-सौरभवासित जल के तर्पण से चालीस दिनों में वांछितर्थ प्राप्त होता है। सतू मिले जल के तर्पण से धन-धान्य मिलता है। गुडमिश्रित जल से रात में तर्पण करने पर सभी विष्णों का नाश होता है। विद्रेषण के लिये चिंचाफल के रस से तर्पण करे। शत्रुमारण के लिये गरम जल में मरिच चूर्ण मिलाकर तर्पण करे। केवल गरम जल के तर्पण से शत्रु को तेज बुखार होता है। विद्रेषण के लिये निष्पत्र पत्र रसोपेत जल से तर्पण करे। इससे अवश्य ही वैरी का नाश होता है। इसी प्रकार सरसों एवं तिल से तर्पण करने पर शत्रु अतिसारादि उदर दोष से कष्ट पाता है।

#### यन्त्राणामुद्घारः

अथ यन्त्राणि देवेशि शृणु वाञ्छाप्रदानि वै । यैः कृतैः सिद्धयो हस्ते भवन्ति भजनादपि ॥३९॥  
 षट्कोणवृत्तयोर्मध्ये कृत्वा वृत्तं सनामकम् । विद्याद्वयर्ण विलिखेद् द्वितीयादीनि षट् क्रमात् ॥४०॥  
 षट्सु कोणेषु विलिखेच्छिष्ठमर्णचतुष्यम् । वृत्तयोरन्तरा दिक्षु लिखेत् कोणान्तरालतः ॥४१॥  
 भूताक्षराणि क्रमशो दश द्वित्रिक्रमेण तु । एवमेकादशविधं मध्येऽन्येषां निवेशनात् ॥४२॥  
 भूताक्षराणि प्रत्येकयोगात् पञ्चशतान्वितम् । पञ्चकं परमेशानि शृणु तानि यथाक्रमम् ॥४३॥  
 एषु सर्वत्र तद्वाहो वृत्तं कृत्वा च मातृकाम् । विलिखेदभितः पश्चाद्विनियोगमयोच्यते ॥४४॥  
 वश्ये त्रयमथाकर्वे द्वयं शान्त्यां द्वयं तथा । मध्ये नामाक्षरन्यासभेदास्तद्वेदकल्पनम् ॥४५॥  
 एवं तत्कलभेदस्तु सप्तविंशतिथा भवेत् । शेषाणि शृणु देवेशि क्रमेण विनियोगतः ॥४६॥  
 स्तम्भनं मोहनं पश्चाद्विद्वेषोच्चाटनं तथा । मारणं व्याधिभिः क्लेशं कुलोत्सादकरं तथा ॥४७॥  
 गजाश्वोष्ट्रखराणां च रक्षा महिषमेषयोः । गवां नराणां नारीणां विजयः समरे द्विषाम् ॥४८॥  
 द्वन्द्युद्धे तथा वादे व्यवहारेषु सर्वतः । द्यूते च रक्षा नगरग्रामपण्डलके तथा ॥४९॥ इति।

अस्यार्थः—प्रथमतो वृत्तं विधाय तद्वाहिः षट्कोणं विलिख्य तद्वाहिवृत्तत्रयं विधाय, मध्ये नित्यक्लिन्त्रा-विद्याक्षरेष्वेकादशसु प्रथमबीजं साध्यनामयुक्तं विलिख्य, षट्सु कोणेषु द्वितीयबीजादिष्टबीजानि विलिख्य-वशिष्टार्णचतुष्यं षट्कोणाद्वाहिवृत्तद्वयान्तराले चतुर्दिक्षु विलिख्य, तद्वाहिन्तराले तत्कार्यानुग्रण्यभूतार्णदशकं द्वित्रिक्रमेण चतुर्दिक्षु विलिख्य, तद्वाहिः पुनर्वृत्तं कृत्वा तदन्तराले मातृकावर्णवैद्येयेदिति प्रथमयन्त्रम् । द्वितीययन्त्रे मध्ये मूलमन्त्रस्य द्वितीयाक्षरं विलिख्य शेषं प्राग्वल्लिखेदिति द्वितीयं यन्त्रं भवति। एवं तृतीयादिबीजानां तृतीयादीनि यन्त्राणि भवन्ति। एवमेकादश यन्त्राणि जायन्ते। एवमेकादशयन्त्राणां सप्तविंशतिप्रयोगा भवन्ति। यथा—त्रिविधवश्ये प्रथमयन्त्रम् । द्विविधवश्वे द्वितीयं यन्त्रम् । द्विविधशान्त्यां तृतीयं यन्त्रम् । अन्येषामष्टयन्त्राणां प्रतियन्त्रं स्तम्भनादिप्रयोगत्रयं प्रयोगत्रयं ज्ञेयं, मध्ये साध्याक्षरलेखनभेदेन प्रयोगभेदस्तत्कार्यानुसारि भूतार्णदशकलेखनभेदश्च ज्ञातव्य इत्यर्थः।

हे देवेश! अब कामना-प्रदायक यन्त्रों को सुनो, जिनका पूजन कर जप करने से सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं। पहले

वृत् बनाकर उसके बाहर षट्कोण बनावे। उसके बाहर तीन वृत् बनावे। मध्य में नित्य क्लिना विद्या के ग्यारह अक्षरों में से प्रथम बीज को साथ्य नामसहित लिखे। छः कोनों में दूसरे बीज से सातवें बीज तक लिखे। शेष चार वर्णों को षट्कोण के बाहर दो वृतों के अन्तराल में पूर्वादि चार दिशाओं में लिखे। उसके बाद के अन्तराल में कार्य के अनुरूप दश भूत वर्णों को दो-तीन के क्रम से चारों दिशाओं में लिखे। उसके बाहर फिर एक वृत् बनाकर अन्तराल को मातुकावर्णों से वेष्टित करे। यह प्रथम यन्त्र होता है। दूसरे यन्त्र के मध्य में मूल मन्त्र के दूसरे अक्षर को लिखकर शेष अक्षरों को पूर्ववत् लिखे। इसी प्रकार तीसरे अक्षर से तीसरा यन्त्र बनता है। इस प्रकार ग्यारह यन्त्र बनते हैं। इन ग्यारह यन्त्रों से सत्ताईस प्रयोग होते हैं। जैसे प्रथम यन्त्र से त्रिविध वश्य होते हैं। द्वितीय यन्त्र से द्विविध विद्वेषण होता है। तृतीय यन्त्र से द्विविध शान्ति होती है। शेष आठ यन्त्रों से स्तम्भनादि तीन-तीन प्रयोग होते हैं। मध्य में साथ्य अक्षर लेखन भेद से प्रयोग भेद कार्य के अनुसार, दश भूतार्ण लेखन भेद ज्ञातव्य है। सत्ताईस यन्त्रों के फल भी सत्ताईस हैं। क्रम से उनके विनियोग के फलों को सुनो—स्तम्भन, मोहन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण, व्याधि, क्लेश, कुलनाश, हाथी-घोड़ा-ऊँट की रक्षा, भैंस-भेंड-गाय-नर-नारी की रक्षा, युद्ध में वैरियों पर विजय, दून्द्रयुद्ध, वाद-व्यवहार-जुआ में जीत, नगर-ग्राम-मण्डल की रक्षा आदि इनके कार्य हैं।

### यन्त्रान्तरोद्धाराः

अथ यन्त्रान्तरोद्धारमाह—

विद्यायां पुनरुक्तानि हित्वा वर्णानि तान्यपि । एकादश स्युस्तैः प्राग्वत् स्वरयोगान्महेश्वरि ॥५०॥

षट्सप्तत्या शतं प्रोक्तं वर्णानां भन्नगामिनाम् । प्रोक्तयन्त्रेषु विलिखेदेकादशविभागतः ॥५१॥

मातृकविद्ययावेष्ट्य कुर्यात्त्रामयोजनम् । षोडशानां च यन्त्राणां विनियोगमथोच्यते ॥५२॥

**अस्यार्थः—** मूलविद्यायाः पुनरुक्तवर्जितानि अनावृत्तान्यक्षराणि एकादश भवन्ति ‘हरनतयकलमदवस’ इति। एते षोडशस्वरयोगेन षट् सप्तत्युन्नरशतं (१७६) वर्णा भवन्ति। प्राग्वदेषु वर्णेषु एकादशैकादशवर्णानामेकमेकं यन्त्रं विलिखेदेवं षोडश यन्त्राणि जायन्ते।

मूल विद्या के अक्षरों के स्वर-व्यञ्जन को अलग-अलग करने से ग्यारह अक्षर ‘ह र न त य क ल म द व स’ होते हैं। इनमें सोलह स्वरों का योग करने पर एक सौ छिह्नतर वर्ण होते हैं। पूर्ववत् ग्यारह-ग्यारह वर्ण एक-एक यन्त्र में लिखने से सोलह यन्त्र बनते हैं।

### यन्त्राणां विनियोगः

तेषां फलान्याह—

प्रथमेन तु यन्त्रेण कन्यकाः स्ववशं नयेत् । तेनैव तासामार्तिं च शमयेत् सेकधारणैः ॥५३॥

स्वस्थावेशं च तेनैव कुर्याम्नन्तं जपन् धिया । तम्यां भावयेत्कन्यां धूपं सर्जरसैदर्हेत् ॥५४॥

आविष्टे तां समध्यर्च्य प्रोक्तैस्तैरुपचारकैः । पृच्छेत् तान्वाज्जितानर्थानाचष्टे स्वात्मनस्तदा ॥५५॥

ततोऽस्यच्चात्मायोज्यं तां तदात्मा भवेत्स्वयम् । तासामावेशमर्यैश्च शमयेत्स्य धारणात् ॥५६॥

द्वितीयेन तु यन्त्रेण कर्पटे गैरिकद्रवैः । लिखितेन जयेद्वादे प्रतिवादिनमन्तरा ॥५७॥

स्थापानात्स्य नियतमतिप्रौढोऽपि तत्क्षणात् । स्तब्धजिह्वो निरुद्योगः शुष्कास्यो लोललोचनः ॥५८॥

विलोकयन् दश दिशस्यकलज्जः पलायते । पतेद्वा पादयोः क्षिप्रं जितोऽस्मीति त्वयावदन् ॥५९॥

तृतीयेन निशापिष्ठतोयेन लिखितेन तु । कर्पटे खपरि वापि स्थापितेनोष्णाभूतले ॥६०॥

चुल्ल्यथो वा दिनैर्द्वित्रैः स्तम्भयेत्सुदृढं रिपोः । रोषं गर्ति मर्ति जिह्वां समरं सर्वमेव च ॥६१॥

आयान्तमग्रतो रात्रौ मार्गमध्ये खनेदिदम् । बलिं दद्यात् तद्योन्यां तन्नक्षत्रोक्तया पुनः ॥६२॥

तेन तत्पृतना भ्रष्टा रुणा गतसमुद्घामा । भीता न तनुखा जातु यन्त्रवैभवात् ॥६३॥

चतुर्थेनारिनक्षत्रवृक्षोत्थफलकातले । लिखितेन पुरोक्तेन स्थापितेन रिपोः पुरे ॥६४॥  
 नाशमेति रिपुः कृच्छैर्वैरिरोगादिसम्भवैः । तेषु तेषु प्रयोगेषु कुर्याद्रक्षामथात्मनः ॥६५॥  
 पञ्चमेनाथ षष्ठेन सप्तमेनाष्टमेन च । नवमेन च कुर्वीत रक्षां राष्ट्रपुरालये ॥६६॥  
 प्रागादिषु चतुर्दिषु वह्न्यादिव्यस्तदिक्षपि । मध्ये च स्थापयेद्यन्तं ताप्रपटेषु कल्पितम् ॥६७॥  
 क्रमेण नवमं मध्ये स्थापयेदुक्तयोगतः । स्वराष्ट्रे नगरे राजगृहे प्रोक्तक्रमात् खनत् ॥६८॥  
 तेन वैरिकृताः कृत्याप्रयोगाः कूरविग्रहाः । प्रवेष्टुमत्राशक्तास्ते नाशयन्ति प्रयोजकम् ॥६९॥  
 दशमं राजते पट्टे विलिख्य कवचं दधत् । रणं वीरः प्रविश्याशु नाशयेद् द्रावयेच्च तत् ॥७०॥  
 एकादशं निशातोयधृत्यगैरिकलेखनात् । कपटे स्थापितं शीर्णं शमयेद्द्वभूतां रणम् ॥७१॥  
 द्वादशेनेन्दुकाश्मीरलिखितेन धृतेन तु भूर्जपत्रपुटे सम्यक् सर्वरक्षा भवेत्वृणाम् ॥७२॥  
 त्रयोदशेन यन्त्रेण तालपत्रकृतेन तु । ताललिपेन कुड्यान्तः स्थापितेनार्चितेन च ॥॥७३॥  
 गृहरक्षा भवेद्व्याधिधूरग्रहभुजङ्गमात् । राजतो वैरितो बाधादन्यक्षुद्रादितस्तथा ॥७४॥  
 चतुर्दशेन यन्त्रेण भूर्जपत्रस्थितेन वै । धृतेन कामिनीनां तु सौभाग्यमतुलं भवेत् ॥७५॥  
 तथा पञ्चादशेनापि स्वर्वाणपद्मधृतेन तु । वस्त्यापि लभते पुत्रं गुणाद्यं दीर्घजीवितम् ॥७६॥  
 षोडशेनोक्तस्त्रपेण साभिषेकं धृतेन वै । सप्तलीष्वधिका तेन र्भर्तुः सात्यन्तवल्लभा ॥७७॥  
 भूर्जस्थेन धृतेनैव सर्वेषामपि सर्वदा । रक्षा भवति मत्यानां राजद्वारग्रहादितः ॥७८॥

इति नित्यकिलन्नाप्रयोगः।

इन यन्त्रों के फल इस प्रकार कहे गये हैं—प्रथम यन्त्र से कन्या वश में होती है। उसे धारण कराकर उसके दुःख का शमन किया जाता है। मन्त्र-जप करते हुये बुद्धि से उसे स्वस्थ किया जाता है। कन्या को स्वस्थ समझकर सर्जरस से धूप जलावे। भूतविष्ट होने पर प्रोक्त उपचारों से पूजा करे। उससे उसकी इच्छा पूछे और उसकी इच्छानुसार चेष्टा करे। उसके साथ स्वयं को एकात्म कर ले। उसे धारण कराकर दूसरों के आवेश का शमन करे। दूसरे यन्त्र को खपड़े पर गैरिक द्रव से लिखेन पर विवाद में प्रतिवादी पर विजय प्राप्त होती है। उसे स्थापित करने से स्थिर मति प्रौढ़ भी उसी क्षण से स्तब्धजिह्वा वाला, निरुद्योग, शुष्क मुख होकर चंचल नयनों से दरशाओं में निर्लज्ज होकर देखते हुये भाग जाता है अथवा पैरों पर गिरकर तुरन्त कहता है कि आप जीत गये, मैं हार गया। तृतीय यन्त्र को हल्दी के घोल से कौड़ी या खपड़े पर लिखकर गर्भ भूमि पर चूल्हा में स्थापित करने पर बलवान शत्रु का भी स्तम्भन होता है। उसकी गति, मति, जीभ आदि सब कुछ युद्ध में रुद्ध हो जाता है। सेना के आने वाले मार्ग में रात में इस यन्त्र को गाड़ दे। उसकी योनि में नक्षत्रोक्त जीव की बलि दे। इससे वह प्रष्ट, रोगी, क्रियाहीन और भीत होती है। यन्त्रवैधव से उसे कभी सुख नहीं मिलता। चौथे यन्त्र को शत्रु नक्षत्र वृक्षोत्थ फलक पर पूर्वोक्त विधि से बनाकर शत्रु के नगर में स्थापित करे तो शत्रु का नाश कठिन रोग की पीड़ा से हो जाता है। उपयुक्त प्रयोगों में अपनी रक्षा का विधान करके तब इसका प्रयोग करना चाहिये। पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें और नवें यन्त्र से राष्ट्र और नगर की रक्षा होती है। पूर्वादि दिशाओं में, आगेयादि विदिशाओं में एवं मध्य में ताप्रपट्ट पर लिखित नवयन्त्र स्थापित करे। क्रम से नवें को मध्य में उक्त योग से स्थापित करे। अपने राष्ट्र नगर राजगृह में प्रोक्त क्रम से गाड़ दे। इससे वैरी-कृत कृत्या प्रयोग, कूर विग्रह प्रवेश नहीं कर सकते और प्रयोगकर्ता को नष्ट कर देते हैं। दशवें यन्त्र को चाँदी के पत्र पर लिखकर कवच रूप में धारण करे तो रणक्षेत्र में प्रवेश करके वह वीर शत्रु को तुरन्त नष्ट कर देता है, उसका द्रावण कर देता है। ग्यारहवें यन्त्र को हल्दी के घोल में गेहू मिलाकर खपड़े पर लिखकर स्थापित करने से भूपति वैरी राजा को युद्ध में सीप्र शमन कर देता है। बारहवें यन्त्र को केसर और धी मिलाकर भोजपत्र पर लिखने से सभी मनुष्यों की सब प्रकार से सम्यक् रक्षा होती है। तेरहवें यन्त्र को ताङ्पत्र पर ताङ्के रस से लिखकर दिवाल में छेद करके उसमें रखने से घर की रक्षा होती है। व्याधि, चोर, ग्रह, सर्प, वैरी आदि अन्य क्षुद्रादि की बाधा से रक्षा होती है। चौदहवें यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से

कामिनियों को अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है। पन्द्रहवें यन्त्र को स्वर्णपट्ट पर लिखकर धारण करने से वस्थ्या को भी गुणवान एवं दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त होता है। सोलहवें यन्त्र को स्वर्णपट्ट पर लिखकर अधिष्ठेक करके धारण करने से नारी अपनी सौतों में सबसे अधिक प्रिय पत्नी होती है। इसे भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से मनुष्यों की राजा, चोर, ग्रहादि से सर्वदा रक्षा होती है।

### भेरुण्डानित्याप्रयोगविधिः

अथ भेरुण्डानित्याप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (प० १० श्लो० २१) —

स्नातो मौनी पयोभक्षः प्रजपेन्नवलक्षकम् । तदशांशं हुनेदग्नौ त्रिमध्यक्तैः कुशेशायैः ॥१॥  
तावच्च तर्पयेत्तोयैरिन्दुचन्दनवासितैः । अर्चयेत्त्रित्यशो देवीं सहस्रं प्रजपेदपि ॥२॥  
ततः स्वगुरुणोद्दिष्टप्रयोगान् विधिना चरेत् । अन्यथा निष्फलं भूयात्रत्युतैनं निहत्ति च ॥३॥  
द्वितीयाद्यन्निभिर्बर्जैः षष्ठेन च समीरितम् । निग्रहाख्यमथान्यैस्तु त्रिभिरन्त्यद्वयेन च ॥४॥  
षट्कोणं वृत्तयुगमं च कृत्वा तम्भयतो लिखेत् । द्वितीयार्णं साध्यमुतं कोणेष्वन्तक्रयं लिखेत् ॥५॥  
अधरेषु समायानि तानि लेख्यानि सर्वदा । वृत्तयोरन्तरा साध्यसमेतैः पवनाणकिः ॥६॥  
संवेष्य तानि सञ्जप्य रिपोरष्टमराशिगे । शमशाने स्थापयेत्तत्र ताने विद्वेषणं भवेत् ॥७॥

अस्यार्थः—षट्कोणं विलिख्य तद्विर्वृत्तद्वयं विद्याय भेरुण्डाया मूलनवार्णस्य द्वितीयाक्षरं साध्यनामगर्भं 'अमुकामुकयोविद्वेषणं कुरु कुरु' इति संयोज्य मध्ये विलिख्य, तृतीयं चतुर्थं षष्ठं बीजत्रयं बिन्दुयुक्तं षट्कोणस्यो-परितनकोणत्रये विलिख्य, तान्येव त्रीणि बीजानि षट्कोणस्याद्धस्तनकोणत्रये विसर्गयुक्तानि विलिख्य तद्विर्वृत्तयोरन्तराले वायुवर्णदशकेन साध्यनामगर्भेणावेष्टयेदुक्तफलदं भवति। तथा—

निष्पत्ररसैः पिष्टश्मशानाङ्गारलेखनात् । पृष्ठाखुत्त्वचि च तत्सहस्रद्वयजापतः ॥८॥  
पृष्ठमार्जाराः। आखुर्मूषकः।

द्वीपिवकन्त्रत्वचि लिखेत्तद्यन्तं गोमुखत्वचि । समालिख्यं च संज्ञानं पूर्वस्मिन्नुत्तरे रिपोः ॥९॥  
उत्तराधरमाधाय शिलाधः संध्ययोर्जपेत् । जपित्वा प्रोक्तसंख्यं च जयेत्तं प्रतिवादिनम् ॥१०॥

रिपोरुत्तरादिशि पूर्वदिशि वा उत्तराधरं उपरिष्टादधस्ताच्छिलाद्वयमित्यर्थः। संध्ययोः प्रातः सायम्। प्रोक्तसंख्यं सहस्रम्।

एतन्मुखावलोकेन प्रतिवादी हतोद्यमः। निरुत्तरः पलायेत जितोऽस्मीति वदेत्तु वा ॥११॥  
हरितालेन पिष्टेन निशारसयुतेन तु । विलिखेद्वादविजये यन्त्रमुक्तक्रमेण वै ॥१२॥  
रुचर्मणि तद्रक्तलिखितं तद्रिपोर्गृहै । प्रोक्तकाले खनेदुक्तक्रमपूजाजपान्वितम् ॥१३॥  
उच्चाटयेद्रिपून् मासान्नियतं यन्त्रवैभवात् । नृचर्मणि च तद्रक्तलिखितं तत् शमशानके ॥१४॥  
पूजाजपक्रमोपेतं निखनेदुक्तकालतः । मासेन याति वैरी तु दाहज्वरयुतो यमम् ॥१५॥  
तृतीयं मध्यतः कृत्वा त्रितरान् परितो लिखेत् ।

तृतीयं प्रोक्तबीजत्रयमध्ये तृतीयं बीजमित्यर्थः।

साध्यक्षयोनेस्त्वचि तन्मध्युच्छेष्ट योगितम् ॥१६॥

शमशानभस्मिलितं निक्षिप्तं नष्टकूपके । प्रोक्तकालसमोपेतं नाशयेत् सलिले रिपुम् ॥१७॥  
तदेव वहिमूलेन पिष्टेन मनुजासुजा । लिखितं गोत्वचि क्षिप्तं चुल्ल्यामुपरि वहिना ॥१८॥  
ज्वलितेनानिशं मासादग्निनान्नौ पतेद्रिपुः । तृतीयेन तु मध्येन वेष्टितैरितरैरपि ॥१९॥  
तृतीयेन तृतीयबीजेन।

उलूककाकपक्षाभ्यां प्रथमोक्तेन संलिखेत् । गर्दभत्वचि तत् खाल्वा कुण्डमध्ये तदूर्ध्वतः ॥२०॥  
 साध्यवृक्षेभ्यने वहौ बीजैस्मत्तसम्भवैः । कद्वैलप्लौतैर्होमाम्नतोऽरिर्प्रियते ध्रुवम् ॥२१॥  
 साध्यक्षेत्रवृक्षकीलं तु प्रोक्तयन्त्रसमन्वितम् । खरस्नायुभिराबद्धं खातं वैरिपुरे निशि ॥२२॥  
 राशौ तदष्टमे मासात्तत्त्वं पितृकाननम् । काकोलूकबक्षयेनकङ्कतित्तिरिपादयोः ॥२३॥  
 विलिख्य यन्नाण्युक्तानि प्रेतघीरे निबध्य तत् । खनेन्मङ्गलवारे तु प्रोक्तकाले चतुर्ष्यथे ॥२४॥  
 त्रिसप्ताहाद् ब्रजेद्वैरी स्यादुम्भृतो दिशो दश । तान्येव तत्तच्चर्मस्थं तदालयभुवि स्थितम् ॥२५॥  
 शमयेद्वजमत्यर्श्वगोखरोष्टाजसैरभान् । सप्ताहात् तदद्वयान्मासान्नियतं यन्त्रवैभवात् ॥२६॥  
 तच्छान्तिं शृणु देवेशि यन्त्रध्यानाभिषेकतः । तमन्त्रवर्णर्थान्त्रस्यैश्चित्रा मन्त्रार्थवैभवाः ॥२७॥  
 पद्ममष्टदलं कृत्वा मध्ये त्वाद्यं सनामकम् । लिखित्वाष्टसु पत्रेषु चतुर्ष्कं तदद्विरालिखेत् ॥२८॥  
 बहिर्वृत्तान्तरा कुर्यान्मातृकाक्षरवेष्टनम् । प्रागुक्तैरैव तैर्द्विष्यैः संपूज्य विनियोगतः ॥२९॥  
 तत्तत्त्वलेशविनाशः स्यातथा मन्त्रानुभावतः ।

अत्र निग्रहयन्त्रोक्ताक्षरचतुष्टयं विहायोर्वरिताक्षरपञ्चकमध्ये प्रथमं साध्यनामगर्भं कर्णिकायामण्ठचतुष्टयं द्विरावृत्त्याष्टदलेषु लिखेदित्यर्थः ।

भ्रेण्डा नित्या प्रयोग विधि—तत्राज में कहा गया है कि स्नान करके, मौन ब्रत धारण कर, दूध पीकर नव लाख मन्त्र का जप करे, उसका दशांश हवन त्रिमधुरात् कमल से करे। उतना ही तर्पण कपूर-चन्दनवासित जल से करे और नित्य अर्चन करे, नित्य एक हजार जप करे। तब गुरु से उपदिष्ट प्रयोग को विधिवत् करे; अन्यथा प्रयोग निष्कल होता है और वह कर्ता का ही नाश करता है।

षट्कोण बनाकर उसके बाहर दो वृत्त बनावे। भ्रेण्डा के मूल नवाक्षर मन्त्र के द्वितीय अक्षर को साध्य नाम के गर्भ में ‘अमुकामुक्योः विद्वेषणं कुरु कुरु’ योजित करके मध्य में लिखे। त्रुतीय चतुर्थ षष्ठी तीनों बीजों को बिन्दुयुक्त करके षट्कोण के ऊपरी तीनों कोनों में लिखे। उसी प्रकार सविसर्ग तीन बीजों को निचले तीनों कोनों में लिखे। उसके बाहर वृत्तों के अन्तराल में दश वायु वर्णों को साध्य नामगर्भित करके लिखे। तब उक्त फल प्राप्त होता है। उनका जप करके शत्रु के अष्टम राशिगत लग्न में शमशान में स्थापित करे। इससे विद्वेषण होता है। नीम के पत्तों के पिण्ड से शमशान के अंगार से विलार और मूस के चमड़े पर यन्त्र बनाकर एक हजार जप से विद्वेषण होता है। बाघ के मुख के चमड़े पर यन्त्र लिखे और गोमुख के चमड़े पर भी यन्त्र लिखे। शत्रु के उत्तर दिशा और पूर्व दिशा में दो पत्थरों के बीच में यन्त्रों को रखकर दोनों सन्ध्याओं में प्रोक्त संख्या में जप करे। इससे प्रतिवादी पर विजय होती है। ऐसा करने वाले का मुख देखकर प्रतिवादी उद्यमरहित हो निरुत्तर होकर ‘मैं हार गया’ कहते हुए भाग जाता है। वाद में जीत के लिये यन्त्र को उक्त क्रम से हरताल पिण्ड में हल्दी रस और रुह का रक्त मिलाकर रुह के चमड़े पर लिखकर पूजा-जप करके शत्रु के घर में गाढ़ दे। तब यन्त्र के वैभव से एक महीने में शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। मनुष्य के चमड़े पर मनुष्य के रक्त से यन्त्र लिखकर पूजा-जप के बाद उक्त काल में शमशान में गाढ़ देने से एक महीने में वैरी ज्वरदाह से यमलोक सिधार जाता है। प्रोक्त चार बीजों में से तीसरे बीज को मध्य में लिखे और शेष को चारों ओर साध्य नक्षत्र योनि वृक्ष की छाल में मोम और शमशान भस्म मिलाकर लिखे। विहित काल में उसे नष्ट कूप में डाल दे तो शत्रु जल में डूबकर मर जाता है। इसी प्रकार बहिर्मूल पिण्ड में मनुष्य का रक्त मिलाकर गोचर्म पर यन्त्र लिखकर चूल्हा के ज्वलित आग पर तपाने से शत्रु अग्नि में गिर जाता है। इस यन्त्र में तृतीय बीज को मध्य में लिखकर इतर वर्णों से वेष्टित करे। उल्लू और कौए के पंखों से गदहे के चमड़े पर प्रथमोक्त प्रकार से लिखकर कुण्ड खान कर साध्य वृक्ष की अग्नि में धन्तूर बीज को सरसों तेल से अक्त करके हवन करे तो शत्रु पागल होकर मर जाता है। साध्य नक्षत्र वृक्ष के कील के साथ प्रोक्त यन्त्र को गदहे के स्नायु से बाँधकर रात में वैरी के नगर में उसकी अष्टम राशि में गाढ़ दे तो एक माह में साध्य की मृत्यु हो जाती है। यन्त्र को लिखकर कौआ, उल्लू, बगुला, बाज, गिन्द्र के पंजों के साथ मुर्दे के कंपड़े से बाँध दे, मंगलवार

को चौराहे पर प्रोक्त काल में गाड़ दे। तब वैरी पागल होकर दशो दिशा में दौड़ता रहता है। उसी प्रकार मतवाले हाथी, घोड़ा, गाय, गदहा, ऊँट को शान्त करने के लिये उनके रहने के स्थान में बैठकर उनके घमड़े पर यन्त्र को लिखकर पूजा-जप करने से एक सप्ताह या दो सप्ताह या महीने भर में यन्त्र के प्रभाव से शान्ति हो जाती है। इन यन्त्रों की शान्ति के लिये यन्त्र का अधिष्ठेक ध्यान-मन्त्र-वर्णसहित यन्त्रस्थ चित्रों के मन्त्र वैष्ठव का चिन्तन करे। अष्टदल कमल बनाकर मध्य में साध्य नामसहित पहला अक्षर लिखे। आठ दलों में चार बीजों की दो आवृत्ति से लिखें। उसके बाहर वृत्त को मातृकाक्षरों से वेष्टित करे। विनियोग करके पूर्वोक्त द्रव्यों से पूजन करे। तब क्लेश का नाश मन्त्र के द्वारा होता है।

विजयं समरे राजां शृणु वैरिविनाशनम् ॥३०॥

मन्त्राक्षराणि प्रत्येकं योजयेत् षोडशस्वरैः । तेन मन्त्राक्षराणि स्युः संख्यया च शतं पुनः ॥३१॥  
चत्वारिंशत्त्वच्च चत्वारि तैर्यन्त्ररचनं शृणु ।

अत्र मूलमन्त्रस्यानावृत्ताक्षराणि करभङ्गाछजसवह इति नवाक्षराणि षोडशस्वरयुक्तानि चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतं

१४४ भवन्ति। तथा—

तेन सर्वत्र समरे विजयो भवति ध्रुवम् ॥३२॥

प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष्य कुयद्रिखात्मयोदश। तेन तावन्ति कोष्ठानि सम्भवन्ति समन्ततः ॥३३॥  
कृत्वाष्टास्त्रं ततो बाह्ये वृत्तयुग्मं ततो लिखेत्। अक्षराणि शिवाद्यं तु निरूप्त्यन्तमनुक्रमात् ॥३४॥  
तत्तन्मन्त्राणकोष्ठेषु नवस्वाख्यां समालिखेत्। बहिरष्टसु कोणेषु द्वितीयार्णादि संलिखेत् ॥३५॥

यस्मिन् यस्मिन् कोष्ठेऽनावृत्ताक्षरं पतितं तस्मिंस्तस्मिन् कोष्ठे साध्यनाम लिखेदित्यर्थः। द्वितीयार्णोति  
मूलमन्त्रबीजानीत्यर्थः।

अन्तरालेषु विलिखेदाद्यं वृत्तद्वयान्तरा। तान्येव मातृकाख्याभिर्विर्भिर्तमथो लिखेत् ॥३६॥

बहिरष्टकोणान्तरालेषु आद्यक्षरं प्रणवमेव लिखेत्। तदन्तर्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मूलमन्त्राक्षरविवर्भिर्तमातृका-  
क्षरर्वेष्टयेदित्यर्थः।

एतत्परे समालिख्य ध्वजीकृत्य रणोद्यमे। दर्शयितेन रिपवः पलायने दिशो दश ॥३७॥  
प्रणमेयुर्निजां लक्ष्मीं प्राभृतीकृत्य तत्क्षणात्। तदेव वैरिशिविरे निखनेदुदये शने: ॥३८॥  
सद्यस्वन्योन्यकलहात्राशमेति सुनिश्चितम्। तदेव स्वपुरे मध्ये स्थापयेद् धिषणोदये ॥३९॥  
पराभिचारकृत्यादिदुरितानि न तत्र वै। संस्मृशन्ति पुरान्तःस्थायन्त्रशक्त्यनुभावतः ॥४०॥  
तद्यन्तं ताप्रपट्टे तु विलिख्याभ्यर्थं तत्पुनः। स्थापयेत् साध्यभूभतुरिकादशसमुद्यमे ॥४१॥  
गजवाजिगृहे स्वस्य भाण्डागारे स्वमन्दिरे। अन्तःपुरे नगर्यास्तु दिक्षु मध्ये च तत्खनेत् ॥४२॥  
यत्र संस्थापितं यन्त्रं तत्राच्च नित्यशो नृपः। कारयेत्तेन तत्सर्वं शाश्वतं वृद्धये भवेत् ॥४३॥  
बीजानि तानि प्रत्येकमष्टपत्रसरोहे। मध्ये दलेषु परितो लिखेदैकेकशः क्रमात् ॥४४॥  
बहिर्मर्तुक्यावेष्ट्य संजप्याभ्यर्थं नित्यशः। स्वजन्मक्षर्दिनवक्ते कुर्याच्छान्तिमनुक्रमात् ॥४५॥  
यन्त्रक्षत्रे भवेदस्य ग्रहतो राजतोऽपि वा। रोगतो वैरितो वापि तस्मिंस्तत्तेन शामयेत् ॥४६॥

अत्र यन्त्रान्तरमाह—बीजानीति—अष्टदलकमलं विलिख्य मध्ये प्रथमबीजं साध्यनामगर्भ विलिख्याष्टसु  
दलेषु द्वितीयाद्यष्टबीजानि विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकाक्षरर्वेष्टयेत्। एवं द्वितीयाक्षरं मध्ये चेद् द्वितीयं यन्त्रं  
भवति। एवं नव यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः।

युद्ध में विजय और राजा के शत्रु के नाश लिये विधि सुनो। प्रत्येक मन्त्रवर्ण को सोलह स्वरों से युक्त करे। इससे

मन्त्राक्षर एक सौ चौबालीस होते हैं। उनसे यन्त्ररचना सुनो, जिससे युद्ध में राजा के वैरी का नाश होता है। पूरब से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर तेरह-तेरह रेखा खींचे। इससे एक सौ चौबालीस कोष्ठ बनते हैं। उसके बाहर अष्टास बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। ईशान से नैऋत्य तक अनुक्रम से कोष्ठों में मन्त्रवर्णों को लिखे। बाहर आठों कोनों में द्वितीय वर्ण को लिखे। जिस-जिस कोष्ठ में अनावृत अक्षर हो, उन कोष्ठों में साध्य नाम लिखे। द्वितीय वर्ण मूल मन्त्र का बीज है। अन्तराल में आद्य बीज लिखे। दो वृत्तों के अन्तराल में उनसे विवर्भित मातृकाओं को लिखे। बाहर कोणान्तराल में आद्य अक्षर प्रणव लिखे। इसे कपड़े पर लिखकर ध्वजा बनावे। युद्ध की स्थिति में उसे शत्रुसेना को दिखावे। इससे शत्रुसेना दशों दिशाओं में भाग जाती है। ध्वजा को अपनी लक्ष्मी मानकर पूजा करे। शनि के उदय होने पर उसे वैरी के शिविर में गाड़ दे। तब शत्रुसेना आपसी कलह से नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार अपने नगर में गुरु के उदय होने पर स्थापित करे। तब दूसरे द्वारा कृत अभिचार कृत्यादि विपत्तियाँ उस नगर का स्पर्श भी नहीं करती। नगर के अन्दर स्थापित यन्त्रशक्ति का प्रभाव ऐसा होता है। उस यन्त्र को ताप्र पत्र पर लिखकर पुनः अर्चन करे। साध्य भूपति के एकादश भाव में होने पर हाथी, घोड़े के शाला में, अपने भण्डार में, अपने घर में, अन्तःपुर में, नगर की चारों दिशाओं में और पथ में गाड़ दे। यन्त्र स्थापित स्थान में राजा नित्य पूजा करे। इससे उनकी शाश्वत वृद्धि होती है। उन बीजों को अष्ट कमल के दलों के मध्य में चारों ओर एक-एक करके लिखे। बाहर मातृकाओं से वेष्टित करे। नित्य जप-पूजा करे। अपने जन्मनक्षत्र से नव नक्षत्रों में अनुक्रम से शान्ति करे। जिस नक्षत्र में ग्रह से, राजा से, रोग से, वैरी से पीड़ा होती है, उनका शमन होता है।

**यन्त्रान्तर—**अष्टदल कमल बनाकर मध्य में प्रथम बीज को साध्य नाम से गर्भित लिखे। आठों दलों में दूसरे से नवें तक के आठ बीजों को लिखे। इसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृकाक्षरों को लिखकर वेष्टित करे। इस प्रकार द्वितीय अक्षर को मध्य में लिखने से द्वितीय यन्त्र होता है। इस प्रकार कुल नव यन्त्र बनते हैं।

### तथा—

मन्त्राणीषधमध्यस्थं यन्त्रं कृत्वा तु तेन तु । रक्षां कुर्वीत सर्वेषां सर्वपित्तारणाय वै ॥४७॥  
 तत्तद्यन्तं तद्विनेषु स्नानपानाशनादिना । ग्रहजं वैरिजं दुःखं शाम्यत्येव न संशयः ॥४८॥  
 क्रमेण नवयन्त्राणि नवग्रहमयानि च । तस्मात्तद्ग्रहक्लेशं तत्तद्यन्त्रेण शामयेत् ॥४९॥  
 सेकाशनविभूत्यादिप्रयोगैरुदितैः क्रमात् । विविधानि विषाण्येभिर्यन्त्रैर्जलनिवेशनैः ॥५०॥  
 नाशयेत् पानसेकाभ्यां धारणेनार्चनेन च । एभिस्तु नवभिर्यन्त्रैर्यन्त्रं साध्यं न कुत्रचित् ॥५१॥  
 देशे वा नगरे ग्रामे मण्डले खर्वटादिके । प्रथमं मध्यतः खात्वा प्रागादिषु ततोऽष्टसु ॥५२॥  
 द्वितीयादीनि तु खनेत्रत्र लक्ष्मीरतिस्थिरा । धर्मार्थैः चातिसंवृद्धौ भवेतामुक्तयोगतः ॥५३॥  
 द्वितीयं मध्यतः खात्वा त्वितराण्यभितः खनेत् । धार्मिकास्तेन तत्रस्थाः प्रसीदन्ति च देवताः ॥५४॥  
 सप्तस्वन्येषु च तथा कान्त्यारोग्ययशोबलैः । पुत्रज्ञानधनैश्शाढ्याः प्रभवन्ति च नित्यशः ॥५५॥  
 दृष्टेषु घोरैः फणिभिर्वभिर्नवरस्थैः । ध्यातैर्मृतोऽपि माहात्म्यामन्त्रस्योत्तिष्ठते धृवम् ॥५६॥  
 अश्विन्यादिषु ऋक्षेषु नवानि नवसु क्रमात् । विलिङ्गं देवीं तत्रस्थां नवाकारां नवस्वपि ॥५७॥  
 पूजयेदुपचारैस्तां नित्यशो भक्तिसंयुतः । प्रागुक्तपरिवारादिरहितां पूजयन्नपि ॥५८॥  
 सिद्धिमेति नरो भक्त्या परया चेत्समन्वितः । स्त्रीबालवृद्धाशक्तानां गतिरेषा च सिद्धये ॥५९॥  
 भेरुण्डां कर्णयोर्जप्याद्विशार्तस्य तदैव सः । निर्विषो जायतेऽचिन्त्या मन्त्राणां शक्तयः शिवे ॥६०॥  
 त्रैलोक्यमोहिनी विद्या सर्वतो भवता स्तुता । न कदाचित्तु सा प्रोक्ता तां मे ब्रूहि महेश्वर ॥६१॥  
 सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनि । व्याप्तस्तुं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वमिदमद्भुतम् ॥६२॥  
 येन नारीनरनृपदेवताः सर्वजन्तवः । भजन्त्येनं यथा मां त्वं तत्रयोगबलाद् धृवम् ॥६३॥  
 अकारादिक्षकारान्तैर्मातृकार्णः सबिन्दुभिः । प्रत्येकं पुटितान् कृत्वा मन्त्रं विद्यामथापि वा ॥६४॥

विद्यया मातृकावर्णान् पुटयेन्मन्त्रतोऽपि वा । प्रोक्ते तद्यन्तनवके कुम्भं संस्थाप्य वै तथा ॥६५॥  
जपतर्पणहोमाचार्चासिद्धया सेक ईरितः । कुचन्दनैर्गैरिकैवर्गा दरदैश्वन्दनैस्तथा ॥६६॥  
सिन्दूरैस्तण्डुलैमुक्तस्तिलैः कृष्णौः सितैरपि । नवानां नवभिः कुवर्दिभिर्यन्त्रप्रकल्पनम् ॥६७॥  
चैत्रादिविषुवदद्वन्द्वे तथैवायनयोर्द्वयोः । दक्षोत्तराख्ययोर्जन्मत्रितये पर्वणि क्रमात् ॥६८॥  
राजा वा राजमहिषी सेनापत्यधिपोऽथवा । अन्यो वा भक्तिशीलाङ्गः कारयेदभिषेचनम् ॥६९॥  
दक्षिणामधिषेके च दद्याद्भूरि स्वशक्तिः । वित्तशारद्यं न कुर्वीत यदि कुर्वीत लोभतः ॥७०॥  
संदहेत्तं यावकवत् पुत्रलक्ष्मीकलत्रकैः । तस्मात्स्वर्वत्र तत्रेऽस्मिन् वित्तशारद्यं न विन्नयेत् ॥७१॥  
अभिषेकफलं देवि शृणु वक्ष्ये यथाविधि । सोमसूर्यगिनरूपेण जलेनेमितमन्त्रतः ॥७२॥  
जपपूजादिना सिद्धवैभवेनाभिषेकतः । दुल्क्षणसमुत्थानि तथा दुष्कर्मजानि च ॥७३॥  
तद्वृहनींतिजनितान्यन्यानि दुरितानि च । नाशयेत्तक्षणादेव सलिलैरिव पावकः ॥७४॥  
अपुत्रो वित्तविद्यायुरारोग्यादिसमन्वितः । लभते च बहून् पुत्रान् सुखी च चिरमेधते ॥७५॥  
केमद्वृमादियोगेषु जन्मना प्रात्कनाद्यतः । यो भृशं नित्यदारिक्यात्मिलष्टः सोऽपि श्रियैर्थते ॥७६॥  
प्राग्जन्मसञ्चितैः पापैरपश्यादिनिषेवणैः । अनीत्या वैरिविहितैरभिचारादिभिस्तु वा ॥७७॥  
ये रोगाः पीडयन्त्येनं ते विनश्यन्त्यशेषतः । कान्तिलक्ष्मीधनारोग्यविद्याविजयकीर्तिभिः ॥७८॥  
सुचिरं जीवति छ्यातः पुत्रप्रोतादिभिर्युतः । नवाभिषेकं नवसु प्रोक्तेषु विधिना चरन् ॥८९॥  
अपमृत्युं विजित्यास्मद्दक्षः शुद्धान्तमानसः । जीवन्मुक्तक्षिरं योगी भुवि जीवति मन्मथः ॥८०॥  
इति भेरुण्डानित्याप्रयोगविधिः ।

मन्त्र वर्णोष्ठ के मध्य में यन्त्र को रखने से सबों की रक्षा होती है और सभी विपत्तियों से मुक्ति मिलती है। यन्त्र के अनुरूप दिनों में स्नान-पान-खान से ग्रहज एवं वैरिज दुःखों का शमन होता है। ये नवों यन्त्र क्रम से नवग्रह रूप के हैं, इससे तत्त्व ग्रहजन्य कष्ट का शमन यन्त्र से होता है। इनसे अभिषेक, भक्षण और विभूति आदि के प्रयोग क्रम से होते हैं। विविध विषों के नाश के लिये इस यन्त्र का जल में निवेश किया जाता है। इस जल के पान, अभिषेक, धारण और अर्चन से इनका नाश होता है। इन नव यन्त्रों से जो साध्य न हो, ऐसा कुछ भी नहीं है। देश, नगर, ग्राम, मण्डल, बाजार आदि में मध्य में पहला यन्त्र गाढ़े; तब पूर्वादि दिशाओं में आठ यन्त्रों को गाढ़े। उक्त योग से स्थिर लक्ष्मी, प्रीति, धर्म, अर्थ और समृद्धि की प्राप्ति होती है। दूसरे यन्त्र को बीच में और शेष आठ को उसके सभी दिशाओं में गाढ़ कर धार्मिक वहाँ बैठे तो देवता प्रसन्न होते हैं। अन्य सातों से इसी प्रकार कान्ति, आरोग्य, यश, बल, पुत्र, ज्ञान, धन से साधक धनी होता है। भयंकर सांप के काटने पर उसके नव छिद्रों में नव यन्त्रों के ध्यान से मृत भी जी उठता है। इस मन्त्र का ऐसा ही माहात्म्य है।

अश्विनी आदि नव नक्षत्रों में नवों यन्त्रों को क्रम से लिखकर उनमें देवी को नव आकारों में स्थापित करके नित्य भक्ति से उपचारों से पूजा करे। इसके पूर्वोक्त परिवारहित पूजन से भी मनुष्य को परमा सिद्धि मिलती है। स्त्री-बाल-वृद्ध-अशक्तों को भी इसमें अधिकार है। विष से आर्त मनुष्य के कान में भेरुण्डामन्त्र का जप करने से वह निर्विष हो जाता है। इस मन्त्र की शक्ति अचिन्त्य है।

हे महेश्वर! आपने त्रैलोक्यमोहिनी विद्या की प्रशंसा सर्वत्र की है; पर कभी कहा नहीं; अब उसे कहिये। हे देवि! सुनो, सभी मन्त्रों एवं विद्याओं में व्याप्त यशस्विनी के अद्भुत रूप को कहता हूँ। इसके प्रयोग के प्रभाव से ही मुझे और तुम्हें नारी-नर-नृप-देवता सभी प्राणी भजते हैं। सानुस्वर अ सेक्ष तक की मातृकाओं से प्रत्येक मन्त्र विद्या को पुष्टि करके अथवा विद्या से मातृकाओं को पुष्टि करके प्रोक्त नव यन्त्रों में नव कलशों को स्थापित करे। तदनन्तर जप-तर्पण-हवन-अधिषेक करे तो सिद्धि मिलती है। लाल चन्दन, गेरु, सिंगरफ, चन्दन, सिन्दूर, तण्डुल, मूंग, तिल काला एवं उजला—इन नव से नव यन्त्रों को कल्पित करे। चैत्रादि दो विषुव, दक्षिणायन या उत्तरायन, जन्म के तृतीय पर्व में राजा, रानी, सेनापति, अधिपति अन्य

भक्त का अभिषेक करे। अपनी शक्ति के अनुसार प्रचुर दक्षिणा दे, वित्तशाठ्य कभी न करे। यदि लोभ से कोई वित्तशाठ्य करता है तो वह पुत्र, लक्ष्मी, पत्नी के साथ अग्निदाहवत् जलन से पीड़ित होता है। इसलिये इस तन्त्र में कहीं भी वित्तशाठ्य नहीं करना चाहिये।

**अभिषेक फल—**हे देवि! सुनो, अभिषेक के फल को यथाविधि कहता हूँ। सोम-सूर्याग्नि रूप के जल से ईप्सित मन्त्र से जप-पूजादि करके सिद्ध मन्त्र से अभिषेक करने पर दुर्लक्षणजनित, दुष्कर्मजनित एवं दुर्नीतिजनित कष्ट तत्क्षण ही उस अभिषेकजल के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। यह जल अग्नि के समान कष्टों का नाश करता है। अपुत्र भी बहुत धन, विद्या, आयु, आरोग्य और पुत्र से युक्त होता है और वह बहुत दिनों तक सुखी रहता है। केमद्रुम योग में लेकर भी पूर्वजन्म के कर्मप्रभाव से नित्य दारिद्र्यरूपी कष्ट को प्राप्त मनुष्य भी लक्ष्मी से सम्पन्न होता है। पूर्व जन्मों के संचित पाप, अपथ्य-सेवन, अनीति एवं वैरीकृत अभिचारादि से उत्पन्न रोग की पीड़ा का जड़सहित नाश हो जाता है और वह कान्ति, लक्ष्मी, धन, आरोग्य, विद्या, विजय, कीर्ति से प्रसिद्ध होकर पुत्र-पौत्रों के साथ दीर्घकाल तक जीवित रहता है। प्रोक्त नव विधि से नव अभिषेक करने पर अपमृत्यु को जीतकर मेरा भक्त शुद्ध मानस एवं जीवनमृत योगी होकर संसार में मन्यथ के समान जीवित रहता है।

### वह्निवासिनीनित्याप्रयोगविधिः

**अथ वह्निवासिनीनित्याप्रयोगः।** तत्र श्रीतन्त्राराजे (प० ११ श्लो० २६) —

विद्याया: साधनं तद्वृत्तन्त्रेऽस्मिन् परमेश्वरि । अन्यतन्त्रानपेक्षित्वादुच्यतेऽत्रैव साधनम् ॥१॥  
द्रव्यानुकौ होमविधौ धृतमत्राज्यमेव च । संख्यानुकौ सहस्रं स्याच्छतं वा तन्त्रचोदितम् ॥२॥  
विदध्यादुक्तरूपेण पूर्णत्वं त्वमुनाक्षतम् । काम्यहोमविधिं वक्ष्ये शृणु वाञ्छितदायकम् ॥३॥  
शालितण्डुलमादाय प्रस्थं भाण्डे विनिक्षिपेत् । समानवर्णवित्साया रक्ताया गोः पर्यस्तथा ॥४॥  
द्विगुणस्तत्र निक्षिप्य इनपयेन्संस्कृतेऽनले । धृतेन सिंकं सिक्षणं तु कृत्वा तत्सितं करे ॥५॥  
निधाय विद्यामष्टोर्ध्वं शतं जप्त्वा हुनेत्ततः । एवं होमो महालक्ष्मीमावहेत्रिपत्कृतः ॥६॥

सिक्षणं पिण्डं, ससितं सितया युतम्। तथा—

शुक्रवारेष्वपि तथा वर्षान्नप्रसमो भवेत् । पञ्चम्यां तु विशेषेण प्राग्वद्वोमं समाचरेत् ॥७॥  
तस्यां तिथौ त्रिमध्यकैर्मल्लिकाद्यैः सितैहुर्नेत् । अन्नाज्याभ्यां तु नियतं हुत्वान्नाद्यो भवेन्नरः ॥८॥  
यद्यद्विद्वाजित्तं वस्तु तानि सवानि सर्वदा । धृतहोमादावाप्नोति तथैव तिलमण्डुलैः ॥९॥  
पञ्चमीषु विशेषेण पूजां कुर्याद् व्रती भवेत् । प्रतिपत्तिथिमारभ्य पञ्चदश्यन्तमम्बिके ॥१०॥  
कामेश्वर्यादिदिव्याना देव्यस्वेकैकविग्रहाः । यत्सेन स्वस्वतिथौ तास्ताः पूज्या हुतादिभिः ॥११॥  
प्रीणयेद् व्रतसङ्कल्पसमेतो भक्तिसंयुतः । तेनायुः श्रीधनारोग्यविद्याकीर्तिसमन्वितः ॥१२॥  
जीवेद्वृष्टशतं भूमौ स्वकुल्याग्र्यश्च तत्त्ववित् । यत्तिथौ याः समाख्याताः स ताः सममवाप्नुयात् ॥१३॥  
विद्या विधिवदेवैता: प्रोक्ताः पञ्चदशापि च । संप्राप्य जपहोमाचार्योगतर्पणसेकतः ॥१४॥  
विद्यया देवतात्मानं संप्राप्याखिलमाचरेत् । विद्याप्राप्निविधिं देव ब्रूहि सम्यङ् ममाधुना ॥१५॥  
आसां पञ्चदशानां च येनैताः साधकोन्मुखाः । शृणु वक्ष्यामि ते देवि विद्याप्राप्निविधिं शुभाम् ॥१६॥  
येन विद्यादेवताभ्यामैक्यं योगेन सिद्ध्यति । तद्वावमावयोरैक्यरूपमानन्दविग्रहम् ॥१७॥  
यदवापुं यजन्ते द्वाय्यनेके मुनयोऽम्बिके । कुचन्दनैः कुञ्जपैर्वा सिन्दूरैर्गैरिकैः शुभैः ॥१८॥  
विदध्याद्विपुलं चक्रं व्यक्तरेखं सुशोभनम् । यस्या यच्चक्रमाख्यातं नित्यपूजाविधिक्रमे ॥१९॥  
तत्र कुम्भं निधायात्तर्जले संपूज्य देवताः । प्रोक्तक्रमसमोपेतं पूर्वेद्युर्गीतनृत्यकैः ॥२०॥  
कृत्वोत्सवमथान्येत्युः प्राग्वदभ्यर्च्यं तां तथा । तत्तिथौ प्राङ्मुखं शिष्यमुक्तलक्षणसंयुतम् ॥२१॥

तथाविधो गुरुः कुम्भजलैस्तमभिषेचयेत् । तज्जलं प्रागुदड्मध्यदिक्षुगं सर्वसिद्धिदम् ॥२२॥  
अन्यासु क्रमतोऽनिष्टान्यवाप्नोति सुनिश्चितम् । वहिदाहं मृतिं रोगं दारिद्र्यं देशपोचनम् ॥२३॥  
क्रमाद्वृह्यादिवाव्यन्तं फलानि स्मृतिमानि वै ।

वहिवासिनी नित्या प्रयोग—तन्त्रराज में कहा गया है कि हे परमेश्वरि! इस तन्त्र में विद्यासाधन अन्य तन्त्रों से अपेक्षित रूप में कहता हूँ। इसके होमविधि में धी, अन्न, गोधृत एवं जप की संख्या एक हजार या एक सौ तन्त्रों की आज्ञानुसार है। उक्त रूप में साधन करने से अक्षत पूर्वत्व प्राप्त होता है। अब काम्य हवन को कहता हूँ, जिससे वांछितार्थ की सिद्धि होती है। एक प्रस्थ शालि तण्डुल लेकर एक पात्र में रखे। लाल वर्ण के बछड़े वाली लाल गाय का दूध उसमें चावल का दुगुना डाले। संस्कृत अग्नि में उसे पकाये। धी से सिक्त करके उसमें चीनी मिलाकर रखे। विद्या का एक सौ आठ जप करे। तब हवन करे। हवन में महालक्ष्मी का आवाहन पक्ष की प्रतिपदा या शुक्रवार में करे। एक वर्ष तक ऐसा करने से साधक राजा के समान हो जाता है। विशेषतः पञ्चमी में पूर्ववत् हवन करे। वहिवासिनी की तिथि में त्रिमधुर युक्त मल्लिका शक्वकर अन्न आज्य से निश्चित संख्या में हवन करने से मनुष्य अनाद्य हो जाता है। सभी वांछितार्थ की प्राप्ति जैसे धी के हवन से होती है वैसे ही तिल-तण्डुल से भी होती है। पञ्चमी में विशेष रूप से ब्रत रहकर पूजा करे। शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ करके पूर्णिमा तक कामेश्वरी से चित्रा तक की देवी के एक-एक विग्रह की पूजा करे और हवन करे। इस प्रकार भक्ति से ब्रत-संकल्प करके उनको प्रसन्न करे तो आयु, श्री, धन, आरोग्य, विद्या, कर्तिं मिलती है। साथ ही वह कुलश्रेष्ठ और तत्त्वज्ञ होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। जिस तिथि की जो देवी कही गई है, उसकी विद्या का क्रमाशः तिथि के अनुसार जप, होम, पूजन, तर्पण आदि प्रतितिथियों में करते हुये अपने को विद्यास्वरूप मानकर समस्त कर्म सम्पादित करने से यथोक्त फल प्राप्त करता है। पार्वती ने कहा कि हे देव! विद्या-प्राप्ति की विधि कहिये। ये पद्मह विद्याये जिस प्रकार साधक की ओर उन्मुख होती है, उस विधि को कहता हूँ। जिस योग से देवता और विद्या में ऐक्य होता है, उसी भाव में हम दोनों का आनन्दविग्रह स्वरूप है, अनेक मुनिगण जिसकी पूजा करके फल प्राप्त करते हैं। लाल चन्दन कुहुम सिन्दूर गेहू से विशाल मुन्दर व्यक्त रेखा वाला चक्र बनाकर नित्य पूजा क्रम से उसमें कलश स्थापित करके उसके जल में देवता का पूजन प्रोक्त क्रम से नाच-गान के साथ करे। अन्य दिनों में भी उत्सव करके पूर्ववत् अर्चन करे। उस तिथि में उक्त लक्षणयुक्त शिष्य को पूर्वमुख बैठाये। विधि के अनुसार कलशजल से उसका अभिषेक करे। अभिषेक जल गिरकर यदि पूर्व, उत्तर, मध्य अर्थात् ईशान की ओर जाय तो सर्वसिद्धिप्रद होता है। दूसरी आनेयादि दिशाओं में जाने पर वहिदाह, मृत्यु, रोग, दारिद्र्य, देश से निष्कासन आदि अनिष्ट फल प्राप्त होता है।

ततोऽसौ परिधायाशु शुभ्वे शुद्धे च वाससी ॥२४॥

समाचार्य निजैर्वृत्तैः समस्तैर्वा पुरोदितैः । अस्थर्च्य पादयोर्नाथं पञ्चश्लोकैः स्तुवन्द्विशः ॥२५॥  
प्रणाम्योत्थाय पुरतो बद्धाङ्गलिकरो भवेत् । ततो गुरुस्तमाहूय चक्रमध्ये निवेश्य च ॥२६॥  
मनसा भावयन्नैक्यमात्मानं देवतात्मना । प्रोक्तक्रमेण तां देवीं विद्यारूपां महाद्युतिम् ॥२७॥  
समावाहाय्य मूर्धादित्रिषु स्थानेष्वनुक्रमात् । संस्थाय प्रोक्तरूपां तां ध्यात्वाभ्यर्च्य वदेन्मनुम् ॥२८॥  
जीवकर्णे त्रिशः पूर्णदेवतात्मा समाहितः । ततस्तत्रैव तां विद्यां शतं जप्यात्तदात्मवान् ॥२९॥  
पुनस्तदाज्ञयोत्थाय पुष्पैरभ्यर्च्य तं स्तुवन् । प्रणाम्य त्रिसुपासीत मूर्धिं बद्धाङ्गलिः स्तुवन् ॥३०॥  
आहूय क्रमाचारान् प्रोक्त्वा सम्याभजेति तम् । आदिशेद्देविकस्तस्मादिनादारभ्य सोऽपि तम् ॥३१॥  
नित्यशो जपपूजाद्यैरुपासीत शिवं गुरुम् । एवं पञ्चदशानां च नित्यानां क्रम ईरितः ॥३२॥  
विद्याप्राप्तिविधौ देवि सर्वं सम्यक् समीरितम् । तासां नैमित्तिं काम्यं ललितोक्तविधानतः ॥३३॥  
कुर्यात्रितिष्ठाद्यं चैवं यत एतास्तु तम्यः । आसामन्योन्मङ्गाङ्गिपूजासु परमेश्वरि ॥३४॥  
एकाङ्गित्वे स्थितान्यास्तप्तरिवारास्तथाविधाः । अन्यदा प्रोक्तरूपास्तास्तत्र तत्राचर्ने मताः ॥३५॥

तासां काम्यफलावाप्तिध्यानं तत्पटलोदितम् ॥३६॥  
 विद्या मन्त्रा इति प्रोक्ता यत्तद्देवं वद प्रभो । शृणु देवि विशेषं तु सन्दर्भते समेऽपि च ॥३७॥  
 वर्णानां देवताभेदान् द्विधा स्युस्ते त्वशेषतः । त्वदैवत्याः स्मृता विद्या मदैवत्यास्तु मन्त्रकाः ॥३८॥  
 पुनरस्यास्तु यन्त्राणि तत्फलानि शृणु प्रिये । विद्याक्षरेष्वानवृत्तान्यक्षराण्यष्ट तैस्तथा ॥३९॥  
 स्वराणां संगमादृष्टाविंशत्या शतमीरितम् । विधाय वृत्तयोर्मध्ये त्वष्टकोणं ततो द्वयम् ॥४०॥

अत्र अनावृत्ताक्षराणि 'हरवनसयम' इति। आदावकारः, मिलित्वाष्टावक्षराणि षोडशस्वरयुक्तानि चेदष्टाविंशत्युत्तरशतं १२८ वर्णा भवन्तीत्यर्थः।

कृत्वा तेषु न्यसेद्वृणानिष्टस्वष्टौ तु मध्यतः । मायां नामाङ्कितां कृत्वा तां तारेण प्रवेष्टयेत् ॥४१॥  
 अन्तर्वृत्तान्तराले ताँल्लिखेद्वृणान् दश क्रमात् । कर्मानुरूपान् पञ्चाशलिखेदुक्तक्रमेण वै ॥४२॥  
 बहिर्वृत्तान्तरा प्रागवदादिक्षानान्क्षराणि च । एवं षोडश यन्त्राणि जायन्ते तैर्यथाक्रमम् ॥४३॥ इति।

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—प्रथमतो मध्ये साध्यनामगर्भ ह्रींकारं विलिख्य तत्प्रणवेन बहिरावेष्ट्य तद्विहृत्तद्वयं कृत्वा तद्विहृष्टकोणं चतुरस्तद्वयेन विरच्य, तद्विहृत्तद्वयं विधायाभ्यन्तरवृत्तद्वयान्तराले कर्मानुसारीणि भूताक्षराणि दश द्वित्रिद्वित्रिक्रमेण विलिख्याष्टकोणेषु अष्टाविंशत्युत्तरशतं १२८ वर्णेषु प्रथमाष्टबीजानि विलिख्य तद्विहृत्त-द्वयान्तराले मातृकाक्षरैः संवेष्टयेत्। द्वितीययत्स्याष्टकोणेषु प्रागुक्तवर्णेषु प्रथमाष्टकं विहाय द्वितीयाष्टकं लिखेत्। अन्यत्समानम्। एवं षोडश यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः।

तदनन्तर शिष्य को शुभ्र शुद्ध वस्त्र पहनाये। आचमन करके पूर्वोक्त समस्त निज वृत्ति से पूजा करे। नाथ के पैरों का अर्चन कर उनकी स्तुति पाँच श्लोकों को तीन-तीन बार पढ़कर करे। प्रणाम करके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो। तब गुरु उसे बुलाकर चक्र में बैठाये। देवता और अपने में मन में ऐक्य मानकर उस विद्यारूपा तेजस्विनी देवी का आवाहन करे। मूर्धा आदि तीन स्थानों में स्थापित करके यथाविधि ध्यान करके शिष्य के कान में तीन बार मन्त्र बोले। तदनन्तर पूर्ण समाहित होकर उस विद्या का सौ जप करे। पुनः उससे आज्ञा लेकर पूजा और स्तुति करे। तीन बार प्रणाम करके हाथ जोड़कर स्तुति करके हुये विहित क्रम आहुत करके सम्यक् भजन करे। देशिक उस शिष्य को दिन भर के कर्मों को करने का आदेश दे। नित्य जप-पूजादि से भगवान् शिव की उपासना करे। इसी प्रकार क्रमशः पद्महों नित्याओं का क्रम कहा गया है। इस प्रकार विद्या-प्राप्ति विधि के बारे में सब कुछ कहा गया। उनके नैमित्तिक और काम्य कर्म ललितोक्त विधान से प्रतिष्ठा करके करे, क्योंकि ये उसी के रूप हैं। इनकी पूजा अंग और अंगी रूप में की जाती है। अंगी रूप से स्थित अन्य उसके परिवार का पूजन भी उसी प्रकार से करे। उनके काम्य फल की प्राप्ति के लिये ध्यान उसके पटल में कथित है; अन्य सभी विधान साधारण ही हैं।

हे प्रभो! विद्या और मन्त्र में भेद बतलाइये। सन्दर्भ सम होने पर भी वर्णों के देवता दो प्रकार के होते हैं। हे वार्तीत! तुम्हारे दैवत्व को विद्या और मुझ शिव के दैवत्व को मन्त्र कहते हैं। इनके यन्त्रों का फल सुनो। स्वरों के संगम से इस देवता के मन्त्रवर्ण एक सौ अद्वैर्यम् हैं। दो वृत्त के मध्य में अष्टकोण बनाकर मध्य में आठ वर्णों को लिखे। इसका स्पष्ट रूप इस प्रकार है—प्रथमतः मध्य में साध्य नाम गर्भ 'ह्रीं' लिखे। उसे बाहर से ३५ से वेष्टित करे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में कर्मानुरूप दश भूताक्षरों को दो-दो, तीन-तीन के क्रम से लिखे। आठ कोनों में १२८ वर्णों में से पहले आठ वर्णों को लिखे। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृका वर्णों को लिखकर वेष्टित करे। दूसरे यन्त्र के आठ कोनों में प्रथम अष्टक को छोड़कर द्वितीय अष्टक को लिखे। अन्य सब समान रखे। इस विधि से सोलह यन्त्र बनते हैं।

तथा—

तैर्यन्त्रः साध्येन्त्रित्यं मनीषितमशेषतः । प्रथमं खपरे रक्तवह्निमूलेन संयुतम् ॥४४॥

सिन्दूरं तदसे पिष्ठ्वा धन्तुररससंयुते । लिखित्वा खदिराङ्गारे तापयेत्रिशि जापवान् ॥४५॥  
 नारी नरो नृपोऽन्यो वा समायाति च तद्वलात् । तदेव तेन ताप्त्रे वा कांस्ये वा प्राग्वदलिखेत् ॥४६॥  
 तत्त्वापनादपि भवेत् पूर्वोक्तं फलमीश्वरि । द्वितीयं खपरे तेन विलिख्य निशि तापयेत् ॥४७॥  
 नारी वश्यं समायाति जन्माचारविलङ्घनी । तृतीयं तेन तत्रैव लिखित्वा निशि तापयेत् ॥४८॥  
 श्मशानाग्नौ मुक्तकेशः क्षणाद्वैरी ज्वरातुरः । तदेव दप्तीदध्वहृष्टज्ञारे तु निर्जने ॥४९॥  
 रसे पिष्ठ्वा लिखित्वाग्नौ संताप्य निखनेततः । श्मशाने वैरिणा प्रोक्तकाले क्रुद्धाशयो जपन् ॥५०॥  
 मनुं तदैव संभ्रान्तः पिशाचातो रिपुर्भवेत् । चतुर्थं विलिखेत्कृष्णपटचीरेऽसिताम्बरे ॥५१॥  
 पूर्ववत्त्र निखनेद्रात्रावृक्तकमेण तु । दाहज्वरेण सप्ताहाद्विपुर्याति यमालयम् ॥५२॥  
 पञ्चमेऽप्यथवा षष्ठे द्वयोर्नाम लिखेद् द्वयोः । काकोलूकजपक्षोत्थलेखिन्या खर्परद्वये ॥५३॥  
 श्मशाने निखनेत्राग्वन्नदीतीरद्वये द्वयम् । नद्यां तु वारिपूर्णायां विद्वेषः स्यात्योर्मिथः ॥५४॥  
 सप्तमे नाम संलिख्य सीसपट्टे यथाविधि । शिरः कपाले निक्षिप्य श्मशाने निखनेत्रिशि ॥५५॥  
 रिपोः पुरोक्तकाले च पिशाचैर्गृहते रिपुः । अष्टमं खपरे कृत्वा रिपुद्वारे खनेत्रिशि ॥५६॥  
 सप्ताहात्तदगृहाद्वैरी प्रयात्युच्चाटितोऽन्यतः । नवमं हेमि कृत्वा तदूर्मिकायां रवेदिने ॥५७॥  
 सिद्ध्यायोगे शुभे लाने धिषणोदय एव वा । कृत्वापमृत्युरोगादिदुःखेभ्यो मुच्यते नरः ॥५८॥  
 दशमं राजते पट्टे कृत्वा वेशमनि कुत्रिचित् । निधाय पूजयेद्वैश्मन्यश्मपातादिशान्तये ॥५९॥  
 तथा भूतग्रहार्तांश्च रक्षेदेतस्य धारणात् । एकादशं लिखेद्वृजे पांटीरेन्दुद्रवैस्तु तत् ॥६०॥  
 उक्तक्रमसमोपेतं गुलिकीकृत्य तं पुनः । सितसिक्थमये लिङ्गे संस्थाप्याभ्यर्थयेत्युनः ॥६१॥

अत्र सिक्थं मधूच्छिष्टम् ।

स्थापयेत् क्षेत्रमध्ये तु पूजयेत्रित्यशक्त तत् । संध्यासु सूसितैः पुष्टैः सौरभाद्यैर्विधानतः ॥६२॥  
 मासात्तदर्थात्सप्ताहाद्वशे स्युः शत्रवो ध्रुवम् । भवेयुर्व्याधितास्तेनोद्भृतेनारोग्यमाद्युयः ॥६३॥  
 ज्वरात्सु विशेषेण सुखिताः स्युरयत्नतः । आम्लसौवीरमध्यस्य विद्वेष्यति वैरिणो ॥६४॥  
 तत्रैव कवथनाद्रोगं द्वयोरुत्सादयेदपि । शुण्ठीमरिच्यपिप्पल्यः सुसूक्ष्मं परिचूर्णिताः ॥६५॥  
 लकुचस्य रसोपेतास्तमध्ये तद्विनिक्षिपेत् । तापयेत्तिषु संध्यासु यत्रारातिसु तमुखम् ॥६६॥  
 प्रोक्तकाले ज्वरैरार्तस्तापतृष्णासमन्वितः । द्वादशं कर्पटे रात्रिरसेनालिख्य तत्युनः ॥६७॥  
 इष्टकायुगमध्यस्यं कृत्वा तच्छ्लेषयेद् दृढम् । स्थापयेच्चण्डिकागेहे शास्तुरायतनेऽपि वा ॥६८॥  
 स्वगेहभित्तिमध्ये वा शयनस्थानतोऽपि वा । स्तम्भयेद्वैरिणो रोषमुद्योगं बन्धचिन्तनम् ॥६९॥  
 व्यवहारं रणं चान्यदस्याभिमतमात्मनः । त्रयोदशेन भूर्जस्थेनाशु धारणतोऽङ्गना ॥७०॥  
 वस्यापि लभते पुत्रं विचित्रा यन्नशक्तयः । चतुर्दशगतं नाम कृत्वा भूर्जे च तत्था ॥७१॥  
 सिक्थमध्यगतं कृत्वा तं निशीथेऽभितापयेत् । सप्ताहाद्वशमायान्ति श्वियो वा पुरुषा नृपा ॥७२॥  
 गजा हया मृगास्त्वन्ये ये जीवा भूतलाश्रयाः । परेण नामा युक्तेन फलकालिखितेन वै ॥७३॥  
 सुखप्रसूतिः स्यात्त्वीणां तत्पूजा प्रेक्षणादिना । षोडशे नाम संलिख्य धारयेत्राणिनां तथा ॥७४॥  
 रक्षा भवति सर्वत्र ग्रहरोगभयादिषु । तदेव स्वर्णपद्मस्यं विधाय विधिना युतम् ॥७५॥  
 ऊर्मिकाङ्गदभूषादौ मूर्धिं वा बिभूयात्तः । आधिव्याधिविनिर्मुक्तो निःसपलो जितेन्द्रियः ॥७६॥

भोक्ता कर्ता च पुण्यानां जीवेद्वैष्टशतं भुवि ।

इति वह्निवासिनीनित्याप्रयोगविधिः । (११ प०)

उक्त सभी यन्त्रों से मर्नीशी नित्य साधन करे। प्रथम यन्त्र को खपड़े पर लाल वहिमूल के रस में सिन्दूर धूतूर का रस मिलाकर निर्मित घोल से लिखे। रात में जप करते हुए उसे खेर की अग्नि पर तपावे। उसके प्रभाव से नारी-नर या नृप उसकी ओर खीचे चले आते हैं। इसी प्रकार ताबे या काँसे के पत्तर पर लिखकर उसे आग पर तपाने से पूर्वोक्त फल मिलते हैं। द्वितीय यन्त्र को खपड़े पर लिखकर रात में आग पर तपावे तो कुल के आचार को छोड़कर नारी वशीभूत होकर आ जाती है। तीसरे को भी उसी प्रकार खपड़े पर लिखकर चिता की अग्नि पर तपावे तो वैरी तत्क्षण ज्वरातुर हो जाता है। उसी प्रकार दम्पति दग्ध अंगार में रसपिष्ठ मिलाकर यन्त्र लिखकर आग पर तपाकर शमशान में गाड़ कर वैरी पर कुद्धाशाय होकर मन्त्रजप करे तो शत्रु पिशाचों से पीड़ित होता है। चौथे यन्त्र को काले वस्त्र पर काले अम्बर से लिखकर पूर्ववत् गाड़ दे तब शत्रु ज्वर-दाह से शत्रु एक सप्ताह में यमलोक चला जाता है। पाँचवें और छठे यन्त्र को कौआ और उल्लू के फंखों से नामसहित खपड़ों पर लिखे। शमशान वाली नदी के दोनों किनारों पर दोनों को गाड़ दे। नदी के जल से पूर्ण होने पर दोनों में विदेश हो जाता है। सप्तम यन्त्र को सीसे पर बनाकर उसमें नाम लिखे। खोपड़ी में रखकर रात में शमशान में गाड़ दे। इससे एक सप्ताह में वैरी पिशाचग्रस्त हो जाता है। अष्टम यन्त्र को खपड़े पर लिखकर शत्रु के द्वार पर रात में गाड़ दे तो एक सप्ताह में वैरी उच्चारित होकर अपना घर छोड़कर भाग जाता है। नवम यन्त्र को सोने के पत्तर पर लिखकर रविवार को शुभ सिद्ध योग में गुरु के उदय होने पर नग्न होकर भूमि में गाड़ दे तो कृत्या-अपमृत्यु-रोगादि दुःखों से साधक मुक्त हो जाता है। दशवें यन्त्र को चाँदी के पत्तर पर लिखकर घर में कहीं पर रखकर पूजा करने से शान्ति होती है। इसके धारण करने से भूत-ग्रहादि से रक्षा होती है। ग्यारहवें यन्त्र को भोजपत्र पर चन्दन-कपूर से लिखकर उसकी गोली बनाकर उजले मोम के लिङ्ग में स्थापित करके पूजा करे। तब मधु में रखकर नित्य पूजा सुरभित उजले फूल से सन्ध्या में करे तो एक माह या एक पक्ष या एक सप्ताह में शत्रु वश में हो जाता है। शत्रु के व्याधिग्रस्त होने पर यन्त्र को मधु से बाहर निकालने पर निरोग हो जाता है। ज्वरार्त सुखी हो जाता है। आमला सौंवीर में रखने से वैरियों में द्वेष होता है। इसी प्रकार वकाथ में रखने से दोनों रोग से मुक्त हो जाते हैं। सोंठ, मरिच, पीपल के महीन चूर्ण को लकुच के रस में मिलाकर उस यन्त्र को रख कर तीनों सन्ध्याओं में शत्रु की ओर करके तपावे तो उक्त काल में वैरी बुखार से पीड़ित होकर ताप एवं तृष्णा से बेचैन होता है। बारहवें यन्त्र को खपड़े पर हल्दी रस से लिखकर उसे दो ईंटों के बीच में रखकर दोनों ईंटों को मजबूती से बाँध कर चण्डी मन्दिर में स्थापित करे। अथवा वैरी के गृह में गाड़ दे या अपने घर के भीतर गाड़ दे या अपने शयन स्थान में गाड़ दे; इससे वैरियों का क्रोध उद्योग-बन्ध चिन्तन स्तम्भित हो जाता है। व्यवहार, युद्ध या अन्य अभिप्सित का स्तम्भन होता है। त्रयोदश यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से वस्त्या को भी पुत्र होता है। इस यन्त्र की शक्ति विचित्र है। चौदहवें यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर मोम में बन्द कर दे, उसे रात में तपावे तो एक सप्ताह में स्त्री-पुरुष या राजा वश में हो जाते हैं। पन्द्रहवें यन्त्र पर हाथी, घोड़े, मृग या अन्य जीव के नाम फलक पर लिखने कर पूजा करने या देखने से खियों को सुख से प्रसव होता है। सोलहवें यन्त्र में नाम लिखकर धारण करने से प्रणियों की रक्षा ग्रह-रोगादि के भय से होती है। इसी प्रकार इस यन्त्र को सोने के पत्तर पर विधिवत् लिखकर हृदय पर, बाँह में, शिर की पगड़ी में धारण करने से साधक आधि-व्याधि से मुक्त होकर वह जितेन्द्रिय अपनी पत्नी का भोक्ता, कर्ता, पुण्यवान होकर सौ वर्षों तक पृथ्वी पर जीवित रहता है।

## महावत्रेश्वरीनित्याप्रयोगविधिः

अथ महावत्रेश्वरीनित्याप्रयोगविधिः। श्रीतत्रराजे (१२ प० २२ श्लो०) —

वसन्तकाले ग्रीष्मे वा पूर्णामारभ्य साधयेत् । हविष्याशी पयोभक्षः फलमूलाशनोऽथवा ॥१॥  
 स्नातः सुगन्धिसलिलैरुणांशुकवाञ्छुचिः । चन्द्रचन्दनकाश्मीरचर्चालोहितविग्रहः ॥२॥  
 अञ्जनाक्षाक्षियुगलस्ताम्बूलारुणवक्त्रवान् । मुखापितेन्दुशकलो हृष्टचेता जितेन्द्रियः ॥३॥  
 मौनी त्रिकालपूजासु कृतसंकल्पसाधनः । नक्ताशी हुतशिष्ठेन जपेद्विद्यां समीरिताम् ॥४॥  
 नित्यशो भोजयेद्विप्रान् भक्तान् भजनकौतुकान् । अघादिहीनान् मधुरं पायसं भोज्यभक्तिमान् ॥५॥  
 प्रणम्याभ्यर्थ्यर्च विसृजेन्नित्यं सप्तदिनेषु तु । गुरुं जीवनमासाद्य प्रणम्यासकृदात्मवान् ॥६॥

धनद्यान्याम्बराद्यैस्तं संतोष्य तदनुज्ञया । कृतारम्भो नित्यशाश्व पूजयेत्तं च भक्तिः ॥७॥  
 अन्ते च वित्तः स्तोत्रैश्च तं संतोष्य कृती भवेत् । वित्तशाठ्यं च दम्भं च मोहं चासत्यमेव च ॥८॥  
 न कदचित् प्रकुर्वीत विशेषाहुरसन्निधौ । एवं लक्ष्त्रयं जप्त्वा तद्शांशं हुनेद् घृतैः ॥९॥  
 आरग्वधप्रसूनैर्वा प्रसूनैर्बुलोद्धवैः । मधूकजैश्चम्पकैर्वा त्रिमध्वक्तैश्च नित्यशः ॥१०॥  
 चन्द्रचदनकस्तूरीकाश्मीरसुरभीकृतैः । तर्पयेत्सलिलैस्तावद् दिनशो भक्तिमान् दृढः ॥११॥  
 एवं संसिद्धमन्त्रस्तु कुर्यात्काम्यानि साधकः । गुरुभक्तो नित्यकृत्यकृतसंकल्पसंयुतः ॥१२॥  
 सहस्रजापी स्थिरधीर्मन्त्रवीर्यविदात्मवान् । यः सोऽपि काम्यान्कुर्वीत प्रयोगान्नान्यथा शिवे ॥१३॥  
 यद्यज्ञानेन मोहेन चापलेनापि वा चरेत् । अनर्थक्लेशराजादीपीडाः प्राप्नोति निश्चितम् ॥१४॥  
 अरुणैः पङ्कजैर्होमं कुर्यात् त्रिमधुराप्लुतैः । मण्डलाल्लभते लक्ष्मीं महतीं श्लाघ्यविग्रहाम् ॥१५॥  
 कहाँैः क्षीद्रसंसित्तैः पौराण्यं तद्विनावधि । जुहुयान्त्रित्यशो भक्त्या सहस्रं विकचैः शुभैः ॥१६॥  
 तद्विनेषु तु पूर्वोक्तान् भोजयेदुक्तरूपतः । तावच्च जप्याद्वोमान्ते यावसंख्यं हुतं कृतम् ॥१७॥  
 चम्पकैः क्षीद्रसंसित्तैः सहस्रहवनाद् श्रुत्वम् । लभते स्वर्णनिष्काणां शतं मासेन पूर्ववत् ॥१८॥  
 पाटलैर्घृतसंसित्तैश्चित्तसहस्रं हुतैस्तथा । दर्शादिमासाल्लभते चित्राणि वसनानि च ॥१९॥  
 कर्पूरचन्दनादीनि सुगम्यीनि च मासतः । वस्तूनि लभते हृद्यरन्धैर्भोगोपयोगिभिः ॥२०॥  
 शालीभिः क्षीरसिक्तकाभिः सप्तमीषु शतं हुनेत् । तेन शालिसमृद्धिः स्यान्मासैः षड्भिरसंशयम् ॥२१॥

**महावद्रेष्टरी प्रयोग विधि—**तन्त्राज में कहा गया है कि वसन्त काल या ग्रीष्म काल में पूर्णिमा से प्रारम्भ करके इसका साधन करो। हविष्यात्र, दूध या फल-मूल का भोजन करो। सुगम्यित जल से स्नान करो। लाल पवित्र वस्त्र धारण करो। शरीर में कपूर चन्दन केसर का लेप लगाकर लाल विग्रह होकर रहे। आँखों में अंजन लगावे। ताम्बूल से मुख लाल रखे। मुख में कपूर का ढुकड़ा रखे। प्रसन्न मन एवं जितेन्द्रिय रहे। तीनों कालों की पूजा के समय मौन रहे। साधना में कृतसंकल्प रहे। रात में हुतशिष्ट का भोजन करो। सावधानी से विद्या का जप करो। विप्रों, भक्तों एवं भजन करने वाले निष्पाप लोगों को नित्य मधुर पायस का भोजन कराये। सात दिनों तक भोजन कराकर उन्हें प्रणाम करो। गुरु को बुलाकर प्रणाम करो। धन-धान्य-वस्त्र आदि देकर गुरु को सन्तुष्ट करो। उनकी आज्ञा से साधना आरम्भ करके भक्तिसहित नित्य पूजा करो। अन्त में गुरु को धन देकर स्तुति करके उन्हें सन्तुष्ट करो। वित्तशाठ्य, दम्भ, मोह और असत्य भाषण विशेषतः गुरु के सामने न करो। इस प्रकार तीन लाख जप करके उसका दशांश तीस हजार हवन धी से करो। त्रिमधुरात्क अमलतास, मौलसिरी या महुआ के फूलों से नित्य हवन करो। इन सात दिनों तक कपूर, चन्दन, कस्तूरी, केसर से सुगम्यित जल से दृढ़ भक्ति से तर्पण करो। इस प्रकार से मन सिद्ध होता है। इस सिद्ध मन्त्र से गुरुभक्त साधक नित्य कृत्यसंकल्प होकर काम्य कर्मों को साधित करे। काम्य कर्मों में नित्य एक हजार जप स्थिर बुद्धि से मनवीर्य को जानकर जो साधक प्रयोग करता है, उसी को सिद्धि मिलती है; अन्यथा प्रयोग सिद्ध नहीं होते। यदि अज्ञनवश, मोह से या चपलता से प्रयोग करता है तो उसे अनर्थ, ब्लेश एवं राजा से दुःख मिलता है। त्रिमधुरात्क लाल कमल से चालीस दिनों तक हवन करने से बहुत धन मिलता है और वह श्लाघ्य विग्रह हो जाता है। मधुसिक्त कलहार से पूर्णिमा से आरम्भ करके उतने दिनों तक नित्य एक हजार हवन करने से, उतने दिनों तक पूर्वोक्त लोगों को उक्त रूप में भोजन कराने से और उतने दिनों तक जप-होम के बाद मधुसिक्त चम्पा के फूलों से एक हजार हवन करने से साधक को एक माह के अन्दर सौ निष्क सोना मिलता है। एक निष्क चार ग्राम के बराबर होता है। सौ निष्क चार सौ ग्राम के बराबर हुआ। धी से सिक्त गुलाब के फूलों से तीन हजार नित्य हवन अमावस्या से अमावस्या-पर्वत तीस दिनों तक करने से रंग-बिरंगे वस्त्र प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त कपूर चन्दनादि सुगम्य, वस्त्र और भोगयोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। दुर्गासिक्त शालि चावल से प्रत्येक सप्तमी तिथियों में छः महीनों तक हवन करने से धान्य में समृद्धि प्राप्त होती है।

तिलैहृतैस्तद्विवसे वर्षादारोग्यमानुयात् । स्वजन्मसु त्रिषु तथा दूर्वाभिर्जुहुयात्तथा ॥२२॥  
 निरातङ्गे महाभोगः शतं वर्षाणि जीवति । गुड्चीतिलदूर्वाभिन्निषु जन्मसु वा हुनेत् ॥२३॥  
 तेनायुः श्रीयशोभाग्यपुण्यनिध्यादिवान् भवेत् । घृतपायसदुग्रधैस्तु हुतैसेषु त्रिषु क्रमात् ॥२४॥  
 आयुरारोग्यविभवैर्नृपमान्यो भवेत् तथा । सप्तमां कदलीहोमात्सौभाग्यं लभतेऽब्दतः ॥२५॥  
 दूर्वात्रिकैस्तु प्रादेशमात्रैस्त्रिस्वादुसंयुतैः । जुहुयादिनशो घोरे सत्रिपाते ज्वरे गदे ॥२६॥  
 महारोगेषु दूर्वाभिस्तिलैश्छन्नोद्भवैस्तथा । त्रिभिर्वा नित्यशो होमं कुर्यात्रिस्वादुसंयुतैः ॥२७॥  
 षण्मासादब्दतो वापि रोगानुक्तः सुखी भवेत् । तद्विनेषु जपेद्विद्यां नित्यशः सलिलं स्पृशन् ॥२८॥  
 सहस्रवारं तत्त्वोयैः स्नानपानं समाचरेत् । पाकाद्यमपि तैरेव कुर्याद्विग्विमुक्तये ॥२९॥  
 साध्यर्णवृक्षं सञ्चुण्ठं त्र्युषणं सर्षपं तिलम् । पिष्टं च साध्यपादोत्थरजसा च समन्वितम् ॥३०॥  
 कृत्वा पुत्तलिकां तैस्तु हृदये नामसंयुताम् । प्राग्वच्छित्त्वायसैस्त्रीक्षणैर्निशि पुत्तलिकां हुनेत् ॥३१॥  
 एवं दिनैः सप्तभिर्वा त्रिभिर्वैकदिनेन वा । साध्यो वश्यो भवेच्छीप्रमापि दूरस्थितो दृढः ॥३२॥  
 तथाविधां पुत्तलिकां कुण्डमध्ये खनेद्वृति । उपर्यग्निं निधायात्र विद्यया दिनशो हुनेत् ॥३३॥  
 त्रिसहस्रं त्रियामायां सर्षपैस्तद्रासाप्लुतैः । शतयोजनदूरादप्यानयेद्वनितां बलात् ॥३४॥

त्रियामायां निशीथे । तद्रासाप्लुतैः सर्षपतैलाकैः ।

तां तु पुत्तलिकां मध्ये मधूच्छिष्टसमन्विताम् । कृतप्राणप्रतिष्ठां च शमशाने निखनेत्रिशि ॥३५॥  
 साध्ययोनिं च तत्रैव च्छित्त्वा दत्त्वा बलिं ततः । कृताभिषेकस्तां विद्यां प्रजपेच्च शतत्रयम् ॥३६॥  
 अरातेरष्टमे राशौ मासाश्रानाविधैरपि । रोगैभूतादिसंक्लेशैर्नाशमेति सुनिश्चितम् ॥३७॥  
 यद्यन्तरा समुद्भूत्य सलिले तां खनेत्रिशि । क्लेशैस्तैः स विनिरुक्तः सुखी जीवति भूतले ॥३८॥  
 साध्यवृक्षेण कृत्वा तां सर्षपाज्ये निवेशिताम् । तोयमध्ये निधायैतत् क्वाथयेदुत्तलवासरैः ॥३९॥  
 वैरी तीव्रज्वरेणार्तः कृती प्राग्वत्सुखी भवेत् । तामेव चण्डकागेहे तथा बलियुतां खनेत् ॥४०॥  
 साध्यो नरश्च नारी चेच्छास्तुरायतने खनेत् । तद्विधानेन सहितं शत्रुरुन्मादवान् भवेत् ॥४१॥

प्रत्येक सप्तमी में तिल के हवन से एक वर्ष में गोरी निरोग हो जाता है। अपने तीनों जन्मदिनों—माता के उदर से बाहर होने का दिन, उपवीत का दिन और दीक्षादिवस—इन तीनों दिनों में दूब के हवन करने से निर्भय होकर सौ वर्षों तक महाभोग भोगते हुए जीवित रहता है। तीनों जन्मदिनों में गुरुच, तिल, दूब के हवन से आयु, धन, आरोग्य, वैभव एवं नृपमान्यता प्राप्त होती है। प्रत्येक सप्तमी में केला के हवन से एक वर्ष में सौभाग्य प्राप्त होता है। त्रिमधुरात् वित्ता भर लम्बे तीन-तीन दूबों के हवन से घोर सत्रिपात ज्वर और रोग, महारोग नष्ट हो जाते हैं। त्रिमधुर सिक्त तीन दूबों से नित्य हवन से छः महीनों में या साल भर में साधक रोगमुक्त हो जाता है। उन दिनों में जल को स्पर्श करते हुये विद्या का एक हजार जप नित्य करना चाहिये। उस जल से स्नान पान और भोजन पकाकर खाने से साधक रोग से विमुक्त हो जाता है। साध्य नाम के वृक्षों की लकड़ी के चूर्ण में सरसों तिल पिष्ट साध्य के पैरों की धूलि मिलाकर पुतली बनावे। उसके हृदय में साध्य का नाम लिखे। पूर्ववत् तेज हथियार से उसे काट-काट कर रात में हवन करे। ऐसा सात दिनों तक या तीन दिनों तक या एक दिन करने से साध्य शीघ्र वश में हो जाता है। यदि वह दूर स्थित हो तो भी वशीभूत हो जाता है। उसी प्रकार पुतली बनाकर कुण्डमध्य में गाढ़ दे। उसके ऊपर आग जलाकर दिन में हवन कर रात्रि में एक-एक हजार रसप्लुत सरसों से करे तो सौ योजन दूर रहने वाली रमणी भी खोंची चली आती है। साध्य नाम वृक्ष के पिष्ट में मोम मिलाकर प्रतिमा बनावे। प्राणप्रतिष्ठा करके उसे शमशान में गाढ़ दे। साध्य की योनि काटकर बलि प्रदान करे। विद्या से अभिषेक करे। विद्या का तीन सौ जप करे। शत्रु की अष्टम राशि से एक माह के अन्दर विविध रोग भूतादि से ग्रस्त होकर साध्य की मृत्यु हो जाते हैं। उस पुतली को शमशान से निकालकर जल में गाढ़ देने से साध्य रोग-कष्टों से मुक्त होकर सुखी और जीवित रहता है। साध्य नाम के वृक्षों

की लकड़ी पिष्ट, सरसों, गोधृत मिलाकर क्वाथ बनावे। उसमें पुतली को रख दे। इससे वैरी तेज बुखार से दुःखी हो जाता है। पुनः उसमें से निकाल कर मूर्ति को जल में रख दे तो वह सुखी हो जाता है। उस पुतली को चण्डी मन्दिर में गाढ़ कर बलि देने से साध्य नर या नारी वश में होती है। इसी प्रकार करने से शत्रु उन्माद से ग्रस्त हो जाता है।

### महावत्रेश्वरीयन्त्रप्रयोगः

महावत्रं च वत्रं च यत्राण्येतान्यनुक्रमात्। प्रयोगानपि वक्ष्यामि समाहितधिया शृणु ॥४२॥  
 प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदवत्वं विंशत्सूत्राणि पातयेत्। तेन कोष्ठानि जायन्ते त्वेकषष्ठ्या शतत्रयम् ॥४३॥  
 तेषु कोणचतुष्कोष्ठपि मार्जयेत्पञ्चकेन च। चत्वारिंशतत्र शेषं वज्राकारं यथा भवेत् ॥४४॥  
 दिक्षु चत्वारि चत्वारि मार्जयित्वा त्रिकोणगम्। कुर्याच्छेषाणि कोष्ठानि पञ्चषष्ठ्या शतं भवेत् ॥४५॥  
 तेषु पूर्वादि परितो लिखेद्विद्याक्षराणि तु। प्राग्वत्स्वरविभिन्नानि प्रागुक्तविधिना तथा ॥४६॥  
 चत्वारि चत्वारिंशत्पञ्च शतं तेषां तु मध्यतः। एकविंशति कोष्ठानि शिष्टानि पुनर्लिङ्के ॥४७॥  
 तेषु पर्याणित्याणुवर्णशृष्टकसमन्वितम्। घटिकायुगवर्णां च लिखेत्प्रागुक्तयोगतः ॥४८॥  
 शिष्टेषु विद्यावर्णश्च लिखेद् द्वादश शेषयोः। साध्याख्यामालिखेदुक्तकमेण पुटयोद्धयोः ॥४९॥  
 चतुर्दिक्षु लिखेत्कोणेष्वभितो भौतिकार्णकान्। द्वित्रिकमेण प्राक्प्रत्यक्त्वोणयोस्तु त्रयम् ॥५०॥  
 एतत्प्रत्येषु संलिख्य संपूर्ज्य विधिना युतम्। स्पृशञ्जपेन्मनुं पश्चात्निःसहस्रं ततस्तु तत् ॥५१॥  
 विनियुज्यादथोक्तेषु कायेषु क्रमतः शिवे। भूताक्षराणि च पुनर्लिखेत् कार्यानुरूपतः ॥५२॥  
 महावत्रमिति ख्यातं सर्वत्रैवापराजितम्। विजयस्तम्भविद्वेषवश्येच्चाटनकर्मसु ॥५३॥  
 रक्षां पुष्टिं च शान्तिं च तथैव रिपुनिग्रहे। देशाराष्ट्रपुरामनिवेशोदर्विशेषतः ॥५४॥  
 घोरेष्वृत्यातजातेषु भूमौ संलिख्य गैरिकैः। मध्ये देवीं समावाहु पूजयेत्त्रित्यशः शिवाम् ॥५५॥  
 संध्यासु तिसृषु प्रोक्तक्रमान्नीराजनं तथा। कुर्यात् त्रिरात्रं द्विगुणं त्रिगुणं काम्यरूपतः ॥५६॥  
 राज्ञं वैरिनिरोधेन पुरीमात्रावशेषिते। विभवे मण्डपे तस्य प्रोक्तवत्रं लिखेन्महत् ॥५७॥  
 दरदेनार्चयेत्तस्य मध्ये देवीं शुचिस्मिताम्। नृत्यगीतादिभिः सार्थं संध्यासु च विशेषतः ॥५८॥  
 एवं प्राग्वद्विनैरुक्तैर्विजयी नृपतिर्भवेत्। वैरिनाशेन वा तस्य भङ्गाद्व्यसनतोऽपि वा ॥५९॥  
 ततस्तन्मार्जयित्वा तु भाले कृत्वा पुरीं बलैः। परीयादेशिकं त्वये गजे जीवेच्चिरं सुखी ॥६०॥  
 निःसपल्नो निरातङ्कः षडङ्गख्यातवैभवः। एवमेतस्य वज्रस्य वैभवं को नु वर्णयेत् ॥६१॥

**अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः**—तत्र प्राक्प्रत्यग्यायाता दक्षिणोत्तरायताश्च विंशतिं विंशतिं रेखाः कृत्वा समान्तरालानि एकविंशतिरत्रिशतकोष्ठानि विलिख्य, कोणचतुष्ये प्रतिकोणं पञ्चचत्वारिंशत्पञ्चचत्वारिंशतिं अशीत्युत्तरशतं कोष्ठानि गुरुकृत्या मार्जयित्वा, तेषु स्थलेषु चत्वारि कोणानि विद्याय सिद्धेषु पञ्चषष्ठ्युत्तरशतकोष्ठेषु १६५ मूल-विद्याक्षराण्यनावृतानि षडशस्वरसुकृतानि चतुश्चत्वारिंशत्पञ्चत्रिशतकाक्षराणि १४४ पूर्वदिग्रादक्षिणयेन प्रवेशगत्या विलिख्य-वशिष्टैकविंशतिकोष्ठेषु तद्विनित्याया वर्णत्रयं पर्याणित्याया वर्णत्रयं षट्कोणेषु विलिख्य, घटिकाक्षरसहितं युगाक्षर-मेकस्मिन् कोष्ठे विलिख्यावशिष्टचतुर्दशकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकमेकमिति मूलमन्त्राक्षराणि विलिख्यावशिष्टकोष्ठद्वये साध्याख्यां कर्म च विलिख्य दिक्विंशतिरुष्टये तत्कर्मानुसारिभूतवर्णान् द्वित्रिद्वित्रिकमेण विलिखेदत्यन्तफलं भवति।

**महावत्रेश्वरी यन्त्र और उसके प्रयोग—**अब महावत्र और वज्र यन्त्र और उनके को सुनो। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण उत्तर बराबर दूरी पर बीस रेखाओं को खींचे। इससे ३६१ कोष्ठ बनते हैं। उसके चारों कोनों के पैतालीस-पैतालीस कुल १८० कोष्ठों को मिटा दे। उन कोनों में चार त्रिकोण बनाये। चारों दिशाओं में त्रिकोणाकार में उनतीस-उनतीस कुल ११६ कोष्ठों को मिटा दे। कुल १८० + ११६ = २९५ कोष्ठों को मिटा देने पर शेष १६५ कोष्ठ बचते हैं। उनमें से १४४ में

अनावृत् मन्त्र अक्षरों को लिखे। शेष २१ कोष्ठों में से छः कोष्ठों में पर्यायनित्या के छः अक्षरों को लिखे। २ कोष्ठों में दो घटिका वर्णों को लिखे। शेष एक कोष्ठ में साध्य नाम और कर्म लिखे। चारों दिशाओं के विकोणों में दो-तीन क्रम से भूत वर्णों को लिखे। इस प्रकार यन्त्र बनाकर विधिवत् पूजन करे।

यह महावत्र यन्त्र सर्वत्र अपराजित रूप में विष्वात है। इससे विजय, स्तम्भन, विद्वेषण, वशीकरण, उच्चाटन, रक्षा, पुष्टि, शान्ति कर्म होते हैं। देश-राष्ट्र-पुर-ग्राम को शत्रुओं से बचाने में इनका प्रयोग होता है। धोर उत्पात होने पर गेरु से भूमि पर इस यन्त्र को लिखकर उसके मध्य में देवी का आवाहन करके नित्य पूजा तीनों संस्थाओं में प्रोक्त क्रम से करके आरती करे। तीन रातों तक दुगुना-तीन गुना पूजा करे। वैरी-निरोध के लिये राजा नगर के बाहर सुन्दर मण्डप बनाकर प्रोक्त वत्र यन्त्र को सिंगरफ से लिखकर उसके मध्य में शुचिस्मिता देवी का पूजन करे। नृत्य-गीतादि से संस्था में उत्सव करे। इस प्रकार पूर्वोक्त दिनों तक करने से राजा शत्रुओं पर विजय पाता है। उसके वैरी का नाश होता है या अधीन हो जाता है। यन्त्र से गन्धादि को लेकर ललाट में तिलक करे तो राजा बलवान होकर सुखी दीर्घकाल तक जीवित रहता है एवं हाथी, घोड़ा से युक्त रहता है। अपनी पत्नी के साथ निर्भय होकर छहों ऐश्वर्यों से युक्त होता है। इस यन्त्र की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

### तथा—

अथान्यवत्रनिर्मणविधानं च शृणु प्रिये। येन हस्तगतेन स्युः सिद्ध्योऽपि स्वहस्तगाः ॥६२॥

प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष दशसूत्रनिपातनात् । तेनैकाशीतिकोष्ठानि जायन्ते तच्च पूर्ववत् ॥६३॥

मार्जयेद्वाकोणेषु शिष्टेषु विलिखेत्तथा । त्रिकोणानि चतुर्दिक्षु तेषु तान्येव पूर्ववत् ॥३४॥

विलिखेदवशिष्टेषु मन्त्राणास्तद्द्विशस्तथा । एकस्मिन्मध्यमे शक्तिजठरे साध्यमालिखेत् ॥६५॥

एतच्च पूर्वप्रोक्तेषु विनियुज्यान्निजेच्छया । न भेदस्त्वनयोरस्ति प्रयोगेषु तु सर्वतः ॥६६॥

एतद्वस्त्र्य मध्यस्थं नाम कृत्वा महीभुजः । दंशके हृदये शीर्षं संस्थाप्य समरे कृते ॥६७॥

निहत्य वाहिनीं शत्रोश्वतुरङ्गां महीभुजः । अक्षताशेषसर्वाङ्गो यशोलक्ष्मीधरान्वितः ॥६८॥

निवृत्य सुचिरं जीवेद्वूपौ भोगी निजेच्छया । एतत्ताप्रतले कृत्वा स्थापयेदभिवृद्धये ॥६९॥

**अथैतद्रचनाप्रकारः**—तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च दश दश रेखाः कृत्वा समान्तरालानि एका-शीतिकोष्ठानि विधाय, चतुर्दिक्षु दश दश कोष्ठानि मार्जयित्वा एकचत्वारिंशत्कोष्ठात्मकं वज्राकारं निष्पाद्य, दिक्षु चत्वारि चत्वारि कोष्ठानि मार्जयित्वा त्रिकोणानि विधाय, तेषु कर्मानुसारिप्रागवद्भूतार्णान् विलिख्य, मध्यकोष्ठे मायाबीजं साध्यनामगर्भ विलिख्यावशिष्टकोणेषु मूलमन्त्रस्य द्वादशाक्षराणि द्विषो विलिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति। तथा—

विधाय वृत्तयोर्मध्ये षट्कोणं तस्य मध्यतः । बाह्ये च कृत्वा विद्याया बीजमाद्यमथान्तिकम् ॥७०॥

षट्सु कोणेषु तु पुनरग्रपश्चिमयोर्लिखेत् । एकैकं पार्श्वकोणेषु द्वे द्वे वृत्तान्तरा पुनः ॥७१॥

मातृकां विलिखेदादिक्षानां बिन्दुसमन्विताम् । मध्यबीजस्य मध्यस्थं लिखेत्तन्निजवाञ्छितम् ॥७२॥

भर्तुर्दर्शनभीतानां कुमारीणामिदं भुजे । कण्ठे वा धारयेत्सद्यो वल्लभा तस्य जायते ॥७३॥

**अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः**—प्रथमतः षट्कोणं विधाय तद्विर्वृत्तद्वयं कृत्वा मध्ये साध्यनामगर्भं हींकारं विलिख्य षट्सु कोणेषु कोणाग्रेषु कोणान्तरालेषु च मायाबीजान्येव विलिख्य वृत्तद्वयान्तराले मायाबीजद्वयसह-तामकारादिक्षकारानां मातृकां विलिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति। तथा—

स्वरप्रसारैत्तर्मन्त्रवर्णैः पद्मानि कारयेत्। वृत्तास्तपत्रयुक्तानि षोडशानि मनोहरम् ॥७४॥

कर्णिकासु च पत्रेषु लिखेदैकमक्षरम् । कर्णिकार्णस्य मध्यस्थं कुर्यात्राम निजेप्सितम् ॥७५॥

घटिकाक्षरसंयुक्तं विनियुज्यात् नित्यशः । अहोरात्रं षोडशधा कृत्वा तां तेषु योजयेत् ॥७६॥

समसं वाञ्छितं तत्र तन्मध्यं विलिखेत्तदा । धारयेदभिष्ठेच्च जपेदिष्टार्थसिद्धये ॥७७॥

**अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः—**प्रथमतो वृत्तं कृत्वा तल्लग्नान्यष्टदलानि विधाय प्राक्प्रोक्तषोडशस्वरसंयुक्त-  
मूलविद्यानावृताक्षरेषु चतुश्चत्त्वार्दशदुत्तरशतवर्णेषु १४४ प्रथमाक्षरं साध्यनामगर्भं कर्णिकायां विलिङ्गं तत्रैव  
घटिकाक्षरं संयोज्याष्टदलेषु द्वितीयाद्यष्टौ वर्णान् विलिखेत्। एवं नवनववर्णनामेकमेकं यन्त्रं भवति। एवं षोडश  
यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः। तथा—

प्राक्प्रत्यदक्षिणोदक्ष्यं पञ्च सूत्राणि पातयेत्। कोष्ठानि षोडशात्र स्युस्तेषु पद्मानि कारयेत् ॥७८॥

प्रागुक्तेषु विधायैवमर्चयेद्यामतः क्रमात्। देवीं तु स्थापयेद्बूमौ सर्वसम्पदवाप्तये ॥७९॥

स्पष्टोऽयमर्थः। इति महावत्रेश्वरीनित्याप्रयोगविधिः।

**वप्रयन्त्र निर्माण प्रकार—**अब अन्य वत्र-निर्माण का विधान प्रिये सुनो, जिसका ज्ञान होने से सिद्धियाँ हाथ में होती हैं। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समानान्तर दश-दश रेखाओं को खींचने से ८१ कोष्ठ बनते हैं। कोनों से दश-दश कुल ४० कोष्ठों को मिटा दे। जिससे ४१ कोष्ठों से वत्र का आकार बनता है। चारों दिशाओं में त्रिकोणाकार चार-चार कोष्ठों को मिटा दे। शेष २४ कोष्ठों में २२ मन्त्राक्षरों में से दो-दो लिखे। मध्य कोष्ठ में हीं के गर्भ में साध्य नाम लिखे। इस यन्त्र का विनियोग अपनी इच्छा के अनुसार करे। इनके प्रयोगों में कोई भेद नहीं है। इस वत्र के मध्य में राजा अपना नाम लिखकर कन्धों में, हृदय में या शिर पर धारण करके यदि युद्ध में जाता है तो अपने शत्रु की चतुरंगिनी सेना को मारकर अक्षत सवार्गी होकर यश-लक्ष्मी-राज्य से संयुक्त होकर दीर्घ काल तक जीवित रहता है और अपनी इच्छानुसार भोगों को भोगता है। अभिवृद्धि के लिये इसे ताप्र पर अंकित कराकर स्थापित करना चाहिये।

**अन्य यन्त्र विधान—**पहले षट्कोण बनाकर उसके बाहर दो वृत्त बनाये। षट्कोण के मध्य में साध्य नाम गर्भित 'हीं' लिखे। छः कोणों में, कोणांगों में और कोणों के अन्तराल में हीं लिखे। दो वृत्तों के अन्तराल में दो मायाबीज सहित अ से क्ष तक की मातृका लिखे। मध्य बीज के मध्य में निजवांछित लिखे। पति-दर्शन से भयभीत कुमारी यदि इसे बाँह में या कण्ठ में धारण करे तो वह तुरन्त पति की प्रिया हो जाती है।

**अन्य यन्त्र रचना प्रकार—**पहले वृत्त बनावे। उसकी परिधि से अष्टदल कमल बनावे। मूल विद्या के अनावृत नव अक्षरों को सोलह स्वरों से युक्त करने पर १४४ अक्षर बनते हैं। इन नव अक्षरों के सोलह-सोलह रूपों में पहले अक्षर के गर्भ में साध्य नाम कर्णिका में लिखे। अष्टदलों में शेष आठ अक्षरों को लिखे। घटिकाक्षर सहित नित्य इसका विनियोग करे। इस प्रकार नव-नव वर्ण के सोलह यन्त्र बनते हैं। इष्टसिद्धि के लिये इसे धारण करके इसका अभियेक जप करे।

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समानान्तर पाँच-पाँच रेखाएँ खींचे। इससे सोलह कोष्ठ बनते हैं। उनमें कमल बनावे। पूर्वोक्त प्रकार से विधान करके प्रत्येक प्रहर में पूजा करे। इसे भूमि में स्थापित करने से सभी सम्पत्ति मिलती है।

#### शिवदूतीनित्याप्रयोगविधिः

**अथ शिवदूतीनित्याप्रयोगविधिः;** श्रीतन्त्रराजे (१३ प० २० श्लो०)—

साधनं प्रोक्तमार्गेण कुर्याल्लक्ष्मतद्वितः। काम्यहोमविधिं देवि शृणु सङ्कल्पसिद्धिदम् ॥१॥  
येनासौ वाज्चितं क्षिप्रमवाप्नोति सुनिश्चितम्। वशयेद्वनिता होमाद् गुगुलैर्मध्यमिश्रितैः ॥२॥  
नारिकेलफलोपेतगुडेलर्क्ष्मीमवाप्नयात्। तथाज्यसिक्तैः कहारैः क्षीराक्तैररुणोत्पलैः ॥३॥  
त्रिमध्यतैश्यम्यकैश्च प्रसूनैर्बुकुलोद्भवैः। मधूकजैः प्रसूनैश्च हुतैः कन्यामवाप्नयात् ॥४॥  
त्रिमध्यतैश्यम्यकैश्च प्रसूनैर्बुकुलोद्भवैः। मधूकजैः प्रसूनैश्च हुतैः कन्यामवाप्नयात् ॥५॥  
पुनागजैर्हृतैर्वस्त्राण्याद्याज्यैरिष्टमवाप्नयात्। माहिष्यैर्महिषीराज्यैरजान् गव्यैश्च गास्तथा ॥६॥  
अवाप्नोति हुतराज्यैरत्रेनान्नं च साधकः। शालिपिष्टमर्यां कृत्वा पुतलीं सितसंयुताम् ॥७॥  
हृदेशन्यस्तनामार्णा पचेत्तलाज्ययोर्निशि। तामनश्नन् दिवा रात्रौ विद्याजपां तु भक्षयेत् ॥८॥

सप्तरात्रप्रयोगेण नरो नारी नृपोऽथवा । दासवद्वशमायाति वित्तप्राणादिमर्पयेत् ॥८॥  
 हयारिपुष्टैररुपैः सितैर्वा जुहुयात् तथा । त्रिसप्तरात्राम्हतीमवाप्नोति श्रियं नरः ॥९॥  
 छागमांसैस्त्रिमध्यक्तैर्होमात् स्वर्णमवाप्नुयात् । क्षीराक्तैः शस्यसम्पूर्णं भुवमाप्नोति मण्डलात् ॥१०॥  
 पद्माक्षैर्हवनाल्लक्ष्मीमवाप्नोति त्रिभिर्दिनैः ।

शिवदूती नित्या प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि शिवदूती नित्या के मन्त्र का निरालस होकर यथाविधि एक लाख हवन करे। वाञ्छितार्थ देने वाले इस कार्य हवन की विधि सुनो। इससे शीश्र इच्छाएँ पूरी होती हैं। गुगुल के हवन से वनिता वश में होती है। नारियल फल और गुड के हवन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। आज्यसिंक्त कल्हार, दूधसिंक्त लाल कमल, त्रिमधुरसिंक्त चम्पा, बकुल और महुआ के फूलों से हवन करने पर शादी होती है। पुत्राग के हवन से वस्त्र, आज्य हवन से इष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है। भैंस के धी से हवन करने पर भैंस मिलती है। आज्य के हवन से बकरी और गव्य के हवन से गाय मिलती है। आज्य अन्त्र के हवन से अन्त्र मिलता है। शालिपिष्ठ में मिश्री मिलाकर पुतली बनावे। उसके हृदय में साध्य नाम वर्णों को लिखे। रात में तेल या धी में पुतली को पकावे। उसे खाकर दिन-रात विद्या का जप करे और जप के समय भी उसे खाये। सात रातों तक इस प्रयोग से नर-नारी या नृप दासवत् वश में हो उसे अपना धन-प्राणादि समर्पित करते हैं। कनैल के लाल या उजले फूलों से तीन या सात रातों तक हवन करने से बहुत धन मिलता है। त्रिमधुरयुक्त छाग मांस के हवन से सोना मिलता है। दुर्घट सिंक्त छाग मांस के हवन से फसल से भरपूर मण्डल भर भूमि प्राप्त होती है। तीन दिनों तक कमलगड़े के हवन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

### शिवदूतीनित्यायन्त्रद्विद्वानानि

अथ यन्त्राणि वक्ष्यामि नानाभीष्टप्रदानि ते ॥११॥

शृणु तेषु विधानानि समाहितमनाः शिवे । दूतीनित्याक्षरेषु स्युरनावृत्तानि वै दश ॥१२॥  
 अत्रानावृत्ताक्षराणि 'हरअशवदतयनम्' इति।

तैः षोडशस्वरयुतैः षष्ठ्या शतमुदीरितम् । चतुरस्त्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्वृत्तयुग्मकम् ॥१३॥  
 तदन्तरष्टकोणं च तदन्तर्वृत्तयुग्मकम् । कृत्वा तत्र लिखेन्मध्ये विद्याद्यं नामसंयुतम् ॥१४॥  
 विद्याद्यं हींकारम्।

वृत्तयोरन्तरा शेषं बहिः कोणेषु चाष्टसु । लिखेद् द्वे द्वेष्टक्षरे तेषु बाह्यवृत्तद्वयान्तरा ॥१५॥  
 कर्मानुरूपान् भूतार्णान् दश भूपुरमध्यतः । मातृकां विलिखेद् दिक्षु द्वादशा द्वादशा क्रमात् ॥१६॥  
 अन्यं च त्रिषु कोणेषु शेषाणां च विलेखने । स्वरैर्बिन्दुं समायोज्य योजयेद्व्यञ्जने परम् ॥१७॥

एवं यन्त्राणि जायन्ते दश सिद्ध्यास्पदानि वै ।

अत्र प्रथमतो वृत्तद्वयं कृत्वा तद्विहरष्टकोणं तद्विहरितद्वयं तद्विहितश्तुरसद्वयं कृत्वा मध्ये साध्यनामगर्भमायाबीजं विलिख्य, तद्विहितद्वयान्तराले प्रथमबीजरहितैर्मूलविद्याक्षरैर्वैष्टियत्वा तद्विहरष्टकोणेषु षोडशस्वरसंयुक्तानावृत्ताक्षरेषु षष्ठ्युत्तरशतसंख्याकेषु १६० प्रथमतः षोडशाक्षराणि प्रतिकोणं द्विद्विक्मणेण विलिख्य, तद्विहित-द्वयान्तरे कर्मानुसारिभूताक्षरदशकं प्रागवद्विलिख्य, तद्विहितश्तुरसद्वयान्तराले दिक्षु द्वादशा द्वादशा क्रमेण अकारादिस-कारान्तमातृकावर्णान् विलिख्यानेयादिकोणेषु त्रिषु हलक्षान् विलिख्येशानकोणे हंलंक्षं इति विलिखेत्। एवं दश यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः।

अब विविध अभीष्टों को देने वाले इसके यन्त्रों का वर्णन करता हूँ। हे देवि! उन यन्त्रों का विधान सुनो। दूती नित्या विद्या को अनावृत करने पर दश अक्षर होते हैं—हरअशवदतयनम्। उन्हें सोलह स्वरों से युक्त करने पर वे १६० होते हैं। यन्त्र निर्माण हेतु पहले दो वृत्त बनावे। उसके बाहर अष्टकोण बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसके बाहर दो चतुरस बनावे।

इस प्रकार निर्मित यन्त्र के मध्य में साध्य नाम गर्भ हीं लिखे। उसके बाहर वृतों के अन्तराल में प्रथम अक्षररहित मूल विद्या के अक्षरों को लिखे। उसके बाहर षोडश स्वरसंयुक्त १६० अक्षरों में से १६ अक्षर अष्टकोण के प्रति कोनों में दोनों अक्षर लिखे। उसके बाहर वृतों के अन्तराल में कर्म के अनुसार दश भूताक्षरों को लिखे। उसके बाहर चतुरसद्वय के अन्तराल में प्रत्येक दिशा में बारह-बारह अ से स तक के वर्णों को लिखे। अग्न्यादि तीन कोनों में ह छ क्ष लिखे। ईशान कोन में ह ळं क्ष लिखे। इस प्रकार अनावृत १६० अक्षरों से सोलह-सोलह के हिसाब से दश यन्त्र बनते हैं।

तथा—

**प्रथमं गैरिकैः कृत्वा तत्रावाह्य शिवां यजेत् ॥१८॥**

सप्तम्यां त्रिषु संध्यासु सितापूपसमन्वितम् । कृत्वा निवेद्य पथसा प्रातर्मध्यदिने तथा ॥१९॥  
 दधिभक्तं तु सायं तु क्षीरं मोचाफलं तथा । एवं मण्डलमर्घं वा कुर्यात्यूजां समाहितः ॥२०॥  
 वाञ्छितं प्रानुयात् देव्या: प्रसादेनात्प्रथलतः । द्वितीयं दरदैः कृत्वा तत्रावाहाथ तददिने ॥२१॥  
 सुपक्वछागमांसेन क्षौद्रमन्नं निवेदयेत् । तावद्जेम्भीपालं वशे कर्तुमयलतः ॥२२॥  
 तथैव वनितां हृदयां वशयेद्यावदायुषम् । वृतीयमपि सिन्दूरैर्विधायावाहा तत्र ताम् ॥२३॥  
 तावद्वैस्तथावाहा वशयेद्विधान् रिपून् । चतुर्थं कुङ्कुमैः कृत्वा तत्र मध्येऽर्चयेत्था ॥२४॥  
 सप्ताहादापदः सर्वा: प्रयात्प्रथस्याः प्रसादतः । पञ्चमं चन्दनैः कृत्वा तत्त्वमध्ये पूजयेच्छिवाम् ॥२५॥  
 केवलं पायसं मोचां सितां धृतसमन्विताम् । निवेदयन्त्रिसंध्यासु मासाद्वोगानशेषतः ॥२६॥  
 जित्वा सुखं चिरं जीवेच्छेषमायुर्निरामयः । अभिषिञ्चेच्च यन्त्रे वै कुम्भं संस्थाप्य तैर्जलैः ॥२७॥  
 कृत्वा तस्मै दक्षिणां च दद्याद्भूरि स्वशक्तिः । प्राणप्रदाने तस्मै तु दद्यात्सर्वस्वमेव वा ॥२८॥  
 येनासौ तोषमायाति तावद्वित्तं समर्पयेत् । षष्ठं कर्पूरसंयुक्तं पाटीरैरालिखेत्तः ॥२९॥  
 मसूरे वा शिलापट्टे पीठे वा सौधभूतले । अन्नाज्यपायसापूपव्यञ्जनानि निवेदयेत् ॥३०॥  
 पूजयेच्च त्रिसंध्यासु जपन् विद्यां तदा वशी । त्रिसप्तरात्रामात्रेण ज्वराद्भीमाभिघारजात् ॥३१॥  
 मुच्यन्ते प्राणिनोऽचिन्त्याः शक्तयो मन्त्रनन्त्रयोः । सप्तमं ताप्रपट्टे तु कृत्वावाहाभिपूज्य च ॥३२॥  
 स्थापयेम्भन्दिरे तस्मिल्लक्ष्मीरास्तेऽतिसुस्थिरा । अष्टमं राजते कृत्वा विभृयात् सर्वसम्पदे ॥३३॥  
 नवमं हेमगं कृत्वा भूषादौ धारयेच्छिवे । दशमे सर्वकार्याणि साधयन्त्रचर्चयेच्छिवाम् ॥३४॥  
 यद्यद्वि वाञ्छितं कार्यं तत्त्वमध्यगतं तथा । कृत्वा तां पूजयेत्तत्र तत्कार्यं हृदये स्मरन् ॥३५॥  
 तद्वैस्तदवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।

प्रथम यन्त्र को गेरु से लिखकर उसमें शिवादूती का आवाहन करके पूजा करे। सप्तमी की तीनों सन्ध्याओं में मिश्री-पूआ-पायस प्रातःकाल में चढ़ावे। मध्य दिनः की सन्ध्या में दही-भात अर्पण करे। शाम को दूध और केला अर्पण करे। इस प्रकार की पूजा २० दिनों तक करे। इससे देवी की कृपा से थोड़े समय में ही वाञ्छित फल प्राप्त होता है। द्वितीय यन्त्र को सिंगरफ से सप्तमी में बनाकर देवी का आवाहन, पूजन करे। उस दिन सुपक्व मांस, मधु और अन्न का नैवेद्य निवेदन करे। तब तक भजन करे जब तक राजा वश में न हो जाय। इसी प्रकार यावज्जीवन वनिता को भी वश में किया जा सकता है। तृतीय यन्त्र को सिन्दूर से बनाकर देवी का आवाहन-पूजन करे। २० दिनों तक ऐसा करने से विविध शत्रुओं को वश में करता है। चतुर्थ यन्त्र को कुङ्कुम से बनाकर मध्य में देवी का आवाहन-पूजन सात दिनों तक करे तो देवी की कृपा से सभी आपदाओं का नाश होता है। पञ्चम यन्त्र को चन्दन से बनाकर उसके मध्य में देवी का आवाहन-पूजन एक माह तक करे और नैवेद्य में केवल पायस, केला, मिश्री और धी का अर्पण तीनों सन्ध्याओं में करे। इससे साधक के सभी रोगों का नाश हो जाता है। एवं सुखपूर्वक शेष आयु में निरोगी रहकर दीर्घ काल तक जीवित रहता है। यन्त्र पर कलश स्थापित करके उसके जल से अभिषेक करे। गुरु को बहुत दक्षिणा देकर या सर्वस्व देकर सन्तुष्ट करे। छठे यन्त्र को कपूर में चन्दन मिलाकर चिकने शिलापट

या पीठ या महल के भूतल पर बनाकर देवी को अन्न, आज्ञ्य, पायस, पूआ और व्यञ्जन निवेदित करे। तीनों सम्प्ल्याओं में पूजा करे और जप तीन या सात गतों तक करे तो ज्वर एवं भीषण अभिचार नष्ट हो जाते हैं। इस मन्त्र-यन्त्र की शक्ति प्राणियों के लिये अचिन्त्य है। सप्तम यन्त्र को ताप्रपत्र पर अंकित करके देवी का आवाहन-पूजन करे। जिस घर में यह यन्त्र स्थापित होता है, उसमें स्थिर लक्ष्मी का वास होता है। अष्टम यन्त्र को चाँदी के पत्र पर बनाकर पूजन करने से सभी सम्पदाओं की प्राप्ति होती है। नवम यन्त्र को सोने के पत्र पर अंकित कराकर आभूषण के साथ धारण करे। दशम यन्त्र का अर्चन करने से सभी कार्य होते हैं। इस यन्त्र के मध्य में वांछित कार्य को लिखकर पूजा करे और कार्य का स्मरण हृदय में करे तो वह कार्य उसी दिन सिद्ध हो जाता है।

दशैव तानि यन्त्राणि भूजे कृत्वाभिपूज्य च ॥३६॥

सिक्षथनिर्मितपात्रं तु क्षौद्रमध्ये निवेशयेत् । त्रिसंध्यमर्चयैद्रक्तगन्धपुष्ट्ये: समाहितः ॥३७॥  
 साध्यस्याभिमुखो विद्यां जपेत्प्रत्यमनुस्मरन् । पाशेन कण्ठमाबध्य पातितं निजपादयोः ॥३८॥  
 न्यस्ताङ्गलिकरं शीर्षे दासोऽहमिति वादिनम् । त्रिसप्तरात्राद्वयाः स्वुर्नरनारीनृपादयः ॥३९॥  
 तदेव कोष्णं कृत्वा च संध्यासु प्रिषु नित्यशः । कामार्ता वनिताः कामज्वरग्रस्ताशयाः शनैः ॥४०॥  
 कुलं लज्जां विवेकं च परित्यज्यास्य किङ्कराः । भवेयुरिति यन्त्राणां प्रयोगास्ते समीरिताः ॥४१॥  
 प्राणप्रतिष्ठाविद्यां ते वक्ष्येऽहं शृणु पार्वति । वातो नभो धरायुक्तं स्पर्शों व्याप्तेन संयुतः ॥४२॥  
 जवी दाहमरुद्युक्तो व्योमापि मरुता युतम् । अग्निर्हसश्च पूर्वाणीं पश्चादादित्रयं तथा ॥४३॥  
 ज्यावह्नियुक्तान्तोऽम्बु स्यात्वष्टसप्तमकौ पुनः । हच्छिख्यग्निरथो माया वातादित्रितयं पुनः ॥४४॥  
 हद्वाहाम्बुचरैः स्वेन गोत्रादाहर्विभिः परम् । व्याप्तं मरुत्समोपेतं व्योमाग्निगमनन्तरम् ॥४५॥  
 पुनराद्यत्रयं चाम्बु मरुद्यु नभसा युतम् । शून्यं मायान्वितं पञ्चाच्चतुर्थं पञ्चमं ततः ॥४६॥  
 अग्निर्हसो मरुद्युक्तो व्याप्तं च मरुता युतम् । स्वं स्याद्रव्यधारायुक्तं हद्वाहाम्बु मरुदन्वितम् ॥४७॥  
 हसश्च मरुता युक्तश्त्वारिंशलिपिर्मनुः ।

‘अमुष्य प्राणा इह प्राणा अमुष्य जीव इह स्थित अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि अमुष्य वाङ्मनःप्राणा इहायानुस्वाहा’ इति।

यादिसप्ताक्षरैः कुर्यात् षड्ङ्गानि द्वियोगतः ॥४८॥

त्वगादिषु च तान्येव न्यस्येच्छक्तिपुटस्थितम् । ध्यायेद् देवीं प्राणशक्तिमरुणामरुणाम्बराम् ॥४९॥  
 अरुणाकल्पनुकुटामरुणाधरपल्लवाम् । अरुणायतनेब्रजयुगां चारुस्मिताननाम् ॥५०॥  
 प्रसूनपिण्डं पाशं च दधानां पाणियुग्मतः । स्वसमानाभिरभितो वेष्टितां दशशक्तिभिः ॥५१॥  
 अनन्तशक्तियुक्ताभिः पूजयेत् पद्ममध्यतः । प्राणापानसमानाश्च व्यानोदाना च शक्तयः ॥५२॥  
 नागा कूर्मा सकुकरा देवदत्त धनञ्जया । चतुरस्तद्वयं कृत्वा तदन्तर्वृत्तयुम्कम् ॥५३॥  
 तदन्तर्दशपत्राब्जं तदन्तस्तद्वयं तथा । कृत्वा मध्ये समावाहृ कृत्वार्थं पूजयेत्तः ॥५४॥  
 लक्ष्मं जपेत् पर्योभक्षस्तदशांशं हुनेत्था । तिलैः शुद्धैः सर्वपैश्च सिरैर्मधुरसंयुतैः ॥५५॥  
 तर्पयेत् सौरभाद्येन जलेनेत्यं सुसाधयेत् । तन्त्रेऽस्मिन्न्यास्तु पुतल्यो यन्त्राण्युक्तानि सर्वतः ॥५६॥  
 अनया विद्यया तत्र साध्यप्राणान्नियोजयेत् । यन्त्रमस्याः शृणु प्राज्ञे सद्यःप्रत्ययकारकम् ॥५७॥  
 येन पुत्तलिका जीवस्यन्दयुक्ता मनोर्बलात् । प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्षय सूत्राण्यष्टौ निपातयेत् ॥५८॥  
 कोष्ठायेकोनपञ्चाशज्जायन्ते तेषु विन्यसेत् । प्रागुत्तरं समालिख्य परितोऽपि प्रवेशतः ॥५९॥  
 मध्येषु शिष्टनवसु लिखेदङ्गोदिताल्कमात् । ततः शिष्टद्वये साध्यनामालिख्याथ साधकः ॥६०॥  
 संजप्य विद्यां हस्तेन सज्जीवेन स्पृशन् शतम् । तेन पुत्तलिकाः कुर्यात्सिद्धये नान्यथा भवेत् ॥६१॥

उन दशों यन्त्रों को भोजपत्र पर लिखकर पूजा करे। सिक्षथ पत्र में मधु डालकर यन्त्रों को उसमें डुबो दे। तीनों सन्ध्याओं से लाल गच्छ एवं पुष्टि से अर्चन करे। साथ्य की दिशा में मुख करके विद्या का जप करे और नित्य स्परण करे तब साथ्य पाश में बद्ध होकर साधक के पाँव पर गिर पड़ता है और शिर पर हाथ जोड़कर कहता है कि मैं आपका दास हूँ। तीन या सात रातों तक ऐसा करने से नर-नारी या राजा वश में हो जाते हैं। उसी प्रकार यन्त्रों को तीनों सन्ध्याओं में तपाने पर कामार्त वनिता कामज्वर से ग्रस्त होकर अपने कुल, लज्जा एवं विवेक का त्याग कर उसकी दासी हो जाती है।

अब इन यन्त्रों की प्राणप्रतिष्ठा-विधि कहता हूँ। प्राण-प्रतिष्ठा का मन्त्र है—अमृष्ट प्राणा इह प्राणा अमृष्ट जीव इह स्थित अमृष्ट सर्वेन्द्रियाणि, अमृष्ट वाङ्मनः प्राणा: इहायान्तु स्वाहा। यह ४० अक्षरों का मन्त्र है। दो-दो के योग से यकारादि सप्ताक्षरों से षड़ज न्यास करे। इसी प्रकार कर न्यास भी करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—देवी लाल वस्त्र, लाल आभूषण, लाल मुकुट धारण की हुई है। उनके होठ लाल हैं। उनके दोनों नेत्र लाल हैं। उनके मुख पर मुस्कान है। दोनों हाथों में प्रसूनपिण्ड और पाश धारण की हुई हैं। अपने ही समान दश शक्तियों से धिरी हैं।

अनन्त शक्तियुक्त इन सब की पूजा कमलमध्य में करे। प्राण अपान समान व्यान उदान नाग कूर्म कृकर देवदत्त धनञ्जय—ये दश प्राणशक्तियाँ हैं।

**पूजन यन्त्र**—दो चतुरस्र बनावे। उसके अन्दर दो वृत्त बनावे। उसके अन्दर दशदल पद्म बनावे। उसके अन्दर दो दल का कमल बनावे। यन्त्र के मध्य में देवी का आवाहन करके अर्घ्यादि से पूजन करे। विद्या का जप एक लाख पद्माहारी होकर करे। दशांश हवन तिल-सरसों-मिश्री मधु मिलाकर करे। सुग्रस्थित जल से तर्पण करे। इस तन्त्र में जिन पुतलियों और यन्त्रों का उल्लेख है, उनमें इसी प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से प्रतिष्ठा करे। अब शीघ्र सिद्धिदायक यन्त्र का वर्णन सुनो।

इस यन्त्र से और मन्त्रबल से पुतली में जीव स्पन्दनयुक्त होता है। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर आठ रेखायें खींचे। इससे ४९ कोष्ठ बनते हैं। पूर्व से प्रवेश रीति से उत्तर तक ४० मन्त्राक्षरों को लिखे। अवशिष्ट नव में से सात में कामेश्वरी से शिवदूती तक सात नित्याओं को लिखे। शेष दो कोष्ठों में साथ्य नाम और कर्म लिखे। यन्त्र को स्पर्श किए हुए प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र का एक सौ जप करे। सिद्धि के लिये इसी प्रकार प्राण-प्रतिष्ठा करे, अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती।

साध्यजीवाद्यानयनं शृणु वक्ष्यामि तेऽद्वृतम् । मन्त्रवीर्यस्मृतिं कुर्वन् तथा तद्वेगर्भतः ॥६२॥  
ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यर्थान्मनो जीवं तनुं तथा । तस्मात्साध्यशरीरान्तात्पुत्तल्या नामभिस्तथा ॥६३॥  
रक्तरज्ज्वा शक्तिमया तानानीयार्थयेद्विद्या । विद्यायारूप्यक्षरान्तेषु साध्यनाम नियोजयेत् ॥६४॥  
एवं नियोजितां विद्यां सहस्रं प्रजपेत्पृष्ठशन् । जीवहस्तेन तच्चित्तो निशामध्येषु साधकः ॥६५॥  
एवं संस्थापितप्राणा पुतली स्पन्दते तदा । साध्यस्य जन्मनक्षत्राण्याकरण्य वदामि ते ॥६६॥  
तज्जन्मलग्नसञ्चातनवांशक्षिप्रमाणकम् । अन्यानि च नवक्षर्णाणि नवग्रहसमन्वयात् ॥६७॥  
तेषु तेषु प्रयोगांस्तु वक्ष्याद्यपरहोमके । रिपोर्णिं च केऽन्नं च चरणोत्थं रजस्तथा ॥६८॥  
अन्यानि चाङ्गरोमाणि पुतल्यां योजयेन्मृतौ । वश्यादिषु च सर्वत्र पुतल्यां प्रोक्तया तया ॥६९॥  
एवं सर्वं समाख्यातं प्राणाकर्षणकर्मणि । अनया विद्या कृत्वा प्राणाकर्षणमुक्तया ॥७०॥  
ततो निर्दिष्टपुत्तल्यां तत्र तत्रोक्तमाचरेत् । सर्वत्र मारणे प्रोक्ते साध्यक्षर्गहसंस्थितिम् ॥७१॥  
उक्तानां तत्र ऋक्षणां तथैवाष्टकवर्गकम् । दशास्थितिं च संवीक्ष्य कुर्यान्मारणमात्मवान् ॥७२॥  
अनवेक्ष्य कृतं कर्म स्वात्मानं हन्ति तत्क्षणात् । ब्राह्मणं धार्मिकं भूयं वनितामास्तिकं नरम् ॥७३॥  
वदान्यं सदयं नित्यमभिचारे न योजयेत् । योजयेद्यदि वैरेण प्रत्यगेनं निहन्ति तत् ॥७४॥  
अभिचारस्य विषयानाकरण्य वदामि ते । पापिष्ठानास्तिकान् घोरान्देवब्राह्मणनिन्दकान् ॥७५॥

प्रजानां घातकान् सर्वक्लेशकर्मसु संस्थितान् । क्षेत्रवृत्तिधनस्त्रीणामाहतरं कुलान्तकम् ॥७६॥  
 निन्दकं समयानां च पिशुनं राजधातकम् । विषागिन्क्षुरशस्त्राद्यैर्हिसकं प्राणिनां सदा ॥७७॥  
 नियोजयेन्मारणेषु कर्मस्वेतैर्न पातकी । कृत्वा तु मारणं कर्म तदन्ते स्वधनार्थतः ॥७८॥  
 पादतो वा गुरुं विप्रानाराध्य स्वेन नित्यया । अभिषिद्य ततो विद्यां जपेल्लक्षं हविष्यभुक् ॥७९॥  
 जन्मत्रयेऽप्यद्व्यमात्रमभिषेकं समाचरेत् । सदूर्वाहोममब्दातु तत्पापैरेष मुच्यते ॥८०॥  
 एतते कथितं सर्वं दूतीनित्याविधानकम् ।

इति शिवदूतीनित्याप्रयोगविधिः ।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्गचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-  
 श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्यतिविरचिते श्रीविद्यारण्वाख्ये तत्रे विंशः श्वासः ॥२०॥



साध्य के देह में जीवादि लाने के लिये अद्भुत विधि कहता हूँ। साध्य के देह में मनवीर्य का स्मरण करे। साध्य के ज्ञान-कर्म इन्द्रियाँ, मन, जीव, तन, साध्य के शरीर से निकालकर पुतली में नामसहित नियोजित करे। इसके बाद पुतली को श्वास प्रवाहित हाथ से स्पर्श किए हुए विद्या का एक हजार जप करे। इस प्रकार प्राण स्थापन करने पर पुतली स्पन्दन-युक्त होती है। साध्य के जन्म नक्षत्र के बारे में सुनो। उसका जन्म लग्न नवांश नक्षत्र में होता है। अन्य नव नक्षत्र नवग्रह से समन्वित होते हैं। उनके प्रयोगों को अन्य हवन के लिये कहता हूँ। शत्रु का नख, केश, चरणधूलि, अन्य ओंगों के रोम पुतली में योजित करे। वश्यादि में सर्वत्र पुतली में योजित करे। प्राणाकर्षण कर्म में ये सभी समाख्यात हैं। इस विद्या से प्राणाकर्षण किया जाता है। तनों में निर्दिष्ट पुतलियों से प्रयोग करे। मारण में ग्रह में स्थित नक्षत्र ही सर्वत ग्राह्य है। उक्त नक्षत्रों में अष्टक वर्ग, दशास्थिति देखकर ही मारण कर्म करना चाहिये। बिना विचारे कर्म करने से अपनी मृत्यु होती है। ब्राह्मण, धार्मिक राजा, वनिता, आस्तिक मनुष्य और अन्य दयालु पर अभिचार का प्रयोग न करे। यदि वैर से इन पर अभिचार का प्रयोग करता है तो साधक की मृत्यु हो जाती है। अब अभिचार के विषयों को सुनो। पापी, नास्तिक, भयंकर, देव-ब्राह्मणों का निन्दक, प्रजा के घातक, सभी क्लेश कर्म में लग्न, क्षेत्र-वृत्ति धन-स्त्री के हर्ता-कुलान्तक, समयों के निन्दक, चुगलखोर, राजा के घातक, प्राणियों को विष, अग्नि, शस्त्रादि से मारने वालों को मारण कर्म में नियोजित करे; इसमें पाप नहीं लगता। मारण करने के बाद अपने धन का आधा गुरु, विप्र या नित्या के उपासकों के पैरों में अर्पित करे। विद्या से अभिषेक करके हविष्याशी रहकर एक लाख जप करे। तीन जन्म दिनों में साल भर तक अभिषेक करे। साल भर दूर्वासहित हवन करे तो पाप से मुक्त होता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्य यतिविरचित श्रीविद्यारण्व तत्र के कपिलदेव

नारायण-कृत भाषा-भाष्य में बीसवाँ श्वास पूर्ण हुआ



## अथैकविंशः श्वासः

त्वरितनित्याप्रयोगविधिः

अथ त्वरितानित्यायाः प्रयोगविधिः। श्रीतन्नराजे (१४.२३)—

ततः साधितविद्यस्तु प्रयोगानाचरेत्रः। बैल्वैद्यशांशं जुहुयात् पत्राद्यैः साधने जपे ॥१॥  
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु मन्त्रितैश्शुलुकोदकैः। फणिदृष्टमृतानां तु मुखे संताङ्गं जीवयेत् ॥२॥  
तत्कर्णयोर्जपेद्विद्यां यष्ट्या वा जपसिद्धये। संताङ्गं शीर्षं सहसा मृतमुत्थापयेदिति ॥३॥

त्वरिता नित्या प्रयोगविधि—तन्नराज में कहा गया है कि साधित सिद्ध विद्या से ही मनुष्य प्रयोग करे। दशांश हवन बेलपत्र से करे। उन बिल्वपत्रादि को हवन के पूर्व मन्त्र जप से मन्त्रित करे। इस सिद्ध मन्त्र से चुल्लू भर जल को अभिमन्त्रित करके सर्पदंश से मृत व्यक्ति के मुख पर मारने से मृत व्यक्ति भी जीवित हो जाता है। मृत के कान में विद्या का जप करे एवं अभिमन्त्रित छड़ी से मृतक के शिर पर प्रहर करे तो मृतक सहसा जीवित हो जाता है।

काम्यहोमविधिः

काम्यहोमविधिं देवि शृणु वक्ष्ये यथाविधिः। कृत्वा योनिं कुण्डमध्ये तत्राग्नौ विधिवक्षुनेत् ॥४॥  
तिलसर्पयगोधूमशालित्थान्ययवैहुनेत् । त्रिमध्वक्तैरेकशो वा समेतैर्वा समृद्धये ॥५॥  
बकुलैश्श्राप्यकैरज्ञैः कहारैररुणोत्पलैः। कैरवैर्मल्लिकाकुन्दमधूकैरिन्द्रिराप्तये ॥६॥  
अशोकैः पाटलैर्बिल्वज्ञातीविचकिलैः सितैः। नवैर्नलोत्पलैरश्श्रिपुजैः कर्णिकारजैः ॥७॥  
होमाल्लक्ष्मीं च सौभाग्यमायुर्वित्तं यशो निधिम्। यद्यद्वि वाञ्छितं सर्वमवाप्नोति सुनिश्चितम् ॥८॥  
दुर्वागुडूचीमश्वत्यं वटमारग्वधं तथा। सिताक्पलक्षकं हुत्वा रोगान्मुक्तो नरोऽचिरात् ॥९॥  
इक्षुजम्बूनालिकेरमोवागुडसितैहुतैः। अचलां लभते लक्ष्मीं भोक्ता च भवति ध्रुवम् ॥१०॥  
एतैरुदीर्तिराज्यमधुक्षीरपरिप्लुतैः। एकैकैर्वनिता वश्या यावज्जीवं धनादिभिः ॥११॥  
तैस्तैराज्यप्लुतैर्भूषा वश्या स्युहवनात्प्रिये। क्षीराकैस्तैर्हुतैर्मर्त्या वशो तिष्ठन्त्यशेषतः ॥१२॥  
सर्वपाज्यैहुनेन्मृत्युकाषाण्नौ वैरिमृत्यवे। तदकैवैरियोन्युत्थमांसैरपि च तत्कृते ॥१३॥  
अक्षेन्यनाग्नौ योन्युत्थक्षतजोत्पादितं चरम्। आरुष्करघृतोपेतं फणिशीर्षसुचा हुनेत् ॥१४॥  
कृष्णांशुकशिरोवेष्टः खड्गपाणिश्च रोषवान्। निशामध्ये हुनेत्सद्यो निहनुं वैरिणं हठात् ॥१५॥  
मृत्युकाषाणले तस्य फलैः पत्रैश्च होमतः। सप्तरात्रादरातेस्तु गजाश्च रोगमाप्नुयः ॥१६॥  
चतुरङ्गलजैर्होमाच्यतुरङ्गबलं रिपोः। सप्ताहाद्रोगदुःखार्तं भवत्येव न संशयः ॥१७॥  
एवमस्यास्तु विद्याया वैभवं को नु वर्णयेत्। तथापि तददिशा किञ्चिदुच्यते तच्छृणु प्रिये ॥१८॥

हे देवि! सुनो, अब मैं काम्य हवन की विधि को विधिवत् कहता हूँ। कुण्डमध्य में योनि बनाकर विधिवत् अग्नि स्थापित करे। तिल, सरसों, गेहूँ शालिथान्य में से प्रत्येक को अलग-अलग और सबों को एक साथ त्रिमधुर से अक्ष करके हवन करे तो समृद्धि मिलती है। बकुल, चम्पा, कमल, कल्पार, लाल उत्पल, कैरव, मल्लिका, कुन्द, महुआ के हवन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अशोक, गुलाब, बेल, जाती, विचकिल, मिश्री, नव नील कमल, कनेर, कर्णिकार के हवन से लक्ष्मी, सौभाग्य, आयु, धन, यश, निधि के साथ जो-जो इच्छाएँ होती हैं, उनकी प्राप्ति निश्चित रूप से होती है। दूब, गुरुच, पीपल, वट, अमलतास, श्वेतार्क, पलाश के हवन से अल्प काल में रोगों का नाश होता है। ईख, जामुन, नारियल, केला, गुड़, मिश्री के हवन से साधक अचला लक्ष्मी का भोक्ता होता है। उपरोक्त सभी वस्तुओं को आज्य, मधु और दूध से प्लुत

करके या एक ही को प्लुत करके हवन करने से बनिता अपने धनसहित आजीवन वश में होती है। उन्हें आज्य से प्लुत करके हवन करने से राजा वश में होते हैं। क्षाग्रक रकरके हवन से मनुष्य जीवन भर वश में होते हैं। श्मशान के लकड़ी की अग्नि में सरसों, आज्य के हवन से शत्रुओं की मृत्यु होती है। वैरी-योनि के मांस एवं सरसों को आज्य से अत्त करके हवन करने से भी वैरी की मृत्यु होती है। रुद्राक्ष की लकड़ी पर योनिगत घाव के मांस का चर बनाकर धृतोपेत आरुष्कर के साथ सप्तकार शीर्ष वाली सुचा से हवन करे। शिर पर काली पाणिड़ी बाँधकर हाथ में खट्टग लेकर कुद्र होकर आधी रात में हवन करे तो शत्रु की मृत्यु हठात् होती है। मृत्युकाष्ठ की अग्नि में उसके फल और पत्तों से हवन करे तो सात रात में शत्रु के हाथी, घोड़ों में बिमारी फैल जाती है। चार अंगुल के मृत्युकाष्ठ की अग्नि में सात रातों तक हवन करने से शत्रु रोगार्त होकर दुःखी होता है। इस प्रकार इस विद्या के वैभव का वर्णन यथापि समाप्तः नहीं किया जा सकता है; तथापि उसके बारे में कुछ कहा गया है।

#### यन्त्रोद्धारतद्वचनाप्रकारः

अथ यन्त्राणि वक्ष्यामि समस्ताभीष्टसिद्धये । तनि सर्वाणि देवेशि कुरु चित्ते क्रमेण वै ॥१९॥

प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष्य सूत्राणि द्वादशार्थयेत् । तदग्राण्यभितः कुर्यात्रिशिखान्यस्य मध्यगे ॥२०॥

कोष्ठे तारस्य मध्यस्थं नाम कृत्वा शिवादिषु । प्रादक्षिण्यप्रवेशेन द्वादशावृत्ति मायया ॥२१॥

विद्यामलिख्य संजप्य बिभृयात्सर्वसिद्धये । श्रियै कीर्त्ये च वशयाय सौभाग्यायाखिलाप्तये ॥२२॥

विषग्रहगदेन्मादशान्त्यै युद्धे जयाप्ये । नरनारीनृपादीनां वशयाय बिभृयाच्च तत् ॥२३॥

**अस्यार्थः—**प्राग्प्रत्यग्यायता दक्षिणोत्तरायाताश्च द्वादश रेखा विलिख्यैकविंशत्युत्तरशतकोष्ठानि (१२१) कृत्वा, रेखाग्रेषु सर्वेषु त्रिशूलानि विलिख्य तत्मध्यकोष्ठे सप्ताध्यं प्रणवं विलिख्येशानकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन प्रवेशगत्या त्वरिताविद्या प्रणवद्वितीयहल्लेखाविधुरां द्वादशावृत्ति विलिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति। तथा—

प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष्य नव सूत्राणि पातयेत् । जायन्ते च चतुःषष्ठिकोष्ठानि परमेश्वरि ॥२४॥

तेषु शर्वनिर्त्त्यादि लिखेल्लक्ष्मीमनुं क्रमात् । बहिस्तूर्णाक्षरैरन्ते वषड्युक्तैस्तु वेष्टयेत् ॥२५॥

अनुग्रहं महाचक्रं विद्यां शृणु महेश्वरि । सर्वतोभ्रद्रविन्यासानुषुभं सर्वसिद्धिदम् ॥२६॥

दाहवहियुतं चाद्यं वियद्वन्मरुता ततः । नभश्च मरुतोपेतं व्याप्तं तेन समन्वितम् ॥२७॥

एतान्येव विलोमानि प्रथमं चरणं भवेत् । द्वितीयादि द्वितीयं स्याद्वावा शून्यं द्वितीयकम् ॥२८॥

तृतीयं च चतुर्थं स्याज्ज्या तु साभ्यचरा ततः । प्रतिलोमं तथैषेण द्वितीयं चरणं भवेत् ॥२९॥

तृतीयतुर्यों परत इला वह्न्या ततस्त्विला । मरुद्युता प्राग्वदेतत्रतिलोमं तृतीयकम् ॥३०॥

चतुर्थं द्वादशं विंशं तदाद्यं ते विलोमगाः । एतच्चतुर्थं चरणं श्रीविद्यायां महेश्वरि ॥३१॥

सर्वतोभद्रस्त्रैषा विद्या सर्वार्थसाधिका । यत्र स्थितासौ चक्रस्था न तत्राशुभसंकथा ॥३२॥

**‘श्रीसामायायामासाश्री सानोयाज्ञेयानोसा। मायालीलालीयामा याज्ञेलालीलीलाज्ञेया’** इति। अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्प्रत्यग्यायता दक्षिणोत्तरायाताश्च नव रेखाः कृत्वा चतुःषष्ठिकोष्ठयुतं चतुरस्त्रं श्रीचक्रं परिकल्प्य, तत्र सर्वोपरिगतपङ्के: प्रथमकोष्ठमारभ्य स्ववामादिदक्षिणानक्रमेण पद्मक्षिण्यतुष्टयगतेषु द्वात्रिंशत्कोष्ठेषु प्रोक्तसर्वतोभद्राख्यलक्ष्मीमन्तस्य द्वात्रिंशदक्षराणि विलिख्य, पुनरधोगतपद्मक्षिण्यतुष्टयेऽपि सर्वाधिः पंके: प्रथमकोष्ठं स्वदक्षिणस्थामारभ्य वामात्ममुपर्युपरि पद्मक्षिण्यतुष्टये तस्यैव मन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षराणि विलिख्य तद्विः प्राग्वदिषु चतुरस्त्रु दिक्षु ईशादीशानं चतुरावृति तद्विष्टये खास्पृष्टां त्वरिताविद्यामन्तर्गतवषट्कारामालिख्य तद्विहर्विमित्यमृतबीजेन वेष्टयेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

हे प्रिये! सुनो, सभी अभीष्टों की सिद्धि के लिये यन्त्रों का वर्णन करता हूँ। उन सबों को तुम क्रम से चित्त में धारण करो। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर बाहर रेखाएँ खींचें। इससे १२१ कोष्ठ बनते हैं। सभी रेखाओं के अग्र भाग को

त्रिशूलयुक्त करे। उसके मध्य कोष्ठ में साध्य गर्भ ३५कार लिखे। ईशान कोष्ठ से आरम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश गति से प्रणव और हीं को छोड़कर त्वरिता विद्या की १२ आवृत्ति लिखे। तदनन्तर विद्या का जप करे तो सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। श्री, कीर्ति, वश्य, सौभाग्य के साथ सब कुछ प्राप्त होते हैं। विष-ग्रहजनित रोग एवं उन्माद की शान्ति तथा युद्ध में जय के लिये या नर-नारी-नृपादि को वश में करने के लिये इस यन्त्र का साधन किया जाता है।

**अन्य यन्त्र—**पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर नव रेखाएँ खींचे। इससे चौसठ कोष्ठ बनते हैं। उनमें नैऋत्य से शुरु करके लक्ष्मीमन्त्र को क्रमशः लिखे। उसे बाहर से त्वरिता मन्त्र के साथ वषट् जोड़कर वेष्टित करे।

**लक्ष्मी मन्त्र—**अब अनुग्रह महाचक्र विद्या को सुनो। श्री सा मा या या मा सा श्री सा नो या ज्ञे ज्ञे या नो सा माया लीला लाली यामा याज्ञे लाली लीला ज्ञेया—सर्वोभद्ररूपा, यह विद्या सर्वार्थ-साधिका है। जहाँ यह चक्र स्थित रहता है; वहाँ कोई अशुभ नहीं होता। इस चक्र के ऊपरी कोष्ठपंक्ति में नैऋत्य से प्रारम्भ करके चार पंक्तियों में ३२ मन्त्राक्षरों को लिखे। पुनः सबसे निचले कोष्ठ में ईशान से प्रारम्भ करके ३२ कोष्ठों में ३२ अक्षरों को लिखे। उसके पूर्वादि चारों दिशाओं में ईशान से ईशान तक की रेखा को स्पर्श करते हुए त्वरिता विद्यान्तर्गत वषट् लिखे। उसके बाहर अमृतबीज वं से वेष्टित करे।

### तथा—

दशसूत्रनिपातेन कृत्वैकाशीतिकं पदम्। तम्भ्यकोष्ठे दावस्थं कृत्वा नामास्य वीथिषु ॥३३॥  
 लिखेद्वृण्चितुष्कं तु शृणु भद्रे यथाविधि । ज्याधराव्वैर्मायया हत्तोऽम्बु स्पर्शिणा इला ॥३४॥  
 ततः श्रियो लिखेद्विद्यां शिवरक्षोदिगदिकाम् । प्रागवृत्तूर्णमृतार्ण्स्तैर्वेष्टयेत् फङ्गवियोजितैः ॥३५॥  
 ततोऽम्बु स्वयुतं तेन मालाकालितरूपिणा । वृत्तद्वयेन निष्पाद्य कुम्भं पद्माधरोत्तरम् ॥३६॥  
 कृत्वा स्वर्णादिषुक्तेषु संपूज्याभ्यर्थ्य तत्पुनः । स्थापयेज्जपसंसिद्धं तेषु पूर्वोदितेषु वै ॥३७॥  
 तत्र लक्ष्मीरतिस्फीता नीरोगाश्च प्रजास्तथा । गजाश्पष्टशवस्त्वन्ये प्राणिनः सुखिनोऽनिशम् ॥३८॥  
 भूतप्रेतपिशाचादिपीडासु विभृयादिदम् । अलक्ष्मीशान्तये वश्यसिद्धये सर्वसंपदे ॥३९॥

**अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः—**तत्र प्राक्मत्यगदक्षिणोदक्ष्य समान्तरालानि दश दश सूत्राण्यास्फल्यैकाशीति-पदानि विद्याय, तत्र मध्यकोष्ठे सबिन्दुकठकारोदरे साध्यनामालिख्य तत्कोष्ठपार्श्वस्थपूर्वार्पिरायतपंक्तिद्वयेन दक्षिणोत्तरायतपदःक्तिद्वयेन च संभूय चतस्रसु पंक्तिषु चतुश्चतुष्कोष्ठात्मिकासु स्वागादिप्रादक्षिण्यक्रमेण 'जूः वषट्' इति च प्रतिकोष्ठमेकैकमध्यन्तरान्निर्गमगत्या विलिख्य, तत ईशानादिनिर्ऋत्यादिकं च प्रागुक्तश्रीविद्यानुषुभं मध्यवीथी-चतुष्यवर्जमालिख्य, सर्वबाह्येऽभितः ईशादीशानं तुर्णामृताक्षराणि चतुरावृत्या प्रावत्समालिख्य सर्वमध्यकोष्ठ-मध्यकोष्ठमवष्ट्रभ्य चतुष्कोष्ठाणस्य तूर्णक्षरमानेन भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, तद्वाह्येऽहुलमानेन तथा वृत्तान्तरं कृत्वाथ उपरिभागे च मध्यतश्चतुरङ्गुलान्तरालं वृत्तद्वयं भार्जयित्वा तदग्रचतुष्यमानमवकं समान्तरालमुपरि चतुरङ्गुलकुम्भमुखाकारं यथा भवति तथा समुन्नतमध्य कुम्भमुखे तियरेखाद्यां प्रसार्य, तत्कुम्भवीथीमध्यमन्योन्यस्पृष्टवकारमालया शृङ्गुल-रूपयान्तर्मुखया समापूर्य सर्वत्रोपरि बिन्दुं समालिख्य, कुम्भाधस्तात्पद्यं तत्कर्णिकास्थकुम्भं यथा भवति तथा समालिख्य प्रोक्तक्रमेण मनीषितेषु विनियोगात् प्रोक्तफलानि भवन्ति। इत्यनुग्रहयन्नाणि।

**अन्य यन्त्र रचना प्रकार—**पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर दश रेखाएँ खींचने से ८१ कोष्ठ बनते हैं। मध्य कोष्ठ में ठ के गर्भ में साध्य नाम लिखे। वीथियों में 'जूः सः वषट्'—ये चार वर्ण लिखे। तब श्रीविद्या ईशान से नैऋत्य तक लिखे। फट् के साथ त्वरिता विद्याक्षरों से वेष्टित करे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर कुम्भ की आकृति बनावे। उसके नीचे पद्म बनावे। सोने आदि के सूत्रों से वेष्टित करो। पूजन करे। पुनः उसे जप से सिद्धि के लिये स्थापित करो। यह जहाँ स्थापित होता है, वहाँ की प्रजा लक्ष्मी एवं रति से युक्त तथा निरोग रहती है। हाथी, घोड़े एवं अन्य पशु बराबर सुखी रहते हैं।

भूत-प्रेत-पिशाचादि की पीड़ा नहीं होती। इससे दरिग्रता नष्ट होती है, वशीकरण सिद्ध होता है तथा सभी सम्पत्तियाँ मिलती हैं।

### निगड्यन्त्राणि तद्रचनाप्रकारश्च

अथ निग्रहयन्त्राणि (तत्रैव)—

निग्रहं शृणु देवेशि शत्रवो यस्य शङ्किताः । स्वल्पेनैव तु कालेन भवन्त्येव परासवः ॥४०॥  
 प्राग्वदेकाशीतिपदं कृत्वा तम्भयकोष्ठके । दाहगर्भे नाम कृत्वा तथा दिवीथिषु क्रमात् ॥४१॥  
 लिखेद्वीजचतुर्कं तु बहिमास्तविग्रहम् । यैः सद्यो वैरिणः स्वैरं विमुञ्जन्ति कलेवरम् ॥४२॥  
 रसो दाहक्षास्वयुतो ग्रासो दाहक्षया स्वगः । प्रभा दाहक्षास्वयुता हंसो दाहादिसंयुतः ॥४३॥  
 ईशरक्षेदिगारम्भात्पद्किंश्चिद्ग्रहितः । काल्या यमस्य क्रमतो विद्यामन्त्रं च संक्रमम् ॥४४॥  
 सर्वतोभद्रस्त्वं तु काल्यनुष्टुभमीश्वरि । शृणुं वक्ष्यामि परतो यमानुष्टुभमीदृशम् ॥४५॥  
 प्राणो मरुत्समोपेत इला वह्या समन्विता । नभो मरुद्युतं दाहश्चतुर्णा प्रतिलोमतः ॥४६॥  
 प्रथमं चरणं तस्य द्वितीयं शून्यमेव च । नभो भुवा ग्रास एतत्रातिलोमाद्वितीयकम् ॥४७॥  
 तृतीयमेकादशमं ततो गोत्रा चरान्विता । रथस्तेषां विलोमं च तृतीयं चरणं मतम् ॥४८॥  
 चतुर्थं द्वादशं विशं रयोऽम्ब्वाधो विलोमकम् । चतुर्थं चरणं प्रोक्तं विद्यैषा सर्वनाशिनी ॥४९॥  
 व्याप्तं कालीतृतीयं च मरुताम्बुसमन्वितम् । नाद एषां विलोमं च प्रथमं चरणं यमे ॥५०॥  
 एतद्वितीयतुर्यो च नभसा भूश्च नादकम् । एतेषां प्रतिलोमं च द्वितीयं चरणं मनोः ॥५१॥  
 अम्बुयुक्तो मरुच्यास्मिन्नेकादशकमेव च । रसः क्षमया बहिदाहौ प्रतिलोमं तृतीयकम् ॥५२॥  
 नादो नादो दाहवही रयोऽम्ब्वा तदनन्तम् । प्रतिलोमं तु तेषां स्याच्चतुर्थं चरणं शिवे ॥५३॥  
 एवं मनुद्वयं कोष्ठेष्वालिख्य बहिरप्यथ । वेष्टयेद् व्याप्तदाहाभ्यामुक्तक्रमसमन्वितम् ॥५४॥  
 मर्कटीदण्डिगरलैरालिप्तं स्थापितेरकम् । जपन् विनिक्षिपेदक्षविवरे चत्वरेऽथवा ॥५५॥  
 वल्मीके मातृभवने शास्तुरायतनेऽथवा । शमशाने प्रोक्तक्रमसमन्वितम् ॥५६॥

‘कालीमाररमालीका लीनमोक्षक्षमोनली। मामोदेततदेमोमा रक्षतत्वत्वत्क्षर’ इति काल्यनुष्टुभम्। ‘यमावाट-टवामाय माटमोट्टमोटमा। वामोभूरीरीभूमोवा टटीत्वत्वरीटट’ इति यमानुष्टुभम्। ‘भूंक्षूंक्षूंहं’ इति निग्रहबीजचतुर्थम्।

**अथैतत्रिग्रहयन्त्रन्त्रचनाप्रकारः—**तत्र प्राग्वदेकाशीतिपदोपेतं चक्रं विरच्य तम्भयकोष्ठे सविन्दुकरेफोदरे साध्यानामालिख्य प्राग्वत् तत्पाश्चप्त्तिषु चतुर्कोष्ठेषु प्रागुक्तक्रमेण ‘भूंक्षूंक्षूंहं’ इत्यर्थरचतुर्थयमध्यन्तरात्रिगर्मनगत्याभिः समालिख्य, आभिचार्यः पुरुषश्वेदेत्तः काल्यनुष्टुभं बहिर्यमन्त्रं, वनिता चेदत्यर्थममन्त्रं बहिः कालीविद्यां च समालिखेत्। लेखने तु—ईशानादिकं निरृत्यादिकं च कालीविद्याम्, अन्यदा तथा यममन्त्रं विलिख्य अन्यतरं बहिरीशानादिनिरृत्यन्तं निरृत्यादीशानं च निरन्तरं द्विरालिख्य, तद्विर्निरन्तरं बिन्दुयुक्तं यकारं रेफं चेशादीशानं यथाक्रममन्तर्बहिर्विभागेन समालिख्य मनीषितेषु विनियुक्त्यात्। एतत्रिक्षिपेदक्षभिचार्यः पुरुषश्वेत् काल्यादिशक्तेरायतने, खी चेत् शास्तुरायतन एवाग्रभागेऽधस्तान्निखनेदिति संप्रदायः।

हे देवि! अब शत्रुओं को अतिशीघ्र मृत्यु के मुख में पहुँचाने वाले निग्रह यन्त्र सुनो। पूर्ववत् ८१ कोष्ठ बनाकर उसके मध्य कोष्ठ में रं के गर्भ में साध्य नाम लिखें। दिवीथिष्यों में क्रमशः चार निग्रह बीज शूं क्षूं छूं हूं लिखें; जो वैरिणों को तत्काल ही समाप्त कर देते हैं। काली और यम के विद्या मन्त्र को लिखें। काली का अनुष्टुप् मन्त्र सर्वतोभद्र रूप का है। यम का अनुष्टुप् भी इसी रूप का है।

काली अनुष्टुप्—कालीमाररमालीका लीनमोक्षक्षमोनली। मामोदेततदेमोमा रक्षतत्वत्वत्क्षर।।

यम अनुष्टुप्—यमावाटटवामाय माटमोट्टमोटमा। वामोभूरीरीभूमोवा टटीत्वत्वरीटट।।

इन दोनों मन्त्रों को कोलों में लिखे। यन्त्र को बाहर भी इनसे वेष्टित करे। भूमि को मर्कटी दण्डी गरल से लीप कर इसे स्थापित करो। तदनन्तर मन्त्र का जप करते हुये इसे अपने दाहिने गङ्गा में गाढ़े अथवा चौराहे में गाढ़े या दीमक वाले स्थान में गाढ़े या माता मन्दिर में गाढ़ दे या राजमहल के प्रांगण में गाढ़े या शमशान में विहित क्रम से गाढ़ दे।

### प्रपञ्चसारे—

सीसकृते नवपट्टे शावभवे कर्पटके वा। प्रस्तरके वा विषमस्या संलिख काकसुपत्रैश्च ॥१॥  
चत्वरके वा कलिवृक्षे स्थापितमेतदरीणां हि। मृत्युकरं व्याधिकरं स्यात् पुत्रस्त्रीविपत्करं च ॥२॥ इति।

### तन्त्रराजे—

यत्र देशादिके यन्त्रं तत्रालक्ष्मीगदिः समम्। मारी सुदुस्तरासाध्या सर्वेद्वासुरैरपि ॥५७॥  
प्रागवच्च नवभिः सूत्रैरष्टाष्टकपदं शिवे। कृत्वा तेष्वीशरक्षोदिगारम्भात्कालिकामनुम् ॥५८॥  
विलिख्य यममन्त्रेण प्रोक्तबीजद्वयेन च। वेष्टयित्वा बहिश्क्रं स्थापयेत्तदधोमुखम् ॥५९॥  
एतच्च पूर्वचक्रोक्तफलकृत् परमेश्वरि। अनुक्तेष्वपि नामानि योजयेत् कोष्ठमध्यतः ॥५०॥  
लवणोषणमेहाम्बुगृह्यूमाग्निम्बोत्यनिर्यासो विषमीरितम् ॥५१॥

ऊषणमूषर इति मनोरमाकारैव्यर्थियात्। मेहाम्बु प्रस्तवः। अग्निश्चित्रकम्। यन्त्ररचनाक्रमो यथा—तत्र प्राग्वत् नवभिर्नवभिः सूत्रैश्चतुःषष्ठिकोष्ठकानि कृत्वा तेष्वीशानादिकं निरूप्त्यादिकं चाभिचार्यः पुरुषश्चेदन्तः कालीविद्यां बहिर्यमन्त्रं च, स्त्री चेदनर्थममन्त्रं बहिः कालीविद्यां च प्राग्वत् समालिख्य प्राग्वत् सबिन्दुयकाररेफाभ्यां संवेष्ट्य प्रोक्तक्रमेण प्रोक्तस्थानेषु स्थापनात् प्रोक्तफलसिद्धिर्भवतीति।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि यह यन्त्र सीसा पर, नये वस्त्र पर, शववस्त्र पर, खपड़े पर या पत्थर पर विष की स्थाही से कौए के पॅंख से लिखकर चौराहे पर या कलिवृक्ष में स्थापित करने से शत्रुओं की मृत्यु करने वाला, उनमें व्याधि उत्पन्न करने वाला और उनके पुत्रों तथा स्त्रियों को विपत्ति प्रदान करने वाला होता है।

तन्त्रराज में कहा गया है कि जिस देश में यह यन्त्र रहता है, वहाँ बराबर दरिद्रता और बीमारी रहती है; साथ ही सभी देवताओं एवं दैत्यों से भी असाध्य महामारी फैलती है।

अन्य यन्त्र—पूर्ववत् नव-नव रेखाओं को खींचकर ६४ कोष्ठ बनावे। उसमें ईशान और नैऋत्य से आरम्भ करके कालिका मन्त्र लिखे। यममन्त्र से उसे वेष्टित करो। उसे अधोमुख स्थापित करो। ऐसा करने से पूर्व चक्रोक्त फल प्राप्त होता है। अनुक्त होने पर भी मध्य कोष्ठ में नाम लिखो। लवणोषण, मेहाम्बु, गृह्यूम, अग्नि (चित्रक), शमशान अंगार एवं निम्बोत्य निर्यास को विष कहा गया है।

### तथा—

विद्याद्यवर्णजठरे साध्यमालिख्य तद्विः। अष्टच्छदेषु फङ्क्वर्ज्यमालिखेददृष्टवर्णकम् ॥६२॥  
कर्णिकास्थं ततोऽब्जं च वेष्टयेन्मायया ततः। बहिः कुम्भं विद्याच्च प्रोक्ताक्षरविधानतः ॥६३॥  
एवमन्यैश्च नवभिर्विद्यावर्णेण्यथाक्रमम्। विद्याच्च यन्त्राणि दशानां च फलं शृणु ॥६४॥

यन्त्ररचनाक्रमो यथा—तत्राष्टदलकमलं सकर्णिकं विलिख्य तद्विहितद्वयं विद्याय कर्णिकायां विद्याद्यवर्णं साध्यनामगर्भ विलिख्य, तद्विहितायाबीजेन संवेष्ट्याष्टदलेषु फङ्क्वर्ज्य द्वितीयाद्यष्टौ बीजानि विलिख्य तद्विहिताय वेष्टयेत्। एवं द्वितीयबीजं कर्णिकायां विलिख्य द्वितीयं यन्त्रं भवति। एवं तृतीयबीजादिकं ज्ञेयम्। एवं दश यन्त्राणि भवन्ति। फलान्याह—

सर्वरक्षां जयं वशं नरनारीनृपादिनाम्। स्तम्भं लक्ष्मीयशोहेमवासांसि च समाप्तुयात् ॥६५॥

अनावृत्तान्यक्षराणि मन्त्रेष्वेकादशाथ तैः । स्वरभिन्नैर्भवेत्संख्या षट्सप्तत्या शतं स्मृतम् ॥६६॥  
 ‘अहररुच्छठक्षसतफट्’ इति ।

तैर्यन्तकरणं तेषां फलानि च यथाक्रमम् । शृणु वक्ष्यामि देवेशि साधकाभीष्टसिद्धये ॥६७॥  
 वृत्तयोर्मध्यं कृत्वा पद्मं षोडशपत्रकम् । तम्भये कर्णिकामध्ये शक्तिं साध्यसमन्विताम् ॥६८॥  
 परेषु षोडशार्णानि वेष्टयेत्तत्त्वं मायया । वृत्तयोरन्तरा बाह्ये कुम्भं प्रोक्तं समालिखेत् ॥६९॥  
 एवमेकादशोक्तानि यन्त्राणि प्रथितानि वै ।

अत्र सकर्णिकं षोडशदलपद्मं विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयं विधाय, कर्णिकायां साध्यनामगर्भं हींकारं विलिख्य  
 तम्भया संवेष्ट्य षोडशदलेषु षोडशबीजानि विलिख्य, वृत्तद्वयान्तराले मायाबीजैः संवेष्ट्य प्राक्प्रोक्तप्रकारेण  
 तद्वह्निः कुम्भं विलिखेत् । एवमेकादश यन्त्राणि भवन्ति ।

सकर्णिक अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर दो वृत्त बनावे। कर्णिका में विद्या के गर्भ में साध्य नाम  
 लिखे। उसे हीं से वेष्टित करे। आठ दलों में द्वितीय वर्ण से आठ बीज लिखे। उसे बाहर से माया से वेष्टित करे। बाहर कुम्भ  
 बनावे। उक्त अक्षर-विधान से इसी प्रकार अन्य नव यन्त्र विद्या वर्णों से बनावे। ये सभी दशो यन्त्र सर्वरक्षाकर, जयप्रद, नर-  
 नारी-नृपादि को वशीभूत करने वाले, स्तम्भनकारक, लक्ष्मी-यश-सोना-वस्त्र प्रदान करने वाले होते हैं। त्वरित मन्त्र के अक्षरों  
 को अनावृत करने पर एकादश अक्षर होते हैं। स्वरभिन्न होने पर १७६ अक्षर होते हैं। ग्यारह अक्षर है—अ ह र ख च छ  
 क्ष स त फट्। इनसे बने सभी यन्त्र साधकाभीष्टाद्यायक होते हैं। वृत्त के मध्य में षोडश दल कमल बनावे। कमलकर्णिका के  
 मध्य में साध्य नामगर्भित हीं लिखे। उसे हीं से वेष्टित करे। सोलह दलों में सोलह बीजों को लिखे। दो वृत्तों के अन्तराल  
 में हीं से वेष्टित कर पूर्वोक्त प्रकार से उसके बाहर कुम्भ बनावे। इस प्रकार से ग्यारह यन्त्र बनते हैं।

तथा—

विनियोगानथैतेषां क्रमेण शृणु पार्वति ॥७०॥

प्रथमं गजरक्षाकृद् द्वितीयं हेमरक्षकम् । तृतीयं नृपरक्षायां चतुर्थं द्वन्द्वरक्षकम् ॥७१॥  
 पञ्चमं कुरुते राजवेशरक्षां तु सर्वतः । षष्ठं सचिवरक्षाकृत्सप्तमं पुररक्षकम् ॥७२॥  
 अष्टमे गृहरक्षा स्यात्सर्वेषामपि सर्वदा । फणिचोरग्रहादिभ्यो भयेभ्यः शत्रुतस्तथा ॥७३॥  
 नवमं सर्वरोगातौं सर्वेषामपि सर्वदा । उत्तराकं स्याद्देवेशि प्राक्प्रोक्तविधिना युतम् ॥७४॥  
 दशमं भूर्जं कृत्वा प्राग्वत्सिक्थोत्थलिङ्गकम् । स्थापयेच्छीतले तोये घटादा सविधेऽथ तम् ॥७५॥  
 पूजयेत्तनि च यजेत्पृशञ्जीवकरेण तम् । घोराभिचारकृत्यादिजातो दाहज्वरः क्षणात् ॥७६॥  
 विमुच्य तं प्रयोक्तारं नाशयेत्तत्क्षणात् प्रिये । एवमेतानि यन्त्राणि नामतः सर्वकार्यकृत् ॥७७॥  
 सर्वासामपि नित्यानां प्रातरेव समृद्धये । पूजादौ च बलिं दद्यात्षोडशार्णेन पार्वति ॥७८॥

इति त्वरितानित्याप्रयोगविधिः ।

हे पार्वति! क्रमशः इनके विनियोग सुनो। प्रथम यन्त्र से हाथियों की रक्षा होती है। द्वितीय यन्त्र से सोने की रक्षा होती  
 है। तृतीय यन्त्र नृपरक्षक होता है। चतुर्थ यन्त्र युद्ध में रक्षक होता है। पञ्चम राजवेश का रक्षक होता है। षष्ठ सचिव का  
 रक्षक होता है। सप्तम पुर का रक्षक होता है। अष्टम से सर्प-चोर-ग्रह-भय-शत्रु से घर की रक्षा होती है। नवम यन्त्र से सभी  
 रोग एवं दुःख से सर्वदा रक्षा होती है। दशम यन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर भात के लिङ्ग में स्थापित करके घडे के शीतल  
 जल में रखकर सविधि पूजन करे। जीवक से स्पर्श करके पूजन करे। इससे घोर अभिचार कृत्यादि से उत्पन्न दाहज्वर क्षण  
 भर में आर्त को छोड़कर प्रयोग करने वाले को ही नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार इतने यन्त्र नाम से सभी कार्य करते हैं। सभी  
 नित्याओं की पूजा प्रातःकाल करने से और षोडशार्ण से बलि देने पर समृद्धि मिलती है।

कुलसुन्दरीनित्याप्रयोगविधिः

अथ कुलसुन्दरीनित्याप्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१५.२५) —

एवं नित्याचर्नं कुर्यान्नित्यहोमं घृतेन वै। प्रातः सलिलपानं च कुर्याद्विद्यात्मसिद्धये ॥१॥  
चन्दनोशीरकपूरकस्तूरीरोचनान्वितैः । काशमीरकालागुरुभिर्भृगस्वेदमयैरपि ॥२॥  
आलिप्तगात्रो हृष्टान्तःकरणो मौनमन्तिः । चित्रभूषाम्बरसंगवी जपेद्विद्यां निशामुखे ॥३॥  
पूजयेच्च शिवामेतैर्थ्ये । सर्वार्थसिद्धये । सर्वाभिरपि नित्याभिः प्रातमातृकया समम् ॥४॥  
त्रिजपाभिः पिबेत्तोयं तथा वाक्सिद्धये शिवे । अन्यैरपि च मन्त्रैस्तैर्विद्याभिस्तत् प्रसिद्ध्यति ॥५॥  
प्राग्वल्लक्ष्मत्रयं जपत्वा तदशांशं च तर्पयेत् । सुगच्छसलिलैर्होमं तावत्निमधुराप्लुतैः ॥६॥  
पलाशपुष्टैर्विकचैरदुष्टैरविखणितैः । सिद्धविद्या: पुनः कुर्यात्काम्यकर्मणि साधकः ॥७॥

देव्या वर्णविभेदेन फलभेदाः समीरिताः ।

कुलसुन्दरी नित्या प्रयोग—तन्त्राज में कहा गया है कि इस प्रकार कुलसुन्दरी का नित्य पूजन करके धी से हवन करे। प्रातः विद्या से मन्त्रित जल पीने से आत्मसिद्धि होती है। चन्दन, खश, कपूर, कस्तूरी, गोरोचन, केसर, काला आगर, मृगस्वेद का लेप शरीर में लगाकर प्रसन्न मन हो मौनावलम्बन कर विचित्र भूषण वस्त्र माला पहन कर रात के प्रथम प्रहर में विद्या का जप करे। सर्वार्थसिद्धि के लिये उपर्युक्त गत्यों से शिवा का पूजन करे। इससे अन्य मन्त्र भी सिद्ध होते हैं। प्रातः काल में सभी नित्याओं का इसी के समान पूजन करे। कुलसुन्दरी के मन्त्र के तीन बार जप से मन्त्रित करके जल पीने से वाक्सिद्धि मिलती है। अन्य नित्याओं के मन्त्र से भी यह सिद्ध होता है। पूर्ववत् तीन लाख जप करके दशांश तर्पण सुगन्धित जल से करे। त्रिमधुरात् पलाश पुष्ट से दशांश हवन करे। इस प्रकार सिद्ध विद्या से काम्य कर्म साधक करे। देवी के वर्णभेद से फल में भी भेद कहा गया है।

### विद्यायाक्षयीमयत्वविवरणम्

विद्यास्वरूपभेदांस्तु शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥८॥

त्रयीमयत्वं विद्यायास्तथा व्यञ्जनसङ्गमात् । वाच्यवाचकरूपस्य प्रपञ्चस्यामितात्मनः ॥९॥  
कारणत्वं परात्मवमेयत्वं च वै क्रमात् । कथयामि शृणु प्राज्ञे विचित्रास्तव वैभवाः ॥१०॥  
अकारादिः सामवेदो ऋग्वेदस्तु तदादिकः । यजुर्वेद इकारादिस्तोषां संयोगतः शुचिः ॥११॥  
तत्रिष्ठति शृणु प्राज्ञे प्रोक्तं पूर्वापरक्रमात् । विलिखेद्योजयेत् पूर्वं शब्दशास्त्रानुसारतः ॥१२॥  
गुणसंध्या ऋग्यजुषा ततस्तेनापरं तथा । वृद्धिसंध्या समायुज्यादित्युत्पन्नं शुचेवपुः ॥१३॥  
तेन त्रयीमयी विद्या कार्यकारणयोगतः । आद्यक्षरप्रसूतानि सर्वाण्यन्यानि येन वै ॥१४॥  
मध्यमार्णगतप्राणा व्यञ्जनादेस्तु मातृका । प्राग्वत् कारणकार्यत्वयोगाद्वाचकरूपता ॥१५॥  
तदर्णिकरसायोगाद्वृत्तिवेन वाच्यता । इति वाचकवाच्यत्वरूपा विश्वात्मतोदिता ॥१६॥  
परारूपं तृतीयेन त्रिंशिकोक्तं त्रिकात्मकम् । एवमेषा विश्वमयी विद्यारूपमिदं शृणु ॥१७॥  
शुचिराद्या वाक्स्वरूपा द्वितीया वह्निरीता । बिन्दुसर्गात्मनोरेक्ष्यरूपा सा त्वावयोवपुः ॥१८॥  
तेन बीजेन विग्रात्परूपा सा सम्यगीरिता । वनं तृतीयमाख्यातं मायया स्वेन वा युतम् ॥१९॥  
एषा त्रैपुरकन्दा स्यात् सङ्केतेन निर्गच्छते । ज्ञातज्ञानज्ञेयदोषगुणतेजस्त्रयात्मिका ॥२०॥

'ऐङ्गौ' इति सङ्केतविद्या। त्रैपुरकन्दं त्रिपुरामन्त्राणां मूलमित्यर्थः। वनं तृतीयं औकारः। मायया विसर्गेण,  
स्वेन बिन्दुना वेति विकल्पः। तथा—  
अस्यास्तु मध्यमे बीजे रसाप्राणनियोजनात् । वाच्यवाचकरूपात्मा प्रपञ्चस्य हि कारणम् ॥२१॥

तृतीये हंसमायोगात् त्रिकविश्वात्मतोदिता । हंसहृष्टोगतस्तेषु जज्ञमस्थावरात्मता ॥२२॥  
 ‘ऐक्लींओः, ऐंक्लींसौः, हसैंहस्क्लींहसौः’ । एतासु विद्यासु कादिपञ्चत्रिंशद्व्यञ्जनानाम्।

विद्या का स्वरूपभेद जैसा है, उसे यथाविधि कहता हूँ। त्रीयमयत्व, व्यञ्जनसंगम से वाच्य-वाचकरूप अभित प्रपञ्च और अमेयत्व—ये तीन विद्या के स्वरूपभेद हैं। इनका मैं क्रमशः विवेचन करता हूँ। हे देवि! आपका वैभव विचित्र है। सामवेद और ऋग्वेद के आदि में ‘अ’ है। यजुर्वेद के आदि में ‘इ’कार है। इसी से ऋग्वेद पवित्र है, उसकी निष्ठति पूर्वापर से इस प्रकार होती है। शब्दशास्त्र के अनुसार उसे पूर्वयोजित करके लिखा जाता है। गुणस्त्वा ऋक्, यजु और अन्य में है। वृद्धिस्त्वा के योग से आदित्य का पवित्र वपु उत्पन्न हुआ। इसी से यज्ञीयमी विद्या कार्य-कारणयोग से हुई। आद्य अक्षर से प्रसूत अन्य सभी हैं। मध्यम अक्षरगत प्राण से व्यञ्जन मातृकायें हैं। पूर्ववत् कारण-कार्यत्व के योग से उनकी वाचकरूपता है। उस वर्ण के संयोग से भूतादित्व का वाचक है। वाचक वाच्यत्व रूप विश्वात्मा रूप्ति है। परारूप तृतीय से तैतीस व्यञ्जन है। इस प्रकार यह विश्वमयी विद्या है। इस पवित्र विद्या का प्रथम अक्षर वाक्स्वरूप (ऐ) है। द्वितीय वहिरूप (ई) है। बिन्दु-विसर्गात्मक ऐरूप आपका शरीर है। उहीं बीजों से वह विश्वात्मरूप सम्यक् प्रकार से कहा गया है। तृतीय का नाम वन (औ) है। माया से ये युक्त हैं। त्रिपुरामन्त्रों के मूल ये ही हैं। ज्ञात-ज्ञान-ज्ञेय के दोष-गुण-तेज से यह त्रयात्मिका है। ऐ ई ओ संकेत विद्या है।

रसा एवं प्राण का नियोजन इसके मध्यम बीज में होता है। वाच्य वाचकरूपता ही प्रपञ्च का कारण है। तृतीय हृत के समायोग से विक विश्वात्म उदित है। उसमें हंस-हृत् योग से उनकी जंगमता एवं स्थावरात्मता है। ऐं क्लीं औ, ऐं क्लीं सौः, हसैं हस्क्लीं हसौ—इन विद्याओं में कादि पच्चीस व्यञ्जन हैं।

तथा—

एकद्व्यादिसमायोगाद्व्यञ्जनानां तथा त्रिषु । ज्ञातुं न शक्यते संख्या विद्यानां परमेश्वरि ॥२३॥  
 त्रिषु त्रिबीजेषु।

एवं सानन्तविभवा तां निःशेषं वदेत्कथम् । तथापि भक्तसंत्राणहेतोः काङ्गन वच्चि ते ॥२४॥

आयुर्लक्ष्मीकीर्तिर्भोगसौन्दर्यारोग्यदायिकाः । ऐहिकामुष्मिकज्ञानमय्यः सङ्कल्पसिद्धिदाः ॥२५॥

विद्यायाः कुलसुन्दर्या हंसयोगात्रिषु क्रमात् । विजयाख्या महाविद्या विश्वसंत्राणतत्परा ॥२६॥

अत्र ‘हैंहक्लींहसौः’ इति विजया।

हंसमायोगतस्तेषु बीजाख्या विश्वचिन्मयी । द्वयोर्नियोजनातेषु जायते सावयोर्वपुः ॥२७॥  
 केवलसकारयोगाद्वीजाख्या । द्वयोर्हकारसकारयोगेऽगाद्विश्वचिन्मयी।

हदादिस्त्वन्मयी विद्या हंसादिर्मन्मयो मनुः । तेषु दाहसमायोगाद्विश्वाख्या विश्वविग्रहा ॥२८॥  
 अत्र मन्त्र इति विद्येति भेदद्वयम् । दाहो रेफः।

प्रत्येकं शक्तिपुटिता विद्या विश्वविमोहिनी ।

मायाबीजपुटिता प्रत्येकम्।

खेचराम्बुरसोपेतमायाभ्यां पुटिता तु सा ॥२९॥

त्रिपुरामृतसंज्ञा सा सर्वाप्यायनविग्रहा ।

हींब्लेहीं इति।

मायाद्या मोहिनी प्रोक्ता तम्भ्या क्षोभिणी मता ॥३०॥

तदन्ता क्लेदिनी ख्याता वातादिः स्यान्महोदया । त्रयोदशीति कथिता त्रिपुरानिधयः स्मृताः ॥३१॥

आसां क्रमविपर्यासजाता विद्याष्टसप्ततः । तासां विधानं ते प्रोक्तमशेषं लक्षसागरे ॥३२॥

एक दो आदि के संयोग से एवं तीनों व्यञ्जनों के संयोग से विद्याओं की संख्या अनन्त है। इस प्रकार इस अनन्त विभव का वर्णन कैसे किया जा सकता है, तथापि भक्तों के ब्राण के लिये कुछ को कहता हूँ। आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, भोग, सौन्दर्य, आरोग्यदायिका, ऐहिक-आमुष्मिक ज्ञानमयी, संकल्पसिद्धिदा कुलसुन्दरी विद्या के हंस योग से तीनों क्रम से विजया नामक महाविद्या विश्व के संत्राण में तत्पर है। ‘हैं हक्तीं हसौः’ विजया विद्या है। उनमें हत् के समायोग से बोजाख्या विद्या विश्वचिन्मयी है। सकार एवं हकार के योग से यह विद्या विश्वचिन्मयी होती है। हृदादि त्वन्मयी विद्या है। हंसादि मन्मयी विद्या (शिव) है। उनमें रेफ के संयोग से विश्वा विश्वविग्रहा है। प्रत्येक शक्तिपुरुष्ट विद्या विश्वविमोहिनी है। हीं ब्लैं हीं से पुटित विद्या सर्वार्थायन-स्वरूपा त्रिपुरामृता है। जिसके आदि में हीं हो, उसे क्षोभिणी कहते हैं। अन्त में हीं होने से क्लेदिनी होती है। त्रिपुरा निधि तेरह हैं। इनके कर्मविपर्यय से ७८ विद्यायें होती हैं। उनका विधान लक्षसागर में वर्णित है।

### सम्पत्करीतीविद्यातद्व्यानविधानादि

संपत्करीति कार्यस्ति विद्या याचिन्त्यवैभवा । तां वक्ष्ये शृणु देवेशि साधकाभीष्टसिद्धये ॥३३॥

प्राणो रसा मरुद्विष्वयोगादायमीरितम् । वातेन च चरस्वाभ्यां द्वितीयमपि पावर्ति ॥३४॥

हंसहृदनमायाभिस्तुतीयं परमेश्वरि । एवं त्रिवर्णा सा विद्या विधानं चाथ कथ्यते ॥३५॥

कलआई, अऐ, हसौः।

तृतीयबीजेनाङ्गानि दीर्घस्वरयुजा क्रमात् । कुर्यात्कराङ्गयोः प्राग्वदित्यं ध्यायेच्च तां पराम् ॥३६॥

दाडिमीकेसरप्रख्यदेहवासोविभूषणाम् । चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नस्मेरवक्त्रकाम् ॥३७॥

रत्नाभिषेकसंभिन्नामष्टपत्राब्जमध्यगे । त्रिकोणे स्वस्तिकासीनां करुणानन्दमन्दिराम् ॥३८॥

प्रवालाक्षस्त्रजं रत्नचषकं रत्नपूरितम् । पुस्तकं च वरं हस्तैर्दधानां सर्वमङ्गलाम् ॥३९॥

अकारादिसकारान्तषोडशत्रयकल्पिते । कुलासने हल्कार्णामध्ये तद्विद्यान्विते ॥४०॥

समावाहार्घ्यसङ्कल्पपूर्वं तामर्चयेत्क्रमात् । मध्ये त्रिकोणकोणेषु रत्नं प्रीतिं मनोभवाम् ॥४१॥

अग्रादिसव्यग्यास्तद्वदृष्टपत्रेषु मातरः । चतुरस्त्रे लोकपालान् प्राग्वच्छक्तीः समर्चयेत् ॥४२॥

विधानभष्टसप्तत्या इति सम्यक्समीरितम् । बलिद्वयं च होमं च प्राग्वदन्यत्समुन्नयेत् ॥४३॥

चतुर्गुणचतुर्थाश्वसमाननियोजितैः । ब्राह्मीरसवचादुग्र्यैः शृतं सर्पिञ्चिभिर्दैनैः ॥४४॥

सयन्त्रं मातुकाविद्याजपं त्वयुतमादरात् । दिनशो विलिखेत्तातरब्दामूको भवेत्कविः ॥४५॥

शिवोऽम्बिका कुमारश्च विधिर्विष्णुस्तथा रमा । कुबेरो रविचन्द्रारजगुरुसितसौरयः ॥४६॥

वारेशास्तेषु वारेषु तांस्तद्विनजविद्यया । नामसप्ताक्षरीयुक्त्या पूजयेत्तर्पयेद्दुरेत् ॥४७॥

वण्ठैष्विद्यसमुत्येन भस्मना मन्त्रितेन तु । मातुकान्याससहितं स्पृशेद्रक्षाकृतेन तु ॥४८॥

विशेषतो महीपानामार्तानांश्च विधिं चरेत् । तेन ते सुखिनो भूयुः सान्वया यावदायुषम् ॥४९॥

कूरेषु व्याधिषु प्राप्तेष्वच्यत्यैं तु मण्डले । नवकोष्ठे नव प्रोक्तान् राहुकेतुसमन्वितान् ॥५०॥

मध्येन्द्रयमपाशीन्दुवह्निरक्षोऽनिले शिवे । कोष्ठे तांस्तैर्जपेत्सद्यो मुक्तरोगः सुखी भवेत् ॥५१॥

ग्रहार्तिषु रिपुक्लेशे दुर्भिक्षे त्रिविधे तथा । उत्पत्रे समरोद्योगे कुर्यादुक्तार्चनादिकम् ॥५२॥

संपूर्ज तद्विदां सम्यग्दद्यान्नं स्वर्णमम्बरम् । तेन सर्वापदुम्भुक्तः सुखी जीवति भूतले ॥५३॥

सम्पत्करी विद्या अचिन्त्य वैभवा है। साधकों की अभीष्ट-सिद्धि के लिये इसे कहता हूँ। यह विद्या है—कलआई अऐ हसौः। सां सीं सूं सैं सौं सः से इसका षड़ न्यास करे। इन्हीं से करन्यास भी करके परा देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

दाडिमीके सप्रख्यदेहवासोविभूषणम् । चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसत्रस्मेरवक्त्रकाम् ॥  
 रत्नाभिषेकसंभित्रामष्टपत्राब्जमध्यगे । त्रिकोणे स्वस्तिकासीनां करुणानन्दमन्दिराम् ॥  
 प्रवालाक्षसंजं रत्नचषकं रत्नपूरितम् । पुस्तकं च वरं हस्तैर्दधानां सर्वमङ्गलाम् ॥  
 अकारादिसकारान्तषोडशत्रयकल्पिते । कुलासने हळक्षाण्मध्ये तद्विद्ययान्विते ॥

अर्थ स्थापित करके संकल्प करके देवी का अर्चन करे । मध्य में त्रिकोण के कोनों में रति-प्रीति-मनोभवा की पूजा करे । अपने अग्र से वामावर्त अष्ट पत्रों में माताओं की पूजा करे । चतुरस में लोकपालों की शक्तियों का अर्चन करे । अठहत्तर विद्याओं का विधान सम्यक रूप में कहता हूँ । बलिद्वय और होम के साथ पूर्ववर्त अन्य क्रिया करे । चौंगुना चतुर्थांश स्वसमान ब्राह्मी रस, वचा, दूध, व्वाथ, गोधृत से तीन दिनों तक पूजा करे । एक लाख सयन्न मातृका विद्या का जप करे । तदनन्तर दिन में प्रातः यन्त्र को लिखे तो एक वर्ष में गूंगा कवि हो जाता है । शिव भी अम्बिका, कुमार, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, कुबेर, सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के वारेशों को उनके वारों में उस दिन की विद्या के साथ सप्ताक्षरी नाम से युक्त कर पूजन-तर्पण-हवन करे । मन्त्रित वर्णांशधि भस्म से मातृका न्याससहित रक्षा के लिये आर्त का स्पर्श करे । विशेषतः आर्त राजा के लिये यह विधि करे । इससे वे आजीवन सुखी रहते हैं । क्लूर व्याधियों के होने पर अर्चन नव कोष्ठों के मण्डल में नवो ग्रहों का करे । मध्य, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, अग्नि, नैऋत्य, वायव्य, ईशान कोष्ठों में उनके जप से तुरन्त रोगमुक्त होकर सुखी हो जाता है । ग्रहपीडा, शत्रुकष्ट, दुर्भिक्ष—इन तीनों के उत्पन्न होने पर और युद्ध के उद्योग में उक्त अर्चनादि करे । पूजन करके आचार्य को गाय, सोना, वस्त्र दान करे । इससे सभी आपदाओं से मुक्त होकर पृथ्वी पर सुखी होकर जीवित रहता है ।

**ब्रूहि** मे मातृकान्यासं तद्यन्तं परमेश्वर । कथयामि द्वयं तेऽद्य वक्ष्ये तत्पत्तलेऽखिलम् ॥५४॥

**हस्तवीर्धस्वरद्वन्द्वपुटितः**: षण्ठवर्जितैः । कुर्यादङ्गनि षड्वर्गैः पञ्च पञ्चदशाक्षरैः ॥५५॥

**स्वरेषु मध्यतः प्रोक्ताश्वत्वाः**: षण्ठवर्जिताः । कराङ्गयोर्विधायेत्यमादक्षिणाक्षराणि वै ॥५६॥

**भाले वक्त्रावृतौ नेत्रश्रोत्रनासाकपोलतः**: । ओष्ठदन्तशिरोजिह्वास्वेकशो विन्यसेत्स्वरान् ॥५७॥

**करयोः पादयोर्मूलमध्यसन्धिष्ठथायतः**: । विन्यसेच्च चतुर्वर्गं पञ्चमं पार्श्वपृष्ठतः ॥५८॥

**नाभौ हृदि च विन्यस्य व्यापकान् दशधातुषु** । त्वग्सृङ्गमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रान्तगामिषु ॥५९॥

**प्राणशक्त्यात्मसु तथा न्यसेदेवं समाहितः**: । हृदयस्पर्शिनां तेषां स्मरन् धातुषु विन्यसेत् ॥६०॥

**अथ बाहुद्वये स्कन्धयुगे च त्रिकक्षक्योः**: । हृदयाधस्तथा पादजठरे वदने न्यसेत् ॥६१॥

**वृत्तद्वयावृत्तं चाष्टपत्रमञ्जं महीपुरम्** । विधाय विलिखेन्मध्ये हंसहृदनशक्तिकम् ॥६२॥

**कूटं स्वरान् केसरेषु वर्गान्वित्रेषु चालिखेत्** । पञ्चपञ्चाक्षरोपेतान् दावाम्बु दिग्विदिक्षु च ॥६३॥

**स्वरेष्वपुरुक्तानि पञ्चान्यानि तु पञ्च वै** । सव्यञ्जनाव्यञ्जनत्वभेदतोऽभूद् द्विरन्वयः ॥६४॥

**सवाताग्निधरास्वेन शक्तिस्तपञ्चकं भवेत्** । अन्यान्येकादश शिवे सन्धिमात्रादिसम्भवाः ॥६५॥

पर्वती ने कहा कि हे परमेश्वर! मातृका न्यास एवं यन्त्र को कहिये । शिव ने कहा कि आज दोनों को कहता हूँ, जिसे पहले भी कह चुका हूँ । ऋ ऋ लू लू चारों को छोड़कर शेष स्वरों के हस्त-दीर्घ से पुटित षड्वर्ग में पाँच-पाँच अक्षरों से अंगन्यास एवं करन्यास करे । जैसे—अं कं खं गं धं डं आं, इं चं छं झं झं ई इत्यादि और अन्त में य र ल व श ष स ह ल क्ष' दश से न्यास करे । ललाट, मुख, नेत्र, श्रोत्र, नासा, कपोल, ओष्ठ, दन्त, शिर, जीभ में स्वरों से न्यास करे । हाथों और पैरों के मूल, मध्य, सन्धि, अंगुलिमूल, अंगुल्यग्र में कवर्ग, चर्वर्ग, टर्वर्ग, तर्वर्ग का न्यास करे । पञ्चम वर्गं पर्वर्ग से पार्श्व, पीठ, नाभि, हृदय में न्यास करे । शोष दश से धातु, त्वचा, असृङ्ग, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, प्राणशक्ति एवं आत्मा में न्यास करे । धातुओं का न्यास हृदय को स्पर्श करें । दोनों बाहुओं में, दोनों कक्षों में, त्रिक में, कक्ष में, हृदय के नीचे, पैर में, उदर में, मुख में, वृत्तद्वय आवृत अष्टपत्र कमल भूपुर में न्यास करे । यन्त्र मध्य में हंस हृद वनशक्ति लिखे । कूट स्वरों को केसर में लिखे । पत्रों में वर्णों को लिखे । पाँच अक्षरों से युक्त दावाम्बु दिशा-विदिशाओं में लिखे । पुनरुक्त स्वरों

में पाँच-पाँच सव्यञ्जन-अव्यञ्जन भेद से दोनों अन्वय होता है। सवातानिधरास्वेन = अ, इ, उ, विन्दु, विसर्ग—ये शक्तिपञ्चक हैं। अन्य ग्यारह सम्बन्ध-मात्रादिसम्पत्ति हैं।

#### यन्त्रविनियोगः

एतद्यन्तस्य मध्यस्थं नाम कृत्वा प्रयोजयेत् । प्रातमूर्धिं स्मरेदिन्दुबिम्बस्थं सर्वसम्पदे ॥६६॥  
 अभिषेकाद् धारणाच्च बूजनाल्लोहकल्पिते । स्थापनाद् गृहदेशादौ यन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥६७॥  
 एतद्यन्तस्य मध्यस्था देवताः सकला अपि । सत्रिधिं फलदानं च साधकानां वितन्वते ॥६८॥  
 विद्यां तां तु नरो मूर्खों जडे मूकोऽतिपातकी । नित्यशो जपपूजादैः काले मत्समतां ब्रजेत् ॥६९॥  
 जिह्वायामक्षराण्येतान्यसकृद्धावयन् धिया । प्रविष्टो विद्वद्वोषीषु पूज्यते वाग्मिभिर्जनैः ॥७०॥  
 मूर्धीन्दुबिम्बमध्यस्थं सुधावर्षविधायिनम् । विभावयत्रिति मनुं जपेदेकाग्रमानसः ॥७१॥  
 मण्डलात्कवितासिद्धिः सर्वभाषामयी भवेत् । वादादिषु तु सर्वत्र देवतात्मा जयी भवेत् ॥७२॥  
 यन्नाणि नित्याविद्यायाः समान्येकात्मयोगतः । तेनात्मनोक्तानि शिवे सर्वसिद्धिकराणि वै ॥७३॥  
 षोडशस्वपि विद्यासु यन्नादन्यत्समीरितम् । प्रयोगजातमन्योन्यं विद्यादैक्ययोगतः ॥७४॥  
 वृत्तयुगमं षडस्त्रं च कृत्वा मध्याद्यमध्यतः । नामालिख्य ब्रह्मः षट्सु तत्त्वयं स्वेन मायया ॥७५॥  
 विलिख्य मातृकां वृत्ते कृत्वा तद्वारणाम्नुखे । जिह्वायां भावनात् सर्वगोष्ठीष्वग्रं विगाहते ॥७६॥

इति कुलसुन्दरीनित्याप्रयोगविधिः।

इस यन्त्र के मध्य में साध्य नाम लिखकर प्रयोग करे। प्रातःकाल मूर्धा में चन्द्रबिम्ब में स्थित देवी का ध्यान करने से सर्व सम्पदा मिलती है। अभिषेक करने और उसे धारण करने एवं लौह-निर्मित के पूजन से तथा गृह-देश आदि में स्थापित करने से यह यन्त्र सर्वार्थ-सिद्धिप्रद होता है। इस यन्त्र के मध्य में सभी देवताओं का वास है। ये साधकों को फल प्रदान करते हैं। इस विद्या का जप करने वाला मनुष्य यदि मूर्ख, जड़, गूंगा, पापी भी हो तो समय पर मुझ शिव के समान हो जाता है। विद्या के अक्षरों की अपने जीभ में भावना करके विद्वानों की गोष्ठी में जाने पर अपनी बुद्धि से वह विद्वानों द्वारा पूज्य होता है। मूर्धा स्थित चन्द्र-विम्ब में देवी की सुधा-वर्षा करते हुए भावना करके एकाग्र मन से मन्त्र जप करे। ४० दिनों तक ऐसा करने से साधक समस्त भाषाओं में कविता करने लगता है। वाद-विवाद में सर्वत्र वह देवतात्मा विजयी होता है। नित्या विद्या के सभी यन्त्र को अपनी आत्मा स्वरूप मानने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। सोलह नित्या विद्या के यन्त्रों का स्मरण एक साथ करने से प्रयोग सफल होता है। दो वृत्त सहित षडस्त्र के मध्य में नाम लिखे। बाहर छः कोनों में उन तीनों को हीं के साथ लिखकर वृत्त मध्य में मातृकाओं को लिखकर यन्त्र बनावे। उसे मुख में धारण करके जिह्वा में स्थित होने की भावना करे तो साधक सभी गोष्ठियों में अग्रगण्य होता है।

#### नित्यानित्याप्रयोगविधिः

अथ नित्यानित्याप्रयोगविधिः । श्रीतन्त्रात्रे (१६ प०, २१ श्लोक) —

विद्यथात् साधनं प्राग्वद्वर्णलक्षं पयोव्रतः । त्रिस्वादुसित्तैररम्बुजैर्हवनं तथा ॥१॥

जपतपर्णाहोमाचार्चासिद्धमनुर्नः । कुर्यादुक्तान् प्रयोगांश्च न चेत्तद्वातुदेवताः ॥२॥

प्राणांस्तस्य ग्रसन्त्येव कुपितासतक्षणं शिवे । अनया विद्यया लोके यन्त्र साध्यं न तत्क्वचित् ॥३॥

नित्यानित्या प्रयोग विधि—श्रीतन्त्रराज में कहा गया है कि दुग्धाहारी रहकर साधन करे और पूर्ववत् वर्ण लक्ष विद्या का जप करे। त्रिमधुरात् लाल कमल से हवन करे। जप-तर्पण-हवन-अर्चन-अभिषेक से सिद्ध मन्त्र का प्रयोग साधक करे; अन्यथा देवता प्रयोक्ता का नाश कर देते हैं। वे कुद्ध होकर उसके प्राणों को खा जाते हैं। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे इस मन्त्र के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।

## नित्यानित्यायन्त्रतफलानि

विद्याक्षराणि सप्त स्युस्तैः प्राग्वत्स्वरसंयुतैः । शतं द्वादशसंयुक्तं तैर्यन्त्राणि वदामि ते ॥४॥

वृत्तद्वयान्तः षट्कोणं तदन्तर्वृत्तयुग्मकम् । विधाय मध्ये मायास्थमेकमक्षरमाभ्यया ॥५॥

बहिः षडालिखेत्पद्म् वृत्तयोर्भूतमातृकाम् । कृत्वान्तर्बहिरेवं स्युः क्रमाद्यन्त्राणि षोडश ॥६॥ इति।

**अस्यार्थः—** अस्या अनावृत्ताक्षराणि सप्त ‘हसकलरडअ’ इति। ते षोडशस्वरयुक्ता द्वादशोत्तरशतं वर्णा ११२ भवन्ति। प्रथमतो वृत्तद्वयं कृत्वा तद्विहित्वा वृत्तद्वयं विधाय मध्ये साध्यनामगार्भमायाबीजे एकमक्षरं विलिख्य, तद्विहित्वा वृत्तद्वयान्तराले कर्मनुसाराणि तत्तद्वृत्ताक्षराणि प्राग्वद्विलिख्य, तद्विहित्वा षट्सु कोणेषु षडक्षराणि विलिख्य तद्विहित्वा वृत्तद्वयान्तराले मातृकाक्षरैवेष्टयेत्। एवं षोडश यन्त्राणि भवन्ति।

विद्या के अनावृत्त अक्षर सात हैं। इन्हें सोलह स्वरों से युक्त करने पर संख्या ११२ होती है। उनसे निर्मित यन्त्रों को कहता हूँ। अनावृत्त अक्षर ‘ह स क ल र ड अ’ हैं। पहले दो वृत्त बनाकर उसके बाहर षट्कोण बनावे, उसके बाहर दो वृत्त बनावे। यन्त्र मध्य में साध्य नाम गर्भ ही में एक बीजाक्षर लिखें। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में कर्मनुसार भूत वर्णों को लिखें। उसके बाहर षट्कोण के कोणों में शेष छः अक्षरों को लिखें। उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृका वर्णों को लिखकर वेष्टित करें। इस प्रकार से सोलह यन्त्र बनते हैं।

## नित्यानित्यायन्त्रफलानि

## फलान्याह—

प्रथमेन धृतेन स्यादौदरव्याधिसंहृतिः । द्वितीयेन शिरोरोगा नश्यन्ति परमेश्वरि ॥७॥

तृतीयेनाक्षिरुक्षान्तिः श्रोत्रजानां परेण तु । पञ्चमेन भुजारोगाः प्रयान्त्यूध्वेन पादजाः ॥८॥

सप्तमेनान्तराधिस्था धृतेन निधनाश्रयाः । धृतेनाष्टमयन्त्रेण ज्ञानेन्द्रियगता गदाः ॥९॥

परेण कर्मेन्द्रियगा दशमेनानिलोद्भवाः । एकादशेन पित्तोत्था द्वादशेन कफोद्भवाः ॥१०॥

त्रयोदशेन दोषाणां सन्त्रिपातसमुद्भवाः । प्रयान्ति विलयं सद्यो यन्त्राणां शक्तिवैभवात् ॥११॥

चतुर्दशेन यन्त्रेण भूतप्रेतपिशाचकाः । प्रयान्ति भीताः क्षणतः सर्वेऽन्येऽपि ग्रहाः शिवे ॥१२॥

तत्परेण महारोगाः धृतेनाष्टौ न बाधकाः । षोडशेन धृतेन स्यादायुरारोग्यमीश्वरि ॥१३॥

यन्त्राणि षोडशैतानि धारयेच्चायाधिशान्तये । सर्वेषां प्राणिनां सम्यग्नुक्तेषु गदेष्वपि ॥१४॥

सर्वत्र यन्त्रधरणं साभिषेकं सदक्षिणम् । सवन्दनं सविश्वासं फलत्येवान्यथान्यथा ॥१५॥

इन सोलह यन्त्रों के फल इस प्रकार होते हैं—प्रथम यन्त्र के धारण से उदररोगों का नाश होता है। द्वितीय यन्त्र के धारण से शिर के रोगों का नाश होता है। तीसरे यन्त्र से आँख के रोग और चौथे से कान के रोग नष्ट होते हैं। पाँचवें से भुजारोग और छठें से पैरों के रोग नष्ट होते हैं। सातवें के धारण से आन्तरिक आधि नष्ट होती है। आठवें के धारण से ज्ञानेन्द्रियों के रोग नष्ट होते हैं। नवें यन्त्र के धारण से कर्मेन्द्रियों के रोगों का नाश होता है। दसवें से वायुजनित रोग ठीक होते हैं। ग्यारहवें से पित्तजनित रोग और बारहवें से कफजनित रोग नष्ट होते हैं। तेरहवें यन्त्र से त्रिदोषजनित सन्त्रिपात का नाश होता है। यन्त्र-शक्ति का वैभव ऐसी ही है। चौदहवें यन्त्र के धारण से भूत-प्रेत-पिशाच क्षण भर में भयभीत होकर भाग जाते हैं और कोई ग्रहबाधा नहीं होती। पन्द्रहवें यन्त्र के धारण से महारोगों का नाश होता है। सोलहवें यन्त्र के धारण करने से आयु एवं आरोग्य प्राप्त होते हैं। इन सभी सोलह यन्त्रों को आधि-शान्ति के लिये धारण करना चाहिये। सभी प्राणियों को यहाँ न कहे गये रोगों में भी यन्त्र धारण करना चाहिये। साभिषेक सदक्षिण सवन्दन विश्वास के साथ इस यन्त्र को धारण करना चाहिये; अन्यथा फल नहीं मिलता।

## वत्रयन्त्रनिर्माण-तत्फलानि

कुर्विहीना तु सा विद्या पञ्चकूटाभिधा शिवे । वाक्सद्विमन्यस्तकलं कुरुते त्वभिदान्ययोः ॥१६॥  
 तद्विद्याकूटभेदाः स्युर्विशत्या शतसप्तकम् । तैर्वर्जयन्त्रनिर्माणं फलानि च शृणु प्रिये ॥१७॥  
 प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष सूत्राण्यष्टादश क्षिपेत् । तैस्तु कोष्ठानि जायन्ते नवाशीतिशतद्वयम् ॥१८॥  
 प्रागवत्तक्त्वोष्ठानि षट्ट्रिंशम्पार्जयेत्क्लमात् । मध्ये वत्रं यथा भूयात्तथा कुर्यात्समन्ततः ॥१९॥  
 सपञ्चचत्वारिंशत्वं शतकोष्ठैस्तु वत्रकम् । अस्त्राणि चत्वार्यग्राणि चतुष्कोष्ठैस्तु पूर्ववत् ॥२०॥  
 विद्याय तस्य मध्याधः कोष्ठमारभ्य संलिखेत् । प्रादक्षिण्यप्रवेशेन कूटांस्तस्याद्यखण्डजान् ॥२१॥  
 मध्येऽवशिष्टनवके वामदक्षत्रयेत्ये । प्रतिलोमानुलोमात्मविद्याद्यमथालिखेत् ॥२२॥  
 शिष्ठेषु त्रिषु कोणेषु साधकाख्यां तदूर्ध्वंगे । कर्म मध्येऽधरे साध्यमालिखेदपि सर्वतः ॥२३॥  
 चतुस्त्रिकोणमध्यस्थं द्विरेखाभिनवीकृतम् । मध्यवद्विलिखेषु वत्रयन्त्रमितीरितम् ॥२४॥  
 एवमन्यैः पञ्चभिन्न खण्डैः पञ्च प्रकल्पयेत् । इति षड्वत्रयन्त्राणि प्रोत्कानि क्रमतः शिवे ॥२५॥

अथैतद्वित्तरचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यगायाता दक्षिणोत्तरायता शास्त्रादशादादश रेखा विलिख्य, समान्तरालानि नवाशीत्युत्तरशतद्वय (२८९) कोष्ठानि कृत्वा, चतुर्दिक्षु षट्ट्रिंशत् षट्ट्रिंशत्कोष्ठानि गुरुक्तयुक्त्या मार्जयित्वा पञ्चचत्वारिंशदुत्तरशत (१४५) कोष्ठात्मक वत्राकारं निष्पाद्य, चतुर्दिक्षु कोष्ठचतुर्ष्यं कोष्ठचतुर्ष्यं मार्जयित्वा त्रिकोणानि विद्यायावशिष्ठेष्वेकोनत्रिंशदुत्तरशत (१२९) कोष्ठेषु मध्याधः कोष्ठमारभ्याद्यकूटखण्डान् विंशत्युत्तरशत (१२०) भेदान् विलिख्य, मध्येऽवशिष्टनवकोष्ठेषु वामापार्श्वस्थिरिषु कोष्ठेषु प्रतिलोमविद्यां विद्या विलिख्य दक्षपार्श्वस्थकोष्ठत्रये तथैवानुलोमविद्यां विलिख्य, मध्यस्थकोष्ठत्रये उत्थकोष्ठे साधकनाम तदधः कोष्ठे कर्म तदधः कोष्ठे साध्यनाम विलिख्य, चतुर्दिक्षु चतुस्त्रिकोणेषु द्विरेखायांगेन नव नव त्रिकोणानि विलिख्य तेषु तेषु मध्यनवकोष्ठवद्विलिखेत् । एवं षट्कूटखण्डजैः षड्वत्रयन्त्राणि भवतीत्यर्थः । तथा—

लोहत्रयकृते पट्टे शिलायां वा चतुर्षु वा । पट्टे वा फलकायां वा षट्कं षट्सु प्रकल्पयेत् ॥२६॥  
 चतुर्षु वेति लोहत्रयं शिला च।

फलकापद्वयोः पूजां कुर्यात्रित्यश एव तु । इतराणि तु संस्थाप्य यज्ञेत्रैव तां शिवाम् ॥२७॥  
 तत्स्थापनप्रदेशे तु विद्यथामण्डपं शुभम् । नवहस्तायामततं पताकातोरणान्वितम् ॥२८॥  
 फलपुष्पवितानाद्यस्तपेतं परिकल्पयेत् । उत्सेधायामविस्तारहस्तां वेदीं च मध्यतः ॥२९॥  
 एकं चेत्पद्मकमथ चेत्कुर्याद्विद्यादिकं तथा । ईश्वारवह्निरक्षेम्बुद्वायादीनां यथाक्रमम् ॥३०॥  
 प्रथमं राक्षसे त्वन्यान्यन्येषूक्तकमेण वै । निवेश्य गच्छपुष्पाद्यैर्नृत्यगीतादिभिस्तथा ॥३१॥  
 समाराध्यवेदं तु त्रिदिनं प्रोक्तशक्तिभिः । हुत्वा जपित्वा जीवोच्चे भानूच्चे वा स्थिरोदये ॥३२॥  
 स्ववामगे भूम्युदये संस्थाप्य परमेश्वरि । देव्यात्मा तच्छिलभिस्तु दृढमाबध्य तत्र वै ॥३३॥  
 देवीं षद्भिर्वृतां ताभिर्द्विकन्यादिभिरस्त्रिके । मूर्तिसप्तकमुत्पाद्य प्रतिष्ठाप्य समर्चयेत् ॥३४॥  
 नित्यशस्तत्पुरो विद्याभजनं वापि कारयेत् । यत्र तत्र गदालक्ष्मीरिपुग्रहपिशाचकाः ॥३५॥  
 दुर्भिक्षुद्रकमोत्थपीडाः कृत्याः परेरिताः । न कदाचित्सम्भवन्ति विद्यायन्त्रानुभावतः ॥३६॥  
 मङ्गलान्येव जायन्ते सर्वेषां सर्वतः सदा । धार्मिकाश्वेव राजानः पूर्णसप्ताङ्गसंयुताः ॥३७॥  
 फलकापद्वयोः कल्पपूजातो निजमन्दिरे । वाज्ञितं समवाप्नोति मण्डलान्मासतोऽपि वा ॥३८॥

कुर्वीरहित इस विद्या को पञ्चकूटा कहते हैं। इससे वाक्सद्वि होती है। इस विद्या के कूटभेद ७२० हैं। उनसे यन्त्रनिर्माण और उसके फल सुनो।

**वज्रयन्त्र निर्माण—**पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर अद्वारह-अद्वारह रेखायें समान दूरी पर खींचे। इससे २८९ कोष्ठ बनते हैं। चारों दिशाओं में छत्तीस-छत्तीस कोष्ठों को मिटा दे अर्थात् कुल १४४ कोष्ठों को मिटा दे। शेष १४५ कोष्ठों से बग्राकर यन्त्र बनावे। इनमें से चारों दिशाओं में चार-चार कोष्ठों को त्रिकोणाकार में मिटा दे। शेष १२९ कोष्ठों में मध्य के नीचे वाले कोष्ठ से आरम्भ करके आद्य कूट के १२० भेदों को लिखे। मध्य के अवशिष्ट नव कोष्ठों में से वाम पार्श्व के तीन कोष्ठों में प्रतिलोम विद्या को तीन वार लिखे। दक्ष पार्श्व के तीन कोष्ठों में उसी प्रकार अनुलोम विद्या को लिखे। मध्य के तीनों कोष्ठों में से ऊपरी कोष्ठ में साधक का नाम, उसके नीचे वाले कोष्ठ में कर्म और उसके नीचे वाले कोष्ठ में साध्य का नाम लिखे। चारों दिशाओं के त्रिकोणों में दो-दो रेखा के योग से नव त्रिकोण बनाकर उनमें मध्य नव कोष्ठों के समान अक्षरों को लिखे। इसी प्रकार षट्कूट खण्ड से शेष पाँच से पाँच वज्र यन्त्र बनावे। इस प्रकार छः वज्रयन्त्र बनते हैं।

विधातु के पत्र पर, शिलापट्ट पर या चारों पट्टों पर या फलक पर छहों यन्त्रों को छः पर बनावे। फलकपट्ट पर नित्य पूजा करे। अन्यों को स्थापित करके उसमें शिवा का पूजन करे। उसके स्थापन प्रदेश में शुभ मण्डप बनावे। मण्डप नव हाथ विस्तृत एवं पताका-तोरण से युक्त हो। फल-पुष्प-वितानादि से उसे सजाये। मध्य में एक हाथ लब्जी-चौड़ी-ऊँची वेदी बनावे। एक या षट्कमय यन्त्र ईशान अग्नि नैऋत्य पश्चिम वायव्य में यथाक्रम बनावे। प्रथम नैऋत्य में पूजन करे, तब अन्यों में क्रमशः पूजन करे। गन्ध-पृष्ठादि से पूजा के बाद शक्ति के अनुसार नृत्य-गीत से आराधना तीन दिनों तक करे। हवन करे, जप करे। गुरु के उच्च होने पर, सूर्य के उच्च होने पर या स्थिरोदय में अपने बाँधे ऊँची भूमि पर यन्त्र को स्थापित करे। देव्यात्मा को उस शिला में दृढ़ता से बाँधे। डाकिन्यादि छः शक्तियों से घिरी देवी की सात मूर्तियाँ बनाकर प्राणप्रतिष्ठा करे, उनका अर्चन करे। उस विद्या के सम्मुख नित्य भजन करे। ऐसा जहाँ होता है, वहाँ रोग, दरिद्रता, शत्रु, ग्रह, पिशाच, अकाल, क्षुद्रकर्मोत्थ पीड़ा, कृत्या-बाधा आदि इस विद्यायन्त्र के प्रभाव से कभी नहीं होते। सबों का सर्वत्र सर्वदा मंगल होता रहता है। धार्मिक राजा पूर्ण सप्ताङ्ग संयुक्त फलक पट्ट पर अंकित यन्त्र को यदि अपने महल में स्थापित कर पूजा करे तो उसे चालीस दिनों में या तीस दिनों में वांछित फल मिलता है।

### डाकिन्यादीनां देहे स्थाननिरूपणम्

आसां देहस्थितिं वक्ष्ये शृणु सर्वार्थदायिनीम् । सुषुम्नामध्यसंस्थेषु षडाधाराम्बुजेषु ताः ॥३९॥  
 तिष्ठन्ति प्राणिनां देव्यः सिद्ध्यन्ति ज्ञानपूजिताः । बहिंश्च मण्डले पूजां नियहानुग्रहात्मिकाम् ॥४०॥  
 विशुद्धारघ्ये कण्ठदेशे षोडशस्वरपत्रके । धूमवर्णम्बुजे देवीं डाकिनीं तत्समाकृतिम् ॥४१॥  
 शक्तिभिः स्वरूपाभिरावृतां तत्र पूजयेत् । तथा सर्वज्ञतासिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥४२॥  
 अनाहतारघ्ये हृदेशे सिन्दूरारुणपङ्कजे । राकिणीं द्वादशदले कादिटान्ताक्षरात्मभिः ॥४३॥  
 शक्तिभिः पूजयेत्रित्यं कीर्त्यायुःश्रीधनादये । मणिपूरकसंज्ञे च नाभिर्घ्ये दण्डपत्रके ॥४४॥  
 इन्द्रनीलनिभे डादिदशवणात्मिशक्तिके । लाकिनीं पूजयेदेवीं विजयश्रीसमृद्धये ॥४५॥  
 ध्वजमूले समस्तापत्तराणायेष्टसिद्धये । वादिष्वर्वणशक्तीभिरावृतां काकिनीं यजेत् ॥४६॥  
 स्वाधिष्ठानाहघ्ये पद्मे बालाकत्विषि षट्कूटे । आधारारघ्ये चतुष्पत्रे सुवर्णाभे सरोरुहे ॥४७॥  
 वादिसान्तार्णशक्तीभिरावृतां शाकिनीं यजेत् । पायुधवजान्तरा त्र्यन्तमध्ये तेजःसमन्विताम् ॥४८॥  
 आज्ञारघ्येऽब्जे ध्रुवोर्मध्ये द्विदले शुद्धविग्रहे । सेवितां हक्षशक्तिभ्यां हाकिनीं पूजयेत्था ॥४९॥  
 त्रिकालज्ञानतः सर्वचित्तार्कषणकारिणी । विश्वसृष्टिस्थितिध्वंशशक्तिदामप्यथलतः ॥५०॥  
 उक्तक्रमविपर्यासो नियहोऽन्तर्बहिस्तथा । पूजनं सर्वदुःखार्तिशमनं संपदास्पदम् ॥५१॥

सर्वार्थदायिनी देवी की देह में स्थिति सुनो। सुषुम्ना मध्य में स्थित छः पदों में वह रहती हैं और ज्ञान से पूजित होने पर सिद्ध होती हैं। बाहरी मण्डल में नियहात्मक अनुग्रहात्मक पूजन होता है। कण्ठ देश के विशुद्ध चक्र के स्वर वर्णरूप सोलह दलों में धूम वर्ण के पद्म में उसकी आकृति वाली डाकिनी देवी रहती है। वह अपने समान शक्तियों से घिरी रहती

है। वहाँ उसकी पूजा करे। इससे सर्वज्ञता की सिद्धि होती है। इसमें संशय नहीं है। हृदय देश में सिन्दूर के समान लाल रंग के ढादश दल अनाहत पद्म में राकिनी नामक शक्ति के रूप में क से ठ तक के बाहर अक्षरों में रहती है। यह अपनी शक्तियों से आवृत्त रहती है। इसके नित्य पूजन से कीर्ति, आयु, श्री एवं धन की प्राप्ति होती है। नाभि में स्थित दशदल कमल मणिपूर में इन्द्रनील वर्ण की देवी ड द से फ तक के वर्णों में लाकिनी नाम से रहती है। विजय, श्री एवं समृद्धि के लिये इनकी पूजा करे। लिङ्गमूल में स्थित स्वाधिष्ठान षट्दल पद्म के छ: दलों में व से ल तक के वर्णों की शक्तियों से घिरी काकिनी का पूजन करे। स्वाधिष्ठान का वर्ण बाल सूर्य के समान है। मूलाधार नामक चतुर्दल कमल का वर्ण स्वर्णिम है। इसमें व से स तक की चार शक्तियों से घिरी शाकिनी शक्ति की पूजा करे। मूलाधार चक्र पायु और लिङ्ग के मध्य के त्रिकोण में तेज से समन्वित है। शूमध्य में द्विदल आज्ञा चक्र में शुभ्र विग्रह ह-क्ष शक्तियों से सेवित हाकिनी की पूजा करे। इससे त्रिकाल ज्ञान, सर्वचित्ताकर्षण, विश्वसृष्टि, स्थिति एवं ध्वंस की शक्ति प्राप्ति होती है। उक्त क्रम में विपर्यय से अन्दर-बाहर निग्रह के लिये पूजन से सभी दुःख एवं कष्टों का शमन होकर सम्पदा प्राप्त होती है।

भूमौ विधाय षट्कोणसप्तकं प्रोक्तदिक्कमात् । मध्ये च तत्र तां नित्यानित्यां गच्छादिभिर्यजेत् ॥५२॥  
 अभितस्तु षड्सेषु तत् षट्कं तत्कमाद्यजेत् । बाहोष्पचि च ताः प्राग्वत्प्रोक्तवर्णाः समर्चयेत् ॥५३॥  
 तासां षण्णामपि तथा षट्सु कोणेषु शक्तयः । षट्त्रिंशत्ताः समा देव्याः सर्वा रूपायुधादिभिः ॥५४॥  
 प्राग्वत्स्वरेण पञ्च स्युपूर्वाः कादिमान्तिकाः । परेषु यवलक्षाणराहितैस्तैस्तथार्चयेत् ॥५५॥  
 तेषामपि च चक्राणां शक्तीनां च विलोमतः । पूजा निग्रहसंज्ञा स्यात्सा शत्रूणां विपत्तये ॥५६॥

भूमि पर प्रोक्त दिशा के क्रम से सात षट्कोण बनावे। मध्य के षट्कोण में नित्या का पूजन गन्धादि से करे। सामने के षट्कोण में उसके षट्क का क्रम से यजन करे। बाहर भी पूर्वत् प्रोक्त वर्ण का यजन करे। उन छहों में भी उसी प्रकार उनके छ: कोणों में शक्तियों की पूजा करे। इन छत्तीस शक्तियों के रूप-आयुधादि उसी के समान हैं। इनके ३६ आवास वर्ण अ आ इ ई उ, क ख ग घ ङ, च छ ज झ झ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, र श ष स ह ळ कुल छत्तीस हैं। इन वर्णशक्तियों की पूजा करे। उन चक्रों में शक्तियों का अर्चन विलोम क्रम से करे। यह निग्रह पूजा शत्रु से विपत्ति होने पर करनी चाहिये।

षट्चक्रेषु च षट् कुम्भान्निधायारिमहीरुहाम् । क्वाथतोयाभिसंपूर्णान् कृष्णाम्बरसमन्वितात् ॥५७॥  
 अर्धात्रे यजेत्तास्तु तद्योनिबलिदानतः । क्षिंत्रं त्वगादिभिस्ते स्युः पूर्णाः शत्रोः कलेवराः ॥५८॥  
 निवेद्यं योनिरत्तेन संपत्रं चरुणा रिपोः । होमं च कुर्यत्तेनैव फणिशीर्षसुचा रुषा ॥५९॥  
 ध्यायेद् देवीश्च कुपिता दृष्ट्या बाहुभिर्निजैः । प्रहरन्तीः प्रिशाचेभ्यो विकिरन्तीश्च तत्तनुम् ॥६०॥  
 जपागुलुच्छविकसत्कण्ठा भीमार्तनिःस्वनाः । ध्यात्वैवं निग्रहं कुर्याद्विष्णुं मारणाय वै ॥६१॥  
 चक्रं च निग्रहे प्रोक्तं वत्रस्त्रं भयङ्गरम् । कांस्ये सीसेऽपि वा कृत्वा स्थापयेद्वैरभूमिषु ॥६२॥  
 प्राक्ष्यत्यगदक्षिणोदक्ष्य दशसूत्रनिपातनात् । एकाशीतिपदानि स्युसेषु कोणचतुष्ये ॥६३॥  
 प्रत्येकं दशकोष्ठानि मार्जयेच्छष्टवत्रकैः । चतुर्दिक्षु त्रिकोणानि चतुष्कोष्ठैः प्रकल्पयेत् ॥६४॥  
 तेषु मध्यस्थकोष्ठे च साध्यं कर्म समालिखेत् । शिष्टेषु मध्याधःकोष्ठमारभ्य प्रतिलोमजान् ॥६५॥  
 विद्याकूटांस्तु षट्त्रिंशदलिखेदप्रदक्षिणाम् । साध्ययोन्यसुजा पिण्ठं तद्वक्ष्योदलेपितम् ॥६६॥  
 स्थापयेत् प्रोक्तसमये रिपुक्षेत्रगृहादिके । शमशाने चण्डिकागेहे कुलोत्सादकरं भवेत् ॥६७॥  
 इति निग्रहमाख्यातं समस्तरिपुमर्दनम् ।

छ चक्रों में छ: कलश स्थापित करे। उन्हें शत्रुवृक्ष के बवाथ से भरे। उनके ऊपर काला कपड़ा लपेटे। आधी रात में पूजा करे। शत्रुयोनि के पशु का बलि प्रदान करे। इसे वे शीघ्र ही शत्रु कलेवर वाले हो जाते हैं। उन्हें योनि पशु का रक्त

निवेदित करे। चरु निवेदित करे। सर्पशीर्ष के आकार की सूचा से हवन करे। क्रुद्ध देवी का ध्यान करते हुये यह भावाना करे कि देवी दाँत, ओठ एवं अपने हाथों से शत्रु पर प्रहर कर रही हैं। पिशाच उसके शरीर के टुकड़ों को विरहे रहे हैं। शत्रुमारण के लिये इस प्रकार देवी का ध्यान करते हुये निग्रहपूजा करे।

निग्रह में वक्ररूप भयंकर चक्र होता है। इसे काँसे या गीसा पर बनाकर शत्रुभूमि में स्थापित करे। पूर्व से पश्चिम एवं दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर दश-दश रेखाओं को खींचने से इक्यासी कोष्ठ बनते हैं। चारों कोणों में दश-दश कालों को मिटा दे। शेष ४१ कोणों से वक्ररूप चक्र बनता है। चारों दिशाओं में चार-चार कोणों को मिटाकर त्रिकोण बनावे। उसके मध्य कोष्ठ में साध्य नाम और कर्म लिखे। मध्य कोष्ठ के नीचे से प्रारम्भ करके प्रतिलोम क्रम से ३६ विद्याकूटों को प्रदक्षिण क्रम से लिखे। साध्य योनि वृक्ष के पिण्ड को उस वृक्ष के जल से लेपित करे। प्रोत्त समय में शत्रुक्षेत्र-गृहादि में, शमशान में, देवी मन्दिर में उसे स्थापित करे। यह कुल का नाशक प्रयोग है। इस प्रकार सभी शत्रुओं को मारने वाले निग्रह का वर्णन किया गया।

### अनुग्रहं शृणु प्राज्ञे पूजाचक्रविधानतः ॥६८॥

देवीस्ताः प्रोक्तरूपास्तु ध्यात्वा चक्रेषु पूजयेत् । नैवेद्यमासां संप्रोक्तं यदासां प्रीतिदायकम् ॥६९॥  
पायसात्रं गुडात्रं च मुद्रभिन्नात्रकं तथा । हरिद्रात्रं तिलात्रं च शुद्धात्रं षट्कमेव च ॥७०॥  
चक्रेषु सप्तसु तथा तद्वर्णाश्वारुविग्रहाः । युवतीसपतकं स्थाप्य प्रागवद्भ्यर्थ्य ताः क्रमात् ॥७१॥  
भूषणाम्बरगन्धासुग्भोजनाद्यैस्तु तोषयेत् । तृष्णासु तासु तुष्टाः स्युः शक्तयस्ताः समास्तदा ॥७२॥  
प्रागुक्तवत्रे साध्याख्यां तथालिख्यानुलोमजान् । कूटानुक्तसमारम्भान् प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥७३॥  
प्रोक्तेषु प्रोक्तरूपेण स्थापयेत् प्रोक्तभूमिषु । प्रोक्तान्येव फलानि स्वर्योगोऽयं लघुविग्रहः ॥७४॥  
आदिक्षानात्क्षरैः प्रागवद्वूपिणीशक्तिसंयुतैः । बीजद्वयाद्यैः सप्ताक्षर्यन्तैः पञ्चदशाक्षरैः ॥७५॥  
पञ्चाशच्छक्तयः पूज्या: पञ्चाशत्क्षेत्रप्रालकैः । सप्ताक्षर्य च संयुक्ता मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः ॥७६॥  
चतुःषष्ठिपदे मध्यचतुर्ज्ञे दिनविद्याया । दिनेषु घटिकायोगात्पञ्चाशनिमथुनान्यपि ॥७७॥  
तेषां बीजद्वयं वर्णस्त्वपक्षेत्रेशसंयुताः । मनीषितं समालेख्य तेषु तन्मिथुनानि वै ॥७८॥  
घटिकाक्रमयोगेन हन्मायामध्योऽर्चयेत् । एवं मण्डलमासार्धात्मानोत्येवाभिवाच्छितम् ॥७९॥  
नित्यशस्तां सप्तावाहृ तस्मिंश्क्रे समर्चनात् । सप्तस्तवाज्जितप्राप्तिः सदा भवति सर्वतः ॥८०॥  
इति नित्यानित्याप्रयोगविधिः।

अब पूजाचक्रविधान से अनुग्रह का विवेचन सुनो। उपर्युक्त रूप के देवी का ध्यान करके चक्र में पूजन करे। देवी के प्रीतिदायक नैवेद्य को कहता हूँ। खीर, गुडात्र, मुद्रभिन्न अत्र, हरिद्रात्र, तिलात्र, शुद्धात्र—ये छः देवी को प्रिय हैं। सातों चक्रों में उनके समान वर्णों की सुन्दर सात युवतियों को बैठाये। पूर्ववत् क्रम से उनकी पूजा करे। आभूषण-वस्त्र-गन्ध-माला-भोजन आदि से उन्हें सन्तुष्ट करे। इनके तुष्ट होने से उनकी शक्तियाँ भी तुष्ट होती हैं। पूर्वोक्त वक्रचक्र में साध्य नाम लिखे तथा अनुलोम क्रम से कूटों को प्रदक्षिण क्रम से लिखे। सभी के विहित रूप में विहित भूमि में स्थापित करे। पहले दो बीज पञ्च दशाक्षर तब सप्ताक्षरी मन्त्र से पचास शक्तियों और पचास क्षेत्रपालों की पूजा करे। पञ्चदशाक्षरी मन्त्र को सप्ताक्षरी से युक्त करे। चौंसठ पदों के मध्य के चार पद में दिननित्या घटिका योग से पचास मिथुनों, उनके बीजद्वय वर्ण रूप क्षेत्रेश संयुत को लिखे। घटिका क्रम योग से हन्माया का मध्य में अर्चन करे। इस प्रकार चालीस दिनों या पन्द्रह दिनों में मनोवाञ्छित फल मिलता है। देवी का नित्य आवाहन करके अर्चन करे। इससे सब जगह सर्वदा समस्त वाञ्छित प्राप्त होते हैं।

### नीलपताकानित्याप्रयोगविधिः

अथ नीलपताकानित्याप्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१७-१८) —  
सर्वत्र नित्यहोमं तु कुर्यादन्नाज्यतोऽपि वा । तिलतण्डुलकैर्वापि प्रोक्तं द्रव्यानुदीरणे ॥१॥

विद्याक्षराणां सर्वेषां स्वरव्यञ्जनबिन्दुकान् । पृथक्कृत्वाथ गणितैखिपञ्चाशद्वन्ति हि ॥२॥  
तेन तल्लक्षसंख्यं तु जपेद्विद्यां प्रयत्नः । तदशांशं हुनेदग्नौ सर्वत्राक्षरलक्षके ॥३॥  
प्राडमुखो नित्यपूजासु साधनेषु च साधकः । नित्यानामपि सर्वासां वासनायामुदीरितम् ॥४॥

नीलपताका प्रयोग विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि सर्वत्र नित्य होम अत्र और आज्य से या तिल और चावल से करे। विद्या के सभी अक्षरों के स्वर-व्यञ्जन-बिन्दु को पृथक्-पृथक् अनावृत करने पर संख्या ५३ होती है। इसलिये यत्नपूर्वक वर्णलक्ष विद्याजप करे। जप का दशांश हवन करे। पूजा और साधन में साधक पूर्वमुख बैठे। सभी नित्याओं की वासना इसी प्रकार कही गई है।

### सिद्धिकौतुकविद्यानम्

ततः सिद्धमनुर्मन्त्री कुर्यात्सिद्धिषु कौतुकम् । तद्विधानं शृणु प्राज्ञे वक्ष्ये विद्याविभेदतः ॥५॥  
दशानामपि सिद्धीनां विद्यास्तासां भिदागताम् । संख्यां च ताश्च संप्रोक्ता: क्रमेणासां फलानि च ॥६॥  
विद्यादिकूटे त्वाद्ये तु योजयेददशासु क्रमात् । ताभ्यामेव विलोमाभ्यां पुटयेदुपरीरितान् ॥७॥  
मन्त्रवर्णान् दशानां च तत्तत्संख्याश्च ताः शृणु । परस्तात्तत्रभेदानां मन्त्रान् वक्ष्ये यथाविधि ॥८॥  
चतुर्विधिः स्याद्विजयो द्वन्द्वे चतुरङ्गके । कृत्युद्धे दुर्जे च तेषां मन्त्राश्चतुर्विधाः ॥९॥  
कामरूपत्वमुदितं स्वेच्छयाभीष्टविग्रहम् । विधातुमात्मनः शक्तिं स एको मन्त्र ईरितः ॥१०॥  
पादुकायुगलं विद्यावैभवाप्तं तु पादयोः । कृत्वा स्मरेद्वाज्ञितं तु देशं तत्र तदा स्थितिः ॥११॥  
तन्मन्त्रः स्यादेकविधस्तथैवाङ्गनमीरितम् । येनाक्ताक्षो निधिं पश्येदेवाद्यांश्चान्तरिक्षगान् ॥१२॥  
खड्गश्च तादृशः प्रोक्तः करस्थेनाहिताः क्षणात् । पलायिता वा पदयोः प्रणमेयुर्वशंगताः ॥१३॥  
वेतालाः स्युरसंख्याताः सिद्ध्यन्ते चैकविद्यया । निधाय साधकं स्कन्दे चरेयुवर्ज्ययास्य ते ॥१४॥  
विकृताङ्गमुखाः केचित्केचित्पर्यङ्गमुखाङ्गाः । केचिद्वीषणनादाङ्गा वेताला बहुविग्रहाः ॥१५॥  
सर्वेऽपि वशगा वाक्यादस्य शत्रून् ग्रसन्ति च । किङ्कराः प्रोक्तकरणाद्वेयुर्यार्वायुषम् ॥१६॥  
पिशाचास्तादृशाः प्रोक्ताः काश्यर्थैरूप्यविग्रहाः । कुञ्चा: क्षुद्राशयाः प्रोक्तकारिणः स्युरसंख्याकाः ॥१७॥  
तेषामेका भवेद्विद्या तथा ते किङ्कराः सदा । तैरेव प्रहोड्यत्रुमज्ञातमनिशं रणे ॥१८॥  
षट्क्रिंशदूपसंयुक्ता यक्षिण्यो वाज्ञितप्रदा । सुरूपा द्विभुजाश्चित्रवसनाभरणान्विताः ॥१९॥  
ससहाया यौवनाद्याः स्त्रिगालेपनसौरभैः । समेत्य सर्वभीष्टानि दद्युस्ताः साधकाय वै ॥२०॥  
तासां विद्याद्युष्टृतिंशद्वद्ये ताश्च शृणु प्रिये । याभिः सिद्धाभिरनिशां साधकाः सर्वसंमताः ॥२१॥  
चेटकाश्च चतुःषष्ठिस्तेषां मन्त्राश्च तत्समाः । तेऽपि नानाविधाकाराः सिद्धास्ते दद्युरीप्सितम् ॥२२॥  
मायासंख्याश्चित्रस्तपाश्चित्राण्यस्येच्छयानिशम् । वसून्युपहेयुस्ता विद्यैका तत्त्वसाधने ॥२३॥  
विद्याया नवमार्णादिवर्णैः षट्भिरुदीरितैः । दश विद्याः प्रजायन्ते शृणु वक्ष्ये च ताः क्रमात् ॥२४॥

तब साधक सिद्ध मन्त्र से सिद्धियों में कौतुक करे। उसका विधान विद्याभेद से कहता हूँ। उसकी विद्या से दशों सिद्धियाँ विद्यासाधक को मिलती हैं। उनकी संख्या और फलों को क्रम से कहता हूँ। विद्या के आदि कूट और शक्ति कूट के आगे दशों को क्रम से जोड़े। उनके विलोम क्रम से पुष्टि करे। दशों के मन्त्रवर्णों की संख्या सुनो। उनके भेद से यथाविधि मन्त्रों को कहता हूँ। द्वन्द्ययुद्ध में, चतुरंगिनी सेना के युद्ध में, दुर्विजय के लिये एवं कूट युद्ध के लिये चार प्रकार के मन्त्र हैं। इससे कामरूपत्व उदित होता है। इच्छानुसार रूप बनाया जा सकता है। आत्मशक्ति देने वाला एक ही मन्त्र है। विद्या वैभव से प्राप्त पातुका पर चढ़कर वाँछित देश के स्मरण से साधक वहाँ पहुँच जाता है। इस मन्त्र से अंजनसिद्धि होती है, जिस अंजन को लगाकर साधक गड़े धन को देखता है। अन्तरिक्षगामी देवों को देख सकता है। इस मन्त्र से खड्ग प्राप्त होता है, जिसे हाथ

में लेते ही शत्रु भाग जाते हैं, पैरों में प्रणाम करते हैं और वशीभूत रहते हैं। इस विद्या से असंख्य वेताल सिद्ध होते हैं, जो साधक को अपने कन्धे पर बिठाकर वांछित स्थान पर ले जाते हैं। कुछ वेतालों के अंग-मुख विकृत होते हैं और किहीं के अंग-मुख टेढ़े होते हैं। कुछ भयंकर गर्जन करते हैं। इस प्रकार वेतालों के विग्रह बहुत प्रकार के होते हैं। ये सभी साधक के वश में रहते हैं और उसकी आज्ञा के अनुसार शत्रुओं को खा जाते हैं। ये आजीवन साधक के किङ्गर रहते हैं।

पिशाच भी उसी प्रकार के होते हैं। वे सभी कृशकाय एवं बदसूरत होते हैं। ये क्षुद्रशय और कुद्ध होते हैं। ये असंख्य होते हैं। इनकी भी एक प्रकार की विद्या होती है, जिससे वे साधक के किङ्गर होते हैं। युद्ध में वे शत्रुओं को मार गिराते हैं। छत्तीस प्रकार की यक्षिणियाँ वांछित देने वाली होती हैं। यक्षिणियाँ सुन्दर, दो हाथों वाली एवं विविध वस्त्राभूषण से युक्त होती हैं। ये यौवन से परिपूर्ण एवं माला-गन्ध से युक्त होती हैं। साधक को सभी अभीष्ट देती हैं। इनकी विद्याएँ भी छत्तीस हैं, उन्हें सुनो। इनसे साधक उन्हें सिद्ध करते हैं, यह सर्वसम्पत्त है। चौसठ प्रकार के चेटक हैं और उनके मन्त्र भी चौसठ हैं। वे भी नाना आकार के हैं। सिद्ध होने पर वांछित प्रदान करते हैं। चेटक विद्या के सिद्ध होने पर विविध प्रकार की माया सिद्ध होती है। विद्या के नव आदि अक्षरों से दश विद्यायें बनती हैं, उन्हें क्रम से सुनो।

### विद्याया दशधा भेदप्रदर्शनम्

**नित्येति विजयं देहीत्युक्त्वा संपुटयेत्ततः । विद्या सा विजयप्राप्यां चतुर्धैकादशाक्षराः ॥२५॥**

अत्र 'नित्यविजयं देहि मदद्रवे' इत्येकादशाक्षरो मूलभूतश्त्रुर्धा। तथा—'नित्यद्वन्द्वयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे'(१)। 'नित्यचतुरङ्गयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे'(२)। 'नित्यकूटयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे'(३)। 'नित्यदुर्गयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे'(४) इति। तथा—

मदेति कामरूपं मे देहीति पुटयेत्तथा । त्रयोदशाक्षरी विद्या कामरूपप्रदेरिता ॥२६॥  
 'मदकामरूपं मे देहि द्रवे नित्य' इति।

नित्यदे पादुकां देहीत्युक्त्वा कुर्याच्च संपुटम् । द्वादशार्णा भवेद्विद्वा सिद्धा दद्याच्च पादुके ॥२७॥  
 'नित्यदे पादुकां देहि मदद्रवे' इति।

तथा नित्यमदेत्युक्त्वा देहाङ्गनमितीरयेत् । पुटयेत् तद् द्वयेनाथ द्वादशार्णा समीरिता ॥२८॥  
 'द्रवे नित्यमद देहाङ्गनं द्रवे' इति।

द्रवनित्ये देहि खड्गमित्युक्त्वा पुटयेत्तथा । द्वादशार्णा भवेत्सिद्धा खड्गं दद्यात्सुशोभनम् ॥२९॥  
 'द्रवनित्ये देहि खड्गं द्रवनित्ये' इति।

नित्यद्रवेति वेतालान् देहीति पुटयेत्तथा । त्रयोदशाक्षरी विद्या सिद्धा तान् दर्शयेत्तथा ॥३०॥  
 'नित्यद्रवे वेतालान्देहि नित्यद्रवे' इति।

पिशाचान्मे प्रयच्छेति पूर्वं नित्यमदद्रवे । पुटयेत् पूर्ववद् द्वाभ्यां विद्या सप्तदशाक्षरी ॥३१॥  
 'नित्यमदद्रवे पिशाचान्मे प्रयच्छ नित्यद्रवे' इति।

दश विद्यायें इस प्रकार हैं—यहाँ 'नित्यविजयं देहि मदद्रवे' यह एकादशाक्षरी मूल विद्या चार प्रकार की है—१. नित्यद्वन्द्वयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे, २. नित्यचतुरङ्गयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे, ३. नित्यकूटयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे, ४. नित्यदुर्गयुद्धे विजयं देहि मदद्रवे। ५. कामरूपप्रदायी विद्या है—मदकामरूपं देहि द्रवे नित्य। ६. पादुकासिद्धि मन्त्र है—नित्यदे पादुकां देहि मदद्रवे। ७. अंजनसिद्धि मन्त्र है—द्रवे नित्यमद देहि अंजनं द्रवे। ८. खड्गसिद्धि मन्त्र है—द्रवनित्ये देहि खड्गं द्रवनित्ये। ९. वेतालसिद्धि मन्त्र है—नित्यद्रवे वेतालान्देहि नित्यद्रवे। १०. पिशाचसिद्धि मन्त्र है—नित्यमदद्रवे पिशाचान्मे प्रयच्छ नित्यद्रवे।

## षट्ट्रिंशद्यक्षिणीनामविदा:

षट्ट्रिंशदुक्ता यक्षिण्यः सर्वा वाञ्छितपिद्विदाः । तासां नामानि विद्याश्च शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥३२॥  
 विचित्रा विभ्रमा हंसी भीषणी जनरञ्जिका । विशाला मदना तुष्टा कालकण्ठी महाभया ॥३३॥  
 माहेन्द्री शङ्खिनी चान्द्री मङ्गला वटवासिनी । मेखला सकला लक्ष्मीर्पालिनी विश्वनायिका ॥३४॥  
 सुलोचना सुशोभा च कामदा सविलासिनी । कामेश्वरी नन्दिनी च स्वणरिखा मनोहरा ॥३५॥  
 प्रमोदा रागिणी सिद्धा पद्मिनी सरतिप्रिया । कल्याणदा कलादक्षा ततश्च सुरसुन्दरी ॥३६॥  
 इति षट्ट्रिंशदाख्याता यक्षिण्योऽभीष्टदायिकाः । तासां विद्याः क्रमेण स्युस्तद्वैजद्वयसंपुटैः ॥३७॥  
 नित्यद्रवमदेत्यैते:      षट्ट्रवर्णश्वेत्कनामभिः । विद्या: षट्ट्रिंशदाख्यातास्ता: सिद्धा: दद्युरीपितम् ॥३८॥  
 तासां विद्यार्णसंख्यास्तु शृणु वक्ष्ये यथाक्रमम् । पञ्चमी पञ्चदशमी विंशतिश्च तथान्तिमा ॥३९॥  
 चतत्रः पञ्चदशकास्तृतीया साष्टमी तथा । त्रयोदशी साष्टदशा द्वाविंशा द्वादशाक्षरा ॥४०॥  
 सैकंशिंशच्च तद्वत् स्युश्चतुर्दशसमन्विताः । नवमी दशमी चैकविंशा तद्वदनन्तरम् ॥४१॥  
 चतुर्विंशा पञ्चविंशा सप्तविंशा तदूर्ध्वगा । त्रयस्त्रिंशादिकास्तिस्त्रस्त्रयोदशयुताः पराः ॥४२॥

(१) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदविभ्रमे श्रींहीं' १३। (२) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदविभ्रमे श्रींहीं' १३। (३) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदहंसि श्रींहीं' १२। (४) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदभीषणि श्रींहीं' १३। (५) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदजनरञ्जिके श्रींहीं' १५। (६) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदविशाले श्रींहीं' १३। (७) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदमने श्रींहीं' १३। (८) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदतुष्टे श्रींहीं' १२। (९) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदकालकण्ठि श्रींहीं' १४। (१०) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदमहाभये श्रींहीं' १४। (११) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदमाहेन्द्रि श्रींहीं' १३। (१२) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदशंखिनि श्रींहीं' १३। 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदचान्द्रि श्रींहीं' १२। (१४) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदमङ्गले श्रींहीं' १३। (१५) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदवटवासिनि श्रींहीं' १५। (१६) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदमेखले श्रींहीं' १३। (१७) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदसकले श्रींहीं' १३। (१८) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदलक्ष्मि श्रींहीं' १२। (१९) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदमालिनि हींश्रीं' १३। (२०) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदविश्वनायिके श्रींहीं' १५। (२१) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदसुलोचने श्रींहीं' १५। (२२) हींश्रीं नित्यद्रवे मद(स)शोभे श्रींहीं' १३। (२३) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदकामदे श्रींहीं' १३। (२४) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मद(स)विलासिनि श्रींहीं' १५। (२५) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदकामेश्वरि श्रींहीं' १४। (२६) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदनन्दिनी श्रींहीं' १३। (२७) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदस्वरणिखे श्रींहीं' १४। (२८) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदमनोहरे श्रींहीं' १४। (२९) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदप्रमोदे श्रींहीं' १३। (३०) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदरागिणि श्रींहीं' १३। (३१) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदसिद्धे श्रींहीं' १२। (३२) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदपञ्चिनि श्रींहीं' १३। (३३) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मद(स)रतिप्रिये श्रींहीं' १५। (३४) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदकल्याणदे श्रींहीं' १५। (३५) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदकलादक्षे श्रींहीं' १४। (३६) 'हींश्रीं नित्यद्रवे मदसुरसुन्दरि श्रींहीं' १५। इति षट्ट्रिंशद्यक्षिणीमन्त्राः।

उपरोक्त छत्तीस यक्षिणियाँ वाञ्छित सिद्धि देती हैं। उनके नाम और उनकी विद्या को यथाविधि कहता हूँ। सुनो—

१. विचित्रा	७. मदना	१३. चान्द्री	१९. मालिनी
२. विभ्रमा	८. तुष्टा	१४. मंगला	२०. विश्वनायिका
३. हंसी	९. कालकण्ठी	१५. वटवासिनी	२१. सुलोचना
४. भीषणा	१०. महाभया	१६. मेखला	२२. सुशोभा
५. जनरञ्जिका	११. माहेन्द्री	१७. सकला	२३. कामदा
६.. विशाला	१२. शङ्खिनी	१८. लक्ष्मी	२४. सविलासिनी

२५. कामेश्वरी	२८. मनोहरा	३१. सिद्धा	३४. कल्याणदा
२६. नन्दिनी	२९. प्रमोदा	३२. पश्चिमी	३५. कलादक्षा
२७. स्वर्णरिखा	३०. रागिणी	३३. सरतिप्रिया	३६. सुरसुन्दरी।

उपर्युक्त छत्तीस यक्षिणियाँ अभीष्टदायिका हैं। उनकी विद्या क्रम से दो बीजों से सम्पुटित होती है। इनकी विद्याएँ छत्तीस हैं, जिनके सिद्ध होने पर ईस्पित फल मिलते हैं। इनके विद्यावर्णों की संख्या यथाक्रम कहता हूँ—

(१) 'हींश्री नित्यद्रवे मदविच्चित्रे श्रीहीं' १३। (२) 'हींश्री नित्यद्रवे मदविच्चिमे श्रीहीं' १३। (३) 'हींश्री नित्यद्रवे मदहंसि श्रीहीं' १२। (४) 'हींश्री नित्यद्रवे मदभीषणि श्रीहीं' १३। (५) 'हींश्री नित्यद्रवे मदजनरञ्जिके श्रीहीं' १५। (६) 'हींश्री नित्यद्रवे मदविशाले श्रीहीं' १३। (७) 'हींश्री नित्यद्रवे मदमदने श्रीहीं' १३। (८) 'हींश्री नित्यद्रवे मदतुष्टे श्रीहीं' १२। (९) 'हींश्री नित्यद्रवे मदकालकण्ठे श्रीहीं' १४। (१०) 'हींश्री नित्यद्रवे मदमहाभये श्रीहीं' १४। (११) 'हींश्री नित्यद्रवे मदमाहेन्द्र श्रीहीं' १३। (१२) 'हींश्री नित्यद्रवे मदशंखिनि श्रीहीं' १३। 'हींश्री नित्यद्रवे मदचान्दि श्रीहीं' १२। (१४) 'हींश्री नित्यद्रवे मदमङ्गले श्रीहीं' १३। (१५) 'हींश्री नित्यद्रवे मदवटवासिनि श्रीहीं' १५। (१६) 'हींश्री नित्यद्रवे मदमेखले श्रीहीं' १३। (१७) 'हींश्री नित्यद्रवे मदसकले श्रीहीं' १३। (१८) 'हींश्री नित्यद्रवे मदलक्ष्मि श्रीहीं' १२। (१९) 'हींश्री नित्यद्रवे मदमालिनि हींश्री' १३। (२०) 'हींश्री नित्यद्रवे मदविश्वनायिके श्रीहीं' १५। (२१) 'हींश्री नित्यद्रवे मदसुलोचने श्रीहीं' १५। (२२) हींश्री नित्यद्रवे मद(सु)शोभे श्रीहीं' १३। (२३) 'हींश्री नित्यद्रवे मदकामदे श्रीहीं' १३। (२४) 'हींश्री नित्यद्रवे मद(स)विलासिनि श्रीहीं' १५। (२५) 'हींश्री नित्यद्रवे मदकमेश्वरि श्रीहीं' १४। (२६) 'हींश्री नित्यद्रवे मदनन्दिनी श्रीहीं' १३। (२७) 'हींश्री नित्यद्रवे मदस्वर्णरिखे श्रीहीं' १४। (२८) 'हींश्री नित्यद्रवे मदमनोहरे श्रीहीं' १४। (२९) 'हींश्री नित्यद्रवे मदप्रमोदे श्रीहीं' १३। (३०) 'हींश्री नित्यद्रवे मदराणिणि श्रीहीं' १३। (३१) 'हींश्री नित्यद्रवे मदसिद्धे श्रीहीं' १२। (३२) 'हींश्री नित्यद्रवे मदपविनि श्रीहीं' १३। (३३) 'हींश्री नित्यद्रवे मद(स)रतिप्रिये श्रीहीं' १५। (३४) 'हींश्री नित्यद्रवे मदकल्याणदे श्रीहीं' १५। (३५) 'हींश्री नित्यद्रवे मदकलादक्षे श्रीहीं' १४। (३६) 'हींश्री नित्यद्रवे मदसुरसुन्दरि श्रीहीं' १५।

### चतुर्ष्विष्टेकनामविद्या:

चेटकानां चतुःष्टिं तन्मन्त्रांश्च वदामि ते । शृणु सिद्धास्तु ते नित्यं साधयेयुः समीहितम् ॥४३॥  
 विभ्रमो वाहको वीरो विकर्षः कोरकः कविः । सिंहनादो महानादः सुग्रीवो मर्कटः शठः ॥४४॥  
 बिडालाक्षो बिडालास्य कुमारः खेचरो भवः । मयूरो मङ्गलो भीमो द्वीपिकः खराननः ॥४५॥  
 मातङ्गश्च निशाचारी विषग्राही वृकोदरः । सैरिभास्यो गजमुखः पशुवक्त्रो मृगाननः ॥४६॥  
 क्षोभको मणिभद्रश्च क्रीडकः सिंहवक्त्रः । श्येनास्यः कङ्कवदनः काकास्यो हयवक्त्रः ॥४७॥  
 महोदरः स्थूलशिरा विकृतास्यो वराननः । चपलः कुकुटास्यश्च मायावी मदनालसः ॥४८॥  
 मनोहरो दीर्घजङ्घः स्थूलदन्तो दशाननः । सुमुखः पिण्डितः कुञ्जो वराहास्यः सटामुखः ॥४९॥  
 कपटः कौतुकी कालः किङ्गरः कितवः खलः । भक्षको भयदः सिद्धः सर्वगश्चेति कीर्तिः ॥५०॥  
 बीजः पुटान्तस्थैर्मदनित्यद्रवे-युतैः । नामभिस्तृद्वितीयान्तर्देहीति पदसंयुतैः ॥५१॥  
 एवं मन्त्राश्रुतुःष्टिः क्रमादुक्ता महेश्वरि । तेषां संख्यामपि तथा शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥५२॥  
 चतुर्दशाक्षरास्तेषु नव मन्त्राः समीरिताः । तथा पञ्चदशार्णास्तु षड्विंशतिरितीरिताः ॥५३॥  
 षोडशार्णास्तु मनवः पञ्चविंशतिरितीरिताः । तथा सप्तदशार्णांश्च चत्वारो व्याकुलाः क्रमात् ॥५४॥

अथ चतुर्ष्विष्टेकयथा— (२) 'हींश्री मदनित्यद्रवे विभ्रमं देहि श्रीहीं' १५। (२) 'हींश्री मदनित्यद्रवे वाहकं देहि श्रीहीं' १५। (३) 'हींश्री मदनित्यद्रवे वीरं देहि श्रीहीं' १४। (४) 'हींश्री मदनित्यद्रवे विकर्षं देहि श्रीहीं' १५। (५) 'हींश्री मदनित्यद्रवे कोरकं देहि श्रीहीं' १५। एवं—कविं सिंहनादं महानादं सुग्रीवं मर्कटं शठं विडालाक्षं

बिडालास्यं कुमारं खेचरं भवं मयूरं मङ्गलं भीमं द्वीपिवक्त्रं खराननं मातङ्गं निशाचारिणं विषग्राहिणं वृकोदरं सैरिभास्यं गजमुखं पशुवक्त्रं मृगाननं क्षेभकं मणिभद्रं क्रीडकं सिंहवक्त्रं श्येनास्यं कङ्कवदनं काकास्यं हथवक्त्रं महोदरं स्थूलशिरसं विकृतास्यं वराननं चपलं कुकुटास्यं मायाविनं मदनालसं मनोहरं दीर्घजङ्घं स्थूलदन्तं दशाननं सुमुखं पिण्डितं कुद्धं वराहास्यं सटामुखं कपटं कौतुकिनं कालं किङ्करं कितवं खलं भक्षकं भयदं सिद्धं सर्वगं (६४) इति चतुषष्टिश्छेष्टकाः।

चेटक चौसठ हैं और उनके मन्त्र भी चौसठ हैं, जो सिद्ध होने पर इच्छाएँ पूरी करते हैं। चेटकों नाम इस प्रकार हैं—

१. विप्रम	१७. मयूर	३३. सिंहवक्त्र	४९. दशानन
२. वाहक	१८. मंगल	३४. श्येनास्य	५०. सुमुख
३. वीर	१९. भीम	३५. कंकवदन	५१. पिण्डित
४. विकर्ष	२०. द्वीपिवक्त्र	३६. काकास्य	५२. कुद्ध
५. कोरक	२१. खरानन	३७. हयवक्त्र	५३. वराहास्य
६. कवि	२२. मातंग	३८. महोदर	५४. सटामुख
७. सिंहनाद	२३. निशाचारी	३९. स्थूलशिरा	५५. कपट
८. महानाद	२४. विषग्राही	४०. विकृतास्य	५६. कौतुकी
९. सुग्रीव	२५. वृकोदर	४१. वरानन	५७. काल
१०. मर्कट	२६. सैरिभास्य	४२. चपल	५८. किंकर
११. शठ	२७. गजमुख	४३. कुकुटास्य	५९. कितव
१२. बिडालाक्ष	२८. पशुवक्त्र	४४. मायावी	६०. खल
१३. बिडालास्य	२९. मृगानन	४५. मदनालस	६१. भक्षक
१४. कुमार	३०. क्षेभक	४६. मनोहर	६२. भयद
१५. खेचर	३१. मणिभद्र	४७. दीर्घजङ्घ	६३. सिद्ध
१६. भव	३२. क्रीडक	४८. स्थूलदन्त	६४. सर्वग

इन चौसठ चेटकों के चौसठ मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे विप्रमं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
२. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे वाहकं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
३. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे वीरं देहि श्रीं हीं—१४ अक्षर।
४. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे विकर्षं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
५. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कोरकं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
६. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कविं देहि श्रीं हीं—१४ अक्षर।
७. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे सिंहनादं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
८. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे महानादं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
९. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे सुग्रीवं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
१०. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मर्कटं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
११. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे शठं देहि श्रीं हीं—१४ अक्षर।
१२. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे बिडालाक्षं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
१३. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे बिडालास्यं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।

१४. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कुमारं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
१५. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे खंचरं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
१६. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे भवं देहि श्रीं हीं—१४ अक्षर।
१७. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मयूरं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
१८. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मंगलं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
१९. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे भीमं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
२०. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे द्वीपिवक्त्रं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
२१. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे खराननं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
२२. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मातांगं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
२३. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे निशाचारिणं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
२४. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे विषग्राहिणं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
२५. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे वृकोदरं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
२६. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे सौरिभास्यं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
२७. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे गजमुखं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
२८. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे पशुवक्रं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
२९. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मृगाननं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
३०. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे क्षोभकं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
३१. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मणिभद्रं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
३२. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे क्रीडकं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
३३. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे सिंहवक्रं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
३४. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे श्येनास्यं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
३५. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कंकवदनं देहि श्रीं हीं—१७ अक्षर।
३६. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे काकास्यं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
३७. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे हयवक्रं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
३८. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे महोदरं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
३९. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे स्थूलशिरां देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
४०. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे विकृतास्यं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
४१. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे वराननं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
४२. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे चपलं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।
४३. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कुकुटास्य देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
४४. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मायाविनं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
४५. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मदनालसं देहि श्रीं हीं—१७ अक्षर।
४६. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे मनोहरं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
४७. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे दीर्घजङ्घं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
४८. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे स्थूलदन्तं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
४९. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे दशाननं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।
५०. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे सुमुखं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।

५१. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे पिण्डतं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।  
 ५२. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कुद्धं देहि श्रीं हीं—१४ अक्षर।  
 ५३. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे वराहास्यं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।  
 ५४. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे सटामुखं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।  
 ५५. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कपटं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।  
 ५६. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कौतुकिनं देहि श्रीं हीं—१६ अक्षर।  
 ५७. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कालं देहि श्रीं हीं—१४ अक्षर।  
 ५८. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे किंकरं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।  
 ५९. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे कितवं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।  
 ६०. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे खलं देहि श्रीं हीं—१४ अक्षर।  
 ६१. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे भक्षकं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।  
 ६२. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे भयदं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।  
 ६३. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे सिद्धं देहि श्रीं हीं—१४ अक्षर।  
 ६४. हीं श्रीं मदनित्यद्रवे सर्वगं देहि श्रीं हीं—१५ अक्षर।

#### विद्यायन्नोद्धारः

तथा—

विद्याक्षरेष्वनावृत्तान्यक्षराणि चतुर्दशा । सस्वरैस्तैर्भवेत्संख्या चतुर्विंशच्छतद्वयम् ॥५५॥  
 अत्र 'हरफसकअलवनतयमदव' इति।

तैर्यन्नाणि च सप्त स्युस्तेषु प्रोक्तक्रमायजेत् । देवताः सप्तवारेषु भास्करादिषु भक्तिः ॥५६॥  
 वाराढ्यां सप्तमीयुक्तामिष्टं देहीति चालिखेत् । यन्त्रयं मध्ये मायास्यं तत्र सिद्धीश्च पूजयेत् ॥५७॥  
 वृत्तयोर्नवयोनिं च कृत्वा बाह्यङ्गकोणकम् । बहिः कलाजभूसद्ययुगं कुर्याद्यथाविधि ॥५८॥  
 विलिख्य तेषु क्रमतो वर्णान् द्वित्रिंशदालिखेत् । दलेषु कोणेषु तथा वृत्तमध्ये द्वये पुनः ॥५९॥  
 मातृकामकथाद्यां वै विलिखेदान्तरक्रमात् । तस्य कोणान्तरालेषु हल्क्षार्णान् समालिखेत् ॥६०॥  
 अग्रात् प्रदक्षिणं त्वेवं सप्त यन्त्राणि तैर्भवेत् । सिद्धीनां चेटकानां च यक्षिणीनां तथैकशः ॥६१॥  
 चेटकानां विशेषोऽयं मध्येष्टच्छदमस्तुजम् । तेषामुक्तकमैषैव साधनानि फलानि वै ॥६२॥

विद्याक्षरों को अनावृत करने पर चौदह अक्षर होते हैं। इनमें सोलह स्वरों के योग से इनकी संख्या २२४ होती है। ये अनावृत चौदह अक्षर हैं—ह र फ स क अ ल व न त य म द व।

२२४ अनावृत अक्षरों से सात यन्त्र बनते हैं। प्रोक्त क्रम से इनका यजन सात दिनों में करे। सात दिनों के सूर्यादि देवताओं की पूजा करे। दिन का नाम एवं मदनित्यद्रवे इष्टं देहि लिखे। यन्त्र के मध्य में हीं लिखे, वहीं पर सिद्धि की पूजा करे। वृत्त में नवयोनि बनाकर बाहर अष्टकोण बनावे। उसके बाहर षोडश दल कमल बनावे। उसके बाहर दो भूपुर बनावे। उनमें क्रमशः ३२ वर्णों को षोडश दल कमल के दलों में दो-दो वर्ण लिखे। नव कोनों में दो-दो लिखे। वृत्तमध्ये में दो लिखे। अकथादि मातृका को आन्तर क्रम से लिखे। कोणों के अन्तराल में हल्क्ष क्ष लिखे। अग्रभाग से प्रदक्षिण क्रम से इस प्रवार लिखने पर सात यन्त्र बनते हैं। चेटकों के यन्त्र में मध्य में अष्टदल कमल बनावे। उनमें उक्त क्रम से साधना करने से विहित फल प्राप्त होते हैं।

यक्षिणीचेटकसाधनप्रयोगः

प्रयोगाङ्गणु देवेशि यैः सिद्धो मत्समो भुवि । पूज्यते सर्वलोकैश्च सर्वतः सर्वदापि वा ॥६३॥

सिन्धुतीरवने चैता यक्षिणीः साधयेत्क्रिशः । एकैकस्मिन् वर्णलक्षं जपेदुक्तविधानतः ॥६४॥  
 अरण्यवटमूले च पर्वताग्रे गुहासु च । उद्यानमध्ये कान्तारे मातृपादपमूलतः ॥६५॥  
 तदशांशं तर्पणं च होमं कुर्यात्प्रसूनकैः । कदम्बबन्धूकजपाहयमारैश्च लोहितैः ॥६६॥  
 ततः प्रीताः समागात्य प्रत्यक्षा वाञ्छितप्रदाः । सुवर्णानि च वासांसि भूषणानि फलानि च ॥६७॥  
 आस्वाद्यानि च लेहानि भोज्यानि विविधानि च । आलेपनानि माल्यानि दद्युराजीवितावथि ॥६८॥  
 आयाताः सर्वदा महां प्रत्यक्षा देहि वाञ्छितप्रदम् । इत्युक्त्वा नित्यशस्तास्तु पूजयेच्च जपेतथा ॥६९॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं तु तां तां विद्यामनन्धीः । एवं ताः सर्वयक्षिण्यः फलं दद्युर्यथेप्सितम् ॥७०॥  
 चेटकानां तु सर्वेषां तेषु तेषु क्रमेण वै । एकस्मिन् पञ्च पञ्च स्युः सिद्धाः सिन्धुतटे नव ॥७१॥  
 तेषां च वर्णलक्षं तु जपमुक्तविधानतः । मौनं दिनेषु सततं कुर्यात्प्रियद्वयै न चालयेत् ॥७२॥  
 मध्यरात्रे सदा होमं तर्पणं च समीरितम् । जपेद् दिवानिशं प्रोक्तं सर्वेषामपि साधने ॥७३॥  
 चेटकास्ते समागात्य मध्यरात्रेऽतिभीषणाः । क्षोभयेयुरमुं क्षोभं न चेदेत्याथ तत्पुरः ॥७४॥  
 प्रत्यक्षाः किं तवेष्ट तत्करोमीति वदेन्निशि । प्रत्येकं ते तथेत्युक्त्वा न मां मुञ्चत इत्यपि ॥७५॥  
 नित्यशस्तान् जपार्चाभिरुपासीताचरेततः । स्मृते तमेत्य संदिष्टं साधयेयुः समीहितम् ॥७६॥  
 शत्रूणां समरे भङ्गं प्रहारमहिते जने । कुर्वन्ति प्रार्थितार्थानां प्रदानं ते दिवानिशम् ॥७७॥  
 आनयेयुश्च वनिता वाञ्छितास्तत्क्षणाद् ध्वम् । निश्वलीकुर्वते मत्तं दन्तिनं वा हयं नरम् ॥७८॥  
 नित्याषोडशके सिद्धे देवर्धिपितृराक्षसैः । पिशाचैरुरगैः सिद्धैः किन्नरैरप्सरोगणैः ॥७९॥  
 मरुद्विर्वसुभिः सपदऋषिभिर्यक्षिदानवैः । रुद्रैरकादशविधैः साध्यैश्च नवभिर्यहैः ॥८०॥  
 द्वादशाक्लैकपालैस्तथान्यैरपि दैवतैः । राजधिर्वनिताभिश्च नरैरन्यैर्मृगैस्तथा ॥८१॥  
 पूज्यते सर्वदा सिद्धः समीहितसुखास्पदः । हष्टाशयो वदान्यश्च दयावान् सुमुखः क्षमी ॥८२॥  
 पूण्याशयः सदानन्दे निरपेक्षः कलान्वितः । धनी भोक्तापरद्वेषी प्रेमभूरावयोर्भवित् ॥८३॥

इति नीलपताकानित्याप्रयोगविधिः ।

हे देवि! अब उनके प्रयोगों को सुनो, जिसे सिद्ध होने पर साधक मुझ शिव के समान हो जाता है। सर्वतः सर्वदा सभी लोकों में उसकी पूजा होती है। सागर के टट पर स्थित बन में इन यक्षिणियों को सिद्ध करे। एक-एक का वर्ण लक्ष जप विधिवत् करे। जंगल के वटमूल में, पर्वताग्र गुफा में, उद्यान में, कान्तार में, मातृपादमूल में साधना और जप करे। जप का दशांश हवन-तर्पण करे। कदम्ब, बन्धूक, अङ्गुहल, लाल कनैल से हवन करे। इससे प्रसन्न यक्षिणियाँ प्रत्यक्ष होकर वाञ्छित फल देती हैं। जीवन भर स्वादिष्ट भोजन, लेहा, भोज्य देती हैं। विविध लेप, माला देती हैं। उनके आने पर कहे 'सर्वदा महां प्रत्यक्षा देहि वाञ्छितम्' यह कहकर नित्य पूजा और जप करे। अनन्य बुद्धि से नित्या का एक हजार आठ जप करे। इससे सभी यक्षिणियाँ ईस्ति फल देती हैं।

सभी चेटकों को उनके क्रम से पाँच-पाँच की संख्या में सागरतट पर सिद्ध करे। उनके मन्त्रों का वर्णलक्ष जप करे। दिन भर मौन रहकर साधना करे, कहीं न जाय। आधी रात में हवन-तर्पण करे। सबों के साधन में दिन-रात जप करे। आधी रात में चेटक भवंकर रूप में आते हैं और साधक को क्षुब्ध करते हैं। साधक क्षुब्धा न हो तब वे प्रत्यक्ष होकर कहते हैं कि आपकी इच्छा क्या है, उसे पूरी करूँगा। उनमें प्रत्येक से साधक कहे कि मेरा साथ कभी मत छोड़िये। नित्य उनकी उपासना पूजन एवं जप से करे। एकाग्रता से उनका साधन करे। स्मरण करने पर वे दर्शन देते हैं। युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार कक्षे उन्हें वे नष्ट करते हैं। आदेशानुसार सभी कर्म करते हैं और इच्छित प्रदान करते हैं। वाञ्छित वनिता को क्षण भर में ले आते हैं। मतवाले हाथी, घोड़े, मनुष्यों को निश्चल करते हैं। सोलह नित्याओं के सिद्ध होने पर देवर्धि, पितर, राक्षस, पिशाच, नाग, सिद्ध, किन्नर, अप्सरागण, मरुत, वसु, सप्तर्षि, यक्ष, दानव, एकादश रुद्र, मनुष्य, मृग सर्वदा इस सिद्ध की पूजा करते हैं।

दूसरों से वह मधुर बोलता है। वह सदा दयावान, प्रसन्नमुख, क्षमाशील, पूर्णाशय, सदानन्दित, निरपेक्ष, कलान्वित, धनी, भोक्ता, द्वेषहीन होकर प्रेम से पूर्ण रहता है।

### विजयानित्याप्रयोगविधि:

अथ विजयानित्याप्रयोगविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१८.२६) —

पूर्वोक्तक्रमतो विद्या वर्णलक्ष्म जपेत्सुधीः। होर्मं रक्ताम्बुजैः कृत्वा सिद्धपत्रो दयान्वितः ॥१॥  
 प्रयोगानाचरेन्मन्त्री होमयन्त्रविधानतः। जपेन तर्पणेनापि पूजनेन यथाविधि ॥२॥  
 कमलैः कैरवै रक्तैः सितैः सौगच्छिकोत्पलैः। सुगच्छिशफालिकया त्रिमध्वक्तैर्यथाविधिः ॥३॥  
 होमात्सप्तसु वारेषु कुर्यातोक्तसु सप्तभिः। प्रोक्तवारेशयोश्चापि तमण्डलत एव वै ॥४॥  
 विजयं समवाप्नोति समरे द्वन्द्वयुद्धके। मल्लयुद्धे शश्वयुद्धे वादे द्यूतद्वयेऽपि च ॥५॥  
 व्यवहारेषु सर्वत्र जयमाप्नोति निश्चितम्। चतुरङ्गलजैः पुष्ट्यैर्होमात् संस्तम्भयेद्रिपून् ॥६॥  
 तथैव कर्णिकारोत्थैः पुनागोत्थैर्नमेरुजैः। चम्पकैः केतकै राजवृक्षजैर्मधिवृद्धवैः ॥७॥  
 प्राग्वद्वारेषु जुहुयात्क्रमात्पुष्ट्यैस्तु सप्तभिः। प्रोक्तेषु स्तम्भनं शत्रोर्भङ्गो वा भवति ध्रुवम् ॥८॥  
 शत्रोर्नक्षत्रवृक्षाग्नौ तत्समिद्धिस्तु होमतः। सर्वपाञ्चाप्लुताभिस्तैः प्रणमन्त्येव पादयोः ॥९॥  
 मृत्युकाष्ठानले मृत्युपत्रपुष्ट्यफलैरपि। समिद्धिर्जुहुयात्सम्यग् वारेशाचर्नपूर्वकम् ॥१०॥  
 अरातेश्वतुरङ्गं तु बलं रोगादितं भवेत्। तेनास्य विजयो भूयान्त्रिधनेनापि वा पुनः ॥११॥  
 अर्कवारेऽर्कजैरिध्यैः समिद्धेऽग्नौ तदुद्धवैः। पत्रैः पुष्ट्यैः फलैः काण्डैर्मूलैश्चापि हुनेक्षमात् ॥१२॥  
 सवर्णारुणवत्साया धृतसित्कैस्तु मण्डलात्। अरातिदिङ्गुमुखो भूत्वा कुण्डे त्रयस्त्रे विधानतः ॥१३॥  
 पलायते वा रोगार्तः प्रणमेद्वा भयान्वितः। वैरी बलसमग्रोऽपि शौर्यमानान्वितोऽपि च ॥१४॥  
 पलाशेष्यानले तस्य पञ्चाङ्गस्तद्घृताप्लुतैः। होमेन सोमवारेषु भवेत्प्राग्वन्न संशयः ॥१५॥  
 खादिरेष्यानले तस्य पञ्चाङ्गस्तद्घृताप्लुतैः। वारे भौमस्य हवनात्तदाप्नोति सुनिश्चितम् ॥१६॥  
 अपामार्गेष्यजे वह्नौ तत्समिद्धिर्जुहेत्था। बुधवारेषु शुभ्रायाः सवत्साया धृतान्वितम् ॥१७॥  
 पूर्वोक्तफलसंसिद्धिर्भवत्येव च तददिनैः। तत्तद्वारेषु भजनात् पूर्वमेव हुतक्रिया ॥१८॥

**विजया नित्या प्रयोग विधि—**तन्त्राज में कहा गया है कि पूर्वोक्त क्रम से साधक विद्या का वर्णलक्ष जप करे। लाल कमल से हवन करने पर दयालु मन्त्र सिद्ध होता है। मन्त्रज्ञ हवन यन्त्र विधान से, जप से, तर्पण से और पूजन से यथाविधि प्रयोग करे। कमल कैरव लाल उजला सुगच्छित, उत्पल सुगच्छित शेफाली को यथाविधि त्रिमधराकृ कक्षे हवन करे। सातों वारों में हवन विहित रूप में करे। उक्त वारेशों का चालीस दिनों तक पूजन करे। इससे द्वन्द्व युद्ध में विजय मिलती है। मल्ल युद्ध, शश्वयुद्ध, विवाद, दोनों प्रकार के जूआ में, व्यवहार में सर्वत्र साधक विजयी होता है। चार अंगुल के फूलों से हवन करने पर शत्रुओं का स्तम्भन होता है। उसी प्रकार कर्णिकार, पुनाग, नमेरु, चम्पा, केतकी, राजवृक्ष पुष्ट्य माधवपुष्ट्य—इन सात से पूर्ववत् सात दिनों में हवन करे। इससे शत्रु का स्तम्भन या मृत्यु होती है। शत्रु नक्षत्र वृक्षों की अग्नि में उसी की समिधा से हवन करने पर या आज्य प्लुत सरसों से हवन करने से शत्रु पैरों में प्रणाम करता है। मृत्युकाष्ठ की अग्नि में उसके पत्ते-पुष्ट्य-फल-समिधा से वारेश की पूजापूर्वक हवन करे तो शत्रु की चतुर्गिनी सेना रोगार्त हो जाती है। इससे साधक विजयी होता है और शत्रु का नाश होता है। रविवार में अकवन की अग्नि में अकवन की समिधा, पत्तों, फूलों, फलों या काष्ठमूल से क्रमशः हवन करे। इहें लाल बछड़े वाली लाल गाय के धी से अक्त करके चालीस दिनों तक शत्रु की दिशा में मुख कक्षे त्रिकोण कुण्ड में विधि से हवन करने से शत्रु भाग जाता है या रोगार्त होकर भय से प्रणाम करता है। सभी बल-शौर्य से युक्त शत्रु भी पलाश के पञ्चाङ्ग को धी से प्लुत करके पलाश के काष्ठ की अग्नि में सोमवार को हवन करने से पूर्ववत् होता है अर्थात् पैरों में गिर पड़ता है। खैरकाष्ठ की अग्नि में खैर के पञ्चाङ्ग को धृताकृ करके मंगलवार में हवन करने से भी वही

फल मिलता है। अपामार्ग-काष्ठ की अग्नि में उसी की समिधा से बुधवार को सवत्सा उजली गाय के घी से अक्तु करके हवन करने से शत्रु पराजित होता है। सभी वारों में पूजन से पूर्व ही हवन करना चाहिये।

**सर्वत्र प्रोक्तमेवाचर्जिपयन्नादिकर्मसु । तत्तत्रित्यार्चनं तत्तद्वारेशद्वयपूजनम् ॥१९॥**  
**विधाय पश्चात्कर्माणि तानि कुर्यात्समाहितः । शीघ्रं तत्फलसंसिद्धै भवत्येवान्यथान्यथा ॥२०॥**  
**पिप्पलाग्नौ गुरोवरि तदुत्थैस्तदघृतप्लुतैः । हुनेतथा तत्फलापिस्तद्विदैः स्यादसंशयम् ॥२१॥**  
**उदुम्बराग्नौ भृगुजे वारे होमं तदुद्ध्रवैः । तत्सिद्धैर्विदधीतेत्यं तद्विनैस्तत्र सिध्यति ॥२२॥**  
**शमीवहौ तदुत्थैस्तु जुहुयात्कृष्णगोधृतैः । तद्विनात्तफलानि स्युरिति वारेषु सप्तसु ॥२३॥**  
**विजयो विहितः सम्यग्हवनात्तिथित्रक्षक्योः । विजयं शृणु देवेशि कथयामि क्रमेण ते ॥२४॥**  
**प्रतिपत्तिथिमारभ्य पञ्चम्यन्तक्रमेण वै । शालीचणकामुदैश्च यवमावैश्च होमतः ॥२५॥**  
**महिषाज्यप्लुतैस्ताभिस्तिथिभिः समवाप्नुयात् । षष्ठ्यादि च दशम्यन्तमजाभवघृतैस्तदा ॥२६॥**  
**प्रागुक्तैर्निसुषैर्होमात् प्रागुक्तं फलमाप्नुयात् । तदूर्ध्वं पञ्चदश्यन्ते समस्तैश्च तिलद्वयैः ॥२७॥**  
**सितार्कैः पायसैः सितैराविकैस्तु घृतैस्तथा । हवनात्तफलमाप्नोति यदादौ फलमीरितम् ॥२८॥**  
**एवं नक्षत्रवृक्षोत्थवहौ तैस्तैर्घृप्लुतैः । हवनादपि तत्रापिर्भवत्येव न संशयः ॥२९॥**  
**विद्यायां प्राग्वदणनि पञ्च युज्ञात्स्वरैस्तथा । अशीत्यर्णवती विद्या तैर्यन्नाणि शृणु प्रिये ॥३०॥**  
**प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्ष्य दश सूत्राणि पातयेत् । एकाशीतिपदानि स्युस्तेषु तानि लिखेत्कामात् ॥३१॥**  
**मध्यकोष्ठेऽभिधानं कृत्वा प्रागुक्तविधिना युतम् । शूलीकृत्य च रेखाग्राण्यत्रावाहाभिपूज्य ताम् ॥३२॥**  
**उपासीत पुरो विद्यां जपं नित्यं समर्चयेत् । विद्याक्रमं तत्र यन्त्रे यजेत्तत्फलमाप्नुयात् ॥३३॥**

सर्वत्र उक्त यन्त्र के पूजन-अर्चन आदि कर्म में उस-उस नित्या का अर्चन एवं उस-उस वार तथा वारेश का पूजन करके बाद के कर्मों को एकाग्रता से करे तो शीघ्र ही उसका फल मिलता है; अन्यथा फल नहीं मिलता। गुरुवार को पीपल काष्ठ की अग्नि में उसके पत्ते-फल को घृतप्लुत करके हवन करने से उसी दिन फल प्राप्त होता है। गूलर काष्ठ की अग्नि में शुक्रवार को गूलर के पत्तों, फल, काष्ठ को घृतात्त करके हवन करने से शत्रु पराजित होते हैं। शमी काष्ठ की अग्नि से उसके कांड, पत्तों को काली गाय के घी से सिक्त करके हवन से शत्रु पराजित होता है।

तिथियों एवं नक्षत्रों में सम्यक् हवन से विजय होती है, उसे क्रम से कहता हूँ। प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ करके पञ्चमी तक प्रत्येक तिथि में अलग-अलग शाली, चना, मूंग, यव, उड़द को भैंस के घी से सिक्त करके हवन करने से होता विजयी होता है। षष्ठी से दशमी तक पूर्वोत्तर अन्नों को बकरी के घृत से सिक्त करके हवन करने से विजयी होता है। एकादशी से पूर्णिमा तक सबों को तिल के साथ सितात्त पायस को भेड़ के घृत से सिक्त करके हवन से पूर्ववत् फल मिलता है। इसी प्रकार नक्षत्र वृक्षोत्थ अग्नि में हवन करने से विजयी होता है। विद्या के पाँच वर्णों को सोलह स्वरों से युक्त करने के बाद विद्या अस्सी वर्णों की हो जाती है, उसके यन्त्रों को सुनो।

पूरब से पश्चिम एवं दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर दश रेखाओं को खींचने से इक्यासी कोष्ठ बनते हैं। मध्य कोष्ठ में साध्य नाम लिखे। शेष अस्सी कोष्ठों में विद्या के अस्सी अक्षरों को लिखे। रेखाओं में त्रिशूल बनावे। उसमें आवाहन करके पूजन करे। तब जप करे। विद्याक्रम से यन्त्र में पूजन करने से उक्त फल मिलता है।

### विजयानित्यायन्त्रम्

अत्र यन्त्रलेखनक्रमः सुगमः। तथा—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्ष्य चतुःसूत्रनिपातनात् । नवानि सम्भवन्त्यत्र कोष्ठानि परमेश्वरि ॥३४॥  
 तेषु प्रत्येकमज्जानि साष्टपत्राणि संलिखेत् । तेषु मध्यस्थपद्मस्य कर्णिकायां समालिखेत् ॥३५॥

नामगर्भा तु तां विद्यां तद्विश्वाष्टपत्रके । तेष्वादितोऽष्टौ संलिख्य बिन्दुना तद्विस्तथा ॥३६॥  
 कर्णिकायां तु नामैकं बहिरर्षीं तथाष्टसु । एवमष्टसु संलिख्य वैष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥३७॥  
 विलोमैरनुलोमैश्च मायाबिन्दुसमन्वितैः । चतुरस्त्रये बाह्ये लक्ष्मावग्रे समालिखेत् ॥३८॥  
 एवं कृत्वा हस्तयुग्ममाने कुम्भं विद्याय तम् । विद्याक्षरौषधिक्वाथजलैरपूर्य पूर्ववत् ॥३९॥  
 अभ्यर्थ्य विद्यामयुतं जपित्वा तैर्विधानतः । अभिषिञ्चेत्ततः । क्लेशैर्विमुक्तो जायते सुखी ॥४०॥  
 विजयं सर्वतो भूयात्मोक्षेष्वपि च सप्तसु । नवग्रहात्तीं रिपुभिः सर्वतः क्लेशसम्भवे ॥४१॥  
 समरस्योदयमे कीर्तिसमृद्ध्योरप्यवाप्तये । पुत्राप्त्यै वाञ्छितप्राप्त्यै त्रिषु जन्मसु कारयेत् ॥४२॥  
 एतद्यन्तं गैरिकेण पीठे संलिख्य तत्र ताम् । देवीमावाह्य संपूज्य जपेद्विद्यां तथायुतम् ॥४३॥  
 एवं त्रिःसप्तभिः सप्तरात्राद्विश्च वशं नयेत् । राजानं वनितां मत्यनन्यांश्च प्राणिनोऽखिलान् ॥४४॥  
 हरिद्राघ्यपटे कृत्वा कलशे वा शरावयोः । निधाय भित्तिमध्ये वा शयनस्थानके निजे ॥४५॥  
 अभ्यर्थ्य विद्याय जापं कुर्यात्संध्यासु नित्यशः । सहस्रं प्रोक्तकलनात्सम्भयेदखिलं दृढम् ॥४६॥  
 शत्रोरुद्योगरोषाभ्यामनिष्टकरणं तथा । व्यवहारे रणोद्योगे वादे वाचं रुषं मतिम् ॥४७॥  
 एतत्वागुक्तसुरभिद्वैरालिख्य तत्र ताम् । संध्यासु पूजयेन्नित्र्यं सहस्रं प्रजपेत्तथा ॥४८॥  
 प्रोक्तकालप्रयोगेण श्रियं प्राप्नोति पुष्कलाम् । इति ।

**अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः**—तत्र प्राक्त्रय्यदक्षिणोदक् च चतुश्चतुः सूत्रनिपातनात् समान्तरालानि नव कोषाणि कृत्वा, तेषु नवसु कोषेषु अष्टदलपद्मानि सकर्णिकानि नव कृत्वा, मध्यष्टदलकर्णिकायां साध्यनामयुक्तां विजयाविद्यां विलिख्य, बहिरष्टु दलेषु प्रागुक्ताशीत्यक्षरेषु प्रथमतोऽष्टाक्षराणि विलिख्य, पूर्वदिग्गताष्टदले कर्णिकायां नवमाक्षरं साध्यनामगर्भं विलिख्याष्टदलेष्वष्टाक्षराणि विलिख्य, तथैवानेयदिक्स्थाष्टदलपद्मेषु विलिख्य बहिश्वतुरस्त्रयं कृत्वाभ्यन्तराले विसर्गयुक्तां विलोममातृकां विलिख्य तद्विरक्षाभ्यां वेष्टयेत् । एतद्यन्तमुक्तफलदं भवति ।

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर चार-चार रेखाओं को खींचने से नव कोष बनते हैं । उन नवों कोषों में से प्रत्येक में एक-एक अष्टदल कमल कर्णिकासहित बनावे । उनमें से मध्यस्थ पद्म की कर्णिका में साध्य नामयुक्त विजया विद्या लिखे । बाहर आठ दलों में पूर्वोक्त अस्सी अक्षरों में से आठ अक्षर लिखे । पूरब दिशा वाले अष्टदल की कर्णिका में नवमाक्षर के गर्भ में साध्य नाम लिखे । आठ दलों में आठ अक्षर लिखे । इसी प्रकार आग्नेयादि दिशा के अष्टदल पद्मों में भी इसी प्रकार लिखे । इसके बाहर तीन भूपुर बनावे । तीन भूपुरों के दो अन्तरालों में विसर्गयुक्त विलोम मातृका लिखे । उसके बाहर लं क्षं लिखकर वेष्टित करे ।

इस यन्त्र को दो हाथ विस्तृत बनावे । प्रत्येक पद्म में एक-एक कुम्भ इस प्रकार कुल नवकुम्भ रखकर उन्हें विद्याक्षरौषधि क्वाथ जल से पूर्ववत् भरे, अर्चन करे । विद्या का जप एक हजार करे । उस जल से पीड़ित मनुष्य का विधिवत् अधिषेक करे तो रोगी निरोग हो जाता है । उन प्रोक्त सातों यन्त्रों से सर्वत्र विजय प्राप्त होती है । इससे शत्रु नवग्रहों की पीड़ा से ग्रस्त होता है । युद्ध के उद्यम में कीर्ति और समृद्धि मिलती है । पुत्रप्राप्ति एवं वाञ्छित प्राप्ति तीनों जन्मों में होती है । इस यन्त्र को पीठ पर गेरू से लिखकर उसमें देवी का आवाहन-पूजन के बाद विद्या का एक हजार जप करे । इस प्रकार तीन या सात रातों तक करने से विश्व वश में हो जाता है । राजा, वनिता, मनुष्य, अन्य प्राणी सभी वश में हो जाते हैं । हल्त्वी में रंगे वस्त्र पर यन्त्र बनाकर कलश में या शराव में रखकर या अपने शयन कक्ष की भीत पर रखकर सन्ध्या में विद्या का जप एक हजार करे । इससे सबों का दृढ़ स्तम्भन होता है । शत्रु का उद्योग एवं क्रोध से अनिष्टकरण, व्यवहार में युद्ध में वाद में वचन में मति में स्तम्भन होता है । इस यन्त्र को पूर्वोक्त सुगन्धित द्रव्यों से लिखकर उसमें देवी का पूजन सन्ध्याओं में नित्य करे और हजार जप करे तो विहित काल में प्रयोग से अपार धन मिलता है ।

तथा—

अथान्यद्वन्नरूपं तु यत्रं वक्ष्येऽतिवैभवम् ॥४९॥

प्राग्वद् द्विसप्तस्तपाणां पातेनोत्पादयेत्तथा । कोष्ठानि नवषष्ठ्या च युतं शतमतिस्फुटम् ॥५०॥  
 तच्चतुकोणकोष्ठानि मार्जयेत्सैकविंशतिम् । मध्ये वत्रं भवेत्पञ्चाशीतिकोष्ठैर्यथाविधि ॥५१॥  
 तच्चतुर्दिक्षु विलिखेत्तिकोणान्येककोणाः । सर्वमध्यस्थकोष्ठे च चतुर्दिक्षु च्यसेत्तथा ॥५२॥  
 विद्यां नामोदरां कृत्वा प्राग्वद्वर्णस्तु संलिखेत् । एतदप्रतुष्कस्य स्पर्शन् त्रिचतुरस्तकम् ॥५३॥  
 विधाय तत्र विलिखेन्मातृकां प्राग्विधानतः । एतेन वत्रयन्त्रेण विजया विजयप्रदा ॥५४॥  
 एतत्रोक्तेषु संलिख्य स्थापयेत्तोक्तरूपतः । विजयं समवानोति प्रोक्तेष्वपि च सन्दसु ॥५५॥  
 विलिख्याश्वत्यफलकात्तले यत्रं कुचन्दनैः । जपाराधनसंसिद्धं स्थापयेच्छून्यवेशमसु ॥५६॥  
 देशे वा तत्र दिनशो वर्धते श्रीरचञ्चला । पिशाचा राक्षसाः कृत्वा वेतालाः स्युर्न तत्र वै ॥५७॥  
 पलाशफलकायां तु विलिख्यैत्यथाविधि । स्थापयेद्यत्र कुत्रिपि तत् क्षेत्रं ब्राह्मणास्यदम् ॥५८॥  
 पूर्वोक्तस्थापनाद्राजधानी भवति सुस्थिरा । वटे विलिख्य खननात्पत्तनं भवति शूरम् ॥५९॥  
 उदुम्बरे विधायेत्यं स्थापनादचिरेण वै । अहितानाश्रयं स्थानं भवत्येव न संशयः ॥५६०॥  
 वत्रस्य दिक्कित्रकोणान्तरालात्कुर्यात्तिशूलकम् । दाहव्याप्ते स्वसंयुक्ते लिखेत्तच्छृङ्गमध्ययोः ॥५६१॥  
 तत्र संस्थाप्य गदितं विद्याजप्तविभूतिना भालस्येनाभिजपेन तमाविश्य गदो वदेत् ॥५६२॥  
 स्वावेशकारणं कर्म स्वापयानक्रमं तथा । ग्रहभूतपिशाचाद्या अस्याविश्यापयान्ति वै ॥५६३॥  
 (तदैव दासवत्तस्य वशे भवति तद्वलात् ।) यन्त्रमेतद्विलिख्याशमस्यर्थ्यर्थ्य स्थापयेत्त्वचित् ॥५६४॥  
 राज्ञो गेहे तस्य राज्ञः क्षमा मुच्छति नान्वयम् । स्थाने गजानां वाहानां नव कृत्वा नवस्वपि ॥५६५॥  
 स्थानेषु स्थापितान्येतान्यर्थयेद् दिनशस्तथा । दिक्षु मध्ये च तत्रैव रोगाः कृत्वाः परेरिताः ॥५६६॥  
 वीक्षितुं भवनं नैव शक्ताः स्युस्तत्रभावतः । चन्द्रचन्दनकाशमीरैरालिख्याभिनवे पटे ॥५६७॥  
 अस्यर्थ्य विद्याजप्तं तं पटमास्तीर्थं शाययेत् । दाहज्वरार्तमचिरामुच्छते तज्ज्वरेण सः ॥५६८॥  
 अन्येष्वपि गदेष्वेवं कारयेत्तद्विमुक्तये । समरेषु महीपानां यन्त्रमेतदुदीरितम् ॥५६९॥  
 निःसाने पटहेऽन्येषु वाद्येषु च समालिखेत् । दरदेनाथ तम्भये तामावाह्य समर्चयेत् ॥५७०॥  
 विजयां विजयावाप्त्ये युगपत्ताडयन् व्रजेत् । प्रत्यर्थिसेन तच्छब्दाकरणनेन पलायते ॥५७१॥  
 दिशो दश भयोद्विग्ना नाभियाति कदाचन । सजीवद्यूतकालेषु यन्त्रमेतद्विनिर्मितम् ॥५७२॥  
 गुलिकीकृत्य तत्कण्ठे बद्ध्वा पश्चात् योजयेत् । एतद्वर्णनामात्रेण पलायन्ते दिशो दश ॥५७३॥  
 निर्जीवेषु च तद्यन्तं जयमानोति सर्वतः । नासाध्यं विद्यते तेन वत्रयन्त्रेण पावति ॥५७४॥  
 ध्यायेद्वक्त्रे रिपोर्यन्तं विद्यां वा लोहिताकृतिम् । तदैव दासवत्तस्य वशो भवति तद्वलात् ॥५७५॥

इति ते विजयानित्यावैभवास्तु समीरिताः ।

एतद्वन्नस्तु सुगमत्वान्न विस्तारितः । इति विजयानित्याप्रयोगविधिः ।

अतिवैभवयुक्त अन्य वत्ररूप यन्त्र को कहता हूँ। पूर्ववत् पूर्व दूरी पर चौदह-चौदह रेखा खीचे। इससे एक सौ उनहत्तर कोष्ठ बनते हैं। चारो कोनों में इक्कीस-इक्कीस कोष्ठों को इस प्रकार मिटा दे कि शेष पच्चासी कोष्ठों से वत्र का आकार बन जाय। चारो दिशाओं में एक-एक कोष्ठ में त्रिकोण बनावे। शेष ८१ कोष्ठों में से सबके बीच वाले कोष्ठ में साध्य नाम सम्पुटित मूल विद्याक्षरों को लिखे। शेष अस्सी कोष्ठों में सबसे नीचे वाले कोष्ठ से प्रारम्भ करके स्वरयुक्त अस्सी अक्षरों को प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश गति को लिखे। इसके बाहर तीन भूपुर बनावे। उनके अन्तरालों में पूर्वोक्त विधान के मातृकाओं को लिखे। इस वत्रयन्त्र से विजया विजयादायिनी होती है।

उक्त क्रम से इस यन्त्र को लिखकर विहित रूप से स्थापित करे तो इससे कथित सातों प्रकार की विजय मिलती है। पीपल के पटरे पर काला चन्दन से यन्त्र बनावे। इसे जप-आराधन से सिद्ध करके सूने घर में स्थापित करे तो उस देश में या स्थान में प्रतिदिन अचंचला श्री की वृद्धि होती है, पिशाच-राक्षस-कृत्या-वेताल वहाँ नहीं फटकते। इसे पलाश के पटरे पर यथाविधि लिखकर जहाँ-कहाँ भी स्थापित करने पर वह क्षेत्र ब्राह्मण का स्थान हो जाता है। पूर्वोक्त स्थापन से राजधानी स्थिर होती है। वट के पटरे पर यन्त्र बनाकर गाढ़ देने से नगर स्थिर होता है। गूलर के पटरे पर यन्त्र बनाकर स्थापन करने से थोड़े दिनों में ही वह स्थान दुष्टों से रहित हो जाता है। वज्र की दिशा में स्थित त्रिकोण में त्रिशूल बनावे। उन त्रिशूलों के मध्य शूल में 'रं-यं' लिखे। उसे स्थापित करके रोगी के भाल पर विद्या का जप करने से उसमें आवेशित रोग अपने आवेश का कारण, स्वाप एवं यान कर्म, ग्रह-भूत-प्रेत-पिशाचादि का आवेश नष्ट होता है। इससे सभी दासवत् साधक के वश में होते हैं। इस यन्त्र को लिखकर पूजन कर किसी राजमहल में स्थापित करे तो पृथ्वी उस राजा के कुल का त्याग नहीं करती। राजा के स्थान में हाथी-घोड़ों की वृद्धि होती है। जिस स्थान पर यह यन्त्र स्थापित रहता है, उस स्थान में दिन में पूजा करे तो रोग-कृत्या आदि भाग जाते हैं। इसके प्रभाव से रोगादि उस स्थान को देखने में भी समर्थ नहीं होते।

नये वस्त्र पर कपूर-चन्दन-केसर से यन्त्र बनावे। उसकी पूजा और जप करे। उस वस्त्र को बिछाकर उस पर रोगी को सुलावे तो दाह ज्वरार्त का ज्वर तुरन्त छूट जाता है। अन्य रोगों से छुटकारे के लिये भी इसका प्रयोग करे। राजाओं के युद्ध में इस यन्त्र को निःसान, पठन और अन्य वायों पर सिगरफ से लिखकर देवी का आवाहन-पूजन करे। युद्ध में उसे बजाने से प्रतिष्ठ की सेना उन वायों के शब्द सुनकर ही भाग छड़ी होती है। इसे स्थापित करने पर दर्शों दिशाओं में भय से उद्विग्न होकर शत्रु कभी नहीं आते। जीव शास के चलते समय इस यन्त्र को बनावे। इसकी गोली बनाकर कण्ठ में धारण करे तो इसे देखकर रोगादि सभी दिशाओं में भाग जाते हैं। उस यन्त्र से सर्वत्र विजय होती है। उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। शत्रु के मुख में विद्या का ध्यान लाल रंग का करे। ऐसा करते ही शत्रु दासवत् वश में हो जाता है।

#### सर्वमङ्गलाप्रयोगविधिः:

अथ सर्वमङ्गलाप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१६.१७) —

जपं तु नित्यशः कुर्यादग्रे तस्याः सहस्रकम्। प्राग्वक्तां साधयेद्विद्यां द्वात्रिंशल्लक्ष्मानतः: ॥१॥  
होमं दशांशतः कुर्यादत्राज्याभ्यां धृतेन वा। एवं संसिद्धविद्यस्तु कुर्यात्प्रोक्तानशेषतः: ॥२॥  
प्रयोगानन्यथा तस्य नैकल्यमयशो मृतिम्। विद्यध्यातेन तां प्रोक्तक्रमेणाराध्य भक्तिः ॥३॥  
संसाध्य पश्चात्कुर्वति मङ्गलान्मङ्गलोदितान्। प्रयोगार्था वर्णशक्तीर्वक्ष्ये देवि शृणु प्रिये ॥४॥  
सोमसूर्याग्निरूपाश्च ताश्चाश्चत्रिंशदेव ताः। अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः ॥५॥  
शशिनी चन्द्रिका कन्तिज्योत्स्मा श्रीः प्रतिरङ्गदा। पूर्णा पूर्णमृता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः ॥६॥  
एताः घोडश चन्द्रस्य कलाः कल्पद्रुमोपमाः। तपिनी तापिनी धूप्रा मरीचिज्वालिनी रुचिः ॥७॥  
सुषुमा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा। एतास्तु शक्तयः प्रोक्ता: क्रमाद् द्वादश भानुजाः ॥८॥  
भक्तारादिकारान्तवर्णोच्चारो विलोमतः। धातार्यमा च मित्रश्च वरुणो सौभगस्तथा ॥९॥  
विवस्वानिन्द्रपूषाकर्ता पर्जन्यः समनन्तरः। त्वष्टा विष्णुर्मिति प्रोक्ता द्वादशाकारः क्रमेण वै ॥१०॥  
कादिठानार्पणतनवः सर्वगाः सर्वसिद्धिदाः। धूग्रार्चिरूप्ता ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ॥११॥  
सुश्रीः सुरूपा कपिला हृव्यक्व्यवहे अपि। यादिक्षान्ताक्षरमया: शक्तयो दश कीर्तिः ॥१२॥  
तेषां दशानां नामानि वासनोक्तानि ते शिवे। कादिक्षान्ताक्षराणां तु द्वात्रिंशमिथुनानि वै ॥१३॥  
प्रोक्तक्रमेण संपूज्य विनियुक्तात् सर्वतः। स्वराणां तु स्वतन्त्रत्वात्स्वतन्त्राः शक्तयस्तथा ॥१४॥  
तासां नाथास्तस्तदृशानामपरूपाः समीरिताः। मिथुनान्यैवमुक्तानि क्रिंशदष्टक्रमेण वै ॥१५॥  
तानि संपूज्य तत्त्वेजस्त्रयात्मनि जले शिवे। प्रोक्तानि देवतारूपाण्यावाह्याभ्यर्थ्य तैर्जलैः ॥१६॥

अभिषेकात् तत्त्वेजस्त्रयं देव्यात्मता भवेत्।

अत्र स्वरात्मिना द्वाविंशतिमिथुनानि सूर्यस्याग्नेशं कलाद्वाविंशतित्वात्स्वरैर्मिलित्वा अष्टात्रिंशमिथुनानी-  
त्वर्थः। तथा—

वातादैर्ग्रसमायान्तैः षट्सप्ततियुतैः शतैः ॥१७॥

पञ्चभिर्योजयेन्नित्यां विद्यां तां सर्वमङ्गलाम् । तत्सत्स्या वनस्थाने स्वरान् षोडश योजयेत् ॥१८॥

ततः सहत्वैर्नवभिर्द्विशतेन च षोडशः रूपाणि मित्याविद्याया जायन्ते परमेश्वरि ॥१९॥  
तैर्यन्नाणि प्रयोगांशं फलानि च वदामि ते ।

**अस्यार्थः—**वातादैरकारादैर्ग्रसमायान्तैर्ग्रसो क्षकारः माया विसर्गस्तस्तस्तहितक्षकारातैः षट्सप्तत्युत्तरप-  
ञ्जशत(५७६)वर्णैः पूर्णमण्डलरूपैरित्यर्थः। ततः सर्वमङ्गलाविद्याया वनस्थाने औकारस्थाने षोडशस्वरान् योजयेत्।  
तद्वैजमेव षोडशस्वरयुक्तं कुर्यादित्यर्थः। एवं षोडशस्वरयुक्तसर्वमङ्गलाबीजेन प्रागुक्तपूर्णमण्डलवर्णान् योजयेत्।  
यथा—स्वंअस्वंआस्वांइस्वंई इत्यादि स्वंक्षः इत्यन्तम् (५७६)। एवं स्वांअस्वांआस्वांइस्वांई इत्यादि स्वंक्षः  
इत्यन्तम् (५७६)। स्विंअस्विंआस्विंइस्विंई इत्यादि स्वंक्षः इत्यन्तम् (५७६)। एवं नव सहस्राणि षोडशोत्तरद्विशतवर्णाः  
(९२१६) जायन्ते इत्यर्थः।

**सर्वमंगला नित्या प्रयोग—**तत्राज में कहा गया है कि सर्वमङ्गला नित्य के आगे नित्य एक हजार जप करे।  
पूर्ववत् इस विद्या का साधन बत्तीस लाख जप से करे। दरांशं हवन अत्र आज्य या धी से करे। इस प्रकार की सिद्धि विद्या  
से सभी प्रोक्त प्रयोगों को करे; अन्यथा निष्कलता, अयश और मरण मिलता है। इसलिये देवी का आराधना प्रोक्त क्रम से  
भक्तिसहित करे। सिद्ध होने पर मंगला से उदित मांगलिक प्रयोग करे। हे देवि! सुनो, अब वर्णशक्ति को कहता हूँ। सभी वर्ण  
सोम-सूर्याग्निरूप हैं। उन देवों की शक्तियाँ अङ्गतीस हैं; जैसे अमृता मानदा पूषा तुष्टि पुष्टि रति धृति शशिनी चन्द्रिका कान्ति  
ज्योत्स्ना श्री प्रीति अंगदा पूर्णा पूर्णामृता कामदायिनी—ये स्वरों की शक्तियाँ हैं। चन्द्रमा की सोलह कलाएँ कल्पद्रुम के समान  
हैं। तपिनी, तापिनी, धूमा, मरीचि, ज्वलिनी, रुचि, सुषुप्ता, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारणी और क्षमा—ये बारह शक्तियाँ  
सूर्य की हैं। भ से डे डे तक बारह वर्णों की ये शक्तियाँ हैं। बारह वर्णों के बारह सूर्य हैं—धाता, अर्यमा, मित्र वरुण, सौभग्य,  
विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, अर्क, पर्जन्य, त्वष्टा, विष्णु। अग्नि के दश वर्ण के से ठ तक हैं। ये सर्वांगा और सर्वांदिद्विदा हैं।  
इन दश वर्णों की शक्तियाँ इस प्रकार हैं—धूमा, अर्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वलिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, मुरुपा, कपिला,  
हृष्कव्यवहा। य से क्ष तक दश वर्णों की दश शक्तियाँ हैं। उन दशों के नाम वासना में कहा गया है। स्वरों के स्वतन्त्र होने  
से उनकी शक्तियाँ भी स्वतन्त्र हैं। उन्हीं के नामरूप के समान उनके नाथ भी हैं। अङ्गतीस मिथुन क्रम से उक्त हैं। उनकी पूजा  
करके उनके तेजत्रय को जल में ले आये। देवता रूप में उनका आवाहन पूजन करे। उनके तेजत्रय से अभिषेक करने पर साधक  
देवी के समान हो जाता है।

**वातादि ग्रास माया तक इनकी संख्या ५७६ होती है।** यहाँ पर वात यकार है। ग्रास क्षकार है। ५७६ वर्णों का पूर्ण  
मण्डल होता है। सर्वमंगला के पाँच वर्णों को उनके साथ जोड़े। उसके औकार स्थान में सोलह स्वरों को जोड़े; इसका अर्थ  
है कि सर्वमंगला बीजों को सोलह स्वरों से युक्त करे; जैसे—स्वं अं स्वं आं स्वं इं इत्यादि इससे ५७६ वर्ण होते हैं। इसी  
प्रकार स्वां अं स्वां आं स्वां इं इत्यादि भी ५७६ होते हैं। इसी प्रकार स्विं अं स्विं आः इत्यादि भी ५७६ होते हैं। इस प्रकार  
कुल ९२१६ वर्ण होते हैं। इनसे निर्मित यन्त्र, उनके प्रयोग और फलों को कहता हूँ।

तथा—

वृत्तद्वयं विधायास्य ब्रह्मः षट्कोणामालिखेत् ॥२०॥

तद्विश्वाष्टपत्राब्जं तद्विश्वात्मयं तथा। कृत्वा तेषु न्यसेद्विद्याकूटान्युक्तक्रमेण वै ॥२१॥

तेष्वाद्यां मध्यतः साध्यसमेतं विलिखेद्विः। षट्सु कोणोषु चत्वारि प्रत्येकं विलिखेत्तः ॥२२॥

अष्टच्छदेषु प्रत्येकं पञ्च पञ्च समालिखेत्। बहिर्वृत्तान्तरयुगे मातृकां माययान्विताम् ॥२३॥

विलोमामनुलोमाञ्च स्वेन सम्प्रक्षमालिखेत् । अन्तः षडन्तरालेषु पर्यायदिनसम्भवे ॥२४॥  
 नित्ये लिखेदग्रतस्तु प्रादक्षिण्येन सर्वतः । एवं यन्त्राणि जायन्ते तैः कूटरुक्तभेदतः ॥२५॥  
 शतञ्च चत्वारिंशत्स्वयं चत्वारि च ततः क्रमात् । एवमन्यानि कूटानि प्रोक्तानि विलिखेत्क्रमात् ॥२६॥  
 मध्ये नामसमेतानि तदन्यान्यभितो लिखेत् । त्रयोदशमितैर्लक्ष्मैः सप्तविंशतिसंख्यकैः ॥२७॥  
 सहस्रैश्च शतेनापि चतुर्भिरस्तानि संख्यया । यन्त्राणि तेन जायन्ते तैश्चासौ सर्वमङ्गला ॥२८॥  
 एवमासां तु नित्यानां यन्त्राणि स्युः पृथक्पृथक् । तस्मादाभिरसाध्यानि न कदाचिच्च कुत्रचित् ॥२९॥  
 विद्यन्ते तेषु यत्किञ्चिद्दृष्ट्ये कोऽशेषतो वदेत् । नाथात्मकानि येन स्युस्तेन तानि नवक्रमैः ॥३०॥  
 भित्त्वा षोडशथा देवि विदध्याद्विनियोगकम् । विशालमध्यविच्यासं विद्याय नवकोष्ठकम् ॥३१॥  
 प्रागादिमध्यपर्यन्तं प्रादक्षिण्यक्रमालिखेत् । नवानि नवसु प्रज्ञे तेषु ऋषाणि चालिखेत् ॥३२॥  
 सप्तम्या साध्यसंयुक्तं नाथान् देवीश्च तत्क्रमात् । यद्यद्वि वाञ्छितं कर्म तत्तत्तेषु विलिख्य वै ॥३३॥  
 पीठे वा भूतले वापि पूजयेत्रोक्तवासरे । ततः प्राप्ते वाञ्छितार्थे स्वात्मन्दुद्वास्य देवताः ॥३४॥  
 चक्रं प्रक्षाल्य तत्तोयं केदारादिषु निक्षिपेत् । एवमन्यानि यन्त्राणि प्रोक्तानि क्रमतः शिवे ॥३५॥  
 विनियुक्त्यादभीष्टेषु कार्येषु क्रमतः शिवे । परसंख्यासमेतानि तेषु तेष्वप्ययं विधिः ॥३६॥  
 सर्वतः सौम्यकर्माणि सिद्ध्यन्त्येवानया ध्रुवम् । वश्येषु ज्ञानसंप्राप्तौ सर्वप्रत्यूहशान्तये ॥३७॥  
 लक्ष्मीप्राप्तौ तथारोग्यसिद्धौ रोगार्तिशान्तिषु । विजयाय समस्तापत्तारणायाभिवृद्धये ॥३८॥  
 पुत्राप्त्यै सर्वरक्षायै पूजयेत्तेषु तत्क्रमात् । गजाश्वगोखरोष्ट्राजमहिषीणां विवृद्धये ॥३९॥  
 तेषां रोगादिपीडामु तच्छान्त्ये च यथाक्रमात् । निर्माय नवयन्त्राणि तत्र तत्रार्चीर्यच्छिवाम् ॥४०॥  
 तेषु तेषुक्रकार्येषु तत्संप्राप्तिहेतवे । नव प्राकारयुक्तानि षोडश प्रथमादिषु ॥४१॥  
 तिथिषु प्रोक्तरूपाणि तत्र तां सर्वमङ्गलाम् । पूजयेद्वाञ्छितावाप्त्यै प्रथमे सर्वदा यजेत् ॥४२॥  
 एवमेषा महासिद्धिकरी पूजाजपादिना ।

पहले दो वृत्त बनावे । उसके बाहर षट्कोण बनावे । उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे । उसके बाहर तीन वृत्त बनावे । उनमें विहित क्रम से विद्याकूटों को लिखें । सबके मध्य में साध्य नाम के सहित विद्या लिखें । उसके बाहर षट्कोण के कोणों में चार-चार अक्षर लिखें । अष्टदल पद्म में प्रत्येक में पाँच-पाँच अक्षर लिखें । सबसे बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मायान्वित मातृकाओं को विलोम-अनुलोम क्रम से लिखें । षट्कोणों के अन्तराल में पर्यायनित्या और दिननित्या के छः अक्षरों को अपने आगे से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से लिखें । इसी प्रकार मध्य कूट को स्थापित करके द्वितीय यन्त्र में अग्रिम कूटों को लिखें । इसी प्रकार तृतीय में अग्रिम कूटों को लिखें । इस प्रकार एक-एक कूट से एक सौ चौवालीस-एक सौ चौवालीस यन्त्र बनते हैं । इस क्रम से यन्त्रों की संख्या १३२७१०४ होती है । इसी प्रकार अन्य नित्याओं के यन्त्र भी होते हैं । यन्त्रों का विनियोग नाथात्मक होता है ।

एक विशाल नव कोष्ठात्मक चक्र बनावे । प्रत्येक कोष्ठ में पाँच-पाँच रेखा खींचने से सोलह कोष्ठ होते हैं । प्रत्येक कोष्ठ में एक-एक यन्त्र लिखें । इस प्रकार एक सौ चौवालीस यन्त्र बनते हैं । नव कोष्ठों में तीन आवृत्ति में सत्ताइस नक्षत्रों को लिखें । नवों में नव नाथों को लिखें । सप्तम्यन्त साध्य नाम के बाद वाञ्छित कर्म और देवि लिखें । तदनन्तर विहित क्रम से पूजादि करने पर कथित फल प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार अन्य यन्त्रों का भी यही क्रम कहा गया है । पीठे में या भूमि में विहित वासर में पूजा करे । तब वाञ्छित की प्राप्ति के लिये अपनी आत्मा में देवता का उद्घासन करे । चक्र को धोकर उस जल को केदारानाथ अदि तीर्थों में डाल दे । इसी प्रकार अन्य यन्त्रों का भी क्रम कहा गया है । अपीष कार्यों के लिये विनियोग परसंख्या समेत विधिवत् करे । इससे सर्वत्र सौम्य कर्म सिद्ध होते हैं । वश्य, ज्ञानप्राप्ति, प्रत्यूह-शान्ति, लक्ष्मीप्राप्ति, आरोग्यसिद्धि, रोगार्ति शान्ति, युद्ध में विजय, सभी तारों से मुक्ति, पुत्रप्राप्ति एवं सर्वरक्षा के लिये क्रम से पूजन करे । हाथी, धोड़, गाय,

गदहा, ऊँट, भैस की वृद्धि के लिये एवं उनके गोपीड़ा की शान्ति के लिये यथाक्रम से नव यन्त्र बनाकर शिवा का अर्चन करे। तत्त् कार्यों में फल प्राप्ति के लिये नव प्राकारयुक्त सोलह यन्त्रों में विहित प्रथमादि तिथियों में सर्वमंगला का पूजन करे। इससे वर्णित प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इसकी पूजा-जपादि महती सिद्धियों को देने वाली है।

### लघुमन्त्रपूजाविधानम्

लघुमन्त्रक्रियामासां पूजां सर्वार्थसिद्धिदाम् ॥४३॥

पूर्णामनतिविस्तारां मङ्गलां ब्रूहि मे शिव। देवविषिद्धगार्थवर्यज्ञदेवाङ्गनाश्रयाम् ॥४४॥  
 पूजां वक्ष्यामि देवेशि गुहां शृणु मनोहराम्। विद्यया कुलसुन्दर्या कराङ्गन्यासपूर्वकम् ॥४५॥  
 अर्चय तया विद्यायाथ पीठे चक्रं विद्याय तत्। चन्दनागुरुकूर्परोचनादरदादिषु ॥४६॥  
 एकेन तत्र ताः सम्यगुकूर्सप्तमथार्चयेत्। रत्नादिषुक्तेष्वालिख्य प्रतिष्ठाप्यात्र पूजयेत् ॥४७॥  
 वृत्तस्यायामविस्तारद्वये त्वेकतुरीयतः। वृत्ते विद्याय चिह्नानि तेषु सूत्राणि पातयेत् ॥४८॥  
 त्रयमन्तरतो मुकुत्वा तेन द्वादशकोणकम्। तेषां मर्मसु मध्ये च विद्याद्वृत्तयुग्मकम् ॥४९॥  
 मध्यवृत्तस्य मध्ये तु योनिं कुर्यात्समाप्तकम्। प्रावर्त्तिस्त्रोऽर्चयेत्रित्यास्तत्कोणेषु प्रदक्षिणम् ॥५०॥  
 अन्या अन्येषु कोणेषु पूजयेद् द्वादश क्रमात्। अग्रात्वदक्षिणं पश्चाद्वृत्तिं दध्याद्यथाविधि ॥५१॥  
 सप्ताक्षर्या केवलया केवलां ललितां जपेत्। नित्यानां ललिताद्यानां षोडशानां च नामभिः ॥५२॥  
 नित्यासप्ताक्षरीभिः स्युर्विद्याः पूजासु सर्वदा। ताभिः षोडशविद्याभिर्नित्यास्ताः षोडशार्चयेत् ॥५३॥  
 तद्विद्याक्षरसंख्यास्तु शृणु वक्ष्ये यथाक्रमम्। प्रथमायाश्च सप्तम्या विद्या स्यात्प्रोडशाक्षरी ॥५४॥  
 द्वितीयायाश्चतुर्थास्तु चतुर्दशभिरक्षरैः। तृतीयायाश्च षष्ठ्याक्षरं दशम्या दशपञ्चकम् ॥५५॥  
 द्वादशयाः सचतुर्दशयाः पञ्चदशयाः क्रमेण वै। पञ्चम्याश्च नवम्याश्च त्रयोदशयास्त्रयोदश ॥५६॥  
 एकादशयास्तु साष्टम्याः षोडशया द्वादशोदिताः। अस्मिन्नेवार्चयेच्चक्रे चतुर्विंशतिभिस्तथा ॥५७॥  
 सविंशतिशता विद्या जपेत्तास्ताश्च सिद्धये। अन्या विंशतिसप्तशतं तैर्यन्नेष्वेव पूजनम् ॥५८॥  
 आसां पूजाजपाद्येषु यन्त्रेषु च समीरितम्। एतल्लयुप्रकारं तु यन्त्रं सर्वार्थदायकम् ॥५९॥  
 तेन तत्रोक्तमर्खिलं साधयेद्वृत्तस्त्रिपणा। इति।

अत्र ‘वृत्तद्वयं विद्याय’ इत्यादिश्लोकषट्कस्यायमर्थः—प्रथमतो वृत्तद्वयं विद्याय तद्वहिः षट्कोणं कृत्वा तद्वहिरष्टदलपद्मं विरच्य तद्वहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा मध्ये साध्यार्भमाद्यकूटं विलिख्य, षट्कोणे प्रतिकोणं चत्वारि चत्वारि कूटानि विलिख्याष्टपत्रेषु प्रतिपत्रं पञ्च कूटानि विलिख्य, बहिर्वृत्तान्तरालद्वयस्याभ्यन्तरालते विसर्गसहितां प्रतिलोममातृकां विलिख्य, बाह्यान्तराले बिन्दुयुक्तामनुलोममातृकां विलिख्यान्तः षट्कोणान्तरालेषु पर्यायनित्यातद्विननित्ययोः षड्क्षराणि स्वाग्रात् प्रादक्षिण्येन विलिखेदिति। एवं मध्यकूटं तथैव स्थापयित्वा द्वितीयन्त्रेऽग्रिमकूटानि विलिखेदेवं तृतीये तदग्रिमकूटानि विलिखेत्। एवमेकार्चयैकस्य कूटस्य चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतं (१४४) यन्त्राणि जायन्ते। एवं क्रमेण सर्वाणि यन्त्राणि त्रयोदशलक्षाणि सप्तविंशतिसहस्राणि चतुरुत्तरशतसंख्यानि (१३२७१०४) भवन्ति। एवमन्यासां नित्यानां यन्त्राणि भवन्तीत्यर्थः। यन्त्राणां विनियोगानाह—‘नाथात्मकानि’ इति। अस्यायमर्थः—विशालायामं नवकोष्ठात्मकं चक्रं विलिख्यैकक्षिम् कोष्ठे सूत्रत्रयनिपातनात् षोडश कोष्ठानि विलिख्यैकक्षिम् कोष्ठे एकमेकं यन्त्रं विलिखेत्। एवं चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतं (१४४) यन्त्राणि भवन्ति। नवकोष्ठेषु त्रिरावृत्या सप्तविंशतिनक्षत्राणि विलिख्य नवसु नवनाथान् विलिख्य, सप्तम्यन्तं साध्यनाम ‘वाज्ञितं कर्म देहि’ इति विलिख्य प्रोक्तक्रमेण पूजादिकं कुर्यात्, प्रोक्तफलानि भवन्तीत्यर्थः। एवमन्येषां यन्त्राणामपि प्रोक्त एव क्रमो ज्ञेयः। ‘लघुमन्त्रक्रिया’मित्यादिश्लोकैर्लघुपूजोक्ता। तत्र चतुर्विंशतिनक्षत्राणि विलिख्य, मध्ये त्र्यस्त्रं विद्याय तन्मध्ये ललितात्मस्त्रे तिसः

चतुर्दशस्वरेषु चतुर्दशनित्या: पूज्या इत्यर्थः। तत्तद्विद्याया उच्चारणाशक्तौ नाममत्रैः पूजा कार्येत्याह ‘प्रथमायाश्च’ इत्यादिश्लोकैः। ते मन्त्रास्तु तत्त्संख्यां ज्ञात्वोह्याः। ‘अस्मिन्नेवार्द्धयेव्यक्ते’ इत्यादिश्लोकेन चतुश्छत्वारिंशदुत्तरशतकूटानि प्रागुक्तान्यप्यस्मिन्नेव चक्रे जपेदित्यर्थः। अन्यानि नित्याप्रकरणे प्रोक्तानि विंशत्युत्तरसप्तशत (७२०) कूटानि तत्रोक्तयत्रेष्वेव पूजयेदित्यर्थः।

इस सर्वमङ्गला के लघु मन्त्र की पूजा सर्वार्थसिद्धिदायिनी है। पार्वती ने कहा कि पूर्ण होती हुई भी जो अधिक विस्तृत न हो, ऐसी मंगला की पूजा को मुझसे कहिये; व्यापेकि यह देवता, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष एवं देवांगनाओं का आश्रय है। शंकर ने कहा है कि हे देवि! मैं गुह्य एवं मनोहर पूजा कहता हूँ। कुलसुन्दरी विद्या से करन्यास और अंगन्यास करे। अर्थ स्थापित करे। पीठ पर चक्र स्थापित करे। चन्दन अगर कपूर गोरोचन और सिंगरक आदि में से किसी एक से उस चक्र का अर्चन करे। एक ही यन्त्र में उसका अर्चन सम्यक् उक्त रूप से करे। रत्नादि में भी उसे अंकित कराकर प्रतिष्ठा करके पूजा करे। लघु मन्त्र क्रिया में चतुर्दशार बनाकर मध्य में त्रिकोण बनावे। त्रिकोण के मध्य में ललिता की पूजा करे। चतुर्दशार में चौदह नित्याओं का पूजन करे। उस विद्या के उच्चारण में अशक्त होने पर नाम-मन्त्रादि से पूजा करे। प्रथम एवं सप्तर्ती विद्या षोडशक्षरी है। दूसरी और चौथी विद्या चतुर्दशाक्षरी है। तीसरी, छठी और दशबीमी विद्या में पन्द्रह अक्षर हैं। बारहवीं और चौदहवीं विद्या पन्द्रह अक्षरों की है। पाँचवीं और नवीं विद्या के तेरह-तेरह अक्षर हैं। ग्यारहवीं और आठवीं विद्या में सोलह और बारह अक्षर हैं। इसमें चौबीस का भी पूजन करे। सिद्धि के लिये विद्या का १२० जप करे। दूसरों की सात सौ बीस चक्रों में करे। इसके जप में यन्त्र का स्मरण करे। यह लघु प्रकार का यन्त्र सर्वार्थदायक है। इन सबों को वज्रयन्त्र से सिद्ध करे।

**षोडशनित्यानामविद्याभेदादिभिः कोष्ठरूपवत्रयन्त्रनिर्माणम्**

तथा—

**तद्वच्चं द्विविधं प्रोक्तं कोष्ठकोणात्मभेदतः ॥६०॥**

**कोणात्मवत्रनिर्माणप्रयोगाः परतः शिवे । तयोस्तु कोष्ठरूपं तु वत्रं वक्ष्ये यथाविधि ॥६१॥**

**यत्साधकेमितावाप्त्यै सुराड्ग्रिपसमो भवेत् । प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष्य चतुर्विशतिसूत्रतः ॥६२॥**

**नवविंशतिभिः पञ्चशतं कोष्ठानि तेषु वै । कोणेषु मार्जयेत्पद्मभिः षष्ठिकोष्ठानि पूर्ववत् ॥६३॥**

**शिष्टेषु वत्रकोष्ठानि पञ्चशष्ठ्या शतद्वयम् । तेषु प्रागवत्रिकोणानि चतुर्दक्षु चतुष्टयैः ॥६४॥**

**कोष्ठेर्विधायादो मध्ये बाह्यारम्भात्प्रदक्षिणम् । प्रवेशगत्या विलिखेच्चित्रादिललितान्तकम् ॥६५॥**

**मध्येऽवशिष्टेष्वन्यार्णचतुर्विशतिमालिखेत् । ललितार्णचतुर्भेदजनितां नामशक्तियुक् ॥६६॥**

**ललितां साध्यगर्भा तु विलिखेन्मध्यकोणतः । एवं यत्रं समालिख्य शिलालोहत्रयादिषु ॥६७॥**

**संस्थाप्य कुत्रचित्स्थाने पूजयेद्वाज्ञितापातये ।**

कोष्ठ कोणात्म भेद से वज्रयन्त्र दो प्रकार के हैं। कोणात्म वज्र निर्माण प्रयोग यन्त्रपटल में कथित है। कोष्ठरूप वज्र को यथाविधि कहता हूँ। इसके साधन से साधक इन्द्र के समान हो जाता है। पूर्ववत् पूर्व में पश्चिम, दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर चौबीस-चौबीस रेखा खींचकर पाँच सौ उन्तीस कोष्ठ बनावे। चारों कोनों से छिआसठ-छिआसठ कोष्ठों को मिटाने से २६५ कोष्ठ शेष बचते हैं। चारों दिशाओं में चार कोष्ठों से त्रिकोण बनावे। मध्य कोष्ठ के नीचे बाहर से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश गति से चिवा से ललिता तक लिखे। मध्य में अवशिष्ट चौबीस कोष्ठों में अन्य वर्ण लिखे। ललिता अक्षर के चार भेदजनित नाश शक्ति युक्त ललिता साध्य गर्भ मध्य कोण से लिखे। इस प्रकार शिला या लौहत्रय पर यन्त्र लिखकर जहाँ-कहीं भी स्थापित करके वांछित प्राप्ति के लिये पूजा करे।

**यन्त्रप्रयोगफलानि**

**यस्मिन् देशे वज्रयन्त्रं स्थापितं योजनावधि ॥६८॥**

मङ्गलान्येव जायन्ते नामङ्गलकथा क्वचित् । पूजाचक्रं च तासां तु नामानि प्रतिकोणकम् ॥६९॥  
 विलिख्य मध्ये ललितां साध्यगर्भा समालिखेत् । बहिर्वृत्ते मातृकां च तच्चक्रं स्थापयेद्द्विः ॥७०॥  
 तेनापि पूर्ववत्त्रोक्तं देशे न स्थादभव्यकम् । तस्मिन् सर्वत्र संलिख्य तां विद्यां सर्वमङ्गलाम् ॥७१॥  
 मध्ये साध्याक्षरोपेतां स्थापयेत्तत्कलापये । प्रागुक्ते वत्रयन्ते वा द्वादशारेऽपि वा शिवे ॥७२॥  
 संस्थाप्य कुम्भं तद्वर्णं भूरुहक्वाथपूरितम् । विद्यया विधिवज्जन्तैरभिष्ठेज्जलैः शुभैः ॥७३॥  
 जन्मक्षेषु विशेषेण समस्तामयशान्तये । पूर्णसंपत्समृद्धै च ग्रहरोगादिशान्तये ॥७४॥  
 तथान्यमपि देवेशि प्रयोगं सर्वपावनम् । दारिद्र्घवनदावाग्निं पापाब्धिवडवानलम् ॥७५॥  
 सङ्कोचध्वान्तमार्तण्डं सन्तोषाब्धिविधूदयम् । प्रागुक्ताक्षरसंभिन्नां विद्यां नित्यां समाहितः ॥७६॥  
 मौनी जपेत्प्रसूनैश्च पूजयेत्सौरभान्वितैः । तर्पयेत्सलिलैः सिन्धुगामिनीसम्भवैः शिवे ॥७७॥  
 सौरभाब्ध्यैस्तिलैः शुभ्रैस्तण्डुलैर्विधिवद्भुनेत् । संस्थाप्य कुम्भं प्रोक्ताम्बुपूर्णं संपूज्यं भक्तिः ॥७८॥  
 प्रोक्ताम्बु अक्षरोषधिक्वाथम्।

समस्तं तत् क्रमादेकवारं तैरभिषेकतः । घोराभिचारकृत्यादिदुःखेभ्यो मुच्यते क्षणात् ॥७९॥  
 भूतप्रेतपिशाचापस्माराक्षसयक्षकाः । कुमारा गुह्यका वीरा डाकिन्यश्वातिदारुणाः ॥८०॥  
 विमुच्य तत्क्षणाद्वीताः प्रयान्त्येवान्यतः क्षणात् । समुद्रगासरित्तोये ताः समावर्तयेत्स्थितः ॥८१॥  
 कण्ठमात्रे मण्डलात्तु प्राग्नम्नायैर्विमुच्यते । तथैव धृतहोमेन तर्पणाच्चाब्धिवारिभिः ॥८२॥  
 एवं सकलकल्याणा संप्रोक्ता सर्वमङ्गला । नामानुरूपं भजतां कृपया फलदानतः ॥८३॥

क्षिप्रप्रसादतो नित्यं हर्षोत्पादनतोऽपि च ।

इति सर्वमङ्गलानित्याप्रयोगविधिः ।

जिस देश में वत्रयन्त स्थापित रहता है, उस स्थान से योजन भर विस्तृत क्षेत्र में मांगलिक कार्य होते रहते हैं; वहाँ कुछ भी अमंगल नहीं होता। पूजाचक्र में उनके नाम प्रतिकोण लिखकर मध्य में ललिता साध्य गर्भ लिखे। बाहर वृत्त में मातृका लिखकर भूमि पर स्थापित करे। इनसे भी पूर्ववत् देश में अमंगल नहीं होता। उसमें सर्वत्र सर्वमंगला विद्या को लिखे। मध्य में साध्य नामाक्षर लिखकर स्थापित करने से यह फल प्राप्त होता है। पूर्वोक्त वत्रयन्त के द्वादशार में कुम्भ स्थापित करके उहें साध्य नामाक्षर वर्ण की लकड़ियों के क्वाथ से भरे। विधिवत् विद्या जप से मन्त्रित करके उससे अभिषेक करे। जन्मनक्षत्र में विशेष कर ऐसा करने से ताप की शान्ति होती है। पूर्ण सम्पत्ति समृद्धि मिलती है। ग्रह-रोगादि शान्त होते हैं। इसी प्रकार के अन्य भी सर्वपावन प्रयोग हैं। इनके नाम दारिद्र्घवनदावाग्निं, पापाब्धि-वडवानल, संकोचध्वान्तमार्तण्ड, सन्तोषाब्धिविधूदय हैं। पूर्वोक्त अक्षरसंभिन्न नित्या विद्या का सावधानीपूर्वक मौनी होकर जप करे। सुगम्भित पुष्टों से पूजा करे। सिन्धुगामिनी नदी-जल से तर्पण करे। सुरभित तिल एवं शुभ्र चावल से विधिवत् हवन करे। अक्षरोषधि क्वाथ से पूर्ण कुम्भ को स्थापित कर पूजन करे। क्रम से सबों से एक बार अभिषेक करने से व्यक्ति पीडित घोर अभिचार कृत्यादि दुःख से तत्काल ही छुटकारा पा जाता है। भूत-प्रेत-पिशाच-अपस्मार-राक्षस-यक्ष-कुमार-गुह्यक-वीर-अति दारुण डाकिनियाँ उसे छोड़कर क्षण भर में दूर भाग जाती हैं। समुद्रगामिनी नदी जल में कण्ठ तक स्थित होकर चालीस दिनों तक समावर्तन करने से साधक पूर्व जन्म के पापों से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार धी के हवन एवं समुद्रजल से तर्पण करने से भी सभी कल्याण होते हैं। सर्वमंगला नामानुरूप अपने भक्तों को फल देती है। वह जल्दी प्रसन्न होती है और नित्य हर्ष उत्पन्न करती है।

ज्वालामालिनीनित्याप्रयोगविधिः

अथ ज्वालामालिनीनित्यायाः प्रयोगविधिः । तत्त्वराजे (२०.२४) —

अष्टलक्षं हविष्याशी जपेद्विद्यां जितेन्द्रियः । तद्वशांशं तर्पणं च होमं कुर्याच्च गोघृतैः ॥१॥

एवं संसिद्धमन्त्रस्तु कुर्याद्यन्नापाण्यनुक्रमात् । पूजाचके बहिर्भूतचतुरसे त्वखण्डते ॥२॥  
विधाय तत्र विलिखेदक्षराणि यथाविधि । सर्वमध्ये तारगर्भे शक्तिमाख्यासमन्विताम् ॥३॥  
त्रयं च त्रिषु कोणेषु षट्सु षट्कमथाष्टसु । अष्टकं बहिरप्येवं बाह्ये दिक्षु नव क्रमात् ॥४॥  
एवं मूलाक्षरैः कृत्वा यत्रं तेनैव साधयेत् । समस्तं वाञ्छितं पूजाधारणस्थापनैः शिवे ॥५॥

अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः—तत्र मध्ये त्रिकोणं तद्विहरणात्रं तद्विहरष्टदलकमलं तद्विह-  
द्वाररहितं चतुरब्दमिति चक्रं निराय, मध्ये साध्याख्यागर्भ मायाबीजं प्रणवोदरे विलिख्य त्रिषु कोणेषु त्रीण्यक्षराणि  
षट्सु कोणेषु षड्क्षराणि चाष्टकोणेष्वाक्षराणि अष्टदलेष्वाक्षराणि चतुरसे प्रागादिदिक्षवृष्टावक्षराणि मूलमन्त्रस्य  
लिखेत् । एतद्यन्तमुक्तफलदं भवति ।

ज्वालामालिनी नित्या प्रयोग—तन्त्रराज में कहा गया है कि जितेन्द्रिय और हविष्याशी रहकर विद्या का जप आठ  
लाख करे । उसका दशांश तर्पण और गोदृत से हवन करे । इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से क्रमपूर्वक यन्त्र बनावे । पहले त्रिकोण  
बनावे, उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर अष्टकोण और उसके बाहर अष्टपत्र उसके बाहर द्वाररहित चतुरस बनावे । मूल मन्त्र  
के ६३ अक्षरों से पहला यन्त्र बनावे । 'ॐ' के गर्भ में 'हं' और हीं के गर्भ में साध्य नाम लिखे । तीनों कोनों में तीन अक्षर,  
छः कोनों में छः अक्षर, अष्टकोण में आठ अक्षर, अष्टदल में आठ अक्षर, चतुरस में दिशा-विदिशा में नव-नव अक्षर मूल  
मन्त्र का लिखे । इस यन्त्र का पूजन और तदनन्तर धारण करने से समस्त अभीष्ट की प्राप्ति होती है ।

### दशयन्त्रनिर्माणम्

तथा—

अकारादिक्षकारान्तवर्णेषु स्वरयोगिषु । चतुष्टयं प्रोक्तयन्तं वर्णस्तस्थानतो लिखेत् ॥६॥  
शिष्टमेकं लिखेन्मध्ये साध्याक्षरसमन्वितम् । एवं यन्त्राणि जायन्ते दश तेषामनुक्रमात् ॥७॥

शेष नव यन्त्र 'क' से 'क्ष' तक के ३६ वर्णों को १६ स्वरों से विकृत करके कुछ ५७६ वर्ण बनावे । इनमें से अ  
से ग तक के चौंसठ वर्णों को प्रथम यन्त्र के समान भरकर दूसरा, घ से छ तक स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को दूसरे यन्त्र के  
समान भरकर तीसरा, ज से ट तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को तीसरे यन्त्र के समान भरकर चौथा, ठ से ण तक के  
स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर पाँचवाँ यन्त्र बनावे । इसी प्रकार त से ध तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर छठा  
यन्त्र बनावे । न से ब तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर सातवाँ यन्त्र बनावे । भ से र तक के स्वर विकृत चौंसठ  
वर्णों को भरकर आठवाँ यन्त्र बनावे । ल से ष तक के स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर नवाँ यन्त्र बनावे । स ह ळ क्ष के  
स्वरविकृत चौंसठ वर्णों को भरकर दसवाँ यन्त्र बनावे ।

### दशयन्त्रप्रयोगविशेषः

विनियोगात्फलावाप्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु प्रिये । येरिष्मखितं प्राप्नोत्यलात्साधको ध्रुवम् ॥८॥  
द्वितीयादीनि यन्त्राणि मातृकार्णयुतानि वै । क्रमान्त्रवग्रहाणां स्युसत्तद्वारेषु तद्विशि ॥९॥  
तेषु देव्यर्चनात्प्रीतास्त्वनिष्टं ते न कुर्वते । राहुकेतु स्थितौ यत्र तद्राश्यधिपवारके ॥१०॥  
षट्स्वाषान्तरालेषु ग्रहनाम द्वितीयया । विभक्त्या भाजने सम्यक्ग्रीणयामीति संलिखेत् ॥११॥  
आद्ये तु यन्त्रे संलिख्य प्रोक्तक्रममथार्दयेत् । सर्वेष्वपि च वारेषु सर्वेषां प्रीतिसिद्धये ॥१२॥  
अनिष्टशान्त्यै नियतमर्चयेत्तान् ग्रहान् प्रिये । एवं यन्त्रेषु दशसु पूजिता नित्यया सह ॥१३॥  
प्रीताः कूरा अपि तथा कूरस्था अपि सर्वदा । सौम्याः सौम्यगतानानु फलान्तेव वितन्वते ॥१४॥  
दशस्वपि च यन्त्रेषु दरदैर्गैरकैस्तु वा । लिखितेष्वचिंतेष्वेवं कुमारं कन्यकान्तु वा ॥१५॥  
सुशुभावयक्षं मुग्धां स्नातां धौताम्बरां शुभाम् । तथाविधं कुमारं वा संस्थाप्याभ्यर्थं विद्यया ॥१६॥

सृष्टशीर्षो जपेद्विद्यां शतवारं तथार्थयेत् । प्रसूनैरुरुणैः शुभ्रैः सौरभाद्यैरथापि वा ॥१७॥  
 दद्याद् गुगुलधूपञ्च यावत्कार्याविसानकम् । ततो देव्या समाविष्टे तस्मिन् सम्पूज्य भक्तिः ॥१८॥  
 ततस्तामुपचारैस्तेः प्रागुक्तैर्विद्यया वशी । प्रजपेतां ततः पृच्छेदभीष्टं कथयेच्च सा ॥१९॥  
 भूतं भवद्विष्यञ्च यदन्यन्यनसि स्थितम् । जपान्तराण्यतीतानि सर्वं सम्पूजिता वदेत् ॥२०॥  
 ततस्तां प्राग्वद्भ्यर्थं स्वामन्युद्वास्य तां जपेत् । सहस्रवारं स्थिराधीः पूर्णात्मा विचरेत्सुखी ॥२१॥

अब इन यन्त्रों के विनियोगों के फलों को कहता हूँ। यत्नपूर्वक इनकी साधना करने से अनायास ही सभी वाञ्छये पूरी होती हैं। दूसरे से दशवें यन्त्रों में युक्त मातृका वर्ण क्रमशः नवग्रहों के हैं। इसलिये उनके दिनों में उनकी दिशा में देवी की पूजा से उन्हें प्रसन्नता होती है; अन्यथा वे अनिष्ट करते हैं। जहाँ राहु-केतु स्थित हैं, उस राशि के अधिपति के दिन में पूजा करे। षष्ठि के अन्तरालों में ग्रह नाम में द्वितीया विभक्ति लगाकर 'सम्यक् प्रीणयामि' आद्य यन्त्र में लिखे, तदनन्तर विहित क्रम से अर्चन करे। सभी के बारों में सभी की प्रीति के लिये अर्चन करे। अनिष्ट-शान्ति के लिये ग्रहों का नियत अर्चन करे। इस प्रकार मन्त्रों से दशों यन्त्रों में पूजन नित्या के सहित करे। इससे कूर ग्रह प्रसन्न होते हैं और कूर स्थान में स्थित ग्रह भी प्रसन्न होते हैं तथा सौम्य ग्रह सौम्य भाव में शुभ फल देते हैं।

दशों यन्त्रों को सिंगरफ या गेरु से लिखकर अर्चन में सभी अवयवों से युक्त सुन्दरी, मुआधा, स्नाता शुभ्र वस्त्र पहनी हुई कुमारी या कुमार को बैठाकर विद्या से अर्चन करे। उसके शिर पर हाथ रखकर विद्या का जप सौं बार करे और पूजा लाल शुभ्र सुगच्छित फूलों से करे। कार्य की समाप्ति तक गुगुल का धूप जलावे। तब उसमें देवी आविष्ट होती है। उसकी पूजा भक्तिपूर्वक उपचारों से करे। तब पूवोक्त विद्या वश में होती है। विद्या का जप करे और उससे अभीष्ट के बारे में पूछे तो वह अभीष्ट कथन करती है। भूत वर्तमान भविष्य के बारे में जो भी प्रश्न करे या विगत जन्मान्तरों के बारे में पूछे तो वह सब कुछ बतलाती है। तब उसे अपने हृदय में उद्वासित करके जप करे। जप एक हजार स्थिर बुद्धि से करने के बाद पूर्णात्मा होकर सुखपूर्वक विचरण करे।

### रोगावेशार्थं यन्त्रनिर्माणम्

तथा षट्कोणकोणेषु मध्ये चालिख्य दाहकम् । तत्र संस्थाप्य गदिनमध्यच्छेदीरितक्रमात् ॥२२॥  
 आवेश्य रोगिणं रोगं पृच्छेत्तत्काराणं शमम् । प्रोक्त्वा तत्सकलनन्तस्य निर्देशादापयाति च ॥२३॥  
 प्रथमं स्त्रीकपालस्य मध्यस्थं तापयेत्रिशि । जपन् विद्यां स्मरन् साध्यां सद्य आकृष्यतेऽथ सा ॥२४॥  
 भीतिलज्जाभिमानादिरहिता वेपिताङ्गका । निरस्तेतरसद्वावा भम्थार्ताभियाति सा ॥२५॥  
 तद्यन्तं पुंस्कपालस्थं स्थापयेत्प्रजपेतथा । राजानो राजपुत्रा वा तथान्ये वापि केचन ॥२६॥  
 विवेकविधुरा मूढास्त्यक्तजातिकुलक्रमाः । वशागा दासवद्दूमौ तिष्ठन्त्यामरणाद् ध्रुवम् ॥२७॥  
 सर्वासामपि नित्यानामुपदेशेषु तं गुरुः । तत्र चक्रस्य मध्यस्थं चेष्टविद्याजपान्वितम् ॥२८॥  
 वह्निज्वालापरीताङ्गं भावयन्निन्द्रियाण्यपि । मनःषष्ठानि वाकर्षेन्मनसा प्राग्वदात्मनि ॥२९॥  
 एव कृते क्षणादेवं विसंज्ञो निपत्तेद्द्विवि । ततस्तमुत्थाप्य मुखे प्रक्षिप्ताम्बु वदेत्ततः ॥३०॥  
 एष वेदस्त्रिधा प्रोक्तः सद्यः प्रत्ययकारकः । शाक्तशास्त्रभवेधाद्यां द्वयोरात्मैक्ययामलात् ॥३१॥  
 शिष्यस्य मूलाधारादिस्थानेषु ब्रह्मरंथके । स्मर दाहार्णकान् सप्तेत्युक्त्वा प्राग्वदुदीक्षणात् ॥३२॥  
 विदध्याच्छाक्तवेदं तु देशिकः सिद्धविद्यया । शास्त्रवेदं तु शृणु प्राज्ञे वेदमद्वृतविग्रहम् ॥३३॥  
 तूष्णीं संस्थापितं शिष्यं तत्तच्चके तदात्मना । स्वयं प्रविश्य तदेहमेकीभूत्वा पुनः स्वके ॥३४॥  
 समागत्यात्मरूपेण तदात्मानं विभाव्य वै । कृतन्यासजपार्चस्तु तत्तुं वह्निना दहेत् ॥३५॥  
 स्यादेष शास्त्रवो वेदः प्रोक्तः प्रागेव यामलः । इति वेदत्रयं प्रोक्तं भावनासिद्धिसूचकम् ॥३६॥  
 यामले तु विशेषोऽयं विद्धः पश्चाद्वृतोः श्रुतम् । ज्ञानमन्यच्च सकलं संक्रमेत्तेन तत्समः ॥३७॥

षटकोण के मध्य में 'रं' लिखे। उस पर रोगी को स्थापित कर पूर्वोक्त क्रम से पूजा करे। इससे रोगी में देवी का आवेश होता है। उससे रोग का कारण और उसके शमन का उपाय पूछे। वह सब कुछ बतलाती है और तदनुसार रोग का नाश होता है। पहले यन्त्र को खीं-कपाल में बनाकर रात में तपावे। विद्या का जप करे। साध्या का स्मरण करे तो वह तुरन्त आकर्षित होती है। भय, लज्जा, अभिमान छोड़कर कौपते अंगों से अपने स्वभाव को छोड़कर कामार्त होकर आती है। इस यन्त्र को पुरुष की खोपड़ी में स्थापित करे और मन्त्र का जप करे। इससे राजा या राजकुमार या अन्य कोई भी विवेकीहन होकर मृढ़मति से जाति-कुल के क्रम को छोड़कर दासवत् वश में होकर भूमि पर बैठ जात है और आजीवन दास बने रहते हैं।

जो गुरु सभी नित्याओं का उपरेश देता है, उसके चक्र मध्य में स्थित होकर विद्या का जप करते हुये अपने अंगों एवं इन्द्रियों को वहिज्वाला से दग्ध होने की भावना करते एवं मन का आत्मा में आकर्षण करने से क्षणमात्र में शिष्य बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ता है। तब उसे उठाकर उसके मुख पर छीटे मार कर मनोपदेश करे। यह वेद दीक्षा तीन प्रकार की होती है, जो शीघ्र प्रत्ययकारक है। शाक्त शास्त्रव वेद से दोनों में ऐक्य मानने से होता है। शिष्य के मूलाधार से ब्रह्मरन्त्र तक सात 'रं' वार्जों का स्मरण करे। पूर्ववत् उदारक्षण करे। देशिक सिद्ध विद्या से शाक्त वेद करे। शास्त्रव वेद अद्भुत रूप का है। शिष्य को मौन बिठाकर षट्चक्रों में उसकी आत्मा के साथ स्वयं प्रवेश करे। उसके देह से अपने देह का ऐक्य करे। पुनः अपने देह में आकर उसकी आत्मा को अपनी आत्मा में विलीन करे, एक करे। न्यास जप अर्चन करके उसके शरीर को अग्नि में जला दे। इस शास्त्रव वेद का वर्णन यामत में पहले किया जा चुका है। ये तीनों वेद भावना-सिद्धि के सूचक हैं। यामत में विशेष यह है कि विद्ध शिष्य गुरु की वाणी को सुने। इससे शिष्य में सभी ज्ञानों का संक्रमण होता है और इससे वह गुरु के समान हो जाता है।

#### वश्यादिप्रयोगः

रक्तचन्दनपञ्चेन लिखित्वा प्रथमं शिवे । लोहैर्विरचिते पट्टे फलकायां शिलातले ॥३८॥

भूमौ वा सुसमे शुद्धे लोषाङ्गारविवर्जिते । देवीमावाहा तत्रैव पूजयेच्छक्तिभिर्वृताम् ॥३९॥

दिनं दिनत्रयं सप्तवासरं पक्षमेव वा । मासं मण्डलमित्येवं क्रमादिष्टमवाप्नुयात् ॥४०॥

वश्यमाकर्षणं स्तम्भं निग्रहं लाभमीप्सितम् । अन्यच्च सकलं त्विष्टमवाप्नोत्यर्चनाद् द्वृतम् ॥४१॥

तदा प्रोक्तगदान्सर्वान् जयेदन्यांस्तथाखिलान् । साधयेत् प्रथमेव यन्त्रेणायत्ततः शिवे ॥४२॥

प्रथम यन्त्र को लाल चन्दन के लेप से पत्र के पत्र पर या पत्थर के फलक पर या लोष अङ्गररहित पाक्त्र समतल भूमि पर बनावे। उसमें आवाहन करके शक्ति से धिरी देवी का तीन दिनों तक दिन में या सात दिनों तक या पन्द्रह दिनों तक या तीस दिनों तक या चालीस दिनों तक पूजन करे तो इष्ट की प्राप्ति होती है। इससे इच्छित वश्य आकर्षण स्तम्भन निग्रह और लाभ होता है; साथ ही समस्त इष्ट की प्राप्ति इसके अर्चन से शीघ्र होती है। सभी रोगों का नाश होता है। अन्य सभी पर विजय होती है। इस प्रकार प्रथम यन्त्र से इन सबों को अनायास ही साधन करे।

#### द्वितीयन्त्रसाध्यानि

द्वितीयं दरदैः कृत्वा प्रोक्तेषुव्यगते रवौ । पूजयेत्प्रोक्तकालेन फलान्युक्ताच्यवाप्नुयात् ॥४३॥

विलिख्य राजते पट्टे जपित्वा दिनशः स्पृशन् । सहस्रवारं तां नित्यां विद्यां तद्वासिताम्बुधिः ॥४४॥

स्नानं पानं पाकजातं कुर्यादुक्तदिनं ततः । प्रमेहैस्त्रिविधैर्घोरैर्मूत्रकृच्छ्रैः सुदारुणैः ॥४५॥

अश्मरीमूत्रघातादिरोगैर्मुक्तः सुखी भवेत् । जीवेच्च सुचिरं भूमौ नीरोगः स्वस्थमानसः ॥४६॥

द्वितीय यन्त्र को सिंगरफ से लिखकर सूर्य के उच्च होने पर विहित काल में पूजन करे तो उक्त सभी फल प्राप्त होते हैं। चाँदी के पत्र पर लिखकर उस पर हाथ रखकर दिन में एक हजार जप नित्या विद्या का करे और उससे वासित जल से स्नान पान करके भोजन पका कर खाय तो त्रिविध घोर प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, दारुण अश्मरी, मूत्राधातादि रोगों से मुक्त होकर सुखी होता है। साथ ही बहुत दिनों तक जिन्दा रहकर निरोग और स्वस्थ मानस रहता है।

## वैरिनिग्रहः

तृतीयं गैरिकैः कृत्वा वैरिनक्षत्रवृक्षजे । तले भूमौ ततः खात्वा तत्राग्निं ज्वालयेत्सदा ॥४७॥  
प्रोक्तैस्तैर्वासैर्वैरी दाहज्वरगदादिभिः । तच्च नोद्वृत्य सलिले प्रक्षिपेच्येद्विनश्यति ॥४८॥

तृतीय यन्त्र को गेरु से वैरी नक्षत्र वृक्ष के पटरे पर बनाकर भूमि में गड्ढा खोदकर उसमें अग्नि जलाकर यन्त्र को विहित दिनों तक तपावे तो वैरी दाह-ज्वरादि रोगों से पीड़ित होता है। उसे गड्ढे से निकाल कर जल में डाल देने से रोग नष्ट हो जाता है।

## दूतादिषु जयः

चतुर्थं रोचनापङ्कैरालिख्योक्तप्रपूजनात् । प्राप्नोति विजयं प्रोक्तेष्वखिलेषु सुनिश्चितम् ॥४९॥  
वादे च द्विविधे द्यूते ग्रहेष्वन्येषु सर्वतः । सर्वदा जयिनः सर्वे भवन्येतस्य वैभवात् ॥५०॥

चतुर्थ यन्त्र को गोरोचन के लेप से लिखकर उक्त प्रकार से पूजा करने पर सभी प्रकार की विजय प्राप्त होती है। वाद में द्विविध जूआ में, ग्रहपीड़ा में या अन्य सबों में सर्वदा जीत होती है और वैभव मिलता है।

## मर्त्यादिवश्यम्

पञ्चमं कुङ्कुमैः कृत्वा तत्र तत्पूजनादिभैः । वशे भवन्ति मनुजा दन्तिनो वाजिनः स्त्रियः ॥५१॥

पञ्चम यन्त्र को कुङ्कुम से बनाकर विहित दिनों तक पूजन करने से हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ साधक के वश में होते हैं।

## शत्रुस्तम्भनम्

षष्ठं हरिद्रियालिख्य कर्पटे नामसंयुतम् । मदोच्चे स्थापयेत्क्वापि सुबद्धं त्विष्टकापुटे ॥५२॥

शत्रोर्जिह्वां गतिं दोषं दिव्यं राजां समुद्यमम् । वादेच्छां सकलं चान्यदिनष्टं स्तम्भयेद् ध्रुवम् ॥५३॥

षष्ठ यन्त्र को हल्दी से खपड़े पर लिखकर उसमें नाम लिखे और शनि के उच्चस्थ होने पर दो ईंटों के बीच में स्थापित करे। इससे शत्रु का जीभ-गति-दोष, दिव्य राजा का उद्योग, वाद की इच्छा या अन्य अनिष्ट का स्तम्भन होता है।

## लक्ष्मीवासोभूषणप्राप्तिः

सप्तमं चन्दनैरिन्दुमिलतैरालिखेत्तथा । तत्रार्चयेत्त्रित्वशस्तां सन्ध्यासु भुवने निजे ॥५४॥

तद्विनैरिन्दिरा तस्य सर्वलोकातिशायिनी । भवत्येव यहेशानि विचित्रा यन्त्रशक्तयः ॥५५॥

अष्टमं त्वगुरुक्षोदैरालिखेत् फलकापुटे । पीठे वा तत्र तां देवीं गुरावुच्चगते दिने ॥५६॥

तदुच्चकाले सुरभिप्रसूनैस्त्वेवमर्चयेत् । वासांसि च विचित्राणि भूषणान्यप्यवाप्नुयात् ॥५७॥

सप्तम यन्त्र को चन्दन कपूर के घोल से लिखे। उसका अर्चन नित्य सन्ध्याओं में अपने घर में विहित दिनों तक करे तो सर्वलोक अतिशायिनी लक्ष्मी प्राप्त होती है, इस प्रकार इस यन्त्र की शक्ति विचित्र है। अष्टम यन्त्र को अगर क्षोद से पत्थर या पीठ पर बनाकर गुरु के उच्चस्थ होने पर उसमें देवी की पूजा करे। उच्चस्थ गुरु के समय सुगम्भित फूलों से पूजा करे। इससे विचित्र वस्त्र-अभूषण की प्राप्ति होती है।

## लोकस्त्रीवश्यसिद्धिः

मृगस्वेदैस्तु नवममालिख्याभ्यर्थं तत्र ताम् । तदालिप्तो ब्रजेद्यत्र कुत्रापि जनसंसदि ॥५८॥

सर्वे तं गुरुवद्वृदध्वा वशे स्वर्वनिता यदि । तदिष्टसाधिका यावज्जीवमस्यानुभावतः ॥५९॥

नवम यन्त्र को मृगस्वेद से लिखकर उसमें देवी का अर्चन करे। मृगस्वेद को लगाकर जहाँ-कहाँ भी जनसभा में जाता है तो उसे सभी गुरुवत् मानते हैं। उसकी इच्छा यदि किसी वनिता को वश में करने की होती है तो वह आजीवन वशीभूत हो जाती है।

दशमयनकलप्राप्तिप्रयोगः

विलिखेद् दशामं प्रोक्तद्रव्यैः सर्वैस्तथैकशः । सद्यस्तैरीरितं सर्वं कार्यमेतत्सुसाधयेत् ॥६०॥  
प्रोक्तेषु दशासु प्रोक्तद्रव्यैरालिख्य तेषु च । संस्थाप्य कुम्भं विधिना जापत्वोग्रहे तदा ॥६१॥  
अभिष्ठेतदग्रहस्य दोषस्थानगतं फलम् । न भवेच्छुभमेव स्यादेवं यन्त्रेष्वशेषतः ॥६२॥

दशम यन्त्र को प्रोक्त सभी दश द्रव्यों से या एक ही द्रव्य से लिखकर पूजा करने से उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। उक्त दशों यन्त्रों को विहित द्रव्यों से लिखकर प्रत्येक में एक-एक कुम्भ स्थापित करे और विधिवत् उत्र गृहों का मन्त्र जप करे और उस जल से रोगी को स्नान करावे तो उस ग्रह के स्थानगत बुरे फल नहीं मिलते। शुभ फल मिलते हैं। इस प्रकार यन्त्र का वर्णन पूरा हुआ।

यन्त्रेष्वभिषेकाद् ग्रहदोषशान्तिः

तथा तदुच्च्ये तत्पूजां होममन्त्राज्यपायसैः । निवेद्य च प्रणम्यार्घ्ययुतं दद्याच्छिवात्मवान् ॥६३॥  
तत्दग्रहार्थिषु क्षिप्रं ते ग्रहास्तत्रभावतः । एकादशस्थफलदा नित्यशो यजनादपि ॥६४॥

उच्चस्थ ग्रहों की पूजा अन्न-आज्य से करे और पायस का नैवेद्य अर्पण करे। अर्घ्य देकर प्रणाम करे तो देवी ग्रहों के प्रभाव से मुक्त करके लाभस्थान का फल नित्य पूजन से देती है।

यन्त्राङ्कितस्वर्णपट्टादिदानफलम्

सुवर्णे रजते वा तद्यन्त्रेष्वन्यतमं शिवे । विलिख्याभ्यर्थ्य तद्विद्याविदे दद्यात्सुपूजितम् ॥६५॥  
षोडशद्वादशनवषट्त्रिनिष्कप्रकल्पितम् । नित्यार्चकस्य नित्यानामेकां पूजयितुं तु वा ॥६६॥

दद्याद् गन्धादिनार्चयैतं प्रणाम्य ग्रहविग्रहम् ।

सोने या चाँदी के पत्र पर यन्त्र को लिखकर अर्चन करके देवी के विद्याज्ञानी को पूजकर दान दे। यन्त्र सोलह बारह दश नव छः तीन निष्क (चार ग्राम के बाराबर) बनाकर नित्यार्चक को दान दे और उस नित्यार्चक को ग्रहरूप मानकर गन्धादि से पूजन करे, प्रणाम करे।

जाठराग्निवृद्ध्युपायः

पश्चिमामुखमासीनं तस्मै प्रोक्तविधानतः ॥६७॥

विद्याजपाम्बुपानेन वर्धते कुक्षिगोऽनलः । भुक्ते च जठरस्पर्शजिपादपि सुनिश्चितम् ॥६८॥

पश्चिम दिशा में मुख करके प्रोक्त विधान से विद्या का जप करे और मन्त्रित जल को पीये तो भूख लगती है। पेट को स्पर्श करके जप करे तो सभी ठीक हो जाता है।

प्रोक्तयन्त्रेषु भास्करार्द्धनफलानि

मेषादिराशिगे भानौ मासेषु द्वादशस्वपि । प्रोक्तेषु दशयन्त्रेषु प्रत्येकं त्रित्रिवासरम् ॥६९॥  
पूजयेदेवमब्देन धनधान्यगृहादिभिः । समृद्धो जीविति चिरमरोगः सुमना भुवि ॥७०॥

बाहरों महीनों में सूर्य जब मेष राशि में जाय तो उक्त दश यन्त्रों में से प्रत्येक में तीन-तीन दिनों तक देव की पूजा साल भर करे तो साधक धन-धान्य-गृहादि से समृद्ध होकर दीर्घ काल तक निरोग और सुखी होकर जीवित रहता है।

सर्वग्रहपूजाफलम्

यद्राशौ यो ग्रहस्तिष्ठत्येको द्वौ बहवोऽथवा । तद्विनेषु तदुच्चेषु कालेषु च तदर्चनात् ॥७१॥  
तत्तदग्रहाः सुसंप्रीताः पालयन्त्रनिशञ्च तम् । तथा तर्पणहोमाभ्यां जपदानादिनापि वा ॥७२॥

जिस राशि में एक, दो या बहुत ग्रह हों तब उच्चस्थ उस ग्रह के दिन में उसकी पूजा करे। इससे वह ग्रह प्रसन्न

होकर उसका पालन नित्य करता है। उसी प्रकार तर्पण-होम-जप-दान से भी ग्रह प्रसन्न होते हैं।

### शत्रुमर्दनम्

नवस्वपि च यन्त्रेषु नवग्रहमयलतः । तत्तक्षोभं विलिख्यान्तः पूजयेद्वैरिमदने ॥७३॥

रिपुनामयुतान्युक्तान्यालिख्य रविचन्द्रयोः । उपरागे समे भूमौ दिनशो जयमान्युयुः ॥७४॥

नव यन्त्र नवग्रहमय हैं। ग्रहों के अनुसार क्षेष्ठ लिखकर यन्त्रों की पूजा करे तो शत्रु की मृत्यु होती है। सूर्य और चन्द्र ग्रहण में यन्त्रों में शत्रु का नाम लिखकर भूमि पर यन्त्र बनाये तो कुछ ही दिनों में शत्रुओं पर विजय होती है।

### सर्वविद्याकृष्णरौथ्यधभस्माद्यनम्

विद्याक्षरौषधानां तु प्रत्येकं कर्षमर्पितम् । भाष्डे नवे पञ्चगव्ये खारिमाने पचेच्च तत् ॥७५॥

विद्यया संस्कृते वह्नौ ततस्तदुदरोत्थिते । धृतेन विद्यया हुत्वा तद्वस्मादाय तत्र वै ॥७६॥

यन्त्राणि दश निष्प्रव्याध तत्र देवीं यजेत्तथा । ततस्तद्वस्म संगृह्य निदध्याददिनशोऽर्चयेत् ॥७७॥

तद्वस्म सर्वरक्षाकृत्सर्वार्थिरपि साधयेत् । गदचोरग्रहारिष्टक्लेशा न स्युश्च तद्वह्ने ॥७८॥

नित्यशो धारणे देहे श्रीकण्ठाद्यैर्विलेपितम् । भक्षणं सर्वकृत्यादिदुरितार्तिविभञ्जकम् ॥७९॥

विद्याक्षर औषधों को सोलह-सोलह ग्राम लेकर नये वर्तन में खारिमान पञ्चगव्य में डालकर पकावे। संस्कृत अग्नि में उनमें धी मिलाकर विद्या से हवन करे और हवन का भस्म लेकर दश यन्त्रों में उससे देवी की पूजा करे। उस भस्म से सबों की रक्षा होती है। उससे सब कुछ साध्य है। जहाँ यह भस्म रहता है, उस घर में रोग-चोर-ग्रहारिष्टजन्य क्लेश नहीं होते हैं। इसके नित्य कण्ठादि में लागने से, खाने से सभी कृत्यादि रोग नष्ट हो जाते हैं।

### आग्नेयक्षरमेलितयन्त्राणि तैजिर्ठारामिनप्रदीपिः

वह्यक्षरेषु दशसु व्यञ्जनैः सप्तभिः पृथक् । स्वरत्रयं क्रमाद्युक्त्यात्तेन तान्येकविंशतिः ॥८०॥

त्रिकोणद्वयमालिख्य बाह्याभ्यन्तरयोगतः । तदन्तर्वृत्तमध्यस्यं षट्स्त्रं च विद्यय तु ॥८१॥

नामाद्यं विलिखेन्मध्ये षट्कोणेषु च षट् क्रमात् । विलिखेदग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन पार्वति ॥८२॥

त्रिकोणान्तरतो लिख्य चतुर्दश तथा क्रमात् । शिष्टे साध्याक्षरं त्वग्रे लिखेत्पञ्चदशस्वपि ॥८३॥

क्रमेण मध्ये त्वन्येषां निवेशादेकविंशतिः । भवति यन्त्राणि तथा तैः कुक्ष्यग्निः प्रवर्धते ॥८४॥

त्रिकोणाकारके पट्टे ताप्रे तानि विलिख्य वै । स्पृशन् विद्यां जपेल्लक्षं तद्वर्णकृतसंपुटाम् ॥८५॥

ततोयभाष्डे दिनशो निक्षिपेज्जपपूजितम् । ततोयैः पाकपानाभिषेकतो भवति धूवम् ॥८६॥

प्रदीपिर्जिर्ठाराग्नेस्तु प्राग्जन्माधक्षयेण वै । जायते परमेशानि नित्यानां वैभवादिति ॥८७॥

**अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः**—प्रथमतः षट्कोणं विरच्य तद्विहर्वृत्तं तद्विहरन्तर्बहिर्विभागेन त्रिकोणद्वयं विद्यय वह्यदशाक्षरेषु सप्तव्यञ्जनानि स्वरत्रययोगेनैकविंशतिर्भवन्ति। तेष्वाद्यं साध्यनामगर्भं मध्ये विलिख्य द्विती'यादिष्टक्षरगणि षट्सु कोणेषु विलिख्यावशिष्टचतुर्दशाक्षराणि त्रिकोणद्वयान्तरालेऽग्रात् प्रादक्षिण्यक्रमेणावेष्ट्य शिष्टे वह्यक्षरे साध्यनामगर्भं कृत्वा ग्रेषु विलिखेत्। एवं मध्याक्षरभेदेनैकविंशतिर्भवन्ति, प्रोक्तकलेषु योज्यानि प्रोक्तफलानि भवन्ति। इति ज्वालामालिनीनित्याप्रयोगः।

दश आग्नेय अक्षरों में से ७ में तीन स्वरों के योग से २१ अक्षरों को दो त्रिकोणों के बाहर-भीतर में लिखे। उसके अन्दर वृत्त बनाकर वृत्त में षट्कोण बनावे। मध्य में साध्य नाम लिखे। षट्कोणों में छः अक्षरों को प्रदक्षिण क्रम से लिखे। त्रिकोणों के अन्तर में चौदह अक्षरों को लिखे। शेष पन्द्रह को साध्याक्षर के आगे लिखे। क्रम से मध्य में निवेश करने में इक्कीस यन्त्र बनते हैं। ये भूख बढ़ाते हैं।

ताम्बे के त्रिकोणाकार पत्र पर यन्मों को लिखकर उन पर हाथ रखकर विद्या को यन्मांकित अक्षरों से सम्पुटित करके एक लाख जप करे। पूजा-जप के बाद उस पात्र के जल से खाना बनावे, पीये और स्नान करे तो नित्याओं की कृपा से भूख बढ़ती है और पूर्व जन्मों के पापों का नाश होता है।

### विचित्रानित्याप्रयोगविधिः

अथ विचित्रानित्याप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (२१. १३)—

**काम्यहोमविधिं वक्ष्ये श्रुणु सर्वार्थदायकम्। येनातिमन्दभाग्योऽपि श्रीमान् भोक्ता सुखी भवेत् ॥१॥**

**मधुरत्रयसंसिक्तरूपैरम्बुजैः श्रियम्। प्राप्नोति मण्डलाद्वोमात्सितैस्तैश्च महद्यशः ॥२॥**

**क्षौद्राक्तरुपत्यलैः रक्तैर्हवनात्मोक्तकालतः। सुर्वा समवाप्नोति निधिं वा वसुधां तु वा ॥३॥**

**क्षीराकैः कैरवैर्होमात्मोक्तकालमवाप्नुयात्। धान्यानि विविधान्याशु सुभगस्तु भवेन्नरः ॥४॥**

**आज्याकैस्तप्यलैर्होमाद्वाज्ञितं समवाप्नुयात्। तदक्तैरपि कहरैर्हवनाद्राजवल्लभः ॥५॥**

**पलाशपुष्ट्येक्षिवादुयुक्तेस्तत्कालहोपतः। चतुर्विधं तु पापिङ्गत्यं भवत्येव न संशयः ॥६॥**

**लाजैक्षिमधुरोपेतैस्तत्कालहवनेन वा। कन्यकां लभते यत्नात्समस्तगुणसंयुताम् ॥७॥**

**नारिकेलफलक्षोदं ससितं सगुडं तु वा। क्षौद्राकैं जुहुयात्तद्वदयताद् धनदोपमः ॥८॥**

**तथैवान्नाज्यहोमेन सतपुंडलतिलैरपि प्रसूनैररूणैस्तद्वत्था बन्धूकसम्भवैः ॥९॥**

**सितैः प्रसूनैर्वक्षिसद्धिं हवनात्समवाप्नुयात्। सितरक्तस्तु मिलितैरायुरारोग्यमाप्नुयात् ॥१०॥**

**दूवात्रिकैक्षिमध्यक्तैर्हवनात् जयेद्दान्। तथा गुदूच्या होमेन पायसेन तिलेन च ॥११॥**

**श्रीखण्डपङ्कर्पूरमिलितैः शतपत्रकैः। हवनाच्छ्रूयमाप्नोति या तदन्वयगामिनी ॥१२॥**

**कुङ्कुमं हिमतोयेन पिष्ठा कर्पूरसंयुतम्। तत्पङ्कर्पदैर्होमात् कहरैर्विकैः शुभैः ॥१३॥**

**राजकल्पः श्रिया भूयाज्जीवेद्वर्षशतं भुवि। निःसप्तलो निरातङ्गो निर्द्वन्द्वो निर्मलाशयः ॥१४॥**

**इक्षुकाण्डस्य शक्लैर्हवनाद्वक्षिमाप्नुयात्। तथैव करवीरोत्यैः प्रसूनैररूणैः सितैः ॥१५॥**

**क्षौद्राकैः पाटलीपुष्ट्येक्षिवादुशयेद्वद्धूः। तथैव चम्पकैर्होमाद्वाजीवां वशं नयेत् ॥१६॥**

**सरूपवत्ससितगोक्षीरात्मकसितहोमतः। लभते नुपमां लक्ष्मीमपि पापिष्ठचेतनः ॥१७॥**

**सौवीराकैस्तु कार्पासीजीजैस्तत्कालहोमतः। अर्धेन्दुकुण्डे नियतं विद्विष्टा रिपवोऽम्बिके ॥१८॥**

**अरिष्टपत्रैस्तद्वीजैस्तत्त्वैलाकैस्तथा हुतैः। मृत्युबीजैर्निष्वत्तैलसिक्तैर्होमात् दन्तिनः ॥१९॥**

**रोगात्सुरगास्तद्वत्पञ्चाहृतैर्धुर्वम्। अक्षबीजैस्तु तैलाकैर्होमः सर्वविनाशनः ॥२०॥**

**करञ्जबीजैस्तत्सिक्तैर्होमाद्वरी पिशाचवान्। तथैवाक्षतरूपदूतपञ्चहवनादपि ॥२१॥**

**निष्वत्तैलाप्लुतैरक्षद्वम्बीजैस्तु होमतः। तद्विनैः स्यादपस्मारी वैरी भवति निश्चितम् ॥२२॥**

**आरातेर्जन्मनक्षत्रवृक्षेन्यनगतेऽनले। तद्योनिपिश्टैस्तैश्च हवनं मृत्युकृद्विषोः ॥२३॥**

**यक्षाक्षबीजैः सर्वपतैलाकैर्हवनात्था। जायने वैरिणः कुष्ठरोग देहविलोपकाः ॥२४॥**

**मरिचैः सर्वपैर्होमात्मैलाकैर्मध्यात्रात्रके। दाहज्वरेण ग्रस्तः स्यादरातिस्तद्विनैर्धुर्वम् ॥२५॥**

**एवं निग्रहोमेषु स्वरक्षायै तथान्वहम्। स्त्रियैः संप्राप्तमन्तैस्तु जपहोमादि कारयेत् ॥२६॥**

**मृत्युञ्जयेन वा तद्वत्रयोगस्ताभिरेव च। विद्याभिरन्यथासिद्धमन्त्रमाशु विनाशयेत् ॥२७॥**

**प्रागुक्तानां तु कुर्वीत निग्रहं स्वस्य रोषतः। विज्ञाशया वा न कदाप्याचरेद्भूतिकामुकः ॥२८॥**

**नित्यविकल्पाविधौ प्रकैस्तर्पणैस्तानि साधयेत्। अनया विद्यया कर्मण्यशेषणि महेश्वरि ॥२९॥**

विचित्रा नित्या प्रयोगविधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि अब सर्वार्थदायक काम्य हवन की विधि कहता हूँ,

जिससे अति मन्द भाग्य वाला भी श्रीमान्, भोक्ता और सुखी होता है। त्रिमधुराक्त लाल कमल के हवन से ४० दिनों में लक्ष्मी प्राप्त होती है। उतने ही दिनों तक उजले कमल के हवन से महान् यश मिलता है। मध्यसिक्त लाल कुमुद से उतने दिनों तक हवन करने से सोना, धन और जमीन की प्राप्ति होती है। दूध से सिक्त कैरव से उक्त दिनों तक हवन करने से विविध धान्य एवं अन्य वस्तुएँ प्राप्त करके मनुष्य भाग्यवान हो जाता है। आज्य से सिक्त उत्पल के हवन से वांछित की प्राप्ति होती है। आज्य से सिक्त कलहार के हवन से राजप्रिय होता है। त्रिमधुराक्त पलाशपुष्पों से उक्त काल तक हवन करने से चतुर्विध पण्डित्य प्राप्त होता है। उक्त काल तक त्रिमधुराक्त लावा के हवन से सभी गुणों वाली लड़की से विवाह होता है। चीनी, गुड़, नारियल खण्डों को मधु से सिक्त करके हवन करने से धन मिलता है। अब्र और आज्य के हवन से, तिल-चावल, लाल फूल, बन्धूक के उजले फूलों से हवन से वाक्सिसद्धि मिलती है। लाल-उजले मिले-जुले फूलों के हवन से आयु-आरोग्य की प्राप्ति होती है। मधुसिक्त तीन-तीन दूर्वा के हवन से रोग का नाश होता है। उसी प्रकार गिलोय, पायस और तिल के हवन से भी रोग नष्ट होता है।

चन्दन, कपूर के घोल से अक्त शतपत्री के हवन से स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। कुङ्गम-कपूर को बर्फ जल से पीसकर कलहार के फूलों को लिप्त करके हवन करने से राजकल्प श्री का भोग करते हुए सौ वर्षों तक अपनी पल्ली के साथ निर्भय, निर्द्वन्द्व, निर्मल आशय वाला होकर जीवित रहता है। ईख के टुकड़ों से हवन करने पर वस्त्र मिलता है। लाल एवं कनैल के लाल उजले फूलों के हवन से उक्त पल मिलता है। मधु से अक्त गुलाब के फूलों के हवन से वनिता वश में होती है। उसी प्रकार चम्पाफूलों के हवन से वेश्या वश में होती है। उजले बछड़े वाली उजली गाय के दूध से अक्त मिश्री के हवन से पापी भी अनुपम लक्ष्मी प्राप्त करता है। अर्द्धचन्द्र कुण्ड में सौबीर में अक्त कपासबीजों के हवन से शत्रुओं से परस्पर विद्वेष होता है। रीठा बीज के तेल से अक्त उसके पत्तों के हवन से, नीम तेल से सिक्त धत्तूर बीजों के हवन से हाथी बीमार होते हैं। उसके पञ्चाङ्ग के हवन से घोड़े रोगी होते हैं। अक्षबीज के तेल से अक्त पत्तों के हवन से हाथी-घोड़ा का नाश होता है। नीम तेल से सिक्त करञ्जबीजों के हवन से वैरी पिण्डाचयस्त होता है। अक्षबीज के पञ्चाङ्ग के हवन से वैसा ही होता है। नीम तेल से सिक्त अक्षबीजों से हवन उक्त दिनों तक करने से वैरी को मृत्यु रोग होता है। वैरी के जन्मनक्षत्र की लकड़ी की अग्नि में उसकी योनिप्रशित के हवन से वैरी की मृत्यु हो जाती है। सरसों तेल से सिक्त यक्षक्ष बीजों के हवन से वैरी को देहविलोपक कोढ़ होता है। तैलाक्त मरिच और सरसों से मध्य रात में हवन करने से वैरी को दाह ज्वर होता है। इसी प्रकार निग्रह हवन में आत्मरक्षा तथा कुल की रक्षा के लिये जप-हवनादि करके मृत्युज्ञ आदि का जप करना चाहिये; अन्यथा प्रयोग तुरन्त विनाश करता है।

पूर्वोक्त प्रयोगों को अपने निग्रह के लिये करे, धन की आशा और भूति-प्राप्ति के लिये कदापि न करे। नित्याक्लित्रा विधि से तर्पण करके इस विद्या का साधन करे।

### षड्विंशतियन्नाणि

अथ यन्नाणि वक्ष्यामि नानाभीष्प्रदानि वै । यैः सर्वे सर्वदा सर्वसमीहितमवाप्नुयुः ॥३०॥  
 स्वरयुक्तलिपिन्नातगर्भा विद्यां समालिखेत् । सर्वोक्तेषु विधिवत् स्थानेषु परमेश्वरि ॥३१॥  
 त्रिकोणं वृत्तयुग्मं च षट्कोणं तद्द्वयं तथा । तद्वहिः षट्दलं पद्मं तत्रयं च समालिखेत् ॥३२॥  
 आद्यकूटं लिखेत्साध्यगर्भं मध्ये विद्यान्तः । त्रिकोणेषु च षट्कोणे षट्पत्रेषु समालिखेत् ॥३३॥  
 कूटान्यव्याप्ति चोक्तानि तत्र पञ्चदशान्यपि । अन्तर्वृत्तान्तरद्वन्द्वे भूतार्णांश्च क्रियोचितान् ॥३४॥  
 सप्तसाध्यकर्मवर्णेश्च बहिर्वृत्तान्तरद्वये । मातुकां विलिखेन्मायाबिन्दुयुक्तां क्रमोल्कमात् ॥३५॥  
 एवं षड्विंशतिविधं यन्त्रं कुर्याद्विचक्षणः । परस्तात् शतेनापि षष्ठ्या कूटैर्लिखेत्पविम् ॥३६॥

अथैतद्यन्नरचनाप्रकारः—मध्ये त्रिकोणं तद्वहिर्वृत्तद्वयं तद्वहिः षट्कोणं तद्वहिः पुनर्वृत्तद्वयं तद्वहिः षट्दलं पद्मं तद्वहिर्वृत्तत्रयमिति यन्त्रं विलिख्य, तन्मध्ये घोडशस्वरयुक्तमूलविद्यायाः प्रथमं कूटं साध्यगर्भं विलिख्य त्रिकोणेषु

कूटनायं षट्कोणेषु षट्कूटानीति षोडश कूटानि विलिख्याभ्यन्तरवृत्तान्तराले साध्यनामयुक्तं तत्त्वकर्मनुसारितत्तद्वृत्ताक्षराणि द्वित्रिद्वित्रिक्रमेण षट्कोणाद्विवृत्तान्तराले तान्त्रेव भूताक्षराणि तथैव कर्मयुक्तानि विलिख्य, बहिर्वृत्तान्तरालद्वयेऽभ्यन्तरान्तराले विसर्गयुक्तमातृकामनुलोमां विलिख्य तद्विहरन्तराले बिन्दुयुक्तां विलोममातृकां विलिखेत्। एवं द्वितीययन्त्रे मध्ये साध्यगर्भं द्वितीयं कूटं विलिख्य प्रागुक्तक्रमेणान्यानि पञ्चदशकूटानि विलिखेत्। एवं तृतीयकूटादीनि तृतीयादिषु यन्त्रेषु विलिखेदिति षोडशयन्त्राणि निष्पाद्य, प्रागुक्तामृतबीजपञ्चकं षोडशस्वरसंयुक्तं कृत्वा तान्यशीतिबीजानि बिन्दुयुक्तानि विसर्गयुक्तानि च षष्ठ्युत्तरशतबीजानि कुर्यात्। ततस्तेषु प्रथमं मूलविद्या सहितं मध्ये विलिख्य पञ्चदशबीजानि त्रिकोणादिषु विलिखेत्। एवं षोडशषोडशबीजैर्दशयन्त्राणि विलिखेत्। एवं प्रागुक्तैः षोडशयन्त्रैः सह षड्विंशतिर्थंत्राणि भवतीत्यर्थः।

नाना अभीष्ट-प्रदायक इसके यन्त्र को कहता हूँ, जिससे सर्वदा समस्त अभीष्ट की प्राप्ति होती है। सबसे पहले त्रिकोण बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर षट्दल कमल और उसके बाहर तीन वृत्त बनावे। मूल विद्या 'च्छौ' को सोलह स्वर से युक्त करे, जैसे—च्छं च्छौं च्छिं च्छीं इत्यादि। मध्य में मूल विद्या का प्रथम कूट च्छं के उदर में साध्य नाम लिखे। त्रिकोण कोनों में च्छां च्छिं च्छीं लिखे। षट्कोण के छः कोणों में च्छुं च्छूं च्छुं च्छूं च्छूं लिखे। षट्दल पद्म के छः दलों में च्छे च्छौं च्छौं च्छं च्छः लिखे। त्रिकोण के बाहर वृत्तों के अन्तराल में साध्य नामयुक्त कार्य के अनुसार भूताक्षरों को लिखे। षट्कोण के बाहर वृत्तों के अन्तराल में कर्मयुक्त भूताक्षरों को लिखे। षट्दल के बाहर तीन वृत्तों के दो अन्तरालों में से पहले अन्तराल में विसर्गयुक्त मातृकाओं को अनुलोमक्रम से लिखे। दूसरे अन्तराल में अनुस्वारयुक्त मातृकाओं को विलोम गति से लिखे। इसी प्रकार द्वितीय यन्त्र के मध्य में साध्य नाम गर्भ दूसरे कूट च्छां को लिखे और शेष में अन्य अक्षरों तथा मातृकाओं को लिखे। इसी प्रकार तृतीय से लेकर सोलहवें यन्त्र तक बनावे। पूर्वोक्त अमृतबीजपञ्चक को षोडश स्वरयुक्त करने से अस्सी बीज बिन्दुयुक्त और अस्सी बीज विसर्गयुक्त कुल १६० अक्षर बनते हैं। उनमें सोलह कूटों से दश यन्त्र बनते हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त सोलह यन्त्रों सहित कुल छब्बीस यन्त्र बनते हैं।

#### कोष्ठवत्रयन्त्रं तदनुभावः

अथ सप्तविंशतितमं वत्ररूपं यन्त्रमाह—

प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्षं सूत्राण्यष्टादश क्षिपेत्। तैस्तु कोष्ठानि जायन्ते नवाशीतिशतद्वयम् ॥३७॥

तत्र कोणेषु कोष्ठानि द्वात्रिंशन्मार्जयेत्तदा। ततो वत्रं भवेन्मध्ये त्वेकषष्ठ्या शतात्मकम् ॥३८॥

अस्य दिक्षु त्रिकोणानि विद्ययादेककोष्ठतः। मध्ये कोष्ठे लिखेद्विद्यां साध्याख्याकर्मसंयुताम् ॥३९॥

त्रिकोणेषु तु तत्कूटान्यालिखेत्साध्यवन्ति च। प्रागवदारभ्य विलिखेत् प्रादक्षिण्यप्रवेशतः ॥४०॥

एतद्वत्रं महायन्त्रं समस्तापत्रिवारणम् ।

**अथैतद्वत्रचन्त्रप्रकारः—**प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्षं चाष्टादशाष्टादशसूत्रपातनेन नवाशीत्युत्तरशतकोष्ठानि विरच्य, चतुर्दिक्षु द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशत् कोष्ठानि मार्जयित्वा एकषष्ठ्युत्तरशत (१६१) कोष्ठात्मकं वत्ररूपं विद्यय चतुर्दिक्षु एकैकं कोणं मार्जयित्वा त्रिकोणानि विद्यय, मध्ये साध्यनामगर्भं मूलविद्यां विलिख्य चतुर्दिक्षु चतुर्निक्षिणोषु प्रागुक्तामृतबीजानामादितश्तुर्बीजानि साध्यनामयुक्तानि विलिख्य, पञ्चमबीजमारभ्य बाहुतः प्रवेशगत्या प्रादक्षिण्यप्रवेशन सर्वाणि कोष्ठानि पूर्वोक्ते विलिखेति।

**वत्र यन्त्र—**पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर अद्वारह-अद्वारह रेखा खींचे। इससे दो सौ नवासी कोष्ठ बनते हैं। चारों कोणों में बत्तीस-बत्तीस कोष्ठों को मिटा देने से १६१ कोष्ठ वत्रात्मक रूप के होते हैं। चारों दिशाओं में एक-एक कोष्ठ मिटाकर त्रिकोण बनावे। यन्त्र के मध्य में साध्य नाम गर्भ 'च्छौं' लिखे। चारों दिशाओं के चार कोणों में पूर्वोक्त पांच अमृतबीजों में से चार प्रारम्भिक कूटों को साध्य नामयुक्त लिखे। पञ्चम बीज से प्रारम्भ करके बाहर से प्रवेश गति से प्रदक्षिण क्रम से सभी कोष्ठों में स्वरविकृत १६० कूटों को लिखे। यह महावत्र यन्त्र सभी तापों का निवारक होता है।

## नक्षत्रवारतिथिषु अर्चनादिक्रमः

तथा—

सप्तस्ताभीष्टदं सर्वविजयश्रीप्रदं शुभम् । सप्तविंशतिरुक्तानि यन्नाण्येवं महेश्वरि ॥४१॥  
 सप्तविंशतिनक्षत्रमयान्येतानि येन वै । तेन तात्येव सप्तम्या विभक्त्या साध्यमालिखेत् ॥४२॥  
 तानि तत्तद्विष्वेवं विलिखेत् स्थापयेदपि । फलानि तेषां क्रमशो वदाप्युक्तक्रमेण वै ॥४३॥  
 विनियोगक्रमं चैव सुस्फुटं परमेश्वरि । प्रथमेनार्चितेन स्याद्रोगा नश्यन्त्यशेषतः ॥४४॥  
 स्ववेशमनि विधायैतत्पीठे भूमितलेऽपि वा । प्रोक्तद्रव्याणि संपिण्य तत्पङ्केनाथ सुस्फुटम् ॥४५॥  
 प्रियात्रं सप्तरात्रं वा सप्तविंशतिरात्रक्रम् । संपूज्य तत्र कुम्भं तु विद्यौषधिजलान्वितम् ॥४६॥  
 निधायाभ्यर्थं गदिनमभिषिञ्चेत्तः सुखी । एवमन्यानि यन्नाणि प्रोक्तेषु विनियोजयेत् ॥४७॥  
 तेषां विलेखनद्रव्याण्याकर्णय वदामि ते । कुचन्दनं चन्दनं च सिन्दूरं सेन्दुरोचनम् ॥४८॥  
 काश्मीरमगुरुं कुष्ठमेलाकव्योलजातिभिः । स्वर्क्षेवृक्षेद्वादशभिर्हिमाम्बुपरिपेषितैः ॥४९॥  
 जलैर्नक्षत्रवृक्षोत्थै रसैर्वा सूक्ष्मपेषितैः । द्वितीयं विजयप्राप्त्यै विदध्यात्रोक्तरूपतः ॥५०॥  
 वादे विवादे समरे द्यूतेषु च जयी भवेत् । तृतीयाद्येषु नवसु ग्रहान् नव समर्चयेत् ॥५१॥  
 देव्यात्मस्तपान् तेनास्य तैर्बाधा न भवेदद्वृष्टवम् । स्तम्भयेद् द्वादशेनाशु प्रोक्तक्रमविधानतः ॥५२॥  
 संग्रामगमनं वर्षमुद्योगं वाचमाग्रहम् । त्रयोदशादैर्वज्रान्तर्यन्त्रैस्तिथिमयैरपि ॥५३॥  
 तत्तत्तिथिषु तैः प्राग्वद्वाङ्छितान् प्राप्नुयादद्वृष्टवम् । तेषु तेषु तु यन्त्रेषु तत्तत्तिथिदिनाधिपान् ॥५४॥  
 वारेशानपि संपूज्य तत्तकलमवाप्नुयात् । कार्योद्येषु रोगेषु वाज्ञितेष्वितरेष्वपि ॥५५॥  
 वारक्षतिथिसंप्रोक्तयन्ते तां तैश्च देवतैः । आवृतामर्चयेदग्निरक्षोवाय्वीशदिग्गतैः ॥५६॥  
 रोगशान्तिसमुद्योगफलाभीष्टान्यवाप्नुयात् । वाराणामधिपाः प्रोक्तास्तिथिनक्षत्रदेवताः ॥५७॥

उक्त सभी सत्ताईस यन्त्र सभी अभीष्टों एवं सभी प्रकार के विजय और श्री को देने वाले होते हैं । ये सत्ताईस नक्षत्रों के रूप होते हैं । उनमें सप्तमी विभक्ति लगाकर साध्य नाम लिखे । उनमें उस दिन के देवता का नाम लिखे और स्थापित करे । उनके फलों और विनियोग को कहता हूँ । प्रथम यन्त्र के पूजन से सभी रोग समूल नष्ट होते हैं । अपने घर की भूमि पर या पीठ पर प्रोक्त द्रव्य पिष्ट से स्पष्ट यन्त्र बनावे । तीन या सात या सत्ताईस रातों तक पूजन करे । वहाँ पर विद्यौषधि जलान्वित कुम्भ स्थापित करे । पूजा करे और उस जल से रोगी को स्नान करावे । इससे रोगी निरोग होता है । इसी प्रकार अन्य यन्त्रों को विनियोजित करे ।

उन यन्त्रों को लिखने के द्रव्यों को कहता हूँ, सुनो । लाल चन्दन, चन्दन, कपूर, सिन्दूर, गोरोचन, केसर, अगर, कुष्ठ, कव्योल, इलायची, जातिफल और अपने नक्षत्रवृक्ष—इन बारह को बर्फ जल से पीसकर या नक्षत्र वृक्षोत्थ जल में पीसकर या रस में महीन पीसकर उक्त रूप में द्वितीय यन्त्र बनाकर पूजा करने से वाद-विवाद में, युद्ध में, जुआ में विजय होता है । तीसरे से लेकर ग्यारहवें तक के यन्त्र में नवग्रहों की पूजा क्रम से करो तो देव्यात्म रूप में वे बाधा नहीं करते । बारहवें यन्त्र से उक्त विधान से साधन करने पर संग्राम के लिये गमन में, वर्ष में, उद्योग में, वाणी में स्तम्भन होता है । त्रयोदश से सत्ताईस तक के यन्त्र तिथिरूप हैं । उनकी तिथियों में उनकी पूजा से वांछित फल मिलता है । उनकी तिथियों में अधिपति और वारेशों की पूजा करने से भी वह फल प्राप्त होता है । कार्यों में, उद्योगों में, रोगों में या अन्य फल उनसे प्राप्त होते हैं । उक्त यन्त्र में वार, तिथि, नक्षत्र में उनके देवताओं की पूजा अग्नि, नैऋत्य, वायव्य और ईशान में करे । इससे रोगशान्ति के उद्योग में सफलता मिलती है । इस प्रकार वारों के अधिपति तथा तिथि-नक्षत्र देवता का विवेचन किया गया ।

## तिथिवृक्षदेवतानक्षत्रयोनयः

ऋक्षवृक्षांस्तथा योनीवदामि परमेश्वरि । वहिदस्त्रावुमा विघ्नो भुजङ्गः षण्मुखो रविः ॥५८॥  
 मातरश्च तथा दुर्गा दिशो धनदकेशवौ । यमो हरः शशी चेति तिथीशाः परिकीर्तिः ॥५९॥

नक्षत्रदेवताश्चापि शृणु वक्ष्ये यथाविधि । अश्विनौ च यमो वहिर्धर्ता चन्द्रः शिवोऽदितिः ॥६०॥  
 गुरुः सर्पश्च पितरस्त्वयमा भग एव च । दिनकृच्च तथा त्वष्टा मरुदिन्द्रान्मित्रकाः ॥६१॥  
 इन्द्रो निर्झृतितोयाख्यौ विश्वेदेवा हरिस्तथा । वसवो वरुणः पश्चादजएकपदस्तथा ॥६२॥  
 अहिर्बुध्यस्तथा पूषा प्रोक्ता नक्षत्रदेवताः । कारस्करश्चामलकोदुम्बरो जम्बुकस्तथा ॥६३॥  
 खदिरः कृष्णवंशो च पिप्पलो नागरोहिणी । पलाशप्लक्षकाम्बलभिल्वार्जुनविकङ्कताः ॥६४॥  
 बकुलः सरलः सर्जो वक्षुलः पनसस्तथा । अर्कः शामी कदम्बश्च चूतो निष्वस्तथान्तिमः ॥६५॥  
 मधुकश्चेति संप्रोक्ता वृक्षा भानां क्रमादमी । अश्वगजमजं सर्पसर्पिणीश्चिडालिकाः ॥६६॥  
 अजामार्जारमूषाश्च मूषिका वृषमाहिषी । व्याघ्रश्च महिषो व्याप्री मृगी मृगशुनी कपिः ॥६७॥  
 गोखडगो वानरी सिंही तुरगी सिंहगोगजाः ।

तिथियों के स्वामी हैं—अग्नि, दत्त, उमा, विघ्नेश, सर्प, कार्तिकेय, सूर्य, मातृगण, दुर्गा, कुबेर, दिक्षपति, केशव, यम, हर, शशी।

नक्षत्रों के देवता हैं—अश्विनी, यम, अग्नि, धाता, चन्द्र, शिव, अदिति, गुरु, सर्प, पितर, अर्यमा, भग, सूर्य, त्वष्टा, मरुत्, इन्द्र, अग्नि, मित्र, निर्झृति, वरुण, विश्वेदेव, हरि, वसु, वरुण, अजैकपाद, अहिर्बुध्य एवं पूषा।

नक्षत्र वृक्ष है—कारस्कर, आमलक, गूलर, जामुन, खैर, कृष्णवंश, पीपल, नाग, रोहिणी, पलाश, पाँड, अम्बष्ठ, बेल, अर्जुन, विंकंकत, बकुल, सरल, सर्ज, वंजुल, कटहल, अकवन, शामी, कदम्ब, आम, नितम्ब, महुआ।

योनी है—अश्व, गज, बकरा, सर्प, सर्पिणी, विल्ली, बकरी, मार्जार, मूष, मूषिका, बैल, भैंस, बाघ, भैंसा, व्याप्री, मृगी, मृगछाना, कपि, गोखडग, वानरी, सिंही, घोड़ी, सिंह, गाय, हाथी।

### रोगशान्तिसमयज्ञानम्

यदा रोगादिदुःखातिर्भवेत् तत्पूर्वोर्गेदिनैः ॥६८॥

मुहूर्तैः संख्याऽहोभिः शान्तिः स्यादद्विगुणेन वा ।

जिस दिन रोगादि दुःख होते हैं, उसके पहले एक दिन के मुहूर्त में दिन की संख्या के दूनी संख्या के दिन में शान्ति करे।

### षट्स्वाधारेषु यन्त्राणां भावनफलम्

आधारे पञ्च यन्त्राणि स्वाधिष्ठाने चतुष्यम् ॥६९॥

प्रोक्तेषु भावयेत्तानि तावन्ति मणिपूरके । अनाहते ततः पञ्चयन्त्राणि परिभावयेत् ॥७०॥  
 विशुद्धाख्ये च चत्वारि पञ्चाज्ञायाभिति क्रमात् । तत्तत्त्विथिदिवेष्वेवं भावयेत् षोडशीं शिवाम् ॥७१॥  
 तत्तच्चक्रगताः सर्वा भावयेत् सर्वसंपदे । आधारादिषु चक्राणि भावयेदुक्तयोगतः ॥७२॥  
 न तु सर्वत्र सर्वाणि भावयेत्र कदाचन । भावनायामशक्तानां तत्तद्वाद्विहस्तथा ॥७३॥  
 प्रोक्तान्याधारपद्मानि कृत्वा तत्रार्चयेच्छिवाम् । एवं दिनेषु वारेषु नक्षत्रेषु त्रिषु क्रमात् ॥७४॥  
 संपूर्ज्य देवीमिष्टानि प्राप्नुयात्मोक्तवासरैः । बलिं च दद्यात्तेष्वेव वासरेषु यथाविधि ॥७५॥

मूलाधार में पाँच यन्त्रों की एवं स्वाधिष्ठान के चार यन्त्रों की उक्त रूप में भावना करे। मणिपूर में चार और अनाहत में पाँच यन्त्रों की भावना करे। विशुद्धि चक्र में चार और आज्ञा में पाँच यन्त्रों की भावना करे। इसी प्रकार तिथि दिनों में षोडशी शिवा की भावना करे। उन चक्रों में सभी सम्पदाओं की भावना करे। आधारादि चक्रों में उसके योग से भावना करे। सबों की सर्वत्र भावना कभी न करे। भावना करने में अशक्त होने पर उन यन्त्रों का बाहर आधारादि पद्म में अर्चन करे। इस प्रकार दिनों

में, वारों में, नक्षत्रों में क्रम से करे। उन दिनों में देवी की पूजा करके इष्ट प्राप्त करे, उन्हीं दिनों में यथाविधि बलि भी प्रदान करे।

**देव्या: पञ्चाशन्मिथुनानाञ्च बलिदानप्रकारफलम्**

पञ्चाशन्मिथुनानां च प्रोक्तचक्रेऽर्धरात्रके । मध्याह्ने सन्ध्ययोश्चापि चक्रस्थानामपीश्वरि ॥७६॥  
 मिथुनोक्तक्रमे शक्तिमन्त्रवच्चक्रगामिनाम् । कूटानां मन्त्रस्तपाणि प्रोक्तानि स्फुटमीश्वरि ॥७७॥  
 तैत्तिष्ठां तेषु कालेषु बलिं दद्यात्थैरितैः । देव्यास्त्वनुग्रहप्रोक्तनिवेदैः सिद्धकं महत् ॥७८॥  
 विधाय तस्य मध्ये तु कृत्वा दीपं घृतप्लुतम् । विधाय तत्त्वमन्तैस्तु विदध्यात्तान्यनुक्रमात् ॥७९॥  
 प्रत्येकं देवतानां वा मिथुनानां तथापि वा । इत्यं कार्यस्य गुरुतालाघवापेक्षया दिनैः ॥८०॥  
 साधयेत्सप्तभिः पक्षान्मासान्मण्डलतोऽपि वा । दद्यादपूपनसमोचागुडृतान्वितम् ॥८१॥  
 कुलमाशा: पायसात्रं च व्यञ्जनं छागमांसयुक् । मिथुनानां बलिं दद्यात्प्रतिमासं गृहेऽर्चयेत् ॥८२॥  
 प्रत्यब्दं वा गृहे मन्त्री जीवेदाढ्यो महोदयः । एवं कालात्ममिथुनबलिदानेन पूजनात् ॥८३॥  
 स्मरणात्मकीर्तनात् सर्वाज्ञितानाम्बुद्युर्नाराः । मिथुनानां बलिद्रव्याण्याकर्णय महेश्वरि ॥८४॥  
 यैस्तुष्टि प्रापितान्याशु प्रयच्छन्त्यभिवाज्ञितम् । दशानां पायसं दद्याद् दशानां तु गुडैदनम् ॥८५॥  
 पञ्चानां मुद्रभित्रान्नं पञ्चानां दधिभक्तकम् । दद्यादपूपं पञ्चानां पञ्चानां क्षीरशक्ते ॥८६॥  
 पञ्चानां नारिकेलस्य फलक्षोदं गुडान्वितम् । पञ्चानां सितभक्ताभ्यां मोचाफलमुदीरितम् ॥८७॥

मिथुनार्चारितो नित्यं योऽसौ स्यान्मान्त्रिकाग्रणीः ।

इति विचित्रानित्याप्रयोगविधिः ।

उपर्युक्त चक्र में आधी रात को, मध्याह्न में, सन्ध्याद्वय में, चक्र स्थान में पचास मिथुनों के उक्त क्रम से शक्ति मन्त्रवत् चक्रग्रामी कूटों में मन्त्रस्तप में स्फुट मानकर उनसे उनके काल के अनुसार बलि प्रदान करे। महान् सिद्धक देवी को कृपा के लिये अर्पित करे। उसके मध्य में धी का दीपक जलाये और उनके मन्त्रों से अर्पण करो। प्रत्येक देवता या मिथुनों को उनकी गुरुता-लघुता के अनुसार अर्पित करे। इस प्रकार को साधना सात दिनों तक या पन्द्रह दिनों तक या तीस दिनों तक या चालीस दिनों तक करे। उन्हें पूआ, कटहल, केला, गुड़, धीसंयुक्त नैवेद्य का अर्पण करे। उड्ड, पायसात्र एवं छाग-मांसयुक्त व्यञ्जन देकर मिथुनों को प्रति माह बलि प्रदान करे और गृह में अर्चन करे अथवा प्रत्येक वर्ष में अर्चन करे तो साधक महान् होकर जीवित रहता है। ऐसा कालात्म मिथुनों के पूजन-बलिदान से होता है। उनका स्मरण-कीर्तन करने से मनुष्य वांछित फल प्राप्त करता है। मिथुनों के बलि द्रव्यों को सुनो, जिससे वे सन्तुष्ट होते हैं और वांछित देते हैं। दश को पायस, दश को चावल-गुड़, पाँच को मूँग-दही-भात, पाँच को पूआ, पाँच को दूध एवं शर्करा, पाँच को नारियल फल का टुकड़ा और गुड़, पाँच को भात, चीनी और केला अर्पण करे। मिथुनों के अर्चन में जो साधक लगा रहता है, वह साधकों में अग्रणी होता है।

**कुरुकुल्लानित्याप्रयोगविधिः**

अथ कुरुकुल्लानित्याप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतत्रराजे (२२.३२)—

प्रावद्वत्युतो विद्यां पञ्चविंशतिलक्षकम् । जपित्वा पूजयेत्सन्ध्यास्वथ तर्पणहोमतः ॥१॥  
 कुर्यान्त्रियोदितेष्वच्चन्ततमेन हवनक्रियाम् । एवं संसिद्धविद्यास्तु नित्यार्चानिरतस्तथा ॥२॥  
 प्रयोगानाचरेद्दक्त्या काम्यान् प्रोक्तक्रमेण वै । होमेन पूजया यन्त्रभावनेन च तान् शृणु ॥३॥

कुरुकुल्ला नित्या प्रयोग—तन्त्रराज में कहा गया है कि पूर्वत् व्रत में रहकर विद्या का जप पाँच लाख करे। जप के बाद सन्ध्या में पूजन-तर्पण-हवन करे। यह हवन नित्य करे। इस प्रकार सिद्ध विद्या का नित्य अर्चन करे। भक्ति से काम्य प्रयोग उक्त क्रम से करे। जिस प्रकार के हवन-पूजा-यन्त्र और भावना से प्रयोग होते हैं, उन्हें अब कहता हूँ।

नानाहोमान्नानाफलप्राप्तिः

घृताक्तैः सर्षपैर्हेमाद्वशयेद् वनिताजनम् । सर्षपस्नेहसंसिक्तैर्मरिचैरानयेच्च ताः ॥४॥  
 तैलाक्तैस्तु तिलैहेमान्मध्यरात्रे यथाविधि । नारीनरनृपानन्यान् वशयेद्यावदायुषम् ॥५॥  
 अजाघृताक्तैर्बन्धूककुसुमैर्मध्यरात्रके । हवनाद्वनिताः सर्वा मोहयेत्रेमकौतुकैः ॥६॥  
 क्षीराक्तैर्मल्लिकापुर्वैहवनाद् ब्राह्मणान् नृपान् । वशयेच्छतपत्रैस्तु तथा विचकिलैः शुभैः ॥७॥  
 सवत्ससितगोदुधसमेतैनारिकेलजैः । फलक्षोदैः सितयुतैर्हवनात्स्वर्णमाद्युयात् ॥८॥  
 नारिकेलफलक्षोदैर्गुडक्षौद्रघृतप्लुतैः । प्रागुल्कालातो वित्तनिचयं समवान्युयात् ॥९॥  
 कदलीफलहोमेन स्यादाढ्योऽमुजहोमतः । कहारहोमतोऽभीष्टं लभते कुमुदद्वयैः ॥१०॥  
 उत्पलैः पूजयेद् देवीं समस्तापद्विमुक्तये । पद्मैः सितैलैहितैश्च पूजयेदिन्दिरापये ॥११॥  
 कुमुदाभ्यां यजेद्वित्ताभाय यशसे तथा । जपाबन्धूककुसुमैस्तथा दाडिमजैरपि ॥१२॥  
 सौगन्धिकैर्विचकिलैः कुटजैः शतपत्रकैः । पुनागजैः पाटलैश्च चम्पकोत्थैर्यजेच्छिवे ॥१३॥  
 सप्तभिः सप्तवारेषु भास्करादिषु पूजयेत् । प्रोक्तकालेषु विज्ञाढ्यो धराधान्यांशुकादिमान् ॥१४॥  
 चन्दनरच्येन्नित्यं समस्तमपि वाञ्छितम् । लभते प्रोक्तकालेन तथा कालागुरुद्वैः ॥१५॥  
 कुसुमैर्नित्यशः पूजां कुर्यात्सोभाग्यसिद्धये । कपूरेरायुषः सिद्धै वश्यश्रीधनसिद्धये ॥१६॥  
 मृगस्वेदमदाभ्यां च पूजयेन्मासमात्रकम् । कन्दर्पसमसौभाग्यो वनितासु नरो भवेत् ॥१७॥  
 एलालवङ्गक्कोलजातीभर्मित्यशो यजेत् । अब्दमात्रं ततो लोके विश्रुतः स्यात्स वैभवैः ॥१८॥  
 कर्पूरशक्लैः पूजा सर्वाभीष्टप्रदा भवेत् । पूजितैस्तैस्तु जग्धैः स्यान्नरो यात्यखिलप्रियः ॥१९॥

घृताक्त सरसों के हवन से वनितायें मोहित होती हैं। सरसों तेल से सिक्त मरिच के हवन से वनिता आती है। तैलाक्त तिल से आधी रात में हवन करने से नारी-नर-नृप या अन्य आजीवन वश में रहते हैं। बकरी के धी से अक्त बन्धूकपुष्प से आधी रात में हवन करने से सभी वनितायें उसके प्रेमरूपी क्रीड़ा से मोहित होती हैं। दूधसिक्त मल्लिका पुष्पों के हवन से राजा एवं ब्राह्मण वश में होते हैं। शतपत्री और विचकिला के हवन से भी यही कार्य होता है। उजले बछड़े वाली उजली गाय के दूध के साथ नारियल के महीन टुकड़ों और चीनी के हवन से सोना मिलता है। नारियल के महीन टुकड़ों और गुड़ को मधु से सिक्त करके पूर्वोक्त काल तक हवन करने से निश्चय ही धन मिलता है। केले के हवन से कमल एवं कलहार के हवन से अभीष्ट प्राप्त होता है। लाल उजले कुमुद उत्पल से देवी का पूजन करने से सभी तापों का नाश होता है। रक्त और श्वेत कमल से लक्ष्मीप्राप्ति के लिये पूजा करे। कुमुद से पूजा करने पर धन और यश प्राप्त होते हैं। अङ्गुल, बन्धूक, अनार के फूलों से हवन करने पर भी धन मिलता है। सौगन्धिक विचकिल कूटज शतपत्री पुत्राग गुलाब और चम्पा के फूलों से देवी की पूजा करे। इन सात फूलों में से प्रत्येक से रविवार से शनि तक सात दिनों में पूजा उक्त काल तक करने से धन-धरा-धान्य-वस्त्र से साधक भरपूर होता है।

चन्दन से नित्य अर्चन करके वाञ्छित प्राप्त करता है। काला अगर के द्रव और फूलों से नित्य पूजन सौभाग्यसिद्धि के लिये करना चाहिये। मृगस्वेद और कस्तूरी से एक महीने तक पूजा करने से साधक खियों के लिये कामदेव के समान सौभाग्यवान होता है। इलायची लवंग कक्कोल और जातिपुष्प से नित्य एक साल तक पूजा करने से साधक अपने वैभव से लोक-विच्छान होता है। कपूर के टुकड़ों से पूजा सर्वाभीष्टदायिका होती है। जग्ध से पूजा करने पर साधक सबका प्रिय हो जाता है।

### यन्त्रनिर्माणं तत्रयोगपञ्चकम्

वृत्तत्रयं तथाष्टारमञ्जं तन्मध्यतस्तथा । नवयोर्निं विधायात्र मध्ये मायां ससाध्यकाम् ॥२०॥  
 आलिख्याष्टसु कोणेषु मन्त्राणाष्टकमालिखेत् । बहिर्दलेष्विष्यि तथा लिखेद् द्विद्विकमेण वै ॥२१॥

बहिर्मर्तुकया मायास्वगया प्रतिलोमया । क्रमेण चाभिसंवेष्ट्य तेन यन्त्रेण साथयेत् ॥२२॥  
 समस्तं वाञ्छितं पूजाधारणस्थापनादिना । यन्त्रं रोचनयालिख्य भूजें वा क्षौमखण्डके ॥२३॥  
 गुलिकीकृत्य सिक्षथस्य मध्यं तद्विधाय तु । तापयेद्रात्रिषु दिनैः प्रागुक्तैः श्लियमानयेत् ॥२४॥  
 ददरेन विलिख्यैतत् पटे वा फलकोदरे । तत्र देवीं समावाह्य पूजयेत्तैर्दिनैर्भवेत् ॥२५॥  
 वशे त्रिभुवनं सर्वं नरनारीनृपादिकम् । गजवाजितरक्षवादितर्यग्जातीरपि ध्रुवम् ॥२६॥  
 तद्यन्तं सिन्धुतीरे वा नदीतीरेऽथवा लिखेत् । गैरिकेण समावाह्य देवीं तत्रैव पूजयेत् ॥२७॥  
 समस्तरोगदुःखार्तिशान्तिः स्यादुदितैर्दिनैः । लभेच्च पूजनातत्र पशुदासीधनादिकम् ॥२८॥  
 तद्यन्तं चदनैः कृत्वा पीठे तद्विनपूजनात् । पुत्रपौत्रकलत्राज्ञाधनधान्याद्विर्मान् भवेत् ॥२९॥  
 तद्यन्तं हेमिं रूप्ये वा भूजें वालिख्य धारणात् । समस्तरोगदुःखार्तिरहितो वर्धते सुखी ॥३०॥

**अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः**—प्रथमतो नवयोनिचक्रं विलिख्य तद्विहिरष्टदलकमलं तद्विहिरष्टारं तद्विहिर्वृत्तत्रयं च विलिख्य, मध्ये सप्तसाध्यं हीं इति बीजं विलिख्य तद्विहिरष्टसु कोणेषु मूलपञ्चविंशाक्षरमन्तस्याष्टौ वर्णान् विलिख्य, तद्विहिरष्टदलेष्वष्टाक्षराणि तद्विहिरष्टारेष्वापि शिष्टान्यष्टाक्षराणि विलिख्य तद्विहिरन्तराले विसर्गयुक्तयानुलोममातृकया तद्विहिरन्तराले बिन्दुयुक्तया विलोममातृकया च वेष्टयेत् । एतद्यन्तमुक्तफलदं भवति ।

सबसे पहले नव योनिचक्र बनाकर उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे, उसके बाहर अष्टकोण बनावे, उसके बाहर तीन वृत्त बनावे । चक्र में मध्य में साध्य नामसहित ‘हीं’ लिखे । उसके बाहर अष्टकोण में मूल मन्त्र के पच्चीस अक्षरों में से आठ अक्षर लिखे । उसके बाहर अष्टदल में आठ अक्षर लिखे । उसके बाहर अष्टकोण में आठ अक्षर लिखे । उसके बाहर वृत्तों के दो अन्तराल में विसर्गयुक्त अनुलोम मातृका लिखे । दूसरे अन्तराल में सानुस्वार विलोम मातृका लिखे । इस यन्त्र के पूजा, धारण एवं स्थापन से सभी वाञ्छित प्राप्त होते हैं ।

यन्त्र को गोरोचन से भोजपत्र पर या रेखमी वस्त्र के टुकड़े पर लिखे । गोली बनाकर सिक्षक में रखे । उसे तीन रातों तक आग में तपावे तो देवीं वाञ्छित स्त्री ला देती है । सिगरफ से कपड़े या फलक पर लिखकर उसमें देवी का पूजन तीन दिनों तक करे तो उसके वश में तीनों लोक, सभी नारी, राजा, हाथी, घोड़ा, तरक्षु आदि तर्यक् जाति भी हो जाते हैं ।

समृद्ध के किनारे या नदी के तट पर उस यन्त्र को गेर से लिख कर उसमें देवी का आवाहन-पूजन करे तो उसके सभी रोग, दुःख एवं कष्ट उसी दिन शान्त हो जाते हैं । इसके पूजन से पशु-धनादि भी प्राप्त होते हैं । इस यन्त्र को पीठ पर चन्दन से लिखकर तीन दिनों तक पूजन करने से साधक पुत्र, पौत्र, कलत्र, धन-धान्य से युक्त होता है । इस यन्त्र को सोने-चाँदी या भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से सभी दुःख-रोग आदि से रहित साधक सुखी होकर जीवित रहता है ।

### द्वितीयविद्या कोष्ठवयन्त्रिनिर्माणं तद्वयोगचतुष्टयञ्च

तथा—

प्राक्प्रत्ययदक्षिणोदक्ष्यं सूत्रषट्कनिपातनात् । कोष्ठेषु पञ्चविंशस्तु त्रीणि कोणेषु मार्जयेत् ॥३१॥  
 कोष्ठैर्वर्चं ततः शेषैस्त्रयोदशशभिररितम् । तन्मध्ये शक्तिमायास्थापातिख्याख्यां ततोऽभितः ॥३२॥  
 लिखेद्विद्यां ततस्तस्मिन् पूजयेदर्धरात्रके । वाञ्छितां वनितां मानकुललज्जातिलङ्घनीम् ॥३३॥  
 तृणराजदले कृत्वा यन्त्रं सर्षपहिङ्गुभिः ।

तृणराजदले तालपत्रे ।

पटुशुण्ठीमागधिकामरिचार्कपयोयुतम् ॥३४॥

निशासु सिक्षथं दीपवह्नौ संतापयेज्जपन् । विद्यां त्रयोदशार्णानु तद्विग्वक्त्रो दिनैः श्लियम् ॥३५॥  
 आकर्षयेत्र वागच्छेतत्र कामज्वराच्छतैः । अवस्थाभिश्च दशभिर्मृतिमेति सुनिश्चितम् ॥३६॥

भूर्जे वा तालपत्रे तदलिख्य स्पष्टविग्रहम् । मधूच्छिष्ठप्रतिकृतैरैर्जु तं तापयेत्था ॥३७॥  
 नरं नारीं नृपं चान्यं प्राणिनं स्नेहविहळतम् । करोति यावद्वेहान्तं ते प्रतीपा लपत्ति च ॥३८॥  
 कज्जलैर्यन्त्रमालिख्य भूर्जे क्षौमे सितेऽथवा । जपित्वा धारयेत्सर्वरोगदुःखार्तिनाशनम् ॥३९॥  
 गैरिकैश्चन्दनोपेतैरालिख्य विमलाम्बरे । तदास्तीर्य शयानस्य वैरिणो दाससन्निभाः ॥४०॥  
 वृत्तद्वयान्तरा कृत्वा षट्कोणं तस्य मध्यतः । भूः स्वगर्भगतं नाम विलिख्याश्रिषु षट्स्वपि ॥४१॥  
 षट्क्षराणि विलिखेत्सप्ताक्षर्या क्रमेण वै । यन्त्रमेतत्तालपत्रे भूर्जे क्षौमेऽकर्पत्रके ॥४२॥  
 प्रजप्य विद्यामयुतं वल्मीके निक्षिपेच्य तत् । तत्र स्थिता ये भुजगा पलायन्तेऽथ तदिने ॥४३॥  
 तद्वृद्धिकादौ संलिख्य सञ्ज्ञप्याभ्यर्थ्यर्थं कुत्रचित् । निधाय नित्यशः पूजासमेते रक्षतो गृहे ॥४४॥  
 भूतप्रेतपिशाचापस्मारवेतालाराक्षसाः । यक्षगन्धर्वभुजगवृश्चिकाद्या न तत्र वै ॥४५॥  
 तत्क्षिप्त्वा कुम्भसलिले जपित्वा विद्ययानया । सहस्रावां सलिलैरासेकः क्षेडनाशनः ॥४६॥  
 तत्पीतं जठरे प्राप्तमशेषं नाशयेद्विषम् । देहगं परमेशानि त्रिविधं भीषणात्मकम् ॥४७॥  
 तद्विलिख्य नखाग्रेण नारिकेलदले स्मरन् । तद्वृपं फणिनं विद्याजपपूर्वं नखादिना ॥४८॥  
 पीडनात्पाठनाद्वोगी पीडितः पाटितो भवेत् । एवं सर्वं त्रिप्रकारं गरलं नाशयेद्विदम् ॥४९॥  
 वालुकासु सुसंलिख्य यन्त्रमध्यर्थं देवताम् । तत्र तैवेष्टयेत्सुनं भोगिनं न ब्रजेद्वहिः ॥५०॥

अथ त्रयोदशाक्षरमन्तस्य यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्षय षट्सूत्रनिपातनात् पञ्चविंशति-कोष्ठात्मकं यन्त्रं विरच्य चतुष्कोणेषु त्रीणि त्रीणि कोष्ठानि यार्जित्वा त्रयोदशकोष्ठात्मकं वत्ररूपं निष्पाद्य मध्य-कोष्ठे हीं: इति मायाबीजं साध्यगर्भं विलिख्यावशिष्टानि विद्याया अक्षराणि प्रवेशगत्या विलिखेत् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

अथ सप्ताक्षर्या: यन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र वृत्तद्वयमध्यस्यं षट्कोणं विलिख्य मध्ये प्रणवगर्भं साध्यना-मालिख्य षट्सु कोणेषु षट्क्षराणि विलिखेत् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

पूर्ववत् पूर्व-पश्चिम और दक्षिण-उत्तर समान दूरी पर छः-छः रेखा खींचने पर पच्चीस कोष्ठ बनते हैं। उनमें से चारों कोणों में तीन-तीन कोष्ठ मिटा देने से तेरह कोष्ठों का वक्रयन्त्र बनता है। उसके मध्य में हीं के गर्भ में नाम लिखे। उसके चारों ओर विद्या के अक्षरों को लिखे। आधी रात में पूजा करे तो वांछित वनिता अपने मान-कुल और लज्जा को छोड़कर उसके पास आ जाती है। इस यन्त्र को ताङ्गत्र पर सरसों हिंग पटु सोंठ माघाथी मरिच अकवनदूध हल्दी के सिक्थक से दीप बनाकर तपाते हुए त्रयोदशाक्षरी विद्या का जप वांछित स्त्री की दिशा में मुख करके करे तो वह आकर्षित होकर कामज्वर से पीड़ित होकर आ जाती है।

भोजपत्र या ताङ्गत्र पर साध्य का चित्र बनाकर मोम में रखकर आग पर तपावे तो नर-नारी-नृप अथवा अन्य प्राणी स्नेहविहळ होकर आजीवन उसका पालन करते हैं। काजल से यन्त्र को भोजपत्र या उजले रेशमी वस्त्रखण्ड पर लिखकर जप करके धारण करने से सभी रोग-दुःख-कष्टों का नाश होता है।

गेरू और चन्दन मिलाकर सफेद कपड़े पर यन्त्र लिखकर उसे बिछाकर उस पर सोने से वैरी दासवत् हो जाता है। दो वृत्तों के अन्दर षट्कोण बनाकर उसके मध्य में हीं के गर्भ में नाम लिखे। षट्कोण के कोणों में अक्षरों को लिखे। इसे भोजपत्र, रेशमी वस्त्रखण्ड या अकवन के पत्ते पर बनावे। विद्या का जप दश हजार करके दीमक के घर में गाढ़ दे तो वहाँ पर रहने वाले सर्प उसी दिन भाग जाते हैं। इस यन्त्र को अंगूठी आदि में खुदवाकर जप कर कहीं रखका नित्य पूजा करे तो गृह की रक्षा होती है। वहाँ से भूत प्रेत पिशाच अपस्मार वेताल राक्षस यक्ष गन्धर्व सौंप बिछू भाग जाते हैं। उसे घड़े भर जल में डालकर एक हजार विद्या का जप करे और उस जल से स्नान करे तो रोग नष्ट होते हैं; तीनों प्रकार के विष उदर में हीं या देह में हों तो नष्ट हो जाते हैं। उस यन्त्र को नारियल के दल पर नखाय से लिखकर विद्या जपसहित सर्पों का स्मरण

करके उन्हें नख से पीड़ित तथा पाटित करने से वे पीड़ित और पाटित होते हैं, तीनों प्रकार के सर्पविष नष्ट होते हैं। बालू पर यन्त्र बनाकर देवता का अर्चन करे और उसे बालू से ही वेष्टित करे तो सुप्त सर्प वहाँ से बाहर नहीं निकलते।

### स्वरप्रसारणात् त्रयोदशाक्षरैः यन्त्राष्ट्रकोपदेशस्तद्विनियोगश्च

**तथा—**

अनावृत्तानि विद्यायामक्षराणि त्रयोदश। तैः षोडशस्वरोपेतैः संख्याष्टौ च शतद्वयम् ॥५१॥  
 तानि पूर्वद्युयन्त्रे तु विलिखेन्मध्यतो द्वयम्। बहिः प्राग्वत्ततस्तैः स्याद्यन्नाण्यष्टौ महेश्वरि ॥५२॥  
 तेष्वाद्यां सर्ववारेषु विनियुज्यादुदीरिते। द्वितीयादीनि यन्त्राणि सप्त भान्वादिवारके ॥५३॥  
 विनियुज्यात् प्रोक्तकर्मस्वाख्यालेखनपूर्वकम्। वाराख्यां सप्तमीयुक्तामालिखेत्साधयेति तत् ॥५४॥  
 वश्याकर्षणशान्त्याप्त्यै विद्ययादाद्ययन्त्रतः। प्रोक्तक्रमेण विधिना शान्तिमर्चनतस्तथा ॥५५॥  
 सप्तमं पूजितं क्वापि स्थापितं पोतगर्भके। न नाशयति तत्पोतमम्बुधीं सर्वदा शिवे ॥५६॥  
 तथा वारेषु तेषूक्तान्यालिख्याभ्यर्चयेच्छिवाम्। वाञ्छितेषु समस्तेषु तैर्दिनेस्तान्यवाप्नुयात् ॥५७॥  
 रोगशान्तिं जयं लाभं नानाभीष्टार्थविग्रहम्। शत्रुभङ्गं वशं नारीनृपत्यादिजन्मिनाम् ॥५८॥

विद्या के अनावृत अक्षर तेरेह हैं। उन्हें सोलह स्वरों के साथ जोड़ने पर संख्या २०८ होती है। उन्हें पूर्वादि यन्त्रों में लिखने से आठ यन्त्र बनते हैं। इनमें से पहले यन्त्र की पूजा सातो दिनों में करे। शेष सात यन्त्रों की पूजा रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार—इन सातों दिनों में करे। उनमें नाम और काम लिखे। वार का नाम लिखकर सोधे। इससे वश्य, आकर्षण, शान्ति आदि कार्य होते हैं। सातवें यन्त्र की पूजा करके जहाज के गर्भ में रख दे तो वह जहाज समुद्र में नष्ट नहीं होता है। उक्त दिनों में उक्त यन्त्र लिखकर अर्चन करे तो वांछित फल प्राप्त होते हैं। रोगशान्ति, जय, लाभ, नाना अभीष्ट, शत्रुनाश, नारी-नृ-मनुष्य उसके वश में होते हैं।

### एकविंशत्यविधिकद्विशतकोष्ठस्त्रवत्रयनिर्माणादि

प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदकच्च सूत्राण्यास्फालयेत्क्रमात्। द्वाविंशतिं ततः सैकचत्वारिंशत्तुःशतम् ॥५९॥  
 तेषु कोणेषु परितो मार्जयेत्पूर्ववल्कमात्। पञ्चपञ्चाशदन्यानि कोष्ठवत्रे महेश्वरि ॥६०॥  
 शतद्वयं सैकविंशतेषु दिक्षु त्रिकोणकम्। कुर्यात्रागवच्यतुःकोष्ठैस्तथा प्राडमध्यतः शिवे ॥६१॥  
 प्रादक्षिण्येन विलिखेत्प्रवेशक्रमयोगतः। मध्येऽवशिष्टनवकमध्ये नामोदरां लिखेत् ॥६२॥  
 मायां तदभितो मन्त्रवाणीक्रिक्रमेण वै। त्रिकोणेषु च साध्यानि लिखेद्वत्रमितरितम् ॥६३॥  
 तद्वयन्त्रं तु पटे क्षीमे वा सुसिते शुभे। विलिख्याभ्यर्च्य तद्यन्तं पोतं रक्षति वारिद्यै ॥६४॥  
 प्रागुक्तानि समस्तानि साधयेद्वत्रस्त्रपिणा। यन्त्रेणानेन कालेन प्रोक्तेन नियतं शिवे ॥६५॥  
 तां देवीं पाशसंबद्धं साध्यमङ्गुशताङ्गात्। आकर्षनीं स्वपादात्ते साङ्गलिं प्रणतं मुहुः ॥६६॥  
 रक्ष रक्षेति भाषनं स्मरन् विद्यां जपत्रिशि। साध्यो नरोऽथ नारी वा वशमेति सुनिश्चितम् ॥६७॥  
 अथवा साङ्गलिं साध्यं प्राग्वद्वादिनमङ्गुशो। प्रोतकेशसमाकृष्टं जपेत्रागवद्वशे भवेत् ॥६८॥  
 मन्त्राक्षराणां तेजोभिः परीतं वा तथाविद्याम्। स्वयमेवानयेत्तां तु स्मरन् जापैर्वशं नयेत् ॥६९॥  
 एवं सा कुरुकुल्ला ते प्रोक्ता सर्वार्थसाधिका। ललिताविग्रहा येन वशिन्यादियुता ततः ॥७०॥

इति कुरुकुल्लानित्याप्रयोगविधिः।

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर बाईंस-बाईंस रेखा खींचे। इससे चार सौ इकतालीस कोष्ठ बनते हैं। प्रत्येक कोणों में पचपन कोष्ठों को मिटाने से दो सौ इक्कोस कोष्ठों का वज्रयन्त्र बनता है। चारों दिशाओं में चार-चार

कोष्ठों को मिटाकर त्रिकोण बनावे, सबसे बीच वाले कोष्ठ के पूर्व से प्रारम्भ करके प्रवेश गति प्रदक्षिण क्रम से अक्षरों को लिखे। मध्य में अवशिष्ट नवक मध्य में हाँ के उदर में माया लिखे। उसके चारों ओर तीन मन्त्राक्षरों को लिखे। त्रिकोणों में साथ नाम लिखे। इस वत्रयन्त्र को पट्ट पर, रेशमी वस्त्र पर लिखकर पूजा करे तो समुद्र में जहाज की रक्षा होती है।

इस वत्रयन्त्र से पूर्वोक्त सबों का साधनं प्रोक्त काल में निश्चित रूप से करे। इससे देवी साध्य को पाश से बाँधकर अंकुश से मारती हुई साधक के पैरों पर गिरा देती है और वह प्रणत होकर कहता है—रक्षा करो। विद्या का स्मरण करते हुए रात में जप करे तब साध्य नर या नारी सुनिश्चित वश में होती है। अथवा साध्य को अंकुश से आकृष्ट करके ला देती है। जप करने से वह पूर्ववत् वश में हो जाता है। मन्त्राक्षरों के तेज से साधक के समीप स्वयं साध्य को ला देती है और वह जप के स्मरण से वश में होता है। इस प्रकार कुरुकुल्ला को सर्वार्थसाधिका कहते हैं।

#### वाराहीनित्याप्रयोगविधिः

अथ वाराहीनित्याप्रयोगविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (२३.१०) —

जितेन्द्रियो हविद्याशी मौनी सन्ध्यासु पूजयेत् । विद्यां जपेल्लक्षसंख्यां तद्दशांशेन तर्पणम् ॥१॥  
अर्चनं हवनं कृत्वा सिद्धमन्त्रो दयान्वितः । गुरुभक्तः सुसन्तुष्टः शान्तचित्तः क्षमान्वितः ॥२॥  
प्रयोगानाचरेद्वक्त्या यैरिषमधिलं क्षणात् । सिद्धत्ययलतो देव्या प्रसादादैभवादपि ॥३॥  
ध्यायेच्च देवीं कोलास्यां तपत्काञ्छनसन्निभाषम् । आकण्ठवनितारूपां ज्वलत्पिङ्गशिरोरुहाम् ॥४॥  
त्रिनेत्रामष्टहस्तां च चक्रं शङ्खमथाङ्गुशाम् । पाणां च मुसलं सीरमध्यं वरदं तथा ॥५॥  
दथानां गरुडस्कन्धे सुखासीनां विचिन्तयेत् । नित्यपूजासु तच्छत्तीस्तत्समानाः स्परेच्छिवे ॥६॥

#### प्रयोगेषु ध्यानभेदः

प्रयोगेषु स्मरेद् देवीं सिंहस्यां व्याघ्रगामपि । गजारूढां हयारूढां ताक्ष्यारूढां च शक्तिभिः ॥७॥  
श्यामामध्यरूणां पीतामसितां धूम्रविग्रहाम् । तत्तत्प्रयोगेषु तथा ध्यायेत्तदवाप्तये ॥८॥

#### वश्यविद्यानम्

अरुणामरुणाकल्पामरुणाभिस्तु शक्तिभिः । आवृतां पञ्चमीं ध्यायन् जपेद्वश्याप्तयेऽनिशम् ॥९॥

#### स्तम्भनप्रयोगः

पीतां पीताम्बरां पीतभूषणस्वगिलेपनाम् । पीतशक्त्यावृतां ध्यायेत्तस्तम्भनेषु तु सर्वदा ॥१०॥

वाराही नित्या प्रयोगविधि—जितेन्द्रिय रहकर, हविद्यान्त्र भोजन कर मौनावलम्बन कर सन्ध्याओं में विद्या का पूजन करके एक लाख जप करे। उसका दशांश तर्पण करे। अर्चन-हवन करके मन्त्र सिद्ध करे। वह साधक दयालु, गुरुभक्त, सन्तुष्ट, शान्त चित्त और क्षमावान रहते हुये भक्तिपूर्वक काम्य प्रयोग करे तो देवी की कृपा और वैभव से सभी इष्ट उसे तुरन्त सिद्ध होते हैं। नित्य पूजा में देवी का इस प्रकार ध्यान करे कि देवी दीप्यमान स्वर्ण के समान प्रदीप्त हैं, कण्ठपर्णत स्त्री रूप में हैं, उनके माथे पर जटाजूट है, तीन नेत्र हैं, आठ हाथों में चक्र, शंख, अंकुश, पाश, मुसल, माला, अभय एवं वर क्रमशः धारण की हुई हैं एवं गरुड़ के पीठ पर सुखपूर्वक आसीन हैं; साथ ही उनकी शक्तियाँ भी उन्हीं के समान हैं। प्रयोगों में देवी को सिंह अथवा व्याघ्र पर आसीन तथा उनकी शक्तियों को हाथी, घोड़े और गरुड़ पर आसीन ध्यान करे।

प्रयोगानुसार श्याम, अरुण, पीत, असित एवं धूम्र वर्ण का ध्यान करे। वश्य-प्राप्ति के लिये देवी को सदा अरुण-वर्णा, लाल वस्त्रधारिणी एवं अरुणवर्णा शक्तियों से आवृत ध्यान करे। स्तम्भन कार्यों में सर्वदा पीतवर्णा, पीताम्बरधारिणी पीत आभूषण एवं माला धारण की हुई तथा पीत शक्तियों से आवृत ध्यान करे। दुर्गम मार्गों में श्यामवर्णा, सिंहारूढ़ा, भीमविग्रहा एवं अपने ही समान अनन्त शक्तियों से आवृत ध्यान करे।

## मार्गरक्षाविद्यानम्

इयामां च दुग्मे मार्गे सिंहस्थां भीमविग्रहाम् । शक्तिभिः स्वसमानभिरनन्ताभिः समावृताम् ॥११॥  
 चिन्तयन् प्रजपन् विद्यां प्रजपेच्छक्तिमध्यगम् । स्वात्मानं भावयन्मन्त्री प्रयात्यक्लिष्टवैभवः ॥१२॥  
 सिंहक्षट्वीपिशरभखद्गिसैरभसूकरैः । गवयैर्भुजगैर्भीमैर्दन्तिभिर्भदमन्धरैः ॥१३॥  
 चौरैः कुन्तप्रहरणैः कूरैरन्यैर्भयावहैः । भूतप्रेतपिशाचादैराकुले रणसङ्कटे ॥१४॥  
 अलब्ध्यमार्गे विपिने गिरिशृङ्गे तथाविद्ये । स्मरन् देवीमुक्तरूपाणां निरातङ्को ब्रजेत्सुखी ॥१५॥

इस प्रकार के ध्यान करके विद्या का जप शक्ति के मध्य में अपने को मानकर करे तो मन के वैभव से अतिभयानक एवं मदमत रिंह, हाथी, शरभ, खद्गी, धैसा, सूकर, साँढ़, सर्प, भयानक हाथी भी भाग जाते हैं। चोर, कुन्त, प्रहरण, अन्य क्रूर एवं भयावह भूत-प्रेत-पिशाच से आकुल युद्ध के संकट में या जंगल में रास्ता भूलने पर, पर्वतशिखर पर देवी का स्मरण उक्त रूप में करके साधक आतंकहित होकर सुखी रह सकता है।

## समरविजयध्यानम्

समरेष्वपि भीमेषु पत्त्यश्वरथदन्तिभिः । सङ्कटेषु दुरन्तेषु स्मृत्वेत्यं विजयी भवेत् ॥१६॥  
 नखरं क्षुरिकां खद्गां बाणं शूलं गदां सुणिम् । चक्रं च दक्षिणैर्बिश्वद्वाहुभिर्भीमविग्रहाम् ॥१७॥  
 तर्जनीं खेटकं चर्मं चापं डमरुकं हलम् । पाशं शङ्खं च दधतीमन्यैर्नीलां स्वशक्तिभिः ॥१८॥  
 गजाधिरूढां द्विरैः शक्त्यासूरैः समावृताम् । वैरिसेनां समस्तां च निपात्य परिवैर्भुवि ॥१९॥  
 तदुपर्यभितः प्रेष्टुक्तदलीकेतुसंकुलम् । चरन्तीं शक्तिवृद्धैश्च भीमारावैर्मदोद्धतैः ॥२०॥

हाथी, घोड़े एवं रथ पर सवार सैनिकों के साथ भयंकर युद्धरूपी घोर संकट के समय देवी का स्मरण करने पर संकट दूर हो जाते हैं और विजय प्राप्त होती है। दाहिने आठ हाथों में नखर, क्षुरिका, खद्ग, बाण, शूल, गदा, सुणि, चक्र धारण की हुई देवी भयंकर रूप की हैं। बाँयें आठ हाथों में तर्जनी, खेटक, ढाल, चाप, डमरु, हल, पाश, शङ्ख धारण की हुई अपनी नीली शक्तियों के साथ वैरी के हाथी सवार एवं पैदल सारी सेना को परिष्ठ से मार गिराती हैं। उन पर अपनी शक्तिवृद्ध के साथ घोर नाद करती हुई मदोद्धत विचरण करती हैं।

## रिपुमारणप्रयोगादि

भानुमण्डलमध्यस्थां शूलप्रोतारिविग्रहाम् । तद्देहनिर्यद्रक्ताक्तशूलां देवीं विचिन्तयेत् ॥२१॥  
 कण्ठमात्रे जले स्थित्वा जपेद्विद्यामनन्धीः । सप्तरात्रप्रयोगेण वैरिणं मारयेज्जवरात् ॥२२॥  
 देव्याः सपरिवाराया हेतिभिः शकलीकृतम् । रिपुदेहं स्मरन् फेरुकङ्ककव्यादकुकुरैः ॥२३॥  
 भक्ष्यमाणं जपेद्विद्यां त्रिदिनं सलिले स्थितः । यावत्तावद्वैररिहतं श्रुत्वा समुत्तरेत् ॥२४॥  
 द्विभुजां धूप्रवर्णा च साध्यजिह्वाहृदम्बुजे । उत्पाटयन्तीं सञ्चिन्त्य जपञ्जन्तुं यमं नयेत् ॥२५॥

सूर्यमण्डल में स्थित देवी के विग्रह से शूल निर्गत होकर शत्रु के शरीर में घुस रहे हैं—ऐसा चिन्तन करके कण्ठ तक जल में खड़े होकर एकाग्रता से विद्या का जप सात रातों में करे तो वैरी की मृत्यु ज्वर से होती है। ऐसा चिन्तन करे कि देवी अपनी शक्तियों के साथ शत्रुओं के शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर रही हैं और सियार, गिद्ध, कौए, कुत्ते उसे खा रहे हैं। इस प्रकार का ध्यान करते हुए जल में खड़े होकर विद्या का जप तीन दिन तक करे अथवा तब तक करे जब तक कि वैरी के मृत्यु की खबर न सुने। दो भुजी धूप्रवर्णा देवी साध्य के जीभ को उखाइ रही हैं—ऐसा चिन्तन करते हुए जप करे तो शत्रु यमराज द्वारा ले जाया जाता है।

## क्रोधस्तम्भनध्यानम्

तथाविधां पीतवर्णा स्मृत्वा सञ्चाप्य वैरिणः । क्रोधं संशमयेद्वादे विवादे समरेऽपि च ॥२६॥

उसी प्रकार पीतवर्णा देवी का ध्यान करे कि वह वैरियों के क्रोध को शान्त कर रही है और वाद-विवाद में भी उनका शमन कर रही है।

### सेनाविद्रावणादि तद्व्यानञ्च

**ताक्ष्यारूढाञ्च तां ताक्ष्यगणस्थाभिश्च शक्तिभिः:** । वृत्तां ताक्ष्यगणोदामपक्षमारुतमूर्छिताम् ॥२७॥

**सृत्वा जपेद्विषोः सेनां दूरतो द्रावयेत्क्षणात् । तथैवाष्टभुजैः खड्गान् दधानां शक्तिभिर्वृताम् ॥२८॥**

**तथैवारातिपृतनां समरे नाशयेत्क्षणात् । विकीर्य केशानरुणवारवाणधरो हयैः ॥२९॥**

**तरक्षुकेसरिकपिकोलर्क्षगरुडस्थितैः । शक्तिवृन्दैश्चशूलाग्रप्रोतपत्त्यश्ववारणैः ॥३०॥**

**क्रीडाविनोदां माणिक्यमण्डपे सिंहविष्ट्रे । ध्यायत्रातेः पृतनां नाशयेत्वैर्बलैरृपः ॥३१॥**

देवी गरुड़ पर सवार हैं, वे गरुड़ों पर सवार अपनी शक्तियों से धिरी हैं। गरुड़ों के उदाम पङ्कों की हवा से शत्रु मूर्छित हैं। इस प्रकार का ध्यान करते हुये मन्त्र जपने से वह शत्रुसेना को क्षण भर में भगा देती है। उसी प्रकार आठ भुजाओं में तलवार लिए हुए शक्तियों से धिरी हैं—ऐसा ध्यान करने से शत्रुसेना का नाश क्षण भर में कर देती है। बिखरे केश, अरुण वर्ण, हाथों में बाण लिये, घोड़े, लकड़बग्घा, शेर, कपि, भालू, गरुड़ पर सवार शक्तियों के झुण्ड के साथ त्रिशूल के प्रहर से हाथी-घोड़ों को मार कर गिरा रही हैं। माणिक्य मण्डप में सिंहचर्म पर बैठकर क्रीड़ा-विनोद करती देवी का ध्यान करने से शत्रुसेना का नाश राजा अपने बल से कर देता है।

### स्तम्भनीयपञ्चाङ्गादिकम्

**पीतप्रसूतैः पीताभामर्चयेत्स्तम्भनाय वै । प्रागुकैर्मण्डलाद्यैस्तु वासरैः परमेश्वरि ॥३२॥**

**अरातीनां गतिं सेनां मतिं जिह्वां समुद्यमम् । इष्टमन्यच्च सकलं स्तम्भयेत्साधकः क्षणात् ॥३३॥**

स्तम्भन के लिये पीते वर्ण का ध्यान पूर्वोक्त मण्डल के प्रथम दिवस में करे तो शत्रुसेना की गति, मति, जीभ, उद्यम एवं अन्य जो भी अभीष्ट हो, सबों को स्तम्भन हो जाता है।

### रिपुवश्यप्रयोगः

**अरुणामरुणैः पुष्परच्येन्मध्यरात्रतः । निहन्तुकामप्याशु रिपुं कुर्याद्विधेयताम् ॥३४॥**

लाल वर्ण की देवी का अर्चन लाल फूलों से आधी रात में करे तो शत्रु वशीभूत होता है।

### मारणप्रयोगः

**विषनाड्यां दग्धयोगे मृतियोगे सनाशके । यमकण्टककाले वा कृष्णैः पुष्पैस्तथाविधाम् ॥३५॥**

**पूजयेत्तद्वैः शत्रून् जीवितेशापुरं नयेत् ।**

विष-नाड़ी-दग्ध योग, मृत्युयोग, यमकण्टक काल में काले फूलों से उनके दिनों में विधिवत् पूजा करने से शत्रु का नाश होता है।

### लक्ष्मीप्राप्तिप्रयोगः

**श्यामां च सौरभाद्यैस्तैः पुष्परभ्यच्च वासरैः ॥३६॥**

**तद्विनैरिन्द्रिराघ्यः स्यादरोगः सुमना वशी । सुखी जीविति भूमौ स शतं वर्षाणि विश्रुतः ॥३७॥**

श्याम वर्ण की देवी का सुगन्धित पुष्पों से उक्त दिनों में पूजा करने से साधक धनाघ्य होकर निरोग एवं सुखी मन से सौ वर्षों तक जीवित रहकर पृथ्वी पर विख्यात होता है।

### होमद्रव्यभेदेन फलभेदः

**होमं कुर्यात्था रात्रौ चतुरस्तेऽथ कुण्डके । हरिद्रामिलितैरनैस्तिलैर्मध्यैः सतप्दुलैः ॥३८॥**

पीतैः पुष्पैस्तथा पीतैः फलैस्तालदलैरपि । सकलीकृत्य लिखितसाध्यवर्णसमन्वितैः ॥३९॥  
 निशाघृतसमोपेतैः स्तम्भयेत्त्रागुरीरितान् । निशाचूर्णैर्दृतकैस्तु होमात्संस्तम्भयेत्तथा ॥४०॥  
 अर्धरात्रेऽरिवृक्षेष्वद्वहौ तद्योनिदेहजैः । मांसैस्तद्वेष्मभूतस्नेहाकैहवनाद् दिनैः ॥४१॥  
 मारयेद्वैरिणं रोगशस्त्रशृङ्गफणीजलैः । दहनैर्वारुणैरन्यैः प्रमादैः कण्टकादिभिः ॥४२॥  
 निर्धारितरुकुड्यादिपतनाद् विषभक्षणात् । शत्रुभिर्वा प्रयोगादी न भवन्त्येव भङ्गुरा ॥४३॥  
 धूमां कङ्कसमारुढां नखराद्यायुधैर्युताम् । ध्यायन् रिपोरथमे तु राशौ छागधृताप्लुतैः ॥४४॥  
 मरीचैः सर्षपैहैर्मात् तद्विनैर्मारयेद्विपून् । तीव्रदाहज्ज्वरैर्ग्रस्तं विसंजं विकृताङ्गकम् ॥४५॥

रात में चतुरस्र कुण्ड में हल्दीमिश्रित अन्न, तिल, उड्ड, चावल, पीले फूल, पीले फल एवं ताड़फल को मिलाकर साध्य वर्णसमन्वित हल्दी धी से हवन करे तो स्तम्भन होता है। धृताकृ हल्दी चूर्ण के हवन से स्तम्भन होता है। आधी रात में शत्रु वृक्ष की अग्नि में शत्रुयोनि देह के मांस से निकाला गया तेल का हवन उक्त दिनों तक करने से देवी वैरियों को रोग, शस्त्र, शृंग, सर्प, जल, अग्नि, दाह, प्रमाद, कण्टक के निर्धारित से, पेढ़ के गिरने से, विषभक्षण से नष्ट कर देती है। शत्रु के ये प्रयोग नष्ट नहीं होते हैं। धूपव्रणा गिर्द पर सवार तेज आयुधों से युक्त देवी का ध्यान करके शत्रु की अष्टम राशि में छाग मास धृत प्लुत करके मरिच सरसों मिलाकर हवन करने से आठ दिनों में शत्रु की मृत्यु तीव्र दाहज्ज्वर से ग्रस्त होकर, विसंज होकर एवं विकृत अंग वाला होकर होती है।

#### ऐश्वर्यप्राप्तिहोमः

बालाकार्भां स्मरन्नाद्यहेतिभिः संयुतां शिवाम् । सरूपवत्सारुणगोधृताकैररुणैः शुभैः ॥४६॥  
 प्रसूनैः किंशुकोद्भूतैस्तथा बन्धुकसंभवैः । जपाप्रसूनैः पालाशैः करवीरसमुद्भवैः ॥४७॥  
 कह्लारैरुत्पलै रक्तैः कमलैः पाटलोद्भवैः । अशोकजैः कुसुम्पोत्यैरन्यैः पुष्पैश्च लोहितैः ॥४८॥  
 हवनानृपतुल्यः स्यादैश्वर्येणाज्ञया धनैः ।

नवोदित सूर्य की लाल आभा के समान वर्ण की प्रथम देवी को शस्त्रों से युक्त स्मरण करते हुये उनसे सरूप सवत्सा लाल गाय के धी से अक्त लाल फूलों; जैसे—पलाश, बन्धुक, अङ्गुह, कनैल, कल्हार, उत्पल, लाल कमल, गुलाब, अशोक, कुसुम्प आदि के हवन से राजा के समान ऐश्वर्य एवं धन से युक्त होता है।

#### वशयादिकरणहोमः

अन्यैरपि च तत्साम्यकरैरङ्गैः सुनिश्चितम् ॥४९॥  
 अरुणां नखराद्यैश्च युतां ध्यायन् समाहितः । मध्यरात्रे हुनेत् साध्यदिङ्मुखो मरिचैस्तथा ॥५०॥  
 प्रोक्तैर्दनीर्णयो नारी नरलोकोऽपि वा वशे । भवेत्कीर्तिनिरायुक्तश्चिरं जीवति भूतले ॥५१॥

उसके समान ही हाथों और अंगों से युक्त लाल वर्ण की तेज शस्त्रों से युक्त देवी का ध्यान करके आधी रात में साध्य की दिशा की ओर मुख करके मरिच से हवन उक्त दिनों तक करे तो नर-नारी-राजा और लोक भी वश में होता है एवं साधक कीर्तियुक्त तथा लक्ष्मीवान होकर पृथ्वी पर बहुत वर्षों तक जीवित रहता है।

#### रिपुसेनास्तम्भनयन्त्रम्

विलिख्य भूपुरं मध्ये निजसाध्यं समालिखेत् । भौमाक्षराणि तद्वाह्ये दशाग्रादभितो लिखेत् ॥५२॥  
 बहिरष्टच्छदं पद्मं कृत्वा तत्र लिखेत्कमात् । मन्त्राक्षराणि ऋतुशस्तद्विवृत्तयुग्मकम् ॥५३॥  
 तत्रापि पार्थिवान् वर्णान् बहिः षट्कोणमालिखेत् । तत्कोणेष्वन्तरालेषु मन्त्राणान् भूदशान्वितान् ॥५४॥  
 विलिखेत् प्रावदभितो बहिवृत्तद्वयं लिखेत् । विलोमां मातृकां तत्र न्यस्य भूमिपुरं बहिः ॥५५॥  
 कृत्वानुलोमामालिख्य मातृकां मूलविद्यया । पूजयन्नरिखिलं लोकं स्तम्भयेदरिवाहिनीम् ॥५६॥

**अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः**—तत्र मध्ये भूपुरं विलिख्य तन्मध्ये साध्यनाम लिखित्वा तद्विः पार्थिववर्ण-दर्शभिरावेष्ट्य, तद्विहरष्टदलपद्मं निर्माय दलेषु मूलमन्त्राक्षराणि प्रतिदलं घटघट् क्रमेण विलिख्य, तद्विहर्वन्द्वयं विधाय तदन्तराले पार्थिववर्णदर्शभिरावेष्ट्य, तद्विः घट्कोणं विलिख्य तत्कोणेषु मन्त्रवर्णान् पार्थिवार्पणसिहितान् घटघट् क्रमेण विलिख्य, तद्विहर्वन्द्वयं विधाय तदन्तराले विलोममातृकाक्षरैर्वेष्ट्येति। तदन्त्रमुक्तफलदं भवति।

पहले भूपर बनाकर उसमें साध्य का नाम लिखे। उसके बाहर दश पार्थिव वर्णों को लिखकर उसे वेष्टित करे। उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर दलों में मूल मन्त्र के छः-छः अक्षरों को लिखे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर अन्तराल में दश पार्थिव वर्णों को लिखे, उसके बाहर घट्कोण बनाकर कोणों में छः-छः मन्त्रवर्णों के साथ पार्थिव वर्णों को भी लिखे। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर अन्तराल में विलोप मातृका लिखे। उसके बाहर भूपर बनाकर अनुलोप मातृका और मूल विद्या को लिखे। इसके पूजन से सारे संसार का स्तम्भन के साथ-साथ शत्रुसेना का भी स्तम्भन होता है।

सर्वस्तम्भनयन्त्रम्

तथा—

नवासं वृत्तयुगम् च वस्वसं तदद्युयं बहिः । चतुरसं च संलिख्य मन्त्राणां षट्षडलिखेत् ॥५७॥

अष्टान्तरालेष्वैकेकं बाह्यवृत्ते तु मातृकाम् । चतुरस्ते च विलिखेत् प्रतिलोमानुलोमकाम् ॥५८॥  
साध्याख्यां सर्वतो लिख्याद्यायेदृष्टभुजां शिवाम् । स्तम्भः स्यात्यूर्वमुक्तानां विधानात्परमेश्वरि ॥५९॥

अथैतद्यन्तरचानप्रकारः— तत्र प्रथमतो नवास्त्रं विलिख्य तद्विहृतद्वयं तद्विहितसुकोणं तद्विहृतद्वयं तद्विहितशुरसं विलिख्य, मध्ये साध्यनाम कर्मसहितं विलिख्य नवकोणेषु प्रतिकोणं षट्षट् क्रमेण मूलमन्त्राक्षराणि विलिख्याष्टकोणेष्वपि तथैवाष्टकोणान्तरालेष्वक्षेपेकं मूलमन्त्राक्षरं विलिख्य, मध्यवृत्तान्तरालद्वयेऽपि पार्थिववर्णान् प्रागुक्तविधिना साध्यसहितान् विलिख्य, बाह्यवृत्तान्तरालेषु मातृकाक्षरैः संवेष्य तद्विहितशुरसे प्राग्वत् प्रतिलोमानुलोमातृकां विलिखेत्। तद्यन्तमुक्तफलदं भवति।

सबसे पहले नवकोण बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर अष्टकोण बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर चतुरस्र बनावे। मध्य में साध्य नाम-कर्म लिखे। नव कोनों में प्रतिकोण छः-छः मूल मन्त्राक्षर लिखे। अष्टकोणों में और उनके अन्तरालों में एक मूल मन्त्राक्षर को लिखे। मध्य वृत्तों के अन्तराल में दश पार्थिव वर्णों को साध्य के नाम के साथ लिखे। बाह्य वृत्त के अन्तराल में मातृकाओं को लिखे। उसके बाहर चतुरस्र में प्रतिलोम-अनुलोम मातृकाओं को लिखे। अष्टभुजी देवी का ध्यान करे। इससे समस्त लोक का स्तम्भन होता है।

रोगशान्तिकरणन्त्रम्

तथा—

वृत्तं त्रयसं पुनर्वृत्तं षडस्त्रं वृत्तशुणिकम् । अष्टासं तद्विहिर्वृत्तमिति कृत्वा निवेदयेत् ॥६०॥

एकं मध्ये बहिः कोणेष्वन्तरालेषु च क्रमात् । त्रयं त्रयं समालिख्य बहिः शिष्टं तु पार्थिवैः ॥६१॥

विलिख्य साध्यनामापि जपित्वाभ्यर्थं साधकः । स्थापयेत् क्वापि तत्रैव नित्यशक्ष बलिं क्षिपेत् ॥६२॥

कृत्वा षट्टकोणानि षट्कोणानि पृथक् पृथक् । क्रमात् त्रिकोणवृत्तान्तरालान् षट्कोणसंयुतान् ॥६ ३॥

बाह्यात् क्रमेण मध्यानं नक्षत्रतिथिवारयुक् । विलिखेल्लिपिः सर्वा मातृकां शक्तिसंयुताम्॥६४॥

साध्यं सप्तसु मध्येषु विलिखेच्च प्रदक्षिणम् । मायामध्यगतं देवि धारयेत् सर्वसिद्धये ॥६५॥

तप्रेतपिशाचादिशान्त्यै सर्वार्तिशान्त्ये । गजवाई

‘एतेषां पृथक् पृथक्करणे सुगमत्वान्न विस्तारितम्।

वृत् बनावे। उसके बाहर अग्रकोण बनावे। उसके बाहर वृत् बनावे। मध्य में एक कोण में तीन-तीन मन्त्राक्षरों को लिखे। उसके बाहर अवशिष्ट पर्थिव वर्णों को नामसहित लिखे। साधक इसे स्थापित करके नित्य बलि प्रदान करे। षट्कोण के कोणों में पृथक्-पृथक् त्रिकोण-वृत् के अन्तराल में षट्कोण युक्त बाहर अन्दर की तरफ नक्षत्र-तिथि-वारयुक्त मातृकाओं को लिखे। साथ्य का नाम सातों में मध्य में प्रदक्षिणक्रम से लिखे। मध्य में माया लिखे और इसे धारण करे। इससे सभी प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं। भूत-प्रेत-पिशाचादि की शान्ति होती है एवं हाथी, घोड़े, गदहे, ऊँट के रोगादि नष्ट होते हैं।

### स्तम्भकरकोष्ठयन्त्रम्

**तथा—**

**प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष्य रेखा द्वादशा संलिखेत् । रेखाग्रात्सर्वतः शूलांस्तनमध्याग्रे च पार्श्वयोः ॥६७॥**

**स्तम्भयेति समालिख्य मध्यकोष्ठेऽरिनाम च । परितो विलिखेन्मन्त्रवर्णन् भौमसमन्वितान् ॥६८॥**

**गैरिकेणाथ निशया तालेन विलिखेच्छुभम् । स्थापयेद्वित्तिमध्ये च भूमौ च क्रमतः शिवे ॥६९॥**

**भूर्जं वा कर्पटे लोहे शिलायां वा समालिखेत् । गृहपत्तनयोलोहदृषदोरिष्टासिद्धिदम् ॥७०॥**

**नित्यशः पूजयेत्पुष्पैः सुगन्धैः प्रजपेत्तथा । यावत्फलाप्ति कुर्वीत नियतं संध्ययोद्धयोः ॥७१॥**

**इदमपि यन्त्रं सुगमम्।**

पूर्व से पक्षिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर बाहर-बाहर रेखा खीचे। सभी रेखाओं में त्रिशूल बनावे। त्रिशूल के मध्य शूल में तथा पार्श्वों में 'स्तम्भय' लिखे। मध्य कोष्ठ में शत्रु का नाम लिखे। इसके चारों ओर मन्त्रवर्णों और दश पर्थिव अक्षरों को लिखे। यन्त्र को गेरू से अथवा हल्दी से ताड़पत्र पर लिखकर दीवाल पर या भूमि पर स्थापित करे। भोजपत्र पर, खपड़ा पर, लोहे पर या पत्थर पर लिखकर घर में या बन्दरगाह में स्थापित करे तो सुखदायक होता है। अरिष्ट की शान्ति होती है और इष्ट की सिद्धि होती है। नित्य सुगन्धित फूलों से इस यन्त्र की पूजा करे एवं तब तक दोनों सन्ध्याओं में जप करे जब तक फल प्राप्त न हो जाय।

### अभीष्टदमहावत्रयन्त्रम्

**प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्ष्य कुर्यात्सूत्राणि षोडशा । तैस्तु कोष्ठानि जायन्ते पञ्चविंशाच्छतद्वयम् ॥७२॥**

**तेषु कोष्ठेषु परितो मार्जयेत् प्रागवदीश्वरि । अष्टाविंशतिकोष्ठानि ततः शिष्टेषु दिक्षविषि ॥७३॥**

**प्रागवदेकेकतः कुर्यात्त्रिकोणानि यथाविधि । मध्ये त्रिषु तु कोष्ठेषु साध्यसाधककर्म च ॥७४॥**

**उपर्यथो मध्यतश्च शेषेषु प्रागवदालिखेत् । मन्त्राणानिग्रमारभ्य विलिखेदभितः शिवे ॥७५॥**

**एतद्वन्नं महायन्त्रं समस्ताभीष्टदायकम् । यत्रैतत्स्थापितं लोहशिलादिलिखितं शिवे ॥७६॥**

**तत्र चोरप्रहव्याधिरिपुसर्पसमुद्धवाः । भूतप्रेतपिशाचादिकोपजाश्वाप्युपल्वाः ॥७७॥**

**न भवन्ति कदाप्यत्र सम्भवन्ति च संपदः । वास्तुमर्मादिदुःखादि शमयेद्देहं च यत् ॥७८॥**

**यस्मिन् गृहे स्थापितं तद्वन्नं तद्वर्तिनाम् । कृत्याभिचारक्षुद्रादिपीडा न भवति ध्रुवम् ॥७९॥**

पूर्व से पक्षिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर सोलह रेखा खीचे। इससे दो सौ पच्चीस कोष्ठ बनते हैं। चारों कोणों में अद्वाईस कोष्ठ मिटाने से एक सौ तेरह कोष्ठ बचते हैं। चारों दिशाओं में एक-एक कोष्ठ में त्रिकोण बनावे। बीच वाले तीन कोष्ठों में साध्य नाम एवं कर्म का नाम लिखे। मध्य कोष्ठ के आगे से प्रारम्भ करके पूर्ववत् मन्त्राक्षरों को लिखे। यह वत्रयन्त्र सभी अभीष्टों का दायक होता है। लोहपत्र अथवा शिलादि पर लिखकर जहाँ यह स्थापित रहता है, वहाँ चोर, ग्रह, व्याधि, शत्रु, सर्प, भूत, प्रेत, पिशाच आदि के कोष्ठ से उपद्रव कभी नहीं होते। सम्पत्ति बढ़ती है। घर के वास्तुदोषों को यह शान्त करता है। जिस घर में यह यन्त्र स्थापित रहता है, उसमें रहने वालों को कृत्या अभिचार क्षुद्रादि पीड़ा नहीं होती।

## वत्रवत्राभियन्त्रम्

वाव्यग्निनैकृतेशं च कुर्याद् द्वादशसूत्रकम् । तैवर्ज्ञस्पदोषानि सैकविंशं शतं भवेत् ॥८०॥  
 तेषु मध्ये समालिख्य साध्यनाम ततो बहिः । अग्राद्यभित एवान्यान्यक्षराणि समालिखेत् ॥८१॥  
 निर्गमेन महीवर्णपूर्वाणि क्रमतः शिवे । यत्रैतत् स्थापितं लोहशिलादिलिखितं शिवे ॥८२॥  
 रोगभूतप्रहोमादपिशाचापस्मृतिद्विषः । अन्यानि क्लेशकारीणि यानि तानि विनाशयेत् ॥८३॥  
 प्रोक्तेव्वातिष्ठपि तथा तद्वत्रं गैरिकैर्भूवि । विलिख्य मध्ये कुम्भं तु क्षीरद्रुक्वाथपूरितम् ॥८४॥  
 निधाय देवीं सलिले समावाह्नाभिपूज्य च । स्पृशञ्जलं जपेद्विद्यां सहस्रत्रयमात्मवान् ॥८५॥  
 तैजलैरभिष्ठेतं गदिनं प्राड्मुखं ततः । तैः क्लेशैर्मुक्तदेहस्तु सुखी जीवति भूतले ॥८६॥

वायव्य से अग्नि और नैऋत्य से ईशान तक बाहर रेखा खीचे। इससे एक सौ इक्कीस कोष्ठों का वज्रयन्त्र बनता है। उसके बीच वाले कोष्ठ में साध्य नाम लिखे। उसके बाहर चारों ओर अन्य मन्त्राक्षरों को निर्गम क्रम से पार्थिव वर्णों के बाद लिखे। लोहा पत्थर आदि पर लिखित यह यन्त्र जहाँ स्थापित रहता है, वहाँ रोग-भूत-ग्रहोम्माद-पिशाच-अपस्मृति आदि अन्य दुःखों का नाश होता है।

उक्त दुःखों में उसी प्रकार का यन्त्र भूमि पर गेहू से लिखे। मध्य में कुम्भ स्थापित करे। उसमें दूध वाले वृक्षों के वाक्य भरे। उसे जल में रखकर देवी का आवाहन करके पूजा करे और जल को स्पर्श करके तीन हजार जप करे। रोगी को पूर्वमुख बैठाकर उस जल से स्नान करावे। इससे रोगी निरोग होकर पृथ्वी पर सुखपूर्वक जीवित रहता है।

## अखिलसिद्धिकरयन्त्रम्

विद्याप्राप्त्यभिषेकं तु वत्रेऽस्मिन् कोष्ठवत्रके । सैकविंशशते वापि कुम्भं संस्थाप्य सेचयेत् ॥८७॥  
 वेदाङ्गुलपरिभ्रान्त्या वृत्तं कृत्वा ततो बहिः । द्व्यज्ञुले द्व्यज्ञुले कुर्यादिकादश ततः क्रमात् ॥८८॥  
 तेषु द्व्यज्ञुलमानेषु तिर्यक्सूत्राणि पातयेत् । एकादश ततसेषु प्राड्मध्यात् प्रदक्षिणम् ॥८९॥  
 भूदशार्णेस्तु तां विद्यामालिखेन्निर्गमक्षमात् । रेखाग्राणि च शूलानि कृत्वा साध्यं च मध्यतः ॥९०॥  
 तद्यन्तं प्राग्वदखिलविनियोगेषु योजितम् । नासाध्यमस्ति भुवने विद्यया सिद्धयानया ॥९१॥

इति वाराहीनित्याप्रयोगविधिः।

कोष्ठ वज्रयन्त्र में एक सौ बीस कुम्भ स्थापित करके उन्हें मन्त्रित करे। उसके बाहर चार अंगुल मान का वृत्त बनावे। उस वृत्त को दो-दो अंगुल मान के ग्यारह भाग में बाँटे। उनमें दो अंगुल के मान से ग्यारह रेखा खीचे। पूर्वमध्य से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से रेखा खीचे। दश पार्थिव वर्णों के साथ मन्त्राक्षरों को लिखे। रेखाओं में त्रिशूल बनावे। उनके मध्य शूल में पूर्ववत् विनियोग लिखे। संसार में इस विद्या से कुछ भी असाध्य नहीं होता।

## कौतुकप्रकरणम्

अथ कौतुकप्रकरणम्। श्रीतन्त्रराजे (३.१)—

अथ षोडशनित्यानां विद्याकौतुकिनामिह । चमत्कारकरीं विद्यां वदामि शृणु सुन्दरि ॥१॥  
 सिद्धसारस्वतं मृत्युञ्जयं त्रिपुटगारुडे । अश्वारूढामन्त्रपूर्णा नवात्मानं नवात्मिकाम् ॥२॥  
 ततश्च देवीहृदयं गौरीविद्यां च लक्षदाम् । निष्क्रत्रयप्रदामिष्टवादिनीं च मतङ्गिनीम् ॥३॥  
 राज्यलक्ष्मीं महालक्ष्मीं सिद्धलक्ष्मीमनन्तरम् । गोपालभेदानौषध्यान् वदाम्युक्तक्रमेण वै ॥४॥

कौतुकप्रकरण—तन्त्रराज में भगवान् शिव ने कहा है कि सोलह नित्याओं की कौतुक विद्याओं में चमत्कारकरी विद्या को कहता हूँ। सिद्धसारस्वत, मृत्युञ्जय, त्रिपुट, गारुड, अश्वारूढ़ा, अन्त्रपूर्णा, नवात्मा, नवात्मिका है। तब देवीहृदय,

गौरी विद्या लक्षदा है। तीन निष्ठ देने वाली इष्टादिनी मातडी है। राज्यलक्ष्मी, महालक्ष्मी और सिद्धलक्ष्मी है। गोपालभेद, औषध आदि क्रम से कहता हूँ।

## सिद्धसारस्वतविद्या

शुचिः स्वेन ततो माया वियद्वाहस्ववहियुक् । हंसहत्तेजसां	योगाद्	द्युतिदाहचरस्वकैः ॥५॥
पुनश्च हंसहृद्दंसद्यदाहवनैरपि । समायैरुदिता	विद्या	पञ्चाणीमृतविग्रहा ॥६॥
'ऐं हीं श्रीं हसखफे वहसहहौः'		

'ऐं हीं श्रीं हसखफे वहसहहौः' यह पाँच अक्षरों की विद्या अमृतविग्रहा है।

## विद्यासाधनप्रकारः

पटलेऽस्मिननुक्तानामङ्गानि	निजविद्याया । मायया वा विदध्याच्च ध्यानं चाद्यामुदीरिते ॥७॥
पयोव्रतः पञ्चलक्षं जपित्वा कुलसुन्दरीम् । ध्यात्वा सिद्धमनुः पश्चाद्विदध्याद्विनियोगकम् ॥८॥	
अनया मन्त्रितैरद्दिः शोधयित्वा तु कन्यकाम् । पाययित्वा च तां ब्रूयाच्छ्लोकयेति समाहितः ॥९॥	
गङ्गाप्रवाहवत्तस्या भारती निःसरेन्मुखात् । आचष्टे च त्रिकालस्थानर्थात् पृष्ठा महाद्वृतम् ॥१०॥	

इस पटल में अंगों के नाम नहीं कहे गये हैं। निज विद्या या माया से ध्यान आदि करे। पयोव्रत रहकर कुलसुन्दरी का पाँच लाख जप करे। ध्यान करके सिद्ध मन्त्र का विनियोग करो। इस सिद्ध मन्त्र से मन्त्रित जल से कन्या का शोधन करे एवं कुछ जल पिलाकर समाहित होकर श्लोक सुनाये तब उस कन्या के मुख से गंगाप्रवाह के समान बोली निकलने लगती है। तीनों कालों की बातों को पूछने पर वह बतलाती है।

## मृत्युञ्जयविद्या

भूःस्वेन ज्या धरास्वेता हच्च मायासमन्वितम् । पालयेति द्विरुक्त्वा तत्प्रतिलोममुदीरयेत् ॥११॥
विद्या मृत्युञ्जयाख्यासौ दीर्घस्वरयुजा हदा । विधायाङ्गानि नियतं स्वात्मानं चिन्तयेदिति ॥१२॥
'ॐ जुःसः पालय पालय सः जुःं०' सांसारे इत्यादिना षडङ्गन्यासः।

मृत्युञ्जय मन्त्र है—ॐ जुःसः पालय पालय सः जुःं०। सां सां इत्यादि से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है।

## त्रिपुटाविद्यास्वरूपं तस्याः षडङ्गादिकश्च

आद्यमध्यतृतीयार्णनालपद्मसुकर्णिके	। समासीनं सुधार्द्वाङ्मूळाविन्दुकलायुतम् ॥१३॥
सुसितं हरिणाक्षस्त्रिच्वत्तापाशकरं हरम् । स्वैक्येन भावयन्त्रियं जपन् दीर्घयुरेधते ॥१४॥	
तृतीयममृताख्याया द्वितीयं तदनन्तरम् । रसावहिस्वसहितप्राणस्तैत्तिपुटोदिता	॥१५॥
'श्रीहींकली'	

आद्य अक्षररूप नात, द्वितीयाक्षररूप दल एवं तृतीय अक्षर रूप पद्म की कर्णिका वाले कमल पर आसीन शिव का अंग अमृत से तर है। शिर पर द्वितीया का चाँद है। हाथों में हरिण अक्षमाला व्याख्यान मुद्रा और पाश हैं। ऐसा ध्यान करके त्रिपुटा मन्त्र का जप करने से दीर्घायु प्राप्त होती है। त्रिपुटा मन्त्र है—श्रीं हीं कलीं।

## गारुडमन्त्रदत्तयोगस्थानादि

त्रिभिर्द्विरुक्तैरङ्गानि कृत्वा नित्यां तु नित्यशः । जपेदहो मुखे स्वैक्यं भावयन्त्रिसहस्रकम् ॥१६॥	
तेन विद्यां श्रियं कान्तिं कवितां गानकौशलम् । नरनारीनृपाणां च वाल्लभ्यं लभते नरः ॥१७॥	
अरुणामरुणाङ्गस्थां प्रसन्नवदनाम्बुजाम् । पुष्पेष्वङ्गुशपद्मानि पद्मपाशोक्षुचापकान् ॥१८॥	
दथानां बाहुभिः षट्भिर्माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् । शृङ्गारभूषापिटकचामरादर्शपादुकाः	॥१९॥

धाना: परितस्तस्या गायन्त्यश्चापि शक्तयः। परिवार्य स्थितास्ताभिर्वृतां तां स्वैक्यतः स्मरेत् ॥२०॥  
भूःस्वेन हंसदाहाभ्यां मरुद्विष्क्षमया युताः। वैरिमोहीत्यक्षराणां चतुष्कं गरुडेति च ॥२१॥  
जवी सवहिर्ग्रासश्च हंसहिंसद्वयं तथा। स्वाहान्तो गदितो मन्त्रस्ताक्षर्यस्याखिलरक्षतुः ॥२२॥

त्रयोविंशार्णको मन्त्र उपरागे सुसाधितः।

‘ॐ हां हीं हूं वैरिमोहिगरुडपक्षी हंसहंसहिंसहिंस स्वाहा’।

उक्त तीन बीजों से अंगन्यास करे। नित्य प्रातः नित्या विद्या का जप ऐक्य की भावना से तीन हजार करे। इससे विद्या, श्री, कन्ति, कविता, गानकौशल एवं नर-नारी-नृप को प्रियत्व प्राप्त होता है। ध्यान इस प्रकार किया जाता है।

अरुणामरुणाम्बस्थां प्रसन्नवदनाम्बुजाम्। पुष्टेष्वद्वुशशपचानि पद्मपाशेष्वुचापकान्॥

दधानां बाहुभिः षडभिर्मणिक्यमुकुटोज्जलाम्। शृङ्गारभूषापिटकचामरादर्शपादुकाः॥

दधाना: परितस्तस्या गायन्त्यश्चापि शक्तयः। परिवार्य स्थितास्ताभिर्वृतां तां स्वैक्यतः स्मरेत्॥

श्लोक २१, २२ के उद्धार से गारुड मन्त्र इस प्रकार का होता है—३० हां हीं हूं वैरिमोहिगरुडपक्षी हंस हंस हिंस हिंस स्वाहा। यह तईस अक्षर का मन्त्र है। ग्रहण काल में इसे सिद्ध करके प्रयोग करना चाहिये।

#### भुजगविषनाशनमौषधम्

फणिदष्टान् पिशाचादैः क्लिष्टान्यन्यांश्च रोगिणः ॥२३॥

विषाटतिक्ष्विविधैरूपैर्मूर्छितांश्च गतासुकान्। पालयेच्छतजपेन तोयेनाभ्युक्षणात्क्षणात् ॥२४॥

कुर्वतस्ताण्डवं शम्भोरग्रे भेरुसमं विभूम्। अहितानि च खादन्तं स्मरंस्ताक्षर्यमनुं जपेत् ॥२५॥

पद्माक्षबीजत्तेलनाप्याशु नस्येन नाशयेत्। गरलं भुजगानां च समस्तानामयत्ततः ॥२६॥

सर्पदंश, पिशाचादि से क्लिष्ट या अन्य रोगी, तीनों प्रकार के जहरों में से किसी से भी मूर्छित को उक्त गारुड मन्त्र के सौ जप से मन्त्रित जल से अभ्युक्षण करने पर वह तुरन्त उठकर शिव के आगे ताण्डव करने लगता है। इस मन्त्र के स्मरण और जप से अहितकरों का नाश होता है। कमलगट्टे के तेल को सूँघाने से सर्पों के विष का नाश होता है।

#### अश्वारुद्धविद्या तदङ्गादि

प्रणवं चरहंसाग्निर्जवी दाहो नभश्वरौ। शून्याम्ब्वग्नियुतो दाहो हृदम्बु मरुदन्वितम् ॥२७॥

हंसश्च मरुता युक्तः प्रोक्ता विद्या दशाक्षरी। षडङ्गं मायया कृत्वा जपेदक्षरतत्क्षम् ॥२८॥

‘ॐ एहि परमेश्वरि स्वाहा’।

ततो यमुदिश्य जपं निशि कुर्यादयत्ततः। समानयेत्स्वगेहे तमानाशात्प्रोक्तकारिणम् ॥२९॥

वश्यमाकर्षणं लक्ष्मीं सुवर्णं वाज्जितानि च। प्राजोत्ययलादनया विद्यया सिद्ध्यानिशम् ॥३०॥

लोहितं लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ॥३१॥

भल्लं दक्षेण वामेन चर्मयष्टिं समुज्जवलाम्। अन्याभ्यां हेमपाशेन कण्ठे बद्ध्या स्वसाध्यकम् ॥३२॥

हेमवेत्राहतं बद्धकरयुग्मकृताञ्जलिम्। दासोऽहमिति भाषनं पतितं निजपादयोः ॥३३॥

स्मरन् विद्यां जपेन्मत्यों वशीकुर्यादयत्ततः। समस्तं जीवभुवनमश्वारुद्धाख्यविद्यया ॥३४॥

श्लोक २७, २८ का उद्धार करने पर मन्त्र होता है—३० एहि परमेश्वरि स्वाहा। यह दशाक्षर मन्त्र है। हां, हीं, हूं इत्यादि से षडंग न्यास करके प्रति अक्षर एक लाख के अनुसार दश लाख इस मन्त्र का जप करे। इस विद्या का रात में जप तब तक करे जब तक कि यह सिद्ध न हो जाय। सिद्ध होने पर यह साध्य को साधक के घर में ले आती है और वह आजीवन दास के समान रहता है। इस सिद्ध विद्या से वश्य और आकर्षण होता है, लक्ष्मी प्राप्त होती है, सोना और वांछित मिलता है। यत्न करने से इस विद्या से सब कुछ मिलता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

लोहितां लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसत्रवदनाम्बुजाम्॥  
भल्लं दक्षेण वामेन चर्मयष्टि समुज्ज्वलाम्। अन्याख्यां हेमपाशेन कण्ठे बद्ध्वा स्वसाध्यकम्॥

इस विद्या के प्रयोग से साध्य को देवी स्वर्णदण्ड से पीटती हुई ले आती है और साध्य ‘दासोऽहं’ कहते हुए साधक के पैरों पर गिर पड़ता है। विद्या का स्मरण करके जप करने से साधक किसी भी मनुष्य को वश में कर सकता है। अश्वारूढ़ा विद्या से सभी भुवनों के जीव वश में होते हैं।

### अन्नपूर्णाविद्या तदङ्गध्यानसाधनप्रकाराः

प्रणवं नमसा युक्तं तथा भगवतीति च। माहेश्वरीति प्रोक्त्वान्नपूर्णे स्वाहेति तन्मनुः ॥३५॥  
विधाय माययाङ्गानि जपेद्विद्यामहर्मुखे। सहस्रवारं नियंतं तस्य स्याददरिद्रता ॥३६॥  
'ॐनमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'।

भुजगत्रासकरणनृत्तासक्तावलोकिनीम् । स्मितवक्त्रां हेमपात्रात् पायसं दधतीं स्मरेत् ॥३७॥  
भवानीं सर्वदा विद्याजपवान् कदाचन। बुभुक्षितो भवेदेव न कदाचित्र कुत्रचित् ॥३८॥  
तथा नृत्यस्थितं मां त्वां तदालोकनकौतुकाम्। आभ्यां भजन्नित्यशो यो मन्त्राभ्यां याचते वरम् ॥३९॥  
तस्यावयोः प्रसादेन सिद्ध्यत्येवाशु चिन्तितम् । तिष्ठेच्चोपरि सर्वेषां सर्वथा सर्वतः सदा ॥४०॥

श्लोक ३५ के उद्धार करने पर अन्नपूर्णा-मन्त्र होता है—३५ नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। हाँ हाँ इत्यादि से इसका षडंग न्यास कर विद्या का जप एक हजार प्रतिदिन करे तो साधक की दिनद्रिता नष्ट हो जाती है। सर्वों के लिये त्रासकारक ताण्डव नृत्य करने वाले शिव को देखने वाली देवी के मुख में मुस्कान है। उनके हाथ में सोने के पत्र में पायस है। देवी के इस रूप का स्मरण करके अन्नपूर्णा विद्या का जप करने वालों को भोजन के बिना भूखे कभी नहीं रहना पड़ता। इसी प्रकार नृत्य आसक्त हम दोनों शिव-गौरी का अवलोकन करते हुए जो जप करते हैं और वर मांगते हैं, उन्हें हम दोनों की कृपा से सभी वांछित ग्राप्त होते हैं और वह साधक सर्वत्र सर्वदा सबों से श्रेष्ठ होकर रहता है।

### नवात्मविद्या

हंसहृदयासनभसां रसाम्बुद्ध्याप्तदाहकैः। क्षमास्वयोगान्नामतश्च नवात्मा नवभिश्च तैः ॥४१॥  
'हसक्षमलवयरूं'।

श्लोक इकतालीस के उद्धार करने पर नवात्म मन्त्र होता है—हसक्षमलवयरूं। यह शिवमन्त्र है।

### नवात्मिका विद्या

तस्यैव क्षमाक्षरं हित्वा वहिं तत्र प्रयोजयेत्। नवात्मिका तु ते विद्या द्वावेतौ सर्वसिद्धये ॥४२॥  
'हसक्षमलवयरी'।

श्लोक ४२ के उद्धार करने से देवी की नवात्मिका विद्या होती है—हसक्षमलवयरी।

### देवीहृदयविद्या ध्यानादि

प्रणवं त्रिपुटान्त्यार्ण नमसा चतुरक्षरी। देवीहृदयसंज्ञासौ विद्या सर्वार्थसिद्धिदा ॥४३॥  
'ॐकर्लीनमः'।

ध्यानमुक्तममुष्यास्तु सततं सर्वमङ्गलम्। सितकुष्ठं स्वर्णपुष्पीमूलं तत्पत्रवारिणा ॥४४॥  
पिष्ठ्वा शुद्धः पायसाशी विद्याजापी जितेन्द्रियः। भूमौ शयीत तां रात्रिं विजने सुशुभे गृहे ॥४५॥  
तल्लिपाजाकण्ठहृत्कस्तत्रालिखितमायकः। स्वपन्निशीथिनीविद्यां जपन्नाज्ञास्थितां तथा ॥४६॥  
अतिलोहितरूपां तां विद्यां तां देवतामपि। स्वप्ने सा तं समासाद्य वदेदस्याभिवाञ्छितम् ॥४७॥  
देवीहृदयविद्येयं स्त्रीणां सद्यः फलप्रदा। सौभाग्यलक्ष्मीकीर्त्यायुरारोग्यविजयावहा ॥४८॥

श्लोक ४३ के उद्धार करने पर सर्वार्थसिद्धिदा देवीहृदय नामक मन्त्र होता है—ॐ कर्त्ती नमः। इसका ध्यान सर्वदा सर्वमंगलकारी है। श्वेत कूठ, स्वर्णपुष्टि की जड़ और पत्तों को पीसकर पायस भोजन करके जितेन्द्रिय रहकर इस विद्या का जो जप करता है और रात में निर्जन सुन्दर गृह में भूमि पर सोता है और उक्त पिष्ठ का आङ्ग चक्र स्थित कण्ठ और हृदय में लगता है तब निशीथिनी विद्या के जप से बद्ध होकर वह रक्तरूपा देवी स्वप्न में उसे दर्शन देकर उसका अभिवार्णित कहती है। यह देवीहृदय विद्या स्त्रियों को तुरन्त फल देती है और उसे सौभाग्य लक्ष्यी कीर्ति आयु आरोग्य विजय की प्राप्ति कराती है।

#### गौरीविद्या तत्साधनध्यानादि

प्रणवं रुद्रदयिते तथा योगेश्वरीति च। स्वाहान्तिका तु विद्येयं कथिता द्वादशाक्षरी ॥४९॥  
 ‘ॐरुद्रदयिते योगेश्वरि स्वाहा’।

गौरीविद्येत्यसौ प्रोक्ता लक्षणपानुसारतः । ध्यानात्रागवद्यास्तु देवी साधयतीप्सितम् ॥५०॥  
 निशामध्ये तु निशया निजवामोरुदेशतः । साध्यनामसमोपेतामालिखैतां तु तन्मनाः ॥५१॥  
 ध्यायंस्तथा जपेद्विद्यां तदैवाकर्षयेत्यत्रियाम् । नानया सदृशी विद्या विद्यते वनितावशे ॥५२॥  
 राजवश्ये तथा लोकवश्ये स्त्रीवश्यकर्मणि । न विद्याः सन्ति विषये हयगौरीमनुद्वयात् ॥५३॥

श्लोक ४९ के उद्धार करने पर द्वादशाक्षरी विद्या होती है—ॐ रुद्रदयिते योगेश्वरि स्वाहा। यह गौरी विद्या है। इसका एक लाख जप और पूर्ववत् हयारूढ़ रूप में ध्यान करने से देवी अभीष्ट फल देती है। आधी रात में हल्ती से अपने वाम भाग में साध्य नामसहित इस मन्त्र को लिखकर उसके साथ मन लगाकर ध्यानसहित विद्या का जप करने से साधक प्रेमिका को आकर्षित करता है। स्त्रियों को वश में करने के लिये कोई दूसरी विद्या इसके समान नहीं है। हयारूढ़ा गौरी विद्या के समान दूसरी कोई ऐसी विद्या नहीं है, जिससे राजा, लोक और स्त्री को वश में किया जा सके।

लक्ष्मसुवर्णदा विद्या तत्साधनञ्च  
 अग्निनार्दश तद्युक्तस्तावेवाथ नभोधरे । एतद् द्वितीयं तौ स्यातां काकण्ठेति ततः परम् ॥५४॥  
 मुण्डस्वाहेति विद्येयमुक्ता पञ्चदशाक्षरी ।  
 ‘इटिइटिमुटिमुटिकाकण्ठमुण्ड स्वाहा’।

कृताङ्गो मायया ध्यात्वा तां देवीं सर्वमङ्गलाम् ॥५५॥  
 जपेद्विद्यां मौनयुतः कदलीपूगमध्यतः । त्रिसम्याचार्चासमोपेतं सा प्रीता लक्षदा दिनैः ॥५६॥

श्लोक ५४ के उद्धार करने पर लक्ष्मसुवर्णदा विद्या होती है—इटि इटि मुटि मुटि काकण्ठमुण्ड स्वाहा। हाँ हीं इत्यादि से न्यास करके देवी सर्वमंगला का ध्यान करे। मौन धारण कर केला और कसैली वृक्षयुक्त क्षेत्र में रहकर तीनों सन्ध्याओं में पूजा करके इसका जप करे। इससे देवी प्रसन्न होकर साधक को एक लाख रूपया प्रतिदिन देती है।

निष्कत्रयप्रदा विद्या तत्साधनादि  
 प्रणवं नवकेशी च कनकं वतिसंयुतम् । स्वाहान्ता द्वादशार्णेयं विद्या निष्कत्रयप्रदा ॥५७॥  
 ‘ॐ नवकेशी कनकवति स्वाहा’।  
 नित्यशो गिरिशृङ्गस्थवटमूले त्रिलक्षकम् । जपित्वाक्षरशो विद्यां फलमुक्तमवाप्नुयात् ॥५८॥

प्रणव के साथ नवकेशी के जप से देवी साधक को तीन निष्क सोना देती है। इसका द्वादशाक्षर मन्त्र है—ॐ नवकेशी कनकवति स्वाहा। पर्वतशिखर पर स्थित वटवृक्ष के मूल में नित्य बैठकर तीन लाख जप करे। अक्षरलक्ष जप से विद्या का फल मिलता है।

अभीष्टवादिनी विद्या  
 चरः प्राणो मरुद्युक्तो व्याप्तं प्राणो धरान्वितः । व्योमद्वयं मरुद्युक्तं रथश्च धरया युतः ॥५९॥

चरः प्राण इति प्रोक्ता विद्याभीष्टं वदेन्मिथः ।

‘एकायकुण्णातुएक’।

जातीपुष्पैर्निशामध्ये पूजिता मङ्गलाकृतिः ॥६०॥

श्लोक ५९ के उद्धार करने पर अभीष्टवादिनी विद्या होती है—एकायकुण्णातुएक। विद्या के साथ अभीष्ट बोले। सिद्ध सारस्वत मंगलाकृति की पूजा आधी रात में जातीपुष्प से करे।

मातङ्गिनीविद्या तद्व्यानादि

सिद्धसारस्वतस्यादौ त्र्यक्षराणि ततः परम् । मातङ्गिन्यै तथा स्वाहा पुनर्खीणीति तन्मनुः ॥६१॥  
‘ऐंहींश्रीं मातङ्गिन्यै स्वाहा ऐंहींश्रीं’।

द्वादशर्णेयमचिरात्सौभाग्यं कवितां श्रियम् । गानाभियोगं विश्वेषां मान्यतां च प्रयच्छति ॥६२॥  
मायाकृताङ्गो नित्यशस्तां जपेदुदये रवेः । सहस्रवारं तेनासौ सिद्धा सर्वं प्रयच्छति ॥६३॥  
इन्द्रनीलनिभां रक्तवसनाभरणोज्ज्वलाम् । प्रलम्बवेणीसत्रद्वसौगन्धिकसमुज्ज्वलाम् ॥६४॥  
तत्क्लृप्तमुण्डमालां च मुक्तास्तबकशोभिताम् । ऊर्मिकावीरकटकनूपैर्मण्डिताङ्गिकाम् ॥६५॥  
वादयन्तीं सदा वीणां स्वसमानाङ्गनाजनैः । स्तूयमानां च परितो ध्यायेदेवीं शुचिस्मिताम् ॥६६॥

श्लोक ६१ के उद्धार करने पर मातङ्गिनी मन्त्र होता है—ऐं हीं श्रीं मातङ्गिन्यै स्वाहा ऐं हीं श्रीं। यह द्वादशाक्षर मन्त्र अल्प काल में हीं सौभाग्य, कवित्वशक्ति, लक्ष्मी और गायन में योग्यता की विश्व में मान्यता दिलाती है। नित्य सूर्योदय के समय हाँ हीं इत्यादि से न्यास करके हजार बार मन्त्रजप करे। इससे यह सिद्ध होकर सब कुछ देती है। मातङ्गिनी का ध्यान इस प्रकार है—

इन्द्रनीलनिभां रक्तवसनाभरणोज्ज्वलाम् । प्रलम्बवेणीसत्रद्वसौगन्धिकसमुज्ज्वलाम् ॥  
तत्क्लृप्तमुण्डमालां च मुक्तास्तबकशोभिताम् । ऊर्मिकावीरकटकनूपैर्मण्डिताङ्गिकाम् ॥  
वादयन्तीं सदा वीणां स्वसमानाङ्गनाजनैः । स्तूयमानां च परितो ध्यायेदेवीं शुचिस्मिताम् ॥

राज्यलक्ष्मीविद्या

मातङ्गिन्या द्वितीयं च तृतीयं तदनन्तरम् । रासाचरस्वैरम्बु स्याद्वाताग्नी तदनन्तरम् ॥६७॥  
राज्यदे राज्यलक्ष्मीति हन्माया व्युक्तमात्रयम् । विद्यासौ राज्यलक्ष्म्यास्तु षोडशाणा समीरिता ॥६८॥  
‘हींश्रीब्लेंअङ्गराज्यदे राज्यलक्ष्मि सः ब्लेंश्रीहीं’।

ध्यात्वा तां विजयाविद्यां जपेन्नित्यं च पूजयेत् । राज्यं प्रयच्छति प्रीता साधकायाविलम्बितम् ॥६९॥

श्लोक ६७, ६८ के उद्धार करने पर राजलक्ष्मी का षोडशाक्षर मन्त्र होता है—हीं श्रीं ब्लें अ इ राज्यदे राज्यलक्ष्मि सः ब्लें श्रीं हीं। इस विजया विद्या का ध्यान करके नित्य पूजा एवं जप करने से यह साधक को बिना विलम्ब किये प्रसन्न होकर राज्य प्रदान करती है।

महालक्ष्मीविद्या तद्व्यानादि

प्रणवं श्रीपुटां मायां कमले तदनन्तरम् । कमलातो लभे पश्चात्रसीद द्वितयं पुनः ॥७०॥  
आद्यत्रयं महालक्ष्म्यै नमः प्रोक्ता महेश्वरि । विद्या ते सप्तविंशाणा समस्ताभीष्टदानिशम् ॥७१॥  
‘ॐश्रीहींश्रीं कमले कमलालये प्रसीद श्रीहींश्रीं महालक्ष्म्यै नमः’।

बीजत्रयैः षडङ्गानि द्विरूपैर्विहितानि वै । ध्यानं च विजयारूपं प्रजपेद दिनशस्तथा ॥७२॥  
कीर्तिलक्ष्मीधरारोग्यविजयाद्यखिलेष्टदा । तुलास्थे भास्करे पूजा पूर्णायां सकलेष्टदा ॥७३॥

श्लोक ७०, ७१ के उद्धार करने पर सत्ताइस अक्षरों की महालक्ष्मी विद्या सभी अभीष्टों को देने वाली होती है—  
ॐ श्री हीं श्री कमले कमलालये प्रसाद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः। तीन बीजों की दो आवृति से विहित षडङ्ग न्यास करे। विजया नित्या के रूप का ध्यान करे और नित्य दिन में जप करे। इससे कीर्ति लक्ष्मी भूमि विजय आदि सभी इष्ट की प्राप्ति होती है। तुला राशि में सूर्य के होने पर पूर्णिमा तिथि में इसका पूजन इष्टप्रद होता है।

### सिद्धलक्ष्मीविद्या तदङ्गादि

ज्यासकदाहवहिस्वान्नभो हंसो मरुद्युतः । चण्डेतजश्च संकर्षवर्णः स्युस्तदनन्तरम् ॥७४॥  
व्योमान्या कालिमन्थाने वर्णा हंसश्च मायया । सिद्धलक्ष्म्याश्च विद्येयं प्रोक्ता सपदशाक्षरा ॥७५॥

‘जड़र्णीं महाचण्डतेजः सङ्कर्षणि कालिमन्थाने हः’।

आद्येन कृत्वा चाङ्गानि जपेद्विद्यां तु नित्यशः । प्रातः सहस्रवारं तु तर्पयेत्तद्वांशकम् ॥७६॥  
प्रसन्ना वर्षतो नित्यपूजायां साधकस्य सा । प्रयच्छति जयं युद्धे श्रियं सर्वातिशायिनीम् ॥७७॥  
भूतप्रेतपिशाचाप्स्मारकृत्यादिवारणम् । करोति मार्णों कान्तारगिरिकृच्छ्रेऽभिरक्षति ॥७८॥  
ध्यानं तु तस्या देवेशि मङ्गले मङ्गलासमा । युद्धमार्गादिरक्षासु शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥७९॥  
शतशीर्षा त्रिनयनां प्रतिवक्त्रं भयानकाम् । हस्तद्विष्टसंयुक्तां स्वसमाकारशक्तिभिः ॥८०॥  
वृत्तामनन्तहस्तेषु साधकाभीष्टहेतिकाम् । ध्यात्वैवमर्चयन्निष्टमवाप्नोत्यखिलं ध्रुवम् ॥८१॥

श्लोक ७४, ७५ के उद्धार करने पर सिद्धलक्ष्मी का सत्तरह अक्षरों का मन्त्र होता है—जड़र्णी महाचण्डतेजः सङ्कर्षणि कालिमन्थाने हः। आद्य बीज से षडंग न्यास करे। नित्य प्रातः एक हजार विद्या जप करे और उसका दशांश तर्पण करे। एक वर्ष तक साधक की नित्य पूजा से प्रसन्न होकर देवी युद्ध में जय और अतुल्य लक्ष्मी देती है। भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मार से रक्षा करती है। पहाड़ और जंगल के रास्तों में रक्षा करती है। इस देवी का ध्यान सर्वमंगला के समान मंगलकारी है। युद्ध में मार्णों में इससे रक्षा के उपाय कहता हूँ। एक सौ शिरों वाली तीन नयनों से युक्त, भयानक मुखों वाली, दो सौ हाथों वाली, अपनी आकृति के समान ही शक्तियों एवं अनन्त हाथों से घिरी हुई, साधक को अभीष्ट प्रदान करने वाली—इस प्रकार ध्यान कर अर्चन करने से निश्चित रूप से साधक समस्त अभीष्टों को प्राप्त करता है।

### नित्यार्चनचक्रनिर्णयणम्

प्राक्प्रत्यगदक्षिणोदक्षं कृत्वा सूत्राष्टकं ततः । मार्जयेद् बाहूवीथीषु पञ्च पञ्च तथैकथा ॥८२॥  
तदन्तरपि कोणेषु त्रयमेकीकृते ततः । मध्यादि विलिखेन्मन्त्रवर्णन् षोडशनाम च ॥८३॥  
प्रदक्षिणत्रयान्मध्ये पूजयेत्तत्र तां सदा । समस्ताभीष्टसंसिद्धै सिद्धलक्ष्मीं तु नित्यशः ॥८४॥

पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर आठ-आठ रेखा खींचे। इससे उनचास कोष्ठ बनते हैं। इस चतुरस्र की बाहरी वीथियों में २४ कोष्ठ होते हैं। प्रत्येक दिशा में चारों कोणों पर एक-एक छोड़कर पाँच कोष्ठ को एक बना दे। अन्दर के कोष्ठों की वीथि में चारों कोणों में तीन-तीन कोष्ठों को एक कर दे। सबके बीच वाले कोष्ठ में मन्त्र का प्रथम अक्षर लिखे। मध्य के आगे से आरम्भ करके आठ कोष्ठों में आठ मन्त्राक्षरों को लिखे। आन्तरिक वीथि की चारों दिशाओं में शिष्ट एक-एक कोष्ठ में चार अक्षरों को एक-एक के क्रम से लिखे। सबसे बाहर के चार कोष्ठों में एक-एक अक्षर लिखे। इस प्रकार एक अक्षर मध्य में, आठ मध्य कोष्ठों में, चार आन्तरिक वीथि की दिशाओं में और चार अक्षरों को कोष्ठों से बने चतुरस्र में शिष्ट चार अक्षरों को लिखे। इस प्रकार  $1+8+4+4=17$  अक्षर कोष्ठचतुरस्र में लिखे जाते हैं। अभीष्ट सिद्धि के लिये सिद्धलक्ष्मी की पूजा नित्य प्रदक्षिणक्रम से षोडश नित्याओं के साथ करनी चाहिये।

### ललिताविद्याया गोपालस्वरूपत्वम्

कदाचिदाद्या ललिता पुंरुपा कृष्णविग्रहा । सर्वनारीसमारम्भादकरोद्विवशं जगत् ॥८५॥

ततः स गोपीसंज्ञाभिरावृतोऽभूत्वशक्तिभिः । ततस्तेन विनोदाय स्वं षोढाकल्पयद्वषुः ॥८६॥  
 तेषां घण्णां च घण्मन्त्राः समस्ता भीष्टदायकाः । तैर्यन्त्रपूजाहवनजपतर्पणसेचनैः ॥८७॥  
 भवन्ति लक्ष्मीकान्तिश्रीविजयारोग्यसंपदः । शृणु तान् षट्कमान्मन्त्रान् ध्यानार्चाविनियोगकैः ॥८८॥

कदाचित् कृष्णवर्णा ललिता पुरुषरूप धारण करती है तो सभी नारियों सहित सारे संसार को विवश कर देती है। तदनन्तर वह गोपीरूप में अपनी शक्तियों से आवृत होती है। तत्पश्चात् ललिता ने लीला के लिये अपने को सोलह रूपों में प्रकट किया। उनमें से छः के छः मन्त्र सभी अभीष्टों के दायक हैं। उनके मन्त्रों से पूजन-हवन-जप-तर्पण-अधिष्ठेक करने से लक्ष्मी, कान्ति, श्री, विजय, आरोग्य एवं सम्पदा की प्राप्ति होती है। अब उन छहों मन्त्रों के ध्यान-अर्चन-विनियोग को क्रमशः कहता हूँ।

## सिद्धगोपालमन्त्रः

स्थिरारसाव्याप्तवनस्वैरुक्तोभून्महामनुः । प्रणवद्रव्यमध्यस्थः । सिद्धगोपालकाभिधः ॥८९॥  
 'ॐ गूर्खौ अ॒०। (१)

श्लोक ८९ के उद्धार करने पर सिद्धगोपाल मन्त्र होता है—३० गूर्खौ अ॒०।

## षट्विधगोपालमन्त्राः

प्रोक्तैस्तैः पञ्चभिः काममन्त्रैरेकैकतः क्रमात् । पुटनात्रामतस्तस्माद्वाणैस्तैः । पुटनाद्ववेत् ॥९०॥  
 संमोहनारथ्यस्त्वेवं च सप्तधाभून्महामनुः ।

हींगल्यौहीं (२)। क्लींगल्यौक्लीं (३)। ऐंगल्यौं (४)। ल्लूंगल्यौल्लूं (५)। स्त्रींगल्यौस्त्रीं (६)। द्रांद्रींक्लींल्लूंसः  
 गूर्खौ सःल्लूंक्लींदीद्रीं (७)।

श्लोक ९० के उद्धार करने पर शेष छः गोपालमन्त्र बनते हैं, वे हैं—१. हींगल्यौहीं, २. क्लींगल्यौक्लीं, ३.  
 ऐंगल्यौं, ४. ल्लूंगल्यौल्लूं, ५. स्त्रींगल्यौस्त्रीं और ६. द्रांद्रींक्लींल्लूं सः गूर्खौ सःल्लूंक्लींदीद्रीं।

## तेषां यत्राणां ध्यानानि

आद्यः पञ्चाङ्गको मन्त्रस्त्वितरे स्युः षडङ्गकाः ॥९१॥

तत्तद्वीजादिकेन स्यात्पद्मनानि यथाविधि । अष्टप्राब्जमध्यस्थ पूजयेत्सत तान् क्रमात् ॥९२॥  
 यन्त्राणि तानि तन्मन्त्रयुतमध्यान्यनुक्रमात् । वारेषु भास्कराद्येषु तेषां पूजा क्रमेण वै ॥९३॥  
 सकलेष्टप्रदा नित्यं दुग्धक्षेत्राद्यृतात्रकैः । पायसैनैरिकेलैश्च ससितैः कदलीफलैः ॥९४॥  
 क्रमाद्वारेषु नैवेद्यं दद्यादिष्टार्थसिद्धये । इतीरितैः सप्तभिस्तैः सर्वमिष्टमवानुयात् ॥९५॥  
 अरुणं षड्भुजं वंशवादिनं पाशमङ्गुशम् । पुण्ड्रेक्षुचापपुष्पेषून् दधानं शक्तिभिः स्मरेत् ॥९६॥  
 सुवर्णपुष्पीमूलेन पिष्ठेन निजवारिणा । हत्कण्ठाजालेपनतो देवतादशनं भवेत् ॥९७॥

प्रथम में पञ्चाङ्ग न्यास को और अन्य में षडंग न्यास करे। तत्तद्वीजों से अंगों में षडङ्ग न्यास करे। अष्टदल कमल में इन सातों की पूजा दूध, मधु, धी, अन्न, पायस, नारियल, मिश्री, केला से रवि से शनिवार तक सात दिनों में क्रम से एक-एक की करे। इससे वांछित फल मिलते हैं। इन सातों से सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। वंशीवादक कृष्ण का ध्यान लाल वर्ण की छः भुजाओं वाली शक्ति के हाथों में पाश अंकुश पुण्ड्रेक्षु चाप पुष्पबाण धारण करने वाली शक्तियों से घिरी हुई रूप में करे, सुवर्ण-पुष्पों के मूल को उसी के रस में पीसकर हृदय-कण्ठ-भ्रूमध्य में लगाने से देवता का दर्शन होता है।

## सकलदेवतानामपरोक्षोपायौषधयोगादिविधानाम्

उग्रगन्थां च नीलां च धातकीं फलसंयुताम् । आरग्वधं मुण्डिनीं च शाखोटं जम्बुमूलकम् ॥९८॥  
 कर्णिकारं हंसपदीं वाराहीं भृङ्गराजकम् । कोरण्टं कर्पटं सूत्रं त्रिफलां चूर्णयेत्समम् ॥९९॥

सितेनाज्ञेन मधुना जग्धा तल्लिपातत्रयः । भावयंसतन्मयो भूयाहिवसैः कैश्चिदात्मवान् ॥१००॥ इति ।

उग्रगन्धा, नीला, आमला, अमलतास, मुण्डी, शाखोट, जामुनमूल, कर्णिकार, हंसपदी, वाराही, भृङ्गराज, कोण्ट, कर्पट, सूत्र, त्रिफला को बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बनावे। उस चूर्ण में शक्तर, गोघृत एवं मधु मिलाकर हृदय-कण्ठ-भ्रूमध्य में लेप लगाकर तन्मय होने की भावना करे। इससे कुछ ही दिनों में साधक देवीस्वरूप हो जाता है।

### षोडशनित्यानां स्वात्मत्वेन वासना

अथ वासना तत्र श्रीतन्त्राजे (३५.१) —

अथ षोडशनित्यानां स्वात्मत्वे वासनां शृणु । यया तन्मयतासिद्धिः प्रत्यक्षा भवति शुवम् ॥१॥  
 गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता । नवत्वं तस्य देहस्य रक्षत्वेनावभासते ॥२॥  
 बलिदेव्यः स्वमायाः स्युः पञ्चमी जनकात्मिका । कुरुकुल्ला भवेन्माता पुरुषार्थस्तु सागराः ॥३॥  
 रत्नद्वीपो भवेददेहो नवत्वं धातुरोमधिः । सङ्कल्प्याः कल्पतरवः स्वाधारा ऋतवः स्मृताः ॥४॥  
 ग्रहक्षराशिचक्रेण कालात्मा पश्चिमामुखः । तेन पूर्वाभिमुख्यं स्यादन्यते कथितं मिथः ॥५॥  
 ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ञानमर्घं ज्ञेयं बहिःस्थितम् । श्रीचक्रपूजनं तेषामेकीकरणमीरितम् ॥६॥  
 श्रीचक्रे सिद्धयः प्रोक्ता रसा नियतिसंयुताः । ऊर्मयः पुण्यपापे च ब्राह्मणाद्या मातरः स्मृताः ॥७॥  
 भूतेन्द्रियमनांस्येव क्रमान्त्रित्याकलाः पुनः । कर्मेन्द्रियार्था दोषाश्च ज्ञेयाः स्युः शक्तयोऽष्ट वै ॥८॥  
 नाड्यश्वर्तुर्दश प्रोक्ताः क्षेभिण्याद्यास्तु शक्तयः । वायवो दश संप्रोक्ताः सर्वसिद्ध्यादिशक्तयः ॥९॥  
 वहयो दश संप्रोक्ताः सर्वज्ञाद्यास्तु शक्तयः । शीतोष्णासुखदुःखेच्छा गुणाः प्रोक्ताः क्रमेण वै ॥१०॥  
 वशिन्याद्याः शक्तयः स्युस्तन्मात्राः पुष्पसायकाः । मनो भवेदिक्षुधनुः पाशो राग इतीरितः ॥११॥  
 द्वेषः स्यादङ्गशः प्रोक्तः क्रमेण वरवर्णिनि । अव्यक्ताहड्कृतिमहदाकाराः प्रतिलोमतः ॥१२॥  
 कामेश्वर्यादिदेव्यः स्युः संविक्तामेश्वरः स्मृतः । स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा ॥१३॥  
 लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना । सिद्धिस्त्वनन्यचित्तत्वं मुद्रा वैभवभावना ॥१४॥  
 उपचाराश्वलत्वेऽपि तन्मयत्वाप्रमत्तता । प्रयोगास्तु विकल्पानां हेतोः स्वात्मनि नाशनम् ॥१५॥  
 यन्त्राणि मन्त्राः सर्वत्र स्वात्मत्वे धैर्यसाधनम् । संध्यासु भजनं देव्या आदिमध्यान्तमञ्जनम् ॥१६॥  
 अन्यास्तु शक्तयश्वकंगामिन्यो याः समन्ततः । तास्तु विश्वविकल्पानां हेतवः समुदीरिताः ॥१७॥  
 न्यासस्तु देवतात्वेन स्वात्मनो देहकल्पनम् । जपस्तन्मयतारूपभावनं सम्यगीरितम् ॥१८॥  
 होमो विश्वविकल्पानामात्मन्यस्तपयो मतः । तेषामन्योन्यसंभेदभावनं तर्पणं स्मृतम् ॥१९॥  
 मोहाज्ञानादिदुःखानामात्मन्यस्तमयो दृढम् । अभिषेकस्तु विद्या स्यादात्मा सर्वाश्रयो महान् ॥२०॥  
 उपाधीनां तु राहित्यमुपदेश इतीरितः । दक्षिणा भेदशून्यत्वं शश्रूषा स्वैर्यमुच्यते ॥२१॥  
 तिथिरूपेण कालेन परिणामावलोकनम् । नित्याः पञ्चदशैताः स्युरिति प्रोक्तास्तु वासनाः ॥२२॥  
 पृथिव्यादीनि भूतानि कनिष्ठाद्याः क्रमान्त्राताः । तेषामन्योन्यसंभेदप्रकारैस्तत्रपञ्चता ॥२३॥  
 ललितायास्त्रिभर्वर्णैः सकलार्थोऽभिधीयते । शेषेण देवीरूपं तु तेन स्यादिदमीरितम् ॥२४॥  
 अशेषतो जगत् कृत्वं हल्लेखात्मकमीरितम् । तस्याश्वार्थस्तु कथितः सर्वतत्रेषु गोपितः ॥२५॥  
 व्योम्मा प्रकाशमानत्वं ग्रसमानत्वमनिना । तयोर्विर्मर्श ईकारो बिन्दुना तत्रिफलनम् ॥२६॥

सोलह नित्याओं की वासना—तन्त्राज में भगवान् ने कहा है कि अब सोलह नित्याओं से स्वात्मत्व-प्राप्ति के लिये वासना सुनो, जिससे तन्मय होने पर सिद्धि प्रत्यक्ष होती है। आद्या शक्ति गुरु होती है, वह विमर्शमयी है। उसके नवत्व होने से ही हमारे शरीर में नव रक्ष है। बलिदेवियाँ अपनी माया से जनकात्मिका हैं। कुरुकुल्ला माता है। पुरुषार्थ सागर है।

रत्नद्रीप हमारे शरीर में नव धातुरोम में है। संकल्प कल्पवृक्ष है और अपना आधार ऋतुयें हैं। ग्रह-नक्षत्र-राशि चक्र से कालरूपी आत्मा पश्चिमपुरुष है, उसे कुछ लोग व्यर्थ में पूर्वपुरुष कहते हैं। अपना आत्मा ज्ञाता है। ज्ञान अर्थ है और ज्ञेय बाहर स्थित है। श्रीचक्र पूजन में इनका एकीकरण होता है। श्रीचक्र में सिद्धियाँ नियति संयुत रस हैं। उसमें पुण्य-पाप ब्राह्मी आदि मातृकाओं के रूप में लहरे हैं। पञ्चभूत, पाँच कर्मन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन क्रमशः नित्या कला हैं। कर्मन्द्रियों के अर्थ और दोष आठ शक्तियाँ हैं। चौदह नाडियाँ क्षेभिणी आदि चौदह शक्तियाँ हैं। दश प्राण सर्व सिद्धि आदि दश शक्तियाँ हैं। दश अग्नियाँ सर्वज्ञादि दश शक्तियाँ हैं। शीत-उष्ण-सुख-दुःख-इच्छा उनके गुण हैं। पुष्पशायक तन्मात्रा में वशिन्यादि शक्तियाँ हैं। मन, इक्षु, धनु और राग पाश है, द्वेष अंकुश है। अव्यक्त अहंकृति विशाल आकार में प्रतिलोमतः कामेश्वरी आदि देवियाँ हैं। कामेश्वर संवित् हैं। अपनी आत्मा ललिता विश्विग्रहा है। उसका विमर्श लौहित्य है। भावना से वह उपासित होती है। अनन्य चित् तत्त्व मुद्रा वैभव से सिद्ध होती है। उपचार के चलित होने पर भी तन्मयत्व में अप्रमत्ता है। विकल्प प्रयोग आत्मनाश के कारण है। सभी यन्त्र मन्त्र सर्वत्र अपनी आत्मा में धैर्य के साधन हैं। सन्त्याओं में देवी का भजन और आदि मध्यान्त में अंजन किया जाता है। चक्र की जितनी अन्य शक्तियाँ हैं, वे सभी विश्विकल्प की हेतु हैं। न्यास से अपने देह में देवतात्व प्राप्त होता है। जप तन्मयतारूप भावना है; होम विश्व विकल्प अन्य को आत्मवत् समझना है। उससे अन्यन्य भावना तर्पण है, मोह अज्ञानादि दुःख आत्मा से अभिन्न हैं। अभिषेक से आत्मा सर्वाश्रय होता है। उपदेश से उपाधिराहित्य होता है। दक्षिणा भेदशून्यत्व है एवं सुश्रूषा स्थैर्य है। तिथिरूप काल से परिणाम का अवलोकन होता है। यही पन्द्रह नित्या की वासना है। पृथ्वी से लेकर समस्त भूतों के अन्यन्य सम्प्रेद प्रकार से प्रपञ्चता है। ललिता के तीनों वर्णों का अर्थ सकल यानि सब कुछ होता है। शेष देवीरूप है। अशेष जगत् को बनाने से इसे हल्लेखा (हीं) कहते हैं। सभी तन्त्रों में इसका अर्थ गोपित है। आकाश से प्रकाशमानत्व है। ग्रसमानता अग्नि है। उसका विमर्श ‘ई’कार है, उसे बिन्दु से निफालित किया जाता है।

### ब्रह्मविद्याप्रवचनम्

अथ प्रणवस्वरूपनिरूपणम्। तत्रोपनिषद्वाक्यम्—

ॐ ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञानमनुन्तमाम् । यत्रोपत्यतिं लयं चैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात् ॥१॥  
 प्रसादान्तःसमुत्थस्य विष्णोरहुतकर्मणः । रहस्यं ब्रह्मविद्यायां ध्रुवाग्निः संप्रचक्षते ॥२॥  
 ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः । शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कालं लयं तथा ॥३॥  
 तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः । तिस्रो मात्रार्धमात्रा च त्र्यक्षरस्य शिवस्य च ॥४॥  
 ऋग्वेदो गार्हिष्यत्वं पृथिवी ब्रह्म एव च । अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥५॥  
 यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च । विष्णुश्च भगवान् देव उकारः परिकीर्तिः ॥६॥  
 सामवेदस्तथाद्यौश्रावनीस्तथैव च । ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तिः ॥७॥  
 सूर्यमण्डलमिवाभात्यकारः शङ्खमध्यगः । उकारश्चन्द्रसङ्काशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः ॥८॥  
 मकारश्चाग्निसङ्काशो विधूमो विद्युतोपमः । तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याग्नितेजसः ॥९॥  
 शिखाभा दीपसङ्काशा यस्मिन्परि वर्तते । अर्धमात्रा तु सा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता ॥१०॥  
 पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखाभा दृश्यते परा । सा नाडी सूर्यसङ्काशा सूर्यं भित्त्वा तथापरम् ॥११॥  
 द्वासप्ततिसहस्राणि सूर्यं भित्त्वा तु मूर्धनि । वरदः सर्वभूतानां सर्वं व्याप्तैव तिष्ठति ॥१२॥  
 कांस्यधण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये । ऊंकारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता ॥१३॥  
 यस्मिन् संलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते । ध्रुवं हि चिन्तयेद्ब्रह्म सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१४॥ इति

अस्यार्थः—ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामीति श्लोकः क्वचिदेवादौ पठ्यते। ब्रह्म प्रणवस्तस्य विद्यां ज्ञानं, तां किंभूतां, सर्वेषां ज्ञानं ज्ञानोपायभूतां, प्रणवेन ब्रह्मणि ज्ञाते सर्वस्य विज्ञानात्। तथा यत्र विद्यायां देवत्रयादुत्पत्तिं लयं चकारात् पालनं च वक्ष्यामीति पूर्वेणान्वयः श्रुतेः प्रतिज्ञेयम्। प्रसादेति विष्णोः ब्रह्मविद्यायां रहस्यं ध्रुवाग्निः

प्रणवतेज इति संप्रचक्षते बुधा इत्यन्वयः, विष्णुनेंवं विद्या प्रवर्तितेत्यर्थः। कीदृशस्य प्रसादेन भक्तकृपया अन्तः अन्तरात् स्ताम्भमध्यात् समुत्थस्य नृसिंहरूपेण प्रकटीभूतस्य, यद्वा 'प्रासादो देवभूभजा' मिति कोषात् क्षीरोदार्णव-वैकुण्ठबलिगृहद्वारादेः प्रासादस्यान्तराज्जगदक्षणार्थं प्रकटीभूतस्य, यद्वा प्रसादः लिङ्गविद्यापेक्षया प्रसन्नरूपो जीवस्तस्यान्तर-मावरणमविद्यादि, ततः समुत्थस्य निष्कान्तस्याविद्यावरणरहितस्येत्यर्थः। यथोक्तं छान्दोर्ये—'अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिस्यसंपद्य स्वेन रूपेणाभिसंपद्यते स उत्तमपुरुषः' इति। अद्भुतकर्मणो मत्स्यादिरूपेण आंकारो धूवोऽक्षरनिघण्टावुक्तः। तथाहि—

ॐकारो वर्तुलस्तारो बिन्दुः शक्तिस्त्रिदैवतः। प्रणवो मन्त्रगर्भश्च पञ्चदेवो ध्रुवः शिवः॥  
मन्त्राद्यः परमं बीजं मूलमात्राश्च तारकः। शिवादि व्यापको व्यक्तः परं ज्योतिश्च संविदः॥ इति।

स्थानं कालं लयं तथेति कालशब्दो मेचकवाचको वर्णं लक्षयति, तेन वर्णं वक्ष्यामीत्यर्थः। वर्णमित्येव वक्तव्ये कालग्रहणं मात्रारूपकालस्यापि संग्रहार्थमिति द्रष्टव्यम्। अवयवशः शरीरं तावदाह तत्र देवा इति, वक्ष्यस्य शिवस्य चेति। शिवोऽर्धमात्रार्थः। तिसो मात्रा व्यक्षरस्य, अर्धमात्रा शिवस्येत्यर्थः, प्रणवस्य देवादयस्य उक्ताः। त्रयस्योऽनुपदमेव वक्ष्यन्ते। तिसो मात्रा अर्धमात्रा चेति वक्तव्ये छान्दसः सन्धिः। तदुक्तं हठप्रदीपिकायाम्—

अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुसंज्ञकः। त्रिधा मात्रा स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥

त्रय इत्युक्तं तदेव विभजते ऋग्वेद इत्यादिना। ब्रह्म एव चेत्यत्र छान्दसो ह्रस्वः प्रकृतिभावश्च, ब्रह्मा देव इत्यर्थः। खण्डान्तेन ग्रन्थेन शरीरमित्युक्तं संप्रति स्थानं वर्णासहितमाह सूर्येति, सूर्यमण्डलमिवाभाति अकारः। शङ्खो ललाटास्थित तम्भयं नेत्रस्थानं तत्र वर्तमानः 'योऽयं दक्षिणोऽक्षन्युरुषः' इति श्रुतेः। 'शङ्खो निधन्तरे कम्बुललाटास्थिनखेषु चेति' विश्वः। तस्य मध्ये शङ्खस्त्रैव मध्येऽर्थाद्वापनेत्रे स्थितः। मकार इत्यत्रापि तस्य मध्ये इत्यपेक्षते। शङ्खस्य मध्ये अर्थात् तृतीयनेत्रे व्यवस्थितः। अत एव याज्ञवल्क्येनोक्तम्—

इडायां पिङ्गलायां च चरतश्चन्द्रभास्करौ। इडायां चन्द्रमा ज्येयः पिङ्गलायां रविः स्मृतः॥ इति।

खेचर्या च—

जिहामूले स्थितो देवि सर्वतेजोमयोऽनलः। तदग्रे भास्करश्चन्द्रस्तालुमध्ये प्रतिष्ठितः॥  
एवं यो वेत्ति तत्त्वेन तस्य सिद्धिः प्रजायते। इति।

तिसो मात्रा अकारादयः। अनेन काल उक्तः। सोमसूर्याग्नितेजस इत्यनेन वर्णा उक्ताः। यस्मिन् शङ्खे उपरि तृतीयनेत्रादुपरि, अनेनार्धमात्रास्थानमुक्तम्। पद्मासूत्रनिभेति तस्या वर्णं उक्तः। शिखाभा ज्वालाभा ऊर्ध्वतावैशद्याभ्याम्। तथा मूले स्थूला उपर्युपरि तन्वी च।

शिखा शिफायां ज्वालायां चूडायामग्रमात्रके। लाङ्गल्यां चापि शाखायां चूडायां च शिखण्डिनः॥

इति विश्वः। सा नाडी सुषुमा तस्या एव वा पूर्वाणि विशेषणानि। सूर्यं चक्षुरधिष्ठानं अथवा सूर्य-ललव्यरश्मित्वाम्नोऽधिष्ठानश्चन्द्रः सूर्यसं भित्त्वा तथा अपरमधः कन्दे द्वासप्तिसहस्रनाडीभित्त्वा ऊर्ध्वं गता। तदुक्तं (गोरक्षेण)—

ऊर्ध्वं मेद्वादधो नाभे: कन्दयोनिः खगाण्डवत्। तत्र नाड्यः समुत्पन्नः सहस्राणि द्विसप्ततिः॥ इति।

पुनरधिदैवतं सूर्यं भित्त्वा मूर्धनि ब्रह्मलोके द्वादशान्ते च दृश्यते इत्यनुषङ्गः। तदुक्तं याज्ञवल्क्येन—

तासां मुख्यतमा तिस्रस्तिसृष्टेकोत्तमोत्तमा। मुक्तिमार्गेति सा प्रोक्ता सुषुमा विश्वधारिणी॥१॥

कन्दस्या मध्यमे मार्गे सुषुमा सुप्रतिष्ठिता। पृष्ठमध्यस्थिता नाडी या हि मूर्धिं व्यवस्थिता॥२॥

मुक्तिमार्गे सुषुमा सा ब्रह्मान्त्रे प्रतिष्ठिता। अव्यक्ता सैव विज्ञेया सूक्ष्मा सा वैष्णवी स्मृता॥३॥ इति।

प्रणवो नादस्तुपेण सर्वं व्याप्तैव तिष्ठतीत्याह वरद इति। अनेन ॐकारोऽनाहतशब्दो विष्णुश्चैक इत्युक्तं भवति। इदामीं लयमाह कांस्यधण्टेति। यथा लीयति लीनो उपरतव्यापारो भवति ॐकारस्तथा शान्तये योज्यः, प्लुततरो जपतव्य इत्यर्थः। सर्वं सर्वात्मभावे ब्रह्मभावमिच्छता। यस्मिन् संलीयते इति, यद्वस्त्वनुभूय शब्दो विषयो नोपलभ्यते विलीयते तत्परं ब्रह्म। तदुक्तं प्रदीपिकायाम्—

काष्ठे प्रवर्तितो वहिः काष्ठेन सह शास्यति। नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह लीयते ॥१॥

विसृज्य सकलं बाह्यं नादे दुग्धाम्बुद्धन्मनः। एकीभूयास्य मनसा ब्रह्माकाशे विलीयते ॥२॥ इति।

लयलक्षणं तु—

लयो लय इति प्राहुः कीदृशं लयलक्षणम्। अपुनर्वासिनोत्थानाल्लयो विषयविसृतिः ॥१॥

यद्वा यतो वाचो निवर्तने, इत्यर्थः। उपसंहरति ध्रुवमिति। ध्रुवमोकारं हि ब्रह्म चिन्तयेत्, ध्रुवमेकरूपं वा एकाग्रतया वा ब्रह्म चिन्तयेत्। द्विरुक्तिः समाप्त्यर्थः।

**प्रणव स्वरूप-निस्तुपण—**उपनिषद् में कहा गया है कि सभी ज्ञान से उत्तम ॐ यह ब्रह्मविद्या है। ॐ से ही ब्रह्मा सृजन, विष्णु पालन और शिव प्रलय करते हैं। इसी के प्रसाद से विष्णु के अद्भुत कर्म होते हैं। ब्रह्मविद्या का रहस्य ध्रुव अग्नि है। ब्रह्मवादी कहते हैं— ॐित्येकाक्षरं ब्रह्म। उस ॐ के शरीर, स्थान, काल और लय को कहता हूँ। उसमें तीनों लोक, तीनों वेद, तीनों अग्नि व्याप्त हैं। तीन मात्रा, अर्द्धमात्रा और शिव के तीन अक्षर उसी में निहित हैं। ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि और पृथ्वी तथा ब्रह्म को अकार का शरीर ब्रह्मवादियों द्वारा कहा गया है। यजुर्वेद, अन्तरिक्ष, दक्षिणाग्नि और भगवान् विष्णु 'उ'कार को कहा गया है। सामवेद, आकाश, आहवनीय अग्नि और परमदेव ईश्वर मकार को कहते हैं। सूर्यमण्डल की आभा के समान शंख मध्य में अकार है। 'उ'कार चन्द्रमा के समान उसके मध्य में स्थित है। 'म'कार अग्नि के समान निर्धूम विद्युतोपम है। तीनों मात्रायें सोम-सूर्य-अग्नि, तेज के रूप हैं। दीप शिखा की आभा जिसके ऊपर रहती है, उसे अर्धमात्रा कहते हैं। यह प्रणव के ऊपर स्थित रहता है। पद्मसूत्र के समान शिखा की जो सूक्ष्म परा आभा दीखती है, वह नाड़ी सूर्य के समान सूर्य को भेद कर औरों का भेदन करती है। बहतर हजार सूर्यों का भेदन करके यह मूर्धा में रहकर वरद रूप में सभी भूतों और सबों में व्याप्त रहती है। कांस्य धंटानाद जैसे धीरे-धीरे शान्त होकर लीन होता है, उसी प्रकार ॐकार का योजन भी शान्ति की इच्छा से करना चाहिये। इसमें जो शब्द लीन होता है, उसे परब्रह्म कहते हैं। निश्चित ही जो इस प्रकार ब्रह्म का चिन्तन करता है, वह अमृतत्व के लिये करता है, वह अमृतत्व के लिये करता है, वह अमृतत्व के लिये करता है।

निष्ठण्टु में कहा गया है कि ॐकार गोल है, बिन्दु ब्रह्मा-विष्णु-महेश की शक्ति है, प्रणव मन्त्रार्थ है, पञ्चदेव शिव है। यह ॐकार मन्त्र का प्रथम अक्षर, परम बीज एवं तारक मन्त्र का मूल है। शिव आदि इसी से व्यक्त हुये हैं और परं ज्योति भी इसी से उद्भूत है।

हठप्रदीपिका में कहा गया है कि अकार, उकार और बिन्दुसंशक मकार—ये तीन मात्रायें जिसमें स्थित हो, उसे ही परं ज्योतिस्वरूप ॐ कहा जाता है।

याज्ञवल्क्य उपनिषद् में कहा गया है कि इडा और पिङ्गला नाड़ी में चन्द्रमा और सूर्य सञ्चरण करते रहते हैं, इसीलिये इडा को चन्द्रमा और पिङ्गला को सूर्य कहा गया है।

खेचरी में कहा गया है कि जिह्वा के मूल भाग में सर्वतेजःस्वरूप अग्नि स्थित रहती है, उसमें सूर्य प्रतिष्ठित रहता है एवं तालु के मध्य में चन्द्रमा प्रतिष्ठित रहता है। इस प्रकार तत्त्वतः जो जानता है, उसे ही सिद्धि प्राप्त होती है। कमलमूल में, ज्वाला में, चूडा में, मात्राओं के अग्रभाग में, नारियल के वृक्ष में, शाखा में, अग्नि में शिखा होती है।

गोरक्ष ने कहा है कि मेढ़ से ऊपर एवं नाभि से नीचे खगाण्डवत् कन्दवोनि अवस्थित है। वहाँ से बहतर हजार नाड़ियाँ उत्पन्न हुई हैं।

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि बहतर हजार नाड़ियों में इडा-पिंगला एवं सुषुमा—ये तीन मुख्य हैं और इनमें भी एकमात्र सुषुमा सर्वप्रमुख है, व्योकि वही मुक्ति का मार्ग और विश्व को धारण करने वाली है। कन्दस्थ मध्य मार्ग में सुषुमा नाड़ी स्थित है। पृष्ठ के मध्य में स्थित यह नाड़ी मूर्धा में व्यवस्थित रहती है। मुक्तिमार्ग में वह सुषुमा ब्रह्मरन्ध्र में प्रतिष्ठित रहती है। वही अव्यक्त कही गई है और वही सूक्ष्म नाड़ी वैष्णवी कही गई है।

योगप्रदीपिका में कहा गया है कि लकड़ी से उत्पन्न अग्नि लकड़ी से ही शान्त भी होती है, नाद से प्रवर्तित चित्त नाद में ही लयीभूत होता है। समस्त बाह्य विषयों का त्याग कर दुग्ध और जल के समान मन एकीभूत होकर ब्रह्माकाश में विलीन हो जाता है।

लय को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि वासना का पुनः उत्थान न होने से विषय भी विस्मृति ही लय कही जाती है।

### क्षुरिकाधारणायोगलक्षणानि

अथ प्रसङ्गतो योगलक्षणमाह क्षुरिकायाम्—

क्षुरिकां संप्रवक्ष्यामि धारणां योगसिद्धये । यां प्राप्य न पुनर्जन्म योगयुक्तः स जायते ॥१॥  
वेदतत्त्वार्थविहितं यथोक्तं हि स्वयम्भुवा । निःशब्दं देशमास्थाय तत्रासनमवस्थितः ॥२॥  
कूर्मोऽङ्गनीव संहत्य मनो हृदि निरुद्ध्य च । मात्राद्वादशयोगेन प्रणवेन शनैः शनैः ॥३॥  
पूरयेत् सर्वमात्मानं सर्वद्वारान् निरुद्ध्य च । उरोमुखकटिग्रीवं किञ्चिद् हृदयमुन्नतम् ॥४॥  
प्राणान् संचारयेद्योगी नासाभ्यन्तरचारिणः । भूत्वा तत्र गतः प्राणान् शनैरथ समुत्सृजेत् ॥५॥  
स्थिरमात्रादृढं कृत्वा अङ्गुष्ठे तु समाहितः । द्वे तु गुल्फे च कुर्वीत जङ्घे चैव त्रयस्त्रयः ॥६॥  
द्वे जानुनि तथोरुभ्यां गुदे शिश्ने त्रयस्त्रयः । वायोरायतनं चात्र नाभिदेशे समाश्रयेत् ॥७॥  
तत्र नाडी सुषुमा तु नाडीभिर्बहुभिर्वृता । अणुरक्ताश्च पीताश्च कृष्णास्ताप्रविलोहिताः ॥८॥  
अतिसूक्ष्मां च तन्वीं च शुक्लां नाडीं समाश्रयेत् । ततः संचारयेत् प्राणानूर्णनाभीव तन्तुना ॥९॥  
तत्र रक्तोत्पलाभासं पुरुषायतनं महत् । दहरं पुण्डरेकेति वेदान्तेषु निगद्यते ॥१०॥  
तद्बित्त्वा कण्ठमायाति तां नाडीं पूरयन्तः । मनसस्तु क्षुरं गृह्ण सुतीक्ष्णं बुद्धिनिर्मलम् ॥११॥  
पादस्योपरि मर्मज्य तद्वृंपं नाम कृन्तयेत् । मनोद्वारेण तीक्ष्णेन योगमाश्रित्य नित्यशः ॥१२॥  
इद्रवत्र इव प्रोक्तं मर्मज्ञानकुरीतनम् । तद्ब्यानबलयोगेन धारणाभिर्निकृत्येत् ॥१३॥  
ऊरोर्मध्ये तु संस्थाप्य मर्मप्राणविमोचनम् । चतुरभ्यासयोगेन छिन्देनभिशङ्कितः ॥१४॥  
ततः कण्ठान्तरे योगी समूहन्नाडिसञ्ज्ञयम् । एकोत्तरं नाडिशंतं तासां मध्ये वराः स्मृताः ॥१५॥

योगलक्षण—क्षुरिकोपनिषद् में कहा गया है कि योग की सिद्धि के लिये धारणारूप क्षुरिका अर्थात् चाकू को कहता हूँ, जिसे प्राप्त करके योगाभ्यासी मोक्ष प्राप्त करते हैं। निःशब्द स्थान में आसन पर बैठे। कछुए के समान अपने मन को हृदय में सिकोड़ ले। उसके बाद धीरे-धीरे ३५कार का बारह बार मानसिक उच्चारण करते हुए पूरक प्राणायाम से सारे शरीर को पूर्ण करे। छाती, मुख, रीढ़, गर्दन और हृदय को सीधा रखे। नाक के भीतर चलते प्राण को हृदय में धारण करके कुप्षक करे। तब प्राण को रेचक प्राणायाम से धीरे-धीरे बाहर निकाले। इस अभ्यास के स्थिर और दृढ़ हो जाने पर पूरी सावधानी से पैरों के अंगूठों से दोनों गुल्फों में दो-दो, दोनों जांघों में तीन-तीन, दोनों जानुओं में दो-दो, उपस्थ-पायु में तीन-तीन प्राणायाम करे। तब वायु को नाभि देश में ले आये। वहाँ सुषुमा नामक नाड़ी है। वह दश नाड़ियों से लिपटी रहती है। नाड़ियों के कई रंग हैं, जैसे—लाल, पीला, काला, ताप्र इत्यादि। पर उनमें जो अत्यन्त सूक्ष्म पतली और श्वेत है, उसी का आश्रय लेना चाहिये। जैसे मकड़ी अपने नाभि से निकले सूत्र के सहारे ऊपर चढ़ती है, उसी प्रकार योगी अपने प्राण को गतिशील करे। वेदान्त में जिसे दहर पुण्डरीक कहते हैं, वह महान् पुरुष अर्थात् आत्मा का स्थान हृदय है, जो लाल कमल के समान प्रकाशित रहता है।

उसे भेदकर वायु उक्त नाड़ी को भरता हुआ कण्ठ में आता है। इसलिये योगी बुद्धि से निर्मल अति तीक्ष्ण मन-रूपी चाकू को लेकर पैरों के मध्य के नामरूप को काट दे। ऐसे तीक्ष्ण मन से नित्य योगाभ्यास करना चाहिये। जंघा में स्थित इन्द्रवज्र नामक स्थान को ध्यान योग से काट डालना चाहिये। दोनों ऊरुओं के बीच में प्राण को स्थापित करके उसे मर्म भागों में ले जाना चाहिये। चार बार योगाभ्यास करके निःशंक होकर मर्मभागों को काट दे। इसके बाद योगी कण्ठ में नाड़ियों को इकट्ठा करे। इन नाड़ियों में एक सौ एक नाड़ियों को श्रेष्ठ कहा गया है।

इडा रक्षतु वामेन पिङ्गला दक्षिणेन तु । तयोर्मध्ये वरं स्थानं यस्तं वेद स वेदवित् ॥१६॥  
 सुषुमा तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी । द्वासप्ततिसहस्राणि प्रति नाडीस्तु तैतिलम् ॥१७॥  
 छिद्यते ध्यानयोगेन सुषुमैका न छिद्यते । योगनिर्मलधारेण क्षुरेणानलवर्चसा ॥१८॥  
 छिन्देन्द्राडीशतं धीरः प्रभावादिह जन्मनि । जातीपुष्पसमायोगैर्यथा वास्यन्ति तैतिलम् ॥१९॥  
 एवं शुभाशुभैर्भविः सा नाडी तां विभावयेत् । तद्वाविताः प्रपद्यन्ते पुनर्जन्मविवर्जिताः ॥२०॥  
 ततो विदितचित्तस्तु निःशब्दं देशमाश्रितः । निःसङ्गस्तत्त्वयोगज्ञो निरपेक्षः शनैः शनैः ॥२१॥  
 पाशं छित्वा यथा हंसो निर्विशङ्कः खमुक्लमेत् । छिन्नपाशस्तथा जीवः, संसारं तरते तदा ॥२२॥  
 यथा निर्वाणिकाले तु दीपो दग्ध्वा लयं ब्रजेत् । तथा सर्वाणि कर्माणि योगी दग्ध्वा लयं ब्रजेत् ॥२३॥  
 प्राणायामसुतीक्षणेन मात्राधारेण योगवित् । वैराग्योपलघृष्टेन छित्वा तनुं न बद्ध्यते ॥२४॥ इति।

**अस्यार्थः—**

क्षुरिका शस्त्रिका प्रोक्ता ततुल्या धारणा यतः । तद्वाचकस्त्रिखण्डोऽयं क्षुरिकाग्रन्थं उच्यते ॥

गुरुतः प्राप्तविद्यास्य तत एव लब्ध्यज्ञानप्रणवमन्तर्स्य षडङ्गयोगेऽधिकार इति तदर्थमुत्तरो ग्रन्थः क्षुरिकामित्यादि।  
 क्षुरिकामिव संसारोच्छित्तये शस्त्रिकामिव रूपकं धारणामात्मनि चित्तावस्थानलक्षणम्।

इडा बाँयों ओर रहती है और पिंगला दाहिनी तरफ। इन दोनों के बीच में जो उत्तम स्थान है, उसे जो जानता है वह ब्रह्म का ज्ञानी है। सुषुमा परतत्त्व में लीन है। विरजा ब्रह्मरूपिणी है। सभी सूक्ष्म नाड़ियों की संख्या बहतर हजार है। इनको तैतिल कहते हैं। ध्यान योग से ये सभी नाड़ियाँ छेदी जाती हैं, एक सुषुमा ही नहीं छेदी जाती। योगी पुरुष को इस जन्म में आत्मा के प्रभाव से अग्नि के समान तेजस्वी और योगरूपी निर्मल धार वाली मनरूपी छुरी से सभी नाड़ियों को छेदना चाहिये। इससे तैतिल नाड़ियाँ उसी प्रकार सुवासित हो जाती हैं, जिस प्रकार जवापुष्टों से तिल सुवासित हो जाते हैं। इस प्रकार शुभाशुभ भावों से सुषुमा नाड़ी का ध्यान करने, उसमें भावना करने से योगी पुनर्जन्म से रहित होकर ब्रह्म को प्राप्त करता है।

तप से जिसने चित्त को जीत लिया है, वह एकान्त प्रदेश में बैठकर निःसंग तत्त्व के योग का अभ्यास करे और धीरे-धीरे निरपेक्ष हो जाय। हंस जिस प्रकार निःशंक होकर आकाश में उड़ जाता है, उसी प्रकार इस अभ्यास से योगी सभी बन्धनों के कट जाने से बन्धनमुक्त होकर संसार से सदा के लिये पार हो जाता है। जैसे दीपक के बुझते समय समस्त तेल जलकर समाप्त हो जाता है, वैसे ही योगी सभी कर्मों को जलाकर भस्म कर ब्रह्म में लीन हो जाता है। प्राणायाम द्वारा निर्मित अति तीक्ष्ण ३०कार रूप धार वाली वैराग्य रूप पत्थर पर योगी हुई मन रूपी छुरी से संसाररूपी सूत्र को काटकर योगवेत्ता पुनः उसके द्वारा नहीं बौद्धा जाता। जब वह कामनाओं से छूटता है और सभी ऐषणाओं से रहित होता है तब अमृतत्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार संसार को काट देने पर वह बन्धन में नहीं पड़ता। ऐसा यह रहस्य है। आशय यह है कि शस्त्रिका को ही क्षुरिका कहा जाता है और उसके ही समान धारणा भी है। उसी का वाचक तीन खण्डों में विभक्त यह ग्रन्थ क्षुरिकाग्रन्थ कहा जाता है।

गुरु से विद्या और प्रणव मन्त्र का ज्ञान-प्राप्त शिष्य का ही षडङ्ग योग में अधिकार होता है।

## धारणालक्षणम्

उक्तं च योगियाज्ञवल्क्येन—

शामादिगुणयुक्तस्य मनसः स्थितिरात्मनि । धारणेत्युच्यते सद्भिः शास्त्रतात्पर्यवेदिभिः ॥ इति ॥

न पुनर्जन्म भवतीति शेषः । स धारणावान् कुतश्चिदपाराधाद्यदि योगभ्रष्टो भवति तर्हि जन्मान्तरे योगयुक्त एव जायते इत्यर्थः । ‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’ । ‘तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकं’ मिति स्मृतेः । वेदेति । इदं योगस्वरूपं वेदेन तत्त्वार्थेन परमार्थेन विहितं विधिविषयीकृतं स्वयंभुवा ब्रह्मणा यथोक्तं यथा वर्तते तथोक्तं न विसंवादीत्यर्थः । तदुक्तं योगियाज्ञवल्क्येन—‘वक्ष्यामि योगसर्वस्वं ब्रह्मणा कीर्तिं पुरा’ इति । ‘यथोक्तं परमेष्ठिना’ इति च । योगस्वरूपं साधयितुं षडज्ञान्याह निःशब्दमिति । यदुक्तं ‘कान्तारे विजने देशे फलमूलोदकान्विते । तपश्चरन् वसेन्नित्यं’ इति । षडज्ञलक्षणानि प्रागुक्तानि । यमादीनां पूर्वकाण्डादेव सिद्धत्वादिहनभिधानं, न तु कापालिकवदनङ्गीकारात् ।

योगि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि शम-दमादि गुण से युक्त मन की आत्मा में उपस्थिति को ही शास्त्रज्ञों ने ‘धारणा’ कहा है । धारणावान को पुनर्जन्म नहीं होता । धारणा करने वाला यदि कभी अपराधादि से योगभ्रष्ट होता हो जाता है तो जन्मान्तर में भी वह योगयुक्त ही होता है । यह योग ब्रह्मा द्वारा प्रवर्तित है ।

## दशधा यमा:

यमा दश यथा—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् । क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ॥ इति ॥

यम दश होते हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, ऋजुता, क्षमा, धृति, मिताहार एवं पवित्रता।

## दशधा नियमा:

नियमा दश यथा—

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् । सिद्धान्तश्रवणं चैव हीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥ इति ॥

अवस्थित आस्थित आस्तुः । तदुक्तं गीतासु—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ इति ॥

तथा तन्त्रेणासनं पद्माद्यास्थितमित्यपि बोद्धव्यम् । तदुक्तं हठयोगप्रदीपिकायाम्—

हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते । तत्कुर्यादासनस्थैर्यमारोग्यं चाङ्गपाटवम् ॥ इति ॥

नियम भी दश हैं—तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्त का श्रवण, लज्जा, बुद्धि, जप एवं हवन।

गीता में भी कहा है कि पवित्र देश में न ज्यादा ऊँचा और न ही ज्यादा नीचा मृगचर्म या कुशासन के स्थिर आसन पर स्वयं को प्रतिष्ठापित करना चाहिये।

यहाँ आसन से पद्मासनादि बोधव्य हैं । हठयोगप्रदीपिका में भी कहा है कि हठ के प्रथम अंग होने के कारण आसन को पहले कहा जाता है । अंगों की चपलता के लिये एवं आरोग्य-प्राप्ति के लिये स्थिर आसन करना चाहिये ।

## प्रत्याहारलक्षणम्

कूर्मेऽङ्गानीवेति प्रत्याहार उक्तः । अत्र इन्द्रियाणीति शेषः । तदुक्तम्—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः । बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥ इति ॥

आन्तरप्रत्याहारसिद्धये मन इति । हृदि हृत्युण्डरीके । मनोऽनिरोद्धे दोषस्मरणात् । तदुक्तम्—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् । इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ इति ॥

मात्रेति द्वादश मात्रा नादबिन्दावुक्ताः ‘घोषिणी प्रथमा मात्रा’ इत्यादिना तत्रैव द्रष्टव्याः। प्रणवेन शनैः शनैरुच्चारितेन वायुं पूरयेत्। कीदृशेन मात्राः अकारोकारमकारार्थमात्राख्याश्रतस्त्वासां प्रत्येकं तिस्स्तित्वो मात्रा घोषिण्यादयो भूमिपत्यादिफला द्वादश, तासां योगश्चिन्तनं यस्मिंस्तेन प्रणवेन पूरयेत्। यदा द्वादशभिः प्रणवैः पूरणं तदाष्टचत्वारिंशद्द्विः कुम्भनं, चतुर्विशतिभी रेचनम्। यदा तु षोडशभिः पूरणं तदा चतुष्प्रष्ठिभिः कुम्भनं द्वात्रिंशद्वी रेचनम्। यदा त्वष्टभिः पूरणं तदा द्वात्रिंशद्विः कुम्भनं षोडशभी रेचनमिति विवेकः। सर्वमात्रानं न तु कर्तिप-याङ्गनिरोधेनोपविशेत्। तथा सति वायुवैष्टम्यं स्यात् सर्वद्वारान् सर्वद्वाराणीत्यर्थः। अथोद्वारे आकुञ्जनमूलबन्ध्या-मूर्धद्वाराणि जालन्धरबन्धेन। उरोमुखकटिग्रीवमुन्नतं धारयेदिति शेषः। तदुक्तं गीतासु—‘समं कायशिरोग्रीवं धार-यन्नचलं स्थिरम्’ इति। हृदयं किञ्चिदुन्नतं धारयेत्, अनेन जालन्धरबन्धः सूचितः।

‘कूर्माऽङ्गानीव’ से प्रत्याहार कहा गया है। कहा भी गया है कि विषयों में स्वभावतः विचरण करने वाले इन्द्रियों को बलपूर्वक रोकना ही प्रत्याहार कहलाता है।

आन्तर प्रत्याहार सिद्धि के लिये मन को नियन्त्रित करना चाहिये; क्योंकि मन के नियन्त्रित न होने से दोष का स्मरण होता है। कहा भी है कि कर्मेन्द्रियों को नियन्त्रित करके इन्द्रिय विषयों को मन से जो विमृढ़ प्राणी स्मरण करता है, वह मिथ्याचार कहलाता है।

प्रणव का उच्चारण करते हुए धीरे-धीरे पूरक करे। जब बारह प्रणवों से पूरक करे तो अड़तालीस प्रणव से कुम्भक करे और चौबीस प्रणव से रेचक करे। जब सोलह प्रणव से पूरक करे तो चौंसठ प्रणव से कुम्भक और बत्तीस प्रणव से रेचक करे। जब आठ से पूरक करे तो बत्तीस से कुम्भक और सोलह से रेचक करे। अथोद्वार के आकुञ्चन से मूल बन्ध और ऊर्ध्व द्वार के आकुञ्चन से जालन्धर बन्ध करे। छाती मुख कर्तृ गर्दन सीधा रखे। गीता में भी कहा है कि शरीर, शिर एवं गर्दन को सीधा रखकर अचल होकर स्थित रहे। हृदय को कुछ उच्च रखे। इससे जालन्धर बन्ध सूचित होता है।

#### जालन्धरबन्धः

स यथा—

कण्ठमाकुञ्ज्य हृदये स्थापयेच्चिवबुकं दृढम्। बन्धो

जालन्धराख्योऽयम्मृताक्षयकारकः ॥ इति।

सञ्चारयेत् पूरकमात्राभिस्तस्मिन् हृदये। नासेति तेन मुखेन पूरकरेचकौ निषिद्धौ, मुखेनैव पूरणे शिरा-नैर्मल्यासिद्धेः। भूत्वेति प्राणस्तत्र सर्वशरीरे गतः प्रविष्टो भूत्वा तिष्ठतीति शेषः, एतेन कुम्भक उक्तः। स च पूरक-मात्रापेक्षया चतुर्गुणाभिर्भात्राभिः कार्यः। अथ रेचकमाह शनैरिति। समुत्सर्जनं च पूरणापेक्षया द्विगुणाभिर्भात्राभिः। शीघ्रोत्सर्जने विमार्गं वायुर्गच्छेत्। स्थिरेति स्थिराभिरेकरूपाभिर्भात्राभिर्दृढं स्थिरं प्राणं कृत्वा केवलकुम्भके सिद्धे इत्यर्थः। ततो धारणाभिः प्रत्याहारमध्यसेदित्याह अङ्गुष्ठे इत्यादौ जातावेकवचनम्। अङ्गुष्ठयोग्यारुल-योर्जहृष्योरित्यादि बोद्धव्यम्। अङ्गुष्ठयोर्धरणे कुर्वीत्यन्वयः, द्वे तु, धारणे कुर्यादित्यर्थः। त्रयस्त्रय इति (जड़े प्राप्य) आद्यन्तमध्येषु निरोधाः कर्तव्या इति शेषः। जानुनि आद्यन्तयोरुभ्यां साधनाभ्यां ऊर्ध्वोपि तथा द्वे इत्यर्थः। गुदेति मूलाधारे स्वाधिष्ठाने आद्यन्तमध्येषु निरोधाः। वायोरिति, अत्र नाभिदेशे वायोरायतनं मुख्यं स्थानमस्ति। तच्च धारणा समाश्रयेदित्यर्थः। तत्रेति, तत्र नाभौ सुषुमा मध्यनाडी बहुभिर्द्वासत्तिसहस्रैर्वृता। मूलं तु तस्याः कन्दमध्ये कन्दसु—‘गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सधादद्व्यहूलं विदु’रित्युक्तः। ‘गुदमेद्वजान्तरे यद्वे—वैणुकन्दं तदुच्यते’ इति च। वेणुः सुषुमा सा च षट्क्रकवती मूलाधारदण्डान्तर्विवरगता मूर्धानं भित्त्वा ब्रह्मलोकान्तं निर्गता। यच्छान्दोग्ये—‘शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धनिमभिनिःसृतैका’ इति। नाभेरुर्ध्वं तु चक्रानुक्रमेण धारणा मूर्धान्तं द्रष्टव्या। उक्तं च योगिण्याङ्गवत्त्व्येन—

मर्मस्थानानि सिद्ध्यर्थं शरीरे योगक्षेमयोः। तानि सर्वाणि वक्ष्यामि यथावच्छृणु सुव्रते ॥१॥

कण्ठ को सिकोड़ते हुये चिबुक को दृढ़तापूर्वक हृदय पर स्थापित करना ही जालन्धर बन्ध कहलाता है; यह अमृत को अक्षय रखने वाला होता है। अर्थात् अमरत्व प्रदान करने वाला होता है।

पूरक मात्रा का हृदय में सज्जार करे। नाक से पूरक-रेचक करे, मुख से नहीं; क्योंकि मुख से पूरक करने से शिर निर्मल नहीं होता। प्राण सारे शरीर में प्रविष्ट होकर स्थित रहता है, इसीलिये इसे कुम्भक कहते हैं। उसे सामान्य पूरक से चौगुना अधिक मात्रा में करना चाहिये। रेचक धीरे-धीरे करे। रेचक पूरक के दुगुनी मात्रा में करे। शीघ्र उत्सर्जन करने से वायु विमार्ग में जाता है। स्थिर रूप से एक समान मात्रा से प्राण को स्थिर दृढ़ करके कुम्भक सिद्ध होने पर धारणा से प्रत्याहार का अभ्यास मूलाधार गुदा और लिङ्ग के मध्य में करना चाहिये। वेणु सुषुमा को कहते हैं और वह षट्चक्रवती मूलाधार दण्ड के भीतर विवरण भूर्धा को भेद कर ब्रह्मलोक तक जाता है। यज्ञवल्क्य ने कहा है कि शरीर के योगक्षेम के लिये मर्मस्थानों का सिद्ध होना आवश्यक है।

### मर्मस्थानसंख्यादि

मर्मस्थानसंख्या तु—

पादाङ्गुष्ठौ तु गुल्फौ च जङ्घामध्यौ तथैव च । तयोर्मूलं च जान्वोश्च मध्ये चोरुभयस्य च ॥२॥

पायुमूलं ततः पश्चान्मध्यदेहश्च मेद्रकम् । नाभिश्च हृदयं गार्भं कण्ठकूपस्तथैव च ॥३॥

तालुमूलं च नासाया मूलं चाक्षोश्च मण्डले । भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च प्रोक्तानि मुनिसत्तमैः ॥४॥

मर्मस्थानानि चैतानि………………। इति।

एतेषु च तत्रैव धारणोक्ता—

स्थानेष्वेतेषु मनसा वायुमारोप्य धारयेत् । स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारं प्रकुर्वतः ॥१॥

सर्वे रोगाश्च नश्यन्ति योगाः सिद्ध्यन्ति तस्य च । इति।

प्रपञ्चसारेऽपि (१९.५१)—

अङ्गुष्ठगुल्फजानुद्वितयं च गुदं च सीवनी मेद्रम् । नाभिर्हृदयं श्रीवा सलम्बिकाग्रं तथैव नासा च ॥१॥

भ्रूमध्यललाटाग्रं सुषुमाग्रं द्वादशान्तमित्येवम् । उत्क्रान्तौ परकायप्रवेशने चागतौ च पुनः स्वतनौ ॥२॥

स्थानानि धारणायाः प्रोक्तानि मरुत्रयोगविधिनिपुणैः । इति।

अङ्गुष्ठादूर्ध्वमारोहे फलमिदमुक्तम् । मूर्धोऽङ्गुष्ठपर्यन्तावरोहेऽपि च धारणानां फलमुक्तम्—

स्थानात् स्थानं समाकृष्य यस्त्वेव धारयेत्सुधीः । सर्वपापविशुद्धात्मा जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥ इति।

अणुरक्ताश्चेत्यादीनां नाडीनां विशेषणम् । तदुक्तं छान्दोये—‘अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिमस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्य’ इति। अणवश्च ता रक्ताश्चेति समासः। एवं केवलकुम्भके सिद्धे प्राणमनसोः स्थानविशेषे प्रत्याहारमध्यस्य धारणासिद्धये सुषुमायां प्राणमनसोः प्रवेशः कर्तव्यः। तत्रोपायः—मूलोड्याणजालन्धरबन्धैः शक्तिचालनेन त्वपानमूर्ध्वमाकुड्य तेन देहमध्ये अग्निं प्रज्वाल्य तज्ज्वालया कुण्डलिनीं प्रताप्योद्दोध्य ब्रह्मनाडीद्वामध्यस्थतन्मुखप्रसारणेन तत्र वायुमनोवह्नीन् प्रवेशयेदित्याशयेन आह—अतिसूक्ष्मामिति। तत्र जालन्धरबन्ध उक्तः।

ऐरे के अंगूठे, दोनों गुल्फ, जंघाओं का मध्य भाग, जंघाओं का मूल, दोनों जानुयें, दोनों ऊरुयें, पायुमूल, देह का मध्य भाग, मेद्र, नाभि, हृदय, कण्ठकूप, तालुमूल, नासिकामूल, अक्षिमण्डल, भौहों का मध्य भाग एवं ललाट—ये सभी मर्मस्थान कहे गये हैं। इन्हें ही मर्मस्थानों में धारणा करनी चाहिये। यज्ञवल्क्य ने ही कहा है कि उपर्युक्त मर्मस्थानों में मनसा वायु को आरोपित करके धारणा करो। तदनन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते हुये प्रत्याहार का साधन करने से समस्त रोग नष्ट होते हैं एवं साधक का योग भी सिद्ध होता है।

प्रपञ्चसार में भी कहा है कि दोनों अंगुष्ठ, दोनों गुल्फ, दोनों जानु, गुदा, सीवनी, मेढ़, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, नासा, घूमध्य, ललाट का अग्र भाग, सुषुम्ना का अग्र भाग—ये बाहर ही दूसरे शरीर में प्रवेश करने हेतु एवं पुनः अपने शरीर में आने हेतु प्राण के स्थान हैं। इन्हीं स्थानों की धारणा वायु के प्रवोग में निपुण लोग करते हैं। अंगूठे से ऊपर ऊर्ध्व आरोह में यह फल कहे गये हैं। मूर्धा से अंगुष्ठपर्यन्त अवरोहक्रम में धारणा का फल बताते हुये कहा गया है कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर खींच कर वायु को जो धारण करता है, वह समस्त पापों से रहित विशुद्धात्मा होकर आकाश में चन्द्र-ताराओं की स्थितिपर्यन्त जीवित रहता है।

केवल कृम्भक-सिद्धि में प्राण और मन के स्थान विशेष हैं। प्रत्याहार के अभ्यास से धारणा सिद्धि में सुषुम्ना में प्राण और मन को प्रवेश कराना चाहिये। उसका उपाय है—मूल उड्डान जालस्थर बन्ध द्वारा शक्तिचालन से अपान को ऊपर आकुञ्चित करके देह में अग्नि प्रज्वलित करे। उसकी ज्वाला से कुण्डलिनी को तपाकर उद्बुद्ध करे। ब्रह्मनाड़ी-द्वारमध्यस्थ उसके मुख पसारे पर वहाँ वायु, मन एवं वहिं का प्रवेश करे।

### उड्डाणमूलबन्धशक्तिचालनानि

उड्डाणं यथा—

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरुद्धर्व तु कारयेत् । उडियाणो ह्यां बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ इति।

मूलबन्धो यथा—

पार्षिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्जयेद् गुदम् । अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धो निगद्यते ॥ इति।

शक्तिचालनं यथा—

सव्यासनस्थस्य फणावती सा प्रातश्च सायं प्रहरार्थमात्रम् ।

प्रपूर्य सूर्यात् परिधानयुक्ता प्रदद्य नित्यं परिचालनीया ॥ इति।

अतिसूक्ष्मां तन्वीं बालाग्रस्थात् (सहस्रान्त) भागोपमां नाडीं सुषुम्नां समाश्रयेत्, अन्या नाडीरुत्सृज्य तत्रैव मनो रुच्यादित्यर्थः। ततस्येत्यर्थः। तृतीयार्थं तसिः। तनुना इति प्रतियोगिनि तृतीयाश्रवणात्। सुषुम्नया प्राणान् सञ्चारयेदुद्धर्व नयेत्। ऊर्णानाभी कीटविशेषो लूताख्यः स तनुना यथोर्ध्वं सञ्चरति तथा सञ्चारयेदित्यर्थः। तत इति। ततः सञ्चारानन्तरं तद्वित्ता इत्यग्रतनेनान्वयः। तत् पुण्डरीकं कीदृशं रक्तोत्पलवदाभासं रक्तवर्णं, नानावर्णनाडीयोगात् रक्तता। 'पुण्डरीकं सिताम्बुजे' इति कोषात्, सितत्वेऽपि औपाधिकी रक्तता ज्ञेया। पुरुषायतनं जीवनीदः महत् सर्वावभासकत्वात्। दहरं दध्मं सूक्ष्मरूपत्वेन पुण्डरीके हत्यद्वे दहराख्यमाकाशं वेदान्तेषु छान्दोग्यादिषु निगद्यते पर्यन्ते। तद्यथा—'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं 'पुण्डरीकं वेशम् दहरोऽस्मिन्नेतराकाशस्तस्मिन् यदनन्ततदन्वेष्ट्यं तद्वा व विजिज्ञासितव्यम्' इति। तद्वित्तेति, तत्पुण्डरीकमनाहताख्यं कुण्डलिनीं मनः प्राणाग्निभिर्भिर्त्वा कण्ठं विशुद्धिक्रस्थानं अर्गलां भेत्तुमायाति जीवः। तां सुषुम्नां पूरयन् व्याप्तुवन् यतः प्रयतः सावधानः 'पूरयन् दिवि' इति पाठे दिवि इति निमित्तसप्तमी, फलमपि च निमित्तं भवति, दिवः प्राप्त्यर्थं ऊर्ध्वमारोहेदित्यर्थः। मनस्सिवति मनः प्रकृतिकं क्षुरं शास्त्रनिष्ठातं मन एवेत्यर्थः। सुतीक्ष्णं तकेण धर्षणोपलेन निर्वृद्धं शाणस्थानीयया बुद्ध्या निर्मलम्। पादस्येति, ब्रह्मणः पादस्य श्रुत्यन्तरोक्तस्य पुंस्पादस्थानीयस्योपरि तदुपासनया मर्मज्य निर्मलीकृत्य, मृजेर्यडनात् त्व्यप् छान्दसः। ब्रह्मणः पादा यथा—'तदेतच्चुष्पाद् ब्रह्म वाक् पादः प्राणः पादः चक्षुः पादः श्रोत्रं पादः' इत्यथ्यात्मम्। अथाधिदैवतं 'अग्निः पादे वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पादः' इत्युभयमेवादिष्टं भवति। अध्यात्मं चाधिदेवं चेति। अथवा प्रणवस्य चत्वार्यक्षराण्येव जाग्रदादिस्तुपाणि पादाः। 'ओमित्येतदक्षरस्य पादश्वत्वारः' इत्यथर्वणशिखोक्तेः। तत् प्रसिद्धं रूपं भूतादिस्वरूपं नाम तद्वाचकः शब्दः तद्दूर्यं ब्रह्मणो लोमस्थानीयं स्वरूपाद् बाह्यं कृत्येत्रिवर्तयेत्, तद्विषयं वृत्तिं भूतशुद्धिमार्गेण त्यजेदित्यर्थः। इदमेव तस्य निकृतनं यदविषयीकरणं मनोमयत्वात्

संसारस्य मनसानुपरक्तस्य स्वरूपाभावात्। हठपक्षे उत्तरमार्गोद्धकं सग्रन्थि नाडीचक्रं छिन्द्यात्। तदुक्तम्—

नासादक्षिणमार्गवाहिपवनः प्राणातिदीर्घीकृतश्चन्द्राम्भः परिपूरितामृततनुः प्राग्यजिटकायां तदा।

छिन्द्यात् कालविशालवह्निवशतो भूरन्म्बनाडीगणान् तत्कार्यं कुरुते पुनर्वतरं छिन्नद्वमस्कन्धवत्॥ इति।

किं कृत्वा निकृन्तयेदत आह मन इति। मनसा उपायेन नित्यशोऽभीक्षणं योगं जीवात्मपरमात्मनोरैक्यं पक्षान्तरे योगमुद्योगमाश्रित्या। इन्द्रेति। कीदृशं योगं इन्द्रवज्रं इवेति। तथा प्रोक्तं यथा इन्द्रो वज्रेण भैर्वं भिन्नतिः, एवमयं योगश्चेद्यं वासनाजालम्। इन्द्रवज्रो विद्युत् ततुल्यया कुण्डलिन्या नाडीजालं च छिन्नतिः। पुनः कीदृशं, मर्मणो जड्हाया अनुकीर्तनं यस्मिन् स तं जड्हारूपं मर्म व्यानस्थानं यत्र कथितम्। जड्हाग्रहणमङ्गुष्ठादेरप्युपलक्षणं तुल्यन्यायत्वात्। अङ्गुष्ठादिमूर्धान्तानां मर्मणामनुकीर्तनात्। 'मर्मजड्हानुकर्तनं' इति पाठे यथा नापितेन क्षुरस्य तैक्ष्यज्ञानाय जड्हा अनु-कृत्यते मुण्डव्यते, तथाङ्गुष्ठादिमर्मस्थानानि नाडीमलापनुत्ये निर्मलीक्रियन्ते इत्यर्थः। तद्व्यानेति, तच्छब्देन योग्यतावशाद् मर्म जड्हादि गुणीभूतमपि परामृश्यते। तत् सनामकं मर्मादि धारणाभिः छिन्द्यात्। अथवा व्यवहितमपि रूपं नाम तच्छब्देन परामृश्यते, स एवार्थः। इममिन्द्रवज्रयोगं जिह्वायास्तालुमूले प्रवेशार्थं जिह्वापूलसूत्रकृन्तनरूपं हठयोगिनो वर्णयन्ति।

पेट को सिकोड़कर वायु को नाभि के ऊपर उठाने को उड्हाण बन्ध कहा जाता है; यह मृत्यु को जीतने वाला होता है। पार्ष्ण भाग से योनि को पीड़ित कर गुदा को आकुञ्जित कर अपान वायु को ऊपर की ओर खींचना मूलबन्ध कहलाता है। सब्य आसन में स्थित होकर प्रातः एवं सायं आधा प्रहर तक कुण्डलिनी को सूर्य से परिधानयुक्त करते हुये तप्त कर प्रतिदिन परिचालन करना ही शक्तिचालन कहलाता है।

अति सूक्ष्म तन्त्री बालाग्र शत भागोपम नाडी सुषुमा का समाश्रयण ग्रहण करे। अन्य नाडियों को छोड़कर उसी में मन को निरुद्ध करे। सुषुमा में प्राण का संचार करके उसे ऊपर ले आये। मकड़ी जैसे अपने ही देह से निकले सूते के सहारे ऊपर चढ़ती है, वैसे ही प्राण को संचरित करे। पुण्डरीक का भेदन करके ऊपर जाय। पुण्डरीक स्त्रोत्वल-सदृश रक्त वर्ण का है, नाना वर्ण की नाडियों के योग से उसका लाल रंग है। हठयोग के प्रक्ष में उत्तर मार्गोद्धक सग्रन्थि नाडी चक्र का छेदन करना चाहिये। कहा भी गया है कि नासिका के दाहिने छिद्र से प्रवाहित होने वाली वायु अर्थात् इडा नामक नाडी प्राणवायु को अत्यधिक विस्तारित करके चान्द्र जल अर्थात् अमृत से आप्स्ववित्त होकर स्थायं को अमृतमय बनाते हुये गले में स्थित घण्टिका के पूर्व स्थान पर स्थित कालरूपी विशाल वह्नि के वशीभूत होकर भ्रू-स्थित रन्ध्र में विस्तारित नाडी समूह की छिन्न-भिन्न करके कटी हुई शाखाओं वाले वृक्ष में पुनः प्रस्फुटित पल्लवों के समान ही शरीर को भी नूतन बना देती है। मनसा उपाय से मन का निकृन्तन करे। नित्य अभीक्षण योग से जीवात्मा परमात्मा ऐक्य की भावना से करे। जैसे इन्द्रवज्र से मेद्य का भेदन करता है, वैसे ही इस योग से वासनाओं का उच्छेद करे। इन्द्रवज्र से निःसृत बिजली के समान कुण्डलिनी नाडी जाल को छिन्न करती है। यह इन्द्रवज्र योग जिह्वा तालुमूल में प्रवेश के लिये जिह्वा मूल के सूत्र को काटने की बात हठयोगी कहते हैं।

### रसनामूले मिराबन्धच्छेदः

#### तदुक्तं खेचर्याम्—

तालुमूलं समुद्धृत्य सप्तवासरमात्मवित्। स्वगुरुक्तप्रकारेण मलं सर्वं विशोषयेत्॥१॥

सुहीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं स्निग्धनिर्मलम्। समाधाय यतस्तेन रोममात्रं समुच्छिदेत्॥२॥

छित्त्वा सैन्यवपथ्याभ्यां चूर्णं तेन प्रधर्षयेत्। पुनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समुच्छिदेत्॥३॥

एवं क्रमेण षण्मासां नित्ययुक्तः समाचरेत्। षण्मासाद्रसनामूले शिराबन्धः प्रणश्यति॥४॥ इति।  
ततो दोहनमुक्तम्।

अथ वागीश्वरीं नाम शिरोवक्षेण वेष्टयेत्। शनैरुत्कर्षयैद्योगी

कालवेलाविधानवित्॥५॥ इति।

खेचरी में कहा है कि आत्मजानी सात दिनों तक तालुमूल के सभी मैल को गुरु के उपदेशानुसार साफ करे। स्नुहीपत्र के समान तेज स्निग्ध निर्वल शस्त्र लेकर रोम के बराबर जिहामूल के सूत्र को काटे। काटने के बाद उसमें सैन्धव चूर्ण मले। फिर सात दिनों के बाद रोममात्र काटे। इस क्रम से छः महीनों में जिहामूल के सूत्र का छेदन हो जाता है। इसके बाद दोहन करें। शिख को वागीश्वरी नामक वस्त्र से वेणित करे।

ब्रह्मार्गलप्रवेशफलम्

**प्रवेशोऽप्युक्तः—**

यदा त्वाहमार्गेण जिहा ब्रह्मलिं विशेषत् । तदा ब्रह्मार्गलं देवि दुर्भेद्यं त्रिदशैरपि ॥६॥  
अङ्गल्यग्रेण संधृष्य जिहां तत्र प्रवेशयेत् । इति।

ततो जिह्वा मथनाभ्यासात् फलमप्युक्तम्—

एवं द्वादशवर्षन्ते संसिद्धिः परमेश्वरि । शरीरे सकलं विश्वं पश्यत्यात्मविभेदतः ॥ इति।

स हठतरः पन्थाः। ऊरोरिति। ऊरुग्रहणमुत्तरोत्तरस्थानोपलक्षणम्, ऊरोर्मध्ये समनस्कं प्राणं संस्थाप्य मर्घणः प्राणस्य च विमोचनं कर्तव्यम्। 'अस्मिन् मर्घण्यहं स्थितः' इत्यभिमानं त्यक्त्वा निरालम्बस्तिष्ठेदित्यर्थः। एवं स्थानान्तरे व्याप्त्यग्निः। अथवा सर्वत्रावच्छेदेन व्यवधायकं नाड्यादि विदार्य स्थानात् स्थानान्तरे गमनं च। चतुरिति, ऊरोरुत्तरेषु चतुर्षु गुदशिशननाभिहृदयस्थानेषु अभ्यासयोगेन नामरूपमर्घप्राणान् छिन्देत्। अथवा चतुर्वर्णं चतुरावृत्त्या प्रातर्मध्याहे सायं निशीथे च सर्वेषु स्थानेषु अभ्यासयोगेन। नन्वेवं छेदेन देहाभिमानत्यागेन देहपातः स्यादत आह— अनभिशङ्कित इति। अयं भावः—न ह्यभिमानत्यागेन देहपातो भवति, सुषुप्त्यादिषु तथादर्शनात्। ध्यानिनां चिरकालं देहावस्थानस्मृतेश्च। न वा चक्रादिभेदेनेत्यपि सा शङ्केति। तत इति, तदनन्तरं योगी कण्ठान्तरे कण्ठमध्ये नाडीसञ्जयं सम्भून् सङ्खीकुर्वन् छिन्देदित्यनुषङ्गः। कियन्त्यो नाड्यः सन्तीत्यपेक्षायां मध्यमसंख्यामाह—एकेति। वरा उत्तमाः। इडा रक्षकेति। इडा वामेन पिङ्गला दक्षिणेन इत्येवं वक्तव्ये रक्षतु-शब्दप्रयोगः। शिव्याणामाशिषे विद्यासंप्रदायोच्छेदो मा भूदिति। वरं स्थानं सुषुम्नाख्यं, तं तदधिष्ठातारं पुंलिङ्गिर्देशात्। किं तत् स्थानं कक्षं तदधिष्ठाता इत्यपेक्षायामाह— सुषुमा त्विति। परे परपुरुषे ब्रह्मणि लीना विरजा निर्मला ब्रह्मरूपिणी ब्रह्मस्थानत्वात् सुषुमैव वरं स्थानं पर एव तदधिष्ठाता इत्यर्थः। कथंभूता सुषुम्ना, नाडीषु मध्ये द्वासप्ततिसहस्राणि नाडीः प्रति तैतिलुमुच्चीर्षं गण्डुकम्। यथा गण्डुकाधारे उत्तमाङ्गं तिष्ठति एवं सुषुम्नाधारे सर्वा नाड्यः स्थिता इत्यर्थः। 'तैतिलो गण्डुके प्रोक्तस्तैतिलं करणान्तरे' इति विश्वः। छिण्डते इति। ध्यानयोगेन ताश्चिद्यन्ते, तासां छिन्नत्वादुच्चावच्चदेशेषु उत्कान्तो जीवस्य गमनं भवतीत्यर्थः। यदुक्तम्—'तयोर्ध्वमायन्त्रमृतत्वमेति विष्णुङ्न्या उत्क्रमणे भवन्ति' इति। एका सुषुमा न छिण्डते, तस्याः परमसूक्ष्मत्वेन मनोविषयत्वायोग्यत्वात् मनोविषयस्यैव योगेन च्छेदात्वात् ऋजुतयाऽप्रतिद्वन्द्वत्वाच्च। योगनिर्मलेति, योग एव निर्मला धारा यस्य तेन क्षेरेण मनसा अनलवर्चसा पादस्योपरि मु(घ)ष्टात्रान्निर्मले तेजसा नाडीशतं छिन्देत्। तासां च्छेदे तत्रभूतस्य द्वासप्ततिसहस्रस्थापि छेद सिद्धः। धीरो धीमान्, प्रभावाद्योगसामर्थ्यात्, इहजन्मनि मनुष्यशरीरे। तैतिलेन सुषुम्नायाः सादृश्यान्तरमाह—जातीपुर्वेति। जाती मालती तस्याः पुष्पाणां समायोगैः संयोगैः कृत्वा यथा प्रसाधकास्तैतिं गण्डुकं वास्यन्ति वासेन परिमलेन युक्तं कुर्वन्ति एवं सा नाडी शुभाशुभैर्भविर्वास्यते इति विपरिणामः। पुष्पाधिवासाश्रयो यथा गण्डुकं भवति तथेयं नाडी वासनाश्रय इत्यर्थः। तर्हि किं कार्यमत आह— तामिति। चिन्तनफलमाह—तदिति। प्रपृथने संपद्यन्ते। तत इति, विदितं चितं येन स विदितचित्तः। मात्राधारेण मात्रा द्वादशादिसंख्या प्रणवमात्रास्ता एव धारा मनः क्षुरस्य स तथा, तनु वासनारूपं नाडीरूपं च। द्विसुक्तिर्निश्चयार्थः। समाप्त्यर्थं इतिशब्दः।

कालवेला विधान से योगी धीरे-धीरे जीभ का दोहन करे। जब बाह्य मार्ग से जीभ ब्रह्मवित में प्रवेश करता है तब देवताओं से भी टुर्भेद्य ब्रह्म अर्गला को अंगुल्यग्र से घरित करके जीभ को प्रवेश करावे। इस प्रकार का अभ्यास बारह वर्षों तक करने से सिद्धि मिलती है। तब साधक अपने ही शरीर में सारे संसार को अपने से अभिन्न रूप में देखता है।

### उत्कान्तिविधि:

अयमारोहप्रकार उत्कान्तिसमये खेचरीपटले उत्कः, यथा—

यदा तु योगिनो बुद्धिस्त्वकुं देहमिमं भवेत् । तदा स्थिरासने भूत्वा मूलाच्छक्तिं समुज्ज्वलाम् ॥१॥  
 सूर्यकोटिप्रतीकाशां भावयेच्चिरमात्मनः । आपादतलपर्यन्तं प्रसृतं जीवमात्मनः ॥२॥  
 संहत्य क्रमयोगेन मूलाधारपदं नयेत् । तत्र कुण्डलिनीं शक्तिं संवत्तानलसंनिभाम् ॥३॥  
 जीवं निजं चेन्द्रियाणि ग्रसन्तीं चिन्तयेद्विद्या । संप्राप्य कुम्भकावस्थां तडिज्ज्वलनभास्वराम् ॥४॥  
 मूलाधाराद् यतिर्देवि स्वाधिष्ठानपदं नयेत् । तत्रस्थं जीवमखिलं ग्रसन्तीं चिन्तयेद् ब्रती ॥५॥  
 तडिक्कोटिप्रतीकाशां तस्मादुद्वीप्य सत्वरम् । मणिपूरपदं प्राप्य तत्र पूर्ववदाचरेत् ॥६॥  
 तत्र स्थित्वा क्षणं देवि पूर्ववद्योगमार्गवित् । अनाहतं नयेद्योगी तत्र पूर्ववदाचरेत् ॥७॥  
 ततो विशुद्धावानीय कुण्डलीं पूर्ववच्चरेत् । उन्नीय तस्माद् धूमध्ये नीरक्षीरं ग्रसेत्युनः ॥८॥  
 ग्रसं क्षीरं महाशक्त्या कोटिसूर्यसमप्रभम् । मनसा सह वागीश्या भित्त्वा ब्रह्मागर्णिं क्षणात् ॥९॥  
 परामृतमहाभ्योधौ विश्रान्तिं तत्र कारयेत् । तत्रस्थं परमं देवं शिवं परमकारणम् ॥१०॥

शक्त्या सह समायोज्य तयोरैक्यं विभावयेत् । इति।

खेचरी पटल में कहा गया है कि जब योगियों का शरीर बुद्धिरहित हो जाता है तब आसन स्थिर होता है। तब मूल शक्ति कुण्डलिनी करोड़ सूर्य के समान प्रकाशमान होकर चित्त और आत्मा को अलोकित करती है। आपाद तल तक फैले जीवात्मा को समेट कर क्रम से पैरों से मूलाधार में ले आये। वहाँ कुण्डलिनीं संवर्त अग्नि के समान प्रज्ज्वलित होकर अपने जीव इन्द्रियों को ग्रसित कर रही है—ऐसी भावना करे। कुम्भकावस्था में विद्युत् के समान चमकती कुण्डलिनी को योगी स्वाधिष्ठान में ले आये। वहाँ पर चिन्तन करे कि कुण्डलिनी ने सबों का ग्रास कर लिया। करोड़ बिजली के समान प्रकाशित उसे मणिपूर में ले आये। वहाँ पर भी पूर्ववक्त् भावना करे। वहाँ क्षण भर स्थित होकर पूर्ववक्त् उद्योग मार्गवित् योगी उसे अनाहत में ले आये। वहाँ पर भी वैसा ही आचरण करके कुण्डलिनी को विशुद्धि में ले आये। वहाँ से उसे आज्ञाचक्र में ले आये। वहाँ वह नीर-क्षीर का ग्रसन करती है। क्षीर पीने के बाद कोटि सूर्य के समान प्रभा वाली महाशक्ति वागीश्वरी का भेदन करके ब्रह्म अर्गला का भेदन करती है। तब वह परामृत महासागर में विश्रान्त होती है। वहाँ पर स्थित परम देव शिव परमकारण के साथ शक्ति को मिलाकर उनके ऐक्य की भावना करे।

### कालवञ्चनप्रकारः:

ज्ञातमुत्कान्तिकालं वञ्चयित्वा यदि जीवितुमिछ्छेत् तदावरोहं कुर्यात्, इत्यपि तत्रोक्तम्। तद्यथा—  
 यदि वञ्चितुमुद्यक्तः कालं कालविभागवित् । कालस्तु यावद्ब्रजति तावत्तत्र सुखं वसेत् ॥१॥  
 ब्रह्मद्वारार्गलस्याधो देहं कालप्रयोजनम् । तस्मादूर्ध्वं पदं देयं नहि कालप्रयोजनम् ॥२॥  
 यदा देव्यात्मनः कालमतिक्रान्तं प्रपश्यति । तदा ब्रह्मागर्णिं भित्त्वा शक्तिं मूलपदं नयेत् ॥३॥  
 शक्तिदेहप्रसृतं तु स्वजीवं चेन्द्रियैः सह । ततत्कर्मणि संयोज्य स्वस्थदेहः सुखं व्रजेत् ॥४॥

अनेन देवि योगेन वञ्चयेत् कालमागतम् । इति।

अत्रारोहावरोहाभ्यास एव योगशास्त्रेषु मुख्यो योग इति द्रष्टव्यम् । स चात्र प्रकाशितः।

ज्ञात उत्कान्ति काल को वंचित करके यदि जीवित रहने की इच्छा हो तो अवरोहण कराना चाहिये। यदि जीने की

इच्छा हो तो बाल विभागवित् काल के रहने तक वहाँ सुख से रहे। ब्रह्मद्वार अर्गला के नीचे देह काल से प्रभावित होता है; इसलिये काल नहीं चाहता कि उससे ऊपर कोई जाय। यदि देव्यात्मा काल को अतिक्रमित देखता है तब ब्रह्म अर्गला को भेदकर शक्ति को मूलाधार में ले आये। शक्ति देहप्रसूत अपने जीव को इन्द्रियों सहित अपने-अपने कर्मों में लगा दे। स्वस्थ देह में सुखपूर्वक जीवित रहे। इस योग से आगत काल से बचा जा सकता है। यहाँ आरोह-अवरोह का अभ्यास योगशास्त्रों के मुख्य योग में देखना चाहिये।

### पञ्चाशद्वृद्धिभेदनिर्णयः

अत्र पञ्चाशद्वृद्धिभेदनिर्णय चित्ते पञ्चाशद्वृद्धयो जायन्ते। ततुकृमध्यात्मविवेके—

गुदलिङ्गान्तरे चक्रमाधारं तु चतुर्दलम् । परमः सहजस्तद्वदानन्दो वीरपूर्वकः ॥१॥  
 योगानन्दश्च तस्य स्यादीशानादिदले फलम् । स्वाधिष्ठानं लिङ्गमूलं षट्पत्रं चक्रमस्य तु ॥२॥  
 पूर्वादिषु दलेष्वाहुः फलान्तेतान्यनुक्रमात् । प्रश्रयः कूरता गर्वनाशो मूर्छा ततः परम् ॥३॥  
 अवज्ञानमविश्वासो जीवस्य चरतो ध्रुवम् । नाभौ दशदलं पद्मं मणिपूरकसंज्ञकम् ॥४॥  
 सुषुप्तिरत्र तृष्णा स्यादीर्था पिशुनता पुनः । लज्जा भयं घृणा मोहः कुर्धिताथ विषादिता ॥५॥  
 हृदयेऽनाहतं चक्रं दलैर्द्वादशभिर्युतम् । लौल्यप्रणाशः कपटः वितकोऽप्यनुतापिता ॥६॥  
 आशा प्रकाशश्विन्ना च समीहा समता ततः । क्रमेण दम्भो वैकल्यविवेको हुंकृतिस्तथा ॥७॥  
 फलान्तेतानि पूर्वादिदलस्यात्मनो विदुः । कण्ठेऽस्ति भारतीस्थानं विशुद्धिः षोडशच्छदम् ॥८॥  
 तत्र प्रणव उद्दीथो हुंफटवौषट्वषट्सुधा । स्वाहा नमोऽमृतं सप्त स्वरा: षड्जादयो मताः ॥९॥

इति पूर्वादिपत्रस्ये फलान्तात्मनि षोडश । इति।

### षोडशच्छदे त्वन्यत्र विशेष उक्तः—

कृपा क्षमार्जवं धैर्यं वैराग्यं च धृतिस्तथा । हास्यं रोमाञ्चनिक्षयौ ध्यानं सुस्थिरता तथा ॥१०॥

गाम्भीर्यमृद्यमं सत्त्वं चौदार्थ्यकाग्रता तथा । एते पूर्वादिपत्रेषु गुणाः……………॥११॥ इति।

‘तत्त्वम्पदार्थविभासो द्रष्टव्यो द्विदले पुनः’ इति। अत्र वायोरुत्थापनं तु आधारस्वाधिष्ठानयोरन्तरेऽग्नि�-कुण्डं तम्भूले मनो दद्यात् । यत्र यत्र मनस्तत्र तत्र प्राण आयति। प्राणवायुयोगेनाग्निर्दीप्तये स चोर्ध्वज्वलनस्वभावः। तस्मिंश्च ज्वालिते वायुसूर्ध्वं गच्छति ततः षट्चक्रभेदो भवति। स्वाधिष्ठानं लिङ्गचक्रं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य त्रिरावृत्या, तत्र कुण्डलिनीमिति अत एव वचनादनुमीयते।

अध्यात्मविवेक में पचास दलगामिनी पचास बुद्धियाँ इस प्रकार कही गई हैं—गुदा-लिङ्ग के मध्यमें चार दल वाला मूलाधार चक्र है। वहाँ पर परम सहज आनन्द है। वीर साधक का योगानन्द ईशानादि दल का फल है। लिङ्गमूल में षट्दल चक्र स्वाधिष्ठान है। इसके पूर्वादि दल से अग्रलिखित फल मिलते हैं। इससे कूरता, गर्वनाश, प्रश्रय, मूर्छा, अवज्ञान, अविश्वास में जीव फँसता है। नाभि में दशदल पद्म का नाम मणिपूर है। इससे नींद, तृष्णा, ईर्ष्या, पिशुनता, लज्जा, भय, घृणा, मोह, क्रोध और विषाद होते हैं। हृदय में द्वादशदल वाला अनाहत चक्र है। यहाँ से लौल्य का प्रणाश, कपट, वितर्क, अनुताप, आशा, प्रकाश, चिन्ता, समीहा, समता, दम्भ, विवेक, वैकल्य, हुंकृति आदि गुण संचारित होते हैं। इसके फल पूर्वादि दलों से प्रारम्भ होते हैं। कण्ठ में सरस्वती का स्थान षोडश दल विशुद्धि चक्र है। वहाँ प्रणव, उद्दीथ, हुं, फट, वौषट्, वषट्, स्वाहा, स्वधा, नमः अमृत, सप्तस्वर, षड्जादि उत्पन्न होते हैं।

षोडश दल के बारे में अन्यत्र भी कहा गया है कि कृपा, क्षमा, आर्जव, धैर्य, वैराग्य, धृति, हास्य, रोमांच, निश्चय, ध्यान, स्थिरता, गाम्भीर्य, उद्यम, सत्त्व, औदार्य, एकाग्रता—ये पूर्वादि पत्रों के गुण हैं।

यहाँ पर वायु का उत्थापन के लिये मूलाधार स्वाधिष्ठान के बीच में अग्नि कुण्ड के मूल में मन लगाना चाहिये। जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ प्राण जाता है। प्राण वायु के योग से अग्नि प्रदीप्त होती है, इसका उर्ध्व ज्वलन स्वभाव है। इसलिये ज्वलित वायु जब ऊपर उठती है तब षट्चक्रों का भेदन होता है। स्वाधिष्ठान लिंग चक्र को तीन प्रदक्षिणा करके तीन आवृत्ति में घेर कर कुण्डलिनी रहती है।

### वेधमयी दीक्षा

#### तदुक्तं दीक्षापटले—

तत्र वेधमयीं दीक्षां वक्ष्ये संसारमोचनीय् । ध्यायेच्छिष्यतनोर्मध्ये मूलाधारे चतुर्दले ॥१॥  
 त्रिकोणमध्ये विमले तेजस्त्रयविजृम्भिते । वलयत्रयसंयुक्तां तडित्कोटिसमप्रभाम् ॥२॥ ।  
 शिवशक्तिमयीं देवीं चेतनामात्रविग्रहाम् । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरां शक्तिं भित्त्वा षट्चक्रमञ्जसा ॥३॥  
 गच्छन्तीं प्रथमार्गेण दिव्यां परशिवावधि । वादिसाप्तदलस्थाणान् संहरेत्कमलासन ॥४॥

इत्यादिकुण्डल्यनुसारेण वायोरपि चोर्ध्वं गच्छतस्मिः परिवृत्तिः। मणिपूरकं नाभिचक्रं गत्वा प्राप्य, अनाहतं हृच्चकं तदप्यतिक्रम्य, विशुद्धौ कण्ठप्रदेशे प्राणान् वायुनिरुद्धाज्ञामाज्ञाचक्रं भ्रूपद्यवर्त्यनुध्यायेन् अथो नादं ध्यायन्। कीदृशम् आधारमारभ्य ब्रह्मरन्धर्यर्थनं प्रतीयमानं तथोज्ज्वलं, स वै नादः ब्रह्म प्राणात्मा परमात्मैवेति। ते प्राणाः षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकाः प्राक्प्रोक्ताः। ग्रन्थान्तरेषु तु षड्जरष्टशताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकाः (२१६०६) इत्यङ्कृतः। अन्यत्र ग्रन्थेषु 'अशीतिः षट्शतं चैव सहस्राणि त्रयोदशा। लक्षं चैकं च मिश्वासा अहोरात्रप्रमाणातः' इति संख्याभेद उक्तः। अङ्कृतः (११३६८०) भवन्ति।

दीक्षा पटल में कहा गया है कि अब वेधमयी दीक्षा को कहता हूँ, जो भवमोचनी है। शिष्य के शरीर का चतुर्दल मूलाधार रूप में ध्यान करे। विमल त्रिकोण मध्य में तीन वलय के तेज से युक्त करोड़ विजली के समान प्रकाशित शिव-शक्तिमयी देवी यहाँ पर चेतनामात्र विग्रह है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर शक्ति षट्चक्रों का भेदन करती हुई मध्य मार्ग से परशिव तक जाती है। मूलाधार के दलों में व श ष स वर्ण से कमलासन को संहत कर लेती है।

कुण्डलिनी के अनुसार वायु भी तीन परिवृत्ति में ऊपर जाता है। नाभि का मणिपूर हृदय का अनाहत, चक्र कण्ठ का विशुद्धि चक्र को भेदन करते हुए भ्रूमध्य के आज्ञा चक्र में आता है। वहाँ नाद का अनुसन्धान करना चाहिये। मूलाधार से चलकर ब्रह्मरन्ध्र तक नाद उज्ज्वल प्रतीत होता है। वह नाद ही ब्रह्म, प्राणात्मा या परमात्मा है। उन प्राणों की संख्या इनकी सहजान्तर में इनकी संख्या २१६०६ कही गई है। अन्यत्र ग्रन्थों में इनकी संख्या ११३६८० रात-दिन के भेद से होती है।

तन्मान्तर में कहा गया है कि उच्छ्वास और निःश्वास में दो अक्षर 'हंस' हैं। उनमें प्राण हंस नाम से आत्मा के आकार में रहता है। नाभि में उच्छ्वास और हृदय के आगे निःश्वास व्यवस्थित रहता है।

### निःश्वाससंख्याभेदः

#### तन्मान्तरे तु—

उच्छ्वासे चैव निःश्वासे हंस इत्यक्षरद्वयम् । तस्मात्प्राणस्तु हंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः ॥१॥  
 नाभेरुच्छ्वासनिःश्वासा हृदयाप्ये व्यवस्थिताः। इति।

गुदं पायुमवष्ट्य रुद्ध्वा आधारान्मूलाधारचक्राद्वायुं प्राणाख्यमुत्थाप्योर्ध्वमवष्ट्य, अवष्ट्यभ्नोपायो योगिया-ज्वलक्येनोक्तः—

दक्षिणोतरगुल्फेन सीवनीं पीडयेद् दृढम् । अधस्तादण्डयोः सूक्ष्मां सव्योपरि च दक्षिणाः ॥१॥  
जह्नोवैरत्तरं योगी निश्छद्रं बन्धयेद् दृढम् । समग्रीवशिरःस्कन्धः समपृष्ठः समोदरः ॥२॥  
इत्यादि । अत्र कादिमतोक्तश्वासक्रमोऽग्रे वक्ष्यते ।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्गचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-  
श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्ने एकविंशः श्वासः ॥२१॥

गुदा और लिङ्ग को रुद्ध करके मूलाधार चक्र से वायु को प्राणरूप में उठाकर ऊपर निरुद्ध करे । योगी याज्ञवल्क्य के अनुसार अवष्टामन का उपाय इस प्रकार है—दाँये-बाँये गुल्फों से सीवनी को दृढ़ता से दबाये । बाँयें गुल्फ पर दाँयाँ गुल्फ रखे । जांघों और उरुओं को निश्छद्र दृढ़ बाँधे । ग्रीवा, शिर, कन्धा, पीठ, उदर को सीधा रखे ।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्न के कपिलदेव  
नारायण-कृत भाषा-भाष्य में एकविंश श्वास पूर्ण हुआ

## अथ द्वाविंशः श्वासः

रमामनोद्धारः

अथ लक्ष्यादिमन्त्राणामुद्धारप्रयोगविधिः। कूर्मपुराणे—

श्रियं ददाति विपुलां पुष्टि मेधां यशो बलम्। अर्चिता भगवत्यली तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्॥१॥ इति।

सारसंग्रहे—

अथोच्यते रमामन्त्रा लक्ष्मीसौभाग्यदा भृशम्। दुर्गत्युद्धारणे शक्तास्त्रिवर्गफलदायकाः ॥१॥

संवर्ताद्वामतः षष्ठं व्योमसप्तमसंयुतम्। तुरीयस्वरचन्द्रार्थकलानादायाधिष्ठितम् ॥२॥

एकाक्षरो रमामन्त्रो मनोरथसुरद्धुमः। इति।

संवर्तात् क्षकाराद्वामत्ते विलोमेन षष्ठं शकारः, व्योमसप्तमोऽपि तथैव, तेन रेफस्तद्युक्तं, तुरीयस्वरः इ, चन्द्रार्थकला अर्थचन्द्रः, नादो बिन्दुः, तेन श्रीं बीजमुक्तम्। तथा—

भृगुरस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दश्चास्य निचून्मतम्। देवता गदिता लक्ष्मीभर्गमोक्षफलप्रदा ॥३॥

द्विसव्यनेत्रकर्णेन मन्वन्तस्वरसंयुता। मन्त्रैव षड्ङ्गानि जातियुक्तानि कल्पयेत् ॥४॥

सव्यनेत्रे इकारः, कर्ण ऊ, कर्णस्यापि सव्यत्वं समासात्। इनो द्वादशस्वरः, मनुश्चतुर्दशस्वरः, अन्यो विसर्गः, एतेन श्रांश्रींश्रूंश्रींश्रः इति षड्ङ्गमन्त्रा उत्ताः।

लक्ष्मी आदि के मन्त्रों का उद्धार एवं प्रयोग विधि—कूर्मपुराण में कहा गया है कि भगवान् की पत्नी का अर्चन करने पर विपुल श्री, पुष्टि, मेधा, यश और बल प्राप्त होता है; इसलिये लक्ष्मी का अर्चन करना चाहिये।

सारसंग्रह में कहा गया है कि अब लक्ष्मी-सौभाग्य देने वाली रमा के मन्त्रों को कहता हूँ। यह दुर्णाति से उद्धार करने वाला एवं धर्म, अर्थ और काम को देने वाला है। श्लोक २ के उद्धार करने पर यह एकाक्षर मन्त्र ‘श्री’ है। इसके ऋषि भृगु, छन्द निचृद, देवता भोग-मोक्ष फलप्रदा लक्ष्मी है। श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः से इसका षडंग न्यास किया जाता है।

रमाध्यानम्

ध्यानम्—

पद्मारुढा नवकनकरुक् पद्मयुग्माभयेष्टप्रोद्यद्वस्ता हिमगिरिनिर्भैर्वेदसंख्यैरिभेदैः।

हस्तोक्षिप्तामृतभृतघटैः सिद्धमानाङ्गयष्टिभूयाद्भूत्यै रुचिरमुकुटा क्षौमवस्त्राब्जनेत्रा ॥

दक्षाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यथःस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम्।

चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्वकरद्वयाम्। दक्षिणाभयहस्तां तां वामहस्तवप्रदाम्॥

रमा का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

पद्मारुढा नवकनकरुक् पद्मयुग्माभयेष्टप्रोद्यद्वस्ता हिमगिरिनिर्भैर्वेदसंख्यैरिभेदैः।

हस्तोक्षिप्तामृतघटैः सिद्धमानांगयष्टिभूयाभृत्यै रुचिरमुकुटा क्षौमवस्त्राब्जनेत्रा ॥

चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्वकरद्वयाम्। दक्षिणाभयहस्तां तां वामहस्तवप्रदाम्॥

तद्यन्त्रयजनादिप्रयोगः

इति नारायणीयवचनात्। हिमगिरिनिर्भैरिति शैत्यमुक्तं, ‘शुभ्राभेभ’ इति दक्षिणामूर्तिवचनात्। दक्षिणामूर्ति-संहितायाम्—

अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं बहिर्भूबिम्बमालिखेत्। मध्ये बीजं विनिक्षिप्य नव शक्तीः समर्चयेत् ॥१॥ इति।

सारसंग्रहे—

अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुरस्त्रयावृतम् ॥१॥

इति पूजाचक्रमुद्भूतम् । तत्रैव—

धर्मादिकल्पिते पीठे नवशक्तिसमन्विते । रमामावाह्य गन्धाद्यैर्यजेत् साधकसत्तमः ॥२॥ इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

विभूतिरुत्रतिः कान्तिर्हषिः कीर्तिश्च सत्रतिः । व्युषिरुकृष्टिर्हद्विश्च वसुदिक्षु प्रपूजयेत् ॥१॥

मध्ये सिंहासनं पूज्यं सर्वशक्तिमयं प्रिये । इति।

शारदातिलके—

बीजाद्यमासनं दद्यान्मूर्ति मूलेन कल्पयेत् । सर्वशक्तिग्रदं प्रोक्त्वा डेनश्च कमलासनम् ॥१॥  
नम इत्यासनं पूज्यं तत्तद्वीजादिकं शिवम् । इति।

तेन बीजानन्तरं 'सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति पीठमन्त्रो ज्ञेयः । तदुक्तम्—

सर्वशक्तिपदं प्रोक्त्वा डेऽन्तं च कमलासनम् । नम इत्यासनं पूज्यं तत्तद्वीजादिकं शिवे ॥१॥ इति।

पद्मपादाचार्यास्तु—'श्रीश्रीदेव्यासनाय नमः' श्रीश्रीदेवीमूर्तये नमः' इत्याहुः । सनत्कुमारः—

संकल्प्याभ्योरुहं शुभ्रं कर्णिकायां यजेच्छ्यम् । इति।

सारसंग्रहे—

तस्मिन् पीठे समावाह्य देवीं गन्धादिभिर्यजेत् । पुराङ्गानि समध्यच्च वासुदेवादिमूर्तिभिः ॥१॥

इभैर्निधियुगेनान्या बलाकाद्याभिरिता । लोकेशैरपरावृत्तिसदस्त्रैश्च परा स्मृता ॥२॥

बलाका विमला चैव कमला वनमालिका । विभीषिका मालिका च शांकरी वसुमालिका ॥३॥

पङ्कजद्वयहस्तास्ता मुक्ताहारसमप्रभाः । अनेन विधिना मन्त्री मन्त्रमेतं भजेतु यः ॥४॥

वस्वन्नसंकुलां लक्ष्मीं स प्राप्नोत्यचिराद् धूवम् ।

अत्र वासुदेवादिपद्मनिध्यनं द्वितीयावरणम्, 'मूर्तीभचतुर्कनिधियुगैरपरा' (प्रपञ्चसारे १२.१०) इत्याचार्योक्ते:।

यत्तु 'आग्नेयादिषु पत्रेषु गुणगुलुश्च कुरुण्टकः । दमकः: 'सलिलश्च' इति नारायणीयवचनं तत्प्रकृतदिक्परमम् ।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासाने मूलेन प्राणांयामत्रयं कृत्वा, शिरसि भृगुऋषये नमः।

मुखे निचृच्छन्दसे नमः। हृदि श्रियै देवतायै नमः। गुह्ये शं बीजाय नमः। पादयोः ईं शक्तये नमः। नाभौ रं कीलकाय नमः।

इति विन्यस्य, प्रागवद्विनियोगमुक्त्वा त्रां हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, श्रूं शिखायै वषट्, श्रैं कवचाय हुं, श्रौं नेत्रयाय वौषट्, श्रः अखाय फट्, इति षड्ङ्गमन्त्राननुष्ठादितलानं करयोर्हृदयादिष्ठङ्गेष्वपि विन्यस्य,

ध्यानमानसपूजान्ते चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्त्रयावृतमष्टदलद्वयमचापीठं निर्माय, प्रागवत् पुरतो निधायार्थस्थापनादिपरतत्त्वाचार्यान्ते,

ॐ विभूत्यै नमः, रत्यै नमः, कान्त्यै नमः, हृष्ट्यै नमः, कीर्त्यै नमः, संनत्यै नमः, व्युष्ट्यै नमः, उत्कृष्ट्यै नमः,

मध्ये ऋद्ध्यै नमः, इति स्वाग्रादिप्रादक्षिणयेन पीठशक्तीः संपूज्य, श्रींसर्वशक्तिकमलासनाय नमः, इति समस्तपीठं

संपूज्यावाहाद्यङ्गपूजानेऽन्तरालाष्टदले देव्यग्रादिचतुर्दलेषु—ॐ वासुदेवाय नमः, सङ्खर्षणाय नमः, प्रद्युमाय नमः,

अनिरुद्धाय नमः, इति संपूज्याग्नेयादिविदिक्षु दमकाय नमः, सलिलाय नमः, गुणगुलवे नमः, कुरुण्टकाय नमः,

इति संपूज्य, देवीदक्षिणदलाग्रे ॐ शङ्खनिधये नमः, वामदलाग्रे ॐ पद्मनिधये नमः, इति संपूज्य, द्वितीयाष्टदले—

ॐ बलाकायै नमः, ॐ विमलायै नमः, ॐ कमलायै नमः, ॐ वनमालायै नमः, ॐ विभीषिकायै नमः, ॐ

मालिकायै नमः, ॐ शाङ्कर्यै नमः, ॐ वसुमालिकायै नमः, इति संपूज्य लोकपालार्चादि सर्व समापयेत् इति। तथा—  
जपेद्ब्रास्करलक्षं च तत्सहस्रं हुनेततः । पद्मैक्षिस्वादुसंयुक्तस्तिलौर्वा श्रीफलैरथ ॥५॥  
त्रिभिर्वा मधुराकैश्च जुहुयाद्विजितेन्द्रियः । तर्पणादि ततः कुर्याद् द्विजार्चान्तं प्रसन्नधीः ॥६॥ इति।

भास्करलक्षं द्वादशलक्षम्। तत्सहस्रमित्युक्तेर्दशांशो होमः। बैल्वैः समिद्वैरित्याचार्यचरणाः। त्रिभिरिति  
एकैकेन सहस्रतुष्टयं न तु मिलितैस्तेषां तु द्रव्यान्तरत्वेन त्रिभिर्भीमासं भवादिति। तदुक्तं भट्टचरणैः—नैवं त्रीहिभिरिष्ट  
स्याद्यवैर्ण च यथाश्रुतैः । मिश्रैरिज्यते चेदिति ‘मिश्राणां विध्यदर्शना’ दिति च, तर्हि त्रिमधुराकैं विरुद्धमिति चेत् न  
‘सर्वं त्रिमधुरोपेतं होमद्रव्यमुदाहतम्’ इति वचनात् तद्योगस्य पशुपुरोडाशावदानानामुपस्तरणाभिधाराज्ययोग-  
वदविरुद्धत्वादिति।

**रम्भ-यन्त्र**—दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा गया है कि अष्टदल कमल बनाकर बाहर भूपुर बनावे। मध्य में बीज लिखकर  
नव शक्तियों का पूजन करे। सारसंग्रह में कहा गया है कि उज्ज्वल कर्णिका और केसर से युक्त दो अष्टदल कमल बनाकर  
बाहर चार द्वारायुक्त तीन भूपुर बनावे। धर्मार्दि कल्पित नव शक्ति समन्वित पीठ में रमा का आवाहन करके गन्धादि से पूजन करे।

दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा गया है कि आठ दिशाओं के दलों में विभूति, उत्त्रति, कान्ति, हष्टि, कीर्ति, सत्रति, व्युष्टि,  
उत्कृष्टि और ऋद्धि की पूजा करके मध्य में सिंहासन पर सर्वशक्तिमयी की पूजा करे।

शारदातिलक में कहा गया है कि आद्य बीज से आसन देकर मूल से मूर्ति की कल्पना करे। सर्वशक्तिकमलासनाय  
नमः से पीठपूजा करे। पद्मपादाचार्य के अनुसार पीठपूजन का मन्त्र है—श्री श्रीदेव्यासनाय नमः श्री श्रीदेवीमूर्तये नमः। सनत्कुमार  
में कहा गया है कि संकल्प करके शुभ्र कमलकर्णिका में श्री का पूजन करे।

सारसंग्रह में कहा गया है कि उस पीठ में देवी का पूजन गन्धादि से करे। पहले षडङ्ग पूजन करे, तब वासुदेवादि  
मूर्तियों का पूजन करे। तब ऐरावत, निधि, अन्य बलाकादि, लोकपालों एवं उनके अस्त्रों का पूजन करे। आठ शक्तियाँ हैं—  
बलाका, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, कालिका, शाङ्करी एवं वसुमालिका। शक्तियों के हाथों में दो-दो कमल  
हैं। ये मुक्ताहार के समान प्रभा वाली हैं। इस विधि से साधक जब इस मन्त्र का जप करता है तो उसे वस्त्र, अत्र से सुशोभित  
लक्ष्मी की प्राप्ति अल्प काल में होती है।

प्रयोग प्रातःकृत्य से योगपीठ न्यास तक करने के पश्चात् मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास  
करे—शिरसि भृगुऋष्ये नमः, मुखे निचृच्छन्दसे नमः, हृदि श्रियै देवतायै नमः, गुह्ये शं बीजाय नमः, पादयोः ई शक्तये नमः,  
नाभौ रं कीलकाय नमः। इस प्रकार ऋष्यादि, न्यास करके पूर्ववत् विनियोग बोलकर हृदयादि षडङ्ग न्यास इस प्रकार करे—  
श्रां हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, श्रूं शिखायै वषट्, श्रैं कवचाय हुं, श्रौं नेत्रवत्याय वौषट्, श्रः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार  
करन्यास भी करके पूर्ववत् ध्यान करने के पश्चात् मानस पूजन कर अर्चीपीठ को अपने सामने बनाकर उसपर अर्घ्यस्थापन आदि  
करके अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से पीठ शक्तियाँ का पूजन इस प्रकार करे—३० विभूत्यै नमः, रत्यै नमः, कान्त्यै नमः,  
हृष्ट्यै नमः, कीर्त्यै नमः, संनत्यै नमः, व्युष्ट्यै नमः, उत्कृष्ट्यै नमः, मध्ये ऋद्ध्यै नमः। ‘श्रीसर्वशक्तिकमलासनाय नमः’ मन्त्र  
से समस्त पीठ का पूजन कर आवाहन-अंगपूजन आदि करके भीतरी अष्टदल में देवी के आगे से चारों दलों में इस प्रकार  
पूजन करे—३० वासुदेवाय नमः, सङ्कर्षणाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः। आग्नेयादि कोणों में दमकाय नमः,  
सलिलाय नमः, गुग्गुलवे नमः, कुरुण्टकाय नमः, से पूजन कर देवी के दाहिने दलों में ३० शङ्खनिधये नमः, वामदलाग्रे ३०  
पद्मनिधये नमः, से पूजन कर द्वितीय अष्टदल में—३० बलाकायै नमः, ३० विमलायै नमः, ३० कमलायै नमः, ३० वनमालायै  
नमः, ३० विभीषिकायै नमः, ३० मालिकायै नमः, ३० शाङ्कर्यै नमः, ३० वसुमालिकायै नमः, से पूजन कर लोक पालों का  
अर्चन कर पूजा का समापन करे।

मन्त्र का बाहर लाख जप करे। उसका दर्शांश बाहर हजार हवन त्रिमधुरयुक्त कमल या तिल या श्रीफल से या तीनों  
को मिलाकर करे। इसके बाद तर्पण करे।

## विनियोगफलम्

ततः सिद्धमनुमन्त्री साधयेन्निजवाञ्छितम् । वक्षोजदधे पर्यसि तिष्ठन्नर्कगतां श्रियम् ॥७॥  
 संस्मृत्य मनुमेनं च जपेल्लक्ष्मत्रयावधि । सोऽचिरेणैव कालेन दारिङ्ग्यान्मुच्यते नरः ॥८॥  
 मध्यसूदनगेहस्थबिल्वाध उपविश्य च । त्रिलक्ष्मं प्रजयेन्मन्त्री वत्सराद्वाञ्छितप्रदः ॥९॥  
 अधिकं वसुसंघातं लभते नान्यथाचिरात् । अशोकेऽध्मचिते वहौ संयुतैस्तण्डुलैर्हनेत् ॥१०॥  
 मन्त्री त्रिभुवनं सर्वं वशयत्येव नान्यथा । खादिरैः शकलैः सम्यगेधितेऽग्नौ यथाविधि ॥११॥  
 तण्डुलैस्त्रिस्वादुयुक्तैर्जुहुयान्मन्त्रवित्तमः । तेन राजकुलं वशं धनदादर्थवान् भवेत् ॥१२॥  
 अर्कवहौ हुनेन्मन्त्री सुशुद्धैः शालितण्डुलैः । नियुतं राज्यलक्ष्मीं च राजपुत्रो लभेद् श्वम् ॥१३॥  
 त्रिस्वादुयुक्तैर्नलैर्नलक्ष्मकं हुनेत् सुधीः । अलक्ष्मीसहितो मत्यो लक्ष्मीं प्राप्नोति निश्चितम् ॥१४॥  
 धनधान्यादिसंपत्त्या तोषयेत्ताङ्गं साधकः । करुणार्द्धं सनाथा सा कुलं तस्य न मुञ्चति ॥१५॥  
 ब्राह्मणः स्वगृहे बिल्वं समारोप्य च वर्धयेत् । श्रीसूक्तं च जपत्रेष तत्प्रैर्जुहुयात्ततः ॥१६॥  
 त्रिस्वादुयुक्तैः कुसुमैः फलैश्चापि समिद्वैः । स्कन्धभेदैस्तस्य नरस्तन्मूलैश्चापि संहनेत् ॥१७॥  
 बिल्वमिश्रहविष्वाशी मण्डलात्राक् स्वयं रमा । प्रत्यक्षा च भवेत्स्य कथमश्रीः कुले भवेत् ॥१८॥

इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से साधक अपना वाञ्छित सिद्ध करो। वक्षोज दही, दूध में अर्कगत श्री का स्मरण करके तीन लाख तक इस मन्त्र का जप करे तो थोड़े ही दिनों में मनुष्य दरिद्रता से मुक्त हो जाता है। विष्णु मन्त्रिके पास बेल के नीचे बैठकर तीन लाख जप करे तो एक वर्ष में वाञ्छित फल प्राप्त होता है। आठ लाख से अधिक जप करने पर अल्प काल में वाञ्छित प्राप्त करता है। अशोक काष्ठ की अग्नि में धी और चावल से हवन करे तो साधक तीनों लोकों को वश में कर लेता है। खेर की लकड़ी से सम्यक् प्रज्ञलित अग्नि में त्रिमधुराक्त चावल के हवन करने से राजकुल वश में होता है और इससे साधक कुबेर के समान धनी हो जाता है। अकवन की लकड़ी में शुद्ध शालि तण्डुल से दश हजार हवन करने से राजपुत्र राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करता है। त्रिमधुराक्त कमल से एक लाख हवन करने पर दद्रि भी लक्ष्मी को प्राप्त करता है और वह धन-धान्यादि सम्पत्ति से साधक को सन्तुष्ट करती है, उसे सनाथ करती है और उसके कुल को नहीं छोड़ती है। ब्राह्मण अपने घर में बेल का वृक्ष लगाकर उसे बढ़ावे और श्रीसूक्त का जप करते हुये उसी बेलपत्र से हवन करें। त्रिमधुराक्त उसके फूलों-फलों से, उसकी समिधा से या उसके मूल से हवन करें। बेलमिश्रित हविष्य का भोजन चालीस दिनों तक करे तो लक्ष्मी प्रत्यक्ष दर्शन देती है और उसके कुल में धन की कभी कमी नहीं होती।

## यन्नान्तरोद्धारः

श्रीयन्त्रसारे—  
 कर्णिकायां साध्यनामगर्भं तारं विलिख्य च । एवा पित्रे ऋचः पादचतुष्कं चापि तददले ॥१॥  
 अष्टपत्रे यूर्यमिति दिक्षेवेन्द्रादि चाश्रिषु । पादा लेख्यास्ततो बाह्यदलषोडशके क्रमात् ॥२॥  
 आलिखेल्लोडशदले त्वं सोमाद्यस्य चाप्यूचः । त्रीण्यक्षराणि प्रथमे द्वितीये सप्त सप्त च ॥३॥  
 तृतीये च चतुर्वर्णास्तुरीये पञ्च पञ्चमे । षष्ठे षट् चतुरो वर्णान् सप्तमेऽष्ट दलेऽष्टमे ॥४॥  
 प्रजापते ऋचो वर्णाश्चतुरो नवमे दले । दशमे च दले वर्णान् पञ्च चैकादशोऽपि षट् ॥५॥  
 द्वादशे चतुरो वर्णान् दले चापि त्रयोदशे । ( चतुर्दशे चतुर्वर्णान् सप्त पञ्चदशे दले ) ॥६॥  
 षोडशे चापि षड्वर्णान् विलिख्य च दले बहिः । आवेष्य लिप्या श्रीबीजं विलिखेद्वपुरास्त्रिषु ॥७॥  
 यत्रं ऋक्पञ्चकस्यैतद्वन्धनधान्यधरासुतैः । गोगजाश्वामिषमहिषसस्य भूषादिसंकुलाम् ॥८॥  
 लक्ष्मीं समावहेद्यां पुत्रपौत्रादिगामिनीम् । इति।

अस्यार्थः—तत्र चर्तुदलकमलकर्णिकामध्ये सप्तसाध्यं प्रणवं विलिख्य, तददलेषु, ‘एवाप्ते’ इति ऋचः

पादचतुष्टयं स्वाग्रादिप्रादक्षिणयेन प्रतिदलभेकं पादं विलिख्य, तद्विहरष्टदलं कमलं कृत्वा तस्य दिग्दलेषु 'यूं' इत्याद्यृचः पादचतुष्टयं, कोणदलेषु 'एवेन्द्राग्नी' इत्याद्यृचः पादचतुष्टयं विलिख्य, तद्विः षोडशदलं कमलं कृत्वा तद्वलेषु 'त्वं सोम' इत्यादि ऋगद्वयस्य प्रथमदले त्रीण्यक्षराणि, द्वितीये सप्त, तृतीये सप्त, चतुर्थे चत्वारि, पञ्चमे पञ्च, षष्ठे षट्, सप्तमे चत्वारि, अष्टमेऽष्ट, 'प्रजापते न त्वेद' इति ऋचो नवमे चत्वारि, दशमे पञ्च, एकादशे षट्, द्वादशे चत्वारि, त्रयोदशेऽपि चत्वारि, चतुर्दशे सप्त, षोडशे षडक्षराणि चेति विभज्य विलिख्य, तद्विहर्वृत्तद्वयं विधाय तयोरन्तरालवीथ्याम् अकारादिक्षकान्तान् मातृकार्णान् सबिन्दुकान् वेष्टनरूपेण विलिख्य, तद्विहश्तुरस्तं कृत्वा तत्कोणेषु श्रीबीजं लिखेत् । एतद्यन्तमुक्तफलदं भवति । ऋक्पठकं तु ऋग्वेदे—वामदेवस्य बृहस्पतिः त्रिष्टुप् । 'एवा पित्रे विश्वदैवाय वृष्णो युज्ञेविधेम नमसा हविर्भिः । बृहस्पते सुप्रज्ञा वीरवन्तो ब्रयं स्याम पतये रथीणाम्' ॥१॥ 'यूथमस्माप्रयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः । जुषध्वं नो हव्यदाति यजत्रा वयं स्याम पतये रथीणाम्' ॥२॥ एवेन्द्राग्नी इत्यस्य कुत्सः इन्द्राग्नी त्रिष्टुप् । 'एवेन्द्राग्नी पूष्पिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्युं सं जयतं धनानि तत्रो मित्रो वरुणो मामहन्तादितिः सिश्चुः पृथिवी उत धौः' ॥ गौतमस्य त्रिष्टुप् । 'त्वं सौम\_प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्मनु नेष्टि पन्थाम् । तत्र प्रणीती पितरौ न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्तु धीराः' ॥४॥ प्रजापते इति हिरण्यगर्भ ऋषिः को देवता त्रिष्टुप्छन्दः । 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु ब्रयं स्याम परत्तो रथीणाम्' ॥५॥ इति ।

श्रीयन्त्रसार में कहा गया है कि पहले चतुर्दल कमल बनावे । उसके बाहर, अष्टदल कमल, उसके बाहर षोडश दल कमल, उसके बाहर दो वृत्त और उसके बाहर तीन चतुरस्त भूपुर बनावे । चतुर्दल कमलकर्णिका के मध्य में 'ॐ' के गर्भ में साध्य नाम लिखे । चारों दलों में मूलोक्त 'एवा पित्रे' ऋचा के चार पदों में से एक-एक पद लिखे । अष्टदल कमल के पूर्व-पश्चिम-दक्षिण-उत्तर वाले दलों में मूलोक्त 'यूथम्' ऋचा के चार पदों को एक-एक कर लिखे । कोण के दलों में मूलोक्त 'एवेन्द्राग्निं' ऋचा के एक-एक पद लिखे । षोडश दल कमल के सोलह दलों में मूलोक्त 'त्वं सोम' ऋचा के अक्षरों को लिखे । लिखने का क्रम इस प्रकार होगा कि प्रथम दल में तीन अक्षर, द्वितीय में सात, चतुर्थ में चार, पञ्चम में पाँच, षष्ठे में छः, सप्तम में चार और अष्टम में आठ अक्षर हैं । मूलोक्त 'प्रजापते न त्वेद' ऋचा के अक्षरों में से नवम में चार, दशम में पाँच, एकादश में छः, द्वादश में चार, त्रयोदश में चार, चतुर्दश में चार, पञ्चदश में सात और षोडश में छः अक्षर लिखे । दो वृत्तों के अन्तराल में अ से क्ष तक की मातृका को सानुस्वार लिखे । सबसे बाहर चतुरस्त के कोणों में 'श्रीं' लिखे । इन पाँच ऋचाओं से निर्मित यन्त्र से धन-धान्य, भूमि, पुत्र, गाय, हाथी, घोड़े, भैंस, सस्य भूषादि से समन्वित लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और वह उसके कुल में पुत्र-पौत्रादि तक विद्यमान रहती है ।

#### श्रीयन्त्रसारे—

मध्ये तारं साध्ययुक्तं श्रियं कोणेषु षट्स्वपि । अष्टपत्रे केसरोद्यत् स्वरद्वन्द्वे क्रमेण च ॥१॥

या लक्ष्मीरित्यृचो वर्णाश्चतुरश्चतुरो बहिः । अश्वदाया ऋचा हल्मिश्च संवेष्य कुगृहाश्रिषु ॥२॥

श्रियं समालिखेद्यन्तं स्थापितं यत्र मन्दिरे । धनैर्धार्यैश्च विभवैरन्यैश्चाश्वगवादिभिः ॥३॥

आपूरयन्ती सततं तत्रैव रमते रमा । इति ।

अस्यार्थः—अष्टदलपद्मोदरे षट्कोणं कृत्वा तन्मध्ये सासाध्यं प्रणवं विलिख्य, षट्कोणेषु श्रीबीजं विलिख्य-षट्दलकेसरेषु द्वन्दशः स्वरानालिख्याष्टदलेषु 'या लक्ष्मी' इत्यृचो वर्णाश्चतुरश्चतुरो विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयान्तरालद्वयेऽन्तर्गतान्तराले श्रीसूक्ते अग्रे वक्ष्यमाण—'अश्वदायै गोदायै' इति ऋचा संवेष्य तद्विहर्गतान्तराले कादिक्षान्तवर्णरौपेष्य तद्विहश्तुरस्तं कृत्वा तत्कोणेषु श्रीबीजं लिखेत् । एतद्यन्तमुक्तफलदम् । 'या लक्ष्मीः सिन्धुसंभवा भूतिर्थेनु पुरुवसुः । पद्मा विश्वा वसुदेवी सदा नो जुषतां गृहे' । इति ऋक् ।

श्रीयन्त्रसार में कहा गया है कि पहले षट्कोण बनावे । उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे । उसके बाहर तीन वृत्त

बनावे। उसके बाहर चतुरस बनावे। षट्कोण के मध्य में 'ॐ' के उदर में साध्य नाम लिखे। छः कोणों में 'श्री' लिखे। अष्टदल कमल के आठ दलों में सोलह स्वरों में से दो-दो को लिखे। दलों के बाहर 'या लक्ष्मीः' ऋचा के चार-चार अक्षरों को लिखे। उसके बाहर वृत्तों के पहले अन्तराल में 'अश्वदायै गोदायै' ऋचा लिखे। उसके बाहरी अन्तराल में 'क' से 'क्ष' की मातृकाओं को लिखे। उसके बाहर चतुरस के कोणों में 'श्री' लिखे। यह यन्त्र बनाकर पूजन कर जिस घर में इसे स्थापित किया जाता है, उस घर में लक्ष्मी सदा धन-धान्य, वैभव, घोड़े, गाय आदि को प्रदान करती रहती है और स्वयं भी वहाँ रमण करती है।

### लक्ष्मीमन्त्रान्तर- तत्त्वयोगविधयः

तथा—

सद्याद्यं बिन्दुसहितं द्वितीयं भुवनेश्वरी ॥४॥  
तृतीयं च रमाबीजं चतुर्थं कामराजकम् । समुद्रवर्णो धर्मार्थकाममोक्षफलो मतः ॥५॥

सद्याद्य ऐ, बिन्दुयुतं तेन ऐं, अन्यत् प्रसिद्धम्। तथा—  
ऋषिभृगुनिर्चृत्यूर्वमनुष्टुप् छन्द इरितम् । देवता कमला प्रोक्ता सर्वसंपत्करी शुभा ॥६॥  
पूर्वमन्त्रवदेवास्य षड्जानि प्रकल्पयेत् ।

अथ ध्यानम्—

माणिक्याभा हरगिरिनिभे: कुञ्जेन्द्रैश्चतुर्भिर्नासाश्रोद्यमणिमयघटाभ्योभिरासिच्यमाना ।  
अम्भोजस्या वरसरसिजद्वकाभीतिहस्ता लक्ष्मीः पायदमरनिकरैः सेविताङ्ग्रह्यम्बुजा सा ॥६॥  
आयुधध्यानं प्रागवत्।

पूर्वोदिते रमापीठे यजेद् देवीं च पूर्ववत्। अर्कलक्षं जपेन्मन्त्री नियताशी च संहुनेत् ॥७॥  
तत्सहस्रं सरोजैश्च रक्तेन्निस्वादुसंयुतैः । पूर्वानुक्तप्रयोगांश्च कुर्यान्मन्त्री यथाविधि ॥८॥  
साधको मनुवर्यस्य निधिभिः सेव्यते स्वयम् ।

प्रयोगः सुगमः। तथा—  
कामिकापञ्चमं कालो अन्त्यस्वरविभूषितः । वर्गादिः क्षेडमचलां वरुणो दीर्घयुक् भृगुः ॥९॥  
अक्षियुक् धान्तपवनसद्यादाश्च द्विठाविधिः । दशाक्षरो निगदितो मन्त्रः प्रोक्तफलप्रदः ॥१०॥ इति।

कामिकापञ्चमं न, कालो म, अन्त्यस्वरो विसर्गस्तेन मः, वर्गादिः क, क्षेडं म, अचला ल, वरुणो व,  
दीर्घयुक् वा, भृगुः स अक्षियुक् सि, धान्तं न, पवनो य, सद्याद्य ऐ तेन न्यै, द्विठः स्वाहा। तथा—  
ऋष्याद्या दक्षसविराटकमलाः समुदीरिताः । देवीं च पद्मिनी विष्णुपुलीं च वरदा मता ॥११॥  
रूपान्ता कमला चाभिंडेनमोन्ताभिरुक्तवत् । पञ्चाङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत् ॥१२॥ इति।

शारदादायाम्—'नमोन्ता प्रणवादिकाः' इत्यङ्गमन्त्रा उदिताः। ध्यानं तु—

तदितुञ्जाभासा कमलयुगदानाभ्यकरा शरीरोद्यद्वासा भुवनविवरं भासयति या ।

सरोजस्या काञ्चीमणिमुकुटमञ्जीरसुचिरा श्रिये भूयाल्लक्ष्मीः कुचकलशभारानततनुः ॥१३॥

आयुधध्यानं प्रागवत्।

रमापीठे पुरा प्रोक्ते यजेल्लक्ष्मीं यथाविधि । आदावङ्गानि तद्वाहे बलाक्याद्यष्टक्तयः ॥१४॥  
तद्वाहे लोकपालाश्च तदस्थाणि ततो बहिः । एवमध्यच्छयेल्लक्ष्मीं भवेत् साक्षाद्वनाधिष्ठः ॥१५॥

अथ प्रयोगः—प्रागवद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षाय ऋषये नमः। मुखे  
विराट्छन्दसे नमः। हृदि श्रीकमलायै देवतायै नमः। इति विन्यस्य प्रागवद्विनियोगमुक्त्वा मूलमन्त्रं करयोव्याप्त्य, ३५

देव्यै नमः हृदयाय नमः, ३० पद्मिन्यै० शिरसे०, ३० विष्णुपत्थै० शिखायै०, ३० वरदायै० कवचायै०, ३० कमलरूपायै० अस्त्रायै०, इति पञ्चाङ्गमन्त्रानजुष्टादिकनिष्ठानं करयोर्विन्यस्य, नेत्रवर्ज हृदयादिपञ्चाङ्गेष्वपि विन्यस्य, ध्यानाद्यज्ञपूजान्ते प्रागवदष्टदले बलाक्याद्याष्टशक्तीः संपूज्य इन्द्राद्यर्चादि सर्वं प्राग्वत् समाप्येदिति।

ऐं हीं श्री कल्पी—लक्ष्मी के ये चार बीजमन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले होते हैं। इस मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द निचृत पूर्व अनुष्टुप, देवता सर्वसम्पत्करी शुभा लक्ष्मी हैं। पूर्व मन्त्र के समान ही षडंग न्यास श्रां श्रूं श्रौं श्रः से किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

माणिक्याभा हरणिनिष्ठैः कुञ्जेरद्रैश्वतुर्भिन्नसाग्रोद्यन्मणिमयघटाम्भोभिरासिच्यमाना।

अप्योजस्था वरसरसिजद्वन्द्वकाभीतिहस्ता लक्ष्मीः पायदमरनिकैः सेविताङ्ग्यम्बुजा सा॥

पूर्व मन्त्र के समान ही आयुध ध्यान करने के पश्चात् पूर्वोक्त रमा पीठ में पूर्ववत् देवी की पूजा करे। बाहर लाख मन्त्र जप करे। नियत भोजन करे और हवन बारह हजार त्रिमधुरात्क लाल कमल से पूर्वानुक्रम योग से करे। इस श्रेष्ठ मन्त्र के साधक की निधियाँ स्वयं सेवा करती हैं।

अन्य मन्त्र—श्लोक ९ एवं १० के उद्धार करने पर रमा का दशाक्षर मन्त्र बनता है—नमः कमलवासिन्यै स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि दक्ष, छन्द विराट् एवं देवता कमला पद्मिनी विष्णुपत्थी हैं। दूसरा मन्त्र है—३० कमलवासिन्यै नमः। जाति युक्त से पञ्चाङ्ग न्यास करे। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

तडित्पुञ्जाभासा कमलयुगदानाभयकरा शरीरोद्यद्वासा भुवनविवरं भासयति या।

सरोजस्था काञ्चीमणिमुकुटमञ्जीरुरुचिरा श्रिये भूयाल्लक्ष्मीः कुचकलशभारानततनुः॥।

पूर्ववत् आयुध ध्यान करे। पूर्वोक्त रमापीठ में लक्ष्मी का पूजन करे। पहले षड़ज पूजन करे तब बलाकादि आठ शक्तियों की पूजा करे और उसके बाहर लोकपालों की पूजा करे उसके बाहर उनके आयुधों की पूजा करे। इस प्रकार की लक्ष्मीपूजा से साधक साक्षात् कुबेर हो जाता है।

प्रयोग—पूर्ववत् योगपीठ न्यास करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि दक्षाय ऋषये नमः। मुखे विराट् छन्दसे नमः। हृदि श्रीकमलायै देवतायै नमः। इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करके पूर्ववत् विनियोग करे। तब पञ्चाङ्ग न्यास करे—३० देव्यै नमः हृदयाय नमः। ३० पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा। ३० विष्णुपत्थै नमः शिखायै वषट्। ३० वरदायै नमः कवचाय हुम्। ३० कमलरूपायै नमः अस्त्राय फट्। इन्हीं मन्त्रों से करन्यास भी करे। इसमें नेत्र में न्यास न करने से पञ्चाङ्ग न्यास होता है। ध्यानांग पूजा के अन्त में बलाकादि आठ शक्तियों की, इन्द्रादि दश दिक्षपालों की और उनके आयुधों की पूजा करे।

तथा—

पंक्तिलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः। तद्दशांशं सरसिजैक्षिस्वाद्वैहुनेत्सुधीः ॥१६॥

नद्यां समुद्रगामिन्यां कण्ठदण्डे जले स्थितः। लक्ष्मत्रयं जपेन्मन्त्री भवेदर्थान्वितो नरः ॥१७॥

नन्द्यावर्तप्रसूनैश्च जुहुयादुत्तराहभे। रमां सम्पूज्य साहस्रं तावद्वैर्मधुप्लुतैः ॥१८॥

फलहुनेत्यैर्णमासां पञ्चायां वा सिताम्बुजैः। शुक्रवारे श्रेतपुष्पैर्मासं यो जुहुयात्सुधीः ॥१९॥

संवत्सराद्वनं पूर्णं लभते नात्र संशयः। किं बहूतेन भजते मनुमेनं जितेन्द्रियः ॥२०॥

स वाञ्छितार्थाल्लभते वसुधान्यसमृद्धियुक्। इति।

हविष्याशी जितेन्द्रिय रहकर पंक्तिलक्ष मन्त्र का जप करे। उसका दशांश त्रिमधुरात्क कमलों से हवन करे। समुद्रगामिनी नदी में कण्ठ तक जल में खड़े होकर तीन लाख जप करे तो मनुष्य धनवान होता है। उत्तरा नक्षत्र में नन्द्यावर्त फूलों से हवन करे। लक्ष्मी की पूजा करके मधुप्लुत वल्ली से हवन एक हजार करे। पूर्णमा में फल से हवन करे या पञ्चमी में श्वेत कमल

से हवन करे। शुक्रवार में श्वेत पुष्पों से एक माह तक हवन करे तो छः महीनों में धन का पूर्ण लाभ होता है, इसमें संशय नहीं है। अधिक क्या कहा जाय; जो जितेन्द्रिय रहकर इस मन्त्र का जप करता है, वह अपने वाँछित भूमि, धन, समृद्धि आदि को प्राप्त करता है।

तथा—

वाक्षक्तिश्रीकामग्वं च सामिनसद्यान्तसर्गयुक् । चतुर्तीयं च वर्गादितृतीयं केवलश्च तः ॥२१॥

लोहितोऽग्नियुतो वामश्रुतियुग् भृगुरीरितः । तुर्यवर्गादिपवनसद्याद्यद्यावधि ॥२२॥

द्वादशार्णो महालक्ष्मीमन्त्रः प्रोक्तस्तु सूरभिः । प्रणवाद्योऽयमेव स्यात्सर्वसिद्धिकरो मनुः ॥२३॥ इति।

वाक् वागबीजं, शक्तिः भुवनेश्वरीबीजं, कामस्तद्वीजं, खं ह, स स्वरूपं, अग्नी रेफः, सद्यान्त औ, सर्गो विसर्गः, एभिः पिण्डितं हस्तौ, च—तृतीयं ज, वर्गादितृतीयं ग, केवलश्च तः तकारः स्वररहितः, लोहितः प, अग्नियुक् सरेफः तेन प्र, वामश्रुतियुक् ऊकारयुक्तः भृगुः स तेन सु, तुर्यवर्गादि त, पवन य, सद्याद्य ऐ, तेन त्यै, हृदयं नमः, प्रणवाद्यस्त्रयोदशाक्षरः। तथा—

ऋष्याद्य ब्रह्मगायत्रीमहालक्ष्म्यः समीरिताः । संशोध्य मनुना पाणी प्रणवाद्यं हृदन्तकम् ॥२४॥

अद्भुत्तीषु क्रमान्मन्त्री विन्यसेद्वैजपञ्चकम् । मन्त्रशेषं न्यसेन्मन्त्री (तलयोरुभयोरपि ॥२५॥

मूर्धादि चरणं यावन्मन्त्रेण व्यापकं न्यसेत् । मूर्धाक्षिकवक्षोगुह्याङ्ग्रो पञ्च बीजानि विन्यसेत् ॥२६॥

शेषं सप्तार्णकं मन्त्री ) विन्यसेद्वृदि धातुषु । पञ्चबीजैः पञ्चमन्त्रान् शिष्टैः षष्ठं तु कल्पयेत् ॥२७॥

चतुर्थन्तैर्ज्ञानमुखैर्युक्तं वापि षड्ङ्गकम् । ज्ञानैश्वर्यं शक्तिक्वले वीर्यं तेजश्च षट् क्रमात् ॥२८॥

लक्ष्मी का अन्य मन्त्र—मूलोक्त तीन श्लोकों का उद्धार करने पर तेरह अक्षरों का लक्ष्मी का मन्त्र होता है—३० ऐं हीं श्री कल्ती हस्तौ: जगत्प्रसूत्यै नमः। इस मन्त्र के से ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता महालक्ष्मी हैं। ऐं हीं श्रीं कल्तीं हस्तौ के पहले ३० और बाद में नमः लगाकर अंगुलि में न्यास करे। मन्त्रशेष से करतल करपृष्ठ में न्यास करे। मूल मन्त्र से मस्तक से पैरों तक व्यापक न्यास करे। मूर्धा, आँख, वक्ष, गुह्या और पैरों में पाँच बीजों का न्यास करे। शेष सात वर्णों को सप्त धातु का न्यास हृदय में करे। पाँच बीजों से पाँच मन्त्र और अवशिष्ट से छठा मन्त्र कल्पित करके षड्ङ्ग न्यास ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, तेज के साथ क्रम से करे।

प्रयोग—पूर्ववत् प्रातःकृत्यादि से प्रारम्भ कर योगीष्ठ न्यास तक करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। तब न्यास करे।

ऋषादि न्यास—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः। पूर्ववत् विनियोग करे। मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके कर न्यास करे। अंगुष्ठयोः ऐं नमः। तर्जन्यों हीं नमः। मध्यमयोः श्री नमः। अनामिकयोः कल्ती नमः। कनिष्ठकयोः हस्तौ नमः। करतलयोः जगत्प्रसूत्यै नमः।

मन्त्रवर्ण न्यास—मूर्धिं ऐं नमः। चक्षुषोः हीं नमः। वक्षसि श्री नमः। गुह्ये कल्ती नमः। पादयोः हस्तौः नमः। हृदय में सात धातुओं का न्यास करे—त्वचि जं नमः। रक्ते गं नमः। मांसे अं नमः। मेदेसि सूं नमः। अस्थिं त्यै नमः। मज्जायां नं नमः। शुक्रे मं नमः।

हृदयादि न्यास—ऐं ज्ञानाय नमः हृदयाय नमः। हीं ऐश्वर्याय नमः शिरसे स्वाहा। श्रीं शक्तये नमः शिखायै षट्। कल्तीं बलाय नमः कवचाय हुं। हस्तौ वीर्याय नमः नेत्राभ्यां वौषट्। जगत्प्रसूत्यै तेजसे नमः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे।

समण्डपादिदेवीध्यानं यजनादिप्रयोगश्च

एवं न्यस्ततुर्मन्त्री चिन्तयेदिष्टदेवताम् । आदौ स्मरेत्समुद्यानं सर्वतुर्प्रतिशोभितम् ॥२९॥

वज्ञुलैनर्गरज्जैश्च रसालैः श्रीहुमैरपि । तालैस्तमालैर्हिन्त्नालैः शालैश्च बकुलैरपि ॥३०॥  
 कर्कच्युबन्धुजीवैश्च चर्पकैरुपशोभितम् । मन्दान्दोलितकपूरकदलीदलमण्डितम् ॥३१॥  
 अशोकपाटलानागकोविदारमनोरमम् । मल्लिकायथिकाकुन्दमदयन्तीसुगच्छिकम् ॥३२॥  
 द्राक्षवल्लीनागवल्लीमाधवीदेवदारुभिः । नमेसुभिर्वज्जैश्च बकुलैसिलकैस्तथा ॥३३॥  
 शोभितं कर्णिकरैश्च चन्दनैः रक्तचन्दनैः । वज्ञुलैर्मातुलुज्जैश्च दाढिमीलकुचैः शुभैः ॥३४॥  
 नारिकेलैश्च खजूरैः पूर्णैः कुरवकैर्वृतम् । मालतीकेतकीजातीपारन्तीतुलसीवृतम् ॥३५॥  
 नन्दावर्त्तेऽर्दमनकैः सर्वर्तुकसुमोज्जवलम् । अमन्दैः पिचुमन्दैश्च मन्दारैरुपशोभितम् ॥३६॥  
 विशिष्टैः पनसैसूच्यैः शाखोटैः कुटजैर्णिः । अवेगपवनस्पृष्टसुमोगन्धमञ्जुलम् ॥३७॥  
 महासरसतस्य मध्ये स्मरेन्मन्त्री मनोरमम् । वरटाहंससङ्घाद्यचक्काराण्डकोज्जवलम् ॥३८॥  
 भ्रमद्भ्रमरमालाभिरलंकृतचतुर्दिशम् । केकिकेकारवाकीर्ण लक्ष्मणासारसैर्वृतम् ॥३९॥  
 फुल्लैः सरसिजैः रथैः कहारैः कैरवैरपि । नीलेन्द्रीवरसैश्च सुगच्छिकसुमेवृतम् ॥४०॥  
 सर्वर्तुशोभिकल्पद्वृवनमण्डितमञ्जुलम् । पुलिनं तत्र तन्मध्ये मण्डपं रलकुट्टिमम् ॥४१॥  
 समुद्यदर्कसंदोहिकरणद्युतिभास्वरम् । हिमरश्मिकरव्रातसिक्तामृतसुशीतलम् ॥४२॥  
 प्रोल्लसहालितस्वर्णप्रिकारसुमोहरम् । नानारलौधरचितचतुर्द्वारसमन्वितम् ॥४३॥  
 नवरत्नमयप्रोद्यदरराष्टकशोभितम् । नूतनोद्यन्महारलै रचितोत्तुङ्गगोपुरम् ॥४४॥  
 तपतगालितहेमोद्यद्विष्वजसमूहकम् । वैदूर्यादिमहारलरचितस्तम्भराजितम् ॥४५॥  
 संतपत्स्वर्णरचितगवाक्षशतसङ्कुलम् । हेमदण्डस्फुरद् दीपसहस्रसुमोहरम् ॥४६॥  
 नानाविधक्षौमवश्वरचिताभिश्च काञ्छनैः । सक्षुद्रघणिटकायुक्तपताकाभिरथावृतम् ॥४७॥  
 शरद्राकासुधारशिमदुकूलरचितैः । शुभैः । विचित्रवसनोद्भूतैर्वृतं चन्द्रातपैरपि ॥४८॥  
 काञ्छनोर्वीर्णिंव्रातकुट्टिमालकृतं शुभम् । घनसारागुरुस्वम्बुकस्तूरीकुङ्कुमैरपि ॥४९॥  
 तमालैर्द्रव्य(व)जातैश्च सुगच्छिभरथेतैः । आमोदितचतुर्द्वारं मण्डपं प्रविचिन्तयेत् ॥५०॥  
 (तदन्तः पारिजातस्य मूले सिंहासनं नवम् । नानारलगणाकीर्ण तत्र देवीं विचिन्तयेत् ॥)  
 बालभास्करसत्कानिं शाशिशेखरमण्डिताम् । मुक्ताहारोज्जवलां रम्यां रत्नाकल्पविभूषिताम् ॥५१॥  
 हस्ताम्भोजैश्च बिभ्राणां नूतनां शालिमञ्जरीम् । पद्मद्वयं कौस्तुभं च सस्मितास्यसरोरुहाम् ॥५२॥  
 विकचोत्पलसंशोभिलोचनत्रयसंयुताम् । क्वणत्रूपुरसंफुल्लरक्तोत्पलपदद्वयाम् ॥५३॥  
 नितम्बविष्वविलसद्रशनादाममञ्जुलाम् । बलित्रयलसद्वेदिमध्यदेशसुशोभिताम् ॥५४॥  
 गम्भीरावर्तह(भृ)त्राभिहृदमण्डलमण्डिताम् । यक्षकर्दमसंलिपतीनोन्नतधनस्तनीम् ॥५५॥  
 कुम्भिकुम्भोद्भवप्रोद्यन्मुक्तादामविराजिताम् । क्षीमोत्तरासङ्गवतीं पुष्टदामसुभूषिताम् ॥५६॥  
 गालितस्वर्णखितवैदूर्याद्याङ्गदोज्जवलाम् । काञ्छनोद्यत्पद्मागमणिसंबद्धकङ्कणाम् ॥५७॥  
 नानाविधलसद्रलमुद्रिकालंकृताङ्गुलीम् । कम्बुकण्डकलारावां स्वण्गिवेयराजिताम् ॥५८॥  
 विचित्रनानालङ्गारालंकृताङ्गीं शुचिस्मिताम् । उद्यर्दकप्रभाभास्वद्रलताटङ्गशोभिताम् ॥५९॥  
 कर्णपूरीकृतस्वर्णबद्धरलाङ्गुशां शुभाम् । प्रवालविलसत्कान्तिरुचिराधरपल्लवाम् ॥६०॥  
 शेखरप्रोल्लसद्रम्यदशनावलिशोभिताम् । निर्लाङ्गिनशरद्राकाताराधिपशुभाननाम् ॥६१॥  
 पञ्चसायककोदण्डविलासाधिकभूयुगाम् । बिभ्राणां नासिकां प्रोद्यत्तिलपुष्टजयोद्यताम् ॥६२॥  
 शीतांशुशकलाकाररुचिरालिकराजिताम् । घनसौगन्ध्यसंपन्नपृगनाभिविशेषकाम् ॥६३॥  
 मनाकुञ्जितसुस्तिन्द्यनीलमञ्जुलमूर्धजाम् । पारिजातद्रुक्सुमगन्धवाहिसुमूर्धजाम् ॥६४॥

(अनर्थरत्नघटितमुकुटाङ्गितमस्तकाम्) । तपतहाटकसंबद्धनानारत्नौधशेखराम् ॥६५॥  
सौन्दर्यभूमेरवधिं तेजसां जन्मभूमिकाम् । विलासलक्ष्मीभवनं महालक्ष्मीं विचिन्तयेत् ॥६६॥  
वामाधःकरमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम्।

पुराप्रोत्ते रमापीठे देवीं सम्यक् प्रपूजयेत् । दद्याद् बीजेनासनं च स्वाणुना मूर्तिकल्पना ॥६७॥  
दक्षभागे यजेत् देव्या गणपं चान्यतस्तथा । सुमनोऽग्निहस्तं च पुष्पधन्वानमर्चयेत् ॥६८॥  
अङ्गानि पूजयेदादौ यथास्थानेषु मन्त्रवित् । अष्टपत्रेष्विमाः पूज्या उपा श्रीश्च सरस्वती ॥६९॥  
दुर्गा धरणिगायत्र्यौ देव्युषा चेति शक्त्यः । नानालङ्करणाङ्गाः स्युरम्भोजद्वयपाणायः ॥७०॥  
अङ्गिप्रक्षालनार्थञ्च प्रोद्यते जहुसूर्यजे । पूजनीये प्रयत्नेन कराभ्यां धृतचामरौ ॥७१॥  
निधी पूज्यौ च वरुणं पश्चिमे छत्रधारिणम् । परितश्च यजेद्राशीन् ग्रहान्नव ततोऽर्चयेत् ॥७२॥  
चरुदन्तान् दिग्गजांश्च यजेदाशासु मन्त्रवित् । लोकपालांसंदद्वाणि ततद्वाहो यजेत् सुधीः ॥७३॥  
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च ते क्रमात् ॥७४॥

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वत् प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि ब्रह्मणे  
ऋषये: नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः। इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्तीर्त्य  
(मूलमन्त्रेण करयोव्याप्तिं कृत्वा, अङ्गुष्ठयोः ऐं नमः, तर्जन्योः ह्रीं०, मध्यमयोः श्रीं०, अनामिकयोः क्लीं०,  
कनिष्ठिकयोः हस्त्रौः०, करतलयोः जगत्प्रसूत्यै नमः। मूर्धनि ऐं नमः, चक्षुषोः ह्रीं०, वक्षसि श्रीं०, गुह्ये क्लीं०,  
पादयोः हस्त्रौः०, हृदि सप्तधातुषु—त्वचि जं नमः, रक्ते गं०, मांसे अं०, मेदसि सुं०, अस्थिं त्वै०, मज्जायां  
नं०, शुक्रे मं नमः, इति विन्यस्य,) ऐं ज्ञानाय नमः हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा। श्रीं शक्तये नमः  
शिखायै वषट्। क्लीं बलाय नमः कवचाय हुं। हस्त्रौः वीर्याय नमः नेत्राभ्यां वौषट्। जगत्प्रसूत्यै तेजसे नमः अस्त्राय  
फट्। इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं मूलमन्त्राभिमृष्टयोः करयोर्विन्यस्य हृदयादिष्ठड़ेव्यपि न्यसेत्। ततः  
सकेसरमन्तर्दलकमलं तद्विहिन्वदशदलकमलं तद्विहिन्वदलं कमलं तद्विहिन्वदरुयोत्तरस्त्रत्रयमिति पूजाचक्रं निर्माय,  
प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकायां देव्या दक्षिणे गणपतये नमः वामे कामदेवाय इति  
संपूज्य, प्राग्वत् षडङ्गानि संपूज्याष्टदले उपायै नमः, श्रीयै०, सरस्वत्यै०, दुर्गयै०, धरिण्यै०, गायत्र्यै०, देव्यै०,  
उषायै०, इति स्वाग्रादिप्रादक्षिणयेन संपूज्य, देव्या दक्षिणचरणसमीपे गङ्गायै नमः, वामसमीपे यमुनायै नमः।  
देवीदक्षिणे शङ्खनिधये नमः। वामे पदानिधये नमः, इति. संपूज्य, द्वादशदले मेषाय नमः, वृशाय० मिथुनाय०,  
कर्काय० सिंहाय० कन्याय० तुलायै० वृश्किकाय० धनुषे० मकराय० कुम्भाय० मीनाय नमः। तद्विहिन्वदले रवये  
नमः, सोमाय० मङ्गलाय० बुधाय० ब्रह्मस्तये० शुक्राय० शनैश्चराय० राहवे० केतुभ्यो नमः। तद्विहिन्वदरुत्रस्त्रकमल-  
योरन्तराले देव्यग्रादाष्टिक्षु ऐरावताय नमः, पुण्डरीकाय० वामनाय०, कुमुदाय० अङ्गनाय० पुष्पदन्ताय० सार्वभौमाय०  
सुप्रतीकाय नमः। इति प्रादक्षिणयेन संपूज्य, प्राग्वद्वीथीद्वये दिगीशान् तदद्वाणि च सम्भ्यर्च्च धूपदीपादिशेषं प्राग्वत्  
समाप्येदिति। तथा—

जपेद्वास्करलक्षं च नियताशीर्यतव्रतः । तदशांशं प्रजुह्याद् घृतैर्णिस्वादुसंयुतैः ॥७५॥  
पद्मै रमादुमफलैः प्रत्येकमयुतं हुनेत् । वासितैः शुचिभिस्तोयैस्तर्पयेदयुतद्वयम् ॥७६॥ इति।  
अत्र घृतैर्दशांशाहोमं विधाय तद् दशांशतर्पणादि निर्वर्त्य पश्चादयुतद्वयहोममयुतद्वयतर्पणं च विदध्यात्,  
इत्यन्यमन्त्रेभ्यो विशेषः।

इस प्रकार के न्यास के बाद साधक इष्टदेवता का चिन्तन करे। सबसे पहले सभी प्रकार से शोभित उद्घान का स्मरण  
करे। वह उद्घान वञ्जल, नागरङ्ग, आप्र, श्रीद्रुम, ताल, तमाल, हिन्ताल, शाल, बकुल, कर्कन्धु, बन्धुजीव एवं चम्पक से  
सुशोभित है। मन्द-मन्द दोलायमान कर्पूर एवं केले की टहनियों से घिरा है। अशोक, पाटला, नागकेसर, कोविदार वृक्षों से  
मनोरम है। मल्लिका, यूथिका, कुन्द एवं मदयन्ती से सुगन्धित है। द्राक्षा, वल्ली, नागवल्ली, माधवी, देवदारु, नमेरु, लंग,

बकुल, तिलक, कर्णिकार, चन्दन, रक्तचन्दन, बज्जुल, मातुलंग, दाढ़िम एवं लकुच से सुशोभित है। नारिकेल, खजूर, सुपाडी, कुरुक, मालती, केतकी, जाती, पारन्ती एवं तुलसी से चारों ओर से घिरा है। नन्द्यावर्त, दमनक, समस्त ऋतुपृष्ठ, पिचुमन्द एवं मन्दार से बाहर से घिरा है। विशिष्ट प्रकार के कटहल एवं ऊँचे कुटज वृक्षों के गन्धों से आप्लावित है। उसके मध्य में वरटा, हंस, चक्र एवं कारण्डक पक्षियों से उज्ज्वल, चारों ओर भ्रमों से गुंजायमान, केकी-केका के आवाजों से परिपूर्ण, लक्षणा एवं सारस से घिरा, कलहर-कैरव आदि के विकसित पुष्टों के सुगन्ध से रमणीय महासरोवर है। वह सरोवर सभी ऋतुओं में शोभायमान कल्पवृक्ष से घिरा है। उसके मध्य में रत्ननिर्मित मण्डप है। उदयीयमान सूर्य की किरणों से प्रकाशमान, चन्द्रकिरणों के सदृश अत्यन्त शीतल, स्वर्णप्रकारों से अत्यन्त मनोहर, अनेक रत्नों से निर्मित चार द्वारों से युक्त, नूतन रत्नों से निर्मित आठ गवाक्षों से सुशोभित, अमूल्य रत्ननिर्मित गोपुर से अलंकृत, स्वर्णदण्ड में ध्वजों से सुशोभित, वैद्युर्य आदि रत्नों से सुसज्जित खम्भों वाला, स्वर्ण रचित सैकड़ों खिड़कियों वाला, स्वर्णदण्ड पर प्रज्जवलित हजार दीपों वाला, ध्वल वस्त्रों से रचित पताकाओं से ढका हुआ, रात्रि में शीतवारण हेतु सफेद वस्त्रों से आवृत, स्वर्ण मेखला एवं करधनी से अलंकृत धनसार-अगुरु-कस्तुरी-कुकुम-तमाल आदि विविध सुगन्धि द्रव्यों से सुगन्धित, चार द्वारों से युक्त वह मण्डप है। उस मण्डप में पारिजतवृक्ष के नीचे अनेक रत्नों से सुसज्जित सिंहासन पर देवी विराजमान हैं। उनका चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये—

बालभास्करसत्कानिन्तं शशिशेखरमण्डिताम् । मुक्ताहारोज्जलां रस्मां रत्नाकल्पविभूषिताम् ॥

हस्ताभ्योजैश्च विभ्राणां नूतनां शालिमञ्जीम् । पदद्वयं कौस्तुर्भं च सस्मितास्यसरोहाम् ॥

विकचोत्पलसंशेभिलोचनत्रयसंयुताम् । क्वण्णन्तुपुरसंफुल्लरकोत्पलपद्मयाम् ॥

नितम्बविम्बविलसद्रशनादाममञ्जुलाम् । बलित्रयलसंद्विद्मध्यदेशसुशोभिताम् ॥

गम्भीरावर्तह(भ)त्राभिहृदमण्डलमण्डिताम् । यक्षर्कदमसंलिप्तपीनोत्रतदनस्तनीम् ॥

कुम्भकुम्भोद्भवप्रोद्यन्मुक्तादामविवाजिताम् । क्षौगीतरामङ्गवतीं पुष्पदामसुभूषिताम् ॥

गालितस्वर्णखचित्तैङ्गुर्धाङ्गदोज्जवलाम् । काञ्जनोद्यत्पद्मारागमणिसंबद्धकङ्गणाम् ॥

नानाविधलसद्रत्नपुद्रिकालंकृताङ्गुलीम् । कम्बुकण्डकलारावां स्वर्णप्रैवेयराजिताम् ॥

विचित्रनानालङ्घारालंकृताङ्गीं शुचिसिताम् । उद्यर्दक्षप्रभाभास्वद्रत्नताटङ्गशोभिताम् ॥

कर्णपूरीकृतस्वर्णबद्धरत्नाङ्गुशां शुभाम् । प्रवालविलसत्कानिन्तरचिराधरपल्लवाम् ॥

शेखरोल्लसद्रप्यदशनावलिशोभिताम् । निर्लज्जनशरद्राकाताराधिपशुभाननाम् ॥

पञ्चासायककोदण्डविलासाधिकभूयुगाम् । विभ्राणां नासिकां प्रोद्यतिलपुष्टजयोद्यताम् ॥

शीतांशुशकलाकाररुचिरालिकराजिताम् । धनसौगन्ध्यसंपत्रमृगनाथिविशेषकाम् ॥

मनावकुञ्जितसुस्निधनीलमञ्जुलमूर्धजाम् । पारिजातद्वुकुसुमगन्धवाहिसुमूर्धजाम् ॥

(अनर्धरत्नघटितमुकुटाङ्गितमस्तकाम्) । तपहाटकसंबद्धनानारत्नोघशेखराम् ॥

सौन्दर्यभूमेवरथं तेजसां जन्मभूमिकाम् । विलासलक्ष्मीभवनं महालक्ष्मीं विचिन्तयेत् ॥

तदनन्तर निचले बाँयें हाथ से प्रारम्भ करके निचले दाहिने हाथ तक उनके आयुधों का चिन्तन करे।

पहले अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर दशदल कमल बनावे। उसके बाहर नव दल कमल इसके बाहर चार द्वारों

से युक्त तीन भूपर बनावे। इस पूजाचक्र के मध्य में देवी की पूजा करे। देवी के दाहिने गणपतये नमः, बाँये कामदेवाय नमः

से पूजा करे। पूर्ववत् षडङ्ग पूजन करे। अष्टदल में—उषायै नमः, श्रियै नमः, सरस्वत्यै नमः, दुर्गायै नमः, धारिण्यै नमः, गायत्रै नमः, देव्यै नमः, उषायै नमः से अपने आगे से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से पूजा करे। देवी के दाँये चरण के निकट गंगायै नमः, वाम चरण के समीप यमुनायै नमः, देवी के दाँये भाग में शाङ्खनिधये नमः, बाँये भाग में पद्मनिधये नमः, द्वादश दल

में अपने आगे से प्रदक्षिणक्रम से मेषाय नमः, वृषाय नमः, मिथुनाय नमः, कर्काय नमः, सिंहाय नमः, कन्यायै नमः, वृश्चिकाय नमः, धनुषे नमः, मकराय नमः, कुम्भाय नमः, मीनाय नमः से पूजन करे। नव दल में रक्षे नमः से पूजन करे। चतुरस और नवदल

के बीच में ऐयवताय नमः, पुण्डरीकाय नमः, वामनाय नमः, कुमुदाय नमः, अंजनाय नमः, पुष्पदन्ताय नमः, सार्वभौमाय नमः,

सुप्रतीकाय नमः से पूजन करे। चतुरस्र की दो वीथियों में पूर्ववत् इन्द्रादि दशा दिक्षालों और उनके आयुधों की पूजा करे। तब धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूजन करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे। ब्रतपूर्वक नियत भोजन करते हुये बारह लाख मन्त्रजप करे। उसका दशांश धी एवं त्रिमधुरात् कमल एवं बेलफल में से प्रत्येक से दशा-दशा हजार हवन करे। पवित्र सुगच्छित जल से बीस हजार तर्पण करे। यहाँ पर धी से दशांश हवन करके दशांश तर्पण करे, इसके बाद अन्य से बीस हजार हवन करके बीस हजार तर्पण करे यह आशय है।

### यथाकामं होमद्रव्यविधिः

तथा—

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री गुरुभक्तो दृढब्रतः । कुर्यात्काय्यानि कर्माणि स्वाभीष्टानि च मन्त्रवित् ॥७७॥  
आज्याल्पुताभिर्द्वार्चिभिरायुष्कामो हुनेन्नरः । सहस्रं दशरात्रं च समिद्धे हव्यवाहने ॥७८॥  
शताह्नाभिर्गुडूचीभिरष्टोतरसहस्रकम् । सप्ताहं जुहुयाज्जीवेद् वत्सराणां शतं सुधीः ॥७९॥

शताह्नाभिर्द्वार्चिभिः।

दीर्घायुश्च धृताभ्यक्तेस्तिलैः प्रजुहुयाद्वृथः । आरोग्यकामो जुहुयादारभ्यार्कदिनं सुधीः ॥८०॥  
दशांशं प्रत्यहं चापि सर्पिरक्तान् समिद्वारान् । कण्ठदघ्ने जले स्थित्वा महालक्ष्मीमनुस्मरन् ॥८१॥

समिद्वारानर्कजान्।

अष्टाधिकसहस्रं च प्रोर्ध्वबाहुजपेन्मनुम् । स वाञ्छितार्थं लभते आरोग्यमपि साधकः ॥८२॥  
अन्वहं जुहुयादष्टसहस्रं शालिभिर्धृवम् । सोऽचिराल्लभते लक्ष्मीं महतीं साधकोत्तमः ॥८३॥

अष्टसहस्रमष्टाधिकसहस्रमित्यर्थः।

इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध होने पर गुरुभक्त एवं दृढब्रती साधक काम्य कर्मों को अपने अभीष्ट सिद्धि के लिये करे। गाय के धी से सिक्त दूर्वा के हवन से आयु को वृद्धि होती है। इस प्रकार का हवन दशा रातों तक हव्यवाहन समिधा में करे। सात दिनों तक गुरुच से एक हजार आठ हवन करे। एक सप्ताह तक इस हवन से साधक सौ वर्षों तक जीवित रहता है। दूर्वा से हवन करने पर भी यही फल होता है। दीर्घायु के लिये धृताभ्यक्त तिल से हवन करे। आरोग्य की कामना से बारह दिनों तक हवन करे। प्रतिदिन दशांश हवन गोधृत एवं अकवन काष्ठ से करे। कण्ठ तक जल में खड़े होकर महालक्ष्मी का स्मरण करे। ऊर्ध्व बाहु होकर एक हजार आठ मन्त्रजप करे। ऐसा करने वाला साधक वाञ्छित प्राप्ति के साथ आरोग्य भी प्राप्त करता है। प्रतिदिन एक हजार आठ हवन शालि चावल से करे तो वह थोड़े ही दिनों में बहुत धन प्राप्त करता है।

**रमालताप्रसूनैर्वा नन्दावर्तसमुद्धवैः । श्वेतसर्षपकैराज्यप्लुतैर्वा जुहुयाद्वृथः ॥८४॥**  
प्रथीयसीं रमामाप्नोत्यचिरात्साधको ध्रुवम् । मान्यते च तथा सर्वैर्जन्मुभिनन्यथात्र च ॥८५॥  
**नालिकेररजोयुक्तमरिच्यैर्जीरकान्वितैः । गुडयुक्तैर्धृतपक्वैरपूर्णजुहुयात् सुधीः ॥८६॥**  
संयतः प्रत्यहं चाष्टशतं पायसभुग् द्विजः । मण्डलाच्च ध्रुवं साक्षाद् भवेद्वश्रवणस्तथा ॥८७॥  
गुडमिश्रहविष्यस्य होमादत्रसमृद्धिमान् । अष्टोत्तरसहस्रं च जपासूनानि संहुनेत् ॥८८॥  
संगृह्य तद्वस्म मन्त्री नागवल्लीरसेन च । सहितं तिलकं कुर्यात्सर्ववश्यं भवेद् ध्रुवम् ॥८९॥  
पलाशोत्थसमिद्धिश्च कुसुमैर्जुहुयात्था । वश्या भवेयुर्मुखजा वशिनस्तस्य मन्त्रिणः ॥९०॥  
जातिकाकुसुमैर्मन्त्री राजानं वशमानयेत् । जुहुयादरुणाम्भोजैवेंश्याः स्युस्तेन वश्यगाः ॥९१॥  
नीलोत्पलानां होमेन वश्याश्वरणसंभवाः । वशयेत् प्रमदा विद्वान् मधूककुसुमैर्घृतैः ॥९२॥

रमालता के फूलों या नन्दावर्त फूलों या आज्य प्लुत श्वेत सरसो से हवन करे। इससे साधक को बहुत धन मिलता है और सभी जीवों का वह मान्य हो जाता है; यह कथन अन्यथा नहीं है। नारियल चूर्ण, मरिच, जीरा, गुडयुक्त धृत और पक्व पूओं से प्रतिदिन संयत होकर पायस का भोजन करते हुये एक सौ आठ हवन करे तो चालीस दिनों में साधक साक्षात् कुबेर

हो जाता है। गुडमिश्रित हविष्य के हवन से साधक अन्न से समुद्दृ होता है। एक हजार आठ अङ्गहुल के फूलों से हवन करके उसके भस्म को इकट्ठा करके पान के रस में घोलकर तिलक करे तो सबों को वश में कर लेता है। पलाश की समिधा में पलाशफूलों से हवन करने पर सामने आने पर मन्त्री उसके वश में होते हैं। जातिपुष्ट के हवन से राजा और मन्त्री वश में होते हैं। लाल कमल के हवन से वैश्य वश में होते हैं। नील कमल के हवन से शूद्र वश में होते हैं। महुआ के फूल और धी के हवन से प्रमदायें वश में होती हैं।

#### अभिषेकविधि:

**नवकोष्ठात्मकं सम्यङ्गमण्डलं रचयेत्सुधीः। मध्ये यन्त्रं च रुचिरं कल्पयेच्च यथाविधि ॥१३॥**  
**यन्त्रं वक्ष्यमाणम्।**

**तेषु कोष्ठेषु नवसु विन्यसेत्कलशान्नव । शुभांश्वनकाशमीरलिप्तसर्वाङ्गकान् नवान् ॥१४॥**  
**कूर्चतण्डुलसंयुक्तान् सर्वदृष्टिमनोहरान् । पूजयेच्च यथावत्तान् वासितैस्तीर्थपुष्करैः ॥१५॥**  
**कर्षस्वर्णं रचितं नवरत्नसमन्वितम् । कर्णिकामध्यविलसद्यन्तं पद्मं तु कारयेत् ॥१६॥**  
**मध्यस्थकलशे रम्यं यथावत्तद्विनिक्षिपेत् । पञ्चरत्नानि सर्वेषु कलशेषु विनिक्षिपेत् ॥१७॥**

**पञ्चरत्नानि तु—**

**वत्रं मुक्ताकलं नीलं पद्मरागं तथैव च । मरकतेन समायुक्तं पञ्चरत्नमिदं विदुः ॥१॥**

**इति पुराणोक्तानि। तथा—**

**पटीरोशीरकाशमीरचन्द्रगुरुतमालकम् । जातीककोलसंयुक्तं संपिष्ठेत् तानि भागशः ॥१८॥**  
**कलशेषु च सर्वेषु यथाविधि विलोडयेत् । सदाभद्रा च दूर्वा च देवी श्रीश मधुव्रता ॥१९॥**  
**अपामार्गस्य पत्राणि मुशली वज्रिवल्लरी । चक्रप्रियङ्कीहीनश्च मुद्रगोधूमतण्डुलान् ॥१००॥**  
**शालिमाषांश्च सतिलान्यवान् प्रक्षिप्ते । कदलीनारिकेलश्रीधात्रीलकुचभूरुहाम् ॥१०१॥**  
**फलानि पद्मबकुलजातिसौगन्धिकानि च । मल्लिकाचम्पकाशोकपुंनामोत्यानि निक्षिपेत् ॥१०२॥**  
**पुष्पाणि केतकीं तद्वत्तुलसीपल्लवानि च । न्ययोधोदुम्बरपलक्ष्मैत्यानां ब्रह्मकूर्चकम् ॥१०३॥**  
**प्रक्षिप्य घटवक्त्राणि छादयेद्युपकैः शुभैः । साक्षतै सफलैस्तांश्च वेष्टयेत् क्षौमवाससा ॥१०४॥**

नव कोष्ठात्मक मण्डल बनावे। मध्य में यथाविधि रुचिर यन्त्र बनावे। उन नव कोष्ठों में नव कलशों को स्थापित करे। कलशों को कुड्हुम, चन्दन के लेप से शोभित करे। उसे पञ्चगव्य एवं तण्डुल से युक्त करके सब प्रकार से सुन्दर बनावे। उनमें सुवासित तीर्थजल भरे और विधिवत् पूजा करे। कर्ष भर सोने से निर्मित नव रत्नजटित पद्म यन्त्र बनावे। उसे मध्य कलश में डाले। शेष आठ कलशों में पञ्चरत्न डाले। पञ्चरत्न में हीरा, मोती, नीलम, पद्मराग, पत्रा आते हैं। चन्दन, बालछड, कुड्हुम, केसर, कपूर, अगर, तमाल, जायफल, कक्कोल बराबर-बराबर लेकर पीसे। सभी कलशों के जल में उसे मिला दे। मुस्ता, दूर्वा, सहदेवी, अपराजिता, भृंगराज, चिङ्गिंडा पत्र, तालमूली, इन्द्रवारुणी, चकवड, कंगुनी, धान, मूँग, गेहूँ, चावल, शालि, उड्ड, तिल, यव डाले। केला, नारियल, बेल, आमला, लकुच वृक्षों के फल, कमल, बकुल, जाति, सौगन्धिक, मल्लिका, चम्पा, अशोक, पुनाङ्ग के फूलों को डाले। केतकी, तुलसी, वट, गूलर, पाकड़ और ब्रह्मकूर्च को कलशों में डाले। कलशों में वस्त्र लपेट कर अक्षत छोड़े और फलसहित रेशमी वस्त्र लपेटे।

**तेषु मध्यस्थकलशे समावाहा महेश्वरीम् । महालक्ष्मीं चन्द्रनादैरूपचारैश्च संयजेत् ॥१०५॥**  
**शिष्टेष्वष्टु कुम्भेषु ह्यमाद्याः क्रमतो यजेत् । सुगन्धैश्वन्दनैः पुर्व्यमनोज्ञैर्धूपदीपकैः ॥१०६॥**  
**भक्ष्यभोज्यनिवेद्यैश्च यथाविधि यजेत्सुधीः । संस्पृश्य तान् घटान् मन्त्री त्रिसहस्रं मनु जपेत् ॥१०७॥**  
**ततः साध्यं समानीय संयतं स्थणिं ले शुभे । सुपीठे तं निवेश्याथ तस्मिन्साध्ये तु योजयेत् ॥१०८॥**  
**मनोहरैरलङ्घार्विविधैर्वसनैरपि । आदरात्तमलंकृत्य सुरक्तं सुमनोवृतम् ॥१०९॥**

सुवासिनीभियोषाभिरचितानं द्विजमनाम् । सहस्रैर्चयैः सर्ववाद्यानां निनदैः सह ॥११०॥  
 वेदधोषेण च सह लग्ने चैव सुशोभने । तेषु मध्यस्थितं कुम्भं समुद्भूत्य गुरुः स्वयम् ॥१११॥  
 मूलमन्त्रं जपन् सिञ्चेत्साध्यशीर्वं ततोऽपरैः । कलशैः पूर्ववत्सिक्त्वा हस्तेनास्य शिशोः शिरः ॥११२॥  
 संस्युशन् वेदगदितामाशिषं च प्रयच्छति । कल्याणमस्तु च सदा संपदश्च निराकुलाः ॥११३॥  
 प्रसीदतु महालक्ष्मीः सकला देवता अपि । रक्षन्तु त्वां सर्वदैव विजयोऽस्तु सुखी भव ॥११४॥  
 इत्यं दत्त्वाशिषः पश्चाद्वाससी परिधाप्य च । आचन्तः प्रणमेत्सम्यथाविधि गुरुं शिशुः ॥११५॥  
 नानाविधैश्च वसनैर्नानालङ्करणैरपि । धनैर्धन्यै रत्नगोभिर्महिषीभिश्च दासकैः ॥११६॥  
 दासीभिर्देवताबुद्ध्या गुरुं संतोषयेत्सुधीः । नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्हृच्योष्यस्तथेतरैः ॥११७॥  
 दीनान्धकृपणैः सार्थं भोजयेच्च द्विजन्मनः । ततः स्वमन्दिरे कुर्यादुत्सवं बन्धुभिः सह ॥११८॥  
 षट्त्रिव्योक्ताहरम्यं च ततः स नुवरः स्वयम् । कृतार्थं मन्यते सम्प्यात्मानं नान्यथात्र हि ॥११९॥  
 राजा शत्रून् विजयतेऽभिषिक्तश्च यथाविधि । राजपुत्रश्च राज्येष्वुराचिरादाप्नुयात्पदम् ॥१२०॥  
 वस्त्याभिषिक्ता रमणी ह्यचिराद्विजितं सुतम् । महामतिं च लभते नात्र कार्या विचारणा ॥१२१॥  
 महाभयेषु भूतादिनिमितोत्थ्यभयेषु च । कृत्याद्रोहिदिवोषे च प्रकुर्यादभिषेचनम् ॥१२२॥  
 अभिषेकेणामुना च नृणां भवति निश्चितम् । सर्वसंपच्च सौभाग्यं सर्वामियशमस्तथा ॥१२३॥

### सर्वपद्मारणं चैव सर्वसौख्यानि निश्चितम् ।

पाटीरश्चन्दनः । उशीरो वालकम् । काश्मीरं कुड्हुमं केसरमिति प्रसिद्धम् । चन्द्रः कर्पूरः । तमालकं पत्रजम् ।  
 जाती जातीफलं, कक्कोलं कोल इति प्रसिद्धम् । भागाशः समभागेन । सदाभद्रा मुस्ता । देवी सहदेवी । श्रीरपरजिता ।  
 मधुव्रता भूङ्गराजः । मुशली तालमूली । विश्रवल्लरी इन्द्रवारुणी । प्रियङ्गः काङ्गुनी । श्रीः बिल्वः । धात्री आमलकी,  
 लकुचो बडहर इति प्रसिद्धः । बकुलः बैलसरीति प्रसिद्धः । प्लक्षः पाकडिति प्रसिद्धः । चैत्यो ग्रामप्रसिद्धहेतुभूतो  
 महावृक्षः । ब्रह्मकूर्चं पञ्चगव्यं । भूपकैराच्छादनपात्रैः ।

उनमें से सबों के बीच वाले कलतश में महेश्वरी महालक्ष्मी का आवाहन करके चन्दनादि उपचारों से पूजन करे । शेष  
 आठ कलशों में क्रमशः उमा, श्री, सरस्वती, दुर्गा, धारिणी, गायत्री, देवी, उषा का यजन क्रमशः सुगन्ध, चन्दन, पुष्प, धूप,  
 दीप, भक्ष्य, भोज्य, नैवेद्य से विधिवत् करे । उन कलशों को स्पर्श करके तीन हजार मन्त्रजप करे । तब साध्य को लाकर शुभ्र  
 स्थण्डिल के सुन्दर पीठ पर बैठाये । मनोहर अलंकार एवं विविध वस्त्रों से सादर उसे अलंकृत करे । सुरक्त सुमनोवृत्त सुवासिनी  
 स्त्रियों द्वारा ब्राह्मणों का अर्चन कराये । सहस्र नाम का पाठ सभी बाजों के साथ करे । वेद धोष के साथ सुन्दर लग्न में मध्यस्थ  
 कुम्भ से गुरु स्वयं मूल मन्त्र जपते हुए साध्य के शिर पर जल गिराये । स्नान के बाद शिष्य के शिर पर हाथ रखे । वेदधोष  
 के साथ आशीष के रूप में कहे—तुम्हारा कल्याण हो एवं सम्पत्तियों की वृद्धि हो । महालक्ष्मी के साथ सभी देवता तुम पर  
 प्रसन्न हों और सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें । सर्वदा तुम्हारी जय हो । इस प्रकार का आशीष देकर वस्त्र पहनाये । शिष्य आचमन  
 करके गुरु को प्रणाम करे । शिष्य गुरु को देवता मानकर विविध वस्त्र, अलंकरण, धन-धान्य, रत्न, गाय-भैंस, दास-दासी  
 प्रदान कर सन्तुष्ट करे । नाना प्रकार के भूश्य, भोज्य, लेहा, चोष्य पदार्थ का अन्य छिंगों के साथ गरीबों एवं अस्थों को भी  
 भोजन कराये । इसमें कृपणता न करे । तब अपने घर में बान्धवों के साथ उत्सव छः, तीन, दो, एक दिन तक मनाये । तब  
 साधक अपने को कृतार्थ माने । इस प्रकार यथाविधि अभिषिक्त राजा शत्रुओं पर विजय पाता है, राजपुत्र शीघ्र राज्य पाता है ।  
 अभिषिक्त वस्त्या स्त्री को पुत्र प्राप्त होता है । महाबुद्धि मिलती है । अभिषेक से भूत-प्रेतों के भय-कृत्यादि दोष से मनुष्य मुक्त हो  
 जाता है । समस्त सम्पत्ति, सौभाग्य एवं यश प्राप्त करते हुये सभी आपदाओं का निवारण करते हुये सभी सुख प्राप्त करता है ।

तथा—

श्रीमायाकामयुक्तं प्रणवगतमथो साध्यमालिख्य मध्ये  
 किञ्चल्केषुक्तबीजत्रियमपि लिखेद् युग्मशशार्कपत्रे ।  
 मन्त्राणां षोडशारं स्वरलसितदलं कादियुक्तपत्रमूलं  
 हक्षोद्यत्कोणभूमीगृहयुग्मवषट्प्रान्ततूपावृतं स्यात् ॥१ २४॥

**यन्त्रमेतन्महालक्ष्म्याः** प्रोक्तं संपत्करं परम् । सर्वसौभाग्यदं चापि सर्वदुःखविमोचनम् ॥१ २५॥  
 आपन्निवारणं प्रोक्तं कि बहूतेन सर्वदम् । इति।

**अस्यार्थः**—द्वादशदलं पदं विरच्य तत्कर्णिकायां प्रणवं विलिख्य तस्योदरे श्रीमायाकामबीजानि (साध्यनाम च विलिख्य तत्कर्णिकायां प्रणवं विलिख्य तस्योदरे श्रीमायाकामबीजानि) प्रतिकेसरमेककमिति बीजत्रियस्याष्टावृत्त्या चतुर्विंशतिकेसरेष्वपि विलिख्य, द्वादशपत्रेषु मूलमन्त्रस्य वर्णनिकैकशो विलिख्य, तद्वाहिः षोडशदलं पदं कृत्वा तत्कर्णिकायां प्रणवं विलिख्य, द्वादशपत्रेषु मूलमन्त्रस्य वर्णनिकैकशो विलिख्य दलेषु षोडश स्वरान् विलिख्य, तद्वाहिश्छतुरस्त्रद्वयेनाष्टकोणं कृत्वा, तत्कर्णिकायां प्रणवं हक्षी विलिख्य वषट्डलत्या त्वरिताविद्यावेष्टने तु अष्टकोणाद्वाहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा तयोरन्तरालवीथीयां यथोक्तया त्वरिताविद्यावेष्टयेत् । अत्र त्वरिताविद्यावेष्टने तु अष्टकोणाद्वाहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा तयोरन्तरालवीथीयां यथोक्तया त्वरिताविद्यावेष्टयेत् । तथा—

**तारश्रीशक्तिलक्ष्मीकसूर्याः** शिवयुता धरा । चतुराननसूर्यौ न दीर्घयुक्तः पुरन्दरः ॥१ २६॥

**उपान्त्यः** शिवयुग्मवायुलोहितोऽर्णिन्युतो भृगुः । चतुर्थस्वरयुक्त्यान्तः पुनरेतत्वयं वदेत् ॥१ २७॥

**बीजत्रयं महालक्ष्मि हृदन्तो गदितो मनुः । सर्वदो वै महालक्ष्म्या मन्त्रराजः प्रकीर्तिः ॥१ २८॥ इति।**

**तारः प्रणवः श्रीः** श्रीबीजं, शक्तिर्भुवनेशी, लक्ष्मीः श्रीबीजं, क स्वरूपं, सूर्यो मकारः, शिव ए, धरा ल तेन ले, चतुराननः क, सूर्यो म, दीर्घयुक्तः पुरन्दरः ला, उपान्त्यो ल, शिव ए, वायु य, तेन ये। लोहितः प, अग्निः रेफस्तेन प्र, भृगुः स, चतुर्थस्वर ई तेन सी, थान्तो द, पुनरेतत्वयं प्रसीदेति। बीजत्रयं श्रीशक्ति-लक्ष्मीबीजानि। महालक्ष्मि स्वरूपं, हृदन्तो नमोऽन्तः । अत्र केचित् लक्ष्मीशब्दं चतुर्थन्तत्वेनेच्छन्ति, 'महालक्ष्म्यै' इत्येवोद्धरन्ति। तथाच प्रपञ्चसारे 'समहालक्ष्म्यै हृदिदिमन्त्रः' इति (१.२.२७)।

**महालक्ष्मी—**श्लोक १२६-१२८ के उद्धार करने पर सत्ताईस अक्षरों का महालक्ष्मी का मन्त्र यह होता है—३० श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः ।

महालक्ष्मी यन्त्र निर्माण के क्रम में पहले द्वादश दल कमल बनावे। उसकी कर्णिका में ३० के गर्भ श्रीं हीं श्रीं साध्य नाम लिखे। प्रत्येक केसर में तीन बीजों की आठ आवृत्ति से निर्मित २४ अक्षरों में से दो-दो अक्षर बारह केसरों में लिखे। द्वादश पत्रों में मूल मन्त्र के एक-एक अक्षर को लिखे। उसके बाहर षोडश दल बनावे। उसके दलों में क से स तक के बत्तीस वर्णों में से दो-दो वर्ण केसर में लिखे। दलों में एक-एक स्वर को लिखे। उसके बाहर दो भूपुर बनावे। उनके आठ कोनों में ह-क्ष लिखे। त्वरिता विद्या में 'वषट्' उसे जोड़कर वेष्टित करे। महालक्ष्मी के इस यन्त्र को परम सम्पत्कर कहा गया है। यह सर्वसौभाग्यदायक और सर्व दुःख-विमोचक है एवं आपत्ति-निवारक है। अधिक क्या कहा जाय; यह सबकुछ है।

**मन्त्रराजध्यानप्रयोगविधिः**

**सारसंग्रहे—**

**त्रिबीजपुटितैर्मन्त्रवर्णैः पञ्चाङ्गमीरितम् । त्रीष्वनिवह्निवेदैश्च ततो देवीं विचिन्तयेत् ॥१॥**

इषुः ५ अग्निः ३ वेदः ४। ध्यानम्—

सिन्दूरारक्तकान्तिः सरसिजवसतिश्वारुलावण्यभूमि-  
हस्ताङ्गै रलपात्रं सरसिजयुगलं दर्पणं संवहन्ती।  
दासीभिश्वाभिवीता मणिमयमुकुटा हारसत्कुण्डलाङ्गा  
काञ्छीप्रोद्यन्तितम्बाङ्गदलसितभुजा श्रेयसे वोऽस्तु लक्ष्मीः ॥२॥

वामाधः करमारभ्य दक्षिणाधः करपर्वतमायुधानं दक्षाधस्तादारभ्य वा ।

पूर्वोदिते यजेत्पीठे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना । पुराङ्गानि यजेत्पश्चात् श्रीधरादींस्ततः सुधीः ॥३॥  
श्रीधरश्च हृषीकेशो वैकुण्ठो विश्वरूपकः । वासुदेवादयश्चेमे चत्वारः समुदीरिताः ॥४॥  
भारत्यादिभिरन्या स्याद्वारती पार्वती तथा । चान्द्री शची च संप्रोक्ता दमकाद्यान् यजेद्वाजान् ॥५॥  
यजेद्वाजान् महालक्ष्म्या अनुरागादिकान् बहिः । अनुरागो विसंवादो विजयो वल्लभो मदः ॥६॥  
हर्षो बलश्च तेजश्च यजेल्लोकेश्वरान् बहिः । तदायुधानि तद्वाहो पूजयेच्चन्दनादिभिः ॥७॥  
एवं संपूज्येल्लक्ष्मीं यो मर्त्यो विधिनामुना । तत्र नित्यं महालक्ष्मीर्वर्धते न जहाति तम् ॥८॥ इति

अथ प्रयोगः—प्रातः कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते भूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षप्रजापतये ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदये श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः । इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुक्तीर्त्तं, श्रीहृषीश्रीं कमले श्रीहृषीश्रीं हृदयाय नमः । श्रीहृषीश्रीं कमलालये श्रीहृषीश्रीं शिरसे स्वाहा । श्रीहृषीश्रीं प्रसीद श्रीहृषीश्रीं शिखायै वषट् । श्रीहृषीश्रीं प्रसीद श्रीहृषीश्रीं कवचाय हुं । श्रीहृषीश्रीं महालक्ष्म्ये श्रीहृषीश्रीं अस्त्राय फट् । इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् भूलभिष्यथोः करयोरङ्गुष्टादिकनिष्ठिकान्तास्वलूलीषु विन्यस्य, नेत्रवर्जं हृदयादिषु च न्यसेत् । ततो ध्यानमानस-पूजान्तेऽष्टदलकमलत्रयं चतुर्द्वारयुतचतुरस्त्रयावृतं पूजाचक्रमुद्भृत्य, अर्द्धस्थापनाद्वयपूजान्तेऽन्तरष्टदलेषु उ॒० श्रीधराय नमः । हृषीकेशाय नमः । वैकुण्ठाय० । विश्वरूपाय० । वासुदेवाय० । संकर्षणाय०, प्रद्युमाय० अनिरुद्धाय०, इति देवग्रादि प्रादक्षिण्येन संपूज्य, द्वितीयेऽष्टदले दिक्यपत्रेषु भारत्यै नमः । पार्वत्यै० । चान्द्र्यै० । शच्चै० । आग्नेयादिषु पत्रेषु दमकाय नमः, सलिलाय०, गुणगुलवे०, कुरण्टकाय०, इति संपूज्य, तृतीयेऽष्टदले अनुरागाय नमः । विसंवादाय०, विजयाय०, वल्लभाय०, मदाय०, हर्षाय०, बलाय०, तेजसे०, इति संपूज्य प्राग्वद् दिगीशादि शेषं समापयेत् इति । दक्षिणामूर्तिसंहितायां तु—अङ्गैः प्रथमावरणं, भारत्यादिचतुर्सूभिः श्रीधरादिभिश्वतुर्भिश्व द्वितीयम्, अनुरागादिभिस्तृतीयं, ततो लोकेशास्तद्वेतयश्च इति पञ्चावरणमुक्तम् । दक्षिणामूर्तिः—

लक्ष्मीं जपेत् फलैर्बैल्व्यर्जुहुयान्मध्यरोक्षितैः । दशांशं संस्कृते वहौ प्राक्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ॥१॥ इति ।  
एष जपः कृतयुगपरः ।

एवं सिद्धमनुर्मत्री साधयोदिष्टमात्मनः । चन्दनात्मैः सरसिजैर्लक्षं प्रजुहुयात् सुधीः ॥२॥  
लभते नृपतिवैरिसाप्राज्यं समरं विना । महालक्ष्मीमनुं चैव जपन् राजसभां ब्रजेत् ॥३॥  
तत्र संयान्ते नित्यं नात्र कार्या विचारणा । सहदेवी रमा दूर्वा क्रान्ता भद्रा मधुब्रता ॥४॥  
शक्रवल्ली चाञ्छलिनी मुशली हरिचन्दनम् । घनसारं चन्दनश्च कक्कोलं रोचनं च रुक् ॥५॥  
मायूरकेसरां सर्वं पिष्ठ्वा सम्यग् हरिद्रिया । सञ्जप्तं मनुना सम्यगष्टोत्तरसहस्रतः ॥६॥

अनेन तिलकं कृत्वा सर्ववश्यं भवेद् ध्रुवम् ।

रमा श्रीलता । क्रान्ता अपराजिता । हरिचन्दनं रक्तचन्दनम् । 'हरिना कपिले त्रिषु' इति कोशात् । घनसारः कर्पूरः । रुक् कुष्ठम् ।

सारसंग्रह में कहा गया है कि पञ्चाङ्ग न्यास इस प्रकार करे—

श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः ।

श्रीं हीं श्रीं कमलालये श्रीं हीं श्रीं शिरसे स्वाहा।  
 श्रीं हीं श्रीं प्रसीद श्रीं हीं श्रीं शिखायै वषट्।  
 श्रीं हीं श्रीं प्रसीद श्रीं हीं श्रीं कवचाय हुम्।  
 श्रीं हीं श्रीं महालक्ष्ये श्रीं हीं श्रीं अस्त्राय फट्।

पञ्चाङ्ग न्यास के बाद इस प्रकार ध्यान करे—

सिन्दूररत्कान्ति: सरसिजवसतिशारुलावण्यभूर्मिहस्ताङ्गै रत्नपात्रं सरसिजयुगलं दर्पणं संवहन्ती।  
 दासीभिश्वाभिवीता मणिमयमुकुटा हारसत्कुण्डलाढ्या काञ्जीप्रोद्यन्तम्बाङ्गदलसितभुजा श्रेयसे वोऽस्तु लक्ष्मीः॥

पूर्वोक्त प्रकार से आयुधों का ध्यान करे। तदनन्तर प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्ट्यादि न्यास करे—शिरसि दक्षप्रजापतये कृष्णये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीमहालक्ष्मीदेवतायै नमः। इसके बाद पूर्ववत् विनियोग करके छड़गं न्यास करे—श्रीं हीं श्रीं कमले श्रीं हीं श्रीं हृदयाय नमः। श्रीं हीं श्रीं कमलालये श्रीं हीं श्रीं शिरसे स्वाहा। श्रीं हीं श्रीं प्रसीद श्रीं हीं श्रीं शिखायै वषट्। श्रीं हीं श्रीं प्रसीद श्रीं हीं श्रीं कवचाय हुं। श्रीं हीं श्रीं महालक्ष्ये श्रीं हीं श्रीं अस्त्राय फट्। मूल मन्त्र से हाथों को मलक अंगूठे से कनिष्ठा तक न्यास करे और नेत्र छोड़कर हृदयादि न्यास करे। तब ध्यान करके मानस पूजा करे। तब पूर्वोक्त पूजाचक्र बनाकर अर्घ्य स्थापन से अंगपूजा तक करे। पूजाचक्र में तीन अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर चार द्वारायुक्त तीन चतुरस बनावे। अंगपूजा करे। प्रथम आवरण से पहले अष्टदल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से ॐ श्रीधराय नमः। ॐ हर्षीकेशाय नमः। ॐ वैकुण्ठाय नमः। ॐ विश्वरूपाय नमः। ॐ वासुदेवाय नमः। ॐ प्रद्युमनाय नमः। ॐ अनिरुद्धाय नमः—इस प्रकार पूजन करे।

द्वितीय आवरण में द्वितीय अष्टदल के दिक्षपत्रों में भारत्यै नमः। पार्वत्यै नमः। चान्द्रचै नमः। शच्चै नमः। आग्नेयादि पत्रों में—दमकाय नमः। सलिलाय नमः। गुगुलवे नमः। कुरण्टकाय नमः—इस प्रकार पूजन करे।

तृतीय आवरण में तृतीय अष्टदल में अनुरागाय नमः। विसंवादाय नमः। विजयाय नमः। वल्लभाय नमः। मदाय नमः। हर्षय नमः। बलाय नमः। तेजसे नमः—इस प्रकार पूजन करे। प्रथम भूपुर रेखा में इन्द्रादि दश दिक्षपाल का पूजन चतुर्थावरण में एवं द्वितीय भूपुर में उनके आयुध पूजन पञ्चम आवरण में किया जाता है।

दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है कि एक लाख जप करे। दशांश हवन मधुराक्त विल्वफल से करे। हवन संस्कृत अग्नि में पूर्वोक्त प्रकार से करे। जप की संख्या यहाँ सत्ययुग हेतु कही गई है; कलियुग में इसका चौगुना अर्थात् चार लाख जप करना चाहिये।

इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से मन्त्री अपना इष्ट साधन करे। चन्दनाक्त कमल से एक लाख हवन करे तो राजा को युद्ध के बिना ही साम्राज्य मिलता है। महालक्ष्मी मन्त्र का जप करके राज्यसभा में जाने से साधक नित्य सम्मानित होता है। सहदेवी, बेल, दूर्वा, अपराजिता, मुस्ता, भृंगराज, इन्द्रवल्ली, हाथाजोड़ी, हरिचन्दन, घनसार, चन्दन, कक्कोल, गोरोचन, कृष्ण, मांसुकेसरी और हत्ती को मिलाकर पीसकर बनाये गये लेप को एक सौ आठ जप से मन्त्रित करके उससे तिलक लगावे तो सभी वश में होते हैं।

#### चतुर्दशैकादशाण्डिमत्रोद्धारः:

सारसंग्रहे—

प्रणवं शुद्धवासान्ते से हृदन्ते महापदम्। डेन्तश्रीहन्मनुः प्रोक्तश्चतुर्दशभिरक्षरैः ॥१॥  
 शुद्धवास स्वरूपं। से स्वरूपं हन्मः। महा स्वरूपं। डेन्ता श्रीः श्रियै हन्मः।

मनोः पदैश्च पञ्चाङ्गं पूर्ववद् ध्यानपूजनम्। जपस्त्रिलक्ष्मेतत्स्य पद्मैर्हीमो दशांशतः ॥२॥

पूर्ववत् महालक्ष्मीमन्त्रवत्। जपः कलियुगापरः। तेनर्थादिकमपि तत्रोक्तं ज्ञेयम्। तथा—

यौतौमौतभये प्रोक्त्वा श्रियै श्रीर्नम इत्यथ । एकादशाणोऽ मन्त्रोऽयं जमदग्निर्मुनिर्मतः ॥३॥  
यौतौमौतभये स्वरूपं, श्रियै श्रीर्नम इत्यपि स्वरूपम् ।

त्रिष्टुप् छन्दो रमादेवी देवता परिकीर्तिता । आद्यषण्मन्त्रवर्णेश्च हृदत्तैर्हद्विठान्तकैः ॥४॥  
शिरः शिखा वषट् भूयो हत्<sup>हु</sup>प्रान्तैः कवचं मतम् । श्रियै नेत्रं श्रीर्नमोऽस्त्रं विदध्याङ्ग्यानमुक्तवत् ॥५॥

ध्यानमित्युपलक्षणम् । पूजादिकमपि तथा ज्ञेयम् । अथ प्रयोगः—प्रागवद्योगपीठन्यासान्ते मूलमत्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि जमदग्नये ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः, हृदि श्रीमहालक्ष्म्यै देवतायै नमः, इति विन्यस्य प्रागवद्विनियोगमुक्त्वा, यौतौमौतभये नमः हृदयाय नमः, यौतौमौतभये स्वाहा शिरसे स्वाहा, यौतौमौतभये वषट् शिखायै वषट्, यौतौमौतभये हुं कवचाय हुं । श्रियै नेत्रयाय वौषट् । श्रीर्नमः अस्त्राय फट् । इति षडङ्गमन्त्रान् प्राग्वत् करयोर्हृदयादिषु च विन्यस्य शोषं महालक्ष्मीवत् सर्वं कुर्यात् । तथा—

नित्यं द्वादशसाहस्रं सप्तरात्रं मनुं जपेत् । तेन सिद्धो भवेन्मन्त्रः साधकस्य न संशयः ॥६॥

अत्र होमो नोक्तः । तथापि पूर्वोक्तमन्त्रहोमद्रव्यजपदशांशातो होमः कार्यः, इति सांप्रदायिकाः । तथा—  
लक्ष्मीं सुवर्णब्जिकारां ध्यात्वा मन्त्रमिमं जपेत् । अष्टोत्तरसहस्रं च स लभेद्वाज्जितां श्रियम् ॥७॥  
जपप्रष्टशतं विश्वं तिलकाद्वशयेद् ध्रुवम् । मासत्रयं तथा जप्त्वा ग्रामं मन्त्री समाप्त्यात् ॥८॥

तथा—

पद्मप्रभेषदं पद्मसुन्दरीति पदं वदेत् । पद्मर्षेऽग्निवधूर्मन्त्रश्तुर्दशभिरक्षरैः  
मन्त्रोद्घारस्तु सुगामः ।

पदैश्तुर्भिः सर्वेण पञ्चाङ्गं गदितं मनोः । जपपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ॥९॥

पूर्ववदेकादशाक्षरोक्तवत् । ‘इयं सिद्धा महाविद्या भक्तानां कल्पवल्लिका’ । एतेन पुरश्चरणमपि तत्रोक्तमेव ।  
अथ शक्तिलक्ष्मीमन्त्रः स तु वक्ष्यमाणत्रिपुटामन्त्र एव (२२ श्ला०) यजनविधिरपि तत्रोक्त एव ज्ञेयः ।

श्री लक्ष्मी का अन्य मन्त्र—सारसंग्रह के मूलोक्त श्लोक का उद्धार करने पर लक्ष्मी का चौदह अक्षरों का मन्त्र होता है—३० शुद्धवाससे नमो महाश्रियै नमः ।

मन्त्र के पाँच पदों—१. ३०, २. शुद्धवाससे, ३. नमः, ४. महाश्रियै, ५. नमः से हृदय, शिर, शिखा, कवच और अस्त्र में पञ्चाङ्ग न्यास करे। पूर्ववत् ध्यान-पूजन के बाद तीन लाख मन्त्र जप करे। दशांश कमलों से हवन करे।

लक्ष्मी का अन्य मन्त्र—श्लोक तीन के उद्धार करने पर ग्यारह अक्षरों का मन्त्र होता है—यौतौमौतभये श्रियै श्रीः नमः ।

पूर्ववत् योगपीठ न्यास के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि जमदग्नये ऋषये नमः । मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः । हृदि श्रीमहालक्ष्म्यै देवतायै नमः । पूर्ववत् विनियोग करे। षडङ्ग न्यास करे—यौतौमौतभये नमः हृदयाय नमः । यौतौमौतभये स्वाहा शिरसे स्वाहा। यौतौमौतभये वषट् शिखायै वषट् । यौतौमौतभये हुं कवचाय हुम् । श्रियै नेत्रयाय वौषट् । श्रीः नमः अस्त्राय फट् । इसी प्रकार करन्यास करे। शोष सब महालक्ष्मी के समान करे। सात रातों तक नित्य बारह हजार जप करे तो मन्त्र सिद्ध होता है। यहाँ पर हवन उक्त नहीं है; फिर भी पूर्वोक्त पूर्वोक्त मन्त्र एवं हवन द्रव्यों से दशांश हवन करना चाहिये ।

हाथों में सुवर्ण धारण करने वाली लक्ष्मी का ध्यान करते हुए इस मन्त्र का एक हजार आठ जप करे तो वांछित धन मिलता है। तिलक को एक सौ आठ जप से मंत्रित करके लगाने से विश्व वश में होता है। तीन महीनों तक जप करने से मन्त्री को ग्राम मिलता है।

श्लोक ९ का उद्धार करने पर लक्षणी का चौदह अक्षरों का मन्त्र होता है—पद्मप्रभे पद्मसुन्दरि पद्मेशि स्वाहा। मन्त्र के चार पदों से और पूरे मन्त्र से पञ्चाङ्ग न्यास करे। जप-पूजादि सभी पूर्वोक्त एकादशाक्षरी मन्त्र के समान करे। यह सिद्ध महाविद्या भक्तों के लिये कल्पवल्लरी के समान होती है। शक्तिलक्षणी मन्त्र पूर्वोक्त त्रिपुटा मन्त्र को ही कहते हैं।

### साम्राज्यलक्ष्मीमन्त्रयन्त्रादिप्रयोगः

**दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—**

अथ वद्ये महादेवि सर्वसाम्राज्यदेवताम्। यस्या आराधनाद्विष्णुरभूलक्ष्मीपतिः स्वयम्॥१॥

चन्द्रः समदनं क्षेशो वहिदीर्घक्षिमण्डितः। बिन्दुकूरेष्वरीयुक्तो विद्येयं वैष्णवी प्रिये ॥२॥

श्रीबीजं संपुटं कुर्यात् सर्वसाम्राज्यदायिनी । इति।

चन्द्रः स, मदनं ककारः, क्षमा लकारः, ईशो हकारः, वही रेफः, दीर्घक्षी ईकारः, बिन्दुशब्देन नादे गृहते जनकजन्ययोस्तयोरभेदात्। नादबिन्द्वोर्जनकजन्यत्वम् तत्र शारदातिलके—‘आसीचक्तिस्ततो नादो नादाद्विन्दुसमुद्धवः’ (१.७) इति। अकूरेश्वरी बिन्दुः एतेन मायोद्धता। तथा—

त्रिष्णिहरिस्तथा छन्दो गायत्री चास्य संमता ॥३॥

देवता मोहिनी लक्षणीः सर्वसाम्राज्यदायिनी । बीजं कूटं समाख्यातं शक्तिः श्रीबीजमुच्यते ॥४॥

षड्भिः कूटं स्वरैर्भित्वा षडङ्गानि प्रविन्यसेत् । अतसीपुष्टसंकाशां रत्नभूषणभूषिताम् ॥५॥

शहुचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करैः । षड्भिः कराभ्यां देवेशि वरदाभयशोभिताम् ॥६॥

ध्यायेदिति शेषः। वामाद्युर्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधःस्थयोरपरे, तदाद्यधःस्थयोरितरे इत्यायुधध्यानम्। तथा—

.....यन्त्रोद्धारं शृणु प्रिये । त्रिकोणं चाष्टपत्रं च भूबिष्मं च ततो लिखेत् ॥७॥

चतुर्द्वारोपशोभाद्यं यन्तमेतत्समालिखेत् । अस्मिन् समावाहू देवीं पूजयेदुपचारकैः ॥८॥

पूर्ववत् परमेशानि षडङ्गावरणं यजेत् । गायत्री चैव साक्षिं सरस्वत्यग्रकोणतः ॥९॥

क्रमेण पूजयेन्मन्त्री ब्राह्मण्यादाश स्वरैः पृथक् । अष्टपत्रेषु भूबिष्मे चैकोच्चारेण पूजयेत् ॥१०॥

अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमो लिखेत् । अनेन मनुना पश्चादिन्द्रादीन् पूजयेत्ततः ॥११॥

पुनर्देवीं समभृत्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । वटुकक्षेत्रपालेभ्यो योगिनीभ्यो बलिं हरेत् ॥१२॥

अत्र वटुकक्षेत्रपालेभ्य इति बहुवचनं गणेशस्यापि ग्रहणार्थम् । तेन वटुकक्षेत्रपालगणेशेभ्य इत्यर्थः। अथ प्रयोगः—तत्र प्रातः कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि हरये ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीसर्वसाम्राज्यलक्ष्मी देवतायै नमः, गृहे सकलहींबीजाय नमः, पादयोः श्रींशक्तये नमः, इति विन्यस्य ममेत्यादि प्रागवद्विनियोगमुक्त्वा, सकलां हृदयाय नमः, सकलीं शिरसे स्वाहाः, सकलूं शिखायै वषट्, सकलैं कवचाय हुं, सकलैं नेत्रत्रयाय वौषट्, सकलः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमत्रैः प्रागवत् करष्टद्वन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तं लक्ष्मीपीठमभ्यर्च्चावाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्रागवदङ्गानि संपूज्य, त्रिकोणाश्रादिप्रादक्षिण्येन ३५ गायत्र्ये नमः, साक्षिं नमः, सरस्वत्यै नमः, इति सम्पूज्यादृष्टलेषु प्रागवत् ब्राह्मण्यादाः संपूज्य, चतुरसे ‘अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमः’ इति देवीं परितः संपूज्य लोकेशाचार्यादि प्रागवत् समापयेदिति। तथा—

एवमष्टभुजां ध्यात्वा त्रिलक्षं प्रजपेत् सुधीः । तदशाशेन पद्मस्तु हुनेत् साम्राज्यसिद्धये ॥१३॥

जितेन्द्रियः सन् विधिवत् । इति।

अत्र विधिवदित्यनेन तर्पणादिब्राह्मणभोजनान्तं कर्तव्यमित्युक्तम्।

सर्वसाम्राज्य लक्षणी मन्त्र—दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है कि हे महादेवि! अब मैं साम्राज्य देवता को कहता हूँ, जिसके आराधन से स्वयं विष्णु लक्ष्मीपति हुए हैं। श्लोक २ का उद्धार करने पर साम्राज्यलक्षणी का मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—श्रीं सकलहीं श्रीं। यह विद्या सर्वसाम्राज्यदायिनी है।

प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक की क्रिया के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार कृष्णादि न्यास करे—शिरसि हरये ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हरये श्रीसर्वसाम्राज्यलक्ष्म्यै देवतायै नमः। गुह्ये सकलहीं बीजाय नमः। पादयोः श्रीं शक्तये नमः। तदनन्तर पूर्ववत् विनियोग करके षडङ्ग न्यास करे—सकलां हृदयाय नमः। सकलां शिरसे स्वाहा। सकलूं शिखायै वषट्। सकलैं कवचाय हुम्। सकलौं नेत्रत्रयाय वौषट्। सकलः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास करे। तब निम्नवत् ध्यान करे—

अतसीपृष्ठसंकाशां रत्नभूषणभूषिताम् । शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करैः॥  
षड्भिः कराय्यां देवेशि वरदाभ्यर्थोभिताम्।

पूजन यन्त्र—पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर अष्टपत्र कमल बनावे। उसके बाहर चार द्वारों से युक्त भूपुर बनावे। यन्त्र के मध्य में देवी की और षट्ठांगों की पूजा करे। त्रिकोण के कोणों में गायत्रै नमः, साक्षियै नमः, सरस्वत्यै नमः से पूजा करे। अष्टदल में ब्राह्मी आदि मातृकाओं की पूजा करे। चतुरस में ‘अष्टादशमाहकोटियोगिनीभ्यो नमः’ से देवी के आगे पूजा करे। तब इन्द्रादि दश दिक्षालों और उनके आयुधों का पूजन करे। पुनः देवी की पूजा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्यादि से करके वटुकयोगिनी, गणेश, क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करे। तदनन्तर अष्टभुजा का ध्यान करके साधक जितेन्द्रिय रहकर तीन लाख मन्त्रजप करे और उसका दशांश कमल से हवन करे तो साप्राज्य सिद्ध होता है।

### सप्तार्णमन्त्रः

तथा सारसंग्रहे—

हृदयं पद्मतनया संबुद्ध्यन्ते रमामनुः । सप्तार्णो गदितश्शास्य षडङ्गान्यमुनैव हि ॥१॥

नमो ह०, पद्मतनये शि०, नमः शिखा०, पद्मतनये कवचा०, नमो नेत्रा०, पद्मतनये अस्त्रा०। ‘ध्यान-पूजाहुतार्चादि पूर्ववच्चास्य कीर्तितम्’ इति। पूर्ववदेकाक्षरोक्तवत्।

लक्ष्मी का अन्य मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार रमा का सप्ताक्षरी मन्त्र है—नमः पद्मतनये। इसके षटङ्ग न्यास दूसरे मन्त्रों के समान ही होते हैं। नमो हृदयाय नमः। पद्मतनये शिरसे स्वाहा। नमः शिखायै वषट्। पद्मतनये कवचाय हुम्। नमो नेत्रत्रयाय वौषट्। पद्मतनये अस्त्राय फट्। ध्यान-पूजा-हवन-अर्चा पूर्ववत् एकाक्षर मन्त्र के समान ही करना चाहिये।

### श्रीसूक्तविधानम्

तथा—

रमामन्त्रेषु यो भक्तः श्रीसूक्तं स जपेत्सुधीः। विधानं वक्ष्यते सम्यक् पञ्चदशर्चकस्य हि ॥१॥

हिरण्यवर्णामित्यस्या ऋचो लक्ष्मीर्मनिर्मतः। छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातमन्यासां मुनयः क्रमात् ॥२॥

आनन्दकदर्मचिक्लीतप्रीपुत्रा अमी मताः। ताम आवहजाताश्वपूर्वाभित्यनयोर्मतः ॥३॥

छन्दोऽनुष्टुप्य कांसोस्मितामस्या ब्रह्मती मतम्। चन्द्रां प्रभादित्यवर्णामिनयोक्त्रिषुबीरितम् ॥४॥

उपैतु मां क्षत्यिपासा गन्धद्वारां दुरेति च। मनसः कर्दमेनापः सृजन्त्याद्र्द्वा च सप्तमी ॥५॥

आद्र्द्वा पुष्करणीमासामष्टर्चा च प्रकीर्तितम्। छन्दोऽनुष्टुप्तथा ताम आवहास्याः प्रकीर्तितम् ॥६॥

प्रस्तारपङ्क्लः सर्वासां देवते श्रीविभावसुः। मूर्धाक्षिकर्णनासास्यगलदोर्हत्सनाभिषु ॥७॥

गुह्यपायूरुयुग्जानजङ्घापत्सु न्यसेद्वचः। हिरण्यमयी च चन्द्रा च तृतीया रजतस्त्रजा ॥८॥

हिरण्याद्या स्त्रजा त्वन्या हिरण्या च तथापरा। हिरण्यवर्णा चैताभिः कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ॥९॥

एताभिश्चतुर्थीनमोन्ताभिः। ‘एताभिर्डेनमोन्ताभिरङ्गकल्पनमीरितम्’ इति मन्त्रतन्त्रप्रकाशवचनात् ध्यानम्—

संरक्षोद्यत्सरसिजरजःपुञ्चवर्णा कराज्जैरिषाभीती कमलयुगलं धारयन्ती मनोज्ञा ।

सम्यक् शोणप्रवरनलिने संस्थिता चारुभूषा भूयाद्गूर्त्यै भुवनजननी श्रीरिवं रत्नमौलिः ॥१०॥

एकाक्षरोक्तवदायुधध्यानम्।

यजेद् देवीं पुरा प्रोक्ते यीठे आवाहा मन्त्रवित् । यजेदङ्गानि पद्माद्या लोकपाला: सहेतयः ॥११॥  
आवाहनं चासनं स्यादर्घपाद्याचमानि च । मधुपकार्भिषेकौ च वस्त्रालङ्घारचन्दनम् ॥१२॥  
पुष्पं धूपं दीपभोज्ये प्रोद्धासनमथापि च । एतानि मन्त्रवित् कुर्याद्क्षमश्चदशकेन हि ॥१३॥  
पद्माद्या पद्मवर्णान्या पद्मस्थार्दा तुरीयका । तर्पयन्ती सतृप्तान्या ज्वलन्ती सप्तमी मता ॥१४॥

स्वर्णप्राकारसंज्ञेयमष्टमी समुदाहता । इति।

अथ प्रयोगः—प्राग्वद्योगपीठन्यासाने प्रणवेन श्रीबीजेन वा प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि आनन्दक-  
र्दमचिक्लीतश्रीपुत्रेभ्य ऋषिभ्यो नमः। मुखे अनुष्ठृप्तबृहतीत्रिबुनुष्टुप्रसारपड्क्तिभ्यश्छन्दोभ्यो नमः। हृदि श्रीविभावसुभ्यां  
देवताभ्यां नमः, इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, हिरण्यमयै नमः हृदयाय नमः, चन्द्रायै नमः शिरसे स्वाहा,  
रजतस्त्रजायै नमः शिखायै वषट्, हिरण्यस्त्रजायै नमः कवचाय हुं, हिरण्यायै नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, हिरण्यवर्णायै  
नमः अख्याय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान्तःष्ठादितलान्तं करयोर्हृदादिष्ठेष्वपि विन्यस्य, शिरसि ॐहिरण्यवर्णमित्यादि०  
नमः। नेत्रयोः ॐताम्प आवह० नमः। कर्णयोः ॐ अश्वपूर्व० नमः। नासायां ॐकांसोस्मितां० नमः। मुखे  
ॐचन्द्रां० नमः। गले ॐआदित्यवर्ण० नमः। बाहोः ॐउपैतु मां० नमः। हृदि ॐक्षुत्पिपासा० नमः। नाभौ  
ॐगन्ध्यद्वारां० नमः। गुहो ॐमनसः० नमः। गुदे ॐ कर्दमेन० नमः। ऊर्वोः ॐआपः सृजन्ति० नमः। जान्वो  
ॐआर्द्रा० नमः। जङ्घयोः ॐआर्द्रा० नमः। पादयोः ॐताम्प० नमः। एवमेता ऋचः प्रणवादिनमोत्ता विन्यस्य  
ध्यानमानसपूजान्ते चतुर्द्वारयुतं चतुरस्त्रयावृतमष्टदलकमलं पूजाक्रमं निर्माय, प्राग्वत् पुरो निधायार्घ्यस्थापनादिपीठार्चनान्ते,

ॐ हिरण्यवर्णं हरिणीं सुवर्णरञ्जतस्त्रजाम् । चुन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मुमावह ॥१॥

इत्यृचा प्राग्वदावाहनीयमुद्यावाहा आवाहनादिपरमीकरणान्तं तत्त्वमुद्या विधाय,

ॐ ताम्प आवह जातवेदो लक्ष्मीपनपगमिनीम् । यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्च पुरुषानहम् ॥२॥  
श्रीरेतत्त आसनं नमः।

ॐ अश्वपूर्वा रथमध्यां हुस्तिनादप्रमोदिनीम् । श्रियं द्वेवीमुपहये श्रीर्मा द्वेवीजुषताम् ॥३॥  
श्रीरेतत्त अर्थं स्वाहा।

ॐ कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्वा ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।  
पद्मे स्थितां पद्मवर्णं तामिहोपहर्ये श्रियम् ॥४॥

श्रीरेतत्ते पाद्यं नमः।

ॐ चुन्द्रां प्रभासां युशसां ज्वलन्तीं श्रियं लोके द्वेवजुषामुदाराम् ।  
तां पद्मनैमि शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्भे नश्यतां त्वां वृणोमि ॥५॥

श्रीरेतत्ते आचमनीयं सुधा।

ॐ आदित्यवर्णं तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।  
तुस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तराश्च ब्रह्मा अलक्ष्मीः ॥६॥

श्रीरेष ते मधुपक्कः सुधा। ततः पूर्ववदाचमनीयम्।

ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह । प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्ति वृद्धिं ददातु मे ॥७॥  
श्रीरेतत्ते स्नानं नमः।

ॐ क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा अलक्ष्मीनीशयाम्यहम् । अभूतिमस्मृद्धिं च सर्वा निषुद मे गृहात् ॥८॥  
श्रीरेतत्ते वाससी नमः। ततः पूर्ववदाचमनीयम्।

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षा नित्यपृष्ठां करीषिणीम् । ईश्वरों सर्वभूतानां तामिहोर्घये श्रियम् ॥१॥  
श्रीरेतानि ते भूषणानि नमः ।

ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमंशीमहि । पशुनां रूपमन्त्रस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥१०॥  
श्रीरेष ते गन्धो नमः ।

ॐ कर्दमेन प्रजा भूता मयि संध्रम् कर्दम । श्रियं वासय मे गृहे मातरं पद्मालिनीम् ॥११॥

श्रीरेतते पुष्ट्यं वौषट् । इति पुष्ट्यान्तानुपचारानुपचर्य पूर्ववदङ्गनि संपूज्याष्टदले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन, ॐ पद्मायै नमः, ॐ पद्मवर्णायै नमः, ॐ पद्मस्थायै नमः, आद्रायै नमः, तर्पयन्तै नमः, तृप्तायै नमः, ज्वलन्तै नमः, स्वर्णप्रकारायै नमः, इति संपूज्य प्रागवल्लोकपालांस्तदायुधानि च संपूज्य,

ॐ आपः सृजन्ति सिंगधानि चिक्लीत् वसं मे गृहो नि च दुर्बां मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥  
श्रीरेष ते धूपो नमः ।

ॐ आद्रां पुष्करिणीं युष्टिं सुवर्णा हेममालिनीम् । चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥१३॥  
श्रीरेष ते दीपो नमः ।

ॐ आद्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्मालिनीम् । सूर्या हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥१४॥  
श्रीरेतते नैवेद्यं नमः । ततः पुनराचमनादिं दत्त्वा ताम्बूलादि सर्वं प्राक्पूजा प्रकरणोक्तप्रकारेण कृत्वा,  
ॐ ताम् आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।

यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् बिन्देयं पुरुषानहम् ॥१५॥

श्रीः क्षमस्व, इति विसृज्य शेषं प्रागवत्कृत्वा समापयेदिति । अत्र सर्वेषूपचारेषु प्रागवत् पूजाप्रकरणोक्तप्रकारेण  
यत्र यद्यत् कर्तव्यं तत्र तत्तत् सर्वं कुर्यात् ।

श्रीसूक्त विधान—लक्ष्मीमन्त्रों में जो श्रीसूक्त जपता है, उस अर्चक के लिये विधान को सम्यक् रूप से कहता हूँ।  
हिरण्यवर्णाम् ऋचा के ऋषि लक्ष्मी और छन्द अनुष्टुप् है। क्रमशः आनन्दकर्दम और चिक्लीत श्रीपुत्र ऋषि ताम आवह जातवेद  
और अश्वपूर्वा मन्त्र के हैं। इनका भी छन्द अनुष्टुप् है। कांसोसिता का छन्द वृहती है। चन्द्रांप्रभासा एवं आदित्य-वर्णा के छन्द  
त्रिष्टुप् हैं। उपतृ मां, क्षुत्पियासा, गन्धद्वारां दुराधर्षा, मनसः, कर्दमेन, आपः सृजन्ति, आद्रां पुष्करिणीं, आद्रां यज्ञरिणी—इन  
आठ ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप् है। ताम्म आवाह का छन्द प्रस्तारपंक्ति है। इन सबों के देवता लक्ष्मी हैं। इन पन्द्रह ऋचाओं  
का न्यास मूर्धा, आँख, कान, नाक, गला, हृदय, नाभि, गुह्य, पायु, उरु, जानु, जंघा में करे। हिरण्यमयी, चन्द्रा, रजतस्जा,  
हिरण्या आद्या, हिरण्या, अपरा, हिरण्यवर्णा से षडङ्ग न्यास करे। इनके चतुर्थी रूप के साथ नमः लगाकर न्यास करे। इनका  
ध्यान इस प्रकार करे—

संरक्षोद्यत्सरसिजरजःपुञ्जवर्णा कराजैरिषाभीती कमलयुगलं धारयन्ती मनोजा ।

सम्यक् शोणप्रवरनलिने संस्थिता चारुभूषा भूयाद्भूत्यै भुवनजननी श्रीरियं रत्नमौलिः ॥

एकाक्षरोक्त आयुध-ध्यान के समान आयुध-ध्यान करे।

पहले अष्टदल कमल बनाये। उसके बाहर चार द्वारयुक्त तीन भूपुर बनाकर पूजन यन्त्र बनाये। उसे पूर्ववत् योगपीठ  
पर स्थापित करे। ॐ श्री से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि आनन्दकर्दमचिक्लीतश्रीपुत्रेभ्यः ऋषिभ्यो नमः।  
मुखे अनुष्टुप् बृहती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् प्रस्तारपंक्तिश्छन्दोद्यो नमः। हहि श्रीविभावसुभ्यां देवतायां नमः। इसके बाद पूर्ववत् विनियोग  
कहकर षडङ्ग न्यास करे—हिरण्यवर्ण्यै नमः हृदयाय नमः। चन्द्रायै नमः शिरसे स्वाहा। रजतस्जायै नमः शिखायै वौषट्।  
हिरण्यस्जायै नमः कवचाय हुम्। हिरण्यायै नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। हिरण्यवर्णायै नमः अस्त्राय फट्।

ऋचा न्यास—शिर पर—३० हिरण्यवर्णा हरिणीं सुवर्णरजतसंजाम्। चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावहं नमः। आँखों में—३० ताम्प आवहं जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्चं पुरुषानहम् नमः। कानों में—३० अश्वपूर्वं रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्। श्रियं देवीमुपहये श्रीर्मीं देवीजुषताम् नमः। नासिका में—३० कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रा ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्। पचे स्थितां पद्मवर्णा तामिहोपहये श्रियम् नमः। मुख में—३० चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजृष्टमुदाराम्। तां पद्मनैर्भिं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीमें नशयतां त्वां वृणोमि नमः। गले में—३० आदित्यवर्णं तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः। तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तराश्च बाह्या अलक्ष्मीः नमः। भुजाओं में—३० उपैतु मां दैवसखः कर्तिर्ष्वं मणिना सह। प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्ति वृद्धिं ददातु मे नमः। हृदय में—३० क्षुतिपासामला ज्येष्ठा अलक्ष्मीनीशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वा निर्णुदं मे गृहात् नमः। नाभि में—३० गन्धद्वारां दुराधर्षा नित्यपृष्ठां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपहये श्रियम् नमः। गुह्य में—३० मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमैशीमहि। पश्चनां रूपमत्रस्य मयि श्रीः श्रियतं यशः नमः। गुदा में—३० कर्दमेन प्रजा भूता मयि संभ्रम कर्मम्। श्रियं वासय मे गृहे मातरं पद्मालिनीम् नमः। ऊर्हों में—३० आपः सूजन्ति स्त्रियानि चिकलीति वसे मे गृहे। नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुल नमः। जानुओं में—३० आर्द्रा पुष्करिणीं यष्टि सुवर्णा हेममालिनीम्। चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावहं नमः। जांघों में—३० आर्द्रा पुष्करिणीं पुष्टि पिङ्गलां पद्मालिनीम्। सूर्यो हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावहं नमः। पैरों में—३० ताम्प आवहं जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावों दास्योऽश्वान् बिन्देयं पुरुषानहम् नमः। इस ऋचान्यासे के बाद ध्यान और मानस पूजा करे। तदनन्तर अपने आगे अर्थ-स्थापन कर पीठपूजा करे।

श्रीसूक्त की प्रथम ऋचा से आवाहनी मुद्रा दिखाते हुये देवी का आवाहन कर आवाहन से परमीकरण तक की मुद्राओं को दिखाकर क्रमशः द्वितीय ऋचा से आसन, तृतीय से अर्थ्य, चतुर्थ से पाद्य, पञ्चम से आचमनीय, षष्ठि से मधुपर्क, सप्तम से स्नान, अष्टम से वस्त्र, नवम से आभूषण, दशम से गन्ध और एकादश से पृष्ठ अर्पण कर षड्ङ्गं पूजन पूर्ववत् यन्त्रमध्य में करे। अष्टदल में अपने आगे से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार पूजा करे—३० पद्मायै नमः। ३० पद्मवर्णायै नमः। ३० आद्रायै नमः। ३० तर्पयन्त्यै नमः। ३० तृप्तायै नमः। ३० ज्वलन्त्यै नमः। ३० स्वर्णप्राकारायै नमः। अष्टदल में पूजा के बाद पूर्ववत् भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्षालों और उनके आयुधों का पूजन करे। तदनन्तर बारहवीं ऋचा से धूप, तेरहवीं से दीपक, एवं चौदहवीं से नैवेद्य अर्पण के बाद पुनः आचमनीय ताम्बूलादि सब कुछ पूर्ववत् अर्पण करके पन्द्रहवीं ऋचा से श्रीः क्षमस्व कहकर विसर्जन करके शेष क्रिया पूर्ववत् करके पूजा का समापन करे।

तथा—

प्रारभ्य शुक्लप्रतिपद्यावदेकादशी भवेत् ॥१५॥

तावद् द्वादशसाहस्रं जपन् निश्चलमानसः। ब्रह्मचर्यरतः शुद्धवस्त्रदन्तादिकः सुधीः ॥१६॥

पद्मस्त्रिमधुरोपैतर्घृताक्तेन पयोन्यसा। श्रीसमिद्धिः सर्पिषा च प्रत्येकं त्रिशतं हुनेत् ॥१७॥

श्रीसमिद्धिर्बिल्वसमिद्धिः।

द्वादश्यां द्वादशैवाश्य विप्रांश्चैव तु भोजयेत्। तेन सिद्धो भवेन्मन्त्रो नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥

अत्र द्वादशसाहस्रमृचां न तु सूक्तस्य, इति संप्रदायः। एकादशभिर्दिनैः सूक्तस्य द्वादशसाहस्रावृत्तेरसंभवादशक्यत्वाच्च। तदा त्वेकादशभिर्दिनैरष्टशतावृत्तिः सूक्तस्य कार्या। तत्राष्टदिनपर्यन्तं प्रत्यहं त्रिसप्तत्यावृत्तिः सूक्तस्य कार्या, अनन्तरदिनत्रये द्वासप्तत्यावृत्तिः प्रत्यहं कार्या, तेन द्वादशसाहस्रमृचामावृत्तिर्भवतीति। तथा—

कुन्दमन्दारकुमुदमालतीपद्मकेतकाः । नन्दावर्तद्वयं जाती कहारं चम्पकं तथा ॥१९॥

रक्तोत्पलादिपुष्याणि लक्ष्म्याश्वातिप्रियाणि हि। स्नानकाले च तैः सूक्तरभिषिञ्चेत्रिशः सुधीः ॥२०॥

यावज्जपेद्रविमुखस्तर्पयेत् तावदेव तु। पूर्वोक्तविधिना सम्यक्पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥२१॥

त्रिवारं प्रत्यहं मन्त्री जुहुयाच्च यथाविधि। षण्मासं यः करोत्येवं साक्षात्लक्ष्मीपतिः स्वयम् ॥२२॥

विकचन्मात्र एवाष्टे नवनीतं प्रविष्टसेत् । मध्ये सकेसरे पद्मे सम्प्रक्षपत्रान्तरालके ॥२३॥  
 सुसमिद्देऽनले तच्च समुद्धृत्य हुनेत्सुधीः । अन्त्यचार्षोत्तरशतं जपंश्च भृगुवासरैः ॥२४॥  
 चत्वारिंशद्द्विरस्य स्याम्हालक्ष्मीरचञ्चला । तुरीयर्चा च जुहुयाद् धृतेनैकादशाहुतीः ॥२५॥  
 एवं कुर्वत एवास्य षण्मासात्प्यान्महेन्द्रिरा । प्रधानतर्पणान्ते च संतर्प्यः शक्तयस्त्वमाः ॥२६॥  
 प्रणवाद्या हृदत्ताश्च श्रीर्लक्ष्मीर्वरदायिका । विष्णुपत्नी च वसुदा स्पृष्टाप्यन्या हिरण्यतः ॥२७॥  
 स्वर्णमालिन्यपि परा ततः स्याद्रजतस्त्रजा । सुवर्णादिगृहा स्वर्णप्राकारा पश्वासिनी ॥२८॥  
 पद्महस्तप्रिया मुक्तालङ्घारा सूर्यकापरा । चन्द्रा विश्व(बिल्व)प्रियेश्वर्यो भुक्तिश्वापि प्रभुक्तियुक् ॥२९॥  
 विभूर्द्धिः समुद्धिश्च तुष्टिः पुष्टिर्वनाद्यदा । भुवनेशी च शुद्धा स्याद्योगिनी भोगदा मता ॥३०॥  
 धात्री विधात्री द्वात्रिंच्छक्तयः समुदीरिताः । द्वात्रिंशद्द्विश्च पूजान्ते मन्त्री मन्त्रैर्बलिं हरेत् ॥३१॥  
 मन्त्रैनमिमन्त्रैः, श्रीरेष ते बलिर्भिः इत्यादिभिः ।

शुद्धत प्रतिपदा से प्रारम्भ करके एकादशी तक बारह हजार ऋचा का जप करे । जपकाल में ब्रह्मचर्य रहे । शुद्ध वस्त्र धारण करे और दाँतों को शुद्ध रखे । त्रिमुधारक कमल, धृताक्त पयोन्थसा बेल की समिधा और गोधृत से क्रमशः तीन-तीन सौ आहुति प्रदान करे । द्वादशी तिथि में बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे । ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध होता है ।

बारह हजार जप एक-एक ऋचाओं का करना चाहिये, न कि सम्पूर्ण श्रीसूक्त का; क्योंकि ग्यारह दिनों में सूक्त का बारह हजार बार जप असम्भव भी है और अशक्य है । आठ दिनों तक प्रतिदिन सूक्त की ७३ आवृत्ति और आगे के तीन दिनों तक बहतर आवृत्ति करने से १२ हजार आवृत्ति ऋचा की होती है ।

श्री लक्ष्मी के अतिप्रिय पुष्ट हैं—कुन्द, मन्दार, कुमुद, मालती, कमल, केतकी, नन्दावर्तद्वय, जाती, कल्हा, चम्पा, लाल कमल । स्नान के समय उपर्युक्त सूतों से तीन-तीन बार अभिषिञ्चन करे । जब तक जप करे तब तक सूर्य की ओर मुख करके बैठे । तर्पण भी वैसे ही करे । पूर्वोक्त विधि से परमेश्वरी की पूजा सम्पूर्ण रूप से करे । प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में हवन करे । छः महीनों तक ऐसा करने से साधक साक्षात् लक्ष्मीपति हो जाता है । अविकसित कमल के केसर में तथा पतों में मक्खन भरकर प्रज्वलित अग्नि में हवन करे । अर्चा के अन्त में शुक्वार को एक सौ आठ जप करे । चालीस दिनों तक ऐसा करने से स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । चौथी ऋचा से धृत की ग्यारह आहुति प्रदान करे तो छः महीनों में महालक्ष्मी प्राप्त होती है । प्रधान तर्पण के बाद इनकी शक्तियों का इस प्रकार तर्पण करे—३० श्रियै नमः । लक्ष्यै नमः । वरदायिकायै नमः । ३० विष्णुपत्न्यै नमः । ३० वसुदायै नमः । ३० हिरण्याय नमः । ३० रूपायै नमः । ३० स्वर्णमालिन्यै नमः । ३० रजतस्त्रजायै नमः । ३० सुवर्णादिगृहाय नमः । ३० स्वर्णप्राकाराय नमः । ३० पश्वासिन्यै नमः । ३० मुक्तालंकारायै नमः । ३० सूर्यकापारायै नमः । ३० चन्द्रायै नमः । ३० विल्वप्रियेश्वर्यै नमः । ३० भुक्त्यै नमः । ३० मुक्त्यै नमः । ३० भूत्यै नमः । ३० सूर्यद्वयै नमः । ३० तुष्ट्यै नमः । ३० पुष्ट्यै नमः । ३० धनदायै नमः । ३० आद्वदायै नमः । ३० भुवनेश्वर्यै नमः । ३० शुद्धायै नमः । ३० योगिन्यै नमः । ३० भोगदायै नमः । ३० धात्र्यै नमः । ३० विधात्रीै नमः । इन बत्तीस शक्तियों की पूजा के बाद साधक नाममन्त्रों से बलि प्रदान करे ।

#### श्रीमन्त्रजापिनां नियमाः

श्रीमन्त्रजापिनां केचिदुच्यन्ते नियमा इह । तैलाभ्यक्तश्च नाशनीयान्नगनस्तोये न संविशेत् ॥३२॥  
 अशुचिन्ने स्वपेत्वापि त्वभ्यङ्गादशुचिभवेत् । लवणं तिलसम्भूतं नाशनीयात्केवलं सुधीः ॥३३॥  
 लिम्पेद्वरिं वक्त्रे नो नानृतं प्रवदेत्क्वचित् । कदाचिन्मलिनो न स्याद्बुवं नैवालिखेद्वृथा ॥३४॥  
 श्रीफलाम्बुजसद्रोणात्र मूर्धनि च धारयेत् । तथा च निर्मलाचारः शुक्लः शुद्धमना भवेत् ॥३५॥  
 शुद्धमाल्यानुलोपश्च शुद्धाभरणभूषितः । श्वेतवस्त्रपरीघानः शुद्धदेहः स्वलंकृतः ॥३६॥  
 उत्कृष्टगन्धानुलोपः शुद्धदत्तश्च सत्रखः । विष्णुभक्तश्च विमलरम्यशश्यो भवेत्सुधीः ॥३७॥

निन्दितान्वयसंभूतां दुष्टां च कलहप्रियाम् । दुष्टयोनिमनिष्ठां च रोगग्रहनिषेविताम् ॥३८॥  
 अन्यासक्तामशक्तां च कृष्णाङ्गीं सुबृहत्तनुम् । अतिहस्तां सुदीर्घा च विरस्यां भोगलोलुपाम् ॥३९॥  
 अन्यपुरुषलोलां च काकाक्षीं राजयोषितम् । रजस्वलामेकचारां योषितं न स्युशेदपि ॥४०॥  
 शान्तः शुचिस्मितो वाग्मी मधुरालापवान् भवेत् । दयार्द्रचित्त आचार्यदेवातिथ्यर्चनारतः ॥४१॥  
 गुरुगिनपूजानिरतः पुण्यशीलो दृढव्रतः । नित्यस्तायी पश्चिमाशामुखाशी शीलवान् भवेत् ॥४२॥  
 वर्णाश्रमरतः स्वीयदारतुष्टोऽल्पभाषणः । एतादृशैश्च नियमैर्युक्तो लक्ष्मीं लभेत् सः ॥४३॥ इति।

नारायणीये—

नाजिप्रेत्राक्रमेच्याब्जं तद्वीजं न च भक्षयेत् । न स्यान्मलिष्टे न छिन्न्याद्विलं भूमौ शयीत् सः ॥१॥  
 लवणामलके वर्ज्ये नागादित्यतिथौ क्रमात् । पञ्चम्यमुत्तरे च स्त्री वर्ज्या प्रत्यडमुखोऽशने ॥२॥

नागादित्यतिथी पञ्चमीसप्तम्यौ।

बिल्वैर्न मार्यदेहन्तान् त्रिसंधं प्रणमेच्य तान् । प्रातर्भक्ष्यास्तिलास्ते च धार्या लक्ष्मीं च भक्षयेत् ॥३॥  
 धारयेन्मूर्धिं तत्पुष्पमुत्तरे मुधरान्नभुक् । पायसं बिल्वबीजं च भक्षयेच्छुक्लपर्वणि ॥४॥

शुक्लपर्वणि पूर्णिमायाम् । शारदातिलके (८.१६३)—

शयीत् शुद्धशश्यायां तरुण्या सह नान्यथा । (ननो नावतरेदम्भस्तैलाभ्यक्तो न भक्षयेत् ॥१॥  
 हरिद्रां न मुखे लिम्पेन्न स्वपेदशुचिः क्वचित् । न वृथा विलिखेद्दूर्मिं न बिल्वं द्रोणमञ्जिम् ॥२॥  
 धारयेन्मूर्धिं नैवाद्याल्लोणं तैलं च केवलम् ।) मलिनो च भवेजातु कुत्सितात्रं न भक्षयेत् ॥३॥  
 द्रोणपङ्कजबिल्वानि पद्म्यां जातु न लङ्घयेत् । सहदेवीमिन्द्रवल्लीं श्रीदेवीं विष्णुवल्लभाम् ॥४॥

कन्याम्बुजप्रवालां च धारयेन्मूर्धिं सर्वदा ।

श्रीदेवी श्रीलता । विष्णुवल्लभा अपराजिता । कन्या कुमारी । प्रयोगसारे—

धान्यगोगुरुहुताशनराणां न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम् ।

नोत्तरापरशिरा न च ननो नार्दपाणिचरणः श्रियमिच्छन् ॥१॥ इति।

श्रीमन्त्रजपियों के लिये कुछ नियम यहाँ कहे जा रहे हैं। श्रीमन्त्र का जप करने वालों को तेल लगाकर स्नान नहीं करना चाहिये, नंगे होकर जल में प्रवेश नहीं करना चाहिये, कभी अपवित्रावस्था में शयन नहीं करना चाहिये। तेल लगाने से शरीर अपवित्र होता है। नमक और तिलपिष्ट का भोजन नहीं करना चाहिये। मुख में हल्दी नहीं लगाना चाहिये, कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये। कभी मलिन नहीं रहना चाहिये। भूमि पर व्यर्थ नहीं लिखना चाहिये। श्रीफल कमल द्रोण सहित शिर पर धारण नहीं करना चाहिये। निर्मल आचार और शुद्ध मन से रहे। माला-लेप शुद्ध हो, वस्त्राभूषण शुद्ध हो। क्षेत्र वस्त्र धारण करे। अलंकृत देह को शुद्ध रखे। गन्ध-अनुलेप शुद्ध हो। दाँतों और नखों को स्वच्छ रखे। विष्णुभक्त विमल रस्य शश्या पर शयन करे। निन्दित कुलोत्तम, दुष्टा, कलहप्रिया, दुष्ट योनि, अनिष्टा, रोग-ग्रह से पीड़ित, परपुरुष में कामासक्ता, कृष्णांगी, बहुत मोटी, बहुत छोटी, बहुत लम्बी, भोगलोलुपा, अन्य पुरुष को चाहने वाली, काकाक्षी, राजयोषिता, रजस्वला, एकचारा लियों का स्पर्श न करे। शान्त, पवित्र मुस्कानयुक्त, वाग्मी, मधुरभाषी बनकर रहे। दयार्द्रचित्त, आचार्य एवं देवता के अर्चन में संलग्न, गुरु एवं अग्नि की पूजा में निरत, पुण्यात्मा, दृढव्रती, नित्य स्नान करने वाला, पश्चिम तरफ मुख करके भोजन करने वाला और शीलवान बने। वर्णाश्रम में रत, अपनी पत्नी से सन्तुष्ट होकर अल्पभाषी रहे। इस प्रकार के नियमों से युक्त मनुष्य को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

नारायणीय में कहा गया है कि कमल को न सूंधे, न उसे तोड़े और न ही उसके बीजों को खाये, न उसे मले। भूमि पर गिरे बिल्व को न फोड़े। नमक और आमला पञ्चमी और सप्तमी को न खाये। पञ्चमी के बाद स्त्रीप्रसंग न करे। पश्चिम की

ओर मुख करके भोजन न करे। बेल का दतुवन न करे। तीनों सन्ध्या में बेलवृक्ष को प्रणाम करे। सबेरे जो तिल खाता है, वह अपने धन का भक्षण करता है। तिलपूष्ट को मूर्धा पर धारण करे, तब मीठा भोजन करे। शुक्ल पक्ष के पर्वों (पूर्णिमा) में खीर और बिल्वबीज खाये।

शारदादितिलक में कहा गया है कि शुद्ध शय्या पर तरुणी के साथ शयन न करे। जल में नंगे न उतरे। तेल लगाकर खाना न खाये। मुख में हल्दी न लगावे। अपवित्र अवस्था में शयन न करे। भूमि पर वर्ष्य न लिखे। बेल, द्रोण, कमल को मूर्धा पर धारण न करे। केवल नमक तेल पहले न खाये। मैल-कुचैल न रहे। कुत्सित अन्न का भक्षण न करे। द्रोण, कमल, बेल को पैर से न लाँघे। सहदेवी, इन्द्रवल्ली, श्रीलता, अपराजिता, कुमारी, कमल, मूंगा सर्वदा शिर पर धारण करे।

प्रयोगसार में कहा गया है कि धान्य, गाय, गुरु, अग्नि, मनुष्य के ऊपर शयन न करे। उत्तर तरफ शिर करके भी न सोये। श्री की इच्छा हो तो भीगे पैर और हाथ होने पर न सोये।

### श्रीसूक्तयन्त्रविधिः

यन्त्रसारे—

श्रीबीजं साध्यसंयुक्तं कर्णिकायां विलिख्य च । वस्वादित्यद्व्यष्टसंख्यपत्रेष्वपि यथाक्रमम् ॥१॥  
 श्रीसूक्तस्याप्यर्थमर्थमृचामालिख्य तद्वहिः । यः शुचिः प्रयतो भूत्वेत्यच्च मातृकयापि च ॥२॥  
 संवेष्य च धराबिम्बकोणेषु श्रियमालिखेत् । श्रीसूक्तयन्त्रमेतत्तु धारयेद्यो यथाविधिः ॥३॥  
 पुत्रारोग्यधराधान्यधनगोसस्यशालिनीम् । लब्ध्वातिबहुलां लक्ष्मीं जीवेच्च शरदां शतम् ॥४॥  
 इदमेव ताप्रपट्टे विलिख्य जप्त्वा च सिक्तसंपातम् । संस्याप्याङ्गनभूमौ लक्ष्मीमावाहा साधु संपूज्य ॥५॥  
 भूयः परिवारयुतां बलिं हरेद्वृत्तलं समीकृत्य । यस्मिन्नेव क्रियते वर्धने तत्र संपदो नित्यम् ॥६॥  
 पुत्रेदारिर्विभवैर्भृत्यैर्ष्टैर्थनैश्च धान्यैश्च । नागै रथेस्तुङ्गैर्वृष्टैर्भग्गोभिश्च संख्यया हीनैः ॥७॥

रमयन्ती गेहेऽस्मिन् विहरत्याभूतसंपलं लक्ष्मीः । इति।

अस्यार्थः—अष्टदलकमलं कृत्वा तत्कर्णिकायां श्रीबीजं साध्यसहितं विलिख्याष्टदलेषु ‘हिरण्यवर्णा’-मित्यारभ्य ‘तामिहोपहृये श्रिय’-मित्यन्तमृचामर्थमर्थमालिख्य, तद्वहिद्वदशदलकमलं कृत्वा तददलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ‘चन्द्रां प्रभासा’-मित्यारभ्य ‘मयि श्रीश्रियतां यशः’ इत्यन्तमृचामर्थमर्थमालिख्य तद्वहिः षोडशदलकमलं कृत्वा तदलेषु पूर्ववत् श्रीसूक्तस्य ऋचामर्थमर्थमालिख्य अन्त्यदलद्वये ‘यः शुचिः’ इत्यर्थद्वयं विलिख्य तद्वहिवृत्तत्रयं कृत्वा अन्तर्वीथां ‘यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्। श्रियः पञ्चदर्शर्च च श्रीकामः सततं जपेत्’ इत्य॒चा संवेष्य बहिर्वीथां मातृकया संवेष्य तद्वहिश्वतुरस्त्रं विलिख्य तत्कोणेषु श्रीबीजमालिखेत्। एतद्वन्मुक्तफलदं भवति।

यन्त्रसार में कहा गया है कि पहले अष्टदल कमल बनावे। उसकी कर्णिका में ‘श्री’ के साथ साध्य नाम लिखे। आठ दलों में ‘हिरण्यवर्णा’ से लेकर ‘तामिहोपहृये श्रियम्’ तक की चार-चार ऋचाओं के आधे-आधे भागों को लिखे। उसके बाहर द्वादश दल कमल बनावे। बारह दलों में अपने आगे के दल से प्रारम्भ करके ‘चन्द्रां प्रभासां०’ से ‘मयि श्रीः श्रियतां यशः’ तक की छः ऋचाओं के आधा-आधा भागों को लिखे। उसके बाहर षोडश दल कमल बनाकर। उसके दलों में श्रीसूक्त के ११ से १६ ऋचा के आधे-आधे भागों को लिखे। शेष दलों में ‘यः शुचिः’ के आधा-आधा भागों को लिखे। इसके बाहर तीन वृत्त बनावे। पहले अन्तराल में १६वीं ऋचा लिखे, दूसरी वीथि में मातृकाओं को लिखे। उसके बाहर चतुरस्त्र बनाकर उसके कोनों में श्रीं श्रीं लिखे।

इस श्रीसूक्त यन्त्र को जो विधिवत् धारण करता है, उसे पुत्र, आरोग्य, भूमि, धान्य, धन, गो, सस्यशालिनी भूमिसहित बहुत धन मिलता है और सौ वर्षों तक वह जीवित रहता है। इस यन्त्र को ताप्रपत्र पर लिखकर जप से मन्त्रित करके घी के सम्पात से सिक्त आंगन की भूमि पर स्थापित करके उसमें लक्ष्मी का आवाहन करके सम्यक् रूप से पूजन करके परिवारसहित

बलि देकर भूमि में स्थापित कर दे तो उसकी सम्पत्ति नित्य बढ़ती है। उसके पुत्र, स्त्री, वैभव, नौकर, इष्ट, धन, धान्य, हाथी, रथ, घोड़ा, गाय अगणित होते हैं। उसके घर में लक्ष्मी प्रलय काल तक रमण करती रहती है।

### नवरात्रे महालक्ष्मीपूजाप्रायोगः

अथाश्विननवरात्रे वेदोक्तप्रकारेरेण महालक्ष्मीपूजनं वक्ष्यते । तत्र ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय श्रीगुरुस्मरणकुण्डलि-नीध्यानाजपासंकल्पशौचदन्तधावनस्नानमन्त्रस्नानतिलकधारणवैदिकसन्ध्यासूर्यार्चिदवर्षिपितुर्पर्णानि विद्याय, स्वासने समुपविश्य भूशुद्धिदीपनाथवदनविघोत्सारणकरशुद्धिदिग्बन्धनानिन्प्राकाकात्रयशान्तिपाठभूतशुद्धिप्राण-प्रतिष्ठामातृकान्यासादियोगपीठन्यासानं विद्याय, मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा गणपतिकुलदेवताब्राह्मणादीन् नमस्कृत्य,

सुमुखश्वैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विघ्नाशो विनायकः ॥  
 धूप्रकेतुर्गुणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छुणुयादपि ॥  
 विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥  
 शुल्काम्बरधरं विष्णुं शाशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥  
 अभीप्तितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरेरपि । सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै श्रीगणाधिपतये नमः ॥  
 यत्र योगीश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्घुवा नीतिर्मतिर्म ॥  
 अनन्याश्विन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥  
 स्मृते सकलकल्प्याणभाजनं यत्र जायते । पुरुषस्तमजं नित्यं ब्रजामि शरणं हरिम् ॥  
 सर्वेषारम्भकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् । येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥  
 तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव । विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्गिष्ठियुगं स्मरामि ॥

इति मङ्गलं कृत्वा, अद्याश्विने मासि चैत्रे वा अमुकगोत्रोत्प्रोऽहमुकदेवशमर्मा श्रीमहाकालीमहा-लक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीतिपूर्वकदुरितनिवारणक्षेमस्थैर्यागुरातोयैश्वर्याभिवृद्धिकामः प्रतिपदमारभ्य नवमीपर्यन्तमिष्टदेवता-स्वरूपिण्याः श्रीमहालक्ष्म्याः षोडशोपचारपूजां तदङ्गभूतश्रीसूक्तचण्डीपाठतदशांशोमांश्च निर्विघ्नार्थं गणपतिपूजनं च करिष्ये, इति संकल्प्य ततो रक्ताक्षतादिभिरष्टदलकमलं पीठे विरच्य, तत्र—ॐ भूर्भुवःस्वर्महागणपते सिद्धिबृद्धिसहित सवाहन सायुध सपरिवार इहागच्छ,

हे हेरम्ब त्वमेहोहि अप्तिकात्म्यम्बकात्मज । सिद्धिबृद्धिप्रदे त्र्यक्षं लक्ष्लाभयितः पितः ॥  
 नागास्य नागाहार त्वं गणराजं चतुर्भुजं । भूषितः स्वायुषीर्दिव्यैः पाशाङ्गुशपरश्वैः ॥  
 आवाहये त्वां पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः । इहागत्य गृहणं त्वं पूजां कर्तुश्च रक्ष मे ॥  
 आवाहैवं गणेशानं पूजाद्रिव्यैः प्रपूजयेत्।

ॐ गुणानां त्वा गुणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमेजनि गर्भध्यात्वमेजसि गर्भध्यम् । ॐ गुणानां त्वा गुणपतिं हवामहे कर्विं कवीनामुपम श्रवस्तमम् । उद्देष्टराजं ब्रह्मणः ब्रह्मणस्पत आ नः: शृणवन्त्रूतिभिः सीद सादनम् । इति मन्त्रेणावाहनं स्वागतं पाद्यमर्थमाचमनीयं मधुपक्वं पुनराचमनीयं स्नानं वसनमाभरणानि गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलप्रदक्षिणनमस्कारान् समर्प्य, हस्तद्वये नारिकेलादिक-मर्घपत्रस्थं सपुष्टं गृहीत्वोत्थाय प्रार्थयेत्—

रक्ष रक्ष गणाध्यक्षं त्रैलोक्यरक्षकं । भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात् ॥  
 द्वैमातुर कृपासन्ध्यो षाणमातुरायजं प्रभो । वरदं त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद ॥

अनेन फलदानेन फलदोऽस्तु सदा मम ।

इति फलं दत्त्वा प्रार्थयेत्।

विष्णेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्विताय ।  
 नागाननाय श्रुतिपक्षविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥  
 भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय ।  
 विद्याधराय विकटाय च वामनाय भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ॥  
 नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः । विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मवारिणो ॥  
 भक्तिप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ।

इति नमस्कृत्य ।

त्वं विघ्नशत्रुदलनेति च सुन्दरेति भक्तप्रियेति फलदेति सुखप्रदेति ।

विद्याप्रदेत्यघरेति च ये सुवन्ति तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ॥

इति सम्यक् प्रार्थ्य, ऋत्विग्वरणं कृत्वा यवान् वापयित्वा तत्मध्ये कलशस्थापनं कुर्यात् । तद्यथा—

ॐ मुही द्यौः पृथिवी चंच इमं यज्ञं मिमिक्षतम् । पिपूतां नौ भरीभिः ॥ इति भूमिं सृष्ट्वा । ॐ स्योना पृथिवी भवानुकूरा निवेशिनी । यच्छान् नः शार्म सप्रथा । इति भूमिं प्रार्थ्य । मृत्तिके हर मे पापं० इति मृत्तिकां क्षिप्त्वा । ॐ ओषधयः संवदन्ते सोमैन् सुह राजा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि । इति यवान् क्षिप्त्वा । ॐ अजिंघ्रे कलशं मृह्या त्वा विशुन्निवन्दवः । पुनर्लर्जा निवर्तस्त्वं सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पर्यवत्ती पुनर्मा विशाताद्वयिः । इति तत्र कलशं निधाय । ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि । वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्यो वरुणस्य ऋतुसदन्यसि । वरुणस्य ऋतुसदनमसि वरुणस्य ऋतुसदनमासीदा । इति जलेन पूर्यित्वा । ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता द्वेष्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु ब्रह्मणामुहं श्रुतं धामानि सुन्त च । इति सवौषधीः स्थापयित्वा । ॐ स्योना पृथिवी नो भवा नृक्षरा निवेशिनी । यच्छान् नः शार्म सप्रथा । इति पञ्चमृत्तिका निक्षिप्त्वा । ॐ ओषधयः संवदन्ते० इति यवान् निक्षिप्त्वा । ॐ काण्डोत्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्पर्शी एवा नौ दूर्वै प्रतेनु सुहर्वेण श्रतेन च । इति दूर्वा निःक्षिप्त्वा । ॐ अश्वत्ये वो निष्ठदनं पुर्णे वो वसुतिकृता । गोभाज इक्लिलासथ यत्सनवथ् पूरुषम् । इति पञ्चपल्लवान्निःक्षिप्त्वा । ॐ या: फलनीर्या अफुला अपुष्या याश्च पुष्टिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नौ मुञ्चन्त्वाहंसः । इति फलं क्षिप्त्वा । ॐ परि वाजपतिः कुविरिग्निर्हृव्यान्यकभीत् । दधद्रलानि द्राशुषै । इति पञ्चरत्नानि निःक्षिप्त्वा । ॐ हिरण्यगुरुः समवर्तुतायै भूतस्य जातः पतिरेकं आसीत् । स दोधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै द्रेवाय हविषा विधेम । इति हिरण्यं दत्त्वा । ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः । तन्यीरासः कुवय उत्तर्यन्ति स्वाध्यो मन्त्सा देवयन्तः । इति रक्तवक्षेण सूत्रेण वावेष्य । ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षा नित्यपुष्टां करुषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तमिहोपह्ये श्रियम् । इति गन्धं दत्त्वा । ॐ पूर्णादिर्विं परायत सुपूर्णा पुनरापत्त । वक्षेण विक्रीणावहा इष्मूर्जं शतक्रतो । इत्युपरि धान्यपूर्णपात्रं विन्यस्य तदुपरि नारिकेलफलं संस्थाप्य । ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानसुतदाशास्ते यजमानो ह्रविर्भिः । अहेळमानो वरुणो ह ब्रह्मुरु शास्त्रमान् आयुः प्रमोषीः । इति मन्त्रेण वरुणावाहनं कृत्वा तेनैव मन्त्रेण षोडशोपचारैः पूजयेत् ।

आश्विन नवरात्र में वेदोत्तम प्रकार से महालक्ष्मी पूजन—ब्राह्म मुहूर्त में उठकर श्रीगुरु का स्मरण, कुण्डलिनी ध्यान, अजपा सङ्कल्प, शौच, दन्तधावन, स्नान, मन्त्रस्नान, तिलकधारण, वैदिक सन्ध्या, तान्त्रिक सन्ध्या, सूर्यार्थ, देव-ऋषि-पितृ तर्पणादि करके आसन पर बैठकर भूशुद्धि, दीपनाथ-वन्दन, विघ्नोत्सारण, करशुद्धि, दिग्बन्ध, अग्निप्राकारत्रय, शान्तिपाठ, भूत-शुद्धि, प्राण-प्रतिष्ठा, मातृका न्यास, योगपीठ न्यास करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके गणपति, कुलदेवता, ब्राह्मणादि को नमस्कार करके मंगल पाठ करे—

सुमुखश्वैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥

धूध्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥

शुल्काम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविज्ञोपशान्तये॥  
 अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरैरपि। सर्वविज्ञच्छदे तत्मै श्रीगणाधिपतये नमः॥  
 यत्र योगीश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिश्वरा नीतिर्मतिर्मम॥  
 अनन्याश्विन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाय्हम्॥  
 स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥  
 सर्वेषावरम्भकायेषु नास्ति तेषाममङ्गलम्। येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः॥  
 तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्गिर्युगं स्मरामि॥

इस मंगल पाठ के बाद महालक्ष्मीपूजन-हेतु संकल्प करे। संकल्प के बाद लाल अक्षत से अष्टदल कमल पीठ बनावे। उसमें 'ॐ भूर्भुवः स्वः महागणपते सिद्धिबुद्धिसहित सवाहन सायुध सपरिवार इहागच्छ' कहकर निम्नलिखित श्लोकों का पाठ करे—

हे हेरेम्ब त्वमेहोहि अर्मिकात्यम्बकात्पञ्ज। सिद्धिबुद्धिप्रदे त्रक्ष लक्ष्मलाभयितः पितः॥  
 नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज। भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरक्षधैः॥  
 आवाहये त्वां पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः। इहागत्य गृहाण त्वं पूजां कर्तुश्च रक्ष मे॥

इस प्रकार आवाहन करके गणेश जी की पूजाद्वयों से पूजा करे। ३५ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्। ३५ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमं श्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणः ब्रह्मणस्य आ नः शृणवत्रौतिभिः सोद सादनम्—इस मन्त्र से आवाहन, स्वागत, पाद्य, अर्च्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नान, वक्ष, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, नमस्कार का समर्पण करे। दोनों हाथों में नारियल आदि के अर्च्य पात्र में जल-फूल लेकर प्रार्थना करे—

रक्ष रक्ष गणाध्यक्षं त्रैलोक्यरक्षकं। भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्॥  
 द्वैमातुर कृपासिन्यो षाण्मातुराग्रहं प्रभो। वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद्॥  
 अनेन फलदानेन फलदोऽस्तु सदा मम।

तदनन्तर निम्न श्लोकों को पढ़ते हुये नमस्कार करे—

विद्येश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।  
 नागाननाय श्रुतिपक्षविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥  
 भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय।  
 विद्याधराय विकटाय च वामनाय भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते॥  
 नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः। विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे॥  
 भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक।

इस प्रकार से नमस्कार के बाद निम्न श्लोक का पाठ करे—

त्वं विघ्नशमुदलनेति च सुन्दरेति भक्तप्रियेति फलदेति सुखप्रदेति।  
 विद्याप्रदेत्यघरेति च ये स्तुवन्ति तेभ्यो गणेश वरदे भव नित्यमेव॥

इस प्रकार सम्यक् प्रार्थना करके ऋत्विकों का वरण करके यव वपन कर उसके मध्य में कलश स्थापित करे। कलश-स्थापन की विधि इस प्रकार है—

३५ मही द्यौः पृथिवी चैन इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमधिः—एद्वकर भूमि का स्पर्श करे।  
 ३५ स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छां नः शर्म सप्रथा—एद्वकर भूमि की प्रार्थना करें।  
 'मृतिके हर मे पाप०' से मिट्टी डाले।

ॐ ओषधयः संवदन्ते सोमैन् सह राजा॑। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि—से यव मिलावे।

ॐ आजिग्रे कलशं महा॒ त्वा॑ विशन्निवन्दवः। पुनरुर्जा॑ निवर्तस्व सा॒ नः॑ सहस्रं धृद्वोरुधारा॑ पर्यस्वती पुनर्मा॑  
विशताद्रयिः—से उस पर कलश रखे।

ॐ वरुणस्य स्कम्भसज्जनीस्थो॑ वरुणस्य ऋतसदन्यसि। वरुणस्य ऋतसदनमसि॑ वरुणस्य  
ऋतसदनमासीद—से कलश में जल भरे।

ॐ या ओषधीः पूर्वा॑ जाता देवेष्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु ब्रह्मामहं शतं धामानि॑ सप्त च—से कलश में सर्वोषधि डाले।

ॐ स्योना॑ पृथिवी नो भवा॑ नृक्षरा॑ निवेशनी॑। यच्छां नः॑ शर्म सप्रथा—से पञ्चमृतिका डाले।

ॐ ओषधयः संवदन्ते॑—से यव डाले।

ॐ काण्डात्काण्डात् प्रोहन्ती॑ परुषः परुषस्परि। एवा॑ नो॑ दूरे॑ प्रतनु॑ सहस्रैण॑ शतेन॑ च—से दूर्वा॑ डाले।

ॐ अश्वये॑ वो॑ निषदनं॑ पर्णे॑ वो॑ वसतिष्ठता॑। गोभाज॑ इत्किलासथ॑ यत्सनवथ॑ पूरुषम्—से पञ्चपल्लव डाले।

ॐ या॑ फलिनीर्या॑ अंफला॑ अपुष्मा॑ याश्च॑ पुष्पिणी॑। बृहस्पतिप्रसूतास्ता॑ नो॑ मुञ्चन्त्वंहंसः—से फल डाले।

ॐ परिवाजेपतिः॑ कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दध्रदत्नानि॑ दाशुषे—से पञ्चरत्न डाले।

ॐ हिरण्यगर्भः॑ समर्वतात्रे॑ भृत्यस्य॑ जातः॑ पतिरेक॑ आसीत्। स दंधार॑ पृथिवीं॑ द्यामुते॑ मां॑ कर्मै॑ देवाय॑ हविषा॑  
विधेम—से सोना डाले।

ॐ युवा॑ सुवासा॑: परिवीत॑ आगात्स॑ उ॑ श्रेयान्॑ भवति॑ जायमानः। तन्धीरासः॑ कवय॑ उत्रयन्ति॑ स्वाध्यो॑ मनसा॑  
देवयन्तः—से लालवन्न और॑ सूत॑ लपेटे।

ॐ गन्धेद्वारां॑ दुराधर्षा॑ नित्यपुष्टां॑ करीषिणीम्। ईश्वरी॑ सर्वभूतानां॑ तामिहोपहृये॑ श्रियम्—से गन्ध डाले।

ॐ पूर्णदर्वि॑ परायत॑ सुपूर्णा॑ पुनरापता॑। वस्त्रेण॑ विक्रीणावहा॑ इष्मूर्ज॑ शतक्रतो॑ धान्य—से पूर्ण॑ पात्र॑ के ऊपर  
नारियल रखे।

ॐ तत्त्वा॑ यामि॑ ब्रह्मणा॑ वन्दमानस्तदाशास्ते॑ यजमानो॑ हविर्णिः। अहेळमानो॑ वरुणोह॑ बोध्युरु॑ राँसमान॑ आयुः॑ प्रमोषीः—॑  
वरुण का आवाहन कर इसी मन्त्र से षोडशोपचार पूजन करे।

**ततः—**  
ब्रह्माङ्गोदरतीर्थानि॑ करैः॑ स्पृष्टानि॑ ते॑ रवे। तेन॑ सत्येन॑ देवेश॑ तीर्थ॑ देहि॑ दिवाकर॑॥

इति॑ क्रों॑ इत्यङ्गुशमुद्रया॑ च॑ रविमण्डलात्॑ तीर्थान्याकृत्य॑,

गङ्गे॑ च॑ यमुने॑ चैव॑ गोदावरि॑ सरस्वति॑। नमदे॑ सिन्धुकावेरि॑ जलेऽस्मिन्॑ सन्निधिं॑ कुरु॑॥

सर्वे॑ समुद्राः॑ सरितस्तीर्थानि॑ जलदा॑ नदा॑। आयान्तु॑ लक्ष्मीपूजार्थ॑ दुरितक्षयकारकाः॑॥

इत्यावाह॑, चन्द्रनाक्षतपुष्माल्यादिभिः॑ कलशमलंकृत्य॑,

ॐ कलशस्य॑ मुखे॑ विष्णुः॑ कण्ठे॑ स्त्रः॑ समाश्रितः। मूले॑ तु॑ संस्थितो॑ ब्रह्मा॑ मध्ये॑ मातृगणाः॑ स्थिताः॑॥

कुक्षौ॑ तु॑ सागराः॑ सर्वे॑ सप्तद्वीपा॑ वसुन्धरा॑। ऋषवेदोऽथ॑ यजुर्वेदः॑ सामवेदो॑ हृथर्वणः॑॥

अङ्गैश्च॑ सहिताः॑ सर्वे॑ कलशं॑ तु॑ समाश्रिताः॑।

इति॑ कलशमभिमन्त्र्य॑,

देवदानवसंवादे॑ मध्यमाने॑ महोदधौ॑। उत्पत्रोऽसि॑ तदा॑ कुम्भ॑ विधृतो॑ विष्णुना॑ स्वयम्॥

त्वत्तोये॑ सर्वतीर्थानि॑ देवाः॑ सर्वे॑ त्वयि॑ स्थिताः॑। त्वयि॑ तिष्ठन्ति॑ भूतानि॑ त्वयि॑ प्राणाः॑ प्रतिष्ठिताः॑॥

ॐ शिवः॑ स्वयं॑ त्वमेवासि॑ विष्णुस्त्वं॑ च॑ प्रजापतिः। आदित्या॑ वसवो॑ रुद्रा॑ विश्वेदेवाः॑ सपैतृकाः॑॥

त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः । त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्धव ॥  
सांनिध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ।

इति प्रार्थयेत् ।

तदनन्तर 'ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि कर्तृः स्पृष्टानि ते रवे । तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकरं कहकर अंकुश मुदा दिखाते हुये सूर्यमण्डल से तीर्थों को लाकर 'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धुकावरि जलेऽस्मिन् सत्रिधिं कुरु । सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु लक्ष्मीपूजार्थं दुरितक्षयकाराकाः' से तीर्थावाहन करके चन्दन-अक्षत-पुष्ट-माला आदि से कलश को अलंकृत करके '३० कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः । मूले तु संस्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्थिताः । कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुभ्याः । ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो हाथर्वणः । अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः' मन्त्र से कलश को अभिमन्त्रित कर निम मन्त्र से कलश की प्रार्थना करे—

देवदानवसंवादे मथ्यामाने महोदधौ । उत्पत्रोऽसि तदा कुम्भं विघृतो विष्णुना स्वयम् ॥

त्वतोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः । त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥

शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः । आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥

त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः । त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्धव ॥

सांनिध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ।

इत्यं कलशस्थापनं विधाय मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, ३० अस्य श्रीसूक्तस्य, शिरसि आनन्दकर्दम-चिक्लीतश्रीपुत्रेभ्य ऋषिभ्यो नमः । हृदि श्रीविभावसुभ्यां देवताभ्यां नमः । मुखे अनुष्टुब्खृतीत्रिष्टुब्खनुष्टुप्रस्तार-पद्मक्तिभ्यश्छदोभ्यो नमः इति विन्यस्य मम सकुटुब्खस्य क्षेमस्त्वैर्यायुरारोग्याभिवृद्धये विनियोगः, इति कृताङ्गितरुक्तव्या, ३० हिरण्यायै नमो हृदयाय नमः । ३० चन्द्रायै नमः शिरसे स्वाहा । ३० रजतस्त्रजायै नमः शिखायै वृष्ट । ३० हिरण्यस्त्रजायै नमः कवचाय हुं । ३० हिरण्यायै नमः नेत्रप्रयाय वौषट् । ३० हिरण्यवरण्यै नमः अस्त्राय फट् इति षड्ङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्हृदयादिषड्ङ्गेष्वपि न्यसेत् शिरसि हिरण्यवर्णा० । नेत्रयोः ताम्म आवह० । कर्णयोः अश्वपूर्वा० । नासिकायां कांसेस्मितां० । मुखे चन्द्रां प्रभाश० । गले आदित्यवर्ण० । बाह्योः उपैतु मां० । हृदि क्षुत्पिणासा० । नाभौ गन्धद्वारां० । गुह्ये मनसः काम० । गुदे कर्दमेन० । ऊर्वाः आपः सृजन्ति० । जान्वोः आद्रा० । जङ्घयोः आद्रा० । पादयो ताम्म आवह० । इति विन्यस्य, श्रांत्रिंश्चूत्रैश्रोऽपि इत्यपि षड्ङ्गानि विन्यस्य प्रागुक्तरीत्या स्वहत्कपले देवीं ध्यायेत् ।

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा करकमलधृतेषाभीतियुग्माम्बुजा च ।

मणिमुकुटविचित्रालङ्कृता कल्पजातैः भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये वः ॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैराधाध्यादिस्थापनात्ते 'ॐहींहसः सोऽहं स्वाहा' इति मन्त्रेणात्मपूजां विधाय पीठपूजामारभेत् । ३० मण्डूकाय नमः । ३० कालानिसृद्राय नमः । एवं ३० मूलप्रकृत्यै० । आधारशक्त्यै० कूर्माय०, अनन्ताय०, वराहाय०, पृथिव्यै०, सुधासमुद्राय०, श्रेतद्वीपाय०, स्वर्णपर्वताय०, नन्दनोद्यानाय०, कल्पवृक्षवनाय०, स्वर्णप्राकाराय०, करुणतोयपरिखायै०, स्वर्णमण्डपाय नमः । पूर्वद्वारे—द्वारश्रियै नमः, इन्द्राय, ब्रह्मणे०, सत्त्वाय०, ऋग्वेदाय०, आत्मने०, कालतत्त्वाय०, अम्बिकायै०, इन्द्राण्यै०, वेदमात्रे०, शैलपुत्र्यै०, ब्रह्मचारिण्यै०, चण्ड-घण्टायै०, स्कन्दमात्रे० कात्यायन्यै०, कालरात्र्यै०, गौर्यै नमः । ततो दक्षिणद्वारे—द्वारश्रियै नमः । यमाय०, शान्तायै०, सिद्धायै०, क्षमायै० विष्णवे०, यजुर्वेदाय०, रजसे०, विद्यातत्त्वाय०, जगन्मात्रे०, मायायै०, शिवायै०, शान्त्यै०, प्रभायै०, हींकारायै०, क्लींकारायै०, मायाशक्त्यै०, वीरायै०, प्रवीरायै०, अन्तरात्मने०, दण्डधराय नमः । ततः पश्चिमद्वारे—द्वारश्रियै नमः, वरुणाय०, रुद्राय०, सामवेदाय०, तमसे०, आदित्याय०, वारुण्यै०, शंखायुधायै०, हंसवाहिन्यै०, जगज्जीवायै०, जगद्वीजायै०, षोडशकलायै०, पूर्णकलशाय०, चित्रिण्यै०,

चित्रमालायै०, चित्रायै०, चामुण्डायै० नमः। तत उत्तरद्वारे—द्वारश्रियै० नमः, कपालधारिण्यै०, भक्तवत्सलायै०, हूँकारायै०, क्षंकारायै०, विमलरूपायै०, ईशानाय०, पार्वत्यै०, ब्रह्मण०, अर्थवर्णवेदाय०, धात्र०, ज्ञोत्सायै०, कल्याण्यै०, शर्वाण्यै०, चन्द्रकलायै०, चन्द्रवदनायै०, विभूत्यै०, परमविभूत्यै०, भस्मधारिण्यै०, पावनायै०, गङ्गायै०, भागीरथ्यै०, गोदावर्यै०, प्रवरायै०, प्रणतायै०, कांकारायै०, कौंकारायै०, कौंकारायै०, सर्वबीजात्मने०, बीजप्रवाहिन्यै० नमः। ततो मध्ये—रत्नवेदिकायै० नमः, रत्नसिंहासनाय०, धर्माय०, ज्ञानाय, वैराग्याय०, ऐश्वर्याय०, अर्धमाय०, अज्ञानाय०, अवैराग्याय०, अनैश्वर्याय०, श्वेतच्छत्राय०, चिच्छक्त्यै०, मायाशक्त्यै०, आनन्दकन्दाय०, संविनालाय०, प्रकृतिमयप्रेभ्यो०, विकारमयकेसरेभ्यो०, पञ्चाशद्विनीजान्यसर्वतत्त्वस्तपायै० कर्णिकायै०, अं अर्कमण्डलाय०, मं वहिमण्डलाय०, सं सूममण्डलाय०, रं रजसे०, तं तमसे०, आं आत्मने०, अं अन्तरात्मने०, पं परमात्मने०, हीं ज्ञानात्मने, आत्मतत्त्वाय०, मायातत्त्वाय०, विद्यातत्त्वाय०, कलातत्त्वाय०, परतत्त्वाय नमः। इति संपूज्य, केसरेषु पूर्वार्घदिक्षु मध्ये च—३० विभूत्यै० नमः, उन्नत्यै०, कान्त्यै०, हृष्ट्यै०, कीर्त्यै०, सन्त्रत्यै०, व्युष्ट्यै०, उत्कृष्ट्यै०, मन्त्रै०, ऋद्धृत्यै०, इति संपूज्य, ३० श्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः। इति समस्तपीठं संपूज्य मूलमन्त्रमुच्चार्य ‘श्रीतक्षीभूर्ति परिकल्पयामि नमः’ इति कलशोपरि मूर्ति परिकल्प्य घटामसृक्करां लक्ष्मीं दुर्गा देवीं व्यवस्थिताम्। स्थापयामि महादेवीं सर्वसौभाग्यदायिनीम्।

इति संस्थाप्य स्वहत्कमले प्रावद् देवीं ध्यात्वा देव्यास्तेजो दीपाद् दीपान्तरमिव वहन्रसापुटाध्वना पुष्पा-  
ञ्जलावानीय—

एहोहि \* देवदेवेशि परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं च इहावह॥  
महापद्मवनातःस्ये कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेहोहि परमेश्वरि॥

इत्यावाहू, आवाहनादिदशमुद्ग्राः प्रदर्शय ध्यायेत्।  
लक्ष्मीं क्षीरसमुद्राजतनयां श्रीरङ्गधामेश्वरीं दासीभूतसमस्तदेवनिकरां लोकैकदीपाङ्गुराम्।  
श्रीमन्मन्दकटाक्षलब्ध्विभवब्रह्मेन्द्रगङ्गाधरां तां त्रैलोक्यकुद्बिनी सरसिजां(गां) वन्दे मुकुन्दप्रियाम्॥

इति ध्यात्वा मूलमन्त्रेण दीपिन्या मालिन्यार्थोदेकेन च त्रिवारं प्रोक्षियत्वा विधाय पुष्पाङ्गुलिं गृहीत्वा—  
३० दुर्गे कात्यायनि देवि शाभ्विश शङ्खरप्रिये। मया भक्त्या कृतां पूजां गृहाण त्वं महेश्वरि॥  
हिरण्यवर्णा०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्म्यै० नमः, आवाहनं समर्पयामि इति दद्यात्॥

इस प्रकार कलश को स्थापित करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके शिरसि आनन्दकर्दमचिक्लीतश्रीपुत्रेभ्यो नमः। हहि श्रीविभावसुभ्यां देवताभ्यां नमः। मुखे अनुष्टुप् बृहती प्रिष्ठुप्, अनुष्टुप्, प्रस्तार पंक्तिभ्यश्छन्दोभ्यो नमः से न्यास करके ‘मम सुकुटुम्बस्य क्षेम-स्थर्य-आयु-आरोग्य-अभिवृद्धये विनियोगः’ कहकर षड्ङ न्यास करे—३० हिरण्यायै० नमः हृदयाय नमः, ३० चन्द्रायै० नमः शिरसि स्वाहा, ३० रजतस्तजायै० नमः शिखायै० वषट्, ३० हिरण्यस्तजायै० नमः कवचाय हुं, ३० हिरण्यायै० नमः नेत्रयाय वौषट्, ३० हिरण्यवर्णायै० नमः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार षड्ङ मन्त्रों से करन्यास भी करे। तदनन्तर शिरसि हिरण्यवर्णा०। नेत्रयोः ताम्म आवह०। कणीयोः अश्वर्वा० नासिकायां कांसोस्मिता० मुखे चन्द्रां प्रभासां०। गले आदित्यवर्णें, बाहोः उपैतु पाऽ०। हहि क्षुत्पितासाऽ०, नाभौ गन्धद्वाराऽ०, गुह्ये मनसः कामाकूति० गुदे कर्मेन०, ऊर्वोः आपः सुजन्ति, जान्तोः आर्द्रा०, जघयोः आद्रा०, पादयोः ताम्म आवह०, से न्यास करे। श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः से भी षड्ङ न्यास करके पूर्वोक्त रीति से अपने हृदय में देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

अरुणकमलसंस्था तत्रजःपुञ्जवर्णा करकमलधृतेष्टभीतियुग्माम्बुजा च।  
मणिमुकुटविचित्रालङ्कृता कल्पजातैः भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये वः॥

ध्यान के बाद मानसोपचार पूजन करे। अर्ध्य स्थापन करे। ‘श्रीं हीं हंसः मोऽहं स्वाहा’ से आत्मपूजा करके पीठपूजा इस प्रकार करे—३० मण्डूकाय नमः, ३० कालाग्निरुद्राय नमः, ३० मूलप्रकृत्यै० नमः, आधारशक्त्यै० नमः, कूर्माय नमः,

अनन्ताय नमः, वराहाय नमः, पृथिव्यै नमः, सुधासमुद्राय नमः, शेतद्वीपाय नमः, स्वर्णपर्वताय नमः, नन्दनोद्यानाय नमः, कल्पवृक्षवनाय नमः, स्वर्णश्रीकराय नमः, करुणतोयपरिख्यै नमः, स्वर्णमण्डपाय नमः। पूर्व द्वार पर इनका पूजन करे—द्वारश्रियै नमः, इन्द्राय नमः, ब्रह्मणे नमः, सत्त्वाय नमः, ऋग्वेदाय नमः, आत्मने नमः, कालतत्त्वाय नमः, अस्तिकायै नमः, इन्द्राण्यै नमः, वेदमात्रेनमः, शैलपुत्र्यै नमः, ब्रह्मचारिण्यै नमः, चण्डघटायै नमः, स्कन्दमात्रे नमः, कात्यायन्यै नमः, कालरात्रै नमः, गौर्यै नमः। तदनन्तर दक्षिण द्वार पर इस प्रकार पूजन करे—द्वारश्रियै नमः। यमय नमः, शान्तायै नमः, सिद्धायै नमः, क्षमायै नमः, विष्णवे नमः, यजुर्वेदाय नमः, रजसे नमः, विद्यातत्त्वाय नमः, जगन्मात्रे नमः, मायायै नमः, शिवायै नमः, शान्त्यै नमः, प्रभायै नमः, हींकारायै नमः, क्लीकारायै नमः, मायाशक्त्यै नमः, वीरायै नमः, प्रवीरायै नमः, अन्तरात्मने नमः, दण्डधाराय नमः। तदनन्तर पश्चिम द्वार पर इस प्रकार पूजन करे—द्वारश्रियै नमः, वरुणाय नमः, रुद्राय नमः, सामवेदाय नमः, तमसे नमः, आदित्याय नमः, वारुण्यै नमः, शंखायुधायै नमः, हंसवाहिन्यै नमः, जगज्जीवायै नमः, जगद्वीजायै नमः, षोडशकलायै नमः, पूर्णकलशाय नमः, चित्रिण्यै नमः, चित्रमालायै नमः, चित्रायै नमः, चामुण्डायै नमः। तदनन्तर उत्तर द्वार पर इस प्रकार पूजन करे—द्वारश्रियै नमः, कपालधारिण्यै नमः, भक्तवत्सलायै नमः, हूँकारायै नमः, क्षांकारायै नमः, विमलरूपायै नमः, ईशानाय नमः, पार्वत्यै नमः, ब्रह्मणे नमः, अर्थर्घनवेदाय नमः, धात्रे नमः, ज्योत्स्नायै नमः, कल्याण्यै नमः, शर्वाण्यै नमः, चन्द्रकलायै नमः, चन्द्रवदनायै नमः, विभूत्यै नमः, परमविभूत्यै नमः, भस्मधारिण्यै नमः, पावनायै नमः, गङ्गायै नमः, भागीरथ्यै नमः, गोदावर्यै नमः, प्रवरायै नमः, प्रणतायै नमः, क्रांकारायै नमः, क्रीकारायै नमः, सर्वबीजात्मने नमः, बीजप्रवाहिन्यै नमः। तदनन्तर मध्य में इनका पूजन करे—रत्नवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय नमः, धर्माय नमः, ज्ञानाय नमः, वैराग्याय नमः, ऐश्वर्याय नमः, अर्धर्माय नमः, अज्ञानाय नमः, अवैराग्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः, श्वेतच्छवाय नमः, चिच्छक्त्यै नमः, मायाशक्त्यै नमः, आनन्दकन्दाय नमः, संवित्रालाय नमः, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, विकारमयकेसरेभ्यो नमः, पञ्चाशद्वर्ण-बीजाद्वयसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः, अं अर्कमण्डलाय नमः, मं वहिमण्डलाय नमः, सं सोममण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तंसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, अं परमात्मने नमः, हीं ज्ञानात्मने, आत्मतत्त्वाय नमः, मायातत्त्वाय नमः, विद्यातत्त्वाय नमः, कलातत्त्वाय नमः, परतत्त्वाय नमः। इस प्रकार पूजन करके केसरों में, पूर्वांि आने दिशाओं में एवं मध्य में ॐ विभूत्यै नमः, उत्तरायै नमः, कान्त्यै नमः, हृष्ट्यै नमः, कीर्त्यै नमः, सक्रत्यै नमः, व्युष्ट्यै नमः, उत्कृष्ट्यै नमः, मत्यै नमः, ऋद्ध्यै नमः, इस प्रकार पूजन कर 'ॐ श्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से समस्त पीठ का पूजन कर मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'श्रीलक्ष्मीमूर्ति परिकल्पयामि नमः' मन्त्र से समस्त पीठ की पूजा करके मूल मन्त्र बोलकर 'श्रीलक्ष्मीमूर्ति परिकल्पयामि नमः' से कलश पर मूर्ति कल्पित करके निम्न मन्त्र के द्वारा उसे स्थापित करे—

स्थापयामि महादेवीं सर्वसौभाग्यदायिनीम्।

तदनन्तर हृदय कमल में पूर्ववत् देवी का ध्यान करके देवी के तेज को दीप से दीप जलाने की तरह प्रवहमान नासापुट से पुष्पाञ्जलि में लाकर निम्न मन्त्र से उनका आवाहन करे—

एहोहि देवदेवेशि परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्तं च इहावह॥

महापद्मवानात्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेहोहि परमेश्वरि॥

इस प्रकार आवाहन करके आवाहानादि दश मुद्रा दिव्याकार इस प्रकार ध्यान करे—

लक्ष्मीं क्षीरसमुद्राजतन्यां श्रीरङ्गधामेश्वरीं दासीभूतसमस्तदेवनिकरां लोकैकीपाङ्कुराम्।

श्रीमन्मन्दकटाक्षलब्धिभवब्रह्मोन्द्रगङ्गाधरां तां त्रैलोक्यकुटुम्बिनीं सरसिजां(गां) वन्दे मुकुर्दप्रियाम्॥

ध्यान करके मूल मन्त्र, दीपिनी, मालिनी और अर्द्ध जल से तीन बार प्रोक्षण करके प्राण-प्रतिष्ठा करके हाथों में पुष्पाञ्जलि लेकर ॐ दुर्गे कात्यायनि देवि शास्त्रि शङ्कुप्रिये। मया भक्त्या कृतां पूजां गृहण त्वं महेश्वरि। हिरण्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, श्रीमहालक्ष्म्य० नमः, आवाहनं समर्पयामि' कहकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे।

ॐ तपकाञ्जनवर्णभिं मुक्तामणिविराजितम्। अमलं कमलं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम्॥  
ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नामे देव्य०, श्रीमहासरस्वत्यै नमः श्रीरेतत्ते आसनं नमः।

स्वागतं कुशलं पृच्छे महादेव्य महेश्वरि । सुस्वागतं त्वया भद्रे कृपया भक्तवत्सले ॥

ताम्प आवह०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, महासरस्वत्ये नमः श्रीरेतते स्वागतं नमः ।

ॐ गङ्गादितीर्थसंभूतं गन्धपुष्पाक्षतेर्युतम् । पाद्यं ददाप्यहं तुभ्यं नमस्ते कमलालये ॥

अश्वपूर्वा०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, श्रीरेतते पाद्यं नमः ।

अष्टगन्धसमायुक्तं स्वर्णपात्रे प्रपूरितम् । अर्च्य ददाप्यहं तुभ्यं प्रसीद त्वं सुरेश्वरि ॥

कांसोस्मितां०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, लोकमात्रे नमः श्रीरेष तेऽर्थः स्वाहा ।

ॐ सर्वलोकस्य या माता या माता लोकपाविनी । ददाम्याचमनं तस्यै महालक्ष्म्ये प्रयत्नतः ॥

चन्द्रं प्रभासां०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, वरदायै नमः श्रीरेतते आचमनीयं सुधा ।

कपिलादधि कुन्देन्दुधवलं मधुसंयुतम् । स्वर्णपात्रस्थितं देवि मधुपक्कं गृहण मे ॥

आदित्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, भक्तप्रियायै नमः, श्रीरेष ते मधुपक्कः सुधा ।

ॐ कर्पूरवासितं वारि निर्मलं शुद्धिहेतुकम् । गृहण परमेश्वानि पुनराचमनीयकम् ॥

आदित्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, भक्तप्रियायै नमः श्रीरेतते आचमनीयं नमः ।

ॐ एहि पादुकया देवि स्नानार्थं स्नानमण्डपम् । स्नानशाटीं गृहीत्वा तु स्नानासनसमागता ॥

सुगन्धितैलगव्यादिपञ्चामृतजलादिकम् । सुगन्धिश्लक्षणचूर्णं च तथोद्घर्तनकादिकम् ॥

नानातीर्थोद्भवं तोयं स्नानीयं च गृहण मे ।

आदित्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, भक्तप्रियायै नमः, श्रीरेतते स्नानीयं नमः । आपो हि छेति मलापकर्षणम् ।

ॐ पयो दधि धृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् । पञ्चामृतं मयानीतं गृहण परमेश्वरि ॥

आदित्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, भद्रायै नमः, श्रीरेतते पञ्चामृतस्नानं नमः । पुरुषसूक्तेन शुद्धोदकेन स्नानम् । जातवेदसे०, इति पुनराचमनीयम् ।

ॐ दिव्याम्बरं नवं श्रेतं क्षीमं चातिमनोहरम् । त्रैलोक्यजननि देवि दीयमानं गृहण मे ॥

उपेतु मां०, जातवेदसे, नमो देव्य०, श्रीलक्ष्म्ये नमः एतते वस्त्रयुग्मं नमः ।

एहि देवि विभूषार्थं नेपथ्यागारमुत्तमम् । विभूषासनमास्थाय तथादर्शं विलोक्य च ॥

केशप्रसाधनं कृत्वा भूषणान्यङ्गसात् कुरु । रलकङ्गनवैदूर्यमुक्ताहारादिकानि च ॥

सुप्रसन्ने महालक्ष्मि भूषणानि गृहण मे ।

क्षुत्पिपासा०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, हिरण्यायै नमः श्रीरेतानि ते भूषणानि नमः ।

एहि देवि निजं स्थानं सिंहासनमनुत्तमम् । पूजाचक्रं समास्थाय गन्धं देव्यङ्गसात् कुरु ॥

चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमादैः समन्वितम् । कस्तूरीरोचनायुतं गन्धं देवि गृहण मे ॥

गन्धद्वारां०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, श्रीरेष ते गन्धो नमः ।

शुद्धमुक्ताफलाभैस्तैरक्षतैः शशिसंनिभैः । सर्वाधिपे महालक्ष्मीर्दीयत्यामि सुभक्तिः ॥

जातवेदसे०, नमो देव्य०, देव्यै नमः श्रीरेतते अक्षताः नमः ।

हरिद्रां च मयानीतं देवि कल्याणदायिनि । सौभाग्यवर्धनां नित्यं गृहण हरिवल्लभे ॥

जातवेदसे०, नमो देव्य०, हरिप्रियायै नमः श्रीरेतते हारिद्रं नमः ।

कुङ्गुमं शोभनं दिव्यं सर्वदा सर्वदा मङ्गलप्रदम् । मयानीतं महादेवि तु भ्यं दास्यामि सुन्दरि ॥

जातवेदसे०, नमो देव्यै०, पङ्गलायै नमः । श्रीरेतते कुङ्गुमं नमः ।

सिन्दूरं शुभदं नित्यं महाशक्तिप्रियं सदा । प्रयच्छामि महादेवि सर्वसौभाग्यदायिनि ॥

जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महादेव्यै नमः । श्रीरेतते सिन्दूरं नमः ।

मालतीमल्लिकादीनि नवानि कुसुमानि च । एकनाथे प्रयच्छामि पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥

मनसः काममाकूतिं०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, एकनाथायै नमः । श्रीरेतानि पुष्पाणि वौषट् ।

रक्तैः श्वेताम्बूजैः पुष्पमल्लिकादिविचित्रितैः । पुष्पमालां प्रयच्छामि प्रसीद त्वं सुरेश्वरि ॥

जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेषा ते पुष्पमाला नमः ।

सुगन्धं शीतलं शुभं नानागन्धसमन्वितम् । ग्रीत्यर्थं तव देवेशि सच्चर्णं प्रतिगृह्यताम् ॥

जातवेदसे०, नमो देव्यै०, सुभगायै नमः । श्रीरेतते परिमलद्वयं नमः ।

‘३० तपताक्षुनवर्णभं मुक्तामणिविराजितम् । अमलं कमलं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् । ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नामे देव्यै०, श्रीमहासरस्वत्यै नमः । श्रीरेतते आसनं नमः’ कहकर आसन प्रदान करे। ‘स्वागतं कुशलं पृच्छे महादेव्यै महेश्वरि । सुस्वागतं त्वया भद्रे कृपया भक्तवत्सले । ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महासरस्वत्यै नमः । श्रीरेतते स्वागतं नमः’ कहकर स्वागत करे। ‘३० गङ्गादितीर्थसंभूतं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् । पाद्यं ददाम्यहं तु भ्यं नमस्ते कमलालये । अश्वपूर्वा०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेतते पाद्यं नमः’ कहकर पाद्य प्रदान करे।

‘अष्टगन्धसमायुक्तं स्वर्णपत्रे प्रपूरितम् । अर्थं ददाम्यहं तु भ्यं प्रसीद त्वं सुरेश्वरि । कांसोस्मितां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, लोकमात्रे नमः । श्रीरेष तेऽर्थ्यः स्वाहा कहकर अर्थं प्रदान करे।

‘३० सर्वलोकस्य या माता या माता लोकाविनी । ददाम्याचमनं तस्यै महालक्ष्यै प्रयत्नतः । चन्द्रं प्रभासां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, वरदायै नमः । श्रीरेतते आचमनीयं सुधा’ कहकर आचमनीय प्रदान करे।

‘३० कपिलादिघं कुन्देन्दुधवलं मधुसंयुतम् । स्वर्णपात्रस्थितं देवि मधुपर्कं गृहाण मे । आदित्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भक्तप्रियायै नमः, श्रीरेष ते मधुपर्कं सुधा’ कहकर मधुपर्क प्रदान करे।

‘३० कर्पूरवासितं वारि निर्मलं शुद्धिहेतुकम् । गृहाण परमेशानि पुनराचमनीयकम् । आदित्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भक्तप्रियायै नमः । श्रीरेतत्त आचमनीयं नमः’ कहकर आचमनीय प्रदान करे।

‘३० एहि पादुकया देवि स्नानार्थं स्नानमण्डपम् । स्नानशाटीं गृहीत्वा तु स्नानासनसमागता । सुगन्धितैलगव्यादिपञ्चामृतजलादिकम् । सुगन्धिश्लक्षणचर्णं च तथोद्वर्तनकादिकम् । नानातीर्थोद्वर्तं तोयं स्नानीयं च गृहाण मे । आदित्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, वरदायै नमः, श्रीरेतते स्नानीयं नमः’ कहकर स्नानीय प्रदान करे।

‘आपो हिष्ठा०’ से मलापकर्णि करे।

‘३० पयो दधि धृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् । पञ्चामृतं मयानीतं गृहाण परमेश्वरि । आदित्यवर्ण०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, भद्रायै नमः, श्रीरेतते पञ्चामृतस्नानं नमः कहकर पञ्चामृत स्नान समर्पित करे।

पुरुषसूक्त से शुद्धोदक से स्नान करावे एवं जातवेदसे० मन्त्र से पुनराचमनीय प्रदान करे।

‘३० दिव्याम्बरं नवं श्वेतं क्षौमं चातिमोहरम् । त्रैलोक्यजननि देवि दीयमानं गृहाण मे । उपैतु मां०, जातवेदसे, नमो देव्यै०, श्रीलक्ष्यै नमः एतते वस्त्रयुग्मं नमः से वस्त्रों का जोड़ा प्रदान करे।

‘एहि देवि विभूषार्थं नेपथ्यागारमुतमम् । विभूषासनमास्थाय तथादर्शं विलोक्य च । केशप्रसाधनं कृत्वा भूषणान्य-

झसात् कुरु। रत्नकङ्गणवैदूर्यमुक्ताहारादिकानि च। सुप्रसन्ने महालक्ष्मि भूषणानि गृहण मे। क्षुत्पिपासा०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, हिरण्यायै नमः श्रीरेतानि ते भूषणानि नमः कहकर आभूषण प्रदान करे।

‘एहि देवि निं स्थानं सिंहासनमनुत्तमम्। पूजाचक्रं समास्थाय गन्धं देव्यङ्गसात् कुरु। चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमायैः समन्वितम्। कस्तूरीरोचनायुतं गन्धं देवि गृहण मे। गन्धद्वारां०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेष ते गन्धो नमः’ कहकर गन्धं समर्पित करे।

‘शुद्धमुक्ताफलाभैस्तैरक्षकैः शशिसंनिधैः। सर्वाधिषे महालक्ष्मीद्योतयामि सुभक्तिः। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, देव्यै नमः श्रीरेतते अक्षताः नमः’ कहकर अक्षत चढ़ावे।

‘हरिद्रां च मयानीतां देवि कल्याणदायिनि। सौभाग्यवर्धनां नित्यं गृहण हरिवल्लभे। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, हरिप्रियायै नमः श्रीरेतते हरिद्रां नमः’ कहकर हरिद्रा-समर्पण करे।

‘कुङ्कुमं शोभनं दिव्यं सर्वदा मङ्गलप्रदम्। मयानीतं महादेवि तु यथं दास्यामि सुन्दरि। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, मङ्गलायै नमः श्रीरेतते कुङ्कुमं नमः’ कहकर कुंकुम समर्पित करे।

‘सिन्दूरं शुभं नित्यं महाशक्तिप्रियं सदा। प्रयच्छामि महादेवि सर्वसौभाग्यदायिनि। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महादेव्यै नमः श्रीरेतते सिन्दूरं नमः’ कहकर सिन्दूर चढ़ावे।

‘मालतीमल्लिकादीनि नवानि कुसुमानि च। एकनाथे प्रयच्छामि पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम्। मनसः काममाकूर्तिं०, जात-वेदसे०, नमो देव्यै०, एकनाथायै नमः। श्रीरेतानि पुष्पाणि वौषट्—कहकर पुष्प चढ़ावे।

‘रक्तैः श्वेताम्बूजैः पुष्पैर्मल्लिकादिविचित्रितैः। पुष्पमालां प्रयच्छामि प्रसीद त्वं सुरेश्वरि। जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेषा ते पुष्पमाला नमः’ कहकर पुष्पमाला चढ़ावे।

‘सुगन्धं शीतलं शुभं नानागन्धसमन्वितम्। ग्रीत्यर्थं तत्वं देवेशि सच्चूर्णं प्रतिगृह्यताम्।

जातवेदसे०, नमो देव्यै०, सुभाग्यै नमः श्रीरेतते परिमलद्रव्यं नमः’ कहकर अबीर-गुलाल आदि चढ़ावे।

**अथाङ्गपूजा—३०** चञ्चलायै नमः पादौ पूजयामि। ३० चपलायै नमः गुल्फौ०। कान्त्यै नमः जानुनी०। मङ्गलायै नमः जड्हे०। भद्रकाल्यै नमः ऊर०। कमलिन्यै नमः कटिं०। शिवायै नमः नाभिं०। क्षमायै नमः उदरं०। गौर्यै नमः हृदयं०। सिंहवाहिन्यै नमः स्तनद्वयं०। स्कन्दमात्रे नमः भुजद्वयं०। कम्बुकण्ठायै नमः कण्ठं०। सरस्वत्यै नमः मुखं०। सुवासिन्यै नमः नासिकां०। स्वर्णकुण्डलायै नमः कर्णद्वयं०। चण्डिकायै नमः नेत्रद्वयं०। शिवायै नमः ललाटं०, कुमार्यै नमः शिरः०। सर्वरूपायै नमः सर्वाङ्गं पूजयामि, इति संपूज्याष्टोत्तरशतनामभिः पूजयेत्।

**अंगपूजा—३०** चञ्चलायै नमः पादौ पूजयामि। ३० चपलायै नमः गुल्फौ पूजयामि। कान्त्यै नमः जानुनी पूजयामि। मङ्गलायै नमः जड्हे पूजयामि। भद्रकाल्यै नमः ऊर पूजयामि। कमलिन्यै नमः कटिं पूजयामि। शिवायै नमः नाभिं पूजयामि। क्षमायै नमः उदरं पूजयामि। गौर्यै नमः हृदयं पूजयामि। सिंहवाहिन्यै नमः स्तनद्वयं पूजयामि। स्कन्दमात्रे नमः भुजद्वयं पूजयामि। कम्बुकण्ठायै नमः कण्ठं पूजयामि। सरस्वत्यै नमः मुखं पूजयामि। सुवासिन्यै नमः नासिकां पूजयामि। स्वर्णकुण्डलायै नमः कर्णद्वयं पूजयामि। चण्डिकायै नमः नेत्रद्वयं पूजयामि। शिवायै नमः ललाट पूजयामि, कुमार्यै नमः शिरः पूजयामि। सर्वरूपायै नमः सर्वाङ्गं पूजयामि मन्त्रों से देवी के सर्वांग पूजन के बाद एक सौ आठ नामों से उनका पूजन करे।

#### महालक्ष्मीशतनाम

३० अस्य श्रीमहालक्ष्म्या अष्टोत्तरशतनाममन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीदेवता श्रीमहा-लक्ष्मीप्रीत्यर्थं श्रीमहालक्ष्मीमष्टोत्तरशतनामभिः पूजयिष्ये। ततः श्रीबीजषट्केन षडङ्गन्यासं कृत्वा ‘लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रे’ ति

ध्यात्वा पुष्टेरक्षतैर्वा पूजयेत्। तदथा—ॐ महालक्ष्म्यै नमः; एवं महाकाल्यै०, महासरस्वत्यै० महाकन्यायै०, महागौर्यै०, महादेव्यै० भक्तानुग्रहकारिण्यै० स्वप्रकाशात्मरूपिण्यै०, महामायायै०, महेश्वर्यै० (१०) वारीश्वर्यै०, जगद्भात्र्यै०, कालरात्र्यै०, त्रिलोचनायै०, भद्रकाल्यै०, कपालन्यै०, महाशौरीयै०, त्रिलोकात्मिकायै०, सिद्धलक्ष्यै०, क्रियालक्ष्म्यै० (२०) लोकमार्गप्रदायिण्यै०, अस्तपायै०, सुरुपायै०, विश्वरूपिण्यै०, पञ्चभूतात्मिकायै०, देवमात्रै०, सुरेश्वर्यै०, दारिक्रद्यध्वंसिन्यै०, वीणापुस्तकधारिण्यै०, सर्वशक्त्यै० (३०), ब्रह्मात्मिकायै०, अष्टाङ्गरूपिण्यै०, नवदुर्गात्मिकायै०, अष्टभैरव्यै०, गङ्गायै०, शारदायै०, वेण्यै०, सर्वशास्त्रधारिण्यै०, समुद्रवसनायै०, ब्रह्माण्ड-मणिमेखलायै० (४०), अवस्थात्रयनिरुक्तायै०, गणत्रयविवर्जितायै०, योगध्यानैकसंन्यासिन्यै०, योगध्यानैकपरायणायै०, देवत्रयविशोकायै०, वेदान्तज्ञानरूपिण्यै०, पद्मावत्यै०, विशालाक्ष्यै०, नागयज्ञोपवीतिन्यै०, सूर्यचन्द्रार्धमासायै० (५०), ग्रहनक्षत्ररूपिण्यै०, वेदिकायै०, वेदरूपिण्यै०, गिरिसंभवायै०, कैवल्यदायै०, विश्रृंखलायै०, सूर्यमण्डलसंस्थितायै०, सोममण्डलमध्यस्थायै० वायुमण्डलसंस्थितायै०, वह्निमण्डलसंस्थितायै० (६०), शक्ति-मण्डलसंस्थितायै०, चक्रिकायै०, चक्रमध्यस्थितायै०, चक्रमार्गप्रदायिण्यै०, सर्वसिद्धान्तमार्गयायिन्यै०, षड्कर्वर्जितायै०, प्रत्यक्षादिप्रमावृतायै०, विद्यामूर्तयै० त्रैलोक्यमोहिन्यै०, विद्यायै० (७०), चर्मदायै०, रक्षायै०, ब्रह्मस्थापितरूपायै०, कैवल्यज्ञानगोचरायै०, करुणायै०, मधूकैटभर्मिदयै०, अचिन्त्यलक्ष्मायै०, गोच्छै०, सदाभक्ताघनाशिन्यै० (८०), महारमायै० परमेश्वर्यै०, सुसिद्धलक्ष्म्यै०, महाकालिन्यै०, सद्योजातायै०, वामदेव्यै०, अयोरायै०, तत्पुरुषायै०, ईशानरूपिण्यै०, एकाक्षरदेव्यै० (९०), योगिन्यै०, योगध्यानपराक्रमायै०, श्रीसिद्धलक्ष्यै०, श्रियै०, कमलायै०, कमलालयायै०, पद्मायै०, नलिनयुग्मकराम्बुजायै०, शैलपुत्रै०, ब्रह्मचारिण्यै० (१००), चण्डघटायै०, कूष्माण्डयै०, स्कन्दमात्रै०, कात्यायन्यै०, कालरात्र्यै०, महागौर्यै०, सिद्धिदायै०, सर्वात्मिकायै नमः (१०८) इति संपूज्य, कर्णिकायां—श्रां हृदयाय नमः। श्री शिरसे स्वाहा नमः। श्रूं शिखायै वषट् नमः। श्रृं कवचाय हुं नमः। श्रीं नेत्रत्रयाय बौषट् नमः। श्रः अस्त्राय फट् नमः। ततोऽष्टदलेषु—पूर्वादि, ॐ पद्मवण्णायै०, ॐ पद्मसनायै० नमः; ॐ पद्मवण्णायै०, ॐ पद्मसनायै०, ॐ आर्द्रायै०, ॐ तर्पन्यत्यै०, ॐ तुष्टायै०, ॐ ज्वलन्त्यै०, ॐ स्वर्णप्राकारायै नमः। ततो दलाग्रेषु—ब्राह्मचै० नमः, माहेश्वर्यै०, कौमार्यै०, वैष्णव्यै० वाराहै०, इन्द्राण्यै०, चामुण्डायै०, महालक्ष्म्यै नमः। ततो भूपुरे—लं इन्द्राय सायुधाय सवाहनय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः। एवं रं अग्नये०, टं यमाय०, क्षं निर्द्रृतये० वं वरुणाय०, वं वायवे०, सं कुबेराय०, हौं ईशानाय०, आं ब्रह्मणे०, हौं अनन्ताय नमः। तद्वहिः—वं वत्राय नमः, शं शक्तये०, दं दण्डाय०, खं खड्गाय०, आं पाशाय०, क्रं अङ्गुशाय०, गं गदायै०, शं शूलाय०, धं पद्माय०, चं चक्राय नमः। इति संपूज्य देव्ये पुष्पाङ्गलिं दत्त्वा,

ॐ दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं चन्दनागुरुसंयुतम्। भक्त्या दत्तं मया देवि प्रसीद त्वं महेश्वरि ॥

कर्दमेन०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्यै नमः श्रीरेष ते धूपो नमः।

ॐ कर्पूरवर्तिसंयुक्तं गोधृतेन समन्वितम्। दीपं गृहाण देवेशि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

आपः सृजन्ति०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीमहालक्ष्यै नमः श्रीरेष ते दीपो नमः।

ॐ नैवेद्यं गृह्णतां देवि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्। षड्ग्रसे रघितं दिव्यं धृतेन परिपूरितम् ॥

आर्द्रा०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, पूर्णमालिन्यै नमः श्रीरेतते नैवेद्यं सुधा। मध्ये पानीयम्। उत्तरापोशनम्। पुनराचमनीयम्।

ॐ कर्पूरचन्दनोम्पिशं दिव्यगन्यसमन्वितम्। करोद्वर्तनकं नित्यं गृहाण परमेश्वरि ॥

जातवेदसे०, नमो देव्यै०, माहेश्वर्यै नमः श्रीरेतते करोद्वर्तनं नमः।

ॐ पूर्णीफलैः सकपूर्णैर्नागवल्लीदलैर्युतम् । कपूरचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

आर्द्धा०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, पिङ्गलायै नमः श्रीरेतते ताम्बूलं नमः ।

जातवेदसे०, नमो देव्यै नमः श्रीरेतते सुवर्णपुष्ट्यं नमः ।

ॐ इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्त्वं । तेन मे सकलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥  
जातवेदसे०, नमो देव्यै०, सिद्धिदायै नमः श्रीरेतते फलम् ।

ॐ त्वं सूर्यचन्द्ररत्नानि विद्युदग्निस्त्वमेव हि । नीराजनं मया दत्तं गृहण एवमेश्वरि ॥

ताम्प आवह०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, यमुनाद्विवासिन्यै नमः । श्रीरेतते नीराजनम् गौरीर्मिमाय०,  
जातवेदसे० प्रणो देवी०, समस्तश्रीसूक्तं पठित्वा श्रीरेतते नैवेद्यं नमः । ॐ महाकाल्यै नमः, महालक्ष्यै नमः,  
महासरस्वत्यै नमः श्रीरेतते मन्त्रपुष्ट्यं नमः । ॐ सर्वस्वरूपे०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महाकाल्यै नमः श्रीरेतानि  
प्रदक्षिणानि । ॐ सर्वतः पाणिपादं ते०, यः शुचिः प्रथतो०,

नमस्तेऽस्तु महादेवि नमस्तेऽस्तु हरिप्रिये० नमस्तेऽस्तु जगद्वात्रि नमस्ते शिववल्लभे ॥

जातवेदसे०, नमो देव्यै०, महामायायै नमः श्रीरेतानि ते वन्दनानि । पद्मप्रिये०, या साम्प्रतं०, पद्मासनस्था०,  
या माया मधुकैटभ०, जातवेदसे०, नमो देव्यै०, श्रीरेषा ते प्रार्थना । ततः श्रीसूक्तं चण्डीपाठ-लक्ष्मीहृदयादिकं  
पाठयित्वा 'गुह्ये'त्यादिना जपं समर्पयेत्, इति लक्ष्मीपूजा ।

सर्वप्रथम इस प्रकार विनियोग करे—अस्य श्री महालक्ष्या अष्टोत्तरशतनाममन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः  
श्रीमहालक्ष्मीः देवता श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं श्रीमहालक्ष्मीमष्टोत्तरशतनामभिः पूजायिष्ये । इसके बाद श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः से षड्ङ्ग  
न्यास एवं कर न्यास करे । 'लक्ष्मी क्षीरसुमुद्रे' से ध्यान करके पूष्ट अथवा अक्षत से इस प्रकार पूजा करे—ॐ महालक्ष्यै  
नमः, महाकाल्यै नमः, महासरस्वत्यै नमः, महाकन्यायै नमः, महागौर्यै नमः, महादेव्यै नमः, भक्तानुग्रहकारिण्यै नमः, स्व-  
प्रकाशात्मरूपिण्यै नमः, महामायायै नमः, महेश्वर्यै नमः, वारीश्वर्यै नमः, जगद्वात्रै नमः, कालरात्रै नमः, त्रिलोचनायै नमः,  
भद्रकाल्यै नमः, कपालिन्यै नमः, महाशौर्यायै नमः, त्रिलोकात्मिकायै नमः, सिद्धलक्ष्यै नमः, क्रियालक्ष्यै नमः, लोकरात्मिकायै नमः,  
अरुपायै नमः, सुरूपायै नमः, विश्वरूपिण्यै नमः, पञ्चभूतात्मिकायै नमः, देवमत्रे नमः, सुरेश्वर्यै नमः, दारिद्र्यार्थसिन्यै  
नमः, वीणापुस्तकधारिण्यै नमः, सर्वशक्त्वै नमः, ब्रह्मात्मिकायै नमः, अष्टाङ्गरूपिण्यै नमः, नवदुर्गात्मिकायै नमः, अष्टभैरव्यै  
नमः, गङ्गायै नमः, शारदायै नमः, वेण्यै नमः, सर्वशास्त्रधारिण्यै नमः, समुद्रवसनायै नमः, ब्रह्माण्डमणिमेखलायै नमः, अव-  
स्थात्रयनिर्मुक्तायै नमः, गणत्रयविवर्जितायै नमः, योगध्यानैकसंन्यासिन्यै नमः, योगध्यानैकपरायणायै नमः, देवत्रयविशोकायै  
नमः, वेदान्तज्ञानरूपिण्यै नमः, पद्मावत्यै नमः, विशालाक्ष्यै नमः, नायग्नेऽपवीतिन्यै नमः, सूर्यचन्द्रार्धमासायै नमः, ग्रहनक्षत्ररूपिण्यै  
नमः, वेदिकायै नमः, वेदरूपिण्यै नमः, गिरिसंभवायै नमः, कैवल्यदायै नमः, विश्रृंखलायै नमः, सूर्यमण्डलसंस्थितायै नमः,  
सोममण्डलमध्यस्थायै नमः, वायुमण्डलसंस्थितायै नमः, वह्निमण्डलसंस्थितायै नमः, शक्तिमण्डलसंस्थितायै नमः, चक्रिकायै  
नमः, चक्रमध्यस्थितायै नमः, चक्रमार्पिदायिन्यै नमः, सर्वसिद्धान्तमार्गयायिन्यै नमः, षड्वर्गवर्जितायै नमः, प्रत्यक्षादिप्रमावृतायै  
नमः, विद्यामूर्तयै नमः, त्रैलोक्यमोहिन्यै नमः, विद्यायै नमः, चर्मदायै नमः, रक्षायै नमः, ब्रह्मस्थापितरूपायै नमः, कैवल्यानगोचरायै  
नमः, करुणायै नमः, मधुकैटभर्दिन्यै नमः, अचिन्त्यलक्षणायै नमः, गोत्र्यै नमः, सदाभक्ताधनाशिन्यै नमः, महारमायै नमः,  
परमेश्वर्यै नमः, सुसिद्धलक्ष्यै नमः, महाकालिन्यै नमः, सद्योजातायै नमः, वामदेव्यै नमः, अधोरायै नमः, तत्पुरुषायै नमः,  
ईशानरूपिण्यै नमः, एकाक्षरदेव्यै नमः, योगिन्यै नमः, योगध्यानपराक्रमायै नमः, शैलपुत्र्यै नमः, ब्रह्मचारिण्यै नमः, चण्डगण्ठायै नमः,  
कूष्माण्डयै नमः, स्कन्दमत्रे नमः, कात्यायन्यै नमः, कालरात्रै नमः, महागौर्यै नमः, सिद्धिदायै नमः, सर्वात्मिकायै नमः । यन्त्र  
की कर्णिका में श्रां हृदयाय नमः, श्री शिरसे स्वाहा नमः, श्रूं शिखायै वषट् नमः, श्रैं कवचाय हुं नमः, नेत्रत्रयाय वौषट् नमः  
श्रः अस्त्राय फट् नमः कहकर षड्ङ्ग पूजा करे । अष्टदल में पूर्व से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से ३० पद्मासनायै नमः ३०

पद्यवर्णयै नमः, ३० पदास्थायै नमः, ३० आद्रायै नमः, ३० तर्पन्यत्यै नमः, ३० तृप्तायै नमः, ३० ज्वलन्त्यै नमः, ३० स्वर्णप्राकारायै नमः कहकर आठ दलों की पूजा करे। आठ दलों के अग्रभाग में ब्राह्मणै नमः एवं ३० स्वर्णप्राकारायै नमः से पूजन करे तदनन्तर दलों के अग्रभाग में ब्राह्मणै नमः, माहेश्वर्यै नमः, कौमार्यै नमः, वैष्णव्यै नमः, वाराह्यै नमः, इन्द्राण्यै नमः, चामुण्डायै नमः, महालक्ष्म्यै नमः तक कहकर इन आठ की पूजा करे। भूपुर में लं इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः’ रं अग्नये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, टं यमाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, क्षं निर्झतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, वं वरुणाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, वं वायवे सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, सं कुबेराय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, हौं इशानाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, ओं ब्रह्मणे सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः, हीं अनन्ताय नमः कहकर दश दिक्पालों की पूजा करे। भूपुर के बाहर वं वज्राय नमः शं शक्तये नमः, दं दण्डाय नमः, खं खड्गाय नमः, आं पाशाय नमः, क्रों अङ्गूशाय नमः, गं गदायै नमः, शं शूलाय नमः, पं पद्माय नमः, चं चक्राय नमः कहकर दश आयुधों की पूजा करे। तब देवी को पुष्टाङ्गलि अर्पित करे।

इसके बाद ‘३० दशाङ्गं गुगुलं धूपं चन्दनागुरुसंयुतम्। भक्त्या दत्तं मया देवि प्रसीद त्वं महेश्वरि। कर्दमेन०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, श्रीमहालक्ष्म्यै नमः श्रीरेष ते धूपे नमः’ कहकर धूप दिखावे।

‘३० कर्पूरवर्तिसंयुक्तं गोधृतेन समन्वितम्। दीपं गृहण देवेशि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते। आपः सृजन्ति०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, श्रीमहालक्ष्म्यै नमः श्रीरेष ते दीपो नमः’ कहकर दीप दिखावे।

‘३० नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्। षड्सै रचितं दिव्यं धृतेन परिपूरितम्। आद्रां०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, पूर्णमालिन्यै नमः श्रीरेतते नैवेद्यं सुधा’ कहकर नैवेद्य प्रदान करे। मध्य में पानीय, उत्तरापेशन एवं पुनराचमनीय प्रदान करे।

‘३० कर्पूरचन्दनोम्निश्रं दिव्यगन्धसमन्वितम्। करोद्वर्तनकं नित्यं गृहण परमेश्वरि। जातवेदसे०, नमो देव्य०, माहेश्वर्यै नमः श्रीरेतते करोद्वर्तनं नमः’ कहकर करोद्वर्तन प्रदान करे।

‘३० पूर्णीफलैः सकपूरीनार्गिवल्लीदलैर्युतम्। कर्पूरचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्। आद्रां०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, पिङ्गलायै नमः श्रीरेतते ताम्बूलं नमः’ कहकर ताम्बूल प्रदान करे।

जातवेदसे, नमो देव्यै नमः श्रीरेतते सुवर्णपुष्टं नमः कहकर सुवर्णपुष्ट प्रदान करें।

‘३० इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्त्व। तेन मे सकलावपितर्विज्ञन्मनि जन्मनि। जातवेदसे०, नमो देव्य०, सिद्धिवायै नमः श्रीरेतते फलम्’ कहकर फल प्रदान करे।

‘३० त्वं सूर्यचन्द्रतलानि विद्युदगिनस्त्वमेव हि। नीराजनं मया दत्तं गृहण परमेश्वरि। ताम्म आवह०, जातवेदसे०, नमो देव्य०, यमुनाद्विवासिन्यै नमः। श्रीरेतते नीराजनम्’ कहकर आराती करे।

तब गौरीर्माय० जातवेदसे० प्रणो देवी, समस्त श्रीसूक्त पढ़कर श्रीरेतते नैवेद्यं नमः’ कहकर नैवेद्य प्रदान करे। ३० महाकाल्यै नमः, महालक्ष्म्यै नमः, महासरसवत्त्वै नमः, श्रीरेतते मन्त्रपुष्टं नमः कहकर पुष्ट देवे। ३० सर्वस्वरूपे, जातवेदसे० नमो देव्य० महाकाल्यै नमः श्रीरेतते प्रदक्षिणानि कहकर प्रदक्षिणा करे, ३० सर्वतः पाणिपादं ते० यः शुचिः प्रयतो, नमस्ते स्तु……शिव वल्लभे। जातवेदसे० नमो देव्य० महामायायै नमः श्रीरेतानि ते वन्दनानि कहकर वन्दना करे। पद्मप्रिये० या साम्रांत पद्मासनास्था० या माया मधुकैटभ० जातवेदसे० नमो देव्य० श्रीरेष ते प्रार्थना कहकर प्रार्थना करे। तब श्री सूक्त चण्डी पाठ लक्ष्मीहृदयादिक का पाठ करके गुह्येत्यादि के द्वारा जप का समर्पण करे।

### लक्ष्मीहृदयस्तोत्रम्

अथ लक्ष्मीहृदयम्। अस्य श्रीलक्ष्मीहृदयस्य शिरसि भार्गवाय ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुबादिच्छदेभ्यो नमः। हृदये महालक्ष्म्यै देवतायै नमः। इति विन्यस्य ममालक्ष्मीपरिहारपूर्वकदीर्घायुर्नेत्रज्यमहैश्वर्यफलावाप्त्यर्थं लक्ष्मीहृदयपाठे

विनियोगः, इति कृत्वा अलिवदेत्। ततः श्रांश्रीमिति मन्त्रैः षडङ्गन्यासं विधाय ध्यायेत्।

हस्तद्वयेन कमले धारयन्तीं तु लीलया। हारनूपरसंयुक्तां लक्ष्मीं देवीं विचिन्तये ॥१॥

लक्ष्मीहृदय (अर्थवर्ण रहस्योक्त)

ऋष्यादि न्यास—शिरसि भार्गवाय ऋषये नमः। मुखे प्रिष्ठबादिच्छन्देऽयो नमः। हृदये महालक्ष्मी देवतायै नमः।

विनियोग—हाथ जोड़कर इस प्रकार कहे—ममालक्ष्मीपरिहारपूर्वकदीर्घायुः नैरज्यमहेश्वर्यफलावाप्त्यर्थं लक्ष्मीहृदय-पाठे विनियोगः। तब श्रां श्रीं से षडङ्ग न्यास एवं करन्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

हस्तद्वयेन कमले धारयन्तीं तु लीलया। हारनूपरसंयुक्तां लक्ष्मीं देवीं विचिन्तये ॥

वन्दे लक्ष्मीं परशिवमर्यीं शुद्धज्ञाम्बूनदाभां तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूपोज्ज्वलाङ्गीम् ।

बीजापूरं कनककलशं हेमपद्मे दधानामादां शक्तिं सकलजननीं विष्णुवामाङ्कसंस्थाम् ॥२॥

श्रीमत्सौभाग्यजननीं स्तौमि लक्ष्मीं सनातनीम्। सर्वकामफलावाप्तिसाधनैकसुखावहाम् ॥३॥

नमामि नित्यं देवेशि त्वया प्रेरितमानसः। त्वदाङ्गां शिरसा धृत्वा भजामि परमेश्वरीम् ॥४॥

समस्तसम्पत्सुखदां महाश्रियं समस्तसौभाग्यकरीं महाश्रियम् ।

समस्तकल्याणकरीं महाश्रियं भजाम्यहं ज्ञानकरीं महाश्रियम् ॥५॥

विज्ञानसम्पत्सुखदां सनातनीं विचित्रवाग्भूतिकरीं महेश्वरीम् ।

मनोहरानन्तसुभोगदायिनीं नमाम्यहं भूतिकरीं हरिप्रियाम् ॥६॥

समस्तभूतान्तरसंस्थिता त्वं समस्तभूतेश्वरि विश्वरूपे ।

तत्रास्ति यत्त्वद् व्यातिरिक्तवस्तु त्वत्यादपद्मं प्रणामाम्यहं श्रीः ॥७॥

दारिद्र्यदुःखोघटपोहन्त्री त्वत्यादपद्मं मयि सत्रिधत्स्व ।

दीनार्तिविच्छेदनहेतुभूतैः कृपाकटाक्षीरभिषिञ्च मां श्रीः ॥८॥

अब्र प्रसीद करुणासुधयाद्विष्ट्या मां त्वक्तुपाद्रिविणगोहमिमं कुरुच ।

आलोकनप्रणायिहृदत्तशोकहन्त्री त्वत्पदपद्मयुगलं प्रणामाम्यहं श्रीः ॥९॥

शान्त्यै नमोऽस्तु शरणागतरक्षणायै कान्त्वैः नमोऽस्तु कमनीयगुणाश्रयायै ।

क्षान्त्यै नमोऽस्तु दुरितक्षयकारणायै धान्त्यै नमोऽस्तु धनधान्यसमृद्धिदायै ॥१०॥

शक्त्यै नमोऽस्तु शशिशेखरसंस्तुतायै रत्यै नमोऽस्तु रजनीकरसोदरायै ।

शक्त्यै नमोऽस्तु भवसागरतारकायै मत्यै नमोऽस्तु मधुमूदनवल्लभायै ॥११॥

लक्ष्म्यै नमोऽस्तु शुभलक्षणलक्षितायै सिद्ध्यै नमोऽस्तु शिवसङ्गसुपूजितायै ।

धृत्यै नमोऽस्त्वमितदुर्गतिभञ्जनायै गत्यै नमोऽस्तु वरसद्विदियिकायै ॥१२॥

देव्यै नमोऽस्तु दिवि देवगणार्थितायै भूत्यै नमोऽस्तु भुवनार्तिविनाशिकायै ।

दान्त्यै नमोऽस्तु धरणीधरवल्लभायै पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥१३॥

सुतीव्रदारिद्र्यविदुः खहर्त्रै नमोऽस्तु ते सर्वभयापहन्त्रै ।

श्रीविष्णुवक्षः स्थलसंस्थितायै नमो नमः सर्वविभूतिदायै ॥१४॥

जयतु जयतु लक्ष्मीर्लक्षणालंकृताङ्गी जयतु जयतु पद्मा पद्मसद्वाभिवन्द्या ।

जयतु जयतु विद्या विष्णुवामाङ्कसंस्था जयतु जयतु सम्यक्सर्वसम्पत्करी श्रीः ॥१५॥

जयतु जयतु देवी देवसङ्गाभिपूज्या जयतु जयतु भद्रा भार्गवी भाग्यरूपा ।

जयतु जयतु नित्या निर्मलज्ञनवेद्या जयतु जयतु सत्या सर्वभूतान्तरस्या ॥१६॥

जयतु जयतु रम्या रत्नगर्भान्तरस्या जयतु जयतु शुद्धज्ञाम्बूनदाभा ।

जयतु जयतु कान्ता कन्तिमद्रासिताङ्गी जयतु जयतु शान्ता शीघ्रमायाहि सौम्ये ॥१७॥

यस्याः कलायाः कमलोद्धवाद्या रुद्राश्च शकप्रमुखाश्च लेखाः ।

जीवन्ति सर्वेऽपि सशक्तयस्ते प्रभुत्वमापुः परमायुषस्ते ॥१८॥

लिलेख निटिले विधिर्म लिपिं विसृज्यान्तरं त्वया विलिखितव्यमेतदिति तत्कलावाप्तये ।

तदन्तर इह स्फुटं कमलवासिनि श्रीरिमां समर्पय स्वमुद्रिकां सकलभाग्यसंसूचिकाम् ॥१६॥

तदिदं तिमिरं भाले स्फुटं कमलवासिनि । श्रियं समुद्रजां देहि सर्वभाग्यस्य सूचिकाम् ॥२०॥

कलया ते यथा देवि जीवन्ति सचराचराः । तथा संपत्करी लक्षित सर्वदा संप्रसीद मे ॥२१॥

यथा विष्णौ धूवे नित्यं स्वकलां संन्यवेशयः । तथैव स्वकलां लक्षितर्थयि सम्यक् समर्पय ॥२२॥

सर्वसौख्यप्रदे देवि भक्तानामभयप्रदे । अचलां कुरु यत्नेन कलां मयि निवेशिताम् ॥२३॥

सदास्तां मद्दाले परमपदलक्ष्मीः स्फुटकला सदा वैकुण्ठश्रीर्निवसतु कला मे नयनयोः ।

वसेन्मत्त्वे लोके मम वचसि लक्ष्मीर्वरकला श्रियः श्रेतद्वीपे निवसतु कला मे स्वकरयोः ॥२४॥

तावन्नित्यं मपाङ्गेषु क्षीराब्द्यौ श्रीकला वसेत् । सूर्याचन्द्रमसौ यावद्यावल्लक्ष्मीपतिः श्रिया ॥२५॥

सर्वमङ्गलसंपूर्णा सर्वेश्वर्यसमन्विता । आद्यादिश्रीर्महालक्ष्मीः त्वत्कला मयि तिष्ठतु ॥२६॥

अज्ञानतिमिरं हन्तुं शुद्धज्ञानप्रकाशिका । सर्वेश्वर्यप्रदा मेऽस्तु त्वत्कला मयि सुस्थिरा ॥२७॥

अतक्षीं हरतु क्षिप्रं तमः सूर्यग्रभा यथा । वित्तोतु मम श्रेयस्त्वत्कला मयि संस्थिता ॥२८॥

ऐश्वर्यमङ्गलोत्पत्तिस्त्वत्कला या निधीयते । मयि तस्मात्कृतार्थोऽस्मि पात्रमस्मि स्थितेस्तव ॥२९॥

भवदावेशभाग्याहों भाग्यवानस्मि भार्गवि । त्वत्प्रसादात्पवित्रोऽहं लोकमातन्मोऽस्तु ते ॥३०॥

पुनासि मां त्वं कलयैव यस्मादः समागच्छ ममाग्रतस्त्वम् ।

परं पदं श्रीर्भव सुप्रसन्ना मय्यच्युतेन प्रविशादिलक्ष्मि ॥३१॥

श्रीवैकुण्ठस्थिते लक्ष्मि समागच्छ ममाग्रतः । नारायणेन सह मां कृपादृष्ट्यावलोकय ॥३२॥

सत्यलोकस्थिते लक्ष्मि त्वं ममागच्छ सन्निधिम् । वासुदेवेन सहिता प्रसीद वरदा भव ॥३३॥

श्रेतद्वीपस्थिते लक्ष्मि शीघ्रमागच्छ सुक्रते । विष्णुना सहिते देवि जगन्मातः प्रसीद मे ॥३४॥

क्षीराम्बुधस्थिते लक्ष्मि समागच्छ समाधवे । त्वत्कृपादृष्टिसुधया सततं मां विलोकय ॥३५॥

रत्नगर्भस्थिते लक्ष्मि परिपूर्णे हिरण्यमयि । समागच्छ समागच्छ तिष्ठस्व पुरतो मम ॥३६॥

स्थिरा भव महालक्ष्मि निश्चला भव निर्मले । प्रसन्ने कमले देवि प्रसन्नहृदया भव ॥३७॥

श्रीधरे श्रीमहाभूते त्वदतः स्थं महानिधिम् । शीघ्रमुद्भव्य पुरतः प्रदर्शय समर्पय ॥३८॥

वसुन्धरे श्रीवसुथे वसुदोग्धि कृपामयि । त्वत्कृष्णिगतसर्वस्वं शीघ्रं मे सम्प्रदर्शय ॥३९॥

विष्णुप्रिये रत्नगर्भे समस्तफलदे शिवे । त्वद्भर्गतहेमादीन् प्रदर्शय प्रदर्शय ॥४०॥

रसातलगते लक्ष्मि शीघ्रमागच्छ मत्पुरः । न जाने परमं रूपं मातर्मे सम्प्रदर्शय ॥४१॥

आविर्भव मनोवेगाच्छीघ्रमागच्छ मे पुरः । मा वत्स भैरिहेत्युक्त्वा कामं गौरिव रक्ष माम् ॥४२॥

देवि शीघ्रं समागच्छ धरणीगर्भसंस्थिते । मातस्त्वद् भृत्यभृत्योऽहं मृगये त्वां कुरुहलात् ॥४३॥

उत्तिष्ठ जागृहि त्वं मे समुत्तिष्ठ सुजागृहि । अक्षयान् हेमकलशान् सुवर्णेन सुपूरितान् ॥४४॥

निक्षेपान्मे समाकृष्ट्य समुद्भव्य ममाग्रतः । समुत्त्रतोत्रता भूत्वा समृद्ध्यैहि धरान्तरात् ॥४५॥

मतसन्निधिं समागच्छ मदाहितकृपारसात् । प्रसीद श्रेयसां दोग्धि लक्ष्मि मे नयनाग्रतः ॥४६॥

अत्रोपविश्य लक्ष्मि त्वं स्थिरा भव हिरण्यमयि । सुस्थिरा भव संप्रीत्या प्रसन्ना वरदा भव ॥४७॥

आनीतांस्तांस्वया देवि निधीन् मे संप्रदर्शय । अद्य क्षणेन सहसा दत्त्वा संरक्ष मां सदा ॥४८॥

मयि तिष्ठ तथा नित्यं यथेन्द्रादिषु तिष्ठसि । अभयं कुरु मे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥४९॥

समागच्छ महालक्ष्मि शुद्धजाप्त्यूनप्रभे । प्रसीद पुरतः स्थित्वा प्रणतं मां विलोकय ॥५०॥  
 लक्ष्मि भुवि गता भासि यत्र यत्र हिरण्यमयी । तत्र तत्र स्थिता त्वं मे तव रूपं प्रदर्शय ॥५१॥  
 क्रीडसि त्वं च बहुधा परिपूर्णकृपामयि । मम मूर्धनि ते हस्तमविलम्बितमर्पय ॥५२॥  
 फलद्वाग्योदये लक्ष्मि समस्तपुरवासिनि । प्रसीद मे महालक्ष्मि परिपूर्णमनोरथे ॥५३॥  
 अयोध्यादिषु सर्वेषु नारेषु समास्थिते । वै भवेविविधैर्युक्ता समागच्छ बलान्विता ॥५४॥  
 समागच्छ समागच्छ ममाङ्गे भव सुस्थिरा । करुणारसनि व्यन्दनेत्रद्वयविलासिनि ॥५५॥  
 संनिधत्स्व महालक्ष्मि त्वत्यापां मम मस्तके । करुणासुध्या मां त्वमभिषिञ्च स्थिरं कुरु ॥५६॥  
 दीनस्य मस्तके हस्तं मम त्वं कृपयार्पय । आद्यादिश्रीर्महालक्ष्मि विष्णुवामाङ्गसंस्थिते ॥५७॥  
 भवभीतिपरिस्तभक्तक्राणपरायणे । प्रत्यक्षीकुरु रूपं मे रक्ष मां शरणागतम् ॥५८॥  
 सर्वराजगृहालक्ष्मि समागच्छ गुणान्विता । स्थित्वा तु पुरतो मेऽद्य प्रसादेनाभयं कुरु ॥५९॥  
 प्रसीद मे महालक्ष्मि सुप्रसीद महाशिवे । अचला भव सुत्रीत्या सुस्थिरा भव मद्गृहे ॥६०॥  
 यावत्तिष्ठन्ति देवाश्च यावत्त्वन्नाम तिष्ठति । यावद्विष्णुश्च यावत्त्वं तावत्कुरु कृपां मयि ॥६१॥  
 चान्द्री कला यथा शुक्ले वर्धते सा दिने दिने । तथा दया ते मयेव वर्धतामभिवर्धताम् ॥६२॥  
 यथा वैकुण्ठनगरे यथा वै क्षीरसागरे । तथा मद्भवने तिष्ठ स्थिरं श्रीविष्णुना सह ॥६३॥  
 योगिनां हृदये नित्यं यथा तिष्ठसि विष्णुना । तथा मद्भवने तिष्ठ स्थिरं श्रीविष्णुना सह ॥६४॥

नारायणस्य हृदये भवती यथास्ते नारायणोऽपि तव हृत्कपले यथास्ते ।

नारायणस्त्वमपि नित्यमुभौ तथैव तौ तिष्ठतां हृदि ममापि दयावति श्रीः ॥६५॥

विज्ञानवृद्धिं हृदये कुरु श्रीः सौभाग्यसिद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः ।

दयासुपुष्टिं कुरुतां मयि श्रीः सुवर्णवृद्धिं कुरु मे करे श्रीः ॥६६॥

न मां त्वजेशाः श्रितकल्पवल्लि सञ्ज्ञकिञ्चिन्नामणिकामधेनो ।

विश्वस्य मातर्भव सुप्रसन्ना गृहे कलत्रेषु च पुत्रवर्गे ॥६७॥

आद्यादिमाये त्वमजाण्डबीजं त्वमेव साकारनिराकृतिस्त्वम् ।

त्वया धृताश्वाज्जभवाण्डसंघाञ्जित्रं चरित्रं तव देवि विष्णोः ॥६८॥

ब्रह्मरुद्रादयो देवा वेदाशापि न शक्नुयोः । महिमानं तव स्तोतुं मन्दोऽहं शक्नुया कथम् ॥६९॥  
 अम्ब त्वद्वत्सवाक्यानि सूक्तासूक्तानि यानि च । तानि स्वीकुरु सर्वज्ञे दयालुत्वेन सादरम् ॥७०॥  
 भवतीं शरणं गत्वा कृतार्थाः स्युः पुरातनाः । इति संचिन्त्य मनसा त्वामहं शरणं व्रजे ॥७१॥  
 अनन्तानन्तसुखिनस्त्वद्वक्त्तास्त्वत्परायणाः । इति संचिन्त्य संचिन्त्य प्राणान् सन्धारयाम्यहम् ॥७२॥  
 तव प्रतिज्ञा मद्भक्ता न नश्यन्तीत्यपि क्वचित् । इति संचिन्त्य संचिन्त्य प्राणान् सन्धारयाम्यहम् ॥७३॥  
 त्वदथीनस्त्वहं मातस्त्वत्कृपा मयि विद्यते । यावत्सम्पूर्णकामः स्यां तावदेहि कृपानिधे ॥७४॥  
 क्षणमात्रं न शक्नोमि जीवितुं त्वत्कृपां विना । न जीवन्तीह जलजा जलं त्यक्त्वा जलग्रहाः ॥७५॥  
 हिता हि पुत्रवात्सल्याज्जननी प्रस्तुतस्तनी । वत्सं त्वरितमागत्य संप्रीणयति वत्सला ॥७६॥  
 यदि स्यां तव पुत्रोऽहं मातस्त्वं यदि मामकी । दयापयोधरस्तत्यसुधाभिरभिषिञ्च माम् ॥७७॥  
 मृग्यो न गुणलेशोऽपि मयि दौषिकमन्दिरे । पांसूनां वृष्टिबिन्दूनां दोषाणां च न मे मिति: ॥७८॥  
 पापिनामहमेवाग्यो दयालूनां त्वमग्रणीः । दयनीयो मदन्योऽस्ति तव कोऽत्र जगत्त्रये ॥७९॥  
 विधिनाहं न सृष्टश्वेतं स्यात्तव दयालुता । आमयो वा न सृष्टश्वेतोषधस्य वृथोदयः ॥८०॥  
 कृपा मदग्रजा किं ते ह्यहं वा किं तदग्रजः । विचार्य देहि मे वित्तं तव देवि दयानिधे ॥८१॥

माता पिता त्वं गुरु सहस्रिः श्रीस्त्वमेव संजीवनहेतुभूता ।  
 अन्यं न मन्ये जगदेकनथे त्वमेव सर्वं मम देवि सत्यम् ॥८२॥  
 आद्यादिलक्ष्मीर्भव सुप्रसन्ना विशुद्धविज्ञानसुखैकदोग्धि ।  
 अज्ञानहन्त्रि त्रिगुणातिरिक्ता प्रज्ञाननेत्रे भव सुप्रसन्ना ॥८३॥  
 अशोषवाग्जाङ्गमलापहारिणि नवं नवं स्पृष्टसुवाक्ष्रदायिनि ।  
 ममैहि जिह्वाग्रसुरज्ञनर्तकी भव प्रसन्ना वदने च मे श्रीः ॥८४॥  
 समस्तसम्पत्सुविराजमाना समस्ततेजःसु विराजमाना ।  
 विष्णुप्रिये त्वं भव दीप्यमाना वाग्देवता मे भवने प्रसन्ना ॥८५॥  
 भक्त्या नतानां सकलाथदि त्वं प्रभासुलावण्यदयासुदोग्धि ।  
 सुवर्णदि त्वं सुमुखी भव श्रीर्हिरण्यमये मे भव सुप्रसन्ना ॥८६॥  
 सर्वार्थदा सर्वजगत्सूतिः सर्वेश्वरी सर्वभयापहन्त्री ।  
 सर्वोन्नता त्वं सुमुखी भव श्रीर्हिरण्यमये मे वदने प्रसन्ना ॥८७॥  
 समस्तविघ्नौघविनाशकारिणी समस्तविघ्नोद्धरणे विचक्षणा ।  
 अनन्तसौभाग्यसुखप्रदायिनी हिरण्यमये मे वदने प्रसन्ना ॥८८॥  
 देवि प्रसीद दयनीयतमाय मह्यं देवादिनाथभवदेवगणाभिवन्धे ।  
 मातस्तथैव भव सन्निहिता दृशोर्में पत्या समं मम मुखे भव सुप्रसन्ना ॥८९॥  
 मा वत्स भैरभयदानकरोऽर्पितस्ते मौलौ ममैति मयि दीनदयानुकम्पे ।  
 मातः समर्पय मुदा करुणाकटाक्षं माङ्गल्यबीजमहिमानुसृतं ममान्तः ॥९०॥  
 कटाक्ष इह कामधुक्तव ममास्तु चिन्नामणिः करः सुरतुः सदा नवनिधिस्त्वमेवेन्द्रिर्द्वये ।  
 भवेत्तव दयारसो रसरसायनं त्वन्वहं मुखं तव कलानिधिर्विघ्नवाञ्छिताथप्रदम् ॥९१॥  
 यथा रसस्पृशनतोऽयसोऽपि सुवर्णता स्यात्कमले तथा ते ।  
 कटाक्षसंस्पृशनतो जनानाममङ्गलानामपि मङ्गलत्वम् ॥९२॥  
 देहीति नास्तीति वचः प्रवेशाद्वीतो रमे त्वां शरणं प्रपन्नः ।  
 अतः सदास्मिन्नभयप्रदा त्वं सहैव पत्या मम सन्निधेहि ॥९३॥  
 कल्पद्रुमेण मणिना सहिता सुरम्या श्रीस्ते कला मयि रसेन रसायनेन ।  
 आस्तां यतो मम च दृक्षिरपाणिपादस्पृष्टाः सुवर्णवपुषः स्थिरजङ्गमाः स्युः ॥९४॥  
 आद्यादिविष्णोः स्थिरधर्मपत्नी त्वमष्ट पत्या मम सन्निधेहि ।  
 आद्यादिलक्ष्मीस्त्वदनुग्रहेण पदे पदे मे निधिदर्शनं स्यात् ॥९५॥  
 आद्यादिलक्ष्मीहृदयं पठेद्यः स राज्यलक्ष्मीमचलां तनोति ।  
 महादरिद्रोऽपि भवेद्धनाढ्यस्तदन्वये श्रीः स्थिरतां प्रयाति ॥९६॥  
 यस्य स्मरणमात्रेण तुष्टा स्याद्विष्णुवल्लभा । तस्याभीष्टं ददात्याशु तं पालयति पुत्रवत् ॥९७॥  
 इदं रहस्यं हृदयं सर्वकामफलप्रदम् । जपः पञ्चसहस्रं तु पुरश्चरणमुच्यते ॥९८॥  
 त्रिकालमेककालं वा नरो भक्तिसमन्वितः । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां श्रियम् ॥९९॥  
 महालक्ष्मीं समुद्दिश्य निशि भार्गवासरे । इदं श्रीहृदयं जप्त्वा पञ्चवारं धनी भवेत् ॥१००॥  
 अनेन हृदयेनान्नं गर्भिण्या अभिनन्त्रितम् । ददाति तत्कुले पुत्रो जायते श्रीपतिः स्वयम् ॥१०१॥  
 नरेणाप्यथवा नार्या लक्ष्मीहृदयमन्त्रिते । जले च पीते तद्वंशे मन्दभाग्यो न जायते ॥१०२॥

य आश्विने मासि च शुक्लपक्षे रमोत्सवे मन्त्रिहितैक भक्त्या ।  
 पठेत्तथैकोनवरवारवृद्ध्या लभेत् सौवर्णमयीं च वृद्धिम् ॥१०३॥  
 ए एकभक्तोऽन्वहमेकवर्षं विशुद्धधीः सप्ततिवारजापी ।  
 स मन्दभाग्योऽपि रमाकटाक्षाद्ववेत् सहस्राक्षशाताधिकश्रीः ॥१०४॥  
 श्रीशाङ्ग्रिभक्तिं हरिदासदास्यं प्रसन्नमन्त्रार्थदृढैकनिष्ठाम् ।  
 गुरोः स्मृतिं निर्मलबोधबुद्धिं प्रदेहि मे देहि परं पदं श्रीः ॥१०५॥  
 पृथ्वीपतित्वं पुरुषोत्तमत्वं विभूतिवासं विविधद्विसिद्धिम् ।  
 संपूर्णसिद्धिं बहुवर्षभोगयां प्रदेहि मे देहि पुनः पुनस्त्वम् ॥१०६॥  
 वागर्थसिद्धिं बहुलोकवश्यं वयःस्थिरत्वं ललनासुभोगम् ।  
 पौत्रादिलब्धिं सकलार्थसिद्धिं प्रदेहि मे भागवि जन्मजन्मनि ॥१०७॥  
 (सुवर्णवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः कल्याणवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः ।  
 विभूतिवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः सौभाग्यवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः ॥  
 ध्यायेल्लक्ष्मीं प्रहसितमुखीं कोटिबालार्कभासां विद्युद्वर्णाम्बरवरधरां भूषणाङ्गां सुशोभाम् ।  
 बीजापूरं सरजिसयुगं बिभ्रतीं स्वर्णपात्रे भर्त्रा युक्तां मुहुरभयदां शश्ददप्यच्युतश्रीः ॥१०८॥  
 इत्यर्थवर्णरहस्ये लक्ष्मीहृदयस्तोत्रं संपूर्णम् ।

ध्यान के पश्चात् मूलोक्त श्लोक संख्या २ से ९५ तक के लक्ष्मीहृदय स्तोत्र का पाठ करे।

**लक्ष्मीहृदय पाठ का फल—आद्यादि लक्ष्मी हृदय का पाठ जो करता है, उसे अचला राज्यलक्ष्मी मिलती है, महादरिद्र भी धनाद्ध हो जाता है और उसके कुल में लक्ष्मी स्थिर रहती है। हृदय स्तोत्र के स्मरण से विष्णुप्रिया तुष्ट होती है और पाठ करने वाले को अभीष्ट देकर उसे पुत्र के समान पालती है। हरस्यमय यह हृदय सर्वकामफलप्रदायक है। पाँच हजार जप से इसका पुरक्षरण होता है। तीनों सन्ध्याओं में या एक सन्ध्या में जो मनुष्य भक्तिसहित इसका पाठ करता है या पाठ करवाकर सुनता है, उसे बहुत धन मिलता है। महालक्ष्मी को लक्ष्य में रखकर भृगुवार की रात्रि में इस श्रीहृदय का पाँच बार जप करने से साधक धनी होता है। इस हृदय स्तोत्र से अभिमन्त्रित अत्र जिस गर्भवती स्त्री को खिलाया जायेगा, उसके कुल में विष्णु स्वयं पुत्र बनकर आते हैं। जो नर या नारी हृदय से मन्त्रित जल पीते हैं, उनके कुल में मन्दभाग्य कोई नहीं होता। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष के नवरात्र में जो एक शाम खाकर प्रतिदिन एक-एक पाठ अधिक करता है अथवा पैतालीस पाठ करता है, उसके यहाँ नित्य सोने की वृद्धि होती है। प्रतिदिन एक बार खाना खाकर जो सत्तर पाठ एक वर्ष तक करता है, वह मन्दभाग्य भी लक्ष्मी की कृपा से एक सो हजार से भी अधिक श्री सम्पदा का स्वामी होता है। तदनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—**

श्रीशाङ्ग्रिभक्तिं हरिदासदास्यं प्रसन्नमन्त्रार्थदृढैकनिष्ठाम् । गुरोः स्मृतिं निर्मलबोधबुद्धिं प्रदेहि मे देहि परं पदं श्रीः ॥  
 पृथ्वीपतित्वं पुरुषोत्तमत्वं विभूतिवासं विविधद्विसिद्धिम् । संपूर्णसिद्धिं बहुवर्षभोगयां प्रदेहि मे देहि पुनः पुनस्त्वम् ॥  
 वागर्थसिद्धिं बहुलोकवश्यं वयःस्थिरत्वं ललनासुभोगम् । पौत्रादिलब्धिं सकलार्थसिद्धिं प्रदेहि मे भागवि जन्मजन्मनि ॥  
 (सुवर्णवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः कल्याणवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः सौभाग्यवृद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः ॥)  
 ध्यायेल्लक्ष्मीं प्रहसितमुखीं कोटिबालार्कभासां विद्युद्वर्णाम्बरवरधरां भूषणाङ्गां सुशोभाम् ।  
 बीजापूरं सरजिसयुगं बिभ्रतीं स्वर्णपात्रे भर्त्रा युक्तां मुहुरभयदां शश्ददप्यच्युतश्रीः ॥

दुर्गामन्त्रोद्धारस्तक्ष्यानादि

सारसंग्रहे—

अथोच्यन्ते महामन्त्रा दुर्गायाः वाञ्छितार्थदाः । प्रिवर्गफलमोक्षाप्तिदायका

विजयप्रदाः ॥१॥

सद्यः सदण्डी हल्लेखा सधृतिहादिनीन्दुयुक् । अत्रीन्धिके विसर्गः स्मृतिप्रतिष्ठे श्रिया सह ॥२॥

धूम्रार्चिः स्यात् टपंक्त्यर्णस्तद्रानन्तेऽष्टवर्णकः । दुर्गामनुः समाख्यातो भजतां सर्वकामदः ॥३॥

सद्य ओ, दण्डी अनुस्वारस्तद्युक्तस्तेन प्रणवः, हल्लेखा भुवनेश्वरीबीजं, धृतिरुक्तारो, हृदिनी दकारः, इन्दु अनुस्वारस्तेन दुं, अत्रिदर्दकारः, इन्धिका उकारः, विसर्गयुक्तस्तेन दुः, स्मृतिर्गकारः, प्रतिष्ठा आ तेन गा, श्रीः ऐकारः, धूम्रार्चिर्यकारः, तेन यै, टपक्त्यर्णो नकारः, तद्रा म, अनन्तो विसर्गः, तस्यात्र 'ससजुषो रु'रिति रेफः, तेन दुर्गा इत्यस्य सन्धिस्तेन दुर्गायै इति मन्त्रे बोद्धव्यम्।

मुनिः प्रोक्तो नारदाख्यो गायत्रं छन्द ईरितम् । दुर्गा च देवता प्रोक्ता दृष्टादृष्टफलप्रदा ॥४॥

षड्दीर्थयुक्तैराद्यन्तैर्मनुपूर्वषड्ङकैः । जातियुक्तैः षड्ङनि मनोरस्य प्रकल्पयेत् ॥५॥

तेन ॐ हींदुंदुर्गायै हां हृदयाय नमः, इत्यादिषड्ङमन्त्रा उन्नेयाः । तदुक्तमाचार्यचरणैः—'तारो माया च दुर्गायै ह्रामाद्यनाङ्गकल्पना' इति। चकारः दुं समुचिनोतीति पद्मापादाचार्यः। ध्यानम्—

सिंहासनां मरकतयुतिमिन्दुचूडां शङ्खं ह्यारि करतलैदर्थतीं शरासम् ।

बाणं त्रिनेत्रलसितां भवदुःखहन्त्रीं दुर्गा नमामि मणिभूषणभूषिताङ्गीम् ॥६॥

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्याधःस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम् । तथा—

अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं चतुरस्त्रयावृतम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं कुङ्गमादिभिरुद्धरेत् ॥७॥

कुर्याच्च पीठपूजायां नवशक्तिसमर्चनम् । ताश्च प्रभा समाया सजया सूक्ष्मा विशुद्धा स्यात् ॥८॥

नन्दिन्या सुप्रभया विजया सर्वादिसिद्धिनवमी । एकवह्निशरक्त्वीवहीनैरञ्जिमः प्रपूजयेत् ॥९॥

एकेति आइउऋत्रूललृ इति सप्तस्वररहितैरञ्जिमः आईऊएओआ॒अंअः इति नवभिः स्वरैः सहिता नवशक्तयः पूज्या इत्यर्थः।

दुर्गा मन्त्रोद्धार—सारसंग्रह में कहा गया है कि अब वांछित फल, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षप्रद तथा विजयप्रदायक दुर्गामन्त्र को कहा जाता है। श्लोक २, ३ का उद्घार करने पर आठ अक्षरों का दुर्गा का मन्त्र इस प्रकार स्मृतिर होता है—  
ॐ हीं दुं दुर्गायै नमः। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता कहे गये हैं। यह मन्त्र दृष्ट-अदृष्ट समस्त फलों को देने वाला है। इसका षड्ङ न्यास इस प्रकार किया जाता है—  
ॐ हीं दुं दुर्गायै हां हृदयाय नमः, ॐ हीं दुं दुर्गायै हां नेत्रयाय वौषट्,  
ॐ हीं दुं दुर्गायै हां अस्त्राय फट्। यह न्यास आद्य शंकराचार्य और पद्मापादाचार्य के अनुसार करणीय है। न्यास के बाद इस प्रकार ध्यान करे—

सिंहासनां मरकतयुतिमिन्दुचूडां शङ्खं ह्यारि करतलैदर्थतीं शरासम् ।

बाणं त्रिनेत्रलसितां भवदुःखहन्त्रीं दुर्गा नमामि मणिभूषणभूषिताङ्गीम् ॥

तदनन्तर ऊपर वाले बाँये हाथ से प्रारम्भ करके उनके आयुरों का ध्यान करे।

पूजन यन्त्र—पहले दो अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन भूपुर चतुरस्त कुङ्गम आदि से बनावे। पीठ पूजा में नव शक्तियों की पूजा करे। उनके नाम हैं—प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया, सर्वसिद्धि। इनके पहले आं ई ऊ एं ओं औं अं अं—इन नव स्वरों में से क्रमशः एक-एक लगाकर पूजन करे। जैसे आं प्रभायै नमः, ईमायायै नमः इत्यादि।

सिंहमनोरुद्धारः

तारो वत्रनखदंष्ट्रायुधाय च महापदम् । सिंहय वर्मस्त्रिप्रान्तः सिंहाणुरीरितः ॥१०॥

आसनं मनुनानेन दद्यान्मूलेन कल्पयेत् ।

वर्म हुं, अस्त्रं फट्, नर्तिर्मः।

मूर्तिमावाह्य तस्यां तां पूजयेच्चन्दनादिभिः। प्रथमावृतिरज्जैः स्याज्जयादिभिः परा परा ॥१ १॥

शङ्खादिकैरायुधैः स्याच्चतुर्थीन्द्रादिभिः परा। तदायुधैश्च दुर्गायाः पूजनं समुदीरितम् ॥१ २॥

सजया विजया कीर्तिः प्रीतिः प्रभा समीरिता श्रद्धा। मेधा श्रुतिः स्वनामाद्यक्षरपूर्वाः समभ्यर्च्याः ॥१ ३॥

अरिरगदासिपाशाङ्कुशरघनबूष्यायुधानि गदितानि। इत्यं दुर्गामन्त्रं यो भजते स नर इन्द्रिरां लभते ॥१ ४॥

सिंह मन्त्र—मूलोक्त श्लोक १० के उद्धार करने पर सिंह मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—३० वत्रनखदंष्ट्रायुधाय  
महसिंहाय फट् नमः।

इस मन्त्र से दुर्गा को आसन प्रदान करे। मूल मन्त्र से कल्पित मूर्ति को आवाहित कर उसमें चन्दनादि से पूजन करे। उसी में अंगपूजा, आयुध-पूजा एवं लोकपाल पूजन करे। तदनन्तर जया-विजया आदि का पूजन करे। शंख, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अंकुश, शर एवं धनुष इनके आयुध कहे गये हैं। इस दुर्गा मन्त्र का जो जप करता है, वह लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

### पूजाप्रयोगविधानम्

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातरुत्थाय योगपीठन्यासाने मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ३० नारदाय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः; हृदये श्रीदुर्गायै देवतायै नमः; इति विन्यस्य कृताङ्गलिर्मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः इत्युक्त्वा, ३० हींदुर्गायै हां हृदयाय नमः, ३० हींहंदुर्गायै हीं शिरसे ० इत्यादिषडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलानं हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य, ध्यानादिमानसपूजाने स्वर्णादिपट्टे चन्दनादिभरन्तर्बहिर्विभागेनाष्टदलकमलं कृत्वा तद्विहश्तुद्वारायुक्तचतुरश्चत्रयं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्रावृत् स्वपुरतः संस्थाप्यार्थस्थापनादिपरतत्वाचार्नां विधाय, अष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिणयेन आं प्रभायै नमः, ई मायायै०, ऊं जयायै०, एं सूक्ष्मायै०, ऐं विशुद्धायै०, ओं नन्दिन्यै०, औं सुप्रभायै०, अं विजयायै०, मध्ये अः सर्वसिद्धयै नमः; इति संपूज्य, '३० वत्र-नखदंष्ट्रायुधाय महसिंहाय हुं फट् नमः' इति पीठस्य मध्ये समभ्यर्च्यावाहनादिपुष्टोचाराने प्रावदङ्गानि संपूज्यान्तरष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिणयेन ३० ऊं जं जयायै नमः, ३० विं विजयायै०, ३० किं कीर्त्यै०, ३० प्रिं प्रीत्यै०, ३० प्रं प्रभायै०, ३० श्रं श्रद्धायै०, ३० में मेधायै०, ३० श्रुं श्रुत्यै नमः; इति संपूज्य, बाह्याष्टदलेषु ३० शंखाय नमः, चक्रायै०, गदायै०, खड्गायै०, पाशायै०, अङ्कुशायै०, शरेभ्यः०, धनुषे नमः; इति प्रादक्षिणयेन संपूज्य, प्रावृत् वीथीद्वये लोकपालतदत्त्वाचार्दि सर्वं समापयेत्।

प्रयोग—प्रातः उठकर योगपीठ न्यास तक की क्रिया करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि ३० नारदाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीदुर्गायै देवतायै नमः। तब हाथ जोड़कर कहे—मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः। तदनन्तर षडङ्ग न्यास करे—३० हीं दुं दुर्गायै हां हृदयाय नमः, ३० हीं दुं दुर्गायै हां शिरसे स्वाहा इत्यादि। इसी प्रकार करन्यास और हृदयादि न्यास करे। ध्यान-मानस पूजन के बाद सोने आदि के पत्र पर चन्दनादि से एक अष्टदल कमल के बाहर दूसरा अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन भूपुर बनाकर पूजाचक्र का निर्माण करे। उसे पूर्ववत् अपने आगे स्थापित करके अर्थ स्थापन करे। परतत्वान्त तक पीठपूजा करे। अष्टदल के केसरों में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार पूजा करे—आं प्रभायै नमः। ई मायायै नमः। ऊं जयायै नमः। एं सूक्ष्मायै नमः। ऐं विशुद्धायै नमः। ओं नन्दिन्यै नमः। औं सुप्रभायै नमः। अं विजयायै नमः। मध्य में अः सर्वसिद्धयै नमः से पूजन करे। इसके बाद पीठमध्य में पूजा करे—३० वत्रनखदंष्ट्रायुधाय महसिंहाय हुं फट् नमः। पीठपूजा के बाद आवाहन से लेकर पुष्पोचार तक षडङ्ग पूजन करे। अष्टदल में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से पूजा करे—३० ऊं जं जयायै नमः। ३० विं विजयायै नमः। ३० किं कीर्त्यै नमः। ३० प्रिं प्रीत्यै नमः। ३० प्रं प्रभायै नमः। ३० श्रं श्रद्धायै नमः। ३० में मेधायै नमः। ३० श्रुं श्रुत्यै नमः। बाहरी अष्टदल में इस प्रकार पूजा करे—३० शंखाय नमः। ३० चक्राय नमः। ३० गदाय नमः। ३० खड्गाय नमः। ३० पाशाय नमः। ३० अंकुशाय नमः। ३० शरेभ्यो नमः। ३० धनुषे नमः। तदनन्तर पूर्ववत् भूपुर की वीथिद्वय में लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे।

तथा—  
जितेन्द्रियो हविष्याशी वसुलक्षं जपेन्मनुम् । तत्सहस्रं तिलैः स्वादुलोलितैर्वा पयोन्धसा ॥१५॥  
जुहुयादेधिते वह्नौ तर्पणादि तत्शरेत् ।  
वसुलक्षमष्टलक्षं, स्वादु त्रिमधु ।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत् सुधीः ॥१६॥

यथोक्तेन विधानेन नव कुभान् मनोरमान् । पञ्चरत्समायुक्तान् नवस्थानेषु विन्यसेत् ॥१७॥  
मन्त्री दुर्गा यजेन्मध्ये त्वन्यत्र च जयादिकाः । चन्दनादैः समध्यर्च्य धूपदीपैश्च मन्त्रवित् ॥१८॥  
अभिष्ठेत्रियं साध्यं राजानं वा शिशुं बृथः । विजयश्रीसमायुक्तो राजा भवति नान्यथ ॥१९॥  
भूतापस्मारवेतालपिशाचार्द्यवियुज्यते । वस्या च ललना पुत्रं विनीतं प्राप्नुयाच्छुभम् ॥२०॥  
आपमयान्मुच्यते मत्यो दीर्घायुश्च न संशयः । अनेनैव विधानेन जनानामनुरक्षनम् ॥२१॥  
एवं दुर्गामनुं मत्यो यो भजेद्विधिनामुना । स दीर्घायुश्च दुरितं जयेत्सुविजितामयः ॥२२॥

जितेन्द्रिय एवं हविष्यभोजी रहकर आठ लाख मन्त्रजप करे। आठ हजार हवन त्रिमधुरात्क तिल से प्रज्वलित अग्नि में करे। तदनन्तर तर्पण आदि करे। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से साधक प्रयोग करे। यथोक्त विधान से सुन्दर नव घड़ों को नव स्थान में रखकर उनमें पञ्चरत्न डाले, जल भरे। बीच वाले घड़े में दुर्गा का पूजन करे। शेष आठ घटों में जयादि का पूजन चन्दनादि धूप-दीप से करे। इस जल से स्प्रिय साध्य राजा या बालक का अभिषेक करे तो राजा युद्ध में विजयी होता है। भूत-अपस्मार-वेताल-पिशाच आदि पौडित को छोड़कर भाग जाते हैं। वस्या या ललना विनीत पुत्र प्राप्त करती है। मनुष्य निरोग होकर दीर्घायु का भोग करता है। इस विधान से जनकल्याण भी होता है। इस विधि से जो दुर्गा का भजन-पूजन-जप करता है, वह दीर्घ काल तक जीवित रहकर सदा विजयी रहता है।

#### दैर्घ्यनविधिः

पद्मे तारगतां शक्तिं ससाध्यां तद्वलेष्वथ । मन्त्रवर्णाल्लिखेदष्टौ त्रिष्टुब्बन्त्रेण वेष्टयेत् ॥२३॥  
मातृकार्ण्बहर्वीतं चतुरश्रेण वेष्टयेत् । दौर्ग यन्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं परम् ॥२४॥  
अपस्मारमहाभूतक्षुद्रज्वरनिवारणम् । नृणां विजयदं स्त्रीणां पुत्रदं नात्र संशयः ॥२५॥ इति।

**अस्यार्थः—**अष्टदलपद्मं कृत्वा तन्मध्ये तारं तस्योदरे शक्तिकीजं तदुदरे साध्यनाम च विलिख्य, तद्वलेषु मन्त्रवर्णनैककशो विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वाऽन्तर्वीथ्यां, ‘जातवेदसे सुनवामे’ त्रिष्टुब्बन्त्रेण संवेष्य, तद्विश्वतुरशं कुर्यात्। एतद्विष्टुपुरुक्फलदं भवति। पूर्वोक्तनवकुम्भस्थापनमस्मिन्नेव यन्ने ज्ञेयम्।

अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में ३५, ३५ के मध्य में हीं और ‘हीं’ के उदर में साध्य नाम लिखे। उसके दलों में अष्टक्षर दुर्गा मन्त्र के अक्षरों को लिखे। अष्टदल के बाहर तीन वृत लिखे। पहली वीथि में ‘जातवेदसे सुनवाम’ के अक्षरों को लिखकर वेष्टित करे। बाहरी वीथि में मातृका वर्णों को लिखे। इसके बाहर चतुरस बनावे। यह दुर्गा यन्त्र सर्वसिद्धिकर है। इससे अपस्मार-महाभूत एवं क्षुद्रज्वर का निवारण होता है। यह पुरुषों को विजयी बनाता है और नारियों को पुत्र देता है। इसी यन्त्र में पूर्वोक्त नव कलशों को स्थापित करना चाहिये।

#### महिषमर्दिनीमन्त्रप्रयोगः

**नारायणीये—**  
विषं हि मज्जा कालोऽप्निरत्रिनिष्ठो नितद्वयम् । मन्त्रो महिषमर्दन्याः प्रोक्तो वस्वक्षरात्मकः ॥१॥  
विषं म, हि स्वरूपं, मज्जा ष, कालो म, अग्निः र, अत्रिनिष्ठो दकारस्थस्तेन द, नि स्वरूपं, उद्वयं स्वाहा।  
मार्कण्डेयो मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः । सुरासुरनता देवी प्रोक्ता महिषमर्दनी ॥२॥

शारदातिलके (११.२२)—

महिषमर्दिनि हुंफट् हृदयं परिकीर्तितम् । महिषशत्रूत्सादि हुंफट् शिरोऽङ्गं समुदीरितम् ॥१॥

महिषं भीषयद्वन्द्वं हुंफडन्तः शिखामनुः । महिषं हनयुग्मान्ते देवि हुंफट् तनुच्छदम् ॥२॥

महिषान्ते सूदनि हुंफडन्तं चास्त्रमीरितम् । मन्त्रैरेतजातियुक्तैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥३॥

गारुडोपलसन्निभां मणिमौलिकुण्डलमण्डताम् । नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ॥४॥

शंखचक्रकृपाणखेटकबाणकार्मुकशूलकान् । तर्जनीमपि बिभ्रतीं निजबाहुभिः शाशिशेखराम् ॥५॥

दक्षाङ्गूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम् । ईशानशिवे तु—

थ्यायेत् श्यामां महादुर्गा सर्वाभरणभूषिताम् । जटामुकुटशोभाढ्यां स्फुरच्चन्द्रकलान्विताम् ॥१॥

पीताम्बरधरां देवीं पीनोत्रतकुचद्वयाम् । शङ्खचक्रलसद्वस्तां तदधः खड्गखेटकौ ॥२॥

बाणचापौ च तदधः सशूलां तर्जनीमधः ।

तर्जनीति तर्जनीमुद्रा । तल्लक्षणं यथा—‘तर्जन्येकाकिनी ऊर्ध्वं शेषाः संनमितास्त्वधः । मुद्रेय तर्जनी प्रोक्ता वक्तृश्रोत्रोस्तु भीतिदा’ इति सारसंग्रहोक्ता ।

महिषमर्दिनी मन्त्र—नारायणीय के श्लोक का उद्घार करने पर महिषमर्दिनी का आठ अक्षरों का यह मन्त्र स्पष्ट होता है—महिषमर्दिनि स्वाहा । इसके ऋषि मार्कण्डेय, छन्द गायत्री और देवता सुरासुरनुता देवी महिषमर्दिनी हैं ।

शारदातिलक के अनुसार पञ्चाङ्ग न्यास—महिषमर्दिनी हुं फट् हृदयाय नमः । महिषशत्रूत्सादि हुं फट् शिरसे स्वाहा । महिषं भीषय भीषय हुं फट् शिखायै वषट् । महिषं हन हन हुं फट् कवचाय हुं । महिषसूदनि हुं फट् अस्त्राय फट् । जातियुक्त मन्त्र से पञ्चाङ्ग न्यास करे । इसके बाद निम्नवत् ध्यान करे—

गारुडोपलसन्निभां मणिमौलिकुण्डलमण्डताम् । नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ॥

शंखचक्रकृपाणखेटकबाणकार्मुकशूलकान् । तर्जनीमपि बिभ्रतीं निजबाहुभिः शाशिशेखराम् ॥

ऊपरी दाहिने हाथ से प्रारम्भ करके ऊपरी बाँयें हाथ तक दश आयुधों को ध्यान करे । ईशानशिव के अनुसार इनका ध्यान इस प्रकार है—

थ्यायेत् श्यामां महादुर्गा सर्वाभरणभूषिताम् । जटामुकुटशोभाढ्यां स्फुरच्चन्द्रकलान्विताम् ॥

पीताम्बरधरां देवीं पीनोत्रतकुचद्वयाम् । शङ्खचक्रलसद्वस्तां तदधः खड्गखेटकौ ॥

बाणचापौ च तदधः सशूलां तर्जनीमधः ।

इनके आयुधों में शङ्ख, चक्र, खड्ग, ढाल, बाण-धनुष एवं विशूल आते हैं ।

ततः पूर्वोदिते पीठे यजेन्महिषमर्दिनीम् ॥३॥

प्रथमावृतिरङ्गैः स्याद् दुर्गाद्याभिः परा परा । ध्यानोत्तेत्रायुधैर्यैर्यैलोकपालैः परीरिता ॥४॥

तदायुधैः पञ्चमी स्यादेवं पूजा समीरिता । दुर्गाद्या वरवर्णिन्या ह्यार्या च कनकप्रभा ॥५॥

कृतिका ह्यभयाद्या च प्रदा कन्या स्वरूपिका । दीर्घस्वराद्या: क्रमतः पूजयेन्मन्त्रवित्तमः ॥६॥ इति ।

दीर्घद्याः क्लीवान्त्यरहितदीर्घस्वराद्याः । नारायणीये पूर्वे पटलेऽनन्तत्रविद्ययोन्यादीत्युक्त्वोत्तरपटले आदैः स्वरैः क्रमादित्युक्तम् । आदैः—आईऊएओआौअं इति परस्परैरिति टीका । याद्यार्दिभिर्हन्तैरिति ।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रागवद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि मार्कण्डेयाय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीमहिषमर्दिन्यै देवतायै नमः, इति विन्यस्य विनियोगमुल्कीर्य, महिषमर्दिनीहुंफट् हृदयाय नमः । महिषशत्रूत्सादि हुंफट् शिरसे स्वाहा । महिषं हेषय २ हुंफट् शिखायै वषट् । महिषं हनहन देवि हुंफट्

कवचाय हुं महिषसूदनि हुं फट् अस्त्राय फट्। इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् पूर्वमन्त्रभिमृष्टयोः पाण्योरहृष्टादिकनिष्ठिकान्तास्वहृलिषु विन्यस्य, नेत्ररहितेषु हृदयादिपञ्चाङ्गेषु विन्यस्य, ध्यानमानसपूजान्ते पूर्वमन्त्रोक्तं पूजाचक्रं निर्मायार्थस्थापनाद्यपूजान्ते तदष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन आं दुर्गायै नमः, ई वरवर्णिण्यै नमः, ऊं आर्यायै०, एं कनकप्रभायै०, ऐं कृति-कायै०, ओं अभयप्रदायै०, औं कन्यायै०, अं स्वरूपायै नमः, इति संपूज्य, द्वितीयेष्टदले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन यं शङ्खाय नमः, रं चक्राय०, लं खड्गाय०, वं खेटकाय०, शं बाणाय०, षं बाणासनाय०, सं शूलाय०, हं तर्जन्यै नमः, इति संपूज्य दिगीशार्चादि शेषं प्राग्वत् समापयेदिति।

ध्यान के पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर महिषमर्दिनी का पूजन करे। पूर्ववत् योगपीठ न्यास के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि मार्कण्डेयाय ऋषये नमः। मुखे गायत्री छन्दसे नमः। हृदये महिषमर्दिन्यै देवतायै नमः। तदनन्तर ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः कहकर पञ्चाङ्ग न्यास करे। महिषमर्दिनि हुं फट् हृदयाय नमः। महिषशत्रूत्सादि हुं फट् शिरसे स्वाहा। महिषं हेषय हेषय हुं फट् शिखायै वषट्। महिषं हन हन देवि हुं फट् कवचाय हुं। महिषसूदनि हुं फट् अस्त्राय फट्। इन्हीं पञ्चाङ्ग मन्त्रों से अंगूठे से कनिष्ठा तक की अंगुलियों में न्यास करे। नेत्ररहित हृदयादि पञ्चाङ्ग में न्यास करे ध्यान करके मानस पूजा करे। पूर्वमन्त्रोक्तं पूजाचक्र बनाकर अर्थ स्थापन करके अंगपूजा करे। तब अष्टदल में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से पूजा करे। प्रथम अष्टदल में इस प्रकार पूजन करे—आं दुर्गायै नमः, ई वरवर्णिन्यै नमः, ऊं आर्यायै नमः, एं कनकप्रभायै नमः, ऐं कृतिकायै नमः, ओं अभयप्रदायै नमः, औं कन्यायै नमः, अं स्वरूपायै नमः। द्वितीय अष्टदल में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से यं शङ्खाय नमः, रं चक्राय नमः, लं खड्गाय नमः, वं खेटकाय नमः, शं बाणाय नमः, षं बाणासनाय नमः, सं शूलाय नमः, हं तर्जन्यै नमः। तत्पश्चात् लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

### तथा—

प्रजपेद्वसुलक्षं च तत्सहस्रं तिलहृनेत्। एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः ॥७॥  
 तिलहृमाद्वशीकारो नृणां स्त्रीणां भवेद् ध्रुवम्। आमयान्मूच्यते मर्त्यः सद्यः सर्वप्रहोमतः ॥८॥  
 पद्महोमात्तथा राजा: संग्रामे विजयो भवेत्। दूर्वाहोमेन मर्त्यानां रोगशान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥९॥  
 ब्रह्मवृक्षोत्थकुसूर्मैलभते पुष्टिमुत्तमाम्। धान्यहोमेन धान्याप्तिः काकपक्षहुतेन च ॥१०॥  
 विद्वेषो जायते लोके हात्यन्तं सुहदोरपि। शत्रुर्गच्छति पञ्चत्वं सत्यं मरिचहोमतः ॥११॥  
 एवं यो भजते देवीं दुर्गा महिषमर्दिनीम्। स नाशयेत् क्षुद्रभूतचौरादीन् दर्शनादपि ॥१२॥ इति।

आठ लाख मन्त्र जप करे। आठ हजार तिल से हवन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने पर मन्त्री उसका प्रयोग करे। तिल के हवन से नर-नारी वश में होते हैं। सरसों के हवन से मनुष्य निरोग होता है। कमल के हवन से राजा युद्ध में विजयी होता है। दूर्वा के हवन से मनुष्यों का रोग छूट जाता है। पलाशफूलों के हवन से उत्तम पुष्टि होती है। धान्य के हवन से धान्य मिलता है। कौआ के पंख के हवन से लोगों में विद्वेष होता है; साथ ही परम मित्रों में भी द्वेष हो जाता है। मरिच के हवन से शत्रु की मृत्यु होती है। इस प्रकार महिषमर्दिनी दुर्गा देवी को जो भजता है, उसे देखते ही क्षुद्र, भूत, चोर आदि भाग जाते हैं।

### सारसंग्रहे—

वेदादिर्दुर्गासम्बुद्धिद्वितयं वहिरन्त्यगः। टपञ्चमः सनयनः कृशानुगृहिणी ततः ॥१॥  
 पञ्चक्त्यक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां सर्वसिद्धिः।

वेदादिः प्रणवः। दुर्गासम्बुद्धिद्वितयं दुर्गे दुर्गे इति। वही रेफः। अन्त्यगः क्षकारः, टपञ्चमो णकारः सनयन इकारसहितस्तेन पिणि। कृशानुगृहिणी स्वाहा। शारदातिलके—‘तारो दुर्गेयुगं रक्तमन्त्यं ढान्तं सलोचनम्’ इत्युद्धतं, तत्र सलोचनमिति ढान्तस्य च विशेषणमिति द्वयोरपीकारयोग उक्तस्तद्वीकारृता अपेक्षितार्थद्योतनिकाकारेण। तेन क्षिणि इति केचिद्वदन्ति, तत्र रम्यम्। ‘तारो दुर्गेद्वयं वहिरन्त्यं ढान्तं सदृक् शिरः’ इति नारायणीयवचनात्।

सारसंग्रह के मूलोक्त श्लोक का उद्धार करने पर मन्त्र होता है—ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा। यह दशाक्षर मन्त्र है। भजन करने पर यह मन्त्र सभी सिद्धियों को देने वाला है। शारदातिलक, नारायणीय और कालिका पुराण के अनुसार भी मन्त्र का स्वरूप यही है।

नारायणीय के अनुसार इसके क्रष्णि नारद, छन्द विराट् और देवता भोग-मोक्ष देने वाली जयदुर्गा है। तार आदि पाँच पदों और पूरे मन्त्र से अंगन्यास करना चाहिये।

### जयदुर्गामन्त्रः

**वहिभार्या स्वरः षष्ठो ढान्तः प्रान्त्योऽग्निरेव च । दुर्गे द्विरिति सोंकारो दुर्गामन्त्रः स्मृतो बुधैः ॥**

इति कालिकापुराणाच्च। अत्र षष्ठः स्वर इकारः सप्तस्वराङ्गीकारात्। हस्तदीर्घयेरेकत्वात् व्युत्क्लमेण इकारस्य षष्ठत्वात् सन्निधिस्थेन ढान्तेनैव अस्यान्वये जाते केवलप्रान्तप्रतीतेरुक्तशारदातिलकस्यापि लाघवादेकस्यैव सलोचनमिति पदं विशेषणमित्यर्थः। अत्र व्युत्क्लमेण मन्त्रोद्धारो बोद्धव्यः। तथा नारायणीये—

**नारदो मुनिराख्यातो विराट्छन्द उदाहृतम् । जयदुर्गा देवता स्याद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥१॥ तारादैः पञ्चभिर्मन्त्रपदैः सर्वेण संमता । जातियुक्तैरङ्गक्लृप्तिः ..... ॥२॥**

शारदातिलके—

**दुर्गे च हृदयं प्रोक्तं दुर्गे शिर इतीरितम् । दुर्गायै स्याच्छिखा वर्म भूतरक्षणि कीर्तितम् ॥१॥ तारादि दुर्गे-द्वितये रक्षण्यस्त्रं प्रकीर्तितम् ।**

इति षड्ग्रन्थमन्त्रा उक्ताः। अत्र केचित् तारादीति वर्मान्तमन्त्रमन्त्रान्तर्वदन्ति। वस्तुतस्तु तयोरुक्तमध्ये तदन्तर्भाव इति तत्त्वम्। ध्यानम्—

**जलदद्युतिमिन्दुकिरीटां चक्रदरासिरुजः करपदैः ।**

**दधतीं नयनत्रयसुक्तां सिंहगतां प्रणमेज्जयदुर्गाम् ॥१॥**

रुक् त्रिशूलम्। वामोर्ध्वादिवामाधः करान्तमायुध्यानम्। दक्षोर्ध्वादितदधोऽन्तं वा। तथा—

**दौर्गे पीठे यजेद् देवीमुक्तमार्गेण मन्त्रवित् । प्रजपेत् पञ्चलक्षं च तद्वासांशं हुनेद् घृतैः ॥१॥ उक्तमार्गेण प्रथमाषाक्षरोक्तमार्गेण।**

शारदातिलक के अनुसार दुर्गे से हृदय, दुर्गे से शिर, दुर्गायै से शिखा, रक्षणि से कवच और ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि से अख्त का न्यास करे। इसका ध्यान इस प्रकार है—

**जलदद्युतिमिन्दुकिरीटां चक्रदरासिरुजः करपदैः । दधतीं नयनत्रयसुक्तां सिंहगतां प्रणमेज्जयदुर्गाम् ।**

दुर्गापीठ में अष्टाक्षर मन्त्रोक्त विधि से साधक दुर्गा का पूजन करे। पाँच लाख मन्त्र का जप करे। उसका दशांश धी से हवन करे।

**तर्पणादि ततः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः । ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्सुधीः ॥२॥**

इमं मन्त्रं जपन् भूयः प्रविशोच्चत्रुसङ्गरम्। अशेषेण रिपुं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥३॥

विवादे व्यवहारादौ जप्तो विजयदो भवेत् । अनयान्नाणि विद्वानि शान्नाणि सुबहून्यपि ॥४॥

**सुजप्तानि च सङ्ग्यामे सम्यग्विजयदानि च । इति ।**

हवन के बाद तर्पण करे तब मन्त्र सिद्ध होता है। इस सिद्ध मन्त्र से साधक प्रयोग करे। इस मन्त्र को जपते हुए यदि शत्रुसेना में प्रवेश करे तो पूरी शत्रुसेना का संहार कर देता है। व्यवहार-विवाद में इसके जप से विजय होती है। इस मन्त्र से अख्त-शस्त्रों को मन्त्रित करके युद्ध में जाने पर जीत होती है।

सारसंग्रहे—

तारो हन्मन्त्रतो दुर्गेद्वयं रक्षणि च द्विठः । द्वादशाणो मनुः प्रोक्तो मुन्याद्यं पूर्ववच्चरेत् ॥१॥  
व्यस्तेन च समस्तेन मन्त्रेणाङ्गानि षट् क्रमात् । ध्यानपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ॥२॥

द्विठः स्वाहाकारः । पूर्ववद् दुर्गाष्टक्षरवत् । तथा—

प्रणवो हृद्गगवती ज्वालामालिनी गृध्रगः । णलोहितो रिवृते च द्विठान्तः परिकीर्तिः ॥३॥  
द्वाविंशत्यर्णको मन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ।  
हन्ममः । लोहितः पा द्विठः स्वाहा । अन्यानि पदानि स्वस्त्रपाणि ।

त्रिचतुष्पञ्चवस्त्रणीर्मिश्रमन्त्राणकिः क्रमात् ॥४॥

पञ्चाङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत् । अन्यच्छूलिनिदुर्गावत् सर्वमस्य प्रकल्पयेत् ॥५॥ इति

दुर्गा का अन्य मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार दुर्गा का अन्य मन्त्र है—ॐ नमः दुर्गे रक्षणि स्वाहा । बारह अक्षर का यह मन्त्र है । इसका ऋत्यादि न्यास पूर्ववत् किया जाता है । मन्त्र के छः पदों से षडङ्ग न्यास किया जाता है । ध्यान ही पूजनादि सभी पूर्ववत् ही करना चाहिये ।

दुर्गा का अन्य मन्त्र—नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते स्वाहा । यह बाइस अक्षरों का दुर्गा का मन्त्र सर्वकामफलप्रद है ।

मन्त्र के ३, ४, ५, ८, २ वर्णों से पञ्चाङ्ग न्यास करे और शेष समस्त विधियाँ शूलिनी दुर्गा के समान करे ।

शूलिनिदुर्गामित्रप्रयोगः

अथ शूलिनिदुर्गाविधिर्लिख्यते । सारसंग्रहे—

अथ शूलिनिदुर्गाया मनुं वक्ष्ये यथाविधि । चतृतीयं सुधायुक्तं धरा हेतदद्वयं ततः ॥६॥

मरुत्पञ्चमं च वामशूतीनां भूमिरक्षियुक् । दीर्घं तृतीयस्वररयुक् त-तृतीयश्च कर्णयुक् ॥७॥

षष्ठ्यव्योमं च वर्मास्त्रिवहियोषावसानकः । अयं शूलिनि दुर्गायास्तिथिवर्णो मनुर्मतः ॥८॥

चतृतीयं ज, सुधा व, तद्युक्तं तेन ज्व, धरा ल, एतदद्वयं ज्वलज्वल इति । मरुत्पञ्चम श, वामशूति: ऊ तेन शू। भूमिर्ल, अक्षि इ तेन लि । दीर्घा न, तृतीयस्वर इ तेन नि । तृतीयो द, कर्ण उ तेन दु । षष्ठ्य स्वरूपं व्योम ह, वर्म हुं, अखं फट्, वहियोषा स्वाहा ।

मुनिर्दीर्घतमाच्छन्दः ककुबुक्तं च देवता । शूलिन्याहा महादुर्गा क्षुद्रदृष्टविनाशिनी ॥९॥

दुर्गे स्याद् हृदयं शीर्षं वरदे विन्द्यवासिनी । शिखा वर्मसुरान्ते च मर्दन्यन्ते ततो वदेत् ॥१०॥

युद्धप्रिये पदं पश्चात् त्रासय-द्वयमीरितम् । पञ्चाङ्गमन्त्रा उद्दिष्टा एवं न्यस्तस्य मन्त्रिणः ॥११॥

रक्षाकृद्द्वृदोषव्यन्मङ्गकर्म भवेद् धूमैः । एवं न्यस्तशरीरोऽसौ ध्यायेद् दुर्गा सुरेनुताम् ॥१२॥

पञ्चाङ्गमन्त्रानाह—‘दुर्गे स्याद्दद्य’मित्यादि । तेन शूलिनि इत्यादावते देवसिद्धेत्यादि । तद्युक्तं नारायणीये—

एवमादौ शूलिनीति पदं तारादिकं वदेत् । अवसाने तु सर्वेषां देवसिद्धसुपूजिते ॥१॥

नन्दिनीरक्षियुग्मं च महायोगेश्वरीमपि । वर्मस्त्रिबीजे चामूनि ग्रहरक्षकराणि हि ॥२॥

पञ्चाशादावृत्यन्यासाज्ज्वरस्तीत्रोऽपि नश्यति ।

तारादित्वं च ज्वरप्रयोगे । तथा—

नीलाम्भोधरकान्तिमिन्दुमुकुटां सिंहाधिरूढां करैः । शूलं बाणमसि ह्यरिं दरगदाचापान् सपाशाज्ज्ञभैः ।

विभ्राणामसिखेटयुक्ततसुभिः कन्याभिराराद्वृतां नानाभूषणभूषितां त्रिनयनां दुर्गा भजे शूलिनीम् ॥

दक्षिणाधः करमारभ्य वामाधः करपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

दुर्गापीठे पुरा प्रोक्ते ध्यात्वा देवीं प्रपूजयेत् ॥३॥

वक्ष्यमाणेन विधिना पुराङ्गनि प्रपूजयेत् । दुर्गादिभिर्द्वितीया स्यादायुधैश्चापरा स्मृता ॥४॥  
दिशाधिनाथैर्व्रत्रादैरेवमर्चा समीरिता । दुर्गा च वरदा विन्द्यवासिन्यसुरमर्दिनी ॥५॥  
प्रोक्ता युद्धप्रिया देवसिद्धसुपूजितापि च । नन्दिन्या समहायोगेश्वरीति गदिताश्च ताः ॥६॥

आयुधानि तु—‘चक्रदरासिगदाशरशारासनत्रिशिखपाशकानि विदुः’।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दीर्घतमसे ऋषये नमः। मुखे ककुप् छन्दसे नमः। हृदि शूलिनीदुर्गायै देवतायै नमः। इति विन्यस्य विनियोगमुक्त्वा, शूलिनि दुर्गे देवसिद्धसुपूजिते, हृदयाय नमः। शूलिनि वरदे देवसिद्धसुपूजिते, शिरसे स्वाहा। शूलिनि विन्द्यवासिनि देवसिद्धसुपूजिते, शिखायै वषट्। शूलिन्यसुरमर्दिनि देवसिद्धसुपूजिते, कवचाय हुं। शूलिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय देवसिद्धसुपूजिते, अत्राय फट्। इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् मूलमन्त्राभिमृष्टयोः पाण्योरङ्गुष्ठादिकनिष्ठास्वङ्गुलीषु विन्यस्य हृदयादिषु नेत्ररहितेषु पञ्चाङ्गेषु च विन्यस्य, ध्यानादिपञ्चाङ्गपूजान्तेऽष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ दुं दुर्गायै नमः, एवं वरदायै०, विन्द्यवासिन्यै०, असुरमर्दिन्यै०, युद्धप्रियायै०, देवसिद्धसुपूजितायै० नन्दिन्यै०, महायोगेश्वर्यै नमः, इति संपूज्य, द्वितीयाष्टदले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ चक्राय नमः, शंखायै०, खड्गायै०, गदायै०, बाणायै०, चापायै०, शूलायै०, पाशायै०, इति संपूज्य दिगीशार्चादि शेषं प्राग्वत् समापयेत् । तथा—

वर्णलक्ष्मं जपेमन्त्रं जुहुयात्तद्शांशतः । आज्येन प्राज्यहिष्मा तर्पणादि ततश्चरेत् ॥७॥

आराध्य विग्रान् विधिवद्वक्त्याभ्यर्थ्य गुरुं ततः । एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् मनसीप्सितान् ॥८॥

विदधीत विधानेन गुरोराजापुरः सम् । शूलाद्यायुधसंयुक्तामुग्रां स्वं शूलिनीं तथा ॥९॥

विचिन्त्य प्रजपेमन्त्रं ग्रस्तं स्पृष्ट्वा विधानतः । तमाविश्य क्षणं सर्वं वदेत्पश्चाद्विनश्यति ॥१०॥

मन्त्रावृत्या तदानीं च भूतसङ्घः पलायते । स्मृत्वात्मरोगिणोर्मध्ये शूलिनीमायुधैर्वृताम् ॥११॥

जपतो विद्रवन्याशु ग्रहा अवशिग्रहा । दुःसर्पवृश्चिकायूर्यं बहुपात्कुकुरोद्धवम् ॥१२॥

लूतिकादिकीटोत्थं विषं नाशयति क्षणात् । निशिते सायके देवीमाधायैव च शूलिनीम् ॥१३॥

क्षेमङ्गरीं पूजयित्वा मनुमेनं जपेत्सुधीः परायुधानि गृह्णाति सेना निश्चेष्टका भवेत् ॥१४॥

तिलयुक्तैः सर्वपैश्च वैरिणो नामसंयुतैः । लक्षं प्रजुहुयाच्छन्त्रुरामयाविष्टविग्रहः ॥१५॥

यमातिथित्वमायाति नात्र कार्या विचारणा । त्रिस्वाद्वैक्तिलैरष्टसहस्रं प्रत्यहं हुनेत् ॥१६॥

अष्टसहस्रमष्टोत्रसहस्रमित्यर्थः ।

शक्तिरस्याप्रतिहता वत्सरात् प्रागभवेदलम् । धृतेनाष्टशतं मन्त्री जुहुयाद्वाज्ञितं लभेत् ॥१७॥

वत्सरात् प्रागदूर्वया च मधुरत्रययुक्तया । सम्यगष्टोत्रशतं जुहुयादीप्सितं लभेत् ॥१८॥

छुरिकाखड्गनाराचाः सञ्जप्ता मनुनामुना । संपातघृतसिक्ताश्च संग्रामेऽहतशक्तयः ॥१९॥

अष्टोत्रशतं मन्त्री गुलिका गोमयस्य च । जुहुयात्सप्तदिवसैरिष्टौ द्विष्टौ स्त आदरात् ॥२०॥

अस्पृष्टभूम्यन्तरिक्षे गृहीत्वा गोमयं शुभम् । त्रिसहस्रमितं जप्त्वा यथासोद्वर्ति संखनेत् ॥२१॥

तस्य संस्तम्भनं मद्भूष्मं भवेत्रैवात्र संशयः । सेनामुखे निखातं च सेनास्तम्भं करोत्यलम् ॥२२॥

प्रामं वा नगरं गच्छन् संस्मरेदम्बिकां सुधीः । पानीयान्नकरीं चैव प्रसन्नां प्रजपेत्मनुम् ॥२३॥

तर्पयित्वा प्रविष्टस्ते प्राप्नुयादिष्टभोजनम् । सह च भृत्यवर्णेण साधको नात्र संशयः ॥२४॥

अर्कवृक्षसमिद्धिश्च त्रिमध्यक्त्याभिरुक्तवत् । जुहुयाद्रविसाहस्रं यानुद्दिश्य तु साधकः ॥२५॥

भवन्त्येव हि ते वश्यास्तथाश्वत्यसमिद्वैः । प्रसन्नत्रयेत्वा तिलैः पूर्वकर्मणि वा हुनेत् ॥२६॥

दुर्गाक्लिप्योदितान् सर्वान् प्रयोगान् साधयेत्सुधीः ।

यन्त्रव्यतिरिक्तानिति ।

शूलिनी दुर्गा—सार संग्रह के श्लोकों का उद्धार करने पर शूलिनी दुर्गा का पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र होता है—ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रह हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि दीर्घतमा, छन्द कुबु, देवता क्षुद्र-दृष्टविनाशिनी महादुर्गा शूलिनी हैं। पञ्चाङ्ग न्यास इस प्रकार करे—शूलिनि दुर्गा हुं फट् हृदयाय नमः। शूलिनि वरदे हुं फट् शिरसे स्वाहा। शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् शिखायै वषट्। शूलिनि असुरमर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुं फट् कवचाय हुं। शूलिनि देवि सिद्धपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगीश्वरि हुं फट् अस्त्राय फट्। इस प्रकार पचास बार न्यास करने से तेज बुखार भी छूट जाता है और अन्य बहुत दोषों से रक्षा होती है। इस प्रकार का न्यास करके देवपूजिता दुर्गा का ध्यान निम्नवत् करे—

नीलाम्बोधरकन्तिमिन्दुमुकुटां सिंहाधिरुद्धां करैः शूलं बाणमासिं ह्यरि दरणदाचापान् सपाशाभ्युषौः।

विप्राणामसिखेटयुक्ततस्युभिः कन्याभिराराहृतां नानाभूषणभूषितां त्रिनयनां दुर्गा भजे शूलिनीम्।

पूर्वोक्त दुर्गा पीठ में ध्यान करके देवी की पूजा करे। विहित क्रम से पहले अंगों की पूजा करे।

प्रयोग—पूर्ववत् योगपीठ न्यास के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि दीर्घ- तमसे ऋषये नमः। मुखे ककुच्छन्दसे नमः। हृदये शूलिनीदुर्गायै देवतायै नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः से विनियोग करके षड्ङ्ग न्यास करे—शूलिनि दुर्गे देवसिद्धसुपूजिते हृदयाय नमः। शूलिनि वरदे देवसिद्धसुपूजिते शिरसे स्वाहा। शूलिनि विन्ध्यवासिनि देवसिद्धसुपूजिते शिखायै वषट्। शूलिन्यसुरमर्दिनि देवसिद्धसुपूजिते कवचाय हुम्। शूलिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय देवसिद्धसुपूजिते अस्त्राय फट्। इस पञ्चाङ्ग न्यास से करन्यास पञ्चाङ्ग न्यास करे। ध्यान करके पञ्चाङ्ग पूजन करे। प्रथम अष्टदल में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से पूजन करे—३ॐ दुर्गायै नमः। ३ॐ वरदायै नमः। ३ॐ विन्ध्य-वासिन्यै नमः। ३ॐ असुरमर्दिन्यै नमः। ३ॐ युद्धप्रियायै नमः। ३ॐ देवसिद्धपूजितायै नमः। ३ॐ नन्दिन्यै नमः। ३ॐ महायोगेश्वर्यै नमः। द्वितीय अष्टदल में स्वाग्रादि प्रादक्षिण्य क्रम से इस प्रकार पूजन करे—३ॐ चक्राय नमः, ३ॐ शङ्खाय नमः, ३ॐ गदायै नमः, ३ॐ खड्गाय नमः, ३ॐ बाणाय नमः, ३ॐ चापाय नमः, ३ॐ शूलाय नमः, ३ॐ पाशाय नमः। भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्षालों एवं उनके आयुधों की पूजा करें।

वर्णलक्ष के अनुसार पन्द्रह लाख मन्त्र का जप करे। दशांश हवन करे। हवन गाय के धी से और गोघृत मिश्रित खीर से करके तर्पण करे। विंत्रों की पूजा विधिवत् करके गुरु की पूजा भक्ति से करे। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से इच्छित प्रयोग गुरु से प्राप्त विधि के अनुसार करे। शूल आयुधों से युक्त क्रुद्ध शूलिनी का चिन्तन करते हुये पीड़ित को सर्पी करके मन्त्र जप करे तो पीड़ित में आविष्ट भूतादि सब कुछ बतलाकर नष्ट हो जाता है। इस मन्त्र की आवृत्ति से भूतों का समूह भाग जाता है। रोगी और अपने मध्य में शूलिनी के आठ आयुधों के बराबर आठ आवृत्ति के जप से अवशिष्टग्रह ग्रह तुरन्त द्रवित होते हैं। विष्णुले सर्प, बिछू से उत्पन्न उत्पात कुत्तों से उत्पन्न उत्पात, लूतिकादि कीटोत्य विष का नाश तुरन्त हो जाता है। रात में बाण में शूलिनी का चिन्तन करते हुए क्षेमकरी की पूजा करके इस मन्त्र का जप करे तो ये बाण शत्रुसेना के आयुधों को ग्रहण करके सेना को निश्चेष्ट कर देता है। तिल और सरसों को मिलाकर वैरी के नामसहित मन्त्र से एक लाख हवन करे तो शत्रु रोगप्रस्त हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। त्रिमधुरात् तिल से एक हजार आठ हवन करने पर एक वर्ष में अप्रतिहत शक्ति प्राप्त होती है। धी से एक सौ आठ हवन करने पर वांछित लाभ होता है। एक वर्ष तक त्रिमधुरात् दूर्वा से प्रतिदिन एक हजार आठ हवन करने से अभीष्ट सिद्ध होता है।

छूरीका, खड्ग, नाराच को इससे मन्त्रित करने के समय हवन के सम्पात घृतबुद्धों से सिक्त करने से संग्राम में अप्रतिहत शक्ति मिलती है। गोबर की एक सौ आठ गोलियों से सात दिनों तक हवन करने से द्वेषी आदर करने लगता है। गाय के गोबर को भूमि पर गिरने के पहले हाथ में लेकर उसे तीन हजार जप से मंत्रित करके जिसके द्वार पर गाड़ दिया जाय, उसका स्तम्भन हो जाता है। शत्रुसेना के सामने गाड़ देने से सेना का स्तम्भन हो जाता है। ग्राम या नगर में जाकर साधक अम्बिका का स्मरण करे कि माँ अन्न-पानी देने वाली प्रसन्न है और मन्त्र का जप करके तर्पण करके प्रवेश करे तो उसे मनोनुकूल

भोजन मिलता है और नौकर-चाकर मिलते हैं। अकवन की समिधा को त्रिमधुराक्त करके तीन हजार हवन जिसके उद्देश्य से किया जाता है, वह उसके बश में हो जाता है। पीपल की समिधा से अथवा तिल से प्रसन्न चित्त से हवन करे तो कार्य पूर्ण होता है। दुर्गा कल्पोक्त सभी प्रयोगों को साथक करे।

### वनदुर्गाप्रियोगविधिः

तथा सारसंग्रहे—

अथातो वनदुर्गायाः प्रोच्यते मन्त्र उत्तमः । धृतिश्च कामिकाद्वन्द्वं तुष्टियुग् वृष्टान्तकः ॥१॥  
रमेषुस्वरयुक्ता च परा विष्णुयुताक्षियुक् । प्रज्ञा जया तुष्टिबन्दुयुक्ता हंसश्च बालयुक् ॥२॥  
लोहितो नेत्रसहितो मन्त्रषष्ठाक्षरं वदेत् । क्लिन्ना सदण्डी वसुधा विषं पञ्जिस्वराण्युक् ॥३॥  
प्रभा महाकालश्रोत्रशूरः स्थर्थर्थं दुर्युग्धरिः । मरुन्मुक्त्यक्षिणी सन्ध्या क्यम् सन्ध्याक्य विन्दुमत् ॥४॥  
सूक्ष्मा कान्तियुता शुद्धिर्दीर्घकाले स्वसन्विता । विश्वमूर्तिः प्रभा बालः कामिकेयुग् वृष्टमकः ॥५॥  
वैकुण्ठो वसुधा चामिकान्ता मनुरयं भतः । प्रवरो वनदुर्गायाः ससप्तांशदर्पकः ॥६॥

धृतिरुकारः । कामिकाद्वन्द्वं ता तुष्टियुग् इकारयुक्तं तेन ति । वृषः ष स एव ठान्तस्तेन ष्ठ। रमा प इषुस्वर  
उ तद् युक्तस्तेन पु । परा रेफः विष्णुयुत उकारयुतस्तेन रु । अक्षियुक् प्रज्ञा षिः जया क तुष्टिरिकारः बिन्दुरनुस्वारस्तेन  
किं । हंसः स बालयुग् वकारयुक्तस्तेन स्व । लोहितः प नेत्रसहित इकारयुक्तस्तेन पि । मन्त्रषष्ठाक्षरं षिः क्लिन्ना भा  
सदण्डीवसुधा यं । विषं म पंक्तिस्वराण्युक् तेन मे । प्रभा सा । महाकालो म श्रोत्र उ तेन मु । शूरः पा स्थ स्वरूपं ।  
अर्थं दुर्युग्धरिः तं । मरुत् या । मुक्त्यक्षिणी दि । सन्ध्या शा । क्यम् स्वरूपं । सन्ध्या शा । क्य बिन्दुमत् क्यं । सूक्ष्मा व  
कान्तियुतस्तेन वा । शुद्धिः ता । दीर्घकालेस्वराण्विता मकारएकारयुक्तो नकारस्तेन न्मे । विश्वमूर्तिः भा प्रभा गा बालो  
वा । कामिकेयुक् तकार-इकारयुक् तेन ति । वृषमः शा । वैकुण्ठो मा वसुधा या । अग्निकान्ता स्वाहा । अत्र वा तम्भे  
इत्यक्षराणि कीलकानि । ईशानसंहितायाम्—‘गुणबीजं समुद्धृत्य उत्तिष्ठेति पदं ततः’ इत्यादि । ‘एवमेषा महाविद्या  
निष्कीला सर्वसिद्धिदा । गुणान्ते भुवनेशानी दुर्गाबीजं नियोजयेत् । मनोरन्ते त्रयं बीजं मुक्त्वा चान्ते विलोमतः ।  
पूर्वोक्तबीजत्रितयं योजयेत् क्रौञ्चादारणा ।’ बीजत्रयं प्रणवमायादुर्गाबीजानि विलोमतः दुर्गामायाप्रणवक्रमेण । एतावता  
आदौ बीजपञ्चकमनन्तरं मन्त्रस्तदनु विलोमेन त्रिबीजमिति मन्त्रः सिद्धः । तथा—

आरण्यको मुनिः प्रोक्तोऽत्यनुष्टुच्छन्द ईरितम् । वनदुर्गा देवतास्य सर्वशङ्कुविधातिनी ॥७॥  
ऋत्वब्यष्टाष्टर्तु-बाणिमित्तमन्त्राणिके: क्रमात् । जातियुक्तैः षडङ्गानि मनोरस्य प्रकल्पयेत् ॥८॥  
पादादृसन्धिके गुदे लिङ्गाधारोदरेषु च । पार्श्वयुग्मे हृदि कुचद्वद्वे कण्ठेऽष्टसन्धिषु ॥९॥  
करयोर्वदने नासागण्डदृक्कर्णयुग्मके । भ्रूमध्ये मूर्धनि मनोर्वण्णन् न्यसेद्यथाविधि ॥१०॥

ध्यानम्—

विद्युदामप्रभाभां कनकसरसिजे संस्थितां सत्तिनेत्रां  
हस्ताम्भोजैर्वहन्तीमरिदवरदाभीतिसंज्ञाः क्रमेण ।  
स्वर्णोद्यत्कान्तिवस्त्रां शशिकलितलसद्रलघूडां प्रसन्नां  
पार्श्वोद्यत्सन्मूर्गेद्रां हृदि वनवसतिं दावदुर्गा स्मरेऽहम् ॥११॥

दक्षाद्यूर्ध्वयोरादे तदाद्यथः स्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम् ।

इति ध्यात्वा महादेवीं पूजयेद्वक्तितपरः । पूर्वोदिते शुभे दौर्गे पीठे दुर्गा प्रपूजयेत् ॥१२॥  
पूर्वमङ्गानि पूज्यानि तत्र आर्यादिकान् यजेत् । चक्राद्यस्त्राणि मातृश्च लोकेशानायुधानि च ॥१३॥  
आर्या दुर्गा भद्रा सभद्रकाल्यमिका क्षेम्या । वेदाद्या गर्भाख्या क्षेमद्यष्टमी प्रोक्ता ॥१४॥

चक्रशङ्खासिखेषुधनु-रुद्रकरोटिकाः । तदयुधानीरितानि । दुर्गापूजामीरितम् ॥१५॥  
रुक् त्रिशूलम्। नृकरोटिनृकपालम्।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि आरण्यकाय ऋषये नमः। मुखे अत्यनुषुष्ठुन्दसे नमः। हहि श्रीवनदुर्गादिवतायै नमः। इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुक्तीर्त्य, उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः। किं स्वपिषि शिरसे स्वाहा। भयं मे समुपस्थितं शिखायै वषट्। यदि शक्यमशक्यं वा कवचाय हुं। तन्मे भगवति नेत्रयाय वौषट्। शमय स्वाहा अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्हृदयादिष्ठदङ्गेषु च विन्यस्य, दक्षपादाङ्गुलीमूले उं नमः। गुल्फे तिं नमः। जानुनि ष्ठं नमः। ऊरुमूले पुं नमः। वामपादाङ्गुलीमूले रुं नमः। गुल्फे पिं नमः। जानुनि किं नमः। ऊरुमूले स्वं नमः। गुदे पिं नमः। लिङ्गे पिं नमः। मूलाधारे भं नमः। उदरे यं नमः। दक्षपार्श्वे में नमः। वामपार्श्वे सं नमः। हहि मुं नमः। दक्षस्तने पं नमः। वामस्तने स्थिं नमः। कण्ठे तं नमः। दक्षकराङ्गुलिमूले यं नमः। दक्षमणिबन्धे दिं नमः। कूपरे शं नमः। बाहुमूले क्यं नमः। वामकराङ्गुलिमूले मं नमः। मणिबन्धे शं नमः। कूपरे क्यं नमः। बाहुमूले वां नमः। मुखे तं नमः। दक्षनासापुटे न्में नमः। वामे भं नमः। दक्षगण्डे गं नमः। वामे वं नमः। दक्षनेत्रे तिं नमः। वामे शं नमः। दक्षकर्णे मं नमः। वामे यं नमः। भ्रूमध्ये स्वां नमः। शिरसि हां नमः। इति विन्यस्य प्राग्वद् ध्यानमान-सपूजानेऽष्टदलकमलत्रयात्मकं प्राग्वत् पूजाक्रं निर्मायार्घ्यस्थापनाद्यङ्गपूजान्ते प्रथमेऽष्टदले—आर्यायै नमः। दुर्गायै नमः। भद्रायै नमः। भद्रकाल्यै नमः। अञ्जिकायै नमः। क्षेम्यायै नमः। वेदगभायै नमः। क्षेमङ्गर्यै नमः। द्वितीयेऽष्टदले—चक्राय नमः। शङ्खाय नमः। खड्गाय नमः। खेटकाय नमः। बाणाय नमः। चापाय नमः। शूलाय नमः। कपालाय नमः। तृतीयेऽष्टदले—प्राग्वद् ब्राह्म्याद्याः संपूज्य दिग्गीशाचार्दि सर्वं पूर्वत् समापयेत् इति। नारायणीये—

वेदलक्षं जपेमन्त्रं तदशांशं हुनेत्तिलैः। ब्राह्म्याद्यास्तिलदुर्गथात्रैर्दुर्गा सञ्ज्ञिन्य चानले ॥१॥

तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराथनं तथा धनधान्यादिभिः सम्यक्तोषयित्वा निजं गुरुम् ॥२॥

एवं सिद्धमनुमत्री वाज्जितार्थन् प्रसाधयेत्।

**वनदुर्गा**—सारसंग्रह के मूलोक्त श्लोकों के उद्धार करने पर वनदुर्गा के सैंतीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं। यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा।

पूर्वत् योगपीठ न्यास के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋच्यादि न्यास करे—शिरसि आरण्यकाय ऋषये नमः। मुखे अत्यनुषुष्ठु छन्दसे नमः। हहि श्रीवनदुर्गादिवतायै नमः। पूर्वत् ममापीष्टसिद्धये विनियोगः कहकर विनियोग करे। षडङ्ग न्यास करे—उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः। किं स्वपिषि शिरसे स्वाहा। अयं मे समुपस्थितं शिखायै वषट्। यदि शक्यमशक्यम् वा कवचाय हुं। तन्मे भगवति नेत्रयाय वौषट्। शमय स्वाहा अस्त्राय फट्। इन्हीं षडङ्ग मन्त्रों से करन्यास और षडङ्ग न्यास करे।

**मन्त्रवर्ण न्यास**—दक्षपादाङ्गुलिमूले उं नमः। गुल्फे तिं नमः। जानुनि ष्ठं नमः। ऊरुमूले पुं नमः। वामपादाङ्गुलि-मूले रुं नमः। गुल्फे पिं नमः। जानुनि किं नमः। ऊरुमूले स्वं नमः। गुदे पिं नमः। लिङ्गे पिं नमः। मूलाधारे भं नमः। उदरे यं नमः। दक्षपार्श्वे में नमः। वामपार्श्वे सं नमः। हहि मुं नमः। दक्षस्तने पं नमः। वामस्तने स्थिं नमः। कण्ठे तं नमः। दक्ष-कराङ्गुलिमूले यं नमः। दक्षमणिबन्धे दिं नमः। कूपरे शं नमः। बाहुमूले क्यं नमः। वामकराङ्गुलिमूले मं नमः। मणिबन्धे शं नमः। कूपरे क्यं नमः। बाहुमूले वां नमः। मुखे तं नमः। दक्षनासापुटे न्में नमः। वामनासापुटे भं नमः। दक्षगण्डे गं नमः। वामे वं नमः। दक्षनेत्रे तिं नमः। वामे शं नमः। दक्षकर्णे मं नमः। वामे यं नमः। भ्रूमध्ये स्वां नमः। शिरसि हां नमः। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

विद्युद्मप्रभाभां कनकसरसिजे संस्थितां सत्त्विनेत्रां हस्ताम्भोजैर्वहन्तीर्परिदर्शवरदाभीतिसंज्ञाः क्रमेण।

स्वर्णोद्यत्कान्तिवस्त्रां शशिकलितलसद्रलचूडां प्रसात्रां पाश्चेष्टस्तमृगेन्द्रां हहि वनवसतिं दावदुर्गा स्मरेऽहम् ॥

मानस पूजा करके पूर्ववत् कमलत्रयात्मक पूजाचक्र बनाकर अर्थ स्थापन करे। अंगपूजन करे। तब प्रथम अष्टदल में आर्यो नमः, दुर्गायै नमः, भद्रायै नमः, भद्रकाल्यै नमः, अस्त्रिकायै नमः, क्षेम्यायै नमः, वेदगर्भायै नमः, क्षेमद्वार्यै नमः। द्वितीय अष्टदल में चक्राय नमः, शंखाय नमः, खड्गाय नमः, खेटकाय नमः, बाणाय नमः, चापाय नमः, शूलाय नमः, कपालाय नमः। तृतीय अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्ट मारुकाओं की पूजा करे। भूपुर में दिव्यालों और उनके आयुधों की पूजा करे।

नारायणीय में कहा गया है कि चार लाख मन्त्र जप करे। दशांश हवन तिल से करे। ब्राह्मी आदि को तिल, दूध, अन्न से अग्नि में दुर्गा का चिन्तन करते हुए आहुति प्रदान करे। तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन करावे। अपने गुरु को धन-धान्यादि देकर सम्यक् रूप से सन्तुष्ट करे। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से साधक वाञ्छितार्थ साधन करे।

प्रयोगभेदन ध्यानभेदः

**दुग्धप्रियोगभेदेन चिन्तयेद्वनवासिनीम् ॥३॥**

श्रिये च दुर्गा महिषोत्तमाङ्गस्थितां च दूवीदलरुग् (भां) वहन्तीम् ।

**सचक्रशङ्कसिसखेटबाणचापान् भूजैस्तर्जनिकां वहन्तीम् (त्रिशूलम्) ॥४॥**

शङ्कचक्रकृपाणखेटबाणधनूषि शूलवत्। पुंस्कपालसऋषिकान् मुसलकुन्तनन्दकान् ॥५॥

सत्करैर्वलयसद्दाभिष्ठपालकशक्तिकान्। विभ्रतीं जलदद्युतिं महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ॥६॥

पावकोल्लसितद्युतिं हृदि भीमसिंह(समा) गताम्। श्यामलां कमलस्थितां नयनत्रयोल्लसितां शुभाम् ॥७॥

व्याघ्रचर्मसदंशुकामहिबद्धकुन्तलशोभिताम्। चन्द्रशोभितशेखरां सुरदानवाभयभीतिदाम् ॥८॥

प्रजपेत्रत्यहं मन्त्री स्वरक्षायै शतं ह्राथ। सहस्रं वा तदन्ते च प्रयोगान् कर्तुमर्हति ॥९॥

यद्यद्विद्यश्च च मनुं सहस्रं वायुतं जपेत्। अचिराल्लभते तत्तदसाध्यमपि साधकः ॥१०॥

प्रातःस्नायी न्यासपूर्वं स्मरन् देवीमन्यथीः। नित्यं सहस्रं प्रजपेमन्त्रं साधकसत्तमः ॥११॥

**ज्वरसर्पग्रहोत्यांश्च दोषान् प्रशमयेत् सुधीः ।**

दुर्गा के प्रयोगभेद से वनदुर्गा का ध्यान भी अलग-अलग कहा गया है, जो मूल के श्लोक ४,५,६,७,८ में द्रष्टव्य है। मन्त्री अपनी रक्षा के लिये प्रतिदिन मन्त्र का एक सौ जप करे अथवा एक हजार जप के बाद प्रयोग करे। जिस उद्देश्य से एक हजार या दश हजार मन्त्रजप साधक करता है, वह अल्प काल में ही असाध्य होने पर भी प्राप्त होता है। प्रातः स्नान करके न्यास करे। एकाग्र बुद्धि से देवी का स्मरण करे। नित्य एक हजार जप करे तो ज्वर-ग्रह दोष का शमन होता है।

**काम्यद्रव्ययजनविधानम्**

**हुनेदारण्यकतिलै राजिकाभिष्ठ वा हुनेत् ॥१२॥**

अपामार्गसमिद्धिश्च नाशयेत्सकलामयान्। अपस्मारादिकान् मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥१३॥

न्यग्रोधोत्समिद्धिर्वा सशुङ्गाभिष्ठनेत् सुधीः। अमृतं सर्वसप्त्यै सर्वापिन्मुक्तयेऽपि च ॥१४॥

ग्रहदिशान्त्यै च तथा हृषीभिद्वारादिशान्त्यै। अर्कवृक्षसमुद्भूतर्जुह्याच्य समिद्धैः ॥१५॥

आरभ्य रविवारं च तद्द्वयं प्रत्यहं सुधीः। दशाहतो वाञ्छितार्थसिद्धिर्भवति नान्यथा ॥१६॥

त्र्यहं वा सप्तरात्रं वा चेद्धैः। सारसमुद्भवैः। एकैकं शकलं मन्त्री हुनेद्वाञ्छितसिद्धये ॥१७॥

त्रिशच्छरान् शिताग्रांश्च निधाय जुह्याद्वृथः। कट्टूतैः। सहस्रं वा ह्राथं तदनन्तरम् ॥१८॥

संपाततैलेन शरान् समभ्युक्ष्य यथाविधि। पूर्ववत् प्रजपेमन्त्रं ताज् शरानथ भूपतिः ॥१९॥

शुद्धाचारश्च धीरश्च धन्वी संथतमानसः। गृहीत्वा परसेनाया मध्ये गच्छेदभीः क्षिपेत् ॥२०॥

सा धावति दिशः सर्वाः संधान्ता विह्वला तदा। स अपात्य पुनर्भूयो गुरुं धान्यैर्धनैरपि ॥२१॥

वश्वालङ्करणश्चैव तोषयेज्जयदायिनम्। अष्टाधिकशतेनाथ सञ्जप्तं शवभस्म च ॥२२॥

निक्षिपेदस्य शिरसि स विद्विषो भवेज्जनैः । देशादेशान्तरं चैव काकवद् भ्रमते सदा ॥२३॥  
 कारस्कद्रुमोद्यैश्च पत्रैर्वायुनिपातितैः । सहस्रं जुह्यात्पादरजोभिः सह वैरिणः ॥२४॥  
 उच्चाटोऽस्य भवेत्सद्यो विषवृक्षसमुद्धैवैः । पुष्टैर्हनेत्सहस्रं च सेना संस्तम्भयेद्गुधः ॥२५॥  
 तावद्दिस्तस्य पत्रैश्च मन्त्री सेना निवर्तयेत् । विषवृक्षसमुद्धातां शत्रोः प्रतिकृतिं शुभाम् ॥२६॥  
 कृत्वा प्रतिष्ठितप्राणां खण्डं खण्डं कृतैर्निशि । कृष्णपक्षचतुर्दश्यां काकोलूकवसाप्लुतैः ॥२७॥  
 तद्गत्रैर्विषिने होमः कर्त्त्व्योऽष्टसहस्रकम् । चतुर्दशीत्रयदेवं नाशमेति रिपुर्ध्रवम् ॥२८॥  
 उलूकवायसपक्षैः सवसारक्तसंयुतैः । होमाद्रिपुर्नाशमेति हृन्मत्तसमिधं तथा ॥२९॥  
 होमान्मत्तो रिपुर्नूनं भवत्येव सहस्रतः । वैरिणः प्रतिमां कृत्वा सम्यक्संस्थापितानिलाम् ॥३०॥  
 विषत्रिकटुकालिपां सम्यगुणे जले क्षिपेत् । प्रजपेच्य मनुं सद्यो ज्वराक्रान्तो भवेद्रिपुः ॥३१॥  
 दुग्धाभिषेकतः शान्तिर्भवत्यस्य न संशयः । प्रतिमां विषवृक्षोत्थां निःक्षिपेदुष्णावारिण ॥३२॥  
 उन्नादश्च रिपोः सद्यः पूर्ववच्छान्तिरीतिः । सूर्यबिष्वेऽन्तरारक्तां शूलतर्जनिकाकराम् ॥३३॥  
 ध्यात्वायुतं प्रजप्याथ मारयेद्रिपुसञ्चयम् । असिखेटकराक्तस्था कुद्धा सा वनवासिनी ॥३४॥  
 संस्मृता मन्त्रजापे तु शमयेच्छत्रुसञ्चयम् । शरधनुष्करां सिंहस्थितां पावकसत्रिभाम् ॥३५॥  
 संस्मृत्य मन्त्रं प्रजपन् क्षिप्रमुच्चाटयेदरीन् । कारस्कद्रुमसमिधामयुतं जुह्यात् सुधीः ॥३६॥  
 रोगिणः करिणः सर्वे जायन्ते हृचिरात्सदा । विषवृक्षोत्थियैः पत्रैरमी नाशं प्रयान्ति च ॥३७॥

जंगली तिल, रई का हवन अपामार्ग की समिधा में करे तो सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इससे मृगी आदि रोगों का भी नाश हो जाता है। वटवृक्ष की समिधा और पाकड़ की समिधा से दश हजार हवन करने पर सभी सम्पत्ति प्राप्त होती है और सभी आपदाओं से मुक्ति मिलती है। ग्रहपीड़ा-शान्ति, अभिचारादि शान्ति के लिये अक्वन की समिधा से हवन करे। रविवार से आरम्भ करके दश दिनों तक प्रतिदिन हवन करने से वांछित सिद्धि मिलती है। अन्यथा नहीं। तीन दिन सा सात रात तक प्रज्जलित अग्नि में इनके एक-एक खण्ड से हवन करे तो वांछित सिद्धि होती है। तीस नुकीले तीरों से हवन कुद्धा तेल में डुबोकर एक हजार या दश हजार करे, सम्पात तेल से शरों को अस्युक्तिकरके पूर्ववत् मन्त्रजप से मन्त्रित करे। शुद्धाचारी संयत मन से उन बाणों को लेकर शत्रुसेना के बीच में जाकर छिपा दे, तब वह सेना व्याकुल और भ्रमित होकर सभी दिशाओं में भागने लगती है। तब वह गुरु के पास आकर धन-धान्य से और वस्त्र-अलंकार से जपदायी को सन्तुष्ट करे। चिताभस्म को एक सौ आठ मन्त्रजप से मन्त्रित करके लोगों के शिर पर छोटे दे तो उनमें परस्पर विद्रेष हो जाता है और वह एक देश से दूसरे देश में कौआ के समान भ्रमण करता है। हवन से भूमि पर गिरे कारस्कर के पत्तों के साथ वैरी के पाँव की धूलि मिलाकर एक हजार हवन करे तो इससे वैरी का उच्चाटन तुरन्त होता है। विषवृक्ष धतूरे के फूलों से एक हजार हवन करने से सेना का स्तम्भन होता है। उसके पत्तों से भी उतने ही हवन से सेना को मार भगाता है। विषवृक्ष की लकड़ी से वैरी की प्रतिमा बनाकर प्राणप्रतिष्ठा करे, उसे टुकड़े-टुकड़े काके कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के रात में कौआ और उल्लू की चर्वी से ज्युत करके जंगल में आठ हजार हवन करे, तीन चतुर्दशी में ऐसा करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। उल्लू और कौआ के पंखों को उनके रक्त और चर्बी से प्लुत करके हवन करने से शत्रु का नाश होता है। उन्मत्त की समिधा से एक हजार हवन करने से शत्रु का नाश होता है। वैरी की प्रतिमा बनाकर स्थापित करे, उसमें त्रिकटु का लेप लगावे और उसे गर्भ जल में डुबा दे। तदनन्तर मन्त्र जप करे तो शत्रु तुरन्त बुखार से पीड़ित होता है। दूध से अधिषेक करने पर बुखार छूट जाता है। सूर्य बिष्व में हाथ की तर्जनी से शूल बनाकर लाल रंग का ध्यान करके दश हजार मन्त्र जप करे तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है। वनदुर्गा के हाथों में तलवार-ढाल के साथ उसके कुद्ध रूप का स्मरण करके मन्त्र जप करे तो शत्रु का शमन होता है। हाथों में बाण-धनुष लिए हुए सिंह पर सवार अग्नि के समान वर्ण की वनदुर्गा का स्मरण करते हुए मन्त्र जप करे तो शत्रु का उच्चाटन शीघ्र होता है। कारस्कर द्रुम की समिधा से दश हजार हवन करे तो वैरी के सभी हाथी रोगग्रस्त हो जाते हैं। विषवृक्ष के पत्रों के हवन से उनका नाश होता है।

तद्वक्षसुमनोभिः स्यादुच्चाटः करिणां ध्रुवम् । राजवृक्षसमिद्धिर्वा रोगा नश्यन्ति दन्तिनाम् ॥३८॥  
 विषवृक्षप्रसूनैश्च त्रिमध्वक्तैस्तु मानवः(वारणः) । वशीभवेत्तथा शीघ्रं पत्रैरानित्यशोभिते:(कोद्धवैः) ॥३९॥  
 त्रिस्वाध्युयुक्ते: करिणो ह्रतिमता भवन्ति च । अभ्यङ्गः पञ्चगव्येन लोके रक्षाकरः परः ॥४०॥  
 करिणां मनुजपोऽयं प्रोक्तो मन्त्रविदुत्तमैः । सर्पिस्तिलानित्यकैस्तु राजिकापञ्चगव्यकैः ॥४१॥  
 दुर्गथतण्डुलकैश्चैव प्रत्येकं च सहस्रतः । जुहुयादिभसङ्घानां वृद्धिर्भवति नान्यथा ॥४२॥  
 महान्तं विष(द्विज)वृक्षज्ञ छित्वा निर्भिद्य पञ्चग्या । दिक्क्रमेणैव पञ्चैवमायुधानि प्रकल्पयेत् ॥४३॥  
 सम्यक् शिल्पविदा शङ्खो नन्दकश्चकशाङ्गकौ । कौमोदकीति क्रमेण प्रोक्तमायुधपञ्चकम् ॥४४॥  
 निक्षिप्य पञ्चगव्ये तु जपेन्मन्त्रसहस्रकम् । तावच्चाज्येन जुहुयात् संपातं तत्र पातयेत् ॥४५॥  
 भूयश्च पूर्वसंख्याकं जपं कुर्याद्विचक्षणं । विदध्यादायुधान् पञ्च पञ्चगव्यप्रपूरितान् ॥४६॥  
 मध्यायुधे स्वा(मध्यावटेष्वा)युधानि निक्षिपेत् (तत्र-तत्र च )  
 बलिं हरेत् समीकृत्य तमन्त्रैर्मन्त्रिणा तथा ॥४७॥

कार्यं रक्षा राष्ट्रपुरयामाणामेवमेव च । यत्रेवं विहिता रक्षा लक्ष्मीः ) तत्र च वर्धते ॥४८॥  
 धनधान्यसमृद्धिः स्याद्विपुचौरभयं न च । पद्मैरप्यं वशीकुर्यात् तत्पत्नीसूत्यलैरपि ॥४९॥  
 ब्राह्मणान् कुमुदैर्हृत्वा कहारैर्विश एव च । शूद्राल्लवणहोमेन ग्रामं जातिप्रसूनकैः ॥५०॥  
 चक्रशङ्खगदाभ्योजहस्तं सञ्चिन्तयेच्छुभूम् । रविविष्वे मुकुन्दं च मनुं व्यत्यस्तलिङ्गकम् ॥५१॥  
 प्रजपेच्चाथ पुरुषभगवत्पदपोरथ । सर्वसिद्धिकरः प्रोक्तः प्रकारोऽयं सुमन्त्रिभिः ॥५२॥  
 साध्यानामाक्षरैः सम्यग्विदर्भितमनुं लिखेत् । यत्रे(पत्रे) ततः कुलालस्य करलग्नं प्रगृह्ण मृत् ॥५३॥  
 तया कृता या प्रतिमा तस्याश्च हृदि संयसेत् । संस्थाप्य स्वाभिमुख्ये तां सप्ताहं प्रजपेन्मनुम् ॥५४॥  
 संध्यात्रये शतं चाष्टाधिकं वश्यो भवेत्तु सः । ग्रीहीन् हुनेदष्टशतं प्रत्यहं वत्सराद्ववेत् ॥५५॥  
 ग्रीहिमान् गोपयोभिश्च पशुमान् भवति ध्रुवम् । धृतहोमान्मन्त्रिणः स्यात् काञ्चनापिर्महीयसी ॥५६॥  
 दधा सर्वसमृद्धिः स्यादन्नरत्रसमृद्धियुक् । मधुहोमेन रत्नानां निर्धिर्भवति नान्यथा ॥५७॥  
 दूर्वाहोमेन दीर्घायुर्मन्त्री भवति निश्चितम् । श्वेतगुञ्जाः समानीय कुडवप्रमिताः शुभाः ॥५८॥  
 एतन्मन्त्रसुजप्ताश्च विकिरेच्छुत्रुसेन्यके । स्वयं मन्त्री सुगुप्तः सन् तेनासो वैरिणश्शमूः ॥५९॥  
 ज्वरादिकैर्महारोगैः पीडिता स्यान्मृताचिरात् । सेनाधिपतिमुख्यानां परस्परविरोधतः ॥६०॥  
 एतदुपद्रवैर्नानाविधनाशं प्रयाति च ।

विषवृक्ष के फूल भी उच्चाटनकारक होते हैं । राजवृक्ष की समिथा से हाथियों का रोग नष्ट होता है । विषवृक्ष के फलों को त्रिमधुरात्त करके हवन करने से हाथी और मनुष्य शीघ्र वश में होते हैं । त्रिमधुरात्त पतों के हवन से हाथी अति मत्त हो जाते हैं । पञ्चगव्य के मालिश से लोकरक्षा होती है । उत्तम मन्त्रों का कथन है कि इस मन्त्र के जप से अधिमन्त्रित गोधृत, तिल, राजि, पञ्चगव्य, दूध, चावल—प्रत्येक से एक हजार हवन करने से हाथियों की संख्या में वृद्धि होती है । विषवृक्ष को पाँच भागों में चौरकर दिशाक्रम से शिल्पी से पाँच आयुध—शंख, नन्दक, चक्र, शार्ङ्ग, कौमोदकी बनवावे । इन्हें पञ्चगव्य में डालकर एक हजार मन्त्र जप करे, एक हजार हवन करे और संपातबून्द उन पर गिरावे । इसके बाद फिर एक हजार मन्त्र जप करे । पञ्चगव्य पूरित पात्र में आयुधों को डुबोये । उनके मन्त्रों से बलि प्रदान करे । इससे ग्राम-पुरी-नगर-राष्ट्र की रक्षा होती है । जहाँ ये स्थापित रहते हैं, वहाँ धन की वृद्धि होती है और धन-धान्य समृद्धि होती है एवं शत्रु और चोरों का भय नहीं रहता । कमल के हवन से राजा को, उत्पल के हवन से रानी को, कुमुद के हवन से ब्राह्मणों को, कल्हार के हवन से वैश्य को एवं शूद्र को नमक के हवन से तथा जातिपुष्ट के हवन से ग्राम को वश में किया जा सकता है । सूर्य-बिष्व में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त मुकुन्द का चिन्तन करते हुए मन्त्र का जप करे । रथ पर भगवत्पद का चिन्तन करते हुए जप करने से सभी

सिद्धियों के साथ आरोग्य प्राप्त होता है। साध्य नाम के अक्षरों से विर्भित मन्त्र पत्र में लिखे। कुम्हार के हाथों में लगी मिट्टी लेकर उससे प्रतिमा बनावे। उसके हृदय में मन्त्रलिखित पते को गढ़ दे। उस प्रतिमा को अपने सामने रखकर एक सप्ताह तक मन्त्र तीनों सन्ध्याओं में एक सौ आठ बार जपें। तब साध्य वश में हो जाता है। साल भर तक चावल से प्रतिदिन एक सौ आठ हवन करे तो भण्डार चावल से भरा रहता है और गरोंगे के गायों की संख्या बढ़ती है। धृत के हवन से साधक को बहुत सोना मिलता है। दही के हवन से सभी समुद्धियाँ मिलती हैं। अत्र के हवन से अत्र की समृद्धि होती है। मधु के हवन से रत्नों का खजाना मिलता है। दूर्वा के हवन से मन्त्री दीर्घायु होता है। एक कुड़व = ३२० ग्राम श्वेत गुंजा को मन्त्रित करके शत्रुसेना में स्वयं मन्त्री गुप्त रूप से विखर दे तो वैरी सेना ज्वरादि महारोगों में पीड़ित होकर थोड़े ही दिनों में समाप्त हो जाती है और मुख्य सेनापतियों में परस्पर विरोध हो जाता है। इस उपद्रव से नाना प्रकार का नाश होता है।

### वनदुर्गायन्त्रोद्धारः वनदुर्गास्तोत्रञ्च

तारे शक्तिं सासाध्यां लिखतु रविदले मध्यतः पत्रमूले

मर्दिन्या वर्णयुगमं दलमनु विलिखेद्विशो मूलवर्णान् ।

अन्त्ये प्र(च)न्येकबीजं बहिरथ लिपिभिर्भूपुरद्वद्वसंस्थं

दुर्गाया यन्त्रमेतद्युवितिनयदं सर्वरक्षाकरं स्यात् ॥५९॥

सर्वसंपत्करं नृणां सर्वसौभाग्यपुष्टिदम् । राज्यलक्ष्मीविहीनानां भूपतीनां च राज्यदम् ॥६०॥

आमयग्रस्तनृणां च रोगशान्तिकरं परम् । जपहोमाज्यसंपातसाधितं यत्मुत्तमम् ॥६१॥

प्रोक्तं च वनदुर्गायाः सर्वदं नात्र संशयः । इति।

**अस्यार्थः—**द्वादशदलपदं विरच्य तत्प्रदे तारं तत्प्रदे शक्तिं तदन्तः साध्यनाम च विलिख्य, तत्क्षेत्रपु महिषमर्दिन्यष्टाक्षरमन्तस्य त्रिरावृत्या प्रतिक्षेसरं वर्णद्वयं वर्णद्वयमालिख्य, मूलमन्त्रस्य वर्णान् प्रतिदिलं त्रिश आलिख्यान्तिमाक्षरमन्तिमदले विलिख्य पद्माद्विर्वृत्तद्वयं विरच्य तयोरन्तरालवीथ्यां प्रत्यक्षरं सविन्दुकां मातृकां विलिख्य तद्विहश्तुरसद्वयसंपुटरूपेणाष्टकोणेन वेष्टयेत्, एतद्विमुक्तफलदं भवेत्। नारायणीये—‘अत्रित्र समाख्यातसद्वीजं शिवसर्वावान्’। अत्रिः दकारः शिव उ सर्गो विसर्गः तेन दुः। तद्वीजं तस्या दुर्गाया बीजम् (अस्य) कश्यप ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीदुर्गा देवता, षष्ठी दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि बीजेन सविसर्गेण । सर्वत्र अष्टकमलदले दूवश्यामां प्रिनेत्रां शूलबाणचक्रशंखद्वारेष्टद्वनुःकपालानि दक्षिणाधःकरक्रमेण धारयन्तीं ध्यायेत्। लक्षजपे दशांशहोमः पूजादिकं वनदुर्गावज्ञेयम्। अयं लक्षजपः कृतयुगपरः। अथ स्तोत्रम्—

यत्कर्मधर्मनिलयं प्रवदन्ति तज्जाः यज्ञादिपुण्यमर्खिलं सकलं त्वयैव ।

त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्ते नित्यं त्वदीयचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१॥

पाथोऽधिनाथतनयापतिरेष शेषपर्यङ्कलालितवपुः पुरुषः पुराणः ।

त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब सोऽपि व्याधूर्णमाननयनः शयनं चकार ॥२॥

तत् कोतुकं जननि यस्य जनादेनस्य कण्प्रसूतमलजौ मध्युकेटभाख्यौ ।

तस्यापि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तुं त्वन्मायया कवलितौ विलयं गतौ तौ ॥३॥

यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपत्रं यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरं च ।

यल्लोकशोकजननव्रतबद्धहार्द तल्लीलयैव दलितं गिरिजे भवत्या ॥४॥

यो धूप्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्यां भस्मीबभूव स रणे तव हुंकृतेन ।

सर्वासुरक्षयकरे गिरिराजकन्ये मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः ॥५॥

केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां हन्तुं न जातु सुलभाविति चण्डमुण्डौ ।

तौ दुर्मदौ सपदि चाम्बरतुल्यमूर्तमात्सवासिकुलिशात् पतितौ विशीर्णौ ॥६॥

दौत्येन ते शिव इति प्रथितप्रभावो देवोऽपि दानवपते: सदनं जगाम ।  
भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथयांचकार् सा त्वं प्रसीद शिवदूति विजृम्भतेन ॥७॥  
चित्रं तदेतदमरैरपि ये न जेयाः शश्वाभिघातपतिताद्वधिरादपर्णे ।  
भूमौ बभूवुरमिताः प्रतिरक्तबीजास्तेऽपि त्वयैव गगने गिलिताः समस्ताः ॥८॥  
आश्वर्यमेतदतुलं यदभूत् सुरारी त्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनहष्टपाणी ।  
शश्वीर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसंज्ञे नीतौ त्वया जननि तावपि नाकलोकम् ॥९॥  
त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मिंस्तस्मिन् प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः ।  
तस्मिन्निपत्य शलभा इव दानवेद्वा भस्मीभवन्ति हि भवनि किमत्र चित्रम् ॥१०॥  
तत्किं गृणामि भवतीं भवतीव्रतापनिवर्पिणप्रणयिनीं प्रणमज्जनेषु ।  
तत्किं गृणामि भवतीं भवतीव्रतापसंवर्द्धनप्रणयिनीं विपदि स्थितेषु ॥११॥  
वामे करे तदितरे च तथोपरिष्टात् पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलङ्घम् ।  
खेटं गदां च दधतीं भवतीं भवानि ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव ॥१२॥  
यद्वारुणात् परमिदं यदि मानवस्ते बीजं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरूढम् ।  
मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुबिन्दुनादैरमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्ति ॥१३॥  
आवाहनं यजनवर्णनमिन्होत्रं कर्मर्पणं तव विसर्जनमत्र 'देवि ।  
मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं मातः क्षमस्व वरदे बहिरन्तरस्ये ॥१४॥  
अन्तःस्थिताप्यखिलजन्तुषु जनुरूपा विद्योतसे बहिरवाखिलविश्वरूपा ।  
का भूरिशब्दरचना वचनाधिका सा दीनं जनं जननि मामव निष्पष्टम् ॥१५॥

द्वादश दल कमल बनाकर बीच में 'ॐ' लिखे। उसके गर्भ में 'ह्रीं' के साथ साध्य नाम लिखे। दलों में महिष-मर्दिनी के अष्टाक्षर मन्त्र की तीन आवृत्ति से २४ अक्षरों में से प्रत्येक में दो-दो अक्षर लिखे। मूल मन्त्र के वर्णों में से प्रत्येक दल में तीन-तीन वर्णों को लिखे। अन्तिम वर्ण को अन्तिम दल में लिखे। कमल के बाहर दो वृत्त बनाकर अन्तराल वीथि में सानुस्वार मातृकाओं को लिखे। उसके बाहर दो चतुरस्स में आठ कोण बनावे। यह यन्त्र सब कुछ देने वाला होता है।

नायायीय में कहा गया है कि इसके ऋषि कश्यप, छन्द गायत्री, श्रीदुर्गा देवता हैं। दां दीं दूं दैं दौं द: से षडङ्ग करे। अष्टदल कमल में दुर्गा का ध्यान करे—दूर्वा सदृश श्याम वर्ण वाली, तीन नेत्र वाली, शूल-बाण-चक्र-शङ्ख-ढाल-धनुष-कपाल को धारण करने वाली है। एक लाख जप करे। वनदुर्गा का पूजादि हवन करे। यह एक लाख जप सत्युग-परक है। कलियुग में चार लाख जप करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। तदनन्तर मूलोक्त दुर्गा स्तोत्र का पाठ करे।

एतत् पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि चण्डीचरित्रमुतुलं भुवि यस्त्रिकालम् ।  
श्रीमान् सुखी च विजयी सुभगः कृती स्यात् त्यागी चिरननवपुः कविचक्रवर्ती ॥१६॥  
श्रीसिद्धनाथापरनामधेयः श्रीशम्भुनाथो भुवनैकनाथः ।  
तस्य प्रसादात् सकलागमश्रीः पृथ्वीधरस्तोत्रमिदं चकार ॥१७॥

जो प्रतिदिन तीनों समय दनुजान्तकारी चण्डी चरित का पाठ करता है, वह संसार में सुखी, विजयी, सुभग, कृतीत्यागी, 'चिरनन वपु, कवि, चक्रवर्ती होता है। श्रीसिद्धनाथ नाम से ख्यात, भुवन के एकमात्र स्वामी शम्भुनाथ की कृपा से सभी आगमों के सारस्वरूप यह पृथ्वीधर स्तोत्र बनाया।

नवार्णविद्यानोक्तलक्ष्मीपूजापद्धतिः

अथ नवार्णविद्यानोक्तमहालक्ष्मीपूजा लिख्यते। तत्र प्रातः कृत्यादिमातृकान्यासान्तं विद्याय मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं

कृत्वा, शिरसि ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यो नमः। मुखे गायत्र्युष्टिंगुणुषुप्लद्धन्देभ्यो नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्मीमहाकालीमहा-सरस्वतीदेवताभ्यो नमः। गुह्ये परमशिवलिङ्गाय बीजाय नमः। पादयोः कालीशिवदूतीप्रजापतिभ्यः शक्तिभ्यो नमः। नाभौ हीं कीलकाय नमः। इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः। इति कृताञ्जलिस्त्वा ॐ ऐंहीक्लीं हृदयाय नमः, एवं षडङ्गन्यासं विदध्यात्। अत्रैकादशन्यासेषु मातृकान्यासः प्रथमः। षडङ्गन्यासो द्वितीयः। ततः— ॐ हीं ब्रह्माणी मे पूर्वे पातु। ॐ हीं महालक्ष्मीमें ईशान्यां पातु। ॐ हीं व्योमश्वरी मे ऊर्ध्वं पातु। ॐ हीं सप्तद्विपेश्वरी मे मध्यं पातु। ॐ हीं नागेश्वरी मेऽधः पातुः। इति तृतीयो न्यासः। ततः— ॐ हीं मम पूर्वाङ्गं नन्दजा पातु नमः। एवं ॐ हीं दक्षिणाङ्गं रक्तदन्तिका०, ॐ हीं पश्चिमाङ्गं शाकभरी०, ॐ हीं वामाङ्गं दुर्गा०, ॐ हीं मूर्धांदिपादान्तं भीमा०, ॐ हीं पादादिमूर्धान्तं भ्रामरी पातु नमः। इति चतुर्थो न्यासः। पादादिनाभिपर्यन्तं ॐ हीं ब्रह्मा पातु नमः। नाभे: कण्ठपर्यन्तं ॐ हीं विष्णुः पातु नमः। कण्ठादब्रह्मरन्ध्रान्तं ॐ हीं रुद्रः पातु नमः। पादद्वये ॐ हीं हंसः पातु नमः। नेत्रयोः ॐ हीं वृषभः पातु नमः। सर्वाङ्गे ॐ हीं गजाननः पातु नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ॐ हीं हरिः पातु नमः। मध्यदेहे ॐ हीं महालक्ष्म्यै नमः। मस्तके ॐ हीं सरस्वत्यै नमः। पादयोः ॐ हीं महालक्ष्म्यै नमः। करयोः ॐ हीं सिंहाय नमः। नेत्रयोः ॐ हीं परमहंसाय नमः। पादयोः ॐ हीं महिषसहितप्रेताय नमः। सर्वाङ्गे ॐ हीं महेशाय नमः। पुनः सर्वाङ्गे ॐ हीं चण्डिकायै नमः। इति षष्ठो न्यासः। ततो ब्रह्मरन्धे ॐ ऐं नमः। दक्षिणकर्णे ॐ हीं नमः। वामकर्णे ॐ क्लीं नमः। दक्षिणनेत्रे ॐ चां नमः। वामनेत्रे ॐ मुं नमः। दक्षनासायां ॐ षट्ठां नमः। वामनासायां ॐ यै नमः। मुखे ॐ विं नमः। लिङ्गे ॐ च्वे नमः। इति सप्तमो न्यासः। ततो गुदे ॐ ऐं नमः। लिङ्गे ॐ हीं नमः। मुखे ॐ क्लीं नमः। वामनासायां ॐ चां नमः। दक्षनासायां ॐ मुं नमः। वामनेत्रे ॐ षट्ठां नमः। दक्षनेत्रे ॐ यै नमः। वामकर्णे ॐ विं नमः। दक्षकर्णे ॐ च्वे नमः। इत्यष्टमो न्यासः। स्वपूर्वाङ्गे मूर्धांदिपादान्तं मूलमन्त्रमुच्चार्य नमः। एवं दक्षिणपाश्वें, पृष्ठभागे, वामभागे, पुनर्भास्मि, पृष्ठे, दक्षभागे, पूर्वाङ्गे व्यापकत्वेन न्यसेत्, इति नवमो न्यासः। ततो मूलमन्त्रमुच्चार्यं हृदयाय नमः। इत्येवं षडङ्गन्यासं कुर्यात्। इति दशमो न्यासः। 'खड्गिनी शूलिनी घोरा' इत्येकं श्लोकं कृष्णवर्णं ध्यात्वा सर्वाङ्गे व्यापकम्। 'शूलेन पाहि नो देवि' इत्यादि 'रक्ष सर्वतः' इत्यन्तं श्लोकचतुष्टयं बालाकर्वणं ध्यायन् व्यापकम्। 'सर्वस्वरूपे सर्वेशि' इत्यादि 'चण्डिके त्वां नता वयम्' इत्यन्तं श्लोकपञ्चकं शुद्धस्फटिकसङ्काशं ध्यायन् सर्वाङ्गे व्यापकं न्यसेत्। इति एकादशो न्यासः।

**नवार्ण विद्यानोक्त महालक्ष्मी पूजा—सर्वप्रथम प्रातःकृत्य से मातृकान्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यो नमः। मुखे गायत्र्युष्टिंगुणुषुप्लद्धन्देभ्यो नमः। हृदि श्रीमहालक्ष्मी-महाकालीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः। गुह्ये परमशिवलिङ्गाय बीजाय नमः। पादयोः कालीशिवदूतीप्रजापतिभ्यः शक्तिभ्यो नमः। नाभौ हीं कीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके अभीष्टसिद्धि के लिये विनियोग करके ॐ ऐंहीक्लीं हृदयाय नमः, इत्यादि से षडङ्गन्यास करे। तदनन्तर मातृका न्यास करके षडङ्ग न्यास करो। तत्पश्चात् ॐ हीं ब्रह्माणी मे पूर्वे पातु। ॐ हीं महालक्ष्मीमें ईशान्यां पातु। ॐ हीं व्योमश्वरी मे ऊर्ध्वं पातु। ॐ हीं सप्तद्विपेश्वरी मे मध्यं पातु। ॐ हीं नागेश्वरी मेऽधः पातुः। यह तृतीय न्यास होता है। तदनन्तर ॐ हीं मम पूर्वाङ्गं नन्दजा पातु नमः, ॐ हीं दक्षिणाङ्गं रक्तदन्तिका पातु नमः, ॐ हीं पश्चिमाङ्गं शाकभरी पातु नमः, ॐ हीं वामाङ्गं दुर्गा पातु नमः, ॐ हीं मूर्धांदिपादान्तं भीमा पातु नमः, ॐ हीं पादादिमूर्धान्तं भ्रामरी पातु नमः। यह चतुर्थ न्यास होता है। तदनन्तर पादादिनाभिपर्यन्तं ॐ हीं ब्रह्मा पातु नमः। नाभे: कण्ठपर्यन्तं ॐ हीं विष्णुः पातु नमः। कण्ठादब्रह्मरन्ध्रान्तं ॐ हीं रुद्रः पातु नमः। पादद्वये ॐ हीं हंसः पातु नमः। नेत्रयोः ॐ हीं वृषभः पातु नमः। सर्वाङ्गे ॐ हीं गजाननः पातु नमः। यह पञ्चम न्यास होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मरन्ध्रे ॐ हीं हरिः पातु नमः। मध्यदेहे ॐ हीं महालक्ष्म्यै नमः। मस्तके ॐ हीं सरस्वत्यै नमः। पादयोः ॐ हीं महालक्ष्म्यै नमः। करयोः ॐ हीं सिंहाय नमः। नेत्रयोः ॐ हीं परमहंसाय नमः। पादयोः ॐ हीं महिषसहितप्रेताय नमः। सर्वाङ्गे ॐ हीं महेशाय नमः। पुनः सर्वाङ्गे ॐ हीं चण्डिकायै नमः। यह षष्ठ न्यास होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मरन्धे ॐ ऐं नमः। दक्षिणकर्णे ॐ हीं नमः। वामकर्णे ॐ क्लीं नमः। दक्षिणनेत्रे ॐ चां नमः। वामनेत्रे ॐ मुं नमः। दक्षनासायां ॐ षट्ठां नमः। वामनासायां ॐ यै नमः। मुखे ॐ विं नमः। लिङ्गे ॐ च्वे नमः।**

यह सप्तम न्यास होता है। तदनन्तर गुदे ३० ऐं नमः। लिङ्गे ३० ही नमः। मुखे ३० क्लीं नमः। वामनासायां ३० चां नमः। दक्षनासायां ३० मुं नमः। वामनेत्रे ३० ण्डां नमः। दक्षनेत्रे ३० यैं नमः। वामकणे ३० विं नमः। दक्षकणे ३० च्चें नमः—यह अष्टम न्यास होता है। तदनन्तर स्वपूर्वाङ्गे मूर्धादिपादान्तं मूलमन्त्रमुच्चार्यं नमः। इसी प्रकार दक्षिण पार्श्व, पृष्ठभाग, वामभाग, पुनः वाम भाग, पृष्ठ, दक्षभाग, पूर्वाङ्ग में व्यापक न्यास नवम न्यास होता है। तदनन्तर मूल मन्त्र से षडङ्गं न्यास दशम न्यास होता है। तदनन्तर 'खड़गिनी शूलिनी धोरा' से कृष्ण वर्ण का ध्यान करते हुये, 'शूलेन पाहि नो देवि' से बाल सूर्यवर्ण का ध्यान करते हुये एवं 'सर्वस्वरूपे सर्वेशे' से 'चण्डिके त्वां नता वयम्' तक पाँच श्लोकों से शुभ्र वर्ण का ध्यान करते हुये व्यापक न्यास एकादश न्यास होता है।

### महालक्ष्यादीनं ध्यानानि

अथ स्वहदये वक्ष्यमाणं पूजापीठं विभाव्य तन्मध्ये मूलमन्त्रस्य बीजत्रयं ध्यात्वा मध्यबीजे श्रीमहालक्ष्मीं सर्वदेवशरीरतैजसोद्भूतं ध्यायेत्—

सर्वदेवशरीरे भ्यो	याविर्भूतामितप्रभा । विचित्रजघना	चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ॥१॥
चित्रानुलेपना	कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी । अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ॥२॥	
आयुधान्यत्र	वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् । अक्षमाला च कमलं बाणासी मुसलं गदा ॥३॥	
चक्रं त्रिशूलं परशुः	शङ्खो घटा च पाशकः । शक्तिर्दण्डश्वर्म चापः पानपात्रं कमण्डलुः ॥४॥	
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः	कमलासनाम् । सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ॥५॥	
पूजयन् सर्वदेवानां लोकानां च प्रभुर्भवेत् ।		

इति महालक्ष्मीं ध्यात्वा प्रथमबीजे महाकालीं ध्यायेत्।

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाङ्गनप्रभा । विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥१॥  
स्फुरदशनदंष्ट्रा सा भीमरूपा त्वभूषृप । रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियाम् ॥२॥  
खड़गबाणगदाशूलचक्रपाशभुशुष्ठिभृत् । परिं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्वुधिरं दधौ ॥३॥  
एषा सा वैष्णवी माया कालरात्रिरुत्तर्यथा । आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥४॥

इति महाकालीं ध्यात्वा महालक्ष्या वामभागे सरस्वतीं तृतीयबीजे ध्यायेत्—  
गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणान्विता । साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुभासुरनिवर्हिणी ॥१॥  
दधानाष्टभुजा बाणान् मुसलं चक्रशूलभृत् । शङ्खं च लाङ्गलं घटां कार्मुकं वसुधाधिप ॥२॥  
एषा संपूजिता भक्त्या सर्वज्ञतं प्रयच्छति ।

इति महासरस्वतीं च ध्यात्वा वक्ष्यमाणपीठपूजापुरः सरं महालक्ष्मीं साङ्गां सावरणां मानसोपचारैः स्वमूलाधारे आत्मादिचतुष्टयरूपं चतुरर्थं कुण्डल्यगिनसमुज्ज्वलं ध्यात्वा, मूलमन्त्रमुच्चार्यं 'अहन्तां जुहोमि स्वाहा' पुनर्मूलमुच्चार्यं 'असत्यं जुहोमि स्वाहा' इत्येवं अहन्तापैशुन्यकामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्थाणि सुषमास्त्रग्युक्तमनः सुवेण पृथक् पृथग् हुत्वा, निर्दग्धनिखिलवैरिगणः स्थिरचित्तो मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य बाह्यपूजां समारभेत्।

तदनन्तर अपने हृदय में पूजापीठ की कल्पना करके उसके मध्य में तीन बीजों का ध्यान कर मध्य बीज में समस्त तेजः समन्वित श्रीमहालक्ष्मी का इस प्रकार ध्यान करे—

सर्वदेवशरीरे भ्यो	याविर्भूतामितप्रभा । विचित्रजघना	चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ॥
चित्रानुलेपना	कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी । अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ॥	
आयुधान्यत्र	वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् । अक्षमाला च कमलं बाणासी मुसलं गदा ॥	
चक्रं त्रिशूलं परशुः	शङ्खो घटा च पाशकः । शक्तिर्दण्डश्वर्म चापः पानपात्रं कमण्डलुः ॥	
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः	कमलासनाम् । सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ॥	

~

इससे देवी की पूजा करके सभी देवता संसार के स्वामी हो गये हैं। महाकाली का ध्यान 'कली' बीज में इस प्रकार किया जाता है—

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाङ्गनप्रभा। विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया॥

स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपा त्वभूत्रृप। रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियाम्॥

खडगबाणगदाशूलचक्रपाशभूषणिडभृत। परिं च कार्मुकं शीर्षं निश्चोतद्वधिरं दधौ॥

यह वैष्णवी माया कालरात्रि दुरत्यया है। आराधना करने पर साधक के वश में संसार के चराचरों को कर देती है।

महाकाली का ध्यान करके महालक्ष्मी के वाम भाग में महासरस्वती का ध्यान तृतीय बीज से करे—

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणान्विता। सक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुभ्मासुरनिर्वहिणी॥

दधानाष्टभुजा बाणान् मुसलं चक्रशूलभृत्। शङ्खं च लाङ्गलं घण्टां कार्मुकं वसुधार्थिप॥

भक्ति से पूजा करने पर यह सर्वज्ञत्व प्रदान करती है। महासरस्वती के ध्यान के बाद विहित पीठ की पूजा करे। तब महालक्ष्मी का सांग सावरण पूजन मानसोपचारों से करो। अपने मूलाधार चक्र में आत्मादि चतुष्टय रूप चतुरस्र में कुण्डलिनी अग्नि का ध्यान ज्वलित रूप में करो। मूल मन्त्र बोलकर 'अहंतं जुहोमि स्वाहा' कहे। फिर मूल मन्त्र के साथ 'असत्यं जुहोमि स्वाहा' कहे। इसी प्रकार अहन्ता, पै॑स॒न्य, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य का हवन सुषुम्नारूपी सुव और मनरूपी श्रुवा में अलग-अलग करे। सभी वैरियों के निर्दग्ध होने पर स्थिर चित्त से मूल मन्त्र का जप यथाशक्ति करे। जप समर्पित करके बाह्य पूजा आरम्भ करे।

तत्र स्वर्णादिपीठे कुञ्जुमादिना षट्कोणं तद्विर्वत्तं तल्लग्नं सकेसरमष्टदलं तद्विहित्शतुद्वारयुतं चतुरश्चत्रयं रचयेत्, इति पूजाचक्रं निर्माय, षट्कोणमध्ये वाभवमायाकामराजबीजत्रयं पञ्चाकारेण विलिख्य स्वाग्रादिष्टकोणेषु प्रादक्षिण्येन च अकारादिबीजषट्कं विलिखेत्। ततोऽर्घादिपात्राण्यासाद्य पूजोपकरणानि संप्रोक्ष्य 'ॐहींहंसः सोहं स्वाहा' इति मन्त्रेण स्वशरीरं गन्धादिभरलंकृत्य, स्वात्मानं देवीरूपं विभाव्य प्राग्वत् मूलाधारे चतुरस्रं कुण्डलिरूपमणिं सञ्चित्यन्त्य, मूलं ०

धर्मार्थमहविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा सुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा॥

एवं पापं जुहोमि स्वाहा, इत्यं पुण्यपापकृत्याकृत्यसङ्कल्पविकल्पधर्मान् हुत्वा, पुनर्मूलं ०

प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीसृचम्। धर्मार्थमकलासनेहपूर्णा वहौ जुहोम्यहम्॥

अर्थम् जुहोमि स्वाहा, इति पूर्णाहुतिं हुत्वा देवीरूपमात्मानं ध्यात्वा मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य, पूजापीठमध्योदकेनाभ्युक्ष्य, षट्कोणे ३०कारपीठाय नमः। अष्टदले ३० पूर्णगिरिपीठाय नमः। चतुरश्रे—३० कामपीठाय नमः। इति संपूज्य, पीठाद्विहित्शतुर्दिक्षु ३० गंगणेशाय नमः, ३० क्षंक्षेत्रपालाय नमः, ३० दुंगार्याय नमः, ३० वंवटुकाय नमः, इति संपूज्याग्न्यादिकोणेषु ३० जंजयायै नमः, ३० विविजयायै ०, ३० जंजयन्त्यै०, ३० अंअपराजितायै नमः। पद्मनालभूते आं आधारशक्त्यै नमः, कूं कूर्माय नमः, शं शेषाय० पृं पृथिव्यै०, नां नालाय०, पं पद्माय०, इति संपूज्यादिलक्षणिकायां षट्कोणाद्वृहिः ३० विं विष्णुमायायै नमः, एवं चें चेतनायै०, बुं बुद्ध्यै०, निं निद्रायै०, क्षुं क्षुधायै०, इति पञ्चशक्तीः संपूज्य, दक्षिणदिशि ३० छां छायायै नमः, शं शक्त्यै०, तुं तृष्णायै०, क्षां क्षान्त्यै०, जां जात्यै०, लं लज्जायै०, इति शक्तिषट्कं संपूज्य, पश्चिमदिशि ३० शां शान्त्यै नमः, श्रं श्रद्धायै०, कां कान्त्यै०, लं लक्ष्यै०, धृं धृत्यै०, वृं वृत्यै०, इति शक्तिषट्कं संपूज्य, उत्तरदिशि ३० सृं सृत्यै नमः, दं दयायै०, तुं तुष्ट्यै०, पुं पुष्ट्यै०, मां मात्रै०, भ्रां भ्रान्त्यै०, इति शक्तिषट्कं संपूजयेदिति प्रादक्षिण्येन त्रयोविंशतिदेवताः संपूज्य, मध्यबीजे मूलं०, 'श्रीमहालक्ष्म्या मूर्तये नमः' इति मूर्ति संपूज्य, कराभ्यां पुष्पाङ्गलिमादाय हृदयकमले यथोक्तरूपां साङ्घां सावरणां महालक्ष्मीं ध्यात्वा, तत्त्वेऽरुपतामादाय सुषम्नावर्त्मना ब्रह्मरन्त्रं नीत्वा प्रवहन्नासारन्त्रेण पुष्पाङ्गलौ संयोज्य मूलेन तत्तेजः समानीय,

ध्यायामि मनसा दुर्गा नाभिमध्ये व्यवस्थिताम् । आवाहयेत्तो दुर्गा संसारभयतारिणीम् ॥१॥

कल्याणजननीं सत्यां कामदां करुणाकराम् । अनन्तशक्तिसम्पन्नां दुर्गामावाहयाम्यहम् ॥२॥

महापदावनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे । सर्वभूतहिते मातरेहेहि परमेश्वरि ॥३॥

इति पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेणावाहा, आवाहनादिनवमुद्राः प्रदर्शय,

देवेश भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते । यावत्त्वां पूजयिष्यति तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥४॥  
इति प्रार्थय,

ॐ दुर्गे देवि सुरेशानि ज्ञानमार्गप्रदे शिवे । आसने मम भूत्यर्थं गृहण त्वं सुरेश्वरि ॥५॥  
इत्यासनम्।

ॐ स्वागतं कुशलं पृच्छे महादेवि महेश्वरि । सुस्वागतं त्वया भद्रे कृपया भक्तवत्सले ॥६॥  
इति स्वागतम्।

जगत्पूज्ये त्रिलोकेशि दैत्यदानवभञ्जनि । अष्टाङ्गार्थं गृहण त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ॥७॥  
इत्यर्थम्।

कात्यायनि महादुर्गे चापुण्डे शङ्करप्रिये । पाद्यं गृहण देवेशि भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥८॥  
इति पाद्यम्।

सर्वलोकस्य या माता या माता लोकपावनी । ददाम्याचमनं तत्स्यै महालक्ष्म्यै प्रयत्नतः ॥९॥  
इत्याचमनीयम्।

कपिलादधि कुद्देन्दुधवलं मधुसंयुतम् । स्वर्णपात्रस्थितं देवि मधुपर्कं गृहण मे ॥१०॥  
इति मधुपर्कम्।

कर्पूरवासितं वारि निर्मलं शुद्धिहेतुकम् । गृहण परमेशानि पुनराचमनीयकम् ॥११॥  
इति पुनराचमनीयम्।

ज्ञानमूर्ते भद्रकालि दिव्यमूर्ते सुरेश्वरि । स्नानं गृहण देवेशि तीर्थोदकविभूषितम् ॥१२॥  
इति स्नानम्।

वस्त्रं स्वच्छं महार्हं वै पट्टसूत्रविनिर्मितम् । गृहणं सुभगे देवि मे दुकूलं सुरार्चिते ॥१३॥  
इति वस्त्रम्।

सुरासुरशिरोरत्ननिर्घृष्टचरणाम्बुजे । अलङ्कारान् गृहण त्वं नानारत्नविभूषितान् ॥१४॥  
इति अलङ्कारः।

श्रीखण्डागुरुकर्पूररोचनानाभिसंयुतम् । गृहण गन्धं मे देवि सर्वकामफलप्रदे ॥१५॥  
इति चन्दनम्।

नानापुष्पविचित्राद्यां पुष्पमालां सुशोभिताम् । प्रयच्छामि महादेवि गृहणं त्वं सुरेश्वरि ॥१६॥

इति पुष्पाणि इति पुष्पान्तानुचारानुपर्चय, श्रीभगवति परिवारपूजार्थमनुज्ञां देहि इति प्रार्थय, मध्ये प्रथमबीजे ३० महासरस्वत्यै नमः। तृतीयबीजे ३० महाकाल्यै नमः। महालक्ष्म्याः पृष्ठे ब्रह्मसरस्वतीभ्यां नमः। महासरस्वतीपृष्ठे रुद्रगौरीभ्यां नमः। महाकल्याः पृष्ठे हृषीकेशलक्ष्मीभ्यां नमः। महालक्ष्म्या वामाये मं महिषासुराय नमः। दक्षाये सिंहाय नमः, इति संपूज्य षट्कोणेषु पूर्वादि ३० नन्दजायै नमः, ३० रक्तदन्तिकायै०, ३० शाकम्भर्यै०, ३० दुर्गायै०, ३० भीमायै०, ३० भ्रामर्यै नमः इति संपूज्य, षट्कोणाद्वाहिः कर्णिकायामेवं षडङ्गानि संपूज्य, अष्टदलेषु

ब्राह्माद्यामातुका: संपूज्य, चतुरसे प्रथमवीथ्यामिन्द्रादीन्, द्वितीयवीथ्यां वत्रादीन् संपूज्य, मूलं० साङ्गायै सपरिवारायै  
श्रीमहालक्ष्ये नमः इति पुष्टाञ्जलीन् दद्यात्।

गुगुलं घृतसंयुक्तमगुर्वादिसमाहितम् । दशाङ्गं गृहण धूपं भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥१७॥  
इति धूपम्।

रक्तसूत्रलसद्वर्ति गोधृतेन च पूरितम् । दीपं गृहण देवेशि नमस्त्वैलोक्यसुन्दरि ॥१८॥  
इति दीपम्।

दिव्यात्रं रससंपुष्टं नानाभक्ष्यैस्तु संस्कृतम् । चोष्यपेयसमायुक्तमन्नं देवि गृहण मे ॥१९॥

इति नैवेद्यम्। इति नैवेद्यं समर्प्य देवीं भुज्ञानां भावयन् मूलं दशावारं जपित्वा शुद्धोदकं देवै निवेद्य,  
स्मार्तांग्नीं मूलेन पञ्चविंशत्याहुतीहृत्वा षडङ्गमन्त्रैः षडाहुतीः, आवरणदेवतानामेकैकामाहुतिं हृत्वा पूजास्थानमागत्य,  
स्ववामये त्रिकोणमण्डलेऽन्नव्यञ्जनयुतं साधारबलिपात्रं निधाय 'ॐ हीं सर्वविघ्नकृद्धयः सर्वभूतेभ्यो हुं फट्'  
सर्वभूतेभ्य एष बलिनमः। इति मन्त्रेण बलिमुत्सृज्य देवै उत्तरापोशानादिकं दत्त्वा, ततः

गृहण देवि ताम्बूलं कपूरेण सुवासितम् । पूर्णीफलसमायुक्तं सच्चूर्णं मुखमण्डनम् ॥२०॥  
इति ताम्बूलम्।

मङ्गले कालिके दुर्गे महिषासुरसूदनि । नीराजनं मया दत्तं गृहण सुरसुन्दरि ॥२१॥  
इति नीराजनम्।

दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सकलासुरनाशिनि । पुष्टाञ्जलिं गृहण त्वं मया दत्तं सुरार्चिते ॥२२॥  
इति पुष्टाञ्जलिः।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके दुर्गे कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२३॥  
इति नमस्कारः।

मया जन्मसहस्रेषु अर्जितं पापसञ्चयम् । तत्सर्वं नाशय क्षिप्रं प्रदक्षिणपदे पदे ॥२४॥  
इति प्रदक्षिणम्।

पूजायाः सहुणार्थं तु दक्षिणा दीयते मया । तां गृहण महेशानि पूजां मे सफलां कुरु ॥२५॥  
इति हिरण्यम्।

महिषनि महामाये चामुण्डे पापहरिणि । यशो देहि धनं देहि तव भक्तिं च देहि मे ॥२६॥  
इति प्रार्थना । ततो मूलमन्त्रं यथाशक्तिं जपित्वा जपं समर्प्य सप्तशतीपाठं कुर्यात्।

सोने आदि के पीठ पर कुङ्गुमादि से षट्कोण बनावे। उसके बाहर संलग्न वृत्त में अष्टदल कमल बनावे। उसके बाहर  
वृत्त बनावे। उसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन चतुरस्र बनावे। इस प्रकार के पूजाचक्र को बनाकर षट्कोण के पथ्य में ऐं  
हीं कलीं पंक्ति के आकार में लिखे। षट्कोण में अपने आगे के कोण से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से अकारादि छः बीजों  
को लिखे। तब अर्धादि पात्रों को स्थापित करे। पूजा उपकरणों का प्रोक्षण करे। 'ॐ हीं हंसः सोहं स्वाहा' से अपने शरीर  
में चन्दनादि लगावे। अपने को देवीरूप का मानकर पूर्ववृत् मूलाधार में चतुरस्र कुण्डलिरूप अग्नि का चिन्तन करे। ऐं हीं  
कलीं चामुण्डायै विच्छे धर्माधर्महविदीर्णपे आत्मानौ मनसा सुचा। सुषुमावर्त्तना नित्यमक्षवृतीर्जुहोम्यहम्, पापं जुहोमि स्वाहा।  
इसी प्रकार पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प आदि का हवन करे।

फिर मूल मन्त्र प्रकाशमर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीसुचम्। धर्माधर्मकलास्तेहपूर्णवहौ जुहोम्यहम्। अर्धम् जुहोमि  
स्वाहा' से पूर्णहुति देकर अपने को देवीरूप मानकर मूल मन्त्र का जप यथाशक्ति करे। जप समर्पण करे।

पूजा पीठ का अर्च्य जल से प्रोक्षण करे। षट्कोण में ३० कारपीठाय नमः। अष्टदल में ३० पूर्णगिरपीठाय नमः। चतुरस में ३० कामपीठाय नमः से पूजा करे। पीठ के बाहर चारों दिशाओं में ३० गं गणेशाय नमः, ३० क्षं क्षेत्रपालाय नमः, ३० दुं दुर्गायै नमः, ३० वं वटुकाय नमः से पूजा करे।

अग्न्यादि कोणों में ३० जं जयायै नमः, ३० विं विजयायै नमः, ३० जं जयन्त्यै नमः, ३० अं अपराजितायै नमः से पूजा करे। पद्मानाल के मूल में आं आधारशक्तये नमः, कूं कूर्माय नमः, शं शेषाय नमः, पृं पृथिव्यै नमः, नं नालाय नमः, पं पद्माय नमः पूजा करे।

अष्टदल कर्णिका में षट्कोण के बाहर ३० विं विष्णुमायायै नमः, चं चेतनायै नमः, बुं बुद्ध्यै नमः, निं निद्रायै नमः, क्षुं क्षुधायै नमः—इन पाँच शक्तियों की पूजा करे। दक्षिण दिशा में ३० छां छायायै नमः, शं शक्त्यै नमः, तृं तृष्णायै नमः, क्षां क्षान्त्यै नमः, जां जात्यै नमः, लं लज्जायै नमः—इन छः शक्तियों की पूजा करे। पश्चिम दिशा में ३० शां शान्त्यै नमः, श्रं श्रद्धायै नमः, कां कान्त्यै नमः, लं लक्ष्यै नमः, धं धृत्यै नमः, वृं वृत्यै नमः—इन छः शक्तियों की पूजा करे। उत्तर दिशा में ३० स्मृं स्मृत्यै नमः, दं दयायै नमः, तुं तुष्ट्यै नमः, पुं पुष्ट्यै नमः, मा॑ मात्रे नमः, प्रां प्रान्त्यै नमः—छः शक्तियों की पूजा करे। इस प्रकार तेर्वेस देवताओं की पूजा करके मध्य में बीज में मूल श्रीमहालक्ष्मी मूरत्ये नमः से पूजा करे। पुष्पाञ्जलि लेकर हृदय कमल में यथोक्त रूप की सांगा सावरणा महालक्ष्मी का ध्यान करके उसके तेज रूप को लेकर सुषुप्ता मार्ग से ब्रह्मारञ्ज में लाकर प्रवहमान नासाञ्जिल से पुष्पाञ्जलि में संयोजित कर मूल मन्त्र से उस तेज को लाकर आवाहन करे—

ध्यायामि मनसा दुर्गा नाभिमध्ये व्यवस्थिताम्। आवाहयेत्तो दुर्गा संसारभयतारिणीम्॥

कल्याणजननीं सत्यां कामदां करुणाकराम्। अनन्तशक्तिसम्पन्नां दुर्गामावाहयाम्यहम्॥

महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेद्वेहि परमेश्वरि॥

तदनन्तर '३० दुर्गे देवी०' से आसन, '३० स्वागतं कुशलं०' से स्वागत, '३० जगत्पूज्ये०' से अर्च्य, '३० कात्यायनि० से पाद्य, '३० सर्वलोकस्य०' से आचमन, 'कपिलादधि०' से मधुपर्क, 'कर्घरवसितं०' से आचमनीय, 'ज्ञानमूर्ते०' से स्नान, 'वस्त्रं स्वच्छं०' से वस्त्र, 'सुरासुर०' से आभूषण, 'श्रीखण्डागुरु०' से चन्दन एवं 'नानापुष्प०' से उपर्युक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुये पुष्पाञ्जलि प्रदान कर देवी का आवाहन करके आवाहनादि नव मुद्राओं का प्रदर्शन कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते। यावत्त्वां पूजियिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥।

पुष्प उपचारों से पूजा करके परिवार-पूजन की आज्ञा मांगे—श्रीभगवति परिवारपूजार्थमनुज्ञा देहि। मध्य में प्रथम बीज में ३० महासरस्वत्यै नमः, तृतीय बीज में ३० महाकाल्यै नमः, महालक्ष्मी के पीछे ब्रह्मासरस्वतीभ्यां नमः, महासरस्वती के पीछे रुद्रगौरीभ्यां नमः, महाकाली के पीछे हृषीकेशलक्ष्मीभ्यां नमः, महालक्ष्मी के वामाग्र में मं महिषासुराय नमः, एवं दक्षाग्र में सिं सिंहाय नमः से पूजा करे।

षट्कोणों में पूर्वादि क्रम से ३० नन्दजायै नमः, ३० रक्तदन्तिकायै नमः, ३० शाकम्बर्यै नमः, ३० दुर्गायै नमः, ३० भीमा नमः, ३० भ्रामर्यै नमः से पूजा करे।

षट्कोण के बाहर कर्णिका में षड्ङ्गों की पूजा करे। अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्ट मातुकाओं की पूजा करे। चतुरस की प्रथम वीथि में इन्द्रादि की एवं द्वितीय वीथि में बज्रादि आयुधों की पूजा करे। मूल सांगायै सपरिवारायै महालक्ष्यै नमः से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। 'गुगुलं०' से धूप, 'रक्तसूत्रलसद्वर्ति०' से दीप एवं 'दिव्यान्तं०' से नैवेद्य अर्पित करे।

नैवेद्य देकर भावना करे कि देवी भोजन कर रही है। मूल मन्त्र का दश बार जप कर देवी को शुद्धोदक प्रदान करे। स्मार्त अग्नि में पच्चीस आहुति मूल मन्त्र से देवे। षट्ङ्ग मन्त्र से छः आहुति देवे। आवरण देवताओं को एक-एक आहुति प्रदान करे। पूजा स्थान में आकर अपने वाम भाग में त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें साधार अत्र व्यञ्जनयुक्त बलिपात्र रखे। '३० हीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट् सर्वभूतेभ्यः एष बलिर्नमः' से बलि उत्सर्ग करके देवी को उत्तरापोशानादि प्रदान करने

के पश्चात् 'गृहण देवि०' से ताम्बूल, 'मङ्गले कालिक०' से आरती, 'दुर्गे देवि०' से पुष्टाञ्जलि, 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्य०' से नमस्कार, 'मया जन्मसहस्रेषु०' से प्रदक्षिणा, 'पूजाया: सटुणार्थ०' से सुवर्ण प्रदान कर 'महिष्ठिन महामाय०' से प्रार्थना करे। तब यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप कर जपसमर्पण करके दुर्गासप्तशती का पाठ करे।

तत्र अद्येत्यादिसङ्कल्पं कृत्वा, प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, महाकाली देवता, रक्तदन्तिका बीजं, नन्दा शक्तिः, अग्निसत्त्वं प्रथमचरित्रजपे विनियोगः। मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, महालक्ष्मीदेवता, दुर्गा बीजं, शाकम्भरी शक्तिः, वायुसत्त्वं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः। उत्तमचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, महासरस्वती देवता, भ्रामरी बीजं, भीमा शक्तिः, सूर्यसत्त्वं उत्तम चरित्रजपे विनियोगः, इति विन्यस्य पठेत् पूजायन्त्रस्य चतुरस्ताद्वाहिः प्राच्यां ॐ ह्रीं उड्याणपीठाय नमः, मुण्डेश्वरनाथाय नमः, मुण्डाम्बापादुकां पूजयामि नमः। एवं अग्रेये ॐ ह्रीं मातृकापीठाय०, मातृकाचक्रेश्वरनाथाय०, मातृकाम्बापाय०। दक्षिणे ॐ ह्रीं जालन्धरपीठाय०, जालामुखनाथाय०, जालाम्बापाय०। नैऋत्ये ॐ ह्रीं कोलापुरपीठाय०, कोलापुरेश्वरनाथाय०, कोलाम्बापाय०। पश्चिमे ॐ ह्रीं पूर्णगिरिपीठाय नमः, पूर्णेश्वरनाथाय०, पूर्णम्बापाय०। वायव्ये ॐ ह्रीं चौहारपीठाय०, चौहारनाथाय०, चौहारम्बापाय०। उत्तरे ॐ ह्रीं कोलगिरिपीठाय०, कोलनाथाय०, कोलाम्बापाय०। ऐशान्यां ॐ ह्रीं कामरूपपीठाय०, कामरूपनाथाय०, कामाम्बापाय०। मध्ये ॐ ह्रीं योगिनीपीठाय नमः। तत आनेयादिकोणेषु वेतालान् पूजयेत्, अग्निमुखाय नमः, प्रेतवाहनाय० ज्वालामुखाय नमः, धूम्राक्षाय नमः। ततो मध्ये षट्कोणेषु गुरुभ्यो नमः, परमगुरुभ्यो०, परमेष्ठिगुरुभ्यो०, गणेशाय०, हरये०, हराय नमः। ततो मध्ये देवीपृष्ठभागे महालक्ष्मीहृषीकेशाभ्यां नमः, सरस्वतीक्रिरिच्छाभ्यां०, उमामहेश्वराभ्यां०। दक्षिणे कालाय०, रुद्राय०, महासिंहाय०। वामे पूत्यवे०, मध्ये विजयाय०, गणपाय०, महिषाय०, चण्डिकाय०। उत्तरे कालाय०, दक्षिणे यमाय नमः। इति संपूज्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।

अथ जातवेदसादिमन्त्राः—ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय पूर्वोक्तवहृष्ट्यानाजपास्नानसंध्याभूतशुद्ध्यादिमातृकान्यासानं विधाय, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा मन्त्रन्यासान् कुर्यात्। अस्य श्रीजातवेदसे-महामन्त्रस्य मरीचिकश्यपत्रहृषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, जातवेदसेऽग्निस्वरूपिणी दुर्गा देवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थं विनियोगः। मरीचिकश्यपत्रहृषये नमः शिरसि, त्रिष्टुपछन्दसे नमो मुखे, जातवेदसेऽग्निस्वरूपिणी दुर्गादिवतायै नमो हृदि, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थं विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु। जातवेदसे हृदयाय नमः, सुनवाम सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा, निदहाति वेदः शिखायै वषट् स नः पर्षदति कवचाय हुं, दुर्गाणि विश्वा नवेव नेत्रत्रयाय वौषट्, सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्। एवमङ्गलीन्यासः।

ॐ जां नमो दक्षपादाङ्गुष्ठे। ॐ तं नमो वामे। ॐ वं नमो दक्षगुल्के। ॐ दं नमो वामे। ॐ सं नमो दक्षजङ्घायां। ॐ सुं नमो वामायां। ॐ नं नमो दक्षजानुनि। ॐ वां नमो वामे। ॐ मं नमो दक्षोरौ। ॐ सों नमो वामे। ॐ मं नमो दक्षकर्त्त्वां। ॐ अरां नमो वामायां। ॐ तीं नम अन्त्युनि। ॐ यं नमो नाभौ। ॐ तों नमो हृदि। ॐ निं नमो दक्षस्तने। ॐ दं नमो वामस्तने। ॐ हों नमो दक्षपार्श्वै। ॐ तिं नमो वामपार्श्वै। ॐ वं नमो पृष्ठे। ॐ दं: नमो दक्षस्कन्धे। ॐ सं नमो वामे। ॐ नं: नमो मध्ये। ॐ पं दक्षबाहुमूले। ॐ रं नमो वामे। ॐ षं नमो दक्षोपबाहौ। ॐ दं नमो वामे। ॐ तिं नमो दक्षकूपरि। ॐ दुं नमो वामे। ॐ गां नमो दक्षप्रकोष्ठे। ॐ णिं नमो वामे। ॐ विं नमो दक्षमणिबन्धादितलान्ते। ॐ श्वां नमो वामे। ॐ नां नमो मुखे। ॐ वे नमो दक्षनासिकायां। ॐ वं नमो वामायां। ॐ सिं नमो दक्षनेत्रे। ॐ न्युं नमो वामे। ॐ दुं नमो दक्षकर्णे। ॐ रिं नमो वामे। ॐ तां नमो ललाटे। ॐ त्यं नमो मस्तिष्के। ॐ गिं: नमो मूर्धिः। इत्यक्षरन्यासः।

जात शिखायां। वेदसे ललाटे। सुनवाम कर्णयोः। सोमं नासिकायां। अराती चक्षुषोः। यत ओष्ठयोः। नि दन्तेषु। दहाति तालुनि। वेदः जिह्वायां। स श्रीवायां। नः बाह्वोः। पर्षत् स्तनयोः। अति हृदये। दुः कुक्षौ। गाणि नाभौ।

विश्वा पृष्ठे। नावा पायौ। इव वृषणयोः। सिन्धुं शिश्ने। दुः कट्योः। इता ऊर्वोः। अति जङ्घयोः। अग्निः पादयोः। अग्नी रक्षतु। इति पदन्यासे सृष्टिः। ततः समग्रमन्त्रेण व्यापकं विन्यस्य,

जातवेदसे पादयोः। सुनवाम अङ्गुलीषु। सोमं जानुनोः। अरातीयतो ऊर्वोः। नि गुह्ये। दहाति कट्योः। वेदः नाभौ। स हृदये। नः पृष्ठे। पर्षत् बाह्योः। अति कण्ठे। दुर्गाणि वक्त्रे। विश्वा चक्षुषोः। नावेव नासिकयोः। सिन्धुं कर्णयोः। दुरिता ललाटे। अति मुकुटे। अग्निः मूर्धिं।

पादयोः विष्णवे नमः। हृदि ब्रह्मणे नमः। मूर्धिं परमात्मने नमः। शिखायां सप्तऋषिभ्यो नमः। नासिकायां सप्तवायुभ्यो नमः। चक्षुषोः शशिभास्कराभ्यां नमः। श्रोत्रयोः अश्विनीयदेवेभ्यां नमः। जिह्वायां सरस्वत्यै नमः। वाचि आग्नये नमः। दन्तेषु मरुद्धन्यो नमः। कण्ठे देवेभ्यो नमः। हृदि वरुणाय नमः। उदरे हृव्यवाहनाय नमः। कुक्षी पृथिव्यै नमः। कट्यां नवग्रहेभ्यो नमः। नाभौ मेरवे नमः। अस्त्रे जातवेदसे नमः। शिखायां आज्यस्थाल्यै नमः। शिरसि आज्याय नमः। नेत्रयोः ज्योतिषे नमः। कवचे बर्हिषे नमः। उद्यन्तः शक्तिः ज्वलन्तः प्रहरणं बद्धगोधाङ्गुलित्राणां,

यस्याः सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगामिनः। तामिमां रुद्रसंयुक्तां दुर्गामिवाहयाम्यहम् ॥

आयातु दुर्गा दुर्गारूपा अभयं मे ददातु तां दुर्गा कुमारीपृष्ठिभिश्च पूजितां शारणमहं प्रपद्ये ॐ दुर्गायै नमः, ॐ याम्यै०, ॐ रौद्रै०, ॐ आदित्यायै०, ॐ कात्याय्यै०, ॐ गौर्यै०, ॐ धात्रै०, ॐ शक्त्यै०, ॐ चामुण्डायै०, ॐ सरस्वत्यै०, इति नवशक्तियुक्तां,

शङ्खं खेटं तथा बाणान् वामे चाभयदायिनीम्। धनुश्कं तथा पात्रं दक्षिणे सुवरप्रदम् ॥

चक्रखड्गशराङ्गूलं लोहपुष्टिं च तोमरम्। वलयं भिण्डपालं च दधानां चौतरे भुजे ॥

परिघं चाङ्गुशं चैव धारयन्तीं त्रिलोचनाम्। सिद्धन्ति सर्वकार्याणि निश्चितं हि द्विजोत्तम ॥

ऋग्वेदसंसुता देवी कश्यपेन प्रकीर्तिता। जातवेदः प्रभां देवीं भुक्तिमुक्तिविधायिनीम् ॥

मेरुपर्वतकुम्भां व्याघ्रानुसारिणीं सिंहचतुर्मुखवाहिनीमष्टादशभुजां शुक्लवक्षां शुक्लवासिनीं सर्वाभरणभूषितां जातवेदसेदेवीं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः संपूज्य, तदेव देवीस्वरूपं स्वात्मानमित्यभेदभावनां कृत्वा रक्षाषडङ्गं कुर्यात्। ॐ हरहरिणि मालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणिभ्यां स्वाहा हृदयाय नमः। अग्नितेजोज्वालामालिनि शिरसे स्वाहा। चन्द्रतेजोज्वालामालिनि शिखायै वषट्। ब्रह्मतेजोज्वालामालिनि कवचाय हुं। आदित्यतेजोज्वालामालिनि नेत्रत्रयाय वौषट्। विष्णुतेजोज्वालामालिनि सर्वतेजोज्वालामालिनि ज्वलज्वालामालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणि देवि दह जातवेदससभूते स्वाहा अस्त्राय फट्। इति षडङ्गं कृत्वा,

'ॐ जातवेदसे सुनवाम सोमं सूरासुरैर्द्विजगणैः पिशाचोरगराक्षसैः रात्रौ भये समुत्पन्ने अरातीयतो निदहाति वेदः राजद्वारे भये घोरे संग्रामे शत्रुसङ्कटे सर्वं रक्षति दुरितं सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा महद्दये समुत्पन्ने स्मान्ति च पठन्ति सर्वं तरति दुर्गा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः' इति पठम् स्वात्मानं स्वप्रकाशचिदानन्दमानं देवतामयं ध्यात्वा मूलषडङ्गं कुर्यात्। ॐ जातवेदसे सुनवाम हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि हृदयाय नमः। सोममरातीयतो हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि शिरसे स्वाहा। निदहाति वेदः हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि शिखायै वषट्। स नः पर्षदति हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि कवचाय हुं। दुर्गाणि विश्वा नावेव हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि नेत्रत्रयाय वौषट्। सिन्धुं दुरितात्यग्निः हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि अस्त्राय फट्। इति षडङ्गं कृत्वा मन्त्रेण सर्वाङ्गं व्याप्त, स्ववामभागे कलशस्थापनं कृत्वा, स्वदक्षिणभागे शङ्खं संस्थाप्य मध्येऽर्धादिपञ्चप्रात्राणि संस्थाप्य, देवीसूक्तेन देवीमभिषिद्य पीठपूजां कुर्यात्। ॐ कालाग्निरुद्राय नमः। मण्डूकायै०, आधारशक्त्यै०,

कूर्माय०, अनन्ताय०, वराहाय०, पृथिव्यै०। एवमुपर्युपरि संपूज्य, क्षीरसमुद्राय नमः, श्वेतद्वीपाय०, कल्पवृक्षाय नमः, रत्नवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय नमः। आग्नेयादि धर्माय०, ज्ञानाय०, वैराग्याय०, ऐश्वर्याय०, एते पादरूपिणः। अधर्माय०, अज्ञानाय०, अवैराग्याय०, अनैश्वर्याय०, एते सिंहासनग्रात्रस्तिपिणः, इति सम्पूज्य, तदुपरि हीं मायायै०, हीं चिच्छकत्यै०। तदुपरि आनन्दकन्दाय०, संवित्रालाय०, प्रकृतिमयघ्रेभ्यो०, विकार-मयकेसरेभ्यो०, पञ्चाशद्वर्णबीजाद्यसर्वतत्त्वस्पायै कर्णिकायै०। तदधः अं अर्कमण्डलाय०, सं सोममण्डलाय०, रं वह्निमण्डलाय०, सं सत्त्वाय०, रं रजसे०, तं तमसे०, अं अन्तरात्मने०, आं आत्मने०, पं परमात्मने०, हीं ज्ञानात्मने, आत्मतत्त्वाय०, मायातत्त्वाय०, विद्यातत्त्वाय०, कलातत्त्वाय०, मध्ये परमतत्त्वाय०, इति संपूज्य केसरेषु पूर्वाद्यष्टदिक्षु मध्ये च पीठशक्तीः प्रपूजयेत्। हीं जं जयायै०, हीं विं विजयायै०, हीं भं भद्रायै०, हीं भं भद्रकात्म्यै०, हीं सु सुमुख्यै०, हीं दुर्मुख्यै०, हीं व्याघ्रमुख्यै०, हीं सिंहमुख्यै०, मध्ये—हीं दुं दुर्गायै०, इति संपूज्य ‘ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः’ इति पीठं संपूज्य, तदुपरि मूलमन्त्रमुच्चरन् देवीयन्नं संस्थाप्यावाहनं कुर्यात्।

यस्या: सिंहो रथे युक्तो व्यग्रा यस्यानुगामिनः। तामिमां रुद्रसंयुक्तं दुर्गामावाहयाम्यहम् ॥

इत्यावाहु आवाहिता भव, आस्थापिता भव, सन्त्रिरोधिता भव, संमुखी कृता भव, अवगुणिता भव, सकलीकृता भव, परमीकृता भव, अमृतीकृता भव, इत्युच्चरन् तत्त्वमुद्राः प्रदर्शयेत्। ध्यानम्—

विद्युद्धामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्वस्ताभिरासेविताम् ।

हस्तैश्वक्रगदासिखेटविशिखं चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां स्मरेत् ॥

इति ध्यात्वा, मूलमन्त्रेणाद्यर्थपाद्याचमनीयमध्यपर्कादिषोडशोपचारपूजां कृत्वा आवरणपूजामारभेत्।

उसमें प्रारम्भ में संकल्प करके प्रथमचरित्रस्य ब्रह्म ऋषिः, गयत्री छन्दः, महाकाली देवता, रक्तदन्तिका बीजं, नन्दा शक्तिः, अग्निस्तत्त्वं प्रथमचरित्रजपे विनियोगः। मध्यमचरित्रस्य विष्णुऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, महालक्ष्मीदेवता, दुर्गा बीजं, शाकप्तरी शक्तिः, वायुस्तत्त्वं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः। उत्तमचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, महासरस्वती देवता, ब्रामरी बीजं, भीमा शक्तिः, सूर्यस्तत्त्वं उत्तम चरित्रजपे विनियोगः। इस प्रकार न्यास करके पाठ करे। पूजायन्न के चतुरस के बाहर पूर्व दिश में ॐ हीं उड्डाणपीठाय नमः, मुण्डेश्वरनाथाय नमः, मुण्डाम्बापादुकां पूजयामि नमः। इसी प्रकार आग्नेय कोण में ॐ हीं मातृकापीठाय०, मातृकाचक्रेश्वरनाथाय०, मातृकाम्बापा०। दक्षिण में ॐ हीं जालन्धरपीठाय०, जालामुखनाथाय०, जालाम्बापा०। नैऋत्य में ॐ हीं कोलापुरपीठाय०, कोलापुरेश्वरनाथाय०, कोलाम्बापा०। पश्चिम में ॐ हीं पूर्णिगिरिपीठाय नमः, पूर्णेश्वरनाथाय०, पूर्णाम्बापा०। वायव्य में ॐ हीं चौहारपीठाय०, चौहारनाथाय०, चौहारम्बापा०। उत्तर में ॐ हीं कोलगिरिपीठाय०, कोलनाथाय०, कोलाम्बापा०। ईशान कोण में ॐ हीं कामरूपपीठाय०, कामरूपनाथाय०, कामाम्बापा०। मध्य में ॐ हीं योगी-नीपीठाय नमः। तदनन्तर आग्नेयदि कोणों में वेतालादि की पूजा करे। अग्निमुखाय नमः, प्रेतवाहनाय नमः, ज्वालामुखाय नमः, धूम्रक्षाय नमः। तदनन्तर मध्य षट्कोण में गुरुभ्यो नमः, परमगुरुभ्यो०, परमेष्ठिगुरुभ्यो०, गणेशाय०, हरये०, हराय नमः। तदनन्तर मध्य में देवी के पृष्ठ भाग में महालक्ष्मीहर्षीकेशाभ्यां नमः, सरस्वतीविराजिभ्यां०, उमामहेश्वराभ्यां०। दक्षिण में कालाय०, रुद्राय०, महासिंहाय०। बाँयें मृत्युवें, मध्य में विजयाय०, गणपाय०, महिषाय०, चण्डिकायै०। उत्तर में कालाय०, दक्षिण में यमाय नमः।

इस प्रकार पूजा करके योनिमुद्रा दिखावे।

जातवेदसादि मन्त्र—ब्राह्म मुहूर्त में उठकर पूर्वोक्त रूप में गुरु, ध्यान, अजपा जप, स्नान, सन्ध्या, भूतशुद्धि, मातृका न्यास करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके मन्त्रन्यास करे।

अस्य श्रीजातवेदसे महामन्त्रस्य मरीचिकशयप ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः। जातवेदसे अग्निस्वरूपिणी दुर्गा देवता ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः—इस प्रकार विनियोग करे। मरीचिकशयपत्रष्टये नमः शिरसि, त्रिष्टुप्छन्दसे नमः मुखे, जातवेदसे अग्निस्वरूपिणी

दुर्गादेवतायै नमो हृदि, ममाभीष्टसिद्धयं विनियोगाय नमः सर्वगे—इस प्रकार न्यास करके षडङ्ग न्यास करे—जातवेदसे हृदयाय नमः, सुनवाम सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा, निदहाति वेदः शिखायै वषट्, स नः पर्षदति कवचाय हुं, दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्, सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे।

**मन्त्रवर्ण न्यास—** ३० जां नमो दक्षपादाङ्गुष्ठे। ३० तं नमो वामे। ३० वें नमो दक्षगुल्के। ३० दं नमो वामे। ३० सें नमो दक्षजङ्घायां। ३० सुं नमो वामायां। ३० नं नमो दक्षजानुनि। ३० वां नमो वामे। ३० मं नमो दक्षोरै। ३० सों नमो वामे। ३० मं नमो दक्षकट्टायां। ३० अरां नमो वामायां। ३० तीं नम अन्युनि। ३० यं नमो नाभौ। ३० तों नमो हृदि। ३० निं नमो दक्षस्तने। ३० दं नमो वामस्तने। ३० हों नमो दक्षपार्श्वे। ३० तिं नमो वामपार्श्वे। ३० वें नमो पुष्टे। ३० दं: नमो दक्षस्कन्धे। ३० सं नमो वामे। ३० नें: नमो मध्ये। ३० पं दक्षबाहूमूले। ३० रं नमो वामे। ३० षं नमो दक्षोपबाहौ। ३० दं नमो वामे। ३० तिं नमो दक्षकूपेरि। ३० दुं नमो वामे। ३० गा॒ नमो दक्षप्रकोष्ठे। ३० षिं नमो वामे। ३० विं नमो दक्षमणिबन्धादितलान्ते। ३० श्वां नमो वामे। ३० नां नमो मुखे। ३० वें नमो दक्षनासिकायां। ३० वं नमो वामायां। ३० सिं नमो दक्षनेत्रे। ३० न्धुं नमो वामे। ३० दुं नमो दक्षकर्णे। ३० रि नमो वामे। ३० तां नमो ललाटे। ३० त्यं नमो मस्तिके। ३० गिनं: नमो मूर्धिं।

**मन्त्रपद न्यास—जात शिखायां। वेदसे ललाटे। सुनवाम कर्णयोः। सोमं नासिकायां। अराती चक्षुषोः। यत औष्ठयोः। नि दन्तेषु। दहाति तालुनि। वेदः जिह्वायां। स ग्रीवायां। नः बाह्योः। पर्षत् स्तनयोः। अति हृदये। दुः कुक्षौ। गाणि नाभौ। विश्वा पृष्ठे। नावा पायौ। इव वृष्णयोः। सिन्धुं शिश्ने। दुः कट्टयोः। इता ऊर्वोः। अति जहृयोः। अग्निः पादयोः। पूरे मन्त्र से व्यापक न्यास करे। यह सृष्टि न्यास है।**

**मन्त्रपद न्यास—जातवेदसे पादयोः। सुनवाम अङ्गुलीषु। सोमं जानुनोः। अरातीयतो ऊर्वोः। नि गुह्ये। दहाति कट्टयोः। वेदः नाभौ। स हृदये। नः पृष्ठे। पर्षत् बाह्योः। अति कण्ठे। दुर्गाणि वक्त्रे। विश्वा चक्षुषोः। नावेव नासिकयोः। सिन्धुं कर्णयोः। दुरिता ललाटे। अति मुकुटे। अग्निः मूर्धिं।**

पादयोः विष्णावे नमः। हृदि ब्रह्मणे नमः। मूर्धिं परमात्मने नमः। शिखायां सप्तऋषिभ्यो नमः। नासिकायां सप्तवायुभ्यो नमः। चक्षुषोः शशिभास्कराभ्यां नमः। श्रोत्रयोः अथिनीयदेवभ्यां नमः। जिह्वायां सरस्वत्यै नमः। वाचि अग्नये नमः। दन्तेषु मरुद्धयो नमः। कण्ठे देवेभ्यो नमः। हृदि वरुणाय नमः। उदरे हृव्यवाहनाय नमः। कुक्षौ पृथिव्यै नमः। कट्टयां नवग्रहेभ्यो नमः। नाभौ मेरवे नमः। अखे जातवेदसे नमः। शिखायां आज्यस्थाल्यै नमः। शिरसि आज्याय नमः। नेत्रयोः ज्योतिषे नमः। कवचे बर्हिषे नमः। उद्यन्तः शक्तिः ज्वलन्तः प्रहरणं बद्धगोधांशुलिताणां, यस्या सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगामिनः। तामिं रुद्रसंयुक्तां दुर्गामावाहयाप्यहम् कहकर आवाहन करे। आयातु दुर्गा दुर्गलूपा अभयं मे ददातु। तां दुर्गा कुमारीमृषिभिश्च पूजितां शरणमहं प्रपद्ये। ३० दुर्गायै नमः, ३० याम्यै नमः, ३० रौद्रै नमः, ३० आदित्यायै नमः, ३० कात्यायन्यै नमः, ३० गौर्यै नमः, ३० धात्रै नमः, ३० शक्त्यै नमः, ३० चामुण्डायै नमः, ३० सरस्वत्यै नमः—इन नव शक्तियों से युक्त दुर्गा का ध्यान इस प्रकार करे—

शङ्खं खेटं तथा बाणान् वामे चाभ्ययादिनीम्। धनुश्क्रं तथा पात्रं दक्षिणे सुवरप्रदम्।

चक्रखड्गशरांछूलं लोहमुष्टिं च तोयम्। वलयं भिंडिपालं च धधानां चोत्तरे भुजे॥।

परिधं चाङ्गुशं चैव धारयन्ती त्रिलोचनाम्।

इस प्रकार यह ध्यान करने से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। देवी की स्तुति ऋग्वेद ने की है और कश्यप ने उसे प्रतिपादित किया है। अग्नि के समान देवी की प्रभा है। वे भोग-मोक्ष देने वाली हैं। मेरे पर्वत के समान स्तनों वाली, व्याघ्र का अनुसरण करने वाली, चतुर्मुखी, सिंह पर सवार, अद्वारह भुजाओं वाली, शुक्ल वस्त्र एवं परिधान वाली, समस्त आभरणों से भूषित, जातवेद से देवी का ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करे। तब अपने को देवीस्वरूप मानकर देवी से ऐक्य भावना करके रक्षा षडङ्ग करे। ३० हरहरिण मालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणिभ्यां स्वाहा हृदयाय नमः। अग्नितेजोज्वलामालिनि शिरसे स्वाहा। चन्द्रतेजोज्वलामालिनि शिखायै वषट्। ब्रह्मतेजोज्वलामालिनि कवचाय हुं। आदित्यतेजोज्वलामालिनि नेत्रत्रयाय

वौषट्। विष्णुतेजोज्वालामालिनि सर्वतेजोज्वालामालिनि ज्वलज्ज्वालामालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणि देवि दह जातवेदसप्तूते स्वाहा अस्त्राय फट्।

‘३० जातवेदसे सुनवाम सोमं सुरासुरैर्द्विंजगणैः पिशाचोरगराक्षसैः रात्रौ भये समुपत्रे अरातीयतो निदहाति वेदः राजद्वारे भये घोरे संग्रामे शत्रुसङ्खटे सर्वं रक्षति दुरितं सनः पर्षदति दुर्गाणिं विश्वा महद्वये समुत्पत्रे स्मरन्ति च पठन्ति सर्वं तरति दुर्गा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निं’ पढ़कर अपने को स्वप्रकाश विदानन्दमग्न देवतामय मानकर मूल से बड़ङ्ग करे।

३५ जातवेदसे सुनवाम हलाहलिनि ज्वलज्ज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि हृदयाय नमः। सोममरातीयतो हलाहलिनि ज्वलज्ज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि शिरसे स्वाहा। निदहाति वेदः हलाहलिनि ज्वलज्ज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि शिखायै वौषट्। स नः पर्षदति हलाहलिनि ज्वलज्ज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि कवचाय हैं। दुर्गाणिं विश्वा नावेव हलाह-लिनि ज्वलज्ज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि नेत्रत्रयाय वौषट्। सिन्धुं दुरितात्यग्निः हलाहलिनि ज्वलज्ज्वालामालिनि बद्धगोधाङ्गुलित्राणिनि अस्त्राय फट् से बड़ङ्ग करके मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे। अपने वाम भाग में कलश-स्थापन करे। दक्षिण भाग में शङ्ख स्थापित करे। मध्य में अर्धादि पाँच पात्रों को स्थापित करे। देवी सूक्त से देवी का अभिषेक करके पीठपूजा करे।

३५ कालाग्निरुद्राय नमः, मण्डूकाय नमः, आधारशक्त्यै नमः, कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, वराहाय नमः, पृथिव्यै नमः—इस प्रकार ऊपर-ऊपर पूजन कक्षे क्षीरसमुद्राय नमः, श्वेतद्वीपाय नमः, कल्पवृक्षाय नमः, रत्नवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय नमः से पूजन करो। आग्नेयादि कोणों में सिंहासन के पादरूप में इस प्रकार पूजन करे—धर्माय नमः, ज्ञानाय नमः, वैराग्याय नमः, ऐश्वर्याय नमः सिंहासन के शरीररूप में इनकी पूजा करे—अर्धार्थाय नमः, अज्ञानाय नमः, अवैराग्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः। उसके ऊपर हीं मायायै नमः से पूजन करो हीं चिच्छक्त्यै नमः से पूजन करे। उसके ऊपर आनन्दकदाय नमः, संवित्रालाय नमः, प्रकृतिमयप्रेष्यो नमः, विकारमयकेसरेष्यो नमः, पञ्चाशद्वृन्बीजाङ्गसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः से पूजन करे। उसके नीचे अं अर्कमण्डलाय नमः, सं सोममण्डलाय नमः, रं वहिमण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, अं अन्तरात्मने नमः, आं आत्मने नमः, पं परमात्मने नमः—इस प्रकार पूजा के बाद केसर में पूर्वादि आठ दिशा और मध्य में पीठ शक्तियों की पूजा करे। हीं जं जयायै नमः, हीं विं विजयायै नमः, हीं भं भद्रायै नमः, हीं भं भद्रकाल्यै नमः, हीं दुं दुर्मुख्यै नमः, हीं सुं सुमुख्यै नमः, हीं व्यां व्याघ्रमुख्यै नमः, हीं सिं सिंहमुख्यै नमः, मध्य में हीं दुर्गायै नमः। इसके बाद ३० वज्रनखदंश्युधाय महासिंहाय हुं फट् नमः से पीठपूजा के बाद मूल मन्त्र बोलकर देवीयन्त्र को स्थापित करके इस प्रकार आवाहन करे—

यस्या: सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगमिनः। तामिंसां रुद्रसंयुक्तां दुर्गामिवाहयाप्यहम्॥

तब कहे—आवाहिता भव, आस्थापिता भव, सत्रिरोधिता भव, सम्मुखीकृता भव, अवगुणिता भव, सकलीकृता भव, परमीकृता भव, अमृतीकृता भव। साथ-साथ इनकी मुद्राओं को दिखाये। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

विद्युदामसमरपां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्वस्ताभिरासेविताम्।

हस्तैश्वर्क्रगदासिखेटविशिखं चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणमनलात्मिकां शशाधरां दुर्गा विनेत्रां स्मरेत्।।

ध्यान के पश्चात् मूल मन्त्र से अर्थं पाद्य आचमनीय मधुपर्कादि षोडश उपचारों से पूजा कक्षे आवरण पूजा करे।

यथा आग्नेयकोणे जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः। ईशानकोणे सोममरातीयतः शिरसे स्वाहा। नैऋत्ये निदहाति वेदः शिखायै वौषट्। वायव्यै स नः पर्षदति कवचाय हुं। मध्ये दुर्गाणिं विश्वानावेव नेत्रत्रयाय वौषट्। पूर्वादिचतुर्दक्षु सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्। इति षड्ङ्गपूजाप्रथमावरणम्।

ततोऽष्टदलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन जातवेदसे नमः, सप्तजिह्वाय नमः, हृव्यवाहनाय०, अश्वोदरजाय०, वैश्वानराय०, कौमारतेजसे०, विश्वमुखाय०, देवमुखाय नमः। इति द्वितीयावरणम्।

ततः पत्राग्रेषु पूर्वादिचतुर्दक्षु ३० पृथिव्यात्मने०, सलिलात्मने०, अग्न्यात्मने०, वाय्वात्मने०। आग्नेयादि-कोणेषु निवृत्यै०, प्रतिष्ठायै०, विद्यायै०, शान्त्यै नमः। इति तृतीयावरणम्।

**ततः पूर्वादिकोणेषु (दिग्बिदिक्षु) प्रादक्षिणयेन वचनात्मिकाभिमुखीभ्योऽधोमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः ०, ३० जां जागरायै०, ३० तं तपनायै०, ३० वें वेदगर्भायै०, ३० दं दहनस्तपिण्यै०, ३० सें सेन्दुखण्डायै० । शब्दस्पर्शरूपरसगन्थात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यडमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः, ३० सुं सुभहन्त्र्यै०, ३० नं नभशारिण्यै०, ३० वां वागीश्वर्यै०, ३० मं मन्दवाहायै०, ३० सों सोमरूपायै० । षाट्कोशिकमयात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यडमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ३० मं मनोजवायै०, ३० मं मरुद्वेगायै०, ३० रां रात्र्यै०, ३० तीं तीव्रकोपायै०, ३० यं यशोवत्यै०, ३० तों तोयात्मिकायै० । षट्पूर्णात्मिकाभिमुखीभ्यः ऊर्ध्वमुखीभ्यः ऊर्ध्वमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ३० नि नित्यायै०, ३० दं दयावत्यै०, ३० हां हारिण्यै०, ३० तिं तिरस्कियायै०, ३० वें वेदमात्रे०, ३० दं दमनप्रियायै० । सप्तधात्वात्मिकाभिमुखीभ्य उभयमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ३० सं समाराध्यायै०, ३० नः नन्दिन्यै०, ३० पं पराक्ष्यै०, ३० रं रिपुमर्दिन्यै०, ३० षं षष्ठ्यै०, ३० दं दण्डन्यै०, ३० तिं तिगमायै० । पञ्चभूतात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यडमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ३० दुं दुर्गायै०, ३० गां गायत्र्यै०, ३० पिं निरवद्यायै०, ३० विं विशालाक्ष्यै०, ३० श्वां श्वासोद्वाहायै० । कर्मेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः। ३० नां नादिन्यै०, ३० वें वेदनायै०, ३० वं वहिगर्भायै०, ३० सिं सिवाहाहाह्यायै०, ३० धुं धुर्यायै० । ज्ञानेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः। ३० दुं दुर्विषयायै०, ३० रिं रिरंसायै०, ३० तां तापहारिण्यै०, ३० त्यं त्यक्तोषायै०, ३० गिं निः सपत्नायै० । एताः प्रज्वलत्केशवदनाः भीमदंष्ट्रा भयापहा ध्येयाः। इति चतुर्थावरणम्।**

**ततस्तद्विः**: पूर्वादिदले लं इन्द्राय०, रं आग्नय०, मं (टं) यमाय०, क्षं निर्द्रितयै०, वं वरुणाय०, यं वायवे०, सं कुबेराय०, हौं ईशानाय० । इति पञ्चमावरणम्।

**ततस्तद्विः**: वं वप्त्रायुधाय०, शं शक्त्यायुधाय०, दं दण्डायुधाय०, खं खड्गायुधाय०, पां पाशायुधाय०, क्रों अङ्गुशायुधाय०, गं गदायुधाय०, शूं शूलायुधाय० । इति षष्ठावरणम्।

एवं संपूर्ज्य नैवेद्यादिकं निवेद्य आरत्रिकापुष्पाङ्गल्यनं समर्प्य, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा यथाशक्ति जपित्वा 'गुह्यतिं' इति मन्त्रेण जपफलं समर्प्य पूर्वोक्तमन्त्रैर्दिक्यालेभ्यो बलिं हरेत् । एवं गायत्रीजपद्विगुण-सहितचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि जपित्वा तिलसर्षपचित्रमूलसमिद्धिरुडब्बरप्लक्षाशृत्यसमिद्धिराज्याक्तहविष्यान्नेन दशांशतो होतव्यं, कृतपुरश्चरणो भवति । तत आग्नेयास्त्राधिकारी भवति ।

अग्निकोण में जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः। ईशानकोण में सोममरातीयतः शिरसे स्वाहा। नैर्द्रित्य कोण में निदहाति वेदः शिखायै वषट् । वायव्य कोण में स नः पर्षदति कवचाय हुं । मध्य में दुर्गाणि विश्वानावेव नेत्रत्रयाय वौषट् । पूर्वादि चारो दिशाओं में सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट् । षडङ्ग पूजा में यह प्रथम आवरण की पूजा होती है ।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं में प्रादक्षिण्य क्रम से जातवेदसे नमः, सप्तजिह्वाय नमः, हृव्यवाहनाय नमः, अश्वेदरजाय नमः, वैश्वानराय नमः, कौमारतेजसे नमः, विश्वमुखाय नमः, देवमुखाय नमः से द्वितीय आवरण की पूजा करे ।

तदनन्तर पत्रों के आगे पूर्वादि चारो दिशाओं में ३० पृथिव्यात्मने नमः, सलिलात्मने नमः, आग्न्यात्मने नमः, वाय्वात्मने नमः से पूजा करे । आग्नेयादि कोणों में निवृत्यै नमः, प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः से पूजन कर तृतीय आवरण की पूजा सम्पन्न करे ।

तदनन्तर पूर्वादि कोणों में प्रादक्षिण्य क्रम से वचनात्मिकाभिमुखीभ्योऽधोमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः, ३० जां जागरायै नमः, ३० तं तपनायै नमः, ३० वें वेदगर्भायै नमः, ३० दं दहनस्तपिण्यै नमः, ३० सें सेन्दुखण्डायै नमः, शब्दस्पर्शरूपरसगन्थात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यडमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः, ३० सुं सुभहन्त्र्यै नमः, ३० नं नभशारिण्यै नमः, ३० वां वागीश्वर्यै नमः, ३० मं मन्दवाहायै नमः, ३० सों सोमरूपायै नमः, षाट्कोशिकमयात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यडमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ३० मनोजवायै नमः, ३० मं मरुद्वेगायै नमः, ३० रां रात्र्यै नमः, ३० तीं तीव्रकोपायै नमः, ३० यं यशोवत्यै नमः, ३० तों

तोयात्मिकायै नमः, षड्मात्मिकाभिमुखीभ्यः ऊर्ध्वमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ निं नित्यायै नमः, ॐ दं दयावत्यै नमः, ॐ हां हारिण्यै नमः, ॐ तिं तिरस्कियायै नमः, ॐ वें वेदमत्रे नमः, ॐ दं: दमनप्रियायै नमः, सप्तधात्वात्मिकाभिमुखीभ्य  
उभयमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ सं समाराध्यायै नमः, ॐ नेः नन्दियै नमः, ॐ पं पराक्यै नमः, ॐ रं रिपुर्दिव्यै नमः, ॐ षं षष्ठ्यै नमः, ॐ दं दण्डियै नमः, ॐ तिं तिगमायै नमः, पञ्चभूतात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्थमुखीभ्यः क्लीवदेवताभ्यो नमः। ॐ दुं दुग्यायै नमः, ॐ गं गायत्रै नमः, ॐ णिं निरवद्यायै नमः, ॐ विं विशालाख्यै नमः, ॐ शं शासोद्धाहायै नमः, कर्मेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः। ॐ नां नादिन्यै नमः, ॐ वें वेदनायै नमः, ॐ वं वहिंगर्भायै नमः, ॐ सिं सिंहवाहाह्यायै नमः, ॐ धुं धुर्यायै नमः, ज्ञानेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः। ॐ दुं दुर्विषयायै नमः, ॐ रि रिरसायै नमः, ॐ तां तापहारिण्यै नमः, ॐ त्यं त्यक्तदोषायै नमः, ॐ ग्निः निःसप्तलायै नमः, ये सभी चमकते केश एवं मुख वाली, भयानक दाँतों वाली एवं भय का नाश करने वाली हैं। इनका पूजन चतुर्थ आवरण में होता है।

तत्पश्चात् उसके बाहर पूर्वादि दलों में लं इन्द्राय नमः, रं अग्नय नमः, मं (टं) यमाय नमः, क्षं निर्झर्तये नमः, वं वरुणाय नमः, यं वायवे नमः, सं कुबेराय नमः, हौं ईशानाय नमः से पञ्चम आवरण में पूजन करे।

उसके बाहर वं वज्रायुधाय नमः, शं शक्त्यायुधाय नमः, दं दण्डा युधाय नमः, खं खड्गायुधाय नमः, पां पाशायुधाय नमः, ओं अङ्गुशायुधाय नमः, गं गदायुधाय नमः, शं शूलायुधाय नमः से पष्ठ आवरण का पूजन करे।

इस प्रकार पूजन कर नैवेद्य आदि चढ़ाकर आरती कर पुष्टाङ्गलि प्रदान करे। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे, यथाशक्ति मन्त्र जप करे, जप समर्पित करे। पूर्वोक्त मन्त्रों से दिक्पालों को बलि प्रदान करे। गायत्री जप के साथ चौवालीस हजार मन्त्र जप करे, दशांश हवन तिल सरसों चित्रमूल समिधा गूलर पाकड़ पीपल गोधृत से सिक्त हविष्यात्र से करे। इस प्रकार पुरश्वरण पूर्ण होता है। तब आग्नेयाख में साधक का अधिकार होता है।

#### आग्नेयमन्त्रप्रयोगः

आग्नेयमधिदास्यामि मन्त्रं सर्वार्थसाधनम् । मारीचः कश्यपः प्रोक्तो मुनिरस्य महामनोः ॥१॥  
त्रिष्टुष्ठन्दो देवतात्र जातवेदोऽनिरीरितः । नवभिः सप्तभिः षड्भिः सप्तभिः पुनरष्टभिः ॥२॥  
सप्तभिः मूलमन्त्रार्णः षड्गविधिरीरितः । अङ्गुष्ठगुल्फजङ्घासु जानुनोस्त्रुयुग्मके ॥३॥  
कट्यन्ध्युनाभिषु हृदि स्तनयोः पार्श्योः द्व्योः । पृष्ठतः स्तक्यथोर्मध्ये बाहुमूलोपबाहुषु ॥४॥  
प्रकूर्परप्रकोष्ठेषु मणिबन्धत्लेष्वपि मुखनासाक्षिकर्णेषु मस्तमस्तिक्षमर्थसु ॥५॥  
क्रमेण विन्यसेद्वृणान् मन्त्री मन्त्रसमुद्धवान् । शिखाललाटनयनकणोष्ठरसनास्वथ ॥६॥  
सकण्ठबाहुहत्कुक्षिकटिगुहोरुजानुषु । जङ्घयोः पादयोर्न्यसेत्पदान्यस्य मनोः सुधीः ॥७॥

‘विद्युद्दामसमप्रभां’ इत्यादिध्यानम्।

तदुक्तं शारदायाम् (२१.३५)—

शारदातिलक के अनुसार आग्नेयाख मन्त्र सर्वार्थसाधक है। आग्नेयाख मन्त्र के ऋषि मरीचिपुत्र कश्यप, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता जातवेद अग्नि हैं। मन्त्र के नव, सात, छः, सात, आठ, सात अक्षरों से डब्ड करे। अंगूठा, गुल्फ, जंघा, जानु, उरुयुग्म, कटि, नाभि, हृदय, स्तन, पार्श्वद्वय, कन्धा, मध्य, बाहु, मूल, उपबाहु, कूर्पर, मणिबन्ध, करतल, मुख, नाक, आँख, कान, मस्तक, मूर्धा में क्रमशः मन्त्रवर्णों का न्यास करे। मन्त्र के पदों का न्यास शिखा, ललाट, आँख, कान, ओठ, जीभ, कण्ठ, बाहु, हृदय, कुक्षि, कटि, गुह्या, उरु, जानु, जंघा, पैरों में करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्दस्ताभिरासेविताम्।  
हस्तैश्वक्रगदासिखेटविशिखं चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां स्मरेत्।  
मन्त्रवर्णसहस्राणि जपेन्मन्त्रं विशालधीः । तदन्ते तिलसिद्धार्थचित्रपूलैः समिद्वैः ॥८॥  
क्षीरद्वामाणामाज्येन हविष्यात्रैर्घृतप्लुतैः । चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं चतुःशतसमन्वितम् ॥९॥

चतुःसहस्रं जुहुयादर्घिते हव्यवाहने। मण्डले सर्वतोभद्रे षट्कोणाङ्कितकर्णिके ॥१०॥  
 विधिना वक्ष्यमाणेन पीठं देव्याः प्रपूजयेत्। जयात्मां विजयां भद्रां भद्रकालीमनन्तरम् ॥११॥  
 सुमुखीं दुर्मुखीसंज्ञां पश्चाद्व्याप्रमुखीं पुनः। अथ सिंहमुखीं दुर्गा नव शक्तीः प्रपूजयेत् ॥१२॥  
 आसनं सिंहमन्त्रेण दद्यादुक्तेन देशिकः। प्रणवानन्तरं वत्रनखदण्डायुधाय च ॥१३॥  
 महासिंहाय वर्षास्त्रवर्णतिः सिंहमनुः स्मृतः। मूर्ति संकल्प्य मूलेन तस्यामावाह्य पूजयेत् ॥१४॥  
 षडङ्गनि यथापूर्व केसरेष्वर्चयेत् सुधीः। ग्न्यादिपादादाकोत्पत्रा मूर्तयोऽच्या बहिः पुनः ॥१५॥  
 जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः। अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः ॥१६॥  
 कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखस्ततः। ततो भूसलिलाग्नीरानात्मनेन्तात्रमोचितान् ॥१७॥  
 चतुर्दिक्षु समभ्यर्चेत्कोणेषु तत्कलाः पुनः। पूर्वादिदिक्षु संपूज्या जाणर्ण्याः सार्णशक्तयः ॥१८॥  
 जागरा तपना वेदगर्भा दहनरूपिणी। सेन्दुखण्डा सुम्भहन्त्री नभश्वारिण्यनन्तरम् ॥१९॥  
 वागीश्वरी मन्दवाहा सोमरूपा मनोजवा। मरुदेवा रात्रिसंज्ञा तीव्रकोपा यशोवती ॥२०॥  
 तोयात्मिका पुनर्नित्या दयावत्यपि हारिणी। तिरस्किया वेदमाता तत्परा दमनप्रिया ॥२१॥  
 समाराध्या नन्दिनी च पराकी रिपुमर्दिनी। षष्ठी च दण्डिनी तिग्रा दुर्गा गायत्र्यनन्तरम् ॥२२॥  
 निरवद्या विशालाक्षी श्वासोद्वाहा च नादिनी। वेदना वहिगर्भाख्या सिंहवाहाह्वया तथा ॥२३॥  
 धूर्या दुर्विषया पश्चाद्विरंसा तापहारिणी। त्यक्तदोषा निःसप्तना चत्वारिंशच्यतुर्युताः ॥२४॥  
 लोकपालांस्ततोऽभ्यर्चेष्वद्वाद्यायुधसंयुतान्। इत्थं जपादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन् साधकोत्तमः ॥२५॥

आग्नेयाख्याधिकारी स्यात्तद्विधानमिहोच्यते ।

अस्य श्री आग्नेयाख्यमन्त्रस्य परीच्यपुत्रकश्यप ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः उग्रकृत्या देवता शत्रुक्षयार्थं जपे विनियोगः। प्रतिलोममन्त्रे करशुद्धिं कृत्वा 'ग्निस्त्व्यतारिदु धुंसि' अस्त्राय फट्। 'ववेना श्वाविणि गर्दु' नेत्रत्रयाय शिरसे स्वाहा। 'तिदषरप नः स' कवचाय हुं। दःवे तिहादिनि' शिखायै वषट्। 'तोयतीराममसो' शिरसे स्वाहा। 'मवानसु सेदवेतजा' हृदयाय नमः। इति षडङ्गं कृत्वा, अक्षरन्यासपदन्यासान् प्रतिलोमेन कृत्वा गुरुपदिष्टमार्गेण ध्यात्वा, ब्रह्माख्यद्विगुणजपसहितं प्रतिलोममन्त्रं चतुश्शत्वार्णशत्सहस्रसंख्याकं जपत्वा पञ्चगव्येन पक्त्वा चरुणा दशांशेन होमः कार्यः। अस्त्रसिद्धिर्भवति।

प्रत्येक वर्ण पर एक हजार जप करे। तब तिल, सरसों, चित्रमूल, दूध वाले वृक्षों की समिधा, गोघृत, धृतप्लुत, हविष्यात्र से चार हजार चार सौ चौवालीस हवन करे। सर्वतोभद्र मण्डल में अंकित षट्कोण कर्णिका में विधिपूर्वक पीठ में देवी की पूजा करे। नव शक्तियों की पूजा करे; वे हैं—जया, विजया, भद्रा, भद्रकाली, सुमुखी, दुर्मुखी, व्याप्रमुखी, सिंहमुखी और दुर्गा। सिंह मन्त्र से आसन प्रदान करे। सिंह मन्त्र है—ॐ वत्रनखदण्डायुधाय महासिंहाय हुं फट्। मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके आवाहन-पूजन करे। केसर में पूर्वत षडङ्ग पूजा करे। तब मन्त्र पद से उत्पत्र आठ मूर्तयों की पूजा करे। तब जातवेदा, सप्तजिह्वा, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेज, विश्वमुख, देवमुख नामक अग्नि की पूजा करे। तब भूमि, जल, अग्नि, वायु की पूजा चारो दिशाओं में करे। कोनों को कला की पूजा करे। पूर्वादि दिशाओं में जकार से सकार तक की शक्तियाँ पूज्य हैं। ये जागरा, तपना, वेदगर्भा, दहनरूपिणी, सेन्दुखण्डा, सुम्भहन्त्री, नभश्वारिणी, वागीश्वरी, मन्दवाहा, सोमरूपा, मनोजवा, मरुदेवा, रात्रिसंज्ञा, तीव्रकोपा, यशोवती, तोयात्मिका, नित्या, दयावती, हारिणी, तिरस्किया, वेदमाता, तत्परा, दमनप्रिया, नन्दिनी, पराकी, रिपुमर्दिनी, षष्ठी, दण्डिनी, तिग्रा, दुर्गा, गायत्री, निरवद्या, विशालाक्षी, श्वासोद्वाहा, नन्दिनी, वेदना, वहिगर्भा, सिंहवाहा, धूर्या, दुर्विषया, रिरंसा, तापहारिणी, त्यक्तदोषा, निःसप्तना—कुल चौवालीस हैं। इसके बाहर इन्द्रादि दश लोकपालों और वज्रादि उनके दश आयुधों की पूजा करे। इस प्रकार जप आदि से यह मन्त्र सिद्ध होता है। अग्न्याख्य के अधिकारी होने के बाद उसके विधान का वर्णन किया जाता है।

इसका विनियोग इस प्रकार किया जाता है—अस्य श्री आग्नेयास्त्रमन्तर्स्य मरीचिपुत्रकशयप, ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः उग्रकृत्या देवता, शत्रुक्षयार्थे जपे विनियोगः। प्रतिलोम मन्त्र से करण्डि करके—गिनस्त्यतारिदु धुंसि अस्त्राय फट, ‘वनेना श्वाविणि गांदु नेत्रत्रयाय वौषट्। तिदषरप नः स कवचाय हुं, दःवे तिहादनि शिखायै वषट्। तोयतीराममसो शिरसे स्वाहा। मवानसु सेदवेतजा हृदयाय नमः—इस प्रकार षडङ्ग न्यास के बाद प्रतिलोम अक्षर न्यास पद न्यास करे। गुरु के बतलाये मार्ग से ध्यान करे। ब्रह्मास्त्र के दुगुने जपसहित प्रतिलोम मन्त्र का ४४४४ संख्या में जप करे। पञ्चगव्य में पकाये गये चरु से दशांश हवन करे। तब यह आग्नेयास्त्र सिद्ध होता है।

आग्नेयास्त्रप्रयोगविधिः

तथा—

आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्तं विलोमोच्चरितो मनुः ॥२६॥

पूर्वोक्ता एव मुन्यादा मन्त्रस्यास्य प्रकीर्तिः । प्रतिलोमक्रमादस्य षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥२७॥  
वर्णन्यासपदन्यासान् विदध्यत्रत्रिलोमतः । ध्यानभेदान् विजानीयाद्वारदेशान्त्र चान्यथा ॥२८॥  
पूर्ववज्जपक्लिप्तिः स्याज्जुहुयात् पूर्वसंख्यया । पञ्चगव्यसुपक्वेन चरुणा तस्य सिद्धये ॥२९॥  
अर्चनं पूर्ववत् कुर्याच्छक्तेस्तु प्रतिलोमतः । सर्वत्र देशिकः कुर्याद् गायत्रा द्विगुणं जपम् ॥३०॥  
क्रूरकर्मणि कुर्वते प्रतिलोमविधानतः । शान्तिकं पैष्ठिकं कर्म कर्तव्यमनुलोमतः ॥३१॥  
प्रयोगकाले प्रजपेदष्ट पादान् विलोमतः । साधितो जायते पश्चान्मन्त्रोऽयं विधिनामुना ॥३२॥  
ग्न्यादिपञ्चाक्षरः पादो ज्ञेयो ज्ञानेन्द्रियात्मकः । धुमादोऽन्यः पञ्चवर्णः स्मृतः कर्मेन्द्रियात्मकः ॥३३॥

जातवेद मन्त्र के विलोम उच्चारण को आग्नेयास्त्र कहते हैं। इसके ऋषि आदि पूर्वोक्त हैं। इसके प्रतिलोम क्रम से षडङ्ग करे। वर्ण न्यास पदन्यास भी प्रतिलोम क्रम से ही करे। इसके ध्यान भिन्न-भिन्न हैं; अतः गुरु के आदेशानुसार ध्यान करे। पूर्वोक्त संख्या में जप करके उक्त संख्या में हवन पञ्चगव्य में पकाये गये चरु से करे, तब सिद्धि प्राप्त होती है। अर्चन पूर्ववत् प्रतिलोमतः करे। देशिक सर्वत्र मन्त्र जप का दुगुना गायत्री जप करे। प्रतिलोम विधान से क्रूर कर्म करे। शान्ति पुष्टि कर्म अनुलोम क्रम से करे। प्रयोग के समय आठ पदों का जप विलोम क्रम से करे। इस विधि से यह मन्त्र साधित होता है। ग्न्यादि पञ्चाक्षर पद ज्ञानेन्द्रियात्मक है। धुमादि अन्य पाँच वर्ण कर्मेन्द्रियात्मक हैं।

श्वादस्तुतीयः पञ्चार्णः पञ्चभूतमयः स्मृतः । त्याद्यः सप्ताक्षरः पादश्तुर्थो धातुरूपकः ॥३४॥  
दःपूर्वः पञ्चमः पाद ऊर्मिष्यः षडक्षरः । तोवर्णादिः षडर्णोऽन्यः शाट्कोशिकमयो मतः ॥३५॥  
सोपूर्वः पञ्चवर्णोऽन्यः शब्दादिमय ईरितः । सेवणाद्याष्टमो ज्ञेयः पञ्चार्णो वचनादिकः ॥३६॥  
एवं तत्त्वसमायोगात् पादक्षत्पितृदीरिता । तत्त्वादाक्षरोत्पत्तिनास्तावत्त्वे वर्णदेवताः ॥३७॥  
प्रधानमूर्तिप्रतिमाः स्वस्ववर्णोदितप्रभाः । प्रज्वलत्केशवदना भीमदंष्ट्रा भयापहाः ॥३८॥  
देवता इन्द्रियोत्पत्ता ऊर्ध्वदष्टय ईरिताः । देवता भूतपादोत्पास्तिर्यग्वक्त्राः प्रकीर्तिः ॥३९॥  
धातुरूपाक्षरोद्भूता उभयाननशोभिताः । ऊर्मिजा ऊर्ध्ववदनाः कोशोत्पास्तिर्यगाननाः ॥४०॥  
एताः सर्वाः स्मृताः कलीवा इन्द्रियार्थेद्वावा: स्त्रियः । अथस्तिर्यद्भुखोपेता ईरिता वर्णदेवता ॥४१॥  
अभिमुख्यः स्मृता सौम्ये पराङ्मुखोऽन्यकर्मणि । आश्वोऽसंख्याः समुत्पत्ता देवता ज्वलिताननाः ॥४२॥  
याभिमन्त्री दहेच्छत्रो राज्यं सगिरिकाननम् । अस्त्रं मनुष्यनक्षत्रेष्वारभेत विचक्षणः ॥४३॥  
आसुरीषु प्रयुज्ञीत देवतारासु संहरेत् । पूर्वोत्तरत्रयं पश्चाद्वरण्याद्राघि रोहिणी ॥४४॥  
इमानि मानुष्याण्याहुर्नक्षत्राणि मनीषिणः । ज्येष्ठाशतभिषामूलधनिष्ठाश्लेषकृतिकाः ॥४५॥  
चित्रामधाविशाखाः स्युस्तारा राक्षसदेवताः । अश्विनी रेवती पुष्यस्वाती हस्तः पुनर्वसुः ॥४६॥  
अनुराथा मृगशिरः श्रवणं देवतारकाः । उपक्रमेत नन्दासु रिक्तास्वरूं विसर्जयेत् ॥४७॥

श्वादि तृतीय पञ्चवर्णं पञ्चभूतमय हैं। त्यादि सप्ताक्षर चौथा पाद शरीर के सप्तधातुरूप हैं। दः पूर्वं पञ्चाक्षरं पञ्चमं पादं उर्मिरूप हैं। षडक्षरं तोवर्णादि छः कोशरूप हैं। सो पूर्वं पाँच वर्णं शब्दादिरूप हैं। सेवणादि अष्टमं पाँच वर्णं वचनादि हैं। इस प्रकार के तत्त्वसमायोग से पदक्ष्याप्ति कही गयी है। उस पाद के अक्षरों से उत्पन्न देवता है। प्रधानं मूर्तिं प्रतिमा स्व-स्ववर्णोदितं प्रभा है। इसके केश और मुख भयानक हैं। इन्द्रियोत्पन्न देवता ऊर्ध्वं दृष्टि वाली है। भूतपादोत्थं देवता तिर्यक् मुख वाली है। धातुरूपं अक्षरों से उद्भव दो मुख वाली है। उर्मिजा ऊर्ध्वमुखी है। कोशोत्थं तिर्यक्मुखी है। ये सभी कलीब हैं। इन्द्रियार्थोद्भवा स्त्री हैं। वर्णं देवता नीचे-ऊपर मुख वाले हैं। अभिमुख देवता सौम्यं कर्मं में प्रयोजनीय है। अन्य कर्मों में पराङ्मुख देवता होते हैं। असंख्य देवता ज्वलितमुखी हैं। ज्वलितानान् देवता से मन्त्री शत्रुं के राज्य को पर्वत-जंगलों के साथ जला सकता है। अस्त्रं का आरम्भ मानव गण के नक्षत्रों में करे। आसुरी नक्षत्र में साधना प्रारम्भ करने से देवता तुरन्तं संहार करता है। तीनों पूर्वा उत्तरा भर्णी आद्रा रोहिणी को मनीषियों ने मानुष्यं नक्षत्रं कहा है। ज्येष्ठा शतभिषा मूलं धनिषा आश्लेषा कृतिका चित्रा मध्या विशाखा के देवता राक्षस हैं। अश्विनी रेती पृथ्वी स्वाती हस्तं पुनर्वसु अनुराधा मृगशिरा श्रवण के देवता देवगण हैं। नन्दा रित्ता तिथियों में अस्त्रं का विसर्जनं करे।

भद्रास्वाहरणं कुर्याज्जयास्वत्यन्तमुत्तमम् । उपक्रमो भौमवारे शनिवारे विसर्जनम् ॥४८॥  
 प्रतिसंहरणं वारे गुरोः शुक्रस्य वा भवेत् । भानुना मोक्षसंहारौ कुर्यात्यक्षद्वये सुधीः ॥४९॥  
 स्थिरेषु राशिष्वारभश्वरेषु स्याद्विसर्जनम् । अस्त्रसंहरणं कुर्यादुभयेषु विचक्षणः ॥५०॥  
 कृष्णपक्षेऽनलेनाद्यं विसुजेच्छशिना पुनः । शुक्लपक्षे क्रमादद्यं पुनरात्मनि संहरेत् ॥५१॥  
 पश्चिमाभिमुखो भूत्वा कर्मं सर्वत्र कारयेत् । नक्षत्रवृक्षशक्तलान् साध्याख्याकर्मसंयुतान् ॥५२॥  
 तत्त्वम्नाक्षरोपेतान् मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया । जुहुयादेविधिं वह्नौ मार्येद्विपुमात्मनः ॥५३॥  
 कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशीम् । धन्तूरविषवृक्षश्वरूहोत्यान् समिद्वरान् ॥५४॥  
 राजीतैलेन संयुक्तान् पृथक्सप्तसहस्रकम् । जुहुयात्संयतो भूत्वा रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ॥५५॥  
 सप्तरात्रं प्रजुहुयात् सिद्धार्थसेहलोलितैः । आद्रवन्नो विष्टिकाले मरिचैर्मनुनामुना ॥५६॥  
 निगृहते ज्वरेणारिः प्रलयाग्निसमेन सः । तालपत्रे समालिख्य शत्रुनाम यथाविधि ॥५७॥  
 आग्नेयाख्येण संवेष्य कुण्डमध्ये निखातयेत् । जुहुयान्मरिचैः कुद्धो ज्वराक्रान्तः स जायते ॥५८॥  
 तदादाय क्षिप्तेष्ये शीतले स वशो भवेत् । पिष्टावापामार्गबीजानि मरीचमधुसंयुतम् ॥५९॥  
 अत्युष्णे लवणे तोये निःक्षिप्य क्वाथयेत्ततः । ऋक्षवृक्षप्रतिकृतेर्हदये वदने नसि ॥६०॥  
 किञ्चित्किञ्चित्किञ्चिपेत्तोयं दव्या कारस्कारोत्थया । आनेयमुच्चरन् मन्त्री सोऽचिराज्ज्वरितो भवेत् ॥६१॥  
 क्वथितेऽम्भसि तां क्षिप्त्वा हन्याच्छ्रुमयलतः । तीक्ष्णस्नेहेन संलिप्तां शत्रोः प्रतिकृतिं निशि ॥६२॥  
 तापयेदेविधिं वह्नौ प्रतिलोममनुं जपन् । ज्वरेण बाध्यते सद्यो मासादस्य मृतिर्भवेत् ॥६३॥

भद्रा में आहरण करे। जया तिथि भौमवार में उक्तम करे और शनिवार में विसर्जन करे। गुरु या शुक्रवार में प्रतिसंहरण करे। मोक्ष-संहार दोनों पक्षों में करे। स्थिर राशि में आरम्भ करे और चर राशि में विसर्जन करे। उभय राशि में अस्त्र संहरण करे। कृष्ण पक्ष में अग्नि में एवं शुक्ल पक्ष में चन्द्र में अस्त्र का विसर्जन करे। पश्चिम दिशा में मुख करके सभी कार्य करे। नक्षत्र वृक्ष खण्ड साध्य नाम संयुक्त उनके मन्त्राक्षरों के साथ मन्त्र वर्णं संख्या के बराबर प्रज्वलित अग्नि में हवन करे तो शत्रु की मृत्यु होती है। कृष्णाष्टमी से प्रारम्भ करके कृष्ण चतुर्दशी तक धन्तूर विषवृक्ष नक्षत्र वृक्ष की समिधा को राजी तैल से सिंक करके सात हजार हवन संयत होकर करे तो शत्रु की मृत्यु होती है। तेल लोलित सरसों से सात रातों तक हवन करे। गीले वस्त्र में विष्टि काल में मरिच से हवन करे तो शत्रु की मृत्यु होती है। ताङ्गपत्र पर शत्रुनाम लिखकर आग्नेयाख्य मन्त्र से वेष्टित करे और कुण्ड में गाढ़ दे। उस कुण्ड में क्रुद्ध मुद्रा में मरिच से हवन करे तो शत्रु ज्वराक्रान्त होता है। उस ताङ्गपत्र को कुण्ड से बाहर निकालकर शीतल जल में डुबो दे तो ज्वर उत्तर जाता है। अपामार्ग बीज मरीच और मधु को मिलाकर

पीसकर इसे गरम नमकीन जल में डालकर क्वाथ बनावे। नक्षत्र वृक्ष की प्रतिकृति बनाकर उसके हृदय, मुख और नाक में कुछ-कुछ क्वाथ डाले। कारस्कर लकड़ी की प्रज्ञलित अग्नि में आगेयास्त्र उच्चारण करके हवन करे तो शत्रु ज्वराक्रान्त हो जाता है। क्वाथ जल में उसे डाल दे तो शत्रु की मृत्यु होती है। शत्रु की प्रतिकृति में कड़आ तेल लगाकर रात में प्रज्ञलित अग्नि में तपावे और प्रतिलोम मन्त्र जप करे तो शत्रु बुखार से एक माह में मर जाता है।

सामुद्रे सलिले हिन्दुविषजीरकलोलिते । वृथिते पुतलीं साध्यनक्षत्रतरुनिर्मिताम् ॥६४॥  
 अधोवक्त्रां विनिक्षिप्य यष्ट्या विषतस्तथ्या । तच्छरस्ताङ्नं कुर्वञ्जपेदलं विलोमतः ॥६५॥  
 सप्ताहात्मरणं याति शत्रुज्जरविमोहितः । आदित्यरथनागेन्द्रप्रस्ताङ्गिं तद्विषाहतम् ॥६६॥  
 नग्नं तैलेन लिपाङ्गं दग्धं भानुमरीचिभिः । अधोमुखं निजरिपुं ध्यात्वा वृथितवारिणा ॥६७॥  
 तापयेद्वानुमालोक्य शत्रुर्मृत्युप्रियो भवेत् । विभ्रतीं मुसलं शूलं ध्यायन् कालघनप्रभाम् ॥६८॥  
 कार्पासबीजैर्निम्बस्य पत्रैर्मौषीपृथप्तुतैः । हृत्वा विद्वेष्येच्छत्रूनखेणानेन देशिकः ॥६९॥  
 बिभ्राणां तर्जनीं शूलं ध्यात्वा दुर्गा भयद्वारीम् । महिषीघृतसंप्लुतैर्पल्लवैरिष्वक्षजैः ॥७०॥  
 हृत्वा रिपोः क्षणात्सेनामुच्चाटयति मन्त्रवित् । ध्यात्वा देवीं पुरा प्रोक्तां चतुर्भिर्मरिचान्वितैः ॥७१॥  
 अजासूधिरसंयुक्तजूह्याद् दिवसत्रयम् । रिपोरुच्चाटनं कुर्यात्सेनाया नात्र संशयः ॥७२॥  
 असिशूलकां दुर्गा ज्वलनीं प्रलयाग्निवत् । ध्यात्वा सर्षपतैलाक्तैर्बीजैर्धृत्तरसंभवैः ॥७३॥  
 हृत्वा विमोहयेच्छत्रून् मरिचैर्वा ससर्षपैः । कालाङ्गननिभां दुर्गा शूलखड्गथरां स्मरेत् ॥७४॥  
 नक्षत्रवृक्षसंभूतैर्नाणकृत् स्नेहलोलितैः । समिद्वैः प्रजुहुयाद्वन्द्याम्नासेन वैरिणम् ॥७५॥

समुद्र जल में हींग, विष, जीरा मिलाकर क्वाथ बनावे। साध्य नक्षत्र वृक्ष की पुतली बनावे। उस पुतली को क्वाथ में उलटा लटकाकर विषवृक्ष की छड़ी से पुतली के शिर पर मारे और अस्त्र मन्त्र का विलोम जप करे तो शत्रु ज्वर-ग्रस्त होकर एक सप्ताह में मर जाता है। हाथों में मुशल और शूल लिये हुए काले बादल के समान प्रभा वाली देवी का ध्यान करे। कपाल बीज एवं नीम की पत्ती को काजल और धी से प्लुत करके अस्त्र मन्त्र से हवन करे तो शत्रुओं में विद्वेष होता है। एक हाथ की तर्जनी को उठाये हुए दूसरे में त्रिशूल लिये भयंकर दुर्गा का ध्यान करे। विषवृक्ष के पत्तों को भैंस के धी से प्लुत करके हवन करे तो शत्रुसेना का तुरन्त उच्चाटन होता है। देवी का पूर्वोक्त ध्यान करके चारों मरिचान्वित बकरी के खून से संयुक्त करके तीन दिनों तक हवन करे तो शत्रुसेना का उच्चाटन होता है। हाथों में तलवार-शूलधारिणी प्रलयाग्नि के समान ज्वलित दुर्गा का ध्यान करके सरसों तेल से प्लुत धत्तूर बीजों से हवन करे तो शत्रु मोहित होता है। कालाङ्गन के समान शूल खड्गथराणी दुर्गा का स्मरण करके मरिच सरसों को नक्षत्र वृक्ष के तेल से लोलित करके हवन करे तो एक महीने में वैरी मर जाता है।

सिंहारुढां प्रधावन्तीं धावमानं रिपुं प्रति । शरान् कार्मुकनिर्मुक्तान् वह्निज्वालासमाकुलान् ॥७६॥  
 मुञ्चनीं संस्मरन् दुर्गा तर्पयेदुष्मावारिणा । भानुबिम्बं समालोक्य रिपोरुच्चाटनं भवेत् ॥७७॥  
 अतिदुर्गामयोष्ठिगदाहस्तां विचिन्तयेत् । विद्युतामसमानाभां महिषीघृतसंप्लुतैः ॥७८॥  
 पुलाकैर्जुह्यात्रिम्बवैभीतिकसमिद्वैः । कोद्रवैरथवा शत्रोः सेनायाः स्तम्भनं भवेत् ॥७९॥  
 आत्पाशाङ्कुशां रक्तां गाणिदुर्गामनुं स्मरेत् । लोणैः समधुरैः साध्यवृक्षकाष्ठेदितेऽनले ॥८०॥  
 जुह्यात्रिशि सप्ताहामन्त्रविद्वशयेत्पान् । पाशाङ्कुशधरां रक्तां विश्वदुर्गा विचिन्तयेत् ॥८१॥  
 फलिनीकुसुमैः फुल्लैश्वन्दनाम्भः समुक्षितैः । जुह्यात्रिशि यो मन्त्री तस्य विश्वं वशं भवेत् ॥८२॥  
 शरच्चन्द्रनिभां देवीं विगलत्यरमामृताम् । पाशाङ्कुशधरां ध्यात्वा सिन्धुदुर्गा समिद्वैः ॥८३॥  
 वैतसैर्मधुरासिकैर्जुह्याद् वृष्टिसिद्धये । कपालं त्रिशिखं पाशमङ्कुशं विभ्रतीं करैः ॥८४॥  
 जपाकुसुमसङ्काशामग्निदुर्गा विचिन्तयेत् । हृत्वा लवणपुतल्या मधुरत्रययुक्तया ॥८५॥

आकर्षेद्वाजिष्ठतान् साध्यान् मन्त्रविनात्र संशयः । अतिहुर्मित्याद्या फडन्ना त्रिष्टुबीरिता ॥८६॥  
दुर्वर्णान्ता, च गाण्याद्या गाणिदुर्गा समीरिता । विश्वद्या यज्ञशरान्ता सा विश्वदुर्गा समीरिता ॥८७॥  
सिन्ध्वाद्या सा वकारान्ता सिन्धुदुर्गा निगद्यते । त्यन्तामग्न्यादिकामेनाग्निदुर्गा विदुर्बुधाः ॥८८॥

सिंह पर सवार दुर्गा शत्रुसेना की ओर दौड़ती हुई अग्निज्वाला के समान तीर और कार्मुक छोड़ती हुई का स्मरण करते हुए गर्म जल से तर्पण सूर्यबिंब को देखते हुए करे तो शत्रु का उच्चाटन होता है । हाथों में छड़ी और गदाधारिणी विद्युद्मम समानाभा अति दुर्गा का चिन्तन करते हुए भैंस के धी से प्लुत पुलाक, नीम, पाकड़ की समिधा अथवा कोदो से हवन करे तो शत्रुसेना का स्तम्भन होता है । पाश रक्तवर्णा अंकुशयुक्त दुर्गा के मन्त्र का स्मरण करे । नमक और भीठा से साध्य वृक्ष काष्ठ की प्रज्ज्वलित अग्नि में रात में हवन करे तो एक सप्ताह में राजाओं में विदेश हो जाता है । पाशांकुशाधारिणी लाल विश्वदुर्गा का चिन्तन करे । फलिनी कुसुम को चन्दन जल से समुक्षित करके रात में हवन करे तो साधक के वश में सारा संसार हो जाता है । शरत् चन्द्र के समान देवी अमृत वरसाती हुई पाश-अंकुशधारिणी सिन्धुदुर्गा का ध्यान करे । वेत को मधुराक्त करके अग्नि में हवन करे तो वर्षा होती है । कपाल-विशूल-पाश-अंकुशधारिणी अड़हुल फूल के वर्ण वाली अग्निदुर्गा का चिन्तन करते हुए मधुरत्रययुक्त नमक की पुतली से हवन करे तो वांछित साध्य का आकर्षण होता है । फडन्न त्रिष्टुप् अतिदुर्गा हैं । दुर्वर्णान्ता गाणिं आदि गाणिदुर्गा हैं । विश्व के आदि स्वरूप यज्ञशरान्त विश्वदुर्गा हैं । सिन्ध्वाद्या वकारान्त सिन्धुदुर्गा हैं । त्यन्ता अग्न्यादि को अग्निदुर्गा कहते हैं ।

अङ्गणे स्थिण्डलं कृत्वा सुगच्छ्यकुसुमादिभिः । देवीमध्यर्चयेत्रित्यं प्रागुक्तेनैव वर्त्मना ॥८९॥  
आहरेद्राप्रिषु बलिं चरुणा तस्य सिद्धये । कृत्यारोगप्रहोहभूतादीन् नाशयेदयम् ॥९०॥  
यथावदिग्निमाराध्य गन्धपूष्यैर्मनोहरैः । स्थित्वा तस्याग्रतो मन्त्री जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥९१॥  
जपोऽयं सर्वसिद्धैः स्यान्नात्र कार्यं विचारणा । लवणीर्मधुरासितैः जुहुयात्पश्चिमामुखः ॥९२॥  
मन्त्राणसंख्यया मन्त्री रिपुमात्मवशं नयेत् । शालीन् प्रक्षात्यं संशोध्य शुद्धन् कुर्वीत तण्डुलान् ॥९३॥  
पाचित्वा पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने । चरुं पचेज्जपन् मन्त्रमवतार्य पुनः सुधीः ॥९४॥  
अर्चयित्वा विशदधीर्देवीमन्त्रो यथा पुरा । जुहुयाच्चरुणा तेन साज्येनाष्टसहस्रकम् ॥९५॥  
पात्रे संपातनं कुर्यात्साध्यं तत्प्राप्येत्युनः । शिष्टं तं निखनेद् द्वारि सम्पातं प्राङ्गणान्तरे ॥९६॥  
कृत्यारोगा विनश्यन्ति सहभूतप्रहामयैः । परैरुत्पादिता कृत्या पुनस्तानेव भक्षयेत् ॥९७॥  
त्रीहिभिर्विषा क्षीरैः पयोवृक्षसमिद्वरैः । आज्ञैर्मधुत्रयोपेतैर्तैर्दशशातं पृथक् ॥९८॥  
जुहुयात्सम्पदं भूमिः साधको भवति धूवम् । भास्करे मेषराशिस्ये मन्त्रज्ञोऽनुगुणे दिने ॥९९॥  
नद्यां समुद्रगामिन्यां स्नात्वा मन्त्री यथाविधि । उद्भृत्यादाय सिकताः संशोध्य परिशोधयेत् ॥१००॥  
न्यस्त ताः पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने । भर्जयेन्मनुना सिद्धैः दर्व्या ब्रह्मतरुत्यया ॥१०१॥  
सिंहमेषधनुः स्थेऽकें कृष्णपक्षेऽष्टमीतिथौ । विशाखाकृत्तिकामूलहस्तोत्रमधास्वथ ॥१०२॥  
रोहिण्यां श्रवणे वारौ मन्दवाक्यपतिदेवतौ । विहायान्येषु कुर्वीत सिकतास्थापनं सुधीः ॥१०३॥  
गृहग्रामादिराष्ट्राणं रक्षार्थं सिकताः शुभाः । प्रस्थादकघटोन्माना सध्यादिष्ववटेष्विमा ॥१०४॥  
नवसु प्रक्षिपेज्जपास्तेषु संपूजयेत्कमात् । मध्यादिदेवीमन्त्राणि कपालान्तानि देशिकः ॥१०५॥  
चक्रं शङ्खमसि खेटं बाणं चापं त्रिशूलकम् । कपालं स्वस्वमन्त्रेण संपूज्यान्ते बलिं हरेत् ॥१०६॥  
नक्षत्रप्रहराशीनां लोकेशानां बलिं हरेत् । विहिता यत्र रक्षयेण वर्धने तत्र सम्पदः ॥१०७॥  
क्षुद्रद्वयमहारोगचोरभूतसरीसृपाः । अमुना विलयं यान्ति विधिना नात्र संशयः ॥१०८॥  
सिकतानां विशुद्धानां विकारकुडवं सुधीः । पञ्चगव्ययुतं पात्रे ब्रह्मवृक्षेण निर्मिते ॥१०९॥  
निक्षिप्य विधिना यत्र स्थापयेत्तत्र सम्पदः । दिने दिने प्रवर्धने कालविष्ट्यादिभिः सह ॥११०॥  
महोत्पाता विनश्यन्ति कृत्याद्रोहमहाग्रहाः । चरुं गव्यात्मना कुर्यात्स्थापनं विधिनामुना ॥१११॥  
गोमूत्रं प्रस्थमानं स्याज्ञोमयाम्भस्तदर्धकम् । आज्ञ्यात्सप्तगुणं क्षीरं गोमूत्रात्रिगुणं दधि ॥११२॥

गोमूत्रेण समं सर्पि: सर्वं वा सममुच्चते । गावः स्युः कपिलाः श्वेतश्यामधूमारुणप्रभाः ॥११३॥  
 अभावे गदिताः सर्वाः सर्वं वा कपिलोद्भवम् । एकोनपञ्चाशत्कोष्ठे फलके ब्रह्मशाखिनः ॥११४॥  
 विहाय कोणकोष्ठानि शक्त्याद्यं जातवेदसम् । लिखित्वा मध्यकोष्ठादि पूजयेत्तत्र देवताम् ॥११५॥  
 कृत्वा होमं ससम्पातं निखनेत्तद्यथा पुरा । दद्याद्वालिं यथापूर्वमस्य पूर्वोदितं फलम् ॥११६॥

मध्ये मायामष्टकोष्ठेषु पादानष्टौ कृत्वा मातृकार्णः प्रवीतम् ।

भूविक्षस्यं सर्वभूतामयनं रक्षायुःश्रीकीर्तिं यन्त्रमेतत् ॥११७॥

आग्नेयास्त्रस्य जानाति विसर्गादानकर्मणी । यः पुमान् गुरुणा शिष्टस्तस्याधीनं जगत्त्रयम् ॥११८॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्गराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्मचार्यशिष्य-

श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे द्वाविंशः शासः ॥२२॥



आग्नेन में स्थापित बनाकर सुगन्थित फूलों से देवी की पूजा नित्य पूर्वोक्त मार्ग से करे । रात में चरु की बलि प्रदान करे । इससे कृत्या रोग, ग्रह, द्रोह, भूतादि पीड़ा का नाश होता है । गन्ध, सुन्दर फूलों से यथाविधि अग्नि की पूजा करके उसके आगे बैठकर एकाग्र बुद्धि से मन्त्रजप करे । इस जप से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं । मधुर-सिक्त नमक से पश्चिममुख बैठकर हवन मन्त्रवर्णों की संख्या के बराबर करे तो शत्रु वश में हो जाता है । शालि चावल को धोकर सुखाकर शुद्ध करे । संस्कृत अग्नि में पञ्चगव्य में उसे पकावे । चरु पकाते समय मन्त्रजप करे । उसे अग्नि पर से उतार कर देवी अग्नि का पूर्ववत् अर्चन करे । उससे एक हजार आठ हवन करे । पात्र में सम्पात करे और साथ्य को खिलाये । शेष भाग को उसके द्वार पर गाढ़ दे । इससे कृत्या रोग नष्ट होते हैं । ग्रह-भूतपीड़ा भी छूट जाती है । दूसरे द्वारा किये कृत्या के प्रयोग नष्ट हो जाते हैं । दूध में चावल डालकर दूध वाले पेड़ की लकड़ी से पकावे, उसमें आज्य मधुब्रय मिलाकर एक हजार हवन करे तो साथक को भूमि-सम्पत्ति मिलती है । मेष राशि में जब सूर्य हो तब रविवार में समुद्रगमनी नदी में स्नान करके यथाविधि बालू लेकर उसे संशोधित करे । उसे पञ्चगव्य में डालकर संस्कृत अग्नि में पकावे तो द्रव्य सिद्ध होता है । सिंह, मेष, धनु में जब सूर्य हो तब कृष्ण पक्ष की आष्टमी तिथि में विशाखा, कृतिका, मूल, हस्त, मधा, रोहिणी, श्रवण होने पर शनि या गुरुवार को छोड़कर अन्य दिनों में सिकता स्थापन करे । गृह ग्राम राष्ट्र की रक्षा के लिये सिकता शुभ होती है । प्रस्थ आढक मान का वट वृक्ष का नव घट बनवाकर उसमें जप करके जल आदि डाले । बीच वाले घट में देवी की पूजा करे । शेष आठ में देवी के आयुधों की पूजा करे । आयुधों में चक्र, शङ्ख, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, त्रिशूल, कपाल की पूजा उनके मन्त्रों से करे । अन्त में बलि प्रदान करे । नवग्रह, राशियों और दिव्यपालों को बलि प्रदान करे । यह जहाँ स्थापित रहता है, वहाँ रक्षा होती है और सम्पदा बढ़ती है । क्षुद्र ग्रह, महरोग, चोर, भूत, सर्प सभी वहाँ से भाग जाते हैं । विशुद्ध सिकता एक कुडव लेकर पञ्चगव्य के साथ ब्रह्मवृक्ष के पात्र में डाले । उसे जहाँ स्थापित किया जाता है, वहाँ सम्पदा दिनोदिन बढ़ती है । कालविष्णुचार्दि के साथ महा उत्पात नष्ट होते हैं । कृत्या द्रोह महाग्रह भी शान्त हो जाते हैं । पञ्चगव्य में चरु पकाकर विधिवत् इस मन्त्र से स्थापित करे । इसमें गोमूत्र प्रस्थ भर, गोबर उसका आधा, उसका आधा गोधृत, उसका सातगुणा दूध गोमूत्र का त्रिगुणा दही, गोमूत्र के बराबर गोधृत सबों को मिलावे । यह सब कपिला गाय का होना चाहिये । ब्रह्म वृक्ष के पटरे पर उनचास कोष्ठ बनाकर चारों कोनों के चार कोष्ठों को छोड़कर आदि शक्ति जातवेद के अक्षरों को लिखे । मध्य कोष्ठ से प्रारम्भ करके देवता का पूजन करे । हवन करे । सम्पात करे और उसे पूर्ववत् गाढ़ दे । बलि प्रदान करे । तब पूर्वोक्त फल मिलते हैं । इस यन्त्र के मध्य में हीं लिखे । आठ कोष्ठों में मन्त्र के आठ पदों को लिखे । भूपुर में मातृका वर्णों को लिखे । यह सभी भूतों और रोगों का विनाशक है । इससे रक्षा होती है एवं आयु, धन और कीर्ति की प्राप्ति होती है । जो इस आग्नेयास्त्र को जानता है, गुरु को दान-दक्षिण देता है, उसके अधीन तीनों लोक होते हैं ।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव

नारायण-कृत भाषा-भाष्य में द्वाविंश शास पूर्ण हुआ



## अथ त्रयोविंशः श्वासः

दिनाकृत्यास्त्रविद्यानम्

तथा (२२.१) —

अथो दिनाकृत्यास्त्रं कृत्यास्त्रं वक्ष्ये शत्रुविमर्दनम् । अतिदुर्गामिनुं प्राहुर्दिनाकृं मन्त्रवित्तमा: ॥१॥  
प्रतिलोममिमं मन्त्रं कृत्यास्त्रं च प्रचक्षते । दिनाकृत्यस्य षडङ्गादीन् प्रतिलोमोदितान् विदुः ॥२॥

(इममतिदुर्गामिनं, स तु—अतिदुर्गाणि इत्यारभ्य पर्षदित्यन्तम् । प्रतिलोममिति तर्षप इत्यादि गर्दुतिअ इत्यन्तम् । दिनाकृत्यस्य कृत्यास्त्रस्येति शेषः, प्रतिलोमोदितानि षडङ्गानि त्वाग्नेयास्त्रवदेव । आदिपदेन वर्णन्यासपदन्यास-वर्णशक्तिपूजासु प्रातिलोम्यं सूच्यते । तच्चात्र पञ्चाद्यक्षरादिमन्त्राक्षरपर्यन्तं क्रमेण, न तु क्रमेण त्रिष्टुप् मन्त्रस्य प्रतिलोम्यम् ।)

भानुबिष्वगतं शत्रुमधोवक्रं विषाहतम् । मूलादुत्थितया ग्रस्तं कुण्डल्या भावयन् सुधीः ॥३॥  
मूलाधारे क्षिपेत्सद्यः प्रस्फुरत्कालपावके । दिनत्रयाज्ज्वराक्रान्तो रिपुर्यमपुरं ब्रजेत् ॥४॥  
दिनाकृत्यिवद्वाङ्मं स्वाधिष्ठानगतं रिपुम् । पञ्चवायुसमिद्देन वह्निना दग्धविग्रहम् ॥५॥  
ध्यायेन्मनुं जपेत्सद्यः स भवेद्यमवल्लभः । मणिपूरगतं शत्रुमग्निना दीप्तविग्रहम् ॥६॥  
ध्यायन् दिनाकृत्यं प्रजपेत्स मृत्युग्रासतां ब्रजेत् । अनाहताहितः शत्रुर्निर्दध्यो मन्त्रवह्निना ॥७॥  
पाशेन बद्ध्वा शीघ्रेण नीयते यमकिङ्करैः । विशुद्धस्थानगो वैरी दिनबाणेन पीडितः ॥८॥  
अथोमुखः स्मृतस्त्रूपं परासुः स्याह्नित्रयात् । आज्ञायां निहितं शत्रुं दहेह्निग्निना धिया ॥९॥  
पुत्रमित्रकलत्रादीन् हित्वा मृत्युमुपाश्रयेत् । नाभिमात्रोदके स्थित्वा ध्यायन् बिष्वे दिनेशितुः ॥१०॥  
वैरिणं दग्धसर्वाङ्मं मन्त्रमष्टोतरं शतम् । जपेत्सप्तदिनादवार्ग् यमलोकं स गच्छति ॥११॥  
आरवारं समारभ्य सप्ताहं प्रजपेत्सन्मनुम् । सूर्योदयं समारभ्य यावदस्तमयो भवेत् ॥१२॥  
सन्निपातज्ज्वराविष्टो यमग्रस्तो भवेदरिः । स्थित्वा दुर्गालये मन्त्री त्रिरात्रं वर्जिताशनः ॥१३॥  
दिनबाणेन विद्वाङ्मं वैरिणं प्रविचिन्तयन् । जपेत्सन्मन्यमिं शत्रुर्ज्वरितो मरणं ब्रजेत् ॥१४॥  
स्पृष्ट्वा दुर्गा जपेत्सन्मन्यमनश्चिदिनं स्मरन् । शूलप्रेतं निजरिपुं दिनाख्लेण प्रपीडितम् ॥१५॥  
ज्वरेण महताविष्टो जायतेऽसौ यमातिथिः ।

अब शत्रुविमर्दक दिनाकृत्या और कृत्यास्त्र को कहता हूँ । मन्त्रज्ञानियों के अनुसार अतिदुर्गा मन्त्र दिनाकृ होता है और इसके प्रतिलोम को कृत्यास्त्र कहते हैं । दिनाकृ के षडङ्ग आदि न्यास प्रतिलोम के अनुसार होते हैं ।

दिनाकृ मन्त्र—अतिदुर्गाणि विश्वा नावेऽस्त्रं सिन्धुं दुरितात्यग्निः स नः पर्षत् । अनुलोम दो पाद ।

कृत्यास्त्र मन्त्र—तर्षप नः स गिनत्यतरिदुन्धुसि ववेनाश्वावि णिर्गुतिअ—प्रतिलोम ।

दिनाकृ का प्रतिलोम कृत्यास्त्र होता है । षडङ्ग, वर्णन्यास, पदन्यासवर्ण शक्ति की पूजा में प्रतिलोम क्रम का आश्रयण करना चाहिये । यहाँ पर पाँच आद्य अक्षर से प्रारम्भ करके मन्त्राक्षर तक क्रम से प्रतिलोम करना चाहिये, न कि त्रिष्टुप् मन्त्र का प्रतिलोम करना चाहिये ।

साधक भावना करे कि शत्रु विषाहत सूर्यविष्व में अथोमुख स्थित है । मूलाधार से उठकर कुण्डलिनी उसे ग्रस्त कर लेती है और मूलाधार की प्रज्ज्वलित अग्नि में पटक देती है । इससे शत्रु ज्वराक्रान्त होकर तीन दिनों में यमलोक सिधार जाता

है। दिनास्त्र से प्रतिविद्ध अंगों वाला शत्रु स्वाधिष्ठान में जाकर पाँच वायु से प्रज्वलित अग्नि में दाध विग्रह हो जाता है। ऐसा ध्यान करते हुये मन्त्र का जप करे तो वह तुरन्त यमराज का प्रिय हो जाता है। मणिपूर में जाकर अग्नि से दीप्त विग्रह शत्रु का ध्यान करके दिनास्त्र का जप करे तो वह मृत्यु का ग्रास हो जाता है। अनाहत में जाकर शत्रु मन्त्र की अग्नि में जल जाता है। यमदूत उसे पाश से बाँधकर शीघ्र ले आते हैं। विशुद्धि चक्र में जाकर वैरी दिनबाण से पीड़ित होता है, उसके अधोमुख होने का चिन्तन करे तो तीन दिनों में आज्ञा में शत्रु निहत होकर दिनाग्नि से जल जाता है। वह पुत्र, मित्र, कलत्र को छोड़कर मृत्यु के आश्रय में चला जाता है। सात दिनों तक मन्त्र जप करने से यमलोक में चला जाता है। मंगलवार से प्रारम्भ करके एक सप्ताह तक मन्त्र का जप करे। सूर्योदय से सूर्यास्त तक मन्त्र का जप करे। इससे शत्रु सत्रिपात ज्वर से ग्रस्त होकर यमलोक में चला जाता है। दुर्गा मन्दिर में बैठकर तीन रात तक निराहार रहकर दिनास्त्र से विद्ध अंगों वाले शत्रु का चिन्तन करके इस मन्त्र का जप करे तो शत्रु बुखार से ग्रस्त होकर यमराज का अतिथि हो जाता है।

### रविमण्डलगं शत्रुं दद्यं तद्रथपत्रगैः ॥१६॥

विशाग्निदग्धसर्वाङ्गं ध्यायनुष्ठोन वारिणा । तपर्येदिनवाणेन स्यादसौ यमवल्लभः ॥१७॥

रविबिम्बादागतया ज्वालया ग्रस्तविग्रहम् । रिषुं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं स क्रीडति यमान्तिके ॥१८॥

ग्रहग्रस्तार्किम्बस्थं विद्धं मन्त्रप्रयैः शरैः । प्रतिपद्य निं शत्रुं जपेदयुतमन्त्रवित् ॥१९॥

रिषुं नयति शीघ्रेण यमदूतो यमालयम् । प्रलयानलसंकाशकालरात्रिमिवापराम् ॥२०॥

शूलपाशधरां घोरां सिंहस्कन्धनिषेदुषीम् । सवितुर्मण्डलान्तःस्थां रक्तनेत्रत्रयोद्दौतैः ॥२१॥

विस्फुलिङ्गैर्निर्दहन्तीं रिपुमाकुलविग्रहम् । स्पष्टदंष्ट्राधरां नृत्यद भूकुटीभीषणाननाम् ॥२२॥

तर्जयन्तीं निं शत्रुं तर्जन्या भीमस्तपया । दंष्ट्रामयूखजालेन द्योतयन्तीं दिगत्तरम् ॥२३॥

शूलेन वैरिणो वक्षो दारयन्तीं भयङ्गीरम् । जपेदिनत्रयं मन्त्री मारयेद्रिपुमात्मनः ॥२४॥

अस्त्रमन्त्रकृतन्यासः । प्रलयाग्निसमप्रभः । रक्तवस्त्रधरां कुद्धां रक्तनेत्रत्रयाच्चिताम् ॥२५॥

सिंहधिरुद्धां धावन्तीं धावमानं रिषुं प्रति । खड्गेन तच्छरश्छित्वा क्षणाद्व्योमस्थलं गताम् ॥२६॥

ध्यात्वा दुर्गा जपेन्मन्त्रं त्रिदिनं वजिताशनः । अननेत्र विद्यानेन रिषुर्मृत्युप्रियो भवेत् ॥२७॥

कर्माण्येतानि कुर्वीत दिवसे न तु रात्रिषु । इति।

शत्रु को सूर्यमण्डल में रथ के सर्पों के विष से सर्वांग दाध देखते हुये गर्म जल से तर्पण दिनास्त्र के द्वारा करे तो शत्रु यमराज का प्रिय हो जाता है। सूर्य बिम्ब से आगत ज्वाला से शत्रु को ग्रस्त विग्रह देखकर मन्त्र का जप करे तो वह यमलोक में चला जाता है। सूर्यमण्डल में शत्रु को ग्रहग्रस्त मन्त्रलूपी बाणों से विद्ध कल्पित करके एक हजार मन्त्र का जप करे तो शत्रु को यमदूत शोध्र यमलोक में ले जाते हैं। प्रलयानल के समान, दूसरी कालरात्रि के समान शूल-पाशधारिणी, भयंकरी, सिंह पर सवार देवी सूर्यमण्डल में स्थित है। उसके लाल नेत्रों से निकलती चिनगारियों से शत्रु दाध होकर व्याकुल हो रहा है। अपने ओठों को काटती हुई भयंकर मुख-नयनों वाली देवी शत्रु को भयंकर तर्जनी से मार रही है। ऐसा ध्यान करके तीन दिनों तक साधक जप करे तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है। अस्त्र-मन्त्र से न्यास करके प्रलयाग्नि के समान प्रभा वाली सिंह पर सवार देवी भागते हुए शत्रु के पीछे दौड़ती हुई तलवार से शत्रु का शिर काट कर तुरन्त आकाश में चली गयी, इस प्रकार का ध्यान करते हुए निराहार रहकर तीन दिनों तक मन्त्र का जप करे तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है। ये सभी कर्म दिन में करने चाहिये; रात में नहीं करने चाहिये।

### अथ रात्रिकृत्यम्

पश्चिमामुखलिङ्गस्य सजीवं महिषं पुरः ॥२८॥

निखाय तस्य शिरसि कुण्डं कृत्वा त्रिकोणकम् । तस्मिन् समेधिते वह्नौ यथावदेशिकोत्तमः ॥२९॥

सत्रिकोणान् ससाध्यक्षसाध्यनामसमन्वितान् । अजारक्तेन संसिक्तान् कारस्करसमिद्वान् ॥३०॥

सहस्रं जुहुयादेवीं ध्यात्वा सवित्रमण्डले । प्रलयाग्निसमां घोरां द्वात्रिंशद्वृजशोभिताम् ॥३१॥  
 उद्यदायुधसंदीपां नृत्यन्तीं सिंहमस्तके । महादंष्ट्रां महाभीमां ज्वलत्केशीं नदन्मुखीम् ॥३२॥  
 रक्तार्द्रमांसवदनां धृष्णितोग्रत्रिलोचनाम् । अनेन विधिना शत्रुर्महाज्वरनिपीडितः ॥३३॥  
 विमुञ्चति निजं देहं पुत्रमित्रादिभिः सहा ऊर्ध्वमुष्णाम्भसो मन्त्री लम्बयित्वा भुजङ्गमम् ॥३४॥  
 भानुबिष्वगतां दुर्गा सहस्रादित्यसन्निभाम् । सहस्रपाणिचरणां सहस्राक्षिणिशरोमुखीम् ॥३५॥  
 सहस्रनागबद्धाङ्गीं त्रासयन्तीं जगत्रयम् । ध्यायन्नेन सर्पस्ये तर्पयेदुष्णवारिणा ॥३६॥  
 संयतः कालपाशेन वैरी मुञ्चेत्स्वजीवितम् । मध्याह्नाकर्युतप्रख्यां नदत्तीं नरसिंहवत् ॥३७॥  
 घोरसिंहसमासीनां महाभीषणदर्शनाम् । शूलप्रोताहितां ध्यायज्ञपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥३८॥  
 तर्पयेदुष्णतोयेन सर्पवक्त्रे दिनत्रयम् । यमस्य भुवनं गच्छेदरातिर्नात्रि संशयः ॥३९॥  
 ऋक्षवृक्षप्रतिकृतिं प्रतिष्ठितसमीरणाम् । उष्णोदके विनिक्षिप्य विशाढ्ये विधिना ततः ॥४०॥  
 अकेंद्वन्लसंकाशां खद्गखेटकधारिणीम् । नयनत्रयनिर्गच्छद्विष्फुलिङ्गशताकुलाम् ॥४१॥  
 सिंहस्था सर्पभूषाङ्गां त्रैलोक्यभयकारिणीम् । खद्गकृताहितां ध्यायन् प्रजपेदयुतं मनुम् ॥४२॥  
 विधानेनामुना शत्रुर्गस्तो भवति मृत्युना ।

**रात्रिकृत्य—**पश्चिममुख लिङ्ग के आगे जीवित भैसे का शिर काटकर गाड़ दे । त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें प्रज्वलित अग्नि में तीनों कोणों में साथ अक्ष एवं साथ्य नाम-सहित बकरे के रक्त से सित्त कारस्कर समिधा से एक हजार हवन करे । सूर्यमण्डल में देवी का ध्यान प्रलयाग्नि के समान, भयंकर बत्तीस भुजाओं से शोभित, असीम प्रकाशमान आयुध, सिंह के मस्तक पर नाचती हुई, महादंष्ट्रा, महाभीमा, ज्वलत्केशी, नाद करती हुई, रक्तार्द्र मांसमुखी, धृष्णित उग्र तीन नेत्रों वाली है, ऐसा ध्यान करने से शत्रु महाज्वर से पीड़ित होकर पुत्र-मित्रों के साथ अपना देह छोड़ देता है ।

गर्भ जल के ऊपर साधक साँप को लटका दे । दुर्गा सूर्यमण्डल में हजार सूर्यों के समान प्रकाशमान है, उसके हजार हाथ-पैर एवं हजार आँख, शिर तथा मुख हैं, उसके शरीर में हजार सर्प लिपटे हुए हैं, वह संसार को भयभीत कर रही हैं—ऐसा ध्यान करके सर्प के मुख में गर्भ जल से तर्पण करे । इससे वैरी कालपाश से बँधकर अपना प्राण त्याग देता है । दोपहर के हजार सूर्य-जैसे तेज प्रकाश से युक्त, नरसिंह जैसी गरजती हुई, भयंकर शेर पर सवार, देखने में महा भयंकर, वैरी को त्रिशूल भोकंती हुई देवी का ध्यान करते हुए एकाग्रता से मन्त्र जप करके गर्भ जल से तर्पण सर्प के मुख में तीन दिनों तक करे तो शत्रु यमलोक में चला जाता है; इसमें संशय नहीं है । शत्रु के नक्षत्रवृक्ष की लकड़ी से प्रतिमा बनाकर प्राण-प्रतिष्ठा करके गर्भ जल से स्थापित करके उसे विधिवृत् विषाक्त करे । सूर्य-सोमाग्नि के समान, खद्ग-ढाल धारण करने वाली, तीन नेत्रों से निकलती सैकड़ों चिनगारियों से युक्त, सिंह पर सवार, सर्वभरणयुक्त, तीनों लोकों को भयभीत करने वाली, शत्रु पर खद्ग प्रहार करती हुई देवी का ध्यान करते हुए दश हजार मन्त्र का जप करे । ऐसे मन्त्र के विधान से शत्रु मृत्युग्रस्त होता है ।

**प्रकल्प्य दुर्गायितने त्रिकोणं कुण्डमुत्तमम् ॥४३॥**

तत्र संज्वालिते वहौ महिषीशाकृता कृताम् । पुतलीमजरकालां प्रतिष्ठितसमीरणाम् ॥४४॥  
 छित्वा छित्वा प्रजुहुयादजरकान्वितां निशि । ध्यात्वा दुर्गा प्रनृत्यन्तीं महिषोरः स्थलान्तरे ॥४५॥  
 शूलेन महिषस्याङ्गं भिन्दतीं घोरदर्शनाम् । अद्वहासैरजस्त्रोत्थैर्भीषणां सुरसेविताम् ॥४६॥  
 प्रलयानलसंकाशां भ्रमन्त्रेत्रयान्विताम् । संदष्टाधरसंभिन्नां दंष्ट्राभीममुखाम्बुजाम् ॥४७॥  
 खद्गखेटकयुक्ताभिः कन्यकाभिः समावृताम् । अनेन विधिना शत्रुः प्रयाति यममन्दिरम् ॥४८॥  
 दिनास्त्रमेवं विहितं शत्रुनिग्रहकारणम् ।

दुर्गा के मन्दिर में त्रिकोण कुण्ड बनावे । उसमें अग्नि प्रज्वलित करे । भैस के गोबर की पुतली बनाकर उसे बकरे के खून से रंग कर प्राण-प्रतिष्ठा करे । उसके टुकड़े-टुकड़े करके उन टुकड़ों को बकरे के खून से प्लुत करके हवन करे ।

ध्यान करे कि दुर्गा भैंसे के वक्ष पर नाच रही है, शूल से महिं के अंग का भेदन कर रही है, देखने में भयंकर है, भीषण अद्विहास कर रही है, देवों से सेवित है, उसके तीनों नेत्र प्रत्यायिन के समान चक्कर काट रहे हैं, ओठों को चबाती हुई भयंकर दाँतों से युक्त मुखकमल है, हाथों में ढाल-तलवार ली हुई है एवं कन्याओं से घिरी है—इस प्रकार का ध्यान करके जप करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। शत्रुनिश्चय के लिये इस दिनाख का प्रयोग किया जाता है।

कृत्याख्याचोदितान् कुर्यात्प्रयोगान् मन्त्रवित्तमः ॥४९॥

आधारादुद्रितां देवीं कुण्डलीं सर्परूपिणीम् । सुषुमारम्भमार्गेण यातां व्योमस्थलं ततः ॥५०॥  
 मुखेन शत्रुमादाय निवृत्तां स्वगृहं प्रति । ज्वलत्कालानलोद्दीपां विचिन्त्य प्रजपेम्नुम् ॥५१॥  
 सप्तभिर्वासरैः शत्रुर्युत्युमानोति मोहितः । अङ्गारवारे चित्यग्नौ सर्षपस्नेहलोलितम् ॥५२॥  
 सिद्धार्थकुडवं जप्त्वा जुहुयात्पक्षमात्रतः । कृत्याख्यज्वालया दग्धो रिपुर्यमपुरं ब्रजेत् ॥५३॥  
 चतुर्दश्यामर्धात्रे चितास्थीन्यत्र साधकः । ब्रणतैलविलिप्तानि चिताग्नौ जुहुयात्ततः ॥५४॥  
 अनेन विधिना शत्रुर्युत्युमेष्व्यति कातरः । तुषास्थिनिर्मितां शत्रोर्विणतैलपरिप्लुताम् ॥५५॥  
 प्रतिमां स्थापितप्राणां जुहुयात्रिशि साधकः । छित्वा छित्वाजरक्तेन सप्ताहान्त्रियते रिपुः ॥५६॥  
 शमशानवालुकाः सृष्ट्वा साक्षता नियुतं जपेत् । विकिरेत्तास्ताडागादौ कृत्याख्यक्वथितं जलम् ॥५७॥  
 तदीयं पीतमचिरात्रिहन्ति सकलाञ्जनान् । कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां प्रजादैः प्रेतभस्मभिः ॥५८॥  
 महिष्याज्येन लुलितैस्तमन्त्राक्षरसंख्यया । निर्माय गुलिकामेनां सम्यग्जप्तसमीरणाम् ॥५९॥  
 चितिकाष्ठैष्ठिते वहौ जुहुयाद् दृढमानसः । चतुर्दशीत्रयादर्वाक् शत्रुर्युत्प्रियो भवेत् ॥५०॥  
 शमशानभस्म सिद्धार्थान् पञ्चगव्ये विनिक्षिपेत् । महिषस्थां स्मरन् देवीं कालाग्निसदृशप्रभाम् ॥५१॥  
 भर्जयेत् प्रजपन्मन्त्रं विषकाष्ठैश्चितानले । दुर्गागारे प्रजुहुयादनेनायुतमन्त्रवित् ॥५२॥  
 पुनरादाय तद्भस्म सेनायां वैरिणः क्षिपेत् । सा सेना बहुधा भिन्ना च्चररोगविमोहिता ॥५३॥  
 आयुधानि परित्यज्य युधकाले पलायते । गेहग्रामादिषु क्षितं कुर्यादुच्चाटनं क्षणात् ॥५४॥  
 सप्तारवारे गुलिका दुर्गाविशमसु शर्कराः । सप्त माहेन्द्रदिग्वर्ज गृहीत्वा प्रजपेम्नुम् ॥५५॥  
 माहिषीपञ्चगव्येषु भर्जयेतां यथापुरा । भूयो जपित्वा विकिरेदगेहग्रामपुरेष्विमाः ॥५६॥  
 स देशो नश्यति क्षिप्रं दग्धो मन्त्रभवार्निना ।

**कृत्याख्य—**मन्त्रज्ञ साधक को ही कृत्याख्य का प्रयोग करना चाहिये। सर्परूपिणी देवी कुण्डलिनी मूलाधार से उठकर सुषुमा मार्ग से व्योमस्थल सहस्रार में जाती है और मुख में शत्रु को लेकर अपने स्थान पर लौट जाती है। कालानल के समान प्रज्वलित उसका चिन्तन करते हुए मन्त्र का जप करे तो सात दिनों में शत्रु मर जाता है। मंगलवार में चिता की अग्नि में सरसों तेल में लौलित ३२० ग्राम सिद्धार्थ से मन्त्र-जप के साथ हवन एक पक्ष तक करने से कृत्याख्य ज्वाला से दाध शत्रु मर जाता है। चतुर्दशी की आधी रात में चिता की अग्नि में ब्रणतैल-विलिप्त अस्थि से हवन करे तो शत्रु कातर होकर मर जाता है। तुषास्थि से निर्मित शत्रु की मूर्ति को ब्रण तैल से लिप्त करके प्राण-प्रतिष्ठा करे। रात में उसे टुकड़ा-टुकड़ा करके बकरे के खून के साथ हवन करे तो एक सप्ताह में शत्रु की मृत्यु हो जाती है। शमशान के बालू में अक्षत मिलावे, उसे स्पर्श किए हुए एक लाख मन्त्र का जप करे। उस बालू को कृत्याख्य क्वथित जल में मिलाकर तालाब आदि में बिखेर दे। उस तालाब के जल को जो पीते हैं, वे सभी अल्प काल में ही मर जाते हैं। कृष्ण पक्ष की मंगलवारी चतुर्दशी में प्रेतभस्म को भैंस के धी से लौलित करे और मन्त्राक्षर संख्या में मन्त्रजप से मन्त्रित करे। इसकी गोली बनावे। सम्यक् जप करे। चिताकाष्ठ की प्रज्वलित अग्नि में दृढता से हवन करे। तीन चतुर्दशी में ऐसा करने से शत्रु की मृत्यु होती है। शमशान भस्म और सरसों को पञ्चगव्य में डाले। महिष पर सवार देवी का स्मरण कालाग्नि प्रभा के समान करे। विषकाष्ठ की चिताग्नि में मन्त्र जपते हुए उसे भूंजे। दुर्गा मन्दिर में इससे दश हजार हवन करे। भस्म को लेकर वैरी की सेना में बिखेर दे। वह सेना ज्वर से मोहित

होकर इधर-उधर छितरा जाती है और युद्ध के समय आयुध छोड़कर सैनिक भाग जाते हैं। इस भस्म को गृह में या ग्राम में विखेरने से शीघ्र उच्चाटन होता है। सात मंगलवार को दुर्गा मन्दिर में गुड़ की सात गोलियाँ लेकर पूर्व दिशा को छोड़कर अन्य दिशाओं में रखकर जप करे, भैस के पञ्चगव्य में उसे पूर्ववत् पकावे। मन्त्रित करके घर, गाँव या नगर में बिखेर दे तो वह देश शीघ्र ही मन्त्र से उत्पन्न अग्नि में नष्ट हो जाता है।

ब्रह्मदण्डीं मर्कटिकां करक्रोशनिकाक्रयम् ॥६७॥

भौमवारस्य गुलिके गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम् । चतुर्दश्यां रिपोर्गेहे निखनेत्रजपेन्मनुम् ॥६८॥  
 सार्थं पुत्रकलत्रादैरुच्चाटो जायते रिपोः । एकैकं वा जपेन्मन्त्री मण्डलात्तफलं लभेत् ॥६९॥  
 षड्बिन्दुखण्डं पुत्तल्यां निखनेदोदनाल्पुतम् । स्पृष्ट्वा तां प्रजपेदस्त्रं कृत्याकृष्टम्यां निशार्थतः ॥७०॥  
 शत्रुनामसमायुक्तं शमशाने निखनेदिमाम् । प्रणश्यति रिपुः शीघ्रं सकुटुम्बः सबान्धवः ॥७१॥  
 कपालशकलान् मन्त्री कृत्याक्षाक्षरसंख्यकान् । संस्पृशन् प्रजपेन्मन्त्रं प्राणस्थापनपूर्वकम् ॥७२॥  
 कृत्याङ्गारचतुर्दश्यां शमशाने विषवृक्षजे । जुहुयादजरकात्कान् कृत्याक्षज्ज्वालया हतः ॥७३॥  
 रिपुर्यम्पुरं गच्छेन्महाज्जरविमोहितः । अजारक्तेन संपूर्णे कलशे निक्षिपेदहिम् ॥७४॥  
 कपालेन पिथायैनं छादयेद्रक्तवाससा । पूजयेद्रक्तपुष्पादैः स्पृष्ट्वा तमयुतं जपेत् ॥७५॥  
 भौमवारे निशामध्ये कारस्करसमेधिते । शमशानवहौ जुहुयादच्छेद्यमपुरं रिपुः ॥७६॥  
 साध्यनक्षत्रवृक्षेण कृत्वा कुम्भं प्रपूरयेत् । माहिषैः पञ्चगव्यसं बिडालं तत्र निक्षिपेत् ॥७७॥  
 जपपूजादिकं सर्वं यथापूर्वं समाचरेत् । कारस्करैधिते वहौ कृत्याक्षेण समेधिते ॥७८॥  
 अयुतं ब्रणतेलेन हृत्वा चान्ते घटं पुनः । आमस्तकं समुद्धत्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥७९॥  
 जुहुयाद्विधिनानेन त्रिदिनैर्प्रियते रिपुः । सुन्दरं महिषीवत्समेकरात्रमुपोषितम् ॥८०॥  
 पाययेन्महिषीसर्पिः प्रस्थं मन्त्रेण मन्त्रितम् । कुशैः स बद्धसर्वाङ्गं स्थापितप्राणमञ्जसा ॥८१॥  
 कारस्करैधिते वहौ ब्रणतेलेन मन्त्रवित् । होमं कृत्यायुतं वत्सं जुहुयादत्तमानसः ॥८२॥  
 एकेन दिवसेनारिगच्छेद्यमपुरं सुखी । त्रिकोणकुण्डे निहिते वहौ मन्त्रेण दीपिते ॥८३॥  
 अचिंते गन्धपुष्पादैरयुतं जुहुयात्कमात् । राजीभल्लातकतिलतैः सप्तदिनं ततः ॥८४॥  
 प्रसूतिसमयं प्राप्तां महिषीं स्थापितानिलाम् । पूजितां गन्धपुष्पादैः स्पृशन् कूर्चेन तां जपेत् ॥८५॥  
 मस्तकाद्योनिपर्यन्तं धिया वत्समनुस्मरन् । आकृष्य हस्ते पतितं जुहुयादेधितेऽनले ॥८६॥  
 एवं कृते समुत्पन्ना कृत्या दीपा हुताशनात् । भक्षयेदचिराच्छत्रुमीरश्वरेणापि रक्षितम् ॥८७॥  
 पुनरग्नौ विशत्येषा कर्तारमनुकाङ्क्षिणी । एवंविधानि कर्माणि यः कुर्यामन्त्रवित्तमः ॥८८॥  
 स जपेदात्मरक्षार्थं मन्त्रान् मृत्युञ्जयादिकान् ।

ब्रह्मदण्डी, मर्कटिका, करक्रोशनिका—तीनों के पिण्ठ से भौमवार को गोली बनाकर मन्त्र का जप करे। चतुर्दशी में उसे शत्रुगृह में गाड़ कर मन्त्र जप करे तो शत्रु का पुत्र-कलत्रसहित उच्चाटन हो जाता है या एक-एक के लिये अलग-अलग जप करे तो चालीस दिनों में उक्त फल प्राप्त होता है। षड्बिन्दु खण्ड पुतली को भात में रखकर गाड़ दे। उसे स्पर्श करते हुए अस्त्रमन्त्र का जप कृष्ण एष्टमी की आधी रात तक करे। शत्रु का नाम लिखकर उसे शमशान में गाड़ दे। इससे शत्रु शीघ्र कुटुम्ब-बन्धुओं के साथ नष्ट हो जाता है। साधक मन्त्राक्षर के बराबर खोपड़ी का टुकड़ा करे, प्राण-प्रतिष्ठा करके उहें स्पर्श करते हुये मन्त्र-जप करे। कृष्ण पक्ष की भौमवारी चतुर्दशी में शमशान विषवृक्ष की अग्नि में बकरे के खून से सिंत काके हवन करे तो शत्रु कृत्याक्ष ज्वाला से हत होकर महाज्वर से मोहित होकर मर जाता है। बकरे के खून से पूर्ण कलश में सर्प डाल दे, उसे कपाल से ढककर लाल वस्त्र से ढक दे। लाल फूलों से उसकी पूजा करे। उसे स्पर्श किए हुए दश हजार जप करे। मंगलवार को आधी रात में कारस्कर की लकड़ी को शमशान की अग्नि से प्रज्वलित करके हवन करे तो शत्रु की मृत्यु

हो जाती है। साध्य नक्षत्रवृक्ष से कुम्भ बनाकर उसमें भैंस के पञ्चगव्य भरे। उसमें विडाल को डाल दे। पूर्ववत् जप-पूजादि करे। कारस्कर की लकड़ी को कृत्यास्त्र से जलाकर व्रणतैल से दश हजार हवन करे; तब घट को मस्तक तक ले जाकर एकाग्रता से मन्त्र-जप करे और विधिवत् हवन करे तो तीन दिनों में शत्रु मर जाता है। भैंस के सुन्दर बच्चे को एक रात निराहार रखकर एक प्रस्थ भैंस के दूध को मन्त्रित करके उसे उस दूध को पिला दे। उसका सर्वांग कुश से बाँध दे। कारस्कर की लकड़ी की प्रज्जलित अग्नि में दश हजार हवन उस बच्चे से करो। इससे एक ही दिन में शत्रु मर जाता है। त्रिकोण कुण्ड में पहले की अग्नि को मन्त्र से प्रज्जलित करे। गन्ध-पुष्टादि से उसका अर्चन करे। दश हजार हवन क्रमशः राई, भल्लातक, तिलतैल से सात दिनों तक करे। गर्भवती भैंस को बच्चा देने के समय खड़ा करे। गन्ध, पुष्टादि से पूजा करे। कूच से उसे स्पर्श किए हुए माथा से योनि तक जप करे। बुद्धि से बच्चे का स्मरण करके योनि से बाहर होने पर हाथों पर रोक ले। प्रज्जलित अग्नि में उसका हवन करो। ऐसा करने से अग्नि से दीप्त कृत्या उत्पन्न होती है। वह तुरन्त शत्रु को ईश्वर से भी रक्षित होने पर खा जाती है और स्वयं फिर अग्नि में समा जाती है; तदनन्तर कर्ता के बुलाने पर ही आती है। जो मन्त्रज्ञ इस विधि से कर्म करता है, उसे अपनी रक्षा के लिये मृत्युञ्जय आदि मन्त्र का जप अवश्य करना चाहिये।

### लवणदुर्गामित्राणां विनियोगादि

अथ लवणदुर्गामित्राः । एषां श्रीलवणदुर्गामित्राणां अङ्गिरसत्रष्टये नमः शिरसि। अनुष्टुप् छन्दसे नमो मुखे। अग्निरात्रिदुर्गाभिन्द्रकालीदेवताभ्यो नमो हृदये। हीं बीजाय नमो गुह्ये। क्रोंशक्तये नामे जान्मोः। आंकीलकाय नमः पादयोः। मम सकलजगद्वशार्थं जपे विनियोगः सर्वाङ्गेषु। ॐ चिटि चिटि हृदयाय नमः, चण्डालि शिरसे स्वाहा, महाचण्डालि शिखायै वृषभद्, अमुकं मे कवचाय हुं, वशमानय नेत्रव्रायाय वौषट्, स्वाहा अन्नाय फट्। एवमङ्गलीन्यासः।

अथाक्षरन्यासः—३० ३० नमो मूर्धिं, ३० चिं नमो भाले, ३० टिं नमो दक्षनेत्रे, ३० चिं नमो वामनेत्रे, ३० टिं नमो दक्षकर्णे, ३० चं नमो वामकर्णे, ३० एडां नमो दक्षनासिकायां, ३० लिं नमो वामनासिकायां, ३० मं नमो मुखे, ३० हं नमश्चिबुके, ३० च नमः कण्ठे, ३० एडां नमो हृदि, ३० लिं नमो दक्षस्तने, ३० अं नमो वामस्तने, ३० मुं नमः कुक्षी, ३० कं नमो नाभी, ३० में नमो दक्षकर्णां, ३० वं नमो वामकर्णां, ३० शं नमो मेद्धे, ३० मां नमः पार्श्वयोः, ३० नं नमः ऊरुद्धये, ३० यं नमो जानुयुगे, ३० स्वां नमो जङ्घायुगे, ३० हां नमः पादद्वये, इत्याक्षरन्यासः। ध्यानम्—

नवकुङ्कुमसत्रिभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं नमामि वह्मि ।  
सुवशाक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम् ॥१॥  
कालाम्बुवाहयुतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम् ।  
कपालपाशाङ्कशशूलहस्तां नीलांशुकां यामवतीं नमामि ॥२॥  
नीलाङ्कनाभामरिशङ्कशूलखट्वाङ्कहस्तां तरुणेन्दुचूडाम् ।  
भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गां दुर्गा भजे दुर्गातिभङ्गदक्षाम् ॥३॥  
ठङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिभ्रती चन्द्रकलावतंसा ।  
पिङ्गोर्ध्वकेशी सितभीमरद्धा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली ॥४॥

इति ध्यात्वा।

ऋग्यन्तकं जपेत् सम्यग्युतं तद्वशांशतः । हविषा घृतसिलेन जुहुयादर्घितेऽनले ॥५॥  
एवं कृतपुरश्रयः प्रयोगे कुशलो भवेत् । अग्निर्यामिवती ध्येयौ वश्याकर्षणकर्मणोः ॥६॥  
स्मरेद् दुर्गा भद्रकालीं मत्री मारणकर्मणि । इति।

लवण दुर्गा मन्त्र—इन लवण मन्त्रों का विनियोग इस प्रकार किया जाता है—अथ श्रीलवणदुर्गामन्त्रस्य अङ्गिरस ऋष्ये नमः, शिरसि अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे, अग्निरात्रिदुर्गाभिन्द्रकालीदेवताभ्यो नमः हृदये, हीं बीजाय नमो गुह्ये, क्रों शक्तये

नमो जान्वोः, ओं कीलकाय नमः पादयोः, मम सकलजगद्वार्थं जपे विनियोगः सर्वोगेषु। इनका अंगन्यास इस प्रकार किया जाता है—३० चिटि चिटि हृदयाय नमः, चण्डालि शिरसे स्वाहा, महाचण्डालि शिखायै वषट्, अमुकं मे कवचाय हुं, वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्माय फट्। इसी प्रकार अंगुलिन्यास भी किया जाता है।

**मन्त्रवर्ण न्यास**—मन्त्रवर्णन्यास इस प्रकार किया जाता है—३० ३० नमो मूर्धिं, ३० चिं नमो भाले, ३० टिं नमो दक्षनेत्रे, ३० चिं नमो वामनेत्रे, ३० टिं नमो दक्षकर्णे, ३० चं नमो वामकर्णे, ३० एडां नमो दक्षनासिकायां, ३० लिं नमो वामनासिकायां, ३० मं नमो मुखे, ३० हां नमश्किंचुके, ३० च नमः कण्ठे, ३० एडां नमो हृदि, ३० लिं नमो दक्षस्तने, ३० अं नमो वामस्तने, ३० मुं नमः कुक्षौ, ३० कं नमो नाभौ, ३० में नमो दक्षकट्यां, ३० चं नमो मेह्डे, ३० मां नमः पार्श्वयोः, ३० नं नमः ऊरुद्वये, ३० यं नमो जानुयुगे, ३० स्वां नमो जड्हायुगे, ३० हां नमः। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

नवकुङ्गमसत्रिभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं नमामि वह्निम्। सुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम्॥  
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीरोभिपयोधराढ्याम्। कपालपाशाङ्कुशशूलहस्तां नीलाशुकां यामवर्तीं नमामि॥  
नीलाञ्जनाभामरिशाङ्कुशूलखट्वाङ्कहस्तां तरुणेन्दुचूडाम्। भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गा दुर्गा भजे दुर्गतिभङ्गदक्षाम्॥  
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिप्रती चन्द्रकलावतंसा। पिङ्गोर्धकेशी सितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूतै मम भद्रकाली॥

इस प्रकार ध्यान करके ऋक्यपंचक का जप दश हजार करे। उसका दशांश हवन धृतसिक्त हविष्य से अर्द्धत अग्नि में करे। इस प्रकार पुरक्षरण करने के बाद साधक प्रयोग का अधिकारी होता है। वश्य-आकर्षण कर्म में यामवती अग्नि का ध्यान करना चाहिये। मारण कर्म में दुर्गा भद्रकाली का स्मरण करना चाहिये।

अथ प्रयोगः—ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय गुरुनमस्कारस्नानसन्ध्यामातृकान्यासपात्रासादनान्तं कर्म समाप्त, पीठे मण्डूकादिकमलान्तं संपूज्य केसरेषु पूर्वाद्यादिक्षु मध्ये च पीठशक्तिः पूजयेत्।

भीषणी बहुरूपा च तीक्ष्णदंष्ट्रा मदोत्कटा। स्मरणी मोहिनी कान्ता कमण्डलुधरा परा ॥७॥

इति क्रमेण भीं भीषणै नमः इत्यादि संपूज्य तत्कर्णिकायां ‘ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः’ इति पीठमनुं विन्यस्य तदुपरि षट्कोणाष्टदलकमलभूगृहयन्त्रं विभाव्य मध्ये इष्टदेवतामावाह्य षोडशोपचारैः पूजां कृत्वा षट्कोणेषु पूर्वादि, ३० चिटि चिटि हृदयाय नमः। इति रीत्या षट्कानि संपूज्य, अष्टदलेषु पूर्वादि—

शूलहस्ता विकेशी च दारुण लवणप्रिया। परा कराला अत्युग्रा तामसी चाष्ट सिद्ध्यः ॥८॥

३० शूं शूलहस्तायै नमः, इति रीत्या संपूज्य, केसरेषु पूर्वादि—

उत्कटो विकटाक्षश्च शूलहस्तो महाबलः। अनिनिह्वः खड्गधरः कपाली तारणप्रियः ॥९॥

३० उं उत्कटाय नमः, इति रीत्या संपूज्य, पत्राग्रेषु पूर्वादि ३० अं अं असिताङ्कभैरवसहितब्राह्मणै नमः, ३० इं ई रुस्त्वैरवसहितमाहेश्वर्यै नमः, ३० उं ऊं चण्डभैरवसहितकौमार्यै नमः, ३० ऋं क्रोधभैरवसहितवैष्णव्यै नमः, ३० अं अं अः संहारभैरवसहितमहालक्ष्यै नमः, इति संपूज्य, भूगृहे लोकपालान् संपूज्य बहिर्वंश्राद्यायुधानि संपूज्य, षड्वरणसहितामिष्टदेवतां संपूज्याष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा ‘गुह्यातिगुहा’ इति मन्त्रेण तेजोरूपं फलं देव्या हस्ते समर्पयेत्। दंशसहस्रजपः पुरक्षरणम्। साज्ज्येन हविषा दशांशोभेः।

ब्राह्म मुहूर्त में उठकर गुरु को नमस्कार करे। स्नान-सन्ध्या-मातृका न्यास-पात्रासादन करके पीठ में मण्डूक से कमला तक की पूजा करे। केसर में, पूर्वादि आठों दिशाओं और मध्य में पीठशक्तियों की पूजा करे। ये नव शक्तियाँ भीषणी, बहुरूपा, तीक्ष्णदंष्ट्रा, मदोत्कटा, स्मरणी, मोहिनी, कान्ता, कमण्डलुधरा एवं परा हैं। कमलकर्णिका में ३० ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः—इस पीठमन्त्र से पूजा करने के बाद उसके ऊपर षट्कोण, अष्टदल और भूपुर यन्त्र की भावना करके मध्य में इष्ट देवता

का आवाहन करके उसकी ओडशोपचार से पूजा करे। षट्कोणों में पूर्वादि क्रम से षडङ्ग पूजन ऊँ चिटि चिटि हृदयाय नमः—इस रीति से षडङ्ग पूजा करे।

अष्टदल में इनकी पूजा करे—शूलहस्ता, विकेशी, दारुणा, लवणप्रिया, परा, कराला, अत्युगा और तामसी। इनका पूजा मन्त्र है—ॐ शू शूलहस्ताय नमः इत्यादि। केसर में पूर्वादि क्रम से उत्कट, विकटाक्ष, शूलहस्त, महाबल, अग्निजिह्वा, खड्गधर, कपाली, तारणप्रिय की पूजा करे। इनका पूजन मन्त्र होगा—ॐ उं उत्कटाय नमः इत्यादि। पत्रों के अग्रभागों में ॐ अं अं अं असिताङ्गभैरवसहितब्राह्मण्ये नमः, ॐ इं ई रुरुभैरवसहितमहेश्वर्ये नमः, ॐ उं ऊं ऊं चण्डभैरवसहितकौमार्ये नमः, ॐ ऊं ऊं क्रोधभैरवसहितवैष्णव्ये नमः, ॐ लं लं उम्भतभैरवसहितवाराहै नमः, ॐ एं एं कपालभैरवसहितन्द्राण्यै नमः, ॐ ओं ओं भीषणभैरवसहितचापुण्डायै नमः, ॐ अं अः संहारभैरवसहित महालक्ष्म्यै नमः। इस प्रकार पूजा करके भूपुर में इन्द्रादि दिव्यालों और उनके ब्राह्मण आयुधों की पूजा करे। छः आवरणों सहित इष्टदेवता की पूजा करके एक हजार आठ मन्त्र का जप करे और कृत मन्त्र-जप को समर्पित करे। दश हजार जप से पुरश्चरण पूर्ण होता है। जप का दशांश हवन करे।

### लवणमन्त्रविधानम्

अथो लवणमन्त्रस्य विधानमभिधीयते । ऋगाद्या कथिता पूर्व लवणाभ्यसि-पूर्विका ॥१॥  
लवणादि द्वितीया स्याद् दहाद्या परिकीर्तिता । तं दग्धवाद्या चतुर्थी स्याद्या ते-पूर्वादि पञ्चमी ॥२॥  
आङ्गिरा मुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहतः । अग्नी रात्रिः पुनर्दुर्गा भद्रकाली च देवताः ॥३॥  
चिटिमन्त्राक्षरैः कुर्यात्बद्धानि समाहितः । पञ्चभिर्भद्रयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम् ॥४॥  
पञ्चवर्णैः शिखा प्रोक्ता कवचं करणाक्षरैः । पञ्चभिर्नेत्रमुदितं युगलेनास्त्रमीरितम् ॥५॥  
ताराश्चिट्ठद्वयं पश्चाच्चाण्डालि तदनन्तरम् । महत्पदाद्यां तां ब्रूयादमुकं मे ततः परम् ॥६॥  
वशमानय ठङ्क्नं चिटिमन्त्र उदाहतः । चतुर्विशत्यक्षरात्मा सर्वकामफलप्रदः ॥७॥

नवकुङ्गमसन्निभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं नमामि वह्निम् ।  
सुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम् ॥८॥  
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम् ।  
कपालपाशाङ्गुशशूलहस्तां नीलांशुकां यामवतीं नमामि ॥९॥  
नीलाङ्गनाभामरिशंखशूलखट्वाङ्गहस्तां तरुणेन्दुचूडाम् ।  
भीमां त्रिनेत्रां जितशङुवर्गा दुर्गा भजे दुर्गतिभङ्गदक्षाम् ॥१०॥  
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिश्रती चन्द्रकलावतंसा ।  
पिङ्गोर्धकेशी सितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली ॥११॥

लवण मन्त्र का विधान—अब लवण मन्त्र का विधान कहता हूँ। ऋक्यपंचक में प्रथम लवणाभ्यसि पूर्वक, द्वितीय लवणादिपूर्वक, तृतीय दह आदि, तं दग्धवा आदि चतुर्थ और स्याद्या ते आदि पञ्चम लवण मन्त्र है। इसके ऋषि अंगिरा, छन्द अनुष्टुप्, देवता अग्निरात्रि दुर्गा भद्रकाली है। चिटि मन्त्राक्षरों से षडङ्ग करे। जैसे—ॐ चिटि चिटि हृदयाय नमः, चण्डलि शिरसे स्वाहा, महाचण्डालि शिखावै वषट्, अमुकं मे कवचाय हुं, वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा अस्त्राय फट्। मन्त्र है—ॐ चिटि चिटि चण्डालि महाचण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। यह चौबीस अक्षरों का मन्त्र सर्व काम-फलप्रदायक है। षडङ्ग आदि करने के पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—

नवकुङ्गमसन्निभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं नमामि वह्निम् । सुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम् ।  
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम् । कपालपाशाङ्गुशशूलहस्तां नीलांशुकां यामवतीं नमामि ।  
नीलाङ्गनाभामरिशंखशूलखट्वाङ्गहस्तां तरुणेन्दुचूडाम् । भीमां त्रिनेत्रां जितशङुवर्गा दुर्गा भजे दुर्गतिभङ्गदक्षाम् ।  
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिश्रती चन्द्रकलावतंसा । पिङ्गोर्धकेशी सितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली ।।

ऋक्पञ्चकं जपेत् सम्यग्युतं तददशांशतः । हविषा धृतसिक्तेन जुहुयादर्चितेऽनले ॥१२॥  
 एवं कृतपुरश्चर्यः प्रयोगे कुशलो भवेत् । अनिर्यमिवती ध्येयौ वश्याकर्षणकर्मणोः ॥१३॥  
 स्मरेद् दुर्गा भद्रकालीं मन्त्री मारणकर्मणि । जानुप्रमाणे सलिले स्थित्वा निशि जपेन्मनुम् ॥१४॥  
 अनेन वाञ्छितः साध्यः किङ्करो जायतेऽचिरात् । नाभिमात्रोदके स्थित्वा जपेन्मन्त्रमिमं सुधीः ॥१५॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं यस्तस्य साध्यो वशे भवेत् । ऋक्पञ्चकं जपेन्मन्त्री कण्ठमात्रोदके स्थितः ॥१६॥  
 सप्तश्चर्दिवसैर्भूपान् वशयेद्विधिनामुना । विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनामा विदर्भितम् ॥१७॥  
 निःक्षिप्य क्षारसंमिश्रे जले तत्क्वथयेन्निशि । वश्यो भवति साध्योऽस्य नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥  
 तालपत्रे लिखित्वैन भद्रकालीग्रहे खनेत् । वश्याय सर्वजन्मानं प्रयोगोऽयमुदाहतः ॥१९॥  
 ताम्रपत्रे समालिख्य मन्त्रं साध्यविदर्भितम् । तापयेत् खादिरे वह्नौ मासाद्वश्यो भवेन्नरः ॥२०॥  
 त्रिकोणकुण्डमापाद्य सम्यक् शास्त्रोक्तलक्षणम् । तस्मिन् होमं प्रकुर्वीत संस्कृते हव्यवाहने ॥२१॥  
 प्रक्षाल्य गव्यदुधेन संशोध्य लवणं सुधीः । सुचूर्णितं तज्जुहुयात्सपाहाद्वश्येज्जनान् ॥२२॥  
 दधिमध्वाज्यसंसिक्तैः सैन्यवैर्जुहुयात्तथा । वशयेत्सकलान् देशानविचारात्किमु पार्थिवान् ॥२३॥  
 विशुद्धलवणं प्रस्थं विभक्तं पञ्चधा पृथक् । एकैकया प्रजुहुयादृचा पञ्चाहमादरात् ॥२४॥  
 यस्य नामा स वश्यः स्यादनेनैव न संशयः ।

ऋक्पञ्चक का सम्यक् जप दश हजार करे । उसका दशांश हवन् ज्वलित अग्नि में धृतसिक्त हविष्य से करे । इस प्रकार के पुरक्षण करने पर प्रयोग का अधिकार मिलता है । वश्य-आकर्षण में यामवती अग्नि का ध्यान करे । मारण कर्म में दुर्गा भद्रकाली का स्मरण करे । रात में घटने तक जल् में खड़े होकर मन्त्र का जप करे । एक हजार आठ जप से साध्य वश में होता है । कण्ठ तक जल् में खड़े होकर ऋक्पञ्चक का जप सात दिनों तक करे तो राजा वश में होते हैं । साध्य नाम विदर्भित मन्त्र को ताङ् पत्र पर लिखे । क्षारभिन्नत जल में उसे डालकर क्वाथ बनावे । इससे साध्य वश में होता है । इसे ताङ्पत्र पर लिखकर भद्रकाली के मन्दिर में गाङ् दे तो सभी जीवों को वश में करने का यह उत्तम प्रयोग है । ताप्त्र पत्र पर साध्य नाम विदर्भित मन्त्र को लिखकर खैर के लकड़ी की अग्नि पर तपावे तो एक माह में साध्य वश में होता है । सम्यक् शास्त्रोक्त लक्षण का त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें संस्कृत अग्नि में हवन करे । हवन के लिये नमक को गाय के दूध से धोकर सुखाकर महीन चूर्ण करे । इस नमक से हवन करने पर एक सप्ताह में लोग वश में होते हैं । दही, मधु, आज्यसिक्त सेन्या नमक से हवन करने पर सभी देश के मनुष्य अल्प काल में वश में हो जाते हैं । एक प्रस्थ = ३२ तोला बाराबर ३२० ग्राम को पाँच भाग करे । एक भाग से पाँच दिनों तक हवन करे । जिसके नाम से हवन किया जाता है, वह निस्सन्देह रूप से वश में हो जाता है ।

शुद्धं लवणमादाय जुहुयान्मधुराच्चितम् ॥२५॥

ऊनपञ्चाशदाहुत्या वशं नयति वाञ्छितम् । नित्यं शुद्धेन लोणेन हुत्वा शत्रून् वशं नयेत् ॥२६॥  
 मधुरत्रयसंयुक्तैर्लवणैः साधुचूर्णितैः । जुहुयाद् वशयेन्नारीर्नान् नरपतीनपि ॥२७॥  
 मन्त्रं कृष्णात्तीयादि प्रजपेण्यावदष्टमी । पुत्तलीः पञ्च कुर्वीत साङ्गीपाङ्गा: समाः शुभाः ॥२८॥  
 एका साध्यदुमेण स्यादन्या पिष्टमयी मता । चक्रिहस्तमृदान्या स्यादन्या सिक्ष्यमयी स्मृता ॥२९॥  
 लवणं पोतसंभूतं चूर्णितं परिशोधितम् । कुडवं प्रोक्षयेत्क्षीरदध्याज्यमधुभिः क्रमात् ॥३०॥  
 गुडाज्यमधुमिः सम्यङ्गमिश्रतेनामुना ततः । कुर्वीत पुत्तलीं सौम्यां सर्वावयवशोभिताम् ॥३१॥  
 प्राणमन्त्रकृतं यन्त्रमासां हृदि विनिःक्षिपेत् । आसु प्राणान् प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् कुसुमादिभिः ॥३२॥  
 पश्चात् कृष्णाष्टमीरात्रौ याममात्रे गते सति । विधाय मातृकान्यासं मन्त्रन्यासमनन्तरम् ॥३३॥  
 चिट्ठमन्त्रसमुद्भूतान् चतुर्विंशतिसंख्यकान् । ताराद्यान् विन्यसेद्वृणान् स्थानेष्वेषु समाहितः ॥३४॥  
 पूर्ध्नि भाले दृशोः श्रुत्योर्नासास्यचिबुक्ष्यथ । कण्ठहत्सनयुग्मेषु कुक्षौ नाभौ कटिद्वये ॥३५॥

मेढ़े पायौ प्रविन्यस्य शिष्टवर्णचतुष्टयम् । ऊरुद्वये जानुयुगे जड्हायुग्मे पदद्वये ॥३६॥  
 एवं विन्यस्तसर्वज्ञो रक्तमाल्यानुलेपनः । रक्तवस्त्रधरः शुद्धः पुत्तलीं दारुणा कृताम् ॥३७॥  
 अधोमुखीं खनेत्कुण्डे पिष्ठजामासनादधः । मृमयीं प्रतिमां पाददेशे न्यस्येत्तथात्मनः ॥३८॥  
 मध्यूच्छिष्टमयीं व्यामिनि कुण्डस्योर्ध्वं प्रलम्बयेत् । लवणेन कृतां पश्चात्पुत्तलीं संस्पृशञ्जपेत् ॥३९॥  
 ऋक्पञ्चकं यथान्यायमष्टोत्तरसहस्रकम् । संहत्या चिटिमन्त्राणान् पुनस्तस्यास्तनौ न्यसेत् ॥४०॥  
 अङ्गुष्ठसन्धिप्रपदजङ्घाजानूरुपायुषु । लिङ्गदेशे पुनर्नाभौ जठरे हृदयाम्बुजे ॥४१॥  
 स्तनद्वये कन्धरायां चिबुके वदने पुनः । ग्राणयोः कर्णयोरक्षणोर्ललाटे मूर्धनि न्यसेत् ॥४२॥

मधुरान्वित शुद्ध नमक से हवन उनचास आहुतियों से करे तो वांछित व्यक्ति वश में हो जाता है। शुद्ध नमक के नित्य हवन से शत्रु वश में होते हैं। मधुरत्रय से युक्त नमक के महीन चूर्ण से हवन करने पर नारी-नर-नृपति वश में होते हैं। कृष्ण पक्ष की तृतीया से अष्टमी तक मन्त्र का जप करे। तदनन्तर साध्य वृक्ष की लकड़ी से या लकड़ी के पिण्ड से सांगोपांग सुन्दर पाँच पुतली बनावे। दूसरे मत से एक साध्य वृक्ष से, दूसरी पिण्ड से, तीसरी कुहार के हाथ की मिट्टी से, चौथी सिक्ख से एवं पाँचवीं पुतली नमक से बनावे। एक कुडव = ३२० ग्राम नमक-चूर्ण लेकर दही-दूध-गोघृत से प्रोक्षण करे। उसमें गुड़ आज्य मधु मिलाकर मिश्रित करे। उससे सर्वावयव शोभित पुतली बनावे। प्राण-प्रतिष्ठित यन्त्र को इसके हृदय में घुसेइ दे। इसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके पुष्टादि से पूजा करे। तब कृष्णाष्टमी की एक प्रहर रात बीतने पर मातुका न्यास के बाद मन्त्रन्यास करे। चिटि मन्त्र के चौबीस अक्षरों से अंगों में न्यास करे। न्यास मूर्धा, ललाट, नेत्र, कान, नाक, चिबुक, कण्ठ, हृदय, दोनों स्तन, कुक्षि, नाभि, कटिद्वय, लिङ्ग, पायु में करे। शेष चारों वर्णों का न्यास दोनों ऊरु, दोनों घुटनों, दोनों जांघों एवं दोनों पैरों में करे। इस प्रकार न्यास करके लाल माला, अनुलेप, लाल वस्त्र पहनकर पुतली को शुद्ध दारुण आकृति का बनाकर अधोमुख स्थापित करे। कुण्ड बनाकर नीचे पिण्ड का आसन दे। मिट्टी की प्रतिमा अपने पैरों के नीचे रखे। मोम की पुतली कुण्ड के ऊपर लटकावे। तब नमक की मूर्ति को स्पर्श करके ऋक्पञ्चक का एक हजार आठ जप करे। चिटि मन्त्र के अक्षरों को पुतली के स्तनों में न्यस्त करे। फिर मन्त्राक्षरों का न्यास पैर, अंगुष्ठमूल, जांघ, घुटना, गुदा, लिङ्ग, नाभि, पेट, हृदय, दोनों स्तन, दोनों कन्धा, चिबुक, मुख, नाक, कान, नेत्र, ललाट, मूर्धा में करे।

#### प्रतिमाप्रमाणम्

##### तत्रातिमाप्रमाणां तु—

आयामः पादयोस्तस्या आकट्याच्चतुरङ्गलम् । पादोनद्वयङ्गुलात् कुक्षिस्तावदेवाङ्गुलोदरम् ॥१॥  
 अङ्गुलद्वयमावकत्रात्कण्ठदेशस्य मानकम् । शिरसो वक्ष्यमाणं स्यात्सार्धद्वयमिहाङ्गुलम् ॥२॥

इति द्वादशाङ्गुलप्रमाणप्रतिमेत्यर्थः।

अग्निमादाय संदीप्य साध्यनक्षत्रदासभिः । तस्मिन्नभ्यर्च्य मन्त्रोक्तां देवतां रूप्यपात्रके ॥४३॥  
 कुशीतराजिपुष्पाद्विर्दत्त्वार्द्धं प्रणमेत्पुष्टिः । मन्त्रैरेतैः प्रयोगादावन्ते संयतमानसः ॥४४॥  
 ॐ त्वमनेनाप्यमित्रम् निशायां हव्यवाहन । हविषा मन्त्रजपेन तृप्तो भव तया सह ॥४५॥  
 जातवेदो महादेव तप्तजाम्बूनदग्रभ । स्वाहापते विश्वभक्ष लवणं दह शत्रहन् ॥४६॥  
 ईशे शर्वरि शावर्णि ग्रस्तं मुक्तं त्वया जगत् । महादेवि नमस्तुभ्यं वरदे कामदा भव ॥४७॥  
 तपोमयि महादेवि महादेवस्य सुव्रते । त्रियामे पुरुषं हत्वा वशमानय देवि मे ॥४८॥  
 दुर्गे दुर्गादिरहिते दुर्गसंरोधनाकुले । चक्रशंखधरे देवि दुष्टशत्रुभयङ्गरि ॥४९॥  
 नमस्ते दह शत्रुं मे वशमानय चण्डिके । शाकंभरि महादेवि शरणं मे भवानघे ॥५०॥  
 भद्रकालि भवाभीष्टे भद्रसिद्धिप्रदायिनि । सपलान् मे हन हन दह शोषय ताप्य ॥५१॥  
 शूलासिशक्तिवत्रादैरुत्कृत्योत्कृत्य मारय । महादेवि महाकालि रक्षास्मानक्षरात्मिके ॥५२॥

प्रतिमा का प्रमाण—पैर से लेकर कमर तक चार अंगुल लम्बी, पौने दो अंगुल की कुक्षि, उतनी ही लम्बाई का उदर, मुख से कण्ठ तक दो अंगुल एवं शिर से मुख तक ढाई अंगुल की लम्बाई मूर्ति की होनी चाहिये। इसका अर्थ यह है कि प्रतिमा की लम्बाई बारह अंगुल होती है। अग्नि लाकर साध्य नक्षत्र की लकड़ी से प्रज्वलित करे। उसमें मन्त्रोक्त देवता रूप का अर्चन करे। कुश, राजिपुष्ट से अर्थ्य देकर प्रणाम करे। इस मन्त्र से आद्यन्त प्रयोग संयत मन से करे। इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे—

जातवेदो महादेव तपतजाम्बूनदप्रभ। स्वाहापते विश्वभक्ष लवणं दह शत्रहन्॥  
 ईशे शर्वरि शर्वाणि ग्रस्तं मुक्तं त्वया जगत्। महादेवि नमस्तुभ्यं वरदे कामदा भव॥  
 तमोमयि महादेवि महादेवस्य सुव्रते। त्रियामे पुरुषं हत्वा वशमानय देवि मे॥  
 दुर्गे दुर्गादिरहिते दुर्गासंरोधनाकुले। चक्रशंखभरे देवि दुष्टशत्रुभयङ्करि॥  
 नमस्ते दह शत्रुं मे वशमानय चण्डिके। शार्करामि महादेवि शरणं मे भवानघे॥  
 भद्रकालि भवाभीष्टे भद्रसिद्धिप्रदायिनि। सपत्नान् मे हन हन दह शोषय तापय॥  
 शूलसिस्त्तिकवज्ञाद्यैरुत्कृत्योत्कृत्य मारय। महादेवि महाकालि रक्षास्मानक्षरात्मिके॥

साध्यं संस्मृत्य निर्भिद्य पुतलीं सप्तथा ततः। ऋक्पञ्चकं समुच्चार्य जुहुयादेधितेऽनले ॥५३॥  
 प्रथमो दक्षिणः पादस्तल्करस्तदनन्तरम्। शिरस्तृतीयमाख्यातं वामहस्तस्ततः परम् ॥५४॥  
 मध्यादूर्ध्वं पञ्चमः स्यादधोऽङ्गः षष्ठ ईरितः। सप्तमो वामपादः स्यादेवं भागक्रमः स्मृतः ॥५५॥  
 सप्तसत्तविभागो वा प्रोक्तेष्वेषु यथाविधि। हुत्वैवमर्चयित्वानिं प्रणमेद् दण्डवत्ततः ॥५६॥  
 यजमानो धनैर्धन्त्यैः प्रीणयेह्रुमात्मनः। अनेन विधिना मन्त्री वशयेत्ससुरासुरान् ॥५७॥  
 किं पुनर्मनुजान् भूपानमात्यान् वारयोषितः। मारणे पूर्वसंप्रोक्तं पुतलीनां चतुष्यम् ॥५८॥  
 निवेशयेद्यथापूर्वं साधकेन्द्रो विधानवित्। अपरां वक्ष्यमाणेन विधानेन प्रकल्पयेत् ॥५९॥  
 वराहपारावतविद्यतिलत्यूषणरामठैः। व्रणकृत्रिम्बसिद्धार्थसाध्यवामांग्रिरेणुभिः ॥६०॥  
 माहिषीमूत्रसंपिण्डैः पूर्वोक्तलवणान्वितैः। विधाय पुतलीं सम्यक् प्राणस्थापनमाचरेत् ॥६१॥  
 जपपूजादिकं सर्वं कुर्यात् प्रागुक्तवर्त्मना। ततः पूर्वोदिते कुण्डे रात्रौ प्रज्वलितेऽनले ॥६२॥  
 दुर्गा वा भद्रकालीं वा समाराध्य यथाविधि। धारयेत्रिशिं शस्त्रं सव्यहस्तेन साधकः ॥६३॥  
 वामपादं समारभ्य दक्षिणाङ्ग्यवसानकम्। छित्वा छित्वा प्रजुहुयात्रिराहारो जितेन्द्रियः ॥६४॥  
 कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णाचतुर्दशीम्। अनेनैव विधानेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥६५॥  
 त्रिसप्ताहप्रयोगेण मारयेद्विपुमात्मनः।

साध्य का स्मरण करके पुतली का सात टुकड़ा करे। ऋक्पञ्चक का उच्चारण करके प्रज्वलित अग्नि में हवन करे। पहले दाँयाँ पैर, तब हाथ, तब शिर, तब बाँयाँ हाथ-तल, मध्य भाग, छठे में अधो अंग, सप्तम में बाँयाँ पैर—इसी क्रम से हवन करे। पुतली के सात भागों से यथाविधि हवन करे, अग्नि का अर्चन करे, प्रणाम करे। यजमान अपने गुरु को धन-धान्य से प्रसन्न करे। इस विधि से प्रयोग करने पर साधक सुर-असुरों को भी वश में कर सकता है; तब मनुष्यों, नृपों, अमात्यों, वेश्याओं को वश में करना कौन-सा कठिन कार्य है।

मारण के लिये पूर्वोक्त प्रथम चार पुतलियों को रखे। इन्हें साधक यथापूर्व निवेशित करे। पाँचवीं पुतली विहित विधान से बनावे। सूअर-कबूतर का विट, तिल, त्रूषण, रामठ, छिद्रित निम्ब, सरसों, साध्य के बाँयें पैर के नीचे की धूति को भैंस के मूत्र में पीसकर उसमें पूर्वोक्त लवण मिलावे। उससे पुतली बनावे। सम्यक् प्राण-प्रतिष्ठा करे। पूर्वोक्त मार्ग से जप-पूजादि सब कुछ करे। तब पूर्वोदित कुण्ड में रात में प्रज्वलित अग्नि में दुर्गा भद्रकाली की पूजा यथाविधि करे। बाँयें हाथ में तेज हथियार ग्रहण करे। वाम पाद से आरम्भ कर दक्षिण पाद तक मूर्ति का टुकड़ा करे। निराहार जितेन्द्रिय रहकर हवन करे। कृष्णाष्टमी से चतुर्दशी तक इस विधान से हवन करे। तीन सप्ताह तक इस प्रयोग से साधक अपने शत्रु को मार डालता है।

लवणमन्त्रसेषां मन्त्रदेवतांथानानि च

अथ लवणमन्त्रः—

लवणमन्त्रसि तीक्ष्णोऽस्युग्रोऽसि हृदयं तव । लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता ॥१॥  
लवणे हृयमाने तु कुतो निद्रा कुतो रतिः । लवणं पचति पाच लवणं छिन्दति भिन्दति ॥२॥  
अमुष्य दह गात्राणि दह मांसं दह त्वचम् । दह त्वगस्थिमज्जानि अस्थिभ्यो मज्जिकां दह ॥३॥  
यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे । नगरे लोहप्राकारे कृष्णासपरशतार्गले ॥४॥  
तं दग्धवानय मे शीघ्रमये लोणस्य तेजसा । वशमायातु लवणमन्त्रशक्तिपुरस्कृतः ॥५॥  
या ते रात्रिः शत्यविद्वस्य शूलाग्रारोपितस्य च । या ते रात्रिमहारात्रिः सा ते रात्रिमहानिशा ॥५॥

एतेषु ऋगादिषु प्रणवान् सवोज्य प्रणवपाशादि व्यक्षरादि चिटिमन्त्रसमेतं ऋक्पञ्चकं जपेत् । अथवा सर्वेषु  
ऋगादिषु चिटिमन्त्रादौ च आवरणदेवतादिषु च प्रणवपाशादिव्यक्षरं योजयेत् ।

पिप्लादमते अथ लवणमन्त्रः—

लवणाम्भसि तिक्कोऽसि उग्रोऽसि हृदयं तव । लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य जलं पिता ॥१॥  
लवणं दहति पचति लवणं छिन्दि भिन्दति । लवणे हृयमाने तु कुतो निद्रा कुतो रतिः ॥२॥  
अमुकस्य दह गात्राणि दह मांसं दहनलम् । दह त्वगस्थिमज्जानि अस्थिभ्यो मज्जिकां दह ॥३॥  
यदि वसति योजनशते नदीनां च शतान्तरे । स दग्धवा च स मे शीघ्रमनेर्लवणतेजसा ॥४॥  
या ते रात्रिमहारात्रिर्यातिरात्रिमहानिशा । या रात्रिः शत्यविद्वस्य शूलाग्रारोपितस्य च ॥५॥

हीं चिटि चिटि चण्डालि महाचण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा, इति लवणमन्त्रः । अस्याङ्गिरा ऋषिः,  
अनुष्टुप् छन्दः, अग्निरात्रिदुर्गार्भद्रकाल्यो देवताः, मन्त्रस्य हलो बीजानि, स्वरा: शक्तयः लवणाम्भसि—लवणे  
हृयमाने—दह त्वगस्थिं—संदग्धवा—या ते रात्रिरित्यैः पञ्चमन्त्रैः पञ्चाङ्गनि । अथवा चिटिमन्त्राक्षरैः पञ्चत्रिपञ्च-  
चतुष्पञ्चद्विसंख्याकैः क्रमात् षड्जानि । ध्यानम्—

अरुणोऽरुणपङ्कजसंनिषणणः सुवशक्तिवराभययुक्तकरः ।

अमितार्दिर्जातगतिर्विलसन्नयनन्त्रितयोऽवतु वो दहनः ॥१॥

नीलतरांशुकेशकलापा नीलतनुर्निबिडस्तनभारा ।

साङ्कुशापाशसशूलकपाला यामवती भवतोऽवतु नित्यम् ॥२॥

करकमलविराजच्यकशंखासिशूला परिलसितकीरीटा पातितानेकदैत्या ।

त्रिनयनलसिताङ्गी तिग्मरशिमप्रकाशा पवनसखनिभाङ्गी पातु कात्यायनी वः ॥३॥

सुरौद्रसितदंष्ट्रिका त्रिनयनोर्ध्वकेशोल्लवणा कपालपरशूलसङ्खमस्तका त्रिशूलोज्ज्वला ।

घनाघननिभा रणद्विचिरकिङ्किणीमालिका भवद्विभवसिद्धये भवतु भद्रकाली चिरम् ॥४॥

इति ध्यानम् । अयुतजपः पुरश्चरणम् । अत्यन्तानियतस्य त्रिसहस्रजपः पुरश्चरणम् । आज्यचरुणा दशांशहोमः ।  
अष्टमीमारभ्य चतुर्दशीपर्वन्तं रात्रिषु प्रतिदिनं कुडवपरिमितलवणचूर्णैर्मधुरत्रयोपेतैरष्टोतरं द्विशतं जुहुयात् । एवं  
सप्तरात्रहोमेन साध्यो दासवद्वश्यो भवति । प्रयोगकाले मन्त्रस्यामुकपदस्थाने साध्यनाम निक्षिप्य जुहुयात् प्रजपेच्च ।

लवण मन्त्र—मूलोक्त श्लोक १-६ लवण मन्त्र के ऋक्पञ्चक हैं । इन ऋचाओं के पहले ३० प्रणवपाश व्यक्षरादि  
चिटि मन्त्र के साथ जोड़कर ऋक्पञ्चक का जप करे या सभी ऋचाओं के पहले चिटि मन्त्र जोड़कर जप करे । आवरण देवताओं  
के पूजन में पहले प्रणव पाशादि व्यक्षर जोड़ना चाहिये ।

पिप्पलाद के मत से ऋक्पंचक में श्लोक १-५ हैं। चिटि मन्त्र है—हीं चिटि चिटि चण्डालि महाचण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। इसमें २४ अक्षर हैं। इस चिटि मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द अनुष्टुप्, देवता अग्नि रात्रि दुर्गाभद्रकाली, हलो ब्रीज एवं स्वर शक्तियाँ हैं। लवणाम्भसि, लवणे हूयमाने, दह त्वगस्थि, संदाघ्वा, या ते रात्रि—इन पाँच मन्त्रों से पञ्चाङ्ग न्यास करे। अथवा चिटि मन्त्र के ५, ३, ५, ४, ५, २ अक्षरों से षड्ङ्ग न्यास करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

**अरुणोऽरुणपद्मजसंनिधणः** सुवशक्तिवारभययुक्तकरः। अमितार्चिरजातगर्तिवलसत्रयनत्रितयोऽवतु वो दहनः॥

नीलतरांशुककेशकलापा नीलतनुर्निबिडस्तनभारा। साङ्खशपाशसशूलकपाला यामवती भवतोऽवतु नित्यम्॥

करकमलविराजच्चकशंखासिशूला परिलसितकीरीटा पातितानेकदैत्या।

त्रिनयनलसिताङ्गी तिग्मरश्मप्रकाशा पवनसखनिभाङ्गी पातु कात्यायनी वः॥

सुरौद्रसितदंश्चिका त्रिनयनोर्धकेशोत्त्वणा कपालपरशूलसङ्खमरुका त्रिशूलोज्ज्वला।

घनाधननिभा रणद्रुचिरकिङ्गीमालिका भवद्विभवसिद्धये भवतु भद्रकाली चिरम्॥

इसके दश हजार जप से इसका पुरश्वरण होता है। अत्यन्त अनियत का पुरश्वरण तीन हजार जप से होता है। आज्य खीर से दशांश हवन होता है। अष्टमी से आरम्भ करके चतुर्दशी तक रात में प्रतिदिन ३२० ग्राम नमक चूर्ण मधुरत्रय मिलाकर दो सौ आठ हवन करे। इस प्रकार सात रातों तक हवन करने से साध्य दासवत् होता है। प्रयोग के समय अमुक के स्थान में साध्य नाम जोड़कर जप करे और हवन करे।

### साध्यनक्षत्रवृक्षाः

साध्यनक्षत्रवृक्षास्तु—

कारस्कारोऽथ धात्री स्यादुद्भवरतरुः पुनः। जम्बूः खदिरकृष्णाख्यौ वंशपिष्ठलसंज्ञकौ ॥१॥

नागरोहिणनामानौ पलाशप्लक्षसंज्ञकौ। अम्बष्टबिल्वार्जुनार्घ्यविशङ्कतमहीरुहाः ॥२॥

वकुलः शम्बरः सर्जों वञ्चुलः पानसार्ककौ। शमीकदम्बाग्रनिम्बमधूका ऋक्षशाखिनः ॥३॥ इति।

साध्य नक्षत्र वृक्ष—कारस्कर, आमला, गूलर, जामुन, कृष्णा खैर, बाँस पिप्ल, नाग, रोहिण, पलाश, पाँकड़, अम्बष्ट, बेल, अर्जुन, विशंकत, वकुल, शम्बर, सर्ज, वंजुल, कटहल, अकवन, शमी, कदम्ब, आम, नीम, महाम—ये २७ वृक्ष सत्ताईस नक्षत्रों के कहे गये हैं।

### अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रविधानम्

अथान्नपूर्णेश्वरीमन्त्राः ज्ञानार्णवे (९ पं० १५ श्लो०)—

तारं च भुवनेशानी श्रीबीजं कामराजकम्। हृदन्ते भगवत्यर्णान् माहेश्वरिपदं वदेत्॥

अन्नपूर्णेऽग्निजाया च विद्येयं विशदक्षरी ।

तारं प्रणवः, भुवनेशानी मायाबीजं, श्रीबीजं श्रीमिति, कामराजकं कलीं, हन्त्रमः, भगवति स्वरूपं, माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वरूपं, अग्निजाया स्वाहाकारः। अत्र माहेश्वरिन्नपूर्णे इति पदयोर्न संधिविंशदक्षरीत्युक्तेः। तथा (१-१९)।

ऋषिब्रह्मास्य मन्त्रस्यानुष्टुप् छन्दोऽभिधीयते। अन्नपूर्णेश्वरी देवी देवता परिकीर्तिः ॥१॥

बीजं तु भुवनेशानी श्रीबीजं शक्तिरूच्यते। कीलकं कामराजं स्यात्पद्मानि ततः परम् ॥२॥ इति।

दक्षिणामूर्तिः (१६ पं० ७ श्लो०)—

षट्दीर्घस्वरसंभित्रां हल्लेखां कुरु पार्वति। एभिरङ्गानि विन्यस्य वर्णन्यासमथाचरेत् ॥१॥

ब्रह्मरस्ये च सीमने भालभूमध्ययोर्नसि। वक्त्रे कण्ठे च हृदये कुक्षिनाभिषु लिङ्गके ॥२॥

आधारे स्फिरद्वये चोरद्वये जानुद्वये तथा। पादयोर्देवदेवेशि (पदन्यासं ततश्चरेत् ॥३॥

नवद्वारेषु देवेशि पदन्यासः उदाहृतः।

ज्ञानार्णवे तु (१-२३) —

पदानि नव देवेशि) नवद्वारेषु विन्यसेत्। मूर्धादिगुदपर्यन्तं पुनरस्तेषु वरानने ॥४॥  
गुदादिब्रह्मरन्ध्रानं पदानां नवकं न्यसेत्।

गुदः पर्यन्तो दशयो येषां ब्रह्मरन्ध्रादीनामित्यर्थः। तेन ब्रह्मरन्ध्रादिलिङ्गपर्यन्तं नव पदानि विन्यस्य पुनर्गुदादिदक्षेन्नेत्रान्तानि तान्येव पदानि न्यसनीयानीति।

ब्रह्मरन्ध्रास्यहृदयमूलाधारेष्वनुक्रमात् । चतुर्बीजानि विन्यस्य स्वरेष्वन्यान् प्रविन्यसेत् ॥  
गोलकं च ततो देवि विन्यसेद्विधिवत् प्रिये ।

गोलकं व्यापकम्। 'मूलेन व्यापकं न्यासं कुर्याद् देहस्य सिद्धये' इति दक्षिणामूर्त्येकवाक्यात्। स्वरेषु स्वरन्यासस्थानेषु। ध्यानम्—

तप्तकाञ्छनसंकाशां बालेन्दुकृतशेखराम्। नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम् ॥१॥

चित्रवस्त्रपरीधानां शफाराक्षीं त्रिलोचनाम्। सुवर्णकलशाकारपीनोन्नतघटस्तनीम् ॥२॥

नृत्यन्तमीशमनिशं दृष्टवानन्दमर्यां पराम्। सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाळ्यां नितम्बिनीम् ॥३॥

अन्नदानरतां नित्यं भूमिश्रीभ्यां नमस्कृताम्।

अन्नदानरतामित्यनेन वामहस्तेऽन्नपात्रं दक्षिणहस्ते दर्वीं धृतवतीति ज्ञेयम्।

अथवा दक्षिणे हस्ते दर्वीं ध्यायेत्पुर्वण्जाम्। दुग्धान्नभरितं पात्रं दिव्यरत्नविभूषितम् ॥  
वामहस्ते महेशानि.....।

इति संहितोक्तेः।

ज्ञानार्णवे (१-२५) —

त्रिकोणं च चतुर्ष्वत्रं वसुपत्रं ततः परम्। कलापत्रं च भूविक्षं सच्चतुद्वारमालिखेत् ॥१॥

भूविक्षं चतुरस्त्रयात्मकं, चतुरस्त्रयं च कुर्यात्। चतुर्द्वारोपशोभितमिति संमोहनपञ्चरात्रात्। एतत्सर्वदैवतं परं ज्ञेयम्। 'सर्वेष्वेव विधातव्यं पूजाचक्रेषु भूगृहं' मिति स्वयमभिधानात्।

सिंहासनस्य परितः पीठदेवीः समर्चयेत्। सिंहासने दक्षिणे तु कथिताः पीठनायिकाः ॥२॥  
ता एव पूजिताः पीठे वामाद्याः परमेश्वरि ।

वामाद्याः शैवपीठशक्तयः। अथवा—

समध्यर्च्य जयाद्यास्तु पीठशक्तीर्नव क्रमात्। पीठं च पीठमन्त्रेण हल्लेखाद्याः प्रपूजयेत् ॥३॥

इति संमोहनतन्त्रवचनात्। 'जयादिनवशक्तीश पूजयेत्तदनन्तरम्' इति सारसंग्रहवचनात्। पूर्वोक्त-भुवनेश्वरीपीठस्य जयादिनवशक्तयः, तत्पीठमन्त्रश्च वा ग्राह्यः।

अन्नपूर्णेश्वरी मन्त्र—ज्ञानार्णव में पठित मूलोक्त श्लोक के उद्घार करने पर बीस अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र इस प्रकार होता है—ॐ ह्रीं श्रीं कलीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्ठृप्, देवता अन्नपूर्णेश्वरी देवी, बीज ह्रीं, शक्ति श्रीं एवं कीलक कलीं कहे गये हैं। इसका षड्ङ्ग न्यास हां ह्रीं हूं हैं ह्रीं हूं हैं से करे।

मन्त्रवर्ण न्यास—दक्षिणामूर्ति में कहा गया है कि ब्रह्मरन्ध्र, सीमन्त, भाल, भ्रूमध्य, नासा, मुख, कण्ठ, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, आधार, स्फिक्ष, द्वय, जानुद्वय और पैरों में मन्त्रवर्ण न्यास करना चाहिये। नव द्वारों में पदन्यास करे।

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि मन्त्र के नव पंदों का नव द्वारों में न्यास करे। मूर्धा से गुदा तक और गुदा से मूर्धा तक विधिवत् न्यास करे अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र से लिङ्ग तक नव पदों का न्यास करे। पुनः गुदा से दक्ष नेत्र तक उन्हीं पदों का न्यास

करे। ब्रह्मरन्त्र मुख हृदय मूलाधार में चार पदों का न्यास करे। अन्य का न्यास मूलाधार से ब्रह्मरन्त्र तक गोलक न्यास करे। गोलक न्यास अर्थात् व्यापक न्यास करे। इस प्रकार न्यास सम्पत्र करने के बाद ध्यान करे—

तप्तकाञ्जनसंकाशां बालेन्दुकृतशेखराम्। नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम्॥  
चित्रवस्त्रपरीधानां शफारक्षीं त्रिलोचनाम्। सुवर्णकलशाकारपीनोत्रतघटस्तनीम्॥  
नृत्यन्तमीशमनिशं दृष्टानन्दमयों पराम्। सानन्दमुखलोकाशीं मेखलाढ्यां नितम्बिनीम्॥  
अन्त्रदानरतां नित्यं भूमिश्रीभ्यां नमस्कृताम्।

अथवा इस प्रकार ध्यान करे कि देवी के दाहिने हाथ में दर्वी अर्थात् सुवर्ण की कलछी और बाँये दूध-अन्न से परिपूर्ण दिव्य रत्ननिर्मित पात्र है। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि त्रिकोण के बाहर चतुर्दल पद्म, उसके बाहर अष्टदल कमल, तब षोडशदल कमल, तब चार द्वारों से युक्त तीन भूपुर से यन्त्र बनाये। सिंहासन के चारों तरफ पीठशक्तियों की पूजा करे। सिंहासन के दाँये भाग में पीठनायिका की पूजा करे। पीठ में वामादि की पूजा करे। सम्पोहन तन्त्र में कहा गया है कि जया आदि नव पीठशक्तियों की पूजा पीठमन्त्र हल्लेखा से करे।

तथा (१-३४)—

एवं ध्यात्वा यज्ञेद् देवीं षडङ्गावरणं यजेत्। तारं प्रासादबीजं च हृच्छिवाय ततः परम् ॥१॥  
सप्ताक्षरी महाविद्या अनया देवि पूजयेत्। गोक्षीरधामधवलं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥२॥  
प्रसत्रवदनं शान्तं नीलकण्ठविराजितम्। कर्पर्दिनं स्फुरत्सर्पभूषणं कम्बुसन्निभम् ॥३॥  
नृत्यन्तमीश्वरं देवं त्रिकोणाग्रे सुरेश्वरि । ॐ नमः पदमाभाष्य ततो भगवतेपदम् ॥४॥  
ततो वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतिस्तथा । डेन्तं भूमिपतित्वं च मे देहि च ददापय ॥५॥  
वह्निजायान्वितो मन्त्रो वराहस्य वरानने । अनया विद्यया देवि वामकोणे प्रपूजयेत् ॥६॥  
ॐ नमः पदमाभाष्य डेन्तं नारायणं लिखेत् । नारायणं दक्षकोणे क्रमेण परिपूजयेत् ॥७॥  
वामदक्षिणयोः पूज्ये भूश्रीयौ परमेश्वरि । एकेन मनुना देवि कथयामि तवानघे ॥८॥  
अन्नप्राप्ति पदं चात्रां मे देह्यत्राधिपान्तिके । तथे ममान्नमाभाष्य प्रदापय ततः परम् ॥९॥  
वह्निजायान्वितो मन्त्रः संपुटीकृत्य पूजयेत् । ग्लौमात्मकेन रमया वामदक्षिणयोः क्रमात् ॥१०॥  
ततश्चतुर्दले पूज्याः पश्चिमादिकमेण तु । तारेण परविद्यां च भुवनेशीं तदात्मना ॥११॥  
कमलां रमया भद्रे कामेन सुभगां यजेत् । वसुपत्रे महेशानि ब्राह्मण्यादाः पश्चिमादितः ॥१२॥  
षोडशारे महेशानि चन्द्रमण्डलरूपिणीः । कलाः षोडश संपूज्याः पश्चिमादिकमेण हि ॥१३॥  
अमृता मानदा पुष्टिस्तुष्टिः प्रीती रतिस्तथा । हीश्च श्रीश्च सुधा रात्रिज्योर्त्सा हैमवती तथा ॥१४॥  
छाया च पूर्णिमा नित्या अमावास्या तु षोडशी । शेर्वर्णैः प्रपूज्याश्च अन्नपूर्णान्तशब्दकाः ॥१५॥

चतुरस्ते लोकपालान् क्रमेण परिपूजयेत् । इति।

इस प्रकार ध्यान करके देवी का पूजन करे। तब षडङ्ग आवरण की पूजा करे। 'ॐ हौं नमः शिवाय' इस सप्ताक्षर मन्त्र से देवी की पूजा करे। गोदुराध्य-सदृशा धवल वर्ण, पञ्चमुख, त्रिलोचन, प्रसत्रमुख, शान्त, नीलकण्ठ से सुशोभित देव का कोणाग्र में पूजन करे। वाम कोण में 'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वर्षतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा वराहाय नमः' से वराह की पूजा करे। दक्ष कोण में 'ॐ नमो नारायणाय नारायणाय नमः' से नारायण की पूजा करे। त्रिकोण में देवी के वाम भाग में 'ग्लौं अन्नमहात्रं मे देहि अन्नाधिपतये ममात्रं प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रियै नमः' से पूजा करे। देवी के दक्षिण भाग में 'श्रीं अन्नमहात्रं मे देहि अन्नाधिपतये ममात्रं प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रियै नमः' से पूजा करे। चतुर्दल में देवी के आगे से ॐ परिवद्यायै नमः, हीं भुवनेश्वर्यै नमः, श्रीं कमलायै नमः, कलीं सुभगायै नमः से चार देवियों को पूजा करे।

अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करे। षोडश दल कमल में चन्द्रमण्डलरूपिणी सोलह कलाओं की

पूजा पश्चिमादि के क्रम से करे। इन सोलह कलाओं के नाम इस प्रकार है—अमृता, मानदा, पुष्टि, तुष्टि, प्रीती, रति, हीं, श्रीं, सुधा, रात्रि ज्योत्स्ना, हैमवती, छाया, पूर्णिमा, नित्या, आमावस्या। शेष वर्णों से अन्नपूर्णा की पूजा करे। चतुरस में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करे।

#### अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रप्रयोगः

**अथ प्रथमप्रयोगः**—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासाते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः। गुह्ये हीं बीजाय नमः। पादयोः श्रीं शक्तये नमः। नाभौ कल्तीं कीलकाय नमः। इति विन्यस्य ममात्रसमृद्धये जपे विनियोगः। इति कृताङ्गलिरुक्त्वा, हाँ हृदयाय नमः। हीं शिरसे स्वाहा। हूँ शिखायै वृष्ट्। हैं कवचाय हुं। हौं नेत्रत्रयाय वौषट्। हौं अस्त्राय फट्। इति षड्ङ्गमन्त्रान्मूष्ठादितलानं करयोर्विन्यस्य हृदयादिष्टडङ्गेष्वपि न्यस्य, शिरसि ॐ नमः। सीमन्ते हीं उदरे वं नमः। नाभौ तिं नमः। लिङ्गे मां नमः। आधारे हें नमः। दक्षस्फिजि श्वं नमः। वामे रिं नमः। दक्षोरौ अं नमः। वामोरौ त्रं नमः। दक्षजानुनि पूं नमः। वामे र्णै नमः। दक्षपादे स्वां नमः। वामे हां नमः। इति वर्णन्यासः।

ततो ब्रह्मरन्त्रे ॐ नमः। दक्षनेत्रे हीं०। वामे श्रीं०। दक्षश्रोत्रे कल्ती०। वामे नमो०। दक्षनासारन्त्रे भगवति०। वामे माहेश्वरि०। मुखे अन्नपूर्ण०। लिङ्गे स्वाहा०। इति विन्यस्यैतान्येव पदानि गुदलिङ्गमुखवामदक्ष-नासारन्यवामदक्षिणप्रोत्रवामदक्षनेत्रेषु। इति पदन्यासः।

ततो ब्रह्मरन्त्रे ॐ नमः। मुखे हीं नमः। मूलाधरे कल्तीं नमः। इति विन्यस्य शिष्टं षोडशस्वरन्यासस्थानेषु न्यसेत्। ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यानाद्यात्मपूजाने प्रागुक्तभुवनेश्वरीपीठं समभ्यर्च्य-वाहनादिपूष्योपचाराने प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, त्रिकोणाग्रे 'ओं हीं नमः। शिवाय शिवाय नमः' इति मन्त्रेण नृत्यनं शिवं संपूज्य, वामकोणे 'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वर्पतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा वराहाय नमः' इति वराहं संपूज्य, दक्षकोणे 'ॐ नमो नारायणाय नारायणाय नम' इति संपूज्य, त्रिकोणाभ्यन्तरे देव्या वामभागे 'गलौ अत्रमहात्रं मे देहि अन्नाधिपतये ममात्रं प्रदापय स्वाहा गलौ भूम्यै नमः' इति संपूज्य, दक्षभागे 'श्रीं अन्नमहात्रं मे देहि अन्नाधिपतये ममात्रं प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रिये नमः' इति संपूज्य, चतुर्दलेषु देव्यग्रादितः—ॐ परविद्यायै नमः। हीं भुवनेश्वर्यै नमः। श्रीं कमलायै नमः। कल्तीं सुभगायै नमः। ततोऽष्टदलेषु ब्राह्मण्यादाः संपूज्य, षोडशदलेषु देव्यग्रादि प्रादक्षिणयेन न अमृतायै अन्नपूर्णायै० मां मानदायै अन्नपूर्णायै० भं पुष्ट्रै अन्नपूर्णायै० गं तुष्ट्रै अन्नपूर्णायै० वं प्रीत्यै अन्नपूर्णायै० तिं रत्यै अन्नपूर्णायै० मां हिव्यै अन्नपूर्णायै० हें श्रियै अन्नपूर्णायै० श्वं स्वधायै अन्नपूर्णायै० रि रात्रै अन्नपूर्णायै० अं ज्योत्स्नायै अन्नपूर्णायै० त्रं हैमवत्यै अन्नपूर्णायै० पूं छायायै अन्नपूर्णायै० र्णै पूर्णिमायै अन्नपूर्णायै० स्वां नित्यायै अन्नपूर्णायै० हां अमावास्यायै अन्नपूर्णायै० नमः। तद्विश्वतुरस्ते प्राग्वदिन्द्रादीन् संपूज्यं शेषं समापयेदति।

**प्रातःकृत्यादि** से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः। गुह्ये हीं बीजाय नमः। पादयोः श्रीं शक्तये नमः। नाभौ कल्तीं कीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके अपनी अन्नसमृद्धि के लिये विनियोग बोलकर इस प्रकार षड्ङ्ग न्यास करे—हाँ हृदयाय नमः। हीं शिरसे स्वाहा। हूँ शिखायै वृष्ट्। हैं कवचाय हुं। हौं नेत्रत्रयाय वौषट्। हौं अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करके वर्णन्यास करे—शिरसि ॐ नमः। सीमन्ते हीं उदरे वं नमः। नाभौ तिं नमः। लिङ्गे मां नमः। आधारे हें नमः। दक्षस्फिजि श्वं नमः। वामे रिं नमः। दक्षोरौ अं नमः। वामोरौ त्रं नमः। दक्षजानुनि पूं नमः। वामे र्णै नमः। दक्षपादे स्वां नमः। वामे हां नमः।

तदनन्तर ब्रह्मरन्त्रे ॐ नमः। दक्षनेत्रे हीं नमः। वामे श्रीं नमः। दक्षश्रोत्रे कल्तीं नमः। वामे नमो नमः। दक्षनासारन्त्रे भगवति नमः। वामे माहेश्वरि नमः। मुखे अन्नपूर्ण० नमः। लिङ्गे स्वाहा नमः—इस प्रकार न्यास कर इन्हीं पदों से गुदा, लिङ्ग, मुख, वाम नासा, दक्ष नासा, वाम कर्ण, दक्षिण कर्ण, वाम नेत्र, दक्षिण नेत्र में पदन्यास करे।

तत्पश्चात् ब्रह्मरन्ते ३० नमः। मुखे हीं नमः। हृदये श्रीं नमः। मूलाधरे कलीं नम—इस प्रकार न्यास करके सोलह स्वरों का न्यास करे। तदनन्तर मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके ध्यान-आत्मपूजन-भुवनेश्वरी पीठपूजा करके आवाहन-पृष्ठोपचारादि के उपरान्त पूर्ववत् अंगपूजन कर त्रिकोणाग्र में 'ओं हौं नमः शिवाय शिवाय नमः'—इस मन्त्र से नृत्य करते शिव की पूजा कर वाम कोण में 'ओं हौं नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वर्पतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा वराहाय नमः' इससे वराह की पूजा कर दक्षकोण में 'ओं नमो नारायणाय नारायणाय नम' से पूजन कर त्रिकोण के भीतर देवी के वाम भाग में 'गलो अत्रमहाव्रं मे देहि अत्राधिपतये ममात्रं प्रदापय स्वाहा गलौ भूये नमः' से पूजन कर दक्षिण भाग में 'श्रीं अत्रमहाव्रं मे देहि अत्राधिपतये ममात्रं प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रिये नमः' से पूजन कर चतुर्दल में देवी के आगे से ३० परविद्यायै नमः। हीं भुवनेश्वर्यै नमः। श्रीं कमलायै नमः। कलीं सुभागायै नमः से पूजन करे। तदनन्तर अष्टदल में ब्राह्मी आदि का पूजन कर घोड़श दल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से नं अमृतायै अत्रपूर्णायै नमः, मौं मानदायै अत्रपूर्णायै नमः, भं पुष्ट्यै अत्रपूर्णायै नमः, गं तुष्ट्यै अत्रपूर्णायै नमः, वं प्रीत्यै अत्रपूर्णायै नमः, तिं रत्यै अत्रपूर्णायै नमः, मां हियै अत्रपूर्णायै नमः, हं श्रियै अत्रपूर्णायै नमः, शं स्वधायै अत्रपूर्णायै नमः, रि रात्रै अत्रपूर्णायै नमः, अं ज्योत्स्नायै अत्रपूर्णायै नमः, त्रं हैमवत्यै अत्रपूर्णायै नमः, पूं छायायै अत्रपूर्णायै नमः, र्णं पूर्णिमायै अत्रपूर्णायै नमः, स्वां नित्यायै अत्रपूर्णायै नमः, हां अमावास्यायै अत्रपूर्णायै नमः से पूजन करे। तदनन्तर उसके बाहर चतुरस्र में पूर्ववत् इन्द्रादि की पूजा कर पूजा का समापन करे।

**दक्षिणामूर्तिः (१६.१७)**—

लक्षं जपेत् सनियमो दशांशेन तु होमयेत्। रथ्यपायससर्पिभ्या सिद्धिदा भवति ध्रुवम् ॥१॥ इति।  
सारसंग्रहे—

तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः। अत्रपूर्णेश्वरी देवी पूजितान्नसुवर्णदा ॥१॥  
अनया विद्यया जातः कुबेरो धननायकः। अत्रपूर्णेश्वरी नाम सर्वसम्पत्समृद्धिदा ॥२॥ इति।

तथा—

बीजहीनेयमेव स्यात् घोडशार्णा तथा परे। मायाद्या साथ ताराद्या मता सप्तदशाक्षरा ॥१॥  
मायातारादिका चात्या गदिताष्टादशार्णका। मुन्याद्याः पूर्वमुदिता माययाङ्गक्रिया मता ॥२॥

अर्चनाङ्गेन्द्रवज्राद्यैः साधयेत् पूर्ववच्च ताः।

भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतोत्थात् सुतदुहितृकलत्रोपद्रवेणानुयातम्।

विलसद्मृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तं सकलभुवनमातस्याहि मामोनमस्ते ॥३॥

माहेश्वरीमाश्रितकल्पल्लीमहं भवोच्छेदकरीं भवानीम्।

क्षुधातर्जायातनयाद्युपेतस्त्वामन्नपूर्णे शरणं प्रपद्ये ॥४॥

दारिद्र्यदावालनदहमानं पाहात्रपूर्णे गिरिराजकये।

कृपाम्बुद्धौ मज्जय मां त्वदीये त्वत्यादपद्मार्पितचित्तवृत्तिम् ॥५॥

इत्यन्नपूर्णास्तुतिरलमेतच्छ्लोकत्रयं यः पठतीह भक्त्या।

तस्मै ददात्यन्नसमृद्धिमखा श्रियं च विद्यां च यशश्च भुक्तिम् ॥६॥

दक्षिणामूर्ति में कहा गया है कि नियम से रहकर एक लाख जप करे। दशांश हवन पायस और गोष्ठृत से करे। ऐसा करने से निश्चित सिद्धि प्राप्त होती है। सारसंग्रह के अनुसार इसके बाद पूर्वोक्त विधि से तर्पण करे। इस प्रकार की पूजा से अत्रपूर्णेश्वरी देवी अत्र और सोना देती है। इस विद्या से साधक कुबेर जैसा धननायक होता है। अत्रपूर्णेश्वरी का नाम ही समस्त सम्पत्तियों और समृद्धियों को देने वाला है।

अत्रपूर्णा के अन्य मन्त्र—१. घोडशाक्षर—नमः भगवति माहेश्वरि अत्रपूर्णे स्वाहा। २. सप्तदशाक्षर—हीं भगवति माहेश्वरि अत्रपूर्णे स्वाहा। ३. सप्तदशाक्षर—३० भगवति माहेश्वरि अत्रपूर्णे स्वाहा। ४. अष्टदशाक्षर—हीं ३० भगवति माहेश्वरि अत्रपूर्णे स्वाहा। इन मन्त्रों के ऋष्यादि पूर्ववत् ही है। हीं हीं हूँ हैं हैं हैः से षड़ङ्ग न्यास किया जाता है। अर्चन में इन्द्रादि दिक्षाल और उनके बज्र आदि आयुधों का अर्चन पूर्ववत् करना चाहिये। तदनन्तर इस प्रकार स्तुति करे—

भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतोत्थात् सुतदुहितकलत्रोपद्रवेणानुयातम्।

विलसदगृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचितं सकलभुवनमातस्याहि मामोनमस्ते॥

माहेश्वरीमाश्रितकल्पवल्लीमहं भवोच्छेदकरी भवानीम्। क्षुधातर्जायातनयाद्युपेतस्त्वामन्त्रपूर्णे शरणं प्रपद्ये॥

दारिद्र्यदावालनदह्यमानं पाह्यन्तपूर्णे गिरिराजकन्ये। कृपाम्बुधौ मज्जय मां त्वदीये त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिम्॥

तीन श्लोकों वाले इस अत्रपूर्णा स्तोत्र का पाठ जो भक्तिसहित करता है, उसे माता अन्न-समृद्धि-धन-विद्या-यश और भोग प्रदान करती है।

### अन्नप्रदामन्त्रविद्यानम्

अन्नप्रदामन्त्रस्य पूर्वोक्तस्योच्यते विधिः । कृषिर्ब्रह्मा समाख्यातश्छन्दश्चातिकृतिर्मतम् ॥७॥

देवते भूश्रियौ प्रोक्ते धनधान्यप्रदे शुभे । वेदेषुषणमुनिद्वन्द्वमितैर्मन्त्राणकिः पृथक् ॥८॥

पञ्चाङ्गानि मनोः कुर्याज्ञातियुक्तानि मन्त्रवित् ।

क्षीराब्दौ रजतोच्चवप्रकनकद्वीपे सुरादे शुभे कल्पद्रुव्रजशोभिते मणिमये सद्वित्तपस्याग्रतः ।

आसीने वसुधाश्रियौ धनसमूहान् संसृजन्त्यौ मुहुर्भक्त्या प्रविचिन्तयेद्विनमुखे धान्यान्नसंपत्तये ॥९॥

आवाहू वैष्णवे पीठे देवीं गन्धादिभिर्यजेत् । पुराङ्गानि यजेद्वाहे दिक्षु भूतानि संयजेत् ॥१०॥

आद्यानि चत्वारि पुनर्विदिक्षु पूजयेदिमाः । निवृत्यादाश्रतवस्तु बलाक्याद्यास्ततः परम् ॥११॥

इन्द्रादयस्तदत्माणि चैवं पूजा समीरिता । इति।

अन्नप्रदा मन्त्र की पूर्वोक्त विधि को कहता हूँ। इसके क्रृषि ब्रह्म, छन्द अतिकृति एवं देवता धन-धान्य प्रदान करने वाली भूमि और लक्ष्मी है। मन्त्र के ४, ५, ६, ७, २ अक्षरों से पञ्चाङ्ग न्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

क्षीराब्दौ रजतोच्चवप्रकनकद्वीपे सुरादे शुभे कल्पद्रुव्रजशोभिते मणिमये सद्वित्तपस्याग्रतः ।

आसीने वसुधाश्रियौ धनसमूहान् संसृजन्त्यौ मुहुर्भक्त्या प्रविचिन्तयेद्विनमुखे धान्यान्नसंपत्तये ॥१॥

वैष्णव पीठ पर देवी का आवाहन करके देवी की पूजा गन्धादि से करे। तब अंगपूजा करे। दिशाओं में भूतों की पूजा करे। पहले पूर्वादि चार दिशाओं में पूजा करे, तब विदिशाओं में पूजा करे। अष्टदल के पूर्वादि दिशाओं में ३० आकाशाय नमः, ३० वायवे नमः, ३० अग्नये नमः, ३० जलाय नमः से पूजन करके विदिशाओं में ३० निवृत्त्यै नमः, प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः से पूजन करे। द्वितीय अष्टदल में बलाका आदि की पूजा करे। भूपुर में पूर्ववत् इन्द्रादि दिव्यालों की पूजा करके पूजा का समापन करे।

### अन्नप्रदाप्रयोगविधिः

**अथ द्वितीयप्रयोगः**—तत्र प्रातः कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे अतिकृतिच्छन्दसे नमः। हृदये भूश्रीश्यां देवताभ्यां नम इति विन्यस्य मम धनधान्यसमृद्धये विनियोगः। इति कृताङ्गलिरुक्त्वा, मूलमन्त्रेणाभिमृष्ययोः पाण्योः अन्नमहि अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। अन्नं मे देहि तर्जनीभ्यां नमः। अन्नाधिपतये मध्यमाभ्यां नमः। ममान्नं प्रदापय अनामिकाभ्यां नमः। स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां नमः। इति विन्यस्य हृदयादिव्यपि नेत्रहीनेषु पञ्चाङ्गेषु न्यसेत्। अत्रमहि हृदयाय नमः। अन्नं मे देहि शिरसे स्वाहा। अन्नाधिपतये शिखायै वषट्। ममान्नं प्रदापय कवचाय हुं। स्वाहा अस्त्राय फट्, ततो ध्यानादिमानसपूजान्ते चतुद्वारायुक्त्युत्तरस्त्रयवेष्टिमष्टदलकमलद्वयं पूजाचक्रं कृत्वा, प्राग्वत् संस्थाप्य संपूज्य तत्र वक्ष्यमाणवैष्णवपीठं संपूज्य, तत्र भूश्रियौ समावाह्यासनादिपुष्योपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, प्रथमाष्टदलस्य दिग्दलेषु ३० आकाशाय नमः। ३० वायवे नमः। ३० अग्नये नमः। ३० जलाय नमः, इति संपूज्य, विदिशालेषु ३० निवृत्त्यै नमः। प्रतिष्ठायै नमः। विद्यायै नमः। शान्त्यै नमः। इति संपूज्य, द्वितीयाष्टदलव्येकाक्षरलक्ष्मीप्रकरणोक्तबलाक्याद्यष्टशक्तीः संपूज्य प्राग्वदिन्द्रादिपूजामारभ्य शेषं समापयेदिति। तथा—

नियुतं प्रजपेमन्त्रं तद्वाणांशं च मन्त्रवित् । जुहुयादाज्यसंपृक्तेनात्रेन च यथाक्रमम् ॥१॥  
 तर्पणादि ततः कृत्वा विप्रान् संभोज्य यत्नः । गुरुं सन्तोष्य यत्नेन मन्त्रसिद्धिमवानुयात् ॥२॥  
 दिनादौ प्रजपेमन्त्रमष्टोत्रशतं सुधीः । क्षेत्रधान्यान्नान्नरत्नौघसमृद्धौ भवति ध्रुवम् ॥३॥ इति।

तदनन्तर प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करने के पश्चात् मूल विद्या से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखे अतिकृतिच्छन्दसे नमः । हृदये भूश्रीभ्यां देवताभ्यां नमः—इस प्रकार न्यास करके धन-धन्य की समृद्धि हेतु विनियोग करके मूल मन्त्र से हाथों को थोकर अन्नमहि अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । अत्रं मे देहि तर्जनीभ्यां नमः । अन्नाधिपतये मध्यमाभ्यां नमः । ममात्रं प्रदापय अनामिकाभ्यां नमः । स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां नमः—इस प्रकार करन्यास कर पञ्चाङ्ग मन्त्रों से हृदयादि न्यास करे—अन्नमहि हृदयाय नमः । अत्रं मे देहि शिरसे स्वाहा। अन्नाधिपतये शिखायै वषट् । ममात्रं प्रदापय कवचाय हुं । स्वाहा अस्त्राय फट्—तदनन्तर ध्यान के बाद मानस पूजन कर चार द्वारायुक्त, तीन चतुरस्र से वेष्टित दं अष्टदल कमल वाला पूजाचक्र बनाकर स्थापन-पूजन करके वहीं पर वैष्णव पीठ की पूजा कर, भू एवं श्री का आवाहन कर पुष्पोपचार पूजन कर, अंगपूजन कर प्रथम अष्टदल की दिशाओं में ॐ आकाशाय नमः । ॐ वायवे नमः । ॐ अग्नये नमः । ॐ जलाय नमः से पूजन कर विदिशाओं में ॐ निवृत्यै नमः । प्रतिष्ठायै नमः । विद्यायै नमः । शान्त्यै नमः से पूजन कर द्वितीय अष्टदल में बलाकादि अष्टशक्तियों का पूजन कर पूर्ववत् इन्द्रादि लोकपालों की पूजा कर शेष पूजा का समापन करे।

एक लाख मन्त्र जप करे। उसका दशांश हवन आज्यमिश्रित अन्न से करे। इसके बाद तर्पण करे। ब्राह्मणभोजन कराये, गुरु को यत्न से सन्तुष्ट करे तो मन्त्रसिद्धि मिलती है। प्रतिदिन सबेरे एक सौ आठ बार मन्त्र जप करे तो खेती की जमीन, धन्य, अन्न, रत्नसमूह, समृद्धि की प्राप्ति होती है।

#### अश्वारूढामन्त्रः

अथाश्वारूढामन्त्राः । सारसंग्रहे—  
 योनिर्वियत् सनेत्रं च परमेष्टमुच्चरेत् । अस्थिं मेदयुक्ता च रक्तस्यं दृक् द्विठावपि ॥१॥  
 प्रणवाद्यो दशाणोऽयमश्वारूढामनुर्मतः ।

योनिरेकारः, वियद्धकारः सनेत्रं इकारायुक्तं तेन हि, परमे स्वरूपं, अस्थि शकारः मेदो वकारः तेन श्व, रक्तं रेफः, दुक् इकारः तेन रि, द्विठः स्वाहाकारः । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा विराट् छन्दो देवता परिकीर्तिता ॥२॥

अश्वारूढा त्रिभिः पादै प्रणवादैर्द्विरीरितैः । षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत् ॥३॥

अश्वारूढां नवशशियुतां भालनेत्रां च दोषाणा पाशाबद्धं मदनविवशं साध्यमाश्वानयन्तीम् ।

दक्षेणोद्यत्कनकरचितां वेत्रयष्टीं दधानां बन्धुकाभां मनसि कलये पीनवक्षोजनग्राम् ॥४॥ इति।

तन्त्राराजे तु (३४.३१)—

लोहितां लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम् । चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ॥१॥

भल्लां दक्षेण वामेन चर्मयष्टिं समुज्ज्वलाम् । अन्याभ्यां हेमपाशेन कण्ठे बद्ध्वा स्वसाध्यकम् ॥२॥

हेमवेत्राहतं बद्धकरयुग्मकृताञ्जलिम् । दासोऽहमिति भाषनं पातितं निजपादयोः ॥३॥

.....स्मरन् ।

इति चतुर्भुजध्यानमुक्तम्।

शाक्ते पीठे यजेद् देवीं पुराङ्गानि प्रपूजयेत् । मातृरिन्द्रादिकान् बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः ॥१॥

पूजेयमश्वारूढायाः प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा । इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखे विराजे छन्दसे नमः । हृदये अश्वारूढायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य वश्यार्थं विनियोगः। इति

कृताङ्गलिलुक्त्वा, एहि हृदयाय नमः। परमेश्वरि शिरसे स्वाहा। स्वाहा शिखायै वषट्। एहि कवचाय हुं। परमेश्वरि नेत्रन्त्रयाय वौषट्। स्वाहा अश्वाय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गनि संपूज्य, (अष्टदलेषु प्राग्वद् ब्राह्मण्यादाः संपूज्य) चतुरसे लोकपालान् संपूज्य धूपादिशेषं प्राग्वत् समापयेत्।

अश्वारूढा मन्त्र—सारसंग्रह में पठित श्लोक का उद्धार करने पर अश्वारूढ़ा का दशाक्षर मन्त्र होता है—ॐ एहि परमेश्वरि स्वाहा। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द विराट्, देवता अश्वारूढ़ा हैं। मन्त्र के तीन पदों के पहले ॐ लगाकर दो आवृति से षडङ्ग न्यास करने के पश्चात् इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

अश्वारूढां नवशशियुतां भालनेत्रां च दोष्णा पाशाबद्धं मदनविवशं साध्यमाथानयन्तीम्।

दक्षेणोद्यत्कनकरचितां वेत्रयष्टीं दधानां बन्धुकार्भां मनसि कलये पीनवक्षोजनप्राम्॥

तन्वराज के अनुसार चतुर्भुजा का ध्यान करना चाहिये, जो इस प्रकार है—

लोहितां लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रसत्रवदनाम्बुजाम्॥

भल्लां दक्षेण वामेन चर्मयिष्टं समुज्ज्वलाम्। अन्याख्यां हैमाशेन कण्ठे बद्ध्वा स्वसाध्यकम्॥

हैमवेत्राहतं बद्धकरयुग्मकृताङ्गलिम्। दासोऽहमिति भाषन्तं पतितं निजपादयोः॥

तदनन्तर प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे विराजे छन्दसे नमः। हृदये अश्वारूढायै देवतायै नमः। न्यास के पश्चात् वशय कर्म के लिये विनियोग करके हृदयादि षडङ्ग न्यास इस प्रकार करे—एहि हृदयाय नमः। परमेश्वरि शिरसे स्वाहा। स्वाहा शिखायै वषट्। एहि कवचाय हुं। परमेश्वरि नेत्रन्त्रयाय वौषट्। स्वाहा अश्वाय फट्। तदनन्तर करन्यास करके ध्यान के पश्चात् पुष्पोपचार-पूजन कर पूर्ववत् अंगूजन कर अष्टदल में ब्रह्मी आदि का पूजन कर चतुरस में लोकपालादि का पूजन कर धूप-दीपादि प्रदान कर पूजा का समापन करे।

तथा—

जपेदयुतसंख्याकं तदशांशं हुनेदध्यतैः। तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः॥१॥

इत्यं ध्यात्वैव सकलं विश्वं वशयतेऽचिरात्। आज्ञान्नं जुहुयान्मन्त्री लभते वाञ्छितं फलम्॥२॥

त्रिमध्वक्तैस्तथा लोणौहृतैर्वश्या नृपाः किल। प्रोक्तेनैव विधानेन वश्या: स्युर्वनिता अपि॥३॥

अनया विद्या सर्पिर्हेमः काञ्छनदो मतः। त्रिस्वादुभिः सहस्रं च हुनेत् स्त्रीवश्यसिद्धये॥४॥

पूर्वोक्तेनैव होमेन नारीमार्कर्येद् धूवम्। प्रणवाद्यथ मायादिरयमेकादशार्णकः॥५॥

षड्दीर्घमायथैवास्य षडङ्गविधिरीरितः। इति।

दश हजार जप करे। उसका दशांश हृवन धी से करे। पूर्वोक्त विधि से तर्पणादि करे। इस प्रकार के ध्यान करने से अल्प काल में ही साधक सारे संसार को वश में कर लेता है। गोधृत-मिश्रित अन्त्र के हृवन से वाञ्छित फल मिलता है। त्रिमधुराक्त नमक के हृवन से राजा वश में होते हैं। इस विधान से वनिता भी वश में होती है। इस विद्या से गाय के धी से हृवन करने से सोना मिलता है। मधुरत्रय से हृवन करने पर स्त्रियाँ वश में होती हैं। पूर्वोक्त के समान हृवन से नारी का आकर्षण होता है। उपर्युक्त मन्त्र में ॐ के बाद हीं लगाने से यह ग्यारह अक्षरों का हो जाता है। हाँ हीं इत्यादि से षडङ्ग न्यास करना चाहिये।

तथा—

प्रणवं पाशहल्लेखे हृङ्गशाद्योऽयमीरितः। त्रयोदशार्णको द्वाभ्यामेकेनैकेन युग्मतः॥६॥

पञ्चभिश्च तथा द्वाभ्यां षडङ्गविधिरीरितः।

पाशः आं, हल्लेखा हीं, अङ्गुशः क्रों, अयं दशार्णः।

पुरश्चरणमस्याणोः पञ्चलक्ष्मं प्रकीर्तितम्। पूजादिकं स्यादनयोः पूर्वमन्त्रानुसारतः॥७॥

अन्य मन्त्र—प्रणव ३०, पाश आं, हल्लेखा हीं। तेरह अक्षर का यह मन्त्र होता है—३० आं हीं क्रों एहि परमेश्वरि स्वाहा। मन्त्र के २, १, १, २, ५, २ अक्षरों अर्थात् ३०, आं, हीं, क्रों, एहि, परमेश्वरि, स्वाहा से षड़ज करना चाहिये। इसके पाँच लाख जप से पुरश्वरण पूर्ण होता है। पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही इसके पूजादि होते हैं।

अश्वारूद्धायन्त्रविधिः

कोष्ठानां द्वादशकं कृत्वा मध्यस्थवेदमिते कोष्ठे । ग्रन्थं साध्यसमेतं शिष्टेषु द्वादशाथ मन्त्राणांन् ॥८॥  
अशेषनारीनरपनवश्यप्रदं मतम् । अश्वारूद्धायन्त्रमेतत् पूजितं सर्वकामदम् ॥९॥

केरलीये यन्त्रसारे—

मध्ये शक्तिं ससाध्यां ज्वलनपुरयुगाक्षिष्वथो पाशशक्तिं  
क्रोंभैक्लींसौः क्रमेण प्रविलिखतु बहिर्मन्त्रवर्णान् दलेषु ।  
एकैकं भानुसंख्येष्वपि मदनशरैर्नित्यया मातृकार्णी-  
श्वावीतं यन्त्रमेतद्वरणिपुरगतं श्रीकरं वश्यकारि ॥

अस्यार्थः—षट्कोणमध्ये ससाध्यं शक्तिकीजं विलिख्य (तत्कोणेषु आंहींक्रोंऐक्लींसौः इत्येकमेकं बीजं विलिख्य बहिर्द्वादशदलेषु शक्तिरहितद्वादशाक्षराणि एकैकं क्रमेण विलिख्य) बहिर्वृत्तचतुष्टयं कृत्वा प्रथमवीथ्यां पूर्वोक्तैर्बाणबीजैद्वितीयवीथ्यां वक्ष्यमाणनित्यक्लिन्नानित्याविद्यया तृतीयवीथ्यां मातृकार्णीश्च निरन्तरं संवेष्य तद्विश्वतुरसं कुयदितदुक्तफलदं भवति। तथा—

प्रणवो भुवनाधीशा नमो भगपदं वति । माहेश्वर्येहि परमेश्वरि स्वाहान्तिको मनुः ॥  
एकविंशार्णकः प्रोक्तः पूजायं चास्य पूर्ववत् ।

भुवनाधीशा हीं, अन्यत्सुगमम्। अत्र माहेश्वर्येहिपदयोर्न सन्धिरेकविंशाक्षर इत्युक्तेः।

पूजा यन्त्र—बारह कोष्ठ बनावे। बीच के चार कोष्ठों में प्रणव के साथ साध्य का नाम लिखे। शेष कोष्ठों में मन्त्र के बारह वर्णों को लिखे। इससे सभी नर-नारी वश में होते हैं। अश्वारूद्धा के इस यन्त्र की पूजा से सभी कामनायें पूरी होती हैं।

केरलीय यन्त्रसार के अनुसार पहले षट्कोण बनावे। बीच में हीं के साथ साध्य नाम लिखे। षट्कोण के छः कोणों में आं हीं क्रों ऐं क्लीं सौः एक-एक को लिखे। इसके बाहर द्वादश दल कमल बनावे। दलों में मन्त्राक्षरों में हीं को छोड़कर शेष बारह अक्षरों को लिखे। इसके बाहर चार वृत्त बनावे। प्रथम वीथि में पूर्वोक्त पाँच बाणबीजों को लिखे। द्वितीय वीथि में नित्यक्लिन्नाविद्या को लिखे। तृतीय वीथि में मातृका वर्णों को लिखे। इसके बाहर चतुरस्त बनावे। इस यन्त्र से भूमि एवं धन मिलता है तथा वशीकरण होता है।

अन्य मन्त्र है—३० हीं नमो भगवति माहेश्वरि एहि परमेश्वरि स्वाहा। यह मन्त्र इककीस अक्षरों का है। इसकी पूजा आदि पूर्ववत् होते हैं।

गौरीमन्त्रोद्धारः

अथ गौरीमन्त्राः। सारसंग्रहे—

मायां वदेहौरि रुद्रदयिते योपदं वदेत् । गेश्वर्यन्ते च वर्माक्षद्विठान्तः षट्डशाक्षरः ॥१॥

माया हीं, वर्म हुं, अस्त्रं फट् द्विठः स्वाहा।

अजोऽस्य ऋषिराघ्यातोऽनुष्टुप् छन्दश्च देवता । गौरी सौभाग्यसद्वश्यसर्वसंपत्रदायिका ॥२॥

षट्दीर्घमायया कुर्यात् षड़जानि मनोरथं । हेमाभां बिभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाङ्गनसाधने ॥३॥

पाशाङ्गुशौ सर्वभूषां तां गौरीं सर्वदा स्परेत् ।

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थ्योरन्ये, इत्यायुधध्यानम्।

शाक्ते पीठे यजेद्वौरौ चन्दनाद्यैर्मनोहरैः ॥४॥

अङ्गानि पूर्वमध्यचर्य सुभगाद्यास्ततो यजेत् । सुभगा ललिता चान्या कामिनी काममालिनी ॥५॥  
पाशाङ्कुशौ दर्पणोऽञ्जनशलाकाष्ठमी मता । शक्रादयस्तदख्याणि गौरीपूजा समीरिता ॥६॥ इति।

प्रपञ्चसारे तु—

धर्मादिकल्पिते पीठे पीठशक्तीरिमा यजेत् । प्रभा ज्ञाना च वाग्वागीश्वरी स्याज्ज्वालिनी परा ॥१॥  
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च गुह्याशक्तिश्च ता नव । हस्वत्रयक्लीवर्ज्यस्वराढ्यभृगुणान्विता ॥२॥  
हस्वत्रयं अङ्ग, क्लीवाः ऋष्ट्रूलूलू, भृगुः सकारः।

गौरंगौरीमूर्तये हृच्च पीठमन्तश्च कल्पिते । एवं पीठे यजेद्वैर्वै चन्दनाद्यैर्मनोहरैः ॥३॥  
सुभगायै च विद्यान्ते हेअन्ते काममालि च । न्यै स्याद्वीमहि तत्रो च गौरी स्यात् प्रचोदयात् ॥४॥  
गायत्र्या त्वनया सर्वानुपचारान् प्रकल्पयेत् । अङ्गानि पूर्वमध्यचर्य सुभगाद्यास्ततो यजेत् ॥५॥  
भृगुः साम्बुः सद्वितुर्यषष्ठकेन्दुस्वरादिकाः । सुभगा ललिता चान्या कामिनी काममालिनी ॥६॥

दिक्षवन्यत्र स्वायुधानि लोकपालैस्तदायुधैः ।

भृगुः सकारः, अम्बु वकारः, द्वि आ, तुर्य ई, षष्ठ ऊ, अर्क ऐ, तेन स्वांस्वीस्वूंस्वैः । आयुधानि दर्पणा-  
ञ्जनसाधनपाशाङ्कुशाः ।

गौरी मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार गौरी का षोडशाक्षर मन्त्र होता है—हीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा। इसके ऋषि अज हैं, छन्द अनुष्टुप् है और देवता गौरी हैं, जो सौभाग्य, सदृश्य और सर्व सम्पत् देने वाली हैं। हाँ ही हुं हैं हाँ है: से षडङ्ग न्यास किया जाता है। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

हेमाभां बिभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाङ्जनसाधने । पाशाङ्कुशौ सर्वभूषां तं गौरीं सर्वदा स्मरेत् ॥

शाक्त पीठ में गौरी का पूजन चन्दनादि से करे। पहले षडङ्ग पूजा करे तब सुभगा आदि की पूजा करे। इनकी शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं—सुभगा, ललिता, कामिनी, काममालिनी। इनके आयुध—पाश, अंकुश, दर्पण, अंजन, शलाका का पूजन अष्टदल में करे। भूपुर में इन्द्रादि दिव्यपालों और उनके आयुधों की पूजा करे।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि कल्पित पीठ पर धर्मादि के साथ इन पीठशक्तियों की पूजा करे—प्रभा, ज्ञाना, वाक्, वागीश्वरी, ज्वालिनी, परा, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री। ये गुह्य नव शक्तियाँ हैं। इन शक्तियों के नाम के पहले अ इ उ ऐ ओ औ अं अः स लागाकर पूजा करे।

गौरीगौरीमूर्तये नमः—इस पीठमन्त्र से कल्पित पीठ में देवी की पूजा चन्दनादि से करे। ‘सुभगायै विद्यावै काममालिन्यै धीमहि तत्रो गौरी प्रचोदयात्’—इस गौरी गायत्री से सभी उपचारों को कल्पित करे। पहले षडङ्ग पूजा करे, तब सुभगा आदि की पूजा करे। सुभगा ललिता कामिनी काममालिनी के पहले क्रमशः स्वां स्वीं स्वूं स्वैं बीज लगावे। अन्यत्र दिशाओं में आयुधों की पूजा करे। आयुधों में पाश, अंकुश, दर्पण, अंजन की पूजा करे। भूपुर में लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे।

गौरीमन्त्रप्रयोगः

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अजऋणये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीगौर्यै देवतायै नमः। इति विन्यस्य ममाभीष्ठार्थसिद्धये विनियोगः, इति कृताङ्कुशिरुक्त्वा हांहीमित्यादिना करषदङ्गन्यासं विधाय, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डुकादिपरतत्त्वात् पीठमध्य-च्छाइदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन सां प्रभावै नमः, सीं ज्ञानायै०, सूं वाचे०, सें वागीश्वर्यै०, सैं ज्वालिन्यै०, सों वामायै०, सों ज्येष्ठायै०, सं रोद्रूप्यै०, सः गुह्यशक्त्यै नमः। इति संपूज्य, गौरीगौरीमूर्तये नमः इति समस्तं पीठं संपूज्यावाहनादिमुद्रादर्शनान्ते ‘सुभगायै विद्यहे काममालिन्यै धीमहि तत्रो गौरी प्रचोदयात्’ इति गायत्र्या आसना-

दिसर्वानुपचारान् दद्यात्। ततः पुष्पोपचाराने पूर्ववदङ्गनि संपूज्याष्टलेषु दिग्दलेषु ॐ स्वां सुभगायै० ॐ स्वीं ललितायै० ॐ स्वूं कामिन्यै० ॐ स्वैं काममालिन्यै० विदिक्षु पाशाय० अङ्गुशाय० दर्पणाय० अङ्गनशलाकायै० इति तदग्रादिप्रादक्षिण्येन संपूज्य तद्विश्वतुरसे लोकपालांस्तदस्त्राणि च संपूज्य धूपादि शोषं प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

एकलक्ष्मं जपेन्मनं तद्वशांशं हुनेदध्यृतैः॑ । तर्पणादि ततः कुर्याद् गुरुं सन्नोष्य यत्ततः ॥१॥

सिद्धे मन्त्रे प्रकुर्वीत मन्त्री काम्यानि नान्यथा । वामाक्षीणां च निशया वामोरौ विलिखेन्निशि ॥२॥

आच्छादयन् वामदोष्णा तन्मनाः प्रजपेन्मनुम् । शतं सहस्रं लोलाक्षीमानयेत्काममोहिताम् ॥३॥

एतन्मन्त्रेण संजप्तं गन्धपुष्पफलादिकम् । दत्तं संसेवितं सर्वजनतावश्यकारकम् ॥४॥

तदनन्तरं प्रातः कृत्य से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे— शिरसि अजऋष्ये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीगौर्यै देवतायै नमः। इस प्रकार न्यास करके अपनी आभीरुसिद्धि के लिये विनियोग कर हाँ, हीं आदि से करन्यास एवं षडङ्ग न्यास करके ध्यान, आत्मपूजा कर मण्डूक से परतत्त्व तक पीठ पूजा करके अष्टदल के केसरों में अपने अंगों से प्रदक्षिण क्रम से सां प्रभायै नमः, सीं ज्ञानायै नमः, सूं वाचे नमः, से वागीश्वर्यै नमः, सैं ज्वालिन्यै नमः, सों वामायै नमः, सौं ज्येष्ठायै नमः, सं रौद्रघै नमः, सः गुह्याशक्त्यै नमः से पूजन कर गौं गौरीमूर्तये नमः से समस्त पीठ की पूजा करके आवाहानादि मुद्रा दिखाकर 'सुभगायै विवहे काममालिन्यै धीमहि तत्रो गौरी प्रचोदयात्' इस गायत्री से आसनादि प्रदान कर पुष्पोपचार-पूजन के बाद पूर्ववत् अंगाजून कर अष्टदल में ॐ स्वां सुभगायै नमः, ॐ स्वीं ललितायै नमः, ॐ स्वूं कामिन्यै नमः, ॐ स्वैं काममालिन्यै नमः से पूजन करके कोणों में पाशाय नमः, अङ्गुशाय नमः, दर्पणाय नमः, अङ्गनशलाकायै नमः, से पूजन करो। उसके आगे प्रदक्षिण क्रम से पूजन कर चतुरस्र में लोकपालों का आयुध-सहित पूजन कर धूपादि प्रदान कर पूजा का समाप्तन करो।

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। उसका दशांश हवन धी से करे। तब तर्पण आदि करे। गुरु को सन्तुष्ट करे। साधक सिद्ध मन्त्र से काम्य प्रयोग करे; अन्यथा न करे। रात में वामाक्षी के रज से वाम ऊरु में मन्त्र को लिखे। वामहस्त से उसे ढक दे। साध्या का चिन्तन करते हुए मन्त्रजप एक सौ या एक हजार करे तो साध्या चंचल दृष्टि वाली काममोहित होकर आ जाती है। इस मन्त्र को जप कर गन्ध, पुष्प, फल आदि जिसे दिया जायेगा, वह उसका सेवन करके साधक के वश में हो जाता है।

#### वशीकरणमनोद्धारः:

तथा—  
अथान्यं संप्रवक्ष्यामि समस्तस्त्रीवशंकरम् । कांक्षितस्त्रीवशंशब्दं करिसुदु पृथग् द्वयम् ॥  
घेद्वयं वाद्वयं स्त्रीस्त्राहेति मन्त्रोऽयमीरितः । एकोनविंशत्यर्णाङ्ग्यो मन्त्रः स्त्रीवश्यदः परः ॥  
अस्य पूजादिकं सर्वं मन्त्री पूर्ववदाचरेत् । अस्याद्यवर्णतस्त्ववाक् साध्यनाम प्रयोजयेत् ॥  
जपेन्मनं शतं वापि स वश्यो भवति ध्रुवम् । इति।

सभी स्त्रियों को वश में करने वाला मन्त्र है—कांक्षितस्त्रीवशंकरि सुदु सुदु घेषे वा वा स्त्रीं स्वाहा। इस मन्त्र में उत्तीर्ण अक्षर है। यह स्त्री-वशयकर श्रेष्ठ मन्त्र है। साधक इसकी पूजा आदि पूर्ववत् करे। कांक्षित शब्द के बाद साध्य नाम जोड़कर एक सौ जप करने से साध्या अवश्य वश में होती है।

#### पद्मावतीमन्त्रः

अथ पद्मावतीमन्त्राः सारसंग्रहे—

माया सलोहिता द्वावति स्वाहा सप्तवर्णकः । पद्मावत्या मनुः प्रोक्तः सर्ववश्यप्रदायकः ॥१॥

माया भुवनेश्वरीबीजं, लोहितः प, द्वावति स्वरूपम्, स्वाहा स्वरूपम्। तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्री छन्द उच्यते। पद्मावती देवतास्य ह्रीबीजं शक्तिरस्य तु ॥२॥

स्वाहा स्यान्माययाङ्गानि षड्दीर्घस्वरभिन्नया । कृत्वा देवीं ततो ध्यायेत्साधकः स्थिरमानसः ॥३॥

रक्तोत्पलकरद्वन्द्वामब्जस्थां कमलाननाम् । बन्धुकाभां त्रिनयनां नानाकल्पोज्ज्वलां स्मरेत् ॥४॥  
शक्तिपीठे यजेद् देवीं पुराङ्गानि च मातरः । लोकपालांस्तदस्त्राणि पद्मावत्यर्चना मता ॥५॥

प्रयोगः सुगमः । तथा—

पुरश्चरणमस्यैकं लक्षं प्रोक्तं च मन्त्रिभिः । तद् दशांशेन च धृतैर्जुहुयामन्त्रवित्तमः ॥६॥  
एनं मनुं यो भजते सुभगः सर्वयोगिताम् ।

पद्मावती मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार पद्मावती का सप्ताक्षर मन्त्र है—हों पद्मावति स्वाहा। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता पद्मावती, हीं बीज एवं शक्ति स्वाहा हैं। हाँ हीं हूँ हैं हाँ हः से षडङ्ग न्यास करे। तब स्थिर मन से देवी का ध्यान इस प्रकार करे—

रक्तोत्पलकरद्वन्द्वामब्जस्थां कमलाननाम् । बन्धुकाभां त्रिनयनां नानाकल्पोज्ज्वलां स्मरेत् ॥

शक्तिपीठ में देवी की पूजा करे। पहले षडङ्ग पूजा करे। तब मातृकाओं, लोकपालों, आयुधों की पूजा करके पद्मावती की पूजा करे।

मन्त्रज्ञों के द्वारा इसका पुरश्चरण एक लाख जप से कहा गया है। उसका दशांश हवन धी से करे। इस प्रकार मन्त्र को जो भजते हैं, उनके वरा में सभी सुन्दरियाँ होती हैं।

पद्मावतीयन्त्रोद्धारः

षट्कोणान्तर्लिखेच्छक्तिं षट्कोणेषु च संलिखेत् ॥७॥

मन्त्रार्णश्च ततो बाह्ये लिपिवीतमिदं मतम् । रम्य पद्मावतीयन्त्रं वश्यदं नात्र संशयः ॥८॥

लिपिवीतं मातृकया। अन्यत् सुगमम् ।

षट्कोण के मध्य में हीं लिखे। कोणों में शेष छः अक्षरों को लिखे। उसे बाहर से मातृकाओं से वेष्टित करे। यह सुन्दर पद्मावती यन्त्र वश्यप्रद होता है।

ज्येष्ठलक्ष्मीमन्त्रः

तथा—

वाग्भवं प्रथमं बीजं द्वितीयं भुवनेश्वरी । तृतीयं च रमाबीजं आद्यलक्ष्मीपदं ततः ॥९॥  
स्वयंभुवे पदान्ते च प्रवदेद्वनेश्वरी । ज्येष्ठायै हृदयं चैव मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ॥१०॥

वाग्भवं ऐं, हृदयं नमः । अन्यत्सुगमम् । तथा—

ऋषिरस्य सृतो ब्रह्मा छन्दोऽष्टि: समुदाहतम् । देवता ज्येष्ठलक्ष्मीश्च श्रीमाये शक्तिबीजके ॥११॥  
प्रमृच्य त्रिः करो विद्वानङ्गन्यासमथाचरेत् । त्रिवेदाब्यीन्द्रगिन्युग्मवर्णरङ्गानि षट् क्रमात् ॥१२॥  
शिरोभूमध्यवक्त्रेषु बीजानां त्रितयं न्यसेत् । हन्त्राभ्याधारजान्वङ्ग्यौ पदानां पञ्चकं न्यसेत् ॥१३॥  
पद्मासनस्थामरुणामरुणाबरधारिणीम् । कुङ्कुमक्षोदलिपाङ्गीं प्रोत्कुल्लकमलेक्षणाम् ॥१४॥  
मन्दस्मितमुखीं ज्येष्ठां कलशं वसुपात्रकम् । दधानामूर्ध्वबाह्यां पाशमप्यङ्गुशं तथा ॥१५॥

चिन्तयेत् परया भवत्या देवीमित्यं प्रपूजयेत् ।

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये । तदाद्यथः स्थायोरन्ये, इत्यायुद्धयानम् । कलशं सुधाक्यम् ।

सम्पर्यग्धर्मादिभिः पीठे मन्त्रवित्परिकल्पयेत् । लोहिताक्षी विश्वपाक्षी कमला नीललोहिता ॥१६॥

समदा वारुणी पुष्टिरमोदा विश्वमोहिनी । पूर्वादिदलमूलेषु मध्ये चार्च्याः क्रमादिमाः ॥१७॥

वदेच्छ रक्तज्येष्ठायै विद्यहे नीलशब्दतः । ज्येष्ठायै धीमहि प्रोक्त्वा तत्रो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥१८॥

अनयावाहु तां ज्येष्ठां पूजयेच्छन्दनादिभिः । अङ्गानि मातृलोकेशांस्तदस्त्राणि प्रपूजयेत् ॥१९॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातः कृत्यादियोगीठ न्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे अष्टिच्छन्दसे नमः। हृदये ज्येष्ठालक्ष्म्यै देवतायै नमः। गुह्ये श्रींबीजाय नमः। पादयोः हींशक्तये नमः, इति विन्यस्य, मूलविद्यया करौ प्रमूज्य, ॐ ऐंहींश्रीं हृदयाय नमः। आद्यलक्ष्मी शिरसे स्वाहा। स्वयंभुवे शिखायै वषट्। हीं कवचाय हुं। ज्येष्ठायै नेत्राभ्यां वौषट्। नमः अस्त्राय फट्, इत्यङ्गमन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विद्याय, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डुकादिपरतत्त्वान्तं पीठं संपूज्यादृष्टलक्ष्मीसरेषु स्वाग्रादिमध्याने लोहिताक्ष्यै नमः। विरूपाक्ष्यै नमः। कमलायै०, नीललोहितायै०, मदायै०, वारुण्यै०, पुष्ट्यै०, अमोघायै०, विश्वमोहित्यै०, इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य ‘ऐंहींश्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः’ इति समस्तं पीठं संपूज्य ‘रक्तज्येष्ठायै विद्यहे नीलज्येष्ठायै धीमहि तत्रो लक्ष्मीः प्रचोदयात्’ इत्यनया गायत्र्यावाह्य मूलविद्ययासनादिपूष्योपचारान्तं कृत्वा प्रागवदङ्गनि संपूज्यादृष्टले ब्राह्मणाद्याश्शुरस्ते लोकपालास्तदस्त्राणि च संपूज्य धूपदीपादि शेषं प्रागवत् समापयेत् इति। तथा—

लक्षं तु प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात् तद् दशांशतः। पायसेन सुशुद्धेन सर्पिःसिक्तेन साधकः ॥२०॥

तर्पणं मार्जनं कृत्वा कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।

ज्येष्ठामनुं यो भजते मनुष्यः सन्यासपूजाजपतर्पणैश्च ।

भोगानिह प्राप्य बहून् स मर्त्यः परत्र विष्णोः पदमेति नित्यम् ॥२१॥ इति।

**ज्येष्ठलक्ष्मी मन्त्र**—ज्येष्ठलक्ष्मी का सत्रह असरों का मन्त्र होता है—ऐं हीं श्रीं आद्यलक्ष्मी स्वयंभुवे हीं ज्येष्ठायै नमः। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द अष्टि, देवता ज्येष्ठा लक्ष्मी, श्रीं शक्ति एवं हीं बीज है। हाथों को तीन बार मलकर अंगन्यास किया जाता है। मन्त्र के ३, ४, ४, १, ३, २ असरों से षडङ्ग न्यास किया जाता है।

**प्रातःकृत्यादि** से योगीठ न्यास तक करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे अष्टिच्छन्दसे नमः। हृदये ज्येष्ठालक्ष्म्यै देवतायै नमः। गुह्ये श्रींबीजाय नमः। पादयोः हींशक्तये नमः। इस प्रकार न्यास करके मूल मन्त्र से हाथ धोकर षटङ्ग न्यास करो। ॐ ऐंहींश्रीं हृदयाय नमः। आद्यलक्ष्मी शिरसे स्वाहा। स्वयंभुवे शिखायै वषट्। हीं कवचाय हुं। ज्येष्ठायै नेत्राभ्यां वौषट्। नमः अस्त्राय फट्। तदनन्तर ध्यान, आत्मपूजन करके मण्डुक से परतत्त्व तक पीठपूजन कर अष्टदल के केसरों में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार पूजन करे—लोहिताक्ष्यै नमः, विरूपाक्ष्यै नमः, कमलायै नमः, नीललोहितायै नमः, मदायै नमः, वारुण्यै नमः, पुष्ट्यै नमः, अमोघायै नमः, विश्वमोहित्यै नमः। तदनन्तर ‘ऐंहींश्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः’ से समस्त पीठ का पूजन कर ‘रक्तज्येष्ठायै विद्यहे नीलज्येष्ठायै धीमहि तत्रो लक्ष्मीः प्रचोदयात्’ इस गायत्री से आवाहन कर मूल विद्या से आसन प्रदान कर पूष्प-पूजन करके पूर्ववत् अंगपूजन कर अष्टदल में ब्राह्मी आदि का एवं चतुरस्त में लोकपालादि का आयुध-सहित पूजन कर-धूप-दीप प्रदान कर पूजा का समापन करे।

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। उसका दशांश हवन पायस में गोघृत मिलाकर करे। तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन कराये। न्यास-पूजा-जप-तर्पणसहित जो मनुष्य ज्येष्ठा मन्त्र का जप करते हैं, उसे इस लोक से सभी भोग मिलते हैं और मरने पर वह विष्णु पद को प्राप्त होता है।

#### त्रिपुरामन्त्रः

सारसंग्रहे—

अथ वक्ष्ये मन्त्रवरं त्रिपुटासंजकं शुभम्। लोकरञ्जनकर्तारं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥१॥

यशस्करं पुत्रपौत्रफलदं कविताकरम्। कमला भुवनेशानी तृतीयश्च मनोभवः ॥२॥

वर्णत्रियात्मा त्रिपुटानामको मन्त्र ईरितः।

कमला श्रीं, भुवनेशानी हीं, मनोभवः क्लीं। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्रं छन्द ईरितम्। शारदातिलके—ऋषि: संमोहन् इत्युक्तम्। आचार्यचरणैः किमपि नोक्तम्। सारसंग्रहे—

भृगुः संमोहनोऽस्यर्थं छन्दो गायत्रमुच्यते ॥३॥

देवता त्रिपुटाख्या स्याद् द्विरुक्तेनाणुनाङ्गकम्। अथवा भुवनेशान्या षटङ्गनि प्रविन्यसेत् ॥४॥

हेमाभां पारिजातद्वुमरुचिरवने मण्डपे स्वर्णभूमौ  
रत्नोद्यक्तुद्विमेऽधो लसदमरतरोशासंहासनोध्वेऽ।  
षट्कोणस्थां स्मरेऽहं कमलयुगगुणानङ्गुशं चापबाणौ  
बिभ्राणां हस्तपद्मैर्मणिमयमुकुटां चारुभूषां त्रिनेत्राम् ॥५॥

दूतीभिश्चामरादर्शसमुद्रकरण्डकान् । ताम्बूलं च वहनीभिरावृतां परितः शुभाम् ॥६॥

दूतीभिर्घृण्यन्यादिभिः। नारायणीये—‘सौम्यादि धृणिनीं सूर्यामादित्यां च प्रभावती’मिति। तथा—‘पीयुषदृष्ट्या पश्यन्तीं साधकं च मनोहरम्’ इति। दक्षिणामूर्तिः—

षट्कोणं पूर्वमालिख्य मध्ये विद्यां लिखेत्सुधीः। वीप्सया तां तु षट्कोणकोणेषु क्रमतो लिखेत् ॥१॥  
बाहे वसुदलं कुर्याद् दीर्घस्वरविभूषितम्। चतुरसं चतुर्द्वारभूषितं मण्डलं लिखेत् ॥२॥

चतुरसं चतुरस्त्रयं, गृहं संमार्द्धतिवदेकवचनमुहिष्य गतसंख्यापरम्। मध्ये षट्कोणान्तः स्थचतुष्पत्रमध्ये।  
‘यजेदेनां चतुष्पत्रे षट्कोणस्थाम्बुजे बुधः’ इति नारायणीयवचनात्। सारसंग्रहे—

शक्ते पीठे यजेद् देवीं नवशक्तिसमन्विते। अङ्गानि पूजयेदादौ लक्ष्म्याद्याः कोणषट्कगाः ॥१॥  
षट्कोणपाञ्चं च निधी यजेन्मातृश्च तद्विहिः। लोकपालांश्च रमणीरूपानाराधयेक्लमात् ॥२॥  
काञ्छनाभां कृशां लक्ष्मीं सवराङ्गकरद्वयाम्। स्वर्णाभिरशंखाह्गदाब्जसुकरं हरिम् ॥३॥  
गुणसृष्ट्यभयाहेष्टधारिणीमरुणां शिवाम्। शिवं स्वर्णाभिरेणाहटङ्काभीतीष्टधारिणम् ॥४॥  
स्वर्णाभां नीलकमलकरां सौम्यां रत्नं स्मरम्। पाशाङ्गुशौ चापबाणौ धारयन्तं रुचारुणम् ॥५॥  
त्रिपुटाह्वमहाविद्यापूजा प्रोक्ता समाप्तः। इति।

त्रिपुटा मन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार त्रिपुटा का कल्पाणदायक मन्त्र लोक को आनन्द प्रदान करने वाला, धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को देने वाला, यश प्रदान करने वाला, पुत्र-पौत्र प्रदान करने वाला एवं कवित्वशक्ति प्रदान करने वाला है। मन्त्र है—श्री हीं क्लीं। इस तीन अक्षर के मन्त्र को त्रिपुट कहते हैं। दक्षिणामूर्ति संहिता के अनुसार इसके ऋषि ब्रह्मा और छन्द गायत्री हैं। शारदातिलक के अनुसार इसके ऋषि सम्मोहन हैं। सारसंग्रह के अनुसार इसके ऋषि भृगु सम्मोहन और छन्द गायत्री हैं। देवता त्रिपुटा हैं। इसकी दो आवृत्ति से षडङ्ग न्यास होता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

हेमाभां पारिजातद्वुमरुचिरवने मण्डपे स्वर्णभूमौ रत्नोद्यक्तुद्विमेऽधो लसदमरतरोशासंहासनोध्वेऽ।

षट्कोणस्थां स्मरेऽहं कमलयुगगुणानङ्गुशं चापबाणौ बिभ्राणां हस्तपद्मैर्मणिमयमुकुटां चारुभूषां त्रिनेत्राम् ॥

दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है कि पहले षट्कोण बनावे। मध्य में विद्या लिखे। षट्कोण के कोनों में दो आवृत्ति से लिखे। इसके बाहर अष्टदल कमल बनावे। इसके दर्तों से आठ दीर्घ स्वरों को लिखे। इसके बाहर चार द्वारयुक्त तीन चतुरस बनावे।

सारसंग्रह के अनुसार नव शक्तियों से युक्त शाक पीठ में देवी का पूजन करे। पहले षडङ्ग पूजा करे। छः कोनों में लक्ष्मी आदि की पूजा करे। षट्कोण के पार्श्वों में निधियों की पूजा करे। उसके बाहर अष्टदल में ब्राह्मी आदि मातृकाओं की पूजा करे। उसके बाहर चतुरस में शक्तिरूपिणी लोकपालों की पूजा करे। श्लोक ३ से लक्ष्मी-विष्णु का ध्यान करे। श्लोक ४ से गौरी-शिव का ध्यान करे। श्लोक ५ से रति-काम का ध्यान करे। इसे ही समाप्तः त्रिपुटा महाविद्या पूजा कहते हैं।

#### त्रिपुटामन्त्रप्रयोगः

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्या प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि संमोहनाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीत्रिपुटदेवतायै नमः। इति विन्यस्य, श्रीं हृदयाय नमः। हीं शिरसे स्वाहा। क्लीं शिखायै वषट्। श्रीं कवचाय हुं। हीं नेत्रत्रयाय वौषट्। क्लीं अन्नाय फट्। इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विद्याय ध्यानादिपुष्ठोपचारान्तं पूर्वोक्तभुवनेश्वरीपीठे कृत्वा प्राग्वदङ्गानि संपूज्य, चतुर्दले देव्या वामदलमारभ्य

प्रादक्षिणयेन धृणिन्यै०। सूर्यायै०। आदित्यायै०। प्रभावत्यै०। षट्कोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य लक्ष्यै०। हरये०। गिरिजायै०। शिवाय०। रत्यै०। अनङ्गजाय० इति संपूज्य, षट्कोणपार्श्वयोर्देवीदक्षिणे शङ्खनिधये नमः। वामे पद्मनिधये नमः, इति संपूज्याष्टदलेषु ब्राह्मणाद्याः संपूज्य दिगीशाचर्चादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

इति ध्यात्वा मन्त्रमिमं जपेदादित्यलक्षकम्। तत्सहस्रं प्रजुहुयान्मधुरात्मैः समिद्वैः ॥१॥

श्रीराजवृक्षसंभूतैः सजपाकसुमैः शुभैः। तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराथनं तथा ॥२॥

श्रीवृक्षो बिल्वः। तथा—

लक्ष्मीगौरीसुकन्दर्पबीजानि क्रमतः सुधीः। कृत्वा कलायां तां चेन्द्रौ तं चाकाशे स्मरेच्च तत् ॥

सिन्दूरवर्णमखिलं त्रैलोक्यं तम्यत्वतः। स्मृत्वा तदाखिलान् देवान् वशयेत्किं पुनर्नरान् ॥

एवं मनुं यो भजते स लभेत्कवितां पराम्। दिव्यां लक्ष्मीं च सौभाग्यमतुलं लभतेऽचिरात् ॥

बहुकालं च विहरेत् सुस्थिरं भुवि मानवः। इति।

प्रातःकृत्य से योगीठन्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्रणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि संमोहनाय ऋष्ये नमः। मुखे गायत्री-छन्दसे नमः। हृदये श्रीत्रिपुटादेवतायै नमः। तदनन्तर इन मन्त्रों से हृदयादि षडङ्ग न्यास करे—श्रीं हृदयाय नमः। हीं शिरसे स्वाहा। कल्पीं शिखायै वषट्। श्रीं कवचाय हुं। हीं नेत्रवयाय वौषट्। कल्पीं अक्षाय फट्। तदनन्तर ध्यान-पूजन आदि पूर्वोक्त भुवनेश्वरी पीठ में करके पूर्ववत् अंगपूजन कर चतुर्दल में देवी के बाँधे से आरम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से इस प्रकार पूजन करे—धृणिन्यै नमः, सूर्यायै नमः, आदित्यायै नमः, प्रभावत्यै नमः। षट्कोण में देवी के आगे स्थित कोण से आरम्भ कर इस प्रकार पूजन करे—लक्ष्यै नमः, हरये नमः, गिरिजायै नमः, शिवाय नमः, रत्यै नमः, अनङ्गजाय नमः। षट्कोण के बगल में देवी के दक्षिण भाग में शङ्खनिधये नमः एवं वाम भाग में पद्मनिधये नमः से पूजन कर अष्टदल में ब्राह्मी आदि का पूजन करके लोकपालादि पूजन सम्पन्न कर पूजा का समापन करो।

इस प्रकार ध्यान करके बारह लाख मन्त्र जप करो। बारह हजार हवन त्रिमधुरात् श्री राजवृक्ष और अङ्गहुल के फूलों से करो। तर्पण, मार्जन करके ब्राह्मणभोजन करावे।

श्रीं हीं कल्पीं बीजों का आकाश में चन्द्रकला के रूप में स्मरण करे। उनके सिन्दूर वर्ण से तीनों लोक व्याप्त हैं, तम्य हैं—ऐसा स्मरण करने से सभी देवता भी वश में होते हैं, तब मनुष्यों की तो वात ही क्या है। इस प्रकार से मन्त्र को जो भजते हैं, वे श्रेष्ठ वनिता, दिव्य लक्ष्मी, अतुल्य सौभाग्य थोड़े ही दिनों में प्राप्त करते हैं। वे संसार में बहुत समय तक विहार करते रहते हैं।

#### त्रिपुटामन्त्रात्मरप्रयोगः

प्रपञ्चसारे—पाशश्रीशक्तिस्मरमन्मथशक्तीदिराङ्गुशाश्रा। पाश आं, स्मरः मन्मथश्च कल्पीं कल्पीं, इन्दिरा श्रीबीजं, अङ्गशः क्रों। तथा—

ऋष्याद्या अजगायत्रीशक्त्यः समुदीरिताः। स्त्रीवश्याकर्षणादौ तु विनियोग उदाहृतः ॥६॥

षट्दीर्घमायायाङ्गानि सर्वैरषट्ङ्गमिष्यते। हच्छिरश्च शिखावर्मनेत्रात्मोदरपृष्ठके ॥७॥

अष्टाङ्गं विन्यसेन्मन्त्री मूलेन व्यापकं न्यसेत्। आनन्दस्पिणीं देवीं पाशाङ्गुशधनुःशरान् ॥८॥

बिभ्रतीं दोर्भिररुणां कुर्वात् हृदि भावयेत्।

वामाद्याद्यर्घ्ययोराद्ये, तदाद्यथःस्थयोन्ये, इत्यायुधध्यानम्।

शाके पीठे यजेद् देवीं हल्लेखाद्याभिरङ्गकैः। मातृभिलोकपालैश्च वत्राद्यैः पञ्चमावृत्तिः ॥९॥ इति।

अथ प्रयोगः—प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अजऋष्ये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये शक्तये देवतायै नमः, इति विन्यस्य स्त्रीवश्याकर्षणे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्तवा हांहीं इत्यादिना करषदङ्गन्यासं कृत्वा, हृदये आं नमः। शिरसि श्रीं नमः। शिखायां हीं नमः। कवचस्थाने कल्पीं

नमः। नेत्रस्थाने कल्लीं नमः। अखे हीं नमः। उदरे श्रीं नमः। पृष्ठे क्रों नमः, इति विन्यस्य ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते, मध्ये हल्लेखायै नमः। अगे गगनायै०, दक्षिणे रक्तायै०, उत्तरे करालिकायै०, पश्चिमे महोच्छुष्मायै०, इति संपूज्य प्राग्वदङ्गानि संपूज्याष्टदलेषु ब्राह्मायाः संपूज्य चतुरखे लोकेशाचार्दि प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

अष्टलक्षं जपेत् साज्जैर्दर्शांशं जुहुयात्तिलैः। तर्पणादि ततः कुर्यादिवं सिद्धो भवेन्मनुः॥ इति।

प्रपञ्चसार के अनुसार इसका अन्य मन्त्र है—आं हीं कल्लीं श्रीं क्रों। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा एवं छन्द गायत्री हैं; स्त्रीवश्य एवं आर्कषण के लिये इसका विनियोग होता है। हाँ हीं हूँ हैं हौं हः से षडङ्ग न्यास और पूरे मन्त्र से अष्टाङ्ग न्यास किया जाता है। हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अख, उदर, पीठ—इन आठ अंगों में न्यास किया जाता है। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान किया जाता है—

आनन्दरूपिणीं देवीं पाशाङ्कुशधनुःशरान्। बिप्रतीं दोर्भिरसुं कुचार्ता हृदि भावयेत्॥।

ऊपर वाले वाम हस्त से प्रारम्भ करके नीचे वाले बाँयें हाथ तक आयुध का ध्यान करे। शक्तिपीठ में देवी की पूजा करे। हाँ हीं इत्यादि से षडङ्ग पूजा करे। अष्टदल में अष्ट मातृकाओं की, भूपुर में लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे। इस प्रकार यहाँ पाँच आवरणों की पूजा होती है।

प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि अजग्रध्ये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये शक्तये देवतायै नमः। इस प्रकार न्यास करके स्त्रीवशीकरण हेतु विनियोग कर हाँ हीं आदि से करन्यास एवं षटङ्ग न्यास करके इस प्रकार न्यास करे—हृदये आं नमः। शिरसि श्रीं नमः। शिखायां हीं नमः। कवचस्थाने कल्लीं नमः। नेत्रस्थाने कल्लीं नमः। अखे हीं नमः। उदरे श्रीं नमः। पृष्ठे क्रों नमः। तदनन्तर ध्यान-पूजन कर मध्य में हल्लेखायै नमः। आगे गगनायै नमः, दक्षिण में रक्तायै नमः, उत्तर में करालिकायै नमः, पश्चिम में महोच्छुष्मायै नमः से पूजन कर पूर्ववत् अंगपूजन कर अष्टदल में ब्राह्मी आदि का पूजन कर चतुरखे में लोकपालों का पूजन कर पूजा का समापन करो।

इस मन्त्र का आठ लाख जप करे। दशांश हवन तिल से करे और तर्पण करे तब मन्त्र सिद्ध होता है।

#### नित्यकिलन्नामत्रोद्धारादि

अथ नित्यकिलन्नाप्रयोगः। सारसंग्रहे—

भुजङ्गेशसमारूढा लक्ष्मीरोलाक्षिसंयुता । श्रीमुखीविलसच्छीर्षा मेषो नयनसंयुतः॥१॥

पूतना सुमुखीयुक्ता महाकाली समाधवी । सूक्ष्मेण सहिता मेषद्वयं छिण्ठीशसंयुतम्॥२॥

जया च योगिनी चैव रेवतीयुक्त वारुणी । सोर्धकेशी च सहजा खड्गीशं विरजान्वितम्॥३॥

सानन्तो नकुलीशश्च नित्यकिलन्नामनुर्मतः । एकादशाक्षरः सर्वसौभाग्यशृद्यदायकः॥४॥ इति।

भुजङ्गेशो रेफः, लक्ष्मीः हकारः, लोलाक्षी ईकारः, श्रीमुखी बिन्दुः, एतैः हीं मेषो नकारः, नयनं इकारः, तेन नि। पूतना त, सुमुखी य, तेन त्या महाकाली क, माधवी ल, सूक्ष्म इ, तेन किल्। मेषद्वयं नकारद्वयं, छिण्ठीशः ए तेन त्रे। जया म, योगिनी द, रेवती रेफः चकारात्युनर्दकारः तेन द्र। वारुणी व, ऊर्धकेशी ए तेन वै। सहजा स, खड्गीशो व, विरजा आ तेन स्वा। नकुलीशो ह, अनन्तः आ तेन हा। तथा—

ऋषिब्रह्मा त्रिषुबुक्तं छन्दो मन्त्रस्य देवता। नित्यकिलन्ना च गदिता चतुर्वर्गफलप्रदा॥५॥

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—‘बीजमाद्यं वहिजाया शक्तिश्च कीलकं’मिति ‘विराट्छन्द’ इति च।

आद्येन मन्त्रवर्णेन हृदयं समुदीरितम्। ततो द्वाभ्यां पुनर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वयेन च॥६॥

कुर्याच्छिष्टानि चाङ्गानि करयोश्च न्यसेल्कमात्। हृदि दृक्श्रोत्रयोर्द्वद्वे त्वचि लिङ्गे च गुहाके॥७॥

पादयोश्चैव मन्त्रानां विन्यसेन्मन्त्रवित्तमः। अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम्॥८॥

अरुणास्त्रगिवलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम्। नेत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्मख्यामौक्तिकैः॥९॥

विराजमानां मुकुटलसदर्थेन्दुशेखराम्। चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमङ्कुशं पानपत्रकम्॥१०॥

अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम् । ध्यात्वैवं पूजयेत्रित्यां प्राक्प्रोक्तशक्तिपीठके ॥११॥  
 पद्ममष्टदलं मध्ये वह्निगोहसमन्वितम् । चतुरस्तद्वयं बाह्ये प्राक्प्रत्यगद्वारसंयुतम् ॥१२॥  
 तत्र मध्ये यजेद् देवीं चन्दनादिभिरुत्तमे । कर्णिकायोनिमध्यस्थदेशे वाष्ठीशवहिषु ॥१३॥  
 नैऋत्यां पुरतो दिक्षु यजेदङ्गानि षट् क्रमात् । क्षोभिणी मोहिनी लोला त्रिषु कोणेषु पूजयेत् ॥१४॥  
 नित्या निरञ्जना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा । मदद्रवा द्राविणी च द्रविणा चाष्ट पत्रगाः ॥१५॥  
 मदाविला मङ्गला च मन्मथार्ता मनस्विनी । मोहामोदा मानमयी माया मन्दा मितावती ॥१६॥  
 द्वारपार्श्वेषु कोणेषु दिक्षु ता दश पूजयेत् । लोकेशानपि तद्वाहे तदस्त्राणि ततो बहिः ॥१७॥ इति।

**नित्यक्लिन्ना मन्त्र प्रयोग—सारांशः** मैं पठित श्लोक १-४ के उद्धार करने पर नित्यक्लिन्ना का मन्त्र होता है—  
 हीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा। यह ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द त्रिष्टुप्, देवता चतुर्वर्गफलप्रदा नित्यक्लिन्ना है। बीज हीं, स्वाहा शक्ति और त्रे कीलक है।

मन्त्र के आद्य वर्ण से हृदय, फिर दो-दो वर्णों से शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अख्य में न्यास करे। इसी प्रकार कर न्यास करे। मन्त्र वर्णों का न्यास इस प्रकार करे—हृदि हीं नमः, दक्षनेत्रे निं नमः, वामे त्वं नमः, दक्षश्रोत्रे विलं नमः, वामे त्रे नमः, दक्षनासायां मं नमः, वामनासायां दं नमः। सर्वां द्रं नमः, लिङ्गे वें नमः, गुदे स्वां नमः। पादयोः हां नमः। तदनन्तर मूल विद्या से व्यापक न्यास करे। तब इस प्रकार ध्यान करे—

अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम् । अरुणस्त्रिविलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम् ॥

नेत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले धर्माम्बुमौत्तिकैः । विराजमानां मुकुटलसदर्थेन्दुशेखराम् ॥

चतुर्भिर्बार्तुभिः पाशमङ्गुशं पानपत्रकम् । अथयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम् ॥

इस प्रकार ध्यान करके पूर्वोक्त शक्तिपीठ पर नित्या की पूजा करे। अष्टदल कमल में त्रिकोण बनावे। इसके बाहर पूर्व-पश्चिम में द्वारयुक्त दो भूपुर बनावे। उसके मध्य में देवी की पूजा चन्दनादि से करे। कर्णिका में, वायव्य, ईशान, वह्नि, नैऋत्य, आगे दिशाओं में षड़ङ्ग पूजन क्रम से करे। त्रिकोण के तीनों कोनों में क्षोभिणी, मोहिनी, लोला की पूजा करे। अष्टदल में नित्या, निरञ्जना, क्लिन्ना, क्लेदिनी, मदनातुरा, मदद्रवा, द्राविणी, द्रविणा—आठ की पूजा करे। भूपुर के द्वार-पार्श्वों में, कोणों में, दिशाओं में—मदाविला, मङ्गला, मन्मथार्ता, मनस्विनी, मोहा, आमोदा, मानमयी, माया, मन्दा, मितावती—इन दश शक्तियों की पूजा करे। उसके बाहर दश दिक्षालालों और उनके दश आयुधों की पूजा करे।

#### नित्यक्लिन्नाप्रयोगहोमविधिः

**अथ प्रयोगः—** तत्र प्रातः कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्या प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यक्लिन्नायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, हीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मद कवचाय हुं। द्रवे नेत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्, इति करघडङ्गन्यासं विधाय, हृदि हीं नमः। दक्षनेत्रे निं नमः। वामे त्वं नमः। दक्षश्रोत्रे विलं नमः। वामे त्रे नमः। दक्षनासायां मं नमः। वामे दं नमः। सर्वाङ्गे द्रं नमः। लिङ्गे वें नमः। गुदे स्वां नमः। पादयोः हां नमः, इति विन्यस्य मूलविद्या व्यापकं कृत्वा ध्यानादिष्ठपूजान्ते, त्रिकोणे ॐक्षोभिण्ये नमः, मोहिन्यै०, लोलायै०, इति देव्यग्रादिकोणत्रये संपूज्याष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिणयेन नित्यायै नमः, निरञ्जनायै०, क्लिन्नायै०, क्लेदिन्यै०, मदनातुरायै०, मदद्रवायै०, द्राविण्यै०, द्रविणायै० इति संपूज्य, चतुरसे देव्य-ग्रद्वारस्य वामपार्श्वामारभ्य मदाविलायै०, मङ्गलायै०, मन्मथार्तायै०, मनस्विन्यै०, मोहायै०, आमोदायै०, मानमयै०, मायायै०, मन्दायै०, मितावत्यै०, इति द्वारपार्श्वद्वयानेयदक्षिणनिर्त्तिपश्चिमद्वारपार्श्वद्वयवायव्योत्तरेशानेषु दश दिक्षु संपूज्य, मध्यरेखायामिन्द्रादीन् सर्वबाह्यरेखायां बन्नादींश्च संपूज्य धूपदीपादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति।

**प्रयोग—**प्रातःकृत्यादि से योगीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे त्रिष्पृष्ठे छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यक्लिन्नायै देवतायै नमः। तदनन्तर चतुर्विधं पुरुषार्थ-सिद्धि के लिये विनियोग करके हृदयादि षडङ्ग न्यास करे—हीं हृदयाय नमः। नित्यं शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मदं कवचाय हुं। द्रवे नेत्रवयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्। तदनन्तर हृदि हीं नमः। दक्षनेत्रे निं नमः। वामे त्यं नमः। दक्षश्रोत्रे क्लिं नमः। वामे त्रैं नमः। दक्षनासायां मं नमः। वामे दं नमः। सर्वज्ञे द्रैं नमः। लिङ्गे वै नमः। गुदे स्वां नमः। पादयोः हाँ नमः—इस प्रकार न्यास करके मूल मन्त्र से व्यापक न्यास कर ध्यान एवं षडङ्ग पूजन कर त्रिकोण में ॐक्षोभिण्यै नमः, मोहिन्यै नमः, लोलायै नमः से पूजन कर अष्टदल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से नित्यायै नमः, निरञ्जनायै नमः, क्लिन्नायै नमः, वलेदिन्यै नमः, मदनातुरायै नमः, मदट्रवायै नमः, द्राविण्यै नमः, द्राविणायै नमः से पूजन कर चतुरस में देवी के आगे बाँयें से आरब्ध कर मदालिलायै नमः, मङ्गलायै नमः, मन्मथात्यै नमः, मनस्विन्यै नमः, मोहायै नमः, आमोदायै नमः, मानमयै नमः, मायायै नमः, मन्दायै नमः, मितावत्यै नमः से दशो दिशाओं में पूजन कर मध्य में इन्द्रादि का एवं सबसे बाहर वज्रादि आयुधों का पूजन कर धूप-दीप-समर्पण कर पूजा का समापन करे।

#### नित्यक्लिन्नायामन्त्रप्रयोगहोमविधि:

तथा—

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं मनुमेनं दशांशतः। मधूकपुष्टैः स्वादूर्कैर्जुहुयाद् हविषाथवा ॥१८॥  
 तदशांशं तर्पयित्वा जलैः कपूरवासितैः। आत्मानमधिष्ठिव्याथ ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥१९॥  
 वित्तभूषाम्बराद्यैश्च संतोष्य गुरुमात्मनः। सिद्धमन्त्रः प्रकुर्वीत प्रयोगान् मन्त्रवित्तमः ॥२०॥  
 ततो विद्याप्रयोगाहौं नित्याचार्निरतस्तथा। सहस्रजापी तद्दक्षः कुर्याद्युक्तं न चान्यथा ॥२१॥  
 पद्मै रक्तैस्त्रिमध्यरक्तैर्होमाल्लक्षीमवान्युत्। तथैव कैरवै रक्तैः राजश्च स्ववशं न येत् ॥२२॥  
 समानरूपवत्सायाः शुक्लाया गोः पयःप्लुतैः। मल्लिकामालतीजातीशतपत्रैहृतैभर्वित् ॥२३॥  
 स्वणांप्तिः स्तम्भनं शत्रोर्वपादीनां कृष्णोऽपि वा। आज्यारैः करवीरोत्यैः प्रसूनैररुणैहृतैः ॥२४॥  
 रक्ताम्बराणि वनिता भूपमर्त्यं वशं न येत्। भूषावाहनवाणिज्यसिद्ध्यः स्युः स्ववाज्ञिता ॥२५॥  
 लवणैः सर्षपैर्गारतिलैर्वापि च होमतः। तत्त्वालक्तैर्निशामध्ये त्वानयेद्वाज्ञितां वधूम् ॥२६॥  
 तैलाक्तैर्जुहुयात् कृष्णादरपुष्टैर्निशान्तरे। मासादरातिस्तीव्रातिज्ज्वरेण परिपीड्यते ॥२७॥

तदनन्तर देवी का ध्यान करके इस मन्त्र का एक लाख जप करे। दशांश हवन त्रिमधुराक्त महुआ के फूलों से करे अथवा हविष्य से करे। हवन का दशांश तर्पण नुपूर से वासित जल से करे। अपना मार्जन करे। ब्राह्मणों को भोजन कराये। अन्तर्धन वस्त्रादि से गुरु को सन्तुष्ट करे। तब सिद्ध मन्त्र का प्रयोग करे।

मन्त्र सिद्ध होने के बाद प्रयोग की अर्हता प्राप्त होती है। नित्य अर्चन में लगा रहे। प्रतिदिन एक हजार जप करे। हविष्यात्र भोजन करे; संयम नियम से युक्त करे, अन्यथा न करे। त्रिमधुराक्त लाल कमल के हवन से लक्षणी प्राप्त होती है। उसी प्रकार कैरव के हवन से राजा वश में होता है। उजले बच्चे वाली उजली गाय के दूध से प्लुत मल्लिका, मालती, जाती, शतपती के फूलों के हवन से सोना की प्राप्ति तथा शत्रु एवं कृद्ध राजा आदि का स्तम्भन होता है। गोघृत से सिक्त लाल कनैल के फूलों से हवन करने पर लाल वस्त्र मिलता है, वनिता तथा राजा वश में होते हैं; वस्त्र, वाहन, व्यापार में सिद्ध आदि स्ववाज्ञित की प्राप्ति होती है। नमक, पीला सरसों, तिल को उसके तेल से सिक्त करके रात में हवन करने से देवी वाज्ञित स्त्री को साधक के समीप ले आती हैं। तैलाक्तं शंखपुष्पी से रात में हवन करने से एक महीने में शत्रु तेज बुखार से पीड़ित होता है।

आरुक्करपृताभ्यक्तैस्तद्वैजैर्निशि होमतः। ब्रणाः शरीरे शत्रोः स्युर्दःसाध्याश्च चिकित्सकैः ॥२८॥  
 तैरेव दलिताङ्गस्तु रिपुर्याति यमालयम्। तथा तत् तैलसंसिक्तैर्बीजैरङ्गोलजैरपि ॥२९॥  
 मरिचैः सर्षपाज्याक्तैर्निशि होमात्तु मासतः। वाज्ञितां च रमां कामज्वरात्मानयेद् ध्रुवम् ॥३०॥

मरिचैः सर्षपोपेतैः सप्तरात्रं हुतैर्निशि । दानमानकुलैर्नित्यं दुःप्रापामानयेद्वधूम् ॥३१॥  
 अन्नार्जैर्हुयात्रित्यं शतमष्टोत्रं तु वा । तेनात्रपूर्णो भवने भोक्ता च भवति ध्ववम् ॥३२॥  
 शालीभिराज्ययुक्ताभिर्होमाच्छालीनवानुयात् । साध्यक्षवृक्षसंभूतामिष्ठपादरजःकृताम् ॥३३॥  
 राजीमरिचलोणोत्यां पुतलीं जुहुयात्रिशि । प्रपदाभ्यां च जह्नाभ्यां जानुभ्यामूरुयुग्मतः ॥३४॥  
 नाभेरथस्ताद् हृदयाद् गलेनाकण्ठतस्तथा । शिरसश्च सुतीक्ष्णेण च्छित्वा शक्तेण वै क्रमात् ॥३५॥  
 एवं द्वादशथा होमान्नरारीनराधिष्ठाः । वश्या भवन्ति सप्ताहादरातिरस्य वाञ्छया ॥३६॥  
 प्रयाति निधनं चास्य वाञ्छयानन्योगतः । पिष्टेन गुडयुक्तेन मरीचर्जरकैर्युताम् ॥३७॥  
 कृत्वा पुतलिकां साध्यनामयुक्तामथो हृदि । सनामहोमसंपातवृत्ते संपाच्य तां पुनः ॥३८॥  
 स्यूशन्निजकारत्रेण सहस्रं प्रजपेम्नम् । अभ्यर्थ्य तद्वृत्ताभ्यक्तं भक्षयेतद्विद्या जपन् ॥३९॥  
 नरनारीनृपास्तस्य वश्याः स्युर्मरणावधि । तैरेव पिष्टैर्वृत्तं तु कृत्वा तन्मध्यतस्तथा ॥४०॥  
 साध्यनाम स्फुटं कृत्वा प्रापवत्संपाच्य भक्षणात् । वश्यास्ते वत्सरं भूयुस्तनामाणांचित्तस्तथा ॥४१॥  
 कृत्वा विपाच्य खादंस्तु वशयेत्तास्तदर्थकम् । नारिकेलफलाभ्योभिस्तर्पणाद्वनिता वशाः ॥४२॥  
 कर्पूरवासितैस्तोयैर्मनुष्याश्च वशे स्थिताः । तर्पणाल्लवणाभ्योभिः सर्वे स्युस्तस्य किङ्कराः ॥४३॥  
 तथा लवणयुक्तेन तोयेन वनिता वशाः । शुद्धेन वारिणा मासं तदर्थं सप्तवारकम् ॥४४॥  
 तर्पयेद्यस्य नामैव स तस्य स्याद्वशेऽनिशम् । केतकीवासितैश्चेन्द्रुयुक्तैः । केरफलोदकैः ॥४५॥  
 तर्पणाद्वनिता वश्या दद्युः प्राणान्निं धनम् । नमेरवासितैस्तोयैस्तर्पणाद्वूमिपा वशाः ॥४६॥  
 चम्पकैर्वासितजलैस्तर्पणं सर्वरञ्जनम् । पाटलीशतपत्राभ्यां वासितैस्तपणैर्जलैः ॥४७॥  
 सर्वलोकचमत्कारकारी भवति नित्यशः । कस्तुरीवासिताभ्योभिस्तर्पणं सर्वसिद्धिकृत् ॥४८॥  
 इन्दुचन्दनसौरभ्यवासिताभ्यःप्रतर्पणम् । वाञ्छितार्थस्य संसिद्धिं मण्डलात्कुसते ध्ववम् ॥४९॥  
 (सिक्थमिश्रजलैराद्यो धनधान्यादिभिश्चिरम् । गुडामिश्रजलै रात्रौ तर्पणं विघ्नाशनम् ॥५०॥  
 चिङ्गाफलरसोपेतैर्जलैद्वेष्याय तर्पयेत् ।) उष्णोदकैः समरिचैस्तर्पयेद् वैरमृत्यवे ॥५१॥  
 केवलोष्ठोदकेन स्यातीव्यवरसमुद्भवः । निष्पत्रपत्ररसोपेतैरम्बुभिस्तर्पणाद् द्विषाम् ॥५२॥  
 जायतेऽन्योन्यवैरस्य येन तो नाशमानुयुः । तथैवात्मुष्णासलिलैस्तर्पणाद्वैरिणो भृशम् ॥५३॥  
 अतिसारादिभिर्दोषैरौदरैः । क्लेशमानुयुः । वनितानवनीतस्य द्रावकोऽग्निर्जपादिना ॥५४॥  
 जायते साधको नित्यं कन्दपथिकसुन्दरः । इति ।

घृतात् आरुष्कर और उसके बीज से रात में हवन करने पर शत्रु के शरीर में चिकित्सकों से असाध्य धाव होते हैं और उन धावों से पीड़ित शत्रु की मृत्यु हो जाती है। अंकोल के तेल से सिक्त अंकोलबीज या गोघृत में डुबोये मरिच, सरसों से रात में एक माह तक हवन करने से रामा कामपीड़ित वाञ्छित स्त्री को साधक के पास ले आती है। मरिच सरसों मिलाकर सात रातों तक हवन करने से दुष्याप्य दान-मान-कुल की स्त्री को ला देती है। नित्य अन्न और गोघृत के एक सौ आठ हवनकर्ता के भवन में अन्नपूर्णा सदा विराजमान रहती है और कर्ता उनका भोग करता है। आज्यसिक्त शालि चावल के हवन से शालि चावल मिलता है। साध्य नक्षत्रवृक्ष के पिष्ट में उसके पैरों की धूलि राई, मरिच, नमक मिलाकर पुतली बनावे। रात में पुतली के पैर, जंघा, घुटना, दोनों उड़, नाभि से नीचे के भाग, हृदय से गला तक एवं गला से शिर तक तेज हथियार से काट-काटकर बारह भागों से बारह हवन करे तो नर-नारी-राजा या शत्रु एक सप्ताह में वश में हो जाते हैं। इस योग से वाञ्छित शत्रु का प्राणान्त भी हो जाता है। साध्य नक्षत्रवृक्ष के पिष्ट में गुड़, मरिच, जीरा मिलाकर पुतली बनावे। साध्य का नाम उसके हृदय में लिखे। नामसहित हवन के सम्पात धीं में उसे पकावे। उसे स्पर्श करके एक हजार मन्त्र जप करे। उसे धीं से अभ्यक्त करके खा जाय और जप करे तो नर-नारी-नृप उसके वश में आजीवन रहते हैं। उसी प्रकार पिष्ट में साध्य नाम स्पष्ट लिखकर

पूर्ववत् पकाकर खाने से साल भर में साध्य उसके वश में हो जाता है। पुतली बनाकर पकाकर खाने से छः माह में साध्य वश में होता है। नारियल के जल से तर्पण करने पर वनिता वश में होती है। कपूरवासित जल से तर्पण करने पर मनुष्य वश में होते हैं। नमकीन जल से तर्पण करने पर सभी उसके दास हो जाते हैं। नमकीन जल से तर्पण करने पर वनिता वश में होती है। शुद्ध जल से एक महीना या आधा महीना प्रतिदिन सात बार तर्पण जिसके नाम से किया जाता है, वह वश में हो जाता है। केवड़ा-वासित जल में कपूर केरफल का जल मिलाकर तर्पण करने से वनिता वश में होकर अपना प्राण-धन तक साधक को दे देती है। नमेरु जल से तर्पण करने से राजा वश में होते हैं। चम्पावासित जल के तर्पण से सबों का रञ्जन होता है। गुलाब, शतपत्री-वासित जल से तर्पण करने पर साधक सर्वलोक चमत्कारकारी होता है। कस्तूरी-वासित जल से तर्पण सर्वसिद्धिप्रद होता है। कपूर, चन्दन, गन्ध से वासित जल से चालीस दिनों तक करने से वांछितार्थ सिद्ध होता है। सिक्थ-मिश्रित जल से तर्पण शीघ्र धन-धान्य से आळ्य कर देता है। गुड़ के शर्वत से तर्पण करने पर विघ्नों का नाश होता है। विद्रेषण के लिये चिङ्गाफल रसयुक्त जल से तर्पण करे। वैरी को मारने के लिये गर्म जल में मरिच मिलाकर तर्पण करे। केवल गर्म जल के तर्पण से तेज बुखार लग जाता है। नीम पत्र रसयुक्त जल के तर्पण से वैरियों में परस्पर द्वेष हो जाता है और इससे उनका नाश हो जाता है। बहुत गर्म जल से तर्पण करने पर वैरी अतिसार आदि उदर रोग से भी कष्ट पाते हैं। मक्खन को आग पर तपाकर जप करके खाने से साधक वनिताओं के लिये कामदेव से भी अधिक सुन्दर हो जाता है।

#### नित्यक्लिन्त्रामन्त्रात्तरविधिः

तथा—

प्रणवं चाथ हृल्लेखा वाग्बीजं नित्यशब्दतः । क्लिन्त्रे मदद्रवे वाचं मायामग्निवधूं वदेत् ॥१॥  
नित्यक्लिन्त्राभिधो मन्त्रः प्रोक्तः पञ्चदशाक्षरः ।

हृल्लेखा हीं, वाचम् ऐं, अग्निवधूः स्वाहाकारः। तथा—

ऋषिः संमोहनः प्रोक्तो विराङ्गुकं च देवता । नित्यक्लिन्त्राभिधा देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ॥२॥  
विना वाग्भवीजं तु द्विद्विग्नेषुयुग्मकैः । समस्तेनाङ्गषट्कं स्यान्तियक्लिन्त्रां स्मरेत्ततः ॥३॥

सुराव्यिमध्ये पृथुलं सुचारु द्वीपं स्मरेत् कल्पतरूपशोभि ।

पिकालिभूङ्गावलिमञ्जुनादं मद्देन संसेवितमीरणेन ॥४॥

मनोज्वीरुल्कुसुमावकीर्णमिद्यच्छशाङ्गप्रतिमस्वरशिम् ।

माणिक्यसङ्गामलमण्डपं च सिंहासनं रत्नमयं च तत्र ॥५॥

त्रिकोणमध्यं ललिताष्टपत्रं संचिन्त्य पद्मं स्मर तत्र देवीम् ।

शीतांशुचूडामरुणोत्पलाभां करैः सपाशाङ्गशकल्पवल्लीः ॥६॥

कपालमन्येन च धारयन्तीं द्वाभ्यां कराभ्यां कलनादवीणाम् ।

त्रैलोक्यसंमोहनकारिणीं तां नित्यां भजे चारुसुचिं त्रिनेत्राम् ॥७॥ इति।

वामाद्यूर्ध्वयोरादे, तदादिमध्ययोरस्ये, तदधस्तनाभ्यां वीणा, इत्यायुधध्यानम्।

इति ध्यात्वा यजेत्पीठं चतुःशक्तियुतं सुधीः । सयोनिकर्णिकं पद्ममष्टपत्रविराजितम् ॥८॥

बहिः पञ्चदलं पद्मं तद्विर्द्दशपत्रकम् । चतुरस्त्रयं बाह्ये चतुर्द्वारविराजितम् ॥९॥

(इति संमोहनपञ्चरात्रोक्तमिति।

चतुर्दले द्राविण्यादीरीशाद्यश्रिषु पूजयेत् । प्रादक्षिण्येन मन्त्रज्ञ उच्यन्ते ता यथाक्रमम्) ॥१०॥

पूर्वा स्याद् द्राविणी वामा ज्येष्ठा साहादकारिणी । अपरा क्षोभिणी रौद्री गुह्यशक्तिशतुर्थिका ॥११॥

मायाद्यमासनं देयं मूर्ति मन्त्रेण कल्पयेत् ।

द्राविण्याद्यास्तिस्त्रो वामाद्यानां तिसृणां विशेषणभूताः । 'कोणेष्वैशादिमध्ये च तत्र शक्तीन्द्र्यसेदिमा:' इति

नारायणीयवचनस्य कोणेषु मध्ये चेत्यर्थः।

नित्यकिलन्नां तत्र यजेद्वक्ष्यमापेन वर्त्मना । केसरेष्वङ्गपूजां स्यात्यत्रेष्वेताः प्रपूजयेत् ॥

सषणठाद्यन्तयुक्त्वरवर्जमष्टस्वरादिकाः ।

सषणठाद्यन्तयुक्त्वरवर्जमित्यर्थः। ऋक्त्रूलूप्तसहितानुस्वारविसर्ग—अआइत्यष्टस्वररहिताः स्वरादिका इत्यर्थः।

नित्य किलन्ना का अन्य मन्त्र—नित्यकिलन्ना का उपर्युक्त मन्त्र के अतिरिक्त दूसरा पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र होता है—ॐ हीं ऐं नित्यकिलन्ने मदद्रवे ऐं हीं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्द विराट, देवता चतुर्वर्गफलप्रदा नित्यकिलन्ना हैं।

षडङ्ग न्यास—ॐ हीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। किलन्ने शिखायै वषट्। मदद्रवे हीं कवचाय हुं। स्वाहा नेत्रवत्राय वौषट्। इस प्रकार अङ्गन्यास करने के बाद निम्नवत् ध्यान करे—

सुराभिमध्ये पृथुलं सुचारु द्वीपं स्मरेत् कल्पतरुपशोभि। पिकालिभृग्नावलिमञ्जुनादं मन्देन संसेवितमीरणेन॥

मनोज्ञवीरुत्पुसुमावकीर्णमुद्धशाङ्कप्रतिमस्वरशिमम्। माणिक्यसङ्कुमलमण्डपं च सिंहासनं रत्नमयं च तत्र॥

त्रिकोणमध्यं ललिताष्टपत्रं संचिन्त्य पद्मं स्मर तत्र देवीम्। शीतांशुचूडामरुणोत्पलाभां करैः सपाशाङ्कुशकल्पवल्लीः॥

कपालमन्येन च धारयन्तीं द्वाष्यां कराष्यां कलनादवीणाम्। वैलोक्यसंमोहनकारिणीं तां नित्यां भजे चारुशं त्रिनेत्राम्॥

ऊपरी बाँधें हाथ से लेकर निचले बाँधें हाथ तक उनके आयुधों का ध्यान करे। इस प्रकार ध्यान के बाद चार शक्तियुक्त पीठ पर यजन करे। पूजन यन्त्र में पहले त्रिकोण बनावे। उसमें चतुर्दल बनावे, उसके बाहर अष्टदल कमल, उसके बाहर पञ्चदल कमल, उसके बाहर दशदल कमल बनाकर, उसके बाहर चार द्वारों से युक्त तीन भूपूर बनावे। यह सम्मोहनपञ्चरात्र में कहा गया है। चतुर्दल में ईशानादि से प्रारम्भ कर द्राविण्यादि शक्तियों की पूजा प्रादक्षिण्य क्रम से करे। ये चार शक्तियाँ हैं—द्रविणी, वामा, ज्येष्ठा और क्षोभिणी। इनकी पूजा त्रिकोण के कोणों और मध्य में करे। बिन्दु में ही से आसन देकर मन्त्र से मूर्ति कल्पित करे। उसमें नित्यकिलन्ना का पूजन विहित मार्ग से करे। केसर में अंग-पूजा करे। एष पत्रों में नपुंसक वर्ण और उससे युक्त स्वर को छोड़कर आठ स्वरों को नाम के पहले लगाकर पूजा करे।

नित्यकिलन्नात्तरप्रयोगविधिः

नित्यादिमा सुभद्रा समझला वनचारिणी। सुभगा दुर्भगा स्यान्मनोन्मनी रुद्ररूपिणी ॥१२॥

बल्लकीवादनपरा दूत्यो रक्ता मनोहराः। मदमन्धरगामिन्यः सुवेशाश्रारुभूषणाः ॥१३॥

अरुणांश्वार्वलङ्कारान् पञ्च कामान् प्रपूजयेत्। व्योमसर्गाद्यकन्दर्पबीजायांस्ते त्वनङ्गकः ॥१४॥

स्मरमन्मथकामाश्च मारः पञ्चम ईरितिः। पञ्चपुष्पेषुपाशाह्वसाङ्कुशेक्षुधनुर्भृतः ॥१५॥

पृष्ठभागे तूण्युक्ता: शक्तीस्तत्यार्घ्यसंस्थिताः। भूषायुक्ताः स्मेरवक्त्रकमलाः साधु पूजयेत् ॥१६॥

सविन्दुकलीवौष्ठ्यवर्जयस्वरवर्गादिमादिकाः। ता रत्तिविरतिः प्रीतिर्विप्रीतिर्मतिर्दुर्मती ॥१७॥

धृतिः स्याद्विष्टिस्तुष्टिर्वितुष्टिर्दर्श संस्मृताः। अरुणारुणभूषाद्या वीणाहस्ताः स्मिताननाः ॥१८॥

लोकपालांस्ततो बाह्ये तद्वेतीश ततो बहिः। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातः कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि संमोहनाय ऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यकिलन्नायै देवतायै नमः। इति विन्यस्य ॐ हीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। किलन्ने शिखायै०। मदद्रवे हीं कवचाय०। स्वाहा नेत्रवत्राय०। ॐ हीं नित्यकिलन्ने मदद्रवे हीं स्वाहा अस्त्राय फट०। इति षडङ्गमन्नानुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य ध्यानादिपरतत्त्वान्तं पञ्चदलकेसरेष्वीशानकोणादि आं द्राविण्ये वामाय०। ई ह्रादित्यै ज्येष्ठाय०। ऊं क्षोभिण्यै रौद्रय०। ऐं गुह्यशक्त्यै०। इति पीठशक्तीः संपूज्य, हीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः, इति समस्तं पीठं संपूज्य मूर्ति प्रकल्प्यावाहनादिष्ठडङ्गपूजान्ते अष्टदलेषु इं नित्याय०। ईं सुभद्रायै०। ऊं मङ्गलायै०। ऊं वनचारिण्यै०। ऐं सुभगायै०। एं दुर्भगायै० औं मनोन्मन्यै०। औं

रुद्ररूपिण्यै०, इति संपूज्य, (तद्वहिः पञ्चदलेषु देव्यग्रादि हीः अनङ्गायः०। हीं स्मराय०। हीं मन्मथाय०। हीं कामाय०। हीं माराय०। इति संपूज्य०) तद्वहिदशदलेषु देव्यग्रादिग्रादक्षिण्येन कं रत्यै०। कां विरत्यै०। किं प्रीत्यै०। कीं विप्रीत्यै०। कुं मत्यै०। कूं दुर्मत्यै०। कों धृत्यै०। कों विधृत्यै०। कं तुष्ट्यै०। कः वितुष्ट्यै०, इति संपूज्य लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति। तथा—

बहिलक्षं जपेन्मन्त्रं तदशांशं हुनेत्ततः। धृतेन तर्पणादं च कृत्वा संतोष्य देशिकम् ॥१९॥

धनधान्यादिभिः सम्यक्ग्रयागानाचरेत्ततः। एवं मन्त्रोदितान् सम्यक्पूर्वोक्तविधिना सुधीः ॥२०॥

एवं यः पूजयेद्बक्त्या नित्यकिलन्नां नरोऽन्वहम्। प्राप्नोति महतीं लक्ष्मीं प्रार्थते प्रमदाजनैः ॥२१॥ इति।

प्रातःकृत्यादि से योगपीठ न्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम कर इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि संमोहनाय ऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यकिलन्नायै देवतायै नमः। तदनन्तर ॐ हीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। किलन्ने शिखायै वैषट्। मदद्रवे हीं कवचाय हुं। स्वाहा नेत्रवयाय वौषट्। ॐ हीं नित्यकिलन्ने मदद्रवे हीं स्वाहा अस्त्राय फट्—इस प्रकार षड्ङ्ग मन्त्र से न्यास कर करन्यास कर ध्यानादि के पश्चात् पञ्चदल केशर के ईशानादि कोणों में आं द्राविण्यै वामायै नमः। ई हृदिन्यै ज्येष्ठायै नमः। ऊं क्षोभिण्यै रोक्रै नमः। ऐं गुह्यशक्त्यै नमः से पीठशक्ति की पूजा करके हीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः। से समस्त पीठ की पूजा करके मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर आवाहन से षड्ङ्ग पूजन तक करके अष्टदल में इं नित्यायै नमः। ई सुभद्रायै नमः। उं मङ्गलायै नमः। ऊं वनचारिण्यै नमः। एं दुर्भागायै नमः। ओं मनोमन्त्यै नमः। औं रुद्ररूपिण्यै नमः से पूजन कर उसके बाहर पञ्चदल में देवी के आगे से हीं अनङ्गायः नमः। हीं स्मराय नमः। हीं मन्मथाय नमः। हीं कामाय नमः। हीं माराय नमः से पूजन करके उसके बाहर दशादल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से कं रत्यै नमः। कां विरत्यै नमः। किं प्रीत्यै नमः। कीं विप्रीत्यै नमः। कुं मत्यै नमः। कूं दुर्मत्यै नमः। कों धृत्यै नमः। कों विधृत्यै नमः। कं तुष्ट्यै नमः। कः वितुष्ट्यै नमः से पूजन कर लोकपालों का पूजन कर पूजा का समापन करो।

इस मन्त्र का तीन लाख जप करे; दशांश हवन धी से करो। तर्पण आदि करके देशिक को धन-धान्यादि से सन्तुष्ट करो। तदनन्तर सम्यक् प्रयोग करो। मन्त्रोदित प्रयोग पूर्वोक्त विधि से करो। जो मनुष्य प्रतिदिन नित्यकिलन्ना का पूजन भक्तिसहित करता है, उसे महती लक्ष्मी के साथ प्रमदाओं का भोग मिलता है।

#### वाग्वादिनीकिलन्नामन्त्रप्रयोगः

तथा—

बालान्त्यहीना नित्यान्ते हस्त्वं बिन्दुविवर्जितम्। कामबीजं नद्वयं च शिवयुक्त्य मदौ वदेत् ॥१॥

द्रान्तेऽम्बु शिवयुग्महिजलानन्ताः सकान्ति खम्। अयं वाग्वादिनीकिलन्नामन्त्रो द्वादशवर्णकः ॥२॥

बालाविद्या पूर्वोद्भूता सा अन्त्यहीना तृतीयबीजरहिता तेन ऐं क्लीं इति बीजद्वयपुद्घृतम्। नित्य स्वरूपं, कामबीजं हस्त्वं हस्त्वेकारयुक्तं बिन्दुविवर्जितं तेन किल इति। नद्वयं शिवयुगेकारयुक्तं तेन त्रे इति। मदौ मकारदक्षारौ, द्र स्वरूपं, अम्बु वकारः, शिव एकारः तद्युक्तं तेन वे इति। हादि सकारः, जलं वकारः, अनन्त आकारस्तैः स्वा इति। सकान्ति खम् आकारयुक्तो हकारः तेन हा इति।

संमोहननिच्छ्रित्यकिलन्ना मुन्यादिका मताः। वाग्भवेन षड्ङ्गानि कृत्वा नित्यां विचिन्तयेत् ॥३॥

रक्तां सुरक्तवसनामरुणाङ्गरागां हस्ताम्बुजैः कमलपाशसृणीन् कपालम्।

संबिश्रुतीं त्रिनयनां शशिशेखरां तां नित्यां स्मरेद्वृदि मदाकुलिताङ्गयष्टिम् ॥४॥

दक्षाधःकरमार्थ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम्।

शाक्ते पीठे यजेदेवीं प्रोक्तेऽङ्गानि पुरा यजेत्। पूर्वोक्ताश्च ततो ह्यष्टशक्तीर्नित्यादिका यजेत् ॥५॥

अरुणा नीलकमलकपालाढ्यकराम्बुजाः। शतक्रत्यादिकान् बाहो वज्रादीनि ततो बहिः ॥६॥

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि संमोहनाय ऋषये

नमः। मुखे निचृच्छन्दसे नमः। हृदये नित्यक्लिन्नानित्यायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य इष्टसिद्ध्ये विनियोगः: इत्युक्त्वा, ऐं हृदयाय० इत्यादिकरषडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानाङ्गपूजान्ते अष्टदलेषु पूर्वोत्तिकादशाक्षरोत्त-नित्याद्यष्टशक्तीः संपूज्य लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति।

वाग्वादिनी क्लित्रा—वाग्वादिनी क्लित्रा का मन्त्र है—ऐं कर्त्ती नित्यक्लित्रे मदद्रवे स्वाहा। वाग्वादिनी क्लित्रा का यह मन्त्र बारह अक्षरों का है।

इस मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्द निचृद्, देवता नित्यक्लित्रा हैं। आं ई ऊं ऐं औ अः से षडङ्ग करके इस प्रकार नित्या का ध्यान करे—

रक्ता सुरक्षवसनामरुणाङ्गरागा हस्ताम्बुजैः कमलपाशमूणीन् कपालम्।

संबिप्रती त्रिनयनां शशिशेखरां तां नित्यां स्मरेद्भूदि मदाकुलिताङ्ग्यष्टिम्॥

निचले दाँये हाथ से शुरू करके निचले बाँये हाथों तक में आयुधों का ध्यान करे।

प्रयोग—प्रातःकृत्य करके योगपीठ न्यास तक की क्रिया सम्पन्न कर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुखे निचृच्छन्दसे नमः। हृदये नित्यक्लित्रानित्यायै नमः। इष्टसिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। ऐं हृदयाय नमः इत्यादि से षडङ्ग करे। ध्यान करके अंगपूजा करे। अष्टदल में पूर्वोत्त एकादशाक्षरोत्त नित्या की आठ शक्तियों की पूजा करे। लोकेशों की पूजा करके पूजा समाप्त करे।

तथा—

सम्बूद्ध्यन्ता मता नित्यक्लित्रा तद्वन्मदद्रवा। कामिकापञ्चमः कालः सविसर्गो दशाक्षरः ॥१॥

नित्यक्लित्रामनुः प्रोक्तो भजतां सर्वसिद्धिदः।

सम्बूद्ध्यन्ता नित्यक्लित्रे, तद्वत् मदद्रवे, कामिकापञ्चमो नकारः कालो म सविसर्गो मः इति।

ऋषिरत्रिक्लिष्टबुक्तं छन्दो नित्या च देवता ॥२॥

नित्यायै हृदयं स्वाहा नित्यायै शिर ईरितम्। क्लित्रेस्वाहा शिखा नित्यक्लित्रेन कवचं मतम् ॥३॥

नित्यक्लित्रे नमश्शाक्षं ध्यानं पूर्ववदाचरेत्। पूजादिकं चास्य मन्त्री पूर्ववत्परिकल्पयेत् ॥४॥ इति।

अथ प्रयोगः—मूलेन प्राणायामयं कृत्वा शिरसि अत्रये ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः, हृदये श्रीनित्यक्लित्रायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य सर्वाभीष्टार्थसिद्ध्ये विनियोगः, इति प्राणवदुक्त्वा मूलेन करयोव्यपिकं कृत्वा, नित्यायै हृदयाय नमः। नित्यायै शिरसे स्वाहा। क्लित्रे स्वाहा शिखायै०। नित्यक्लित्रे कवचाय हुं। नित्यक्लित्रे नमः अक्षाय फट्, इत्यज्ञुष्ठादिकनिष्ठानं करयोर्विन्यस्य हृदयादिष्वपि नेत्रहीनेषु पञ्चाङ्गेषु न्यसेत्। ततो ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्वमन्त्रवत् कुपर्यत्। तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं तदशांशं हुनेत्तिलैः। तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोत्तविधिना सुधीः ॥५॥

नित्यामन्त्रं जपेद्यः सहुतविधियैः सार्वनार्तपौष्टीश

स स्याद् दारिद्र्यदुःखामयगणवियुतो वत्सराणां शतं च।

जीवेद्विष्टं समग्रं वशयति मनुविन्मोहयत्याशु लोकं

देहान्ते मुक्तिमिष्टां परमतिविमलां प्राप्नुयात्रान्नयथात्र ॥६॥ इति।

नित्यक्लित्रा का अन्य मन्त्र—नित्यक्लित्रा का एक अन्य दश अक्षरों का मन्त्र होता है—नित्यक्लित्रे मदद्रवे नमः। इसके भजन से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास करे। शिरसि अत्रये ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये नित्यक्लित्रायै देवतायै नमः। सर्वाभीष्टसिद्ध्ये विनियोगः। दोनों हाथों से मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे। षडङ्ग न्यास करे। नित्यायै हृदयाय नमः। नित्यायै शिरसे स्वाहा। क्लित्रे शिखायै वषट्। नित्यक्लित्रे कवचाय

हुं। नित्यकिलने नमः अस्त्राय फट्। यह पञ्चाङ्ग न्यास होता है। इसी प्रकार करन्यास करे। तब ध्यान-पूजनादि पूर्व मन्त्र के समान करे।

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। दर्शांश हवन तिल से करे। पूर्वोक्त विधि से तर्पणादि करे। नित्या मन्त्र का जप, हवन, तर्पण, अर्चन जो करता है, वह एक वर्ष में दिरिता, दुःख, रोग से मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। सारा संसार उसके वश में होता है और देहान्त के बाद मोक्ष प्राप्त करता है, यह कथन अन्यथा नहीं है।

सारसंग्रहे—

प्रणवं भुवनेशानी जलं वह्यम्ब्वनन्तयुक्। डेनतं सिनीपदं हच्च नववर्णा समीरिता ॥१॥

विद्येयं वह्विवासिन्याः सर्वसौख्यफलप्रदा। यस्याः स्मरणतो वश्यं जायते भुवनत्रयम् ॥२॥ इति।

(जलं व, वह्वः स्वरूपं, अम्बु व, अनन्त आ, तद्युक्तस्तेन वा, डेन्त सिनी सिन्यै, हन्त्रमः) दक्षिणा-मूर्तिसंहितायाम् (२२ प०)—

ऋषिवर्सिष्ठश्छन्दः स्याद्वायत्री देवता त्वियम्। आद्यन्ते बीजशक्ती तु कीलकं मध्यमेव च ॥१॥ इति।

देवता त्वियं वह्विवासिनी। सारसंग्रहे—

विद्याद्वितीयबीजेन दीर्घस्वरयुजा सुधीः। मायान्तेन षडङ्गानि कुर्याम्नी कराङ्गयोः ॥३॥

नवाक्षराणि विद्याया नवरन्धेषु विन्यसेत्। व्यापकं च समस्तेन कुर्याद् देव्यात्मसिद्धये ॥४॥

तपतकाञ्चनसङ्काशाणं नवयौवनसुन्दरीम्। चारुम्परमुखाभ्योजविलसन्नयनत्रयाम् ॥५॥

अष्टभिर्बहुर्युक्तां माणिक्याभरणोज्जवलाम्। रक्ताङ्कम्बुपुण्ड्रेक्षुचापपूर्णेन्दुमण्डलान् ॥६॥

दथानां बाहुभिर्वामैः कहारं हेमशृङ्गकम्। पुष्पेषु मातुलुङ्गं च दथानां दक्षिणैः करैः ॥७॥

स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। नवयोनिकर्णिकायां कृत्वा तद्विहरम्बुजम् ॥८॥

द्वादशच्छदसंयुक्तं विदध्याच्च मनोहरम्। तद्विहश्वरुपे द्वे द्वारद्वयसमन्विते ॥९॥

पूर्वपश्चिमयोस्तस्मिंश्क्रे देवीं समर्चयेत्। मध्ये समावाह्य वह्विवासिनीं विश्वविग्रहाम् ॥१०॥

गन्धपूष्पैर्निवेद्यानैरुपचारैर्यजेत् क्रमात्। अङ्गानि पूर्वमध्यर्च्च वक्ष्यमाणाश्च शक्तयः ॥११॥

अष्टकोणेषु संपूज्यास्तदग्रात् प्रदक्षिणम्। ज्वालिनीविस्फुलिङ्गिन्यो मङ्गला समनोहरा ॥१२॥

कनका कितवा विश्वा विविधा चेति शक्तयः। दलेषु द्वादशवेता राशिशक्तीः समर्चयेत् ॥१३॥

मेषां वृषाह्वयां शक्ति मिथुनां कर्कटामपि। सिंहां कन्यां तुलां कीटां चापां च मकरामपि ॥१४॥

कुम्भां मीनां यजेत्रागवदग्रादारभ्य मन्त्रवित्। चतुरस्तद्वारारुपामर्पयोः कोणदिक्षु च ॥१५॥

मन्त्रविद्वक्ष्यमाणश्च दश शक्तीः समर्चयेत्। घस्मरा सर्वभक्षा च विश्वा च विविधोद्भवा ॥१६॥

चित्ररूपा निःसप्तला निरातङ्का च पावनी। अचिन्त्यवैभवा रक्ता दशमी परिकीर्तिता ॥१७॥

लोकपालांस्ततो बाह्ये तदन्नाणि ततो बहिः। पूजेयं वह्विवासिन्याः प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा ॥१८॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्या प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि वशिष्याय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीवह्विवासिनीनित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये ॐ बीजाय नमः, पादयोः नमः शक्तये नमः, नाभी वह्विवासिन्यै कीलकायै नमः, इति विन्यस्य (हींहींमिति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षनेत्रे ॐ नमः, वामे हीं, दक्षकर्णे वं, वामे हिं, दक्षनासि वां, वामे सिं, मुखे न्यै, लिङ्गे नं, गुदे मः नमः इति विन्यस्य) मूलविद्या मूर्धादिपादान्तं व्यापकं कृत्वा ध्यानादिमानसपूजान्ते प्रमाणोक्तचक्रमुद्धृत्याद्यस्थापना-दिस्वात्मपूजनान्ते भुवनेश्वरीपीठं संपूज्यावाहनादिपुष्पोपचारान्तेऽङ्गानि संपूज्य, अष्टयोनिषु देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिणयेन—ज्वालिन्यै नमः। विस्फुलिङ्गिन्यै०। मङ्गलायै०। मनोहरायै०। कनकायै०। कितवायै०। विश्वायै०। विविधायै० नमः। इति अष्टशक्तीः संपूज्य, ततस्तद्विहर्द्वदशदलेषु प्रादक्षिणयेन मेषायै नमः, वृषायै०, मिथुनायै०, कर्कटायै०, सिंहायै०, कन्यायै०,

तुलायै०, कीटायै०, चापायै०, मकरायै०, कुम्भायै०, मीनायै०, इति राशिशक्तीः संपूज्य, चतुरसे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिण-भागमारभ्य प्रादक्षिणयेन घस्मरायै०, सर्वभक्षायै०, विश्वायै०, विविधोद्भवायै०, चित्ररूपायै०, निःसप्तलायै०, निरातङ्कायै०, पावन्यै०, अचिन्त्यवैभवायै०, रक्तायै०, इति देव्यग्रद्वारपाश्चद्वयाग्नेयदक्षिणनिर्वृतिवायव्यकोणेषु देव्याः पृष्ठभागद्वारपाश्चादित ईशानकोणावधि संपूज्य तद्वाहे लोकपालांसदस्थाणि संपूजयेत्। एतदुक्तफलदं भवति।

**वहिवासिनी मन्त्र**—सारसंग्रह में पठित मूलोक्त श्लोक का उद्धार करने पर वहिवासिनी का नव अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार होता है—ॐ हौं वहिवासिन्यै नमः। वहिवासिनी की यह विद्या सर्व सौख्यदायिका है। इसके स्मरण-मात्र करने से तीनों लोक वश में होते हैं।

प्रातःकृत्य से योगपीठ न्यास तक करने के बाद मूल विद्या से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास शिरसि वसिष्ठाय ऋषये नमः। मुखे गायत्री छन्दसे नमः। हृदये वहिवासिनी नित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ३० बीजाय नमः। पादयोः नमः शक्तये नमः। नाभौ वहिवासिन्यै कीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके हीं हीं से करन्यास, षडङ्ग न्यास करे। तब मन्त्रवर्ष न्यास करे। दक्षनेत्रे ३० नमः। वामे हीं नमः। दक्षकणे वं नमः। वामे हिं नमः। दक्षनसि वां नमः। वामे स्ति नमः। मुखे न्यै नमः। लिङ्गे नं नमः। गुदे मः नमः। मूल विद्या से मूर्धा से पैरों तक व्यापक न्यास करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

तपताञ्जनसङ्खाशां नवयौवनसुन्दरीम्। चारुस्मेरमुखाभोजविलसन्त्रयाम् ॥

अष्टभिर्बहुभिर्युक्तां मणिक्याभरणज्ज्वलाम्। रत्नाञ्जकम्बुण्डेक्षुचापपूर्णेन्दुमण्डलान् ॥

दधानां बाहुभिर्वामैः कहरं हेमशृङ्गकम्। पुष्पेषु मातुलुङ्गं च दधानां दक्षिणैः कहैः॥

उपर्युक्त ध्यान के बाद मानस पूजन करे पहले नव त्रिकोण चक्र बनावे। उसके बाहर द्वादश दल कमल बनावे। उसके बाहर दो द्वारों से युक्त दो चतुरस बनावे। इसे स्थापित करे। अर्ध-स्थापनादि से आत्मपूजा तक की क्रिया करे। भुवनेश्वरी पीठ में देवी का पूजन पुष्पोपचार तक करे। तब कर्णिका में छः अंगों की पूजा करे।

एष त्रिकोण में देवी के आगे से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से पूजा करे—ज्वालिन्यै नमः। विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। मंगलायै नमः। मनोहरायै नमः। कनकायै नमः। कितवायै नमः। विश्वायै नमः। विविधायै नमः। इन आठ शक्तियों की पूजा के बाद द्वादश दल में प्रादक्षिण्य क्रम से मेषायै नमः। वृषायै नमः। मिथुनायै नमः। कर्कटायै नमः। सिंहायै नमः। कन्यायै नमः। तुलायै नमः। कीटायै नमः। चापायै नमः। मकरायै नमः। कुम्भायै नमः। मीनायै नमः। से पूजा करे। इन बारह राशिशक्तियों के बाद चतुरस में देवी के आगे वाले द्वार के दक्षिण भाग से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से घम्सरायै नमः। सर्वभक्षायै नमः। विश्वायै नमः। विविधोद्भवायै नमः। चित्ररूपायै नमः। निःसप्तलायै नमः। निरातंकायै नमः। पावन्यै नमः। अचिन्त्यवैभवायै नमः। रक्तायै नमः। से देवी के आगे वाले द्वार पाश्चद्वय, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, वायव्य कोणों में पृष्ठभाग द्वारपाश्चादि से ईशान कोण तक इनकी पूजा करे। इसके बाहर लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे। वहिवासिनी की यह पूजा समस्त समृद्धियों को देने वाली होती है।

#### तत्त्वयोगकाम्यहोमविधिः

तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं तदशांशं हुनेद् धृतैः। तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा ॥१९॥  
**सिद्धमन्त्रः** प्रकुर्वीत प्रयोगान्निजवाज्जितान्। काम्यहोमविधिं वक्ष्ये सम्यग्वाज्जितदायकम् ॥२०॥  
**शालितण्डुलमाधाय** प्रस्थं भाण्डे नवे क्षिपेत्। समानवर्णवित्साया रक्ताया गोः पयस्तथा ॥२१॥  
**द्विगुणं** तत्र निक्षिप्य इनपयेत् संस्कृतेऽनले। धृतेन सिंकं सम्यनु कृत्वा च ससितं करे ॥२२॥  
**निधाय** विद्यामष्टोर्ध्वशतं जप्त्वा हुनेत्तः। एवं होमो महालक्ष्मीमावहेत्प्रतिपत्कृतः ॥२३॥  
**शुक्रवारेष्वपि** तथा वर्षान्वृपसमो भवेत्। पञ्चम्यां च विशेषेण प्राग्वद्वोमं समाचरेत् ॥२४॥  
**तत्स्यां** तिथौ त्रिमध्यकैर्मल्लिकादैः सितहुर्नेत्। अन्नाज्याभ्यां च नियतं हुत्वा त्वाव्युतो भवेन्नरः ॥२५॥

यद्यद्वि वाञ्छितं वस्तु तानि सर्वाणि सर्वदा। धृतहोमादवाप्नोति तथैव तिलतण्डुलैः ॥२६॥  
पञ्चमीषु विशेषेण पूजां कुर्याद् व्रती भवेत् । इति।

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। उसका दशांश हवन धी से करे। तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन करावे। तदनन्तर इस सिद्ध मन्त्र से अपनी इच्छा के अनुसार प्रयोग करे। अब काप्य होम को कहता हूँ, जो सम्यक् वाञ्छित फलदायक है। एक प्रस्थ = १ किलो शालि तण्डुल लेकर नये भाण्ड में रखे। लाल रंग के बछड़े वाली लाल गाय के टूध दो किलो उसमें डालकर संस्कृत आग में पकावे। उसमें धी डाले, शक्वर डाले। सबको मिलाकर १०८ बार विद्या का जप करे और हवन करे। प्रतिपदा में हवन करे तो महालक्ष्मी की कृपा होती है। प्रत्येक शुक्रवार में एक वर्ष तक हवन करे तो होता राजा के समान हो जाता है। विशेषकर पञ्चमी में पूर्ववत् हवन करे। उस तिथि में त्रिमधुरात् मर्लिकादि उजले फूलों से हवन करे। अन्न और गोधृत के हवन से अन्न और धी से घर भरा रहता है। इच्छानुसार सभी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। धी और तिल चावल के हवन से भी उसी प्रकार के फल मिलते हैं। विशेषकर प्रत्येक पञ्चमी में व्रत रहकर पूजा करे।

#### वत्रप्रस्तारिणीविद्योद्धारादि

अथ वत्रप्रस्तारिणीविद्यमिन्द्रामन्दिरं शुभम् । वच्चि लोकहितार्थाय यथावच्च समाप्तः ॥१॥  
वत्रप्रस्तारिणीविद्यमिन्द्रामन्दिरं शुभम् । कान्तारसागरकूरदुःखसंघातारिणीम् ॥२॥  
सर्वनारीनरपतिनरसंमोहकारिणीम् । अरुणांकोधिनी शान्तियुक्ता सृष्टिक्रियाक्षयुक् । तपञ्चमद्वयं रुद्रयुक्तं ज्ञानामृतेन्दुयुक् ॥३॥  
जयेन्द्रग्न्याप्यायानीयुग्मीर्थं विद्येव कामिका । क्षुधावती विषं थानं पुनस्तद्विसंयुतम् ॥४॥  
उत्कारी शिवयुक्त्रोक्त्वा बीजमाद्यं पुनर्वदेत् । द्वदशार्णा महाविद्या प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा ॥५॥

अरुणा हकारः, अं स्वरूपं, क्रोधिनी रेफः, शान्तिरीकारः, एभिर्मायाबीजमुद्धृतम्। सुष्ठिः ककारः, क्रिया लकारः, अक्षि इकारः, एभिः क्लिङ्ग इति। तपञ्चमद्वयं नकारद्वयं, रुद्र एकारस्तद्वयुक्तं तेन त्रै। ज्ञानामृता ऐकारः इन्द्रुनुस्वारस्तेन ऐं इति। जया ककारः, इन्द्रुनुस्वाराः, अग्नी रेफः, आप्यायानी ओकारस्तेन क्रों, दीर्घा न विद्या इ तेन नि, कामिका त, क्षुधावती य, तेन त्वा विषं म, थानं द, पुनस्तदेव दकारः, वही रेफस्तद्वयुतं द्वा उत्कारी वकारः, शिव एकारः, तेन वे। आद्यबीजं मायाबीजम्। दक्षिणामूर्तिः (२२ प०) —

द्वादशार्णा पराविद्या ऋषिर्ब्रह्मा च गीयते । गायत्री छन्द आख्यातं देवता परमेश्वरी ॥१॥

परमेश्वरी वत्रेश्वरी । सारसंग्रहे—  
आद्यन्ते बीजशक्ती तु वाग्भवं कीलकं भवेत् । क्लिन्ने हृदयमैं प्रोक्तं शिरश्चैवाङ्गुशं शिखा ॥६॥  
नित्य वर्म मद नेत्रं द्रवेऽस्त्रं समुदीरितम् । मायथा पुटितानेतानङ्गषट्के प्रकल्पयेत् ॥७॥  
प्रत्येकं शक्तिपुटितान् मन्त्रार्णान् दश विन्यसेत् । श्रोत्रानासाकपोलाक्षिकाभिगुह्येष्वनुक्रमात् ॥८॥  
ततः संचिन्तयेद् देवीं सर्वसौख्यप्रदायनीम् । रक्तां रक्ताम्बरां रक्तगन्धमाल्यविभूषणम् ॥९॥  
चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् । पाशाङ्गुशाविक्षुचापं दाढिमीसायकं तथा ॥१०॥  
दधानां बाहुभिन्नैत्रेद्यामदसुशीतलैः । पश्यन्तीं साधकं अत्रष्टकोणाव्यमहीपुरो ॥११॥  
चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम् । शक्तिभिः स्वस्वरूपाभिरावृतां पोतमध्यगाम् ॥१२॥  
सिंहासनेऽभितः प्रेहुत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः । वृतां ताभिर्विनोदांश्च यातायातादिभिः सदा ॥१३॥

कुर्वणामरुणाम्भोधौ चिन्तयेमन्त्रनायिकाम् ।

वत्रप्रस्तारिणी विद्या—सारसंग्रह में कहा गया है कि लक्ष्मी के आवासस्वरूप वत्रप्रस्तारिणी विद्या को लोककल्याण के लिये यथावत् कहता हूँ। यह सभी नारियों, राजाओं एवं मनुष्यों को सम्मोहित करने वाली है। जंगल, सागर, कूर दुःखसं

से पार उतारने वाली है। श्लोक ३-५ का उद्धार करने पर बारह अक्षरों की यह विद्या होती है—हीं किलत्रे एं क्रों नित्यमद्रवे हीं। यह विद्या सर्वसिद्धिदा है।

इस द्वादशाक्षरी पराविद्या के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता परमेश्वरी वत्रेश्वरी हैं। हीं बीज, कलीं शक्ति एवं ऐं कीलक है। षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—हीं किलत्रे हृदयाय नमः, हीं क्रों शिरसे स्वाहा, हीं नित्य शिखायै वषट्, हीं मद कवचाय हुं, हीं द्रवे अस्त्राय फट्। मन्त्र के दश वर्णों को हीं से पुष्टि करके न्यास करे। जैसे—हीं कलीं हीं श्रोत्रे हींत्रे हीं नासायां इत्यादि। इसी प्रकार कपोल, आँख, नाभि, गुह्या में न्यास करे। तब सर्व सौख्यप्रदायिनी देवी का निम्नवर्त् ध्यान करे—

रक्तां रक्ताम्बरां रक्तगन्धमात्यविभूषणम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।।  
पाशाङ्कुशाविक्षुचापं दाढिमीसायकं तथा। दधानां बाहुभिन्नेवैर्यामदसुशीतलैः॥  
पश्यन्तीं साधकं त्र्यस्त्रष्टकोणाज्ञमहीयुरे। चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम्॥  
शक्तिभिः स्वस्वरूपाभिरावृतां पोतमध्यगाम्। सिंहासनेऽभितः प्रेष्ठत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः॥  
वृतां ताभिर्विनोदाद्य यातायातादिभिः सदा। कुर्वाणमरुणाम्भोधौ चिन्तयेन्मन्त्रनायिकाम्॥

ध्यानोदिते मण्डले च शक्तिपीठसुशक्तिके ॥१४॥

शोणाभ्यं हेमपोतं च सिंहासनमनन्तरम्। तत्र चक्रं ततो देवीं सम्यगावाह्य पूजयेत् ॥१५॥  
अरुणैर्गन्ध्यकुसुमैर्धूपदीपनिवेदैकैः । अङ्गानि पूजयेदादौ त्रिकोणस्थास्तु पूजयेत् ॥१६॥  
इच्छाज्ञानक्रियासंज्ञाः षट्कोणोष्वर्चयेत्ततः । डाकिनीं राकिणीं चैव लाकिनीं काकिनीं ततः ॥१७॥  
शाकिनीं हाकिनीं चैव पद्मद्वादशपत्रगाः । हल्लेखा क्लेदिनी क्लिन्ना क्षोभिणी मदनातुरा ॥१८॥  
निरञ्जना रागवती तथैव मदनावती । मेखला द्राविणी वेगवती द्वादश शक्तयः ॥१९॥  
ततः षोडशपत्रेषु वक्ष्यमाणाः प्रपूजयेत् । कमला कामिनी कल्पा कला कलितकौतुके ॥२०॥  
किराता कालकदने कौशिकी कम्बुवहिनी । कातरा कपटा कीर्तिः कुमारी कुङ्गुमापि च ॥२१॥  
चतुरस्रगताश्शापि शक्तीर्वक्ष्ये यथाक्रमात् भगिनी वेगिनी नागा चपला पेशला सती ॥२२॥  
रतिः श्रद्धा भोगलोला मदोन्मत्ते मनस्विनी । दिक्षु द्वाराग्रपार्श्वेषु कोणादिक्षु च संस्थिताः ॥२३॥  
द्वादशैता महादेव्यश्चतुरस्त्रेऽभितो यजेत् । यजेदाशाधिपान् बाह्ये तदस्वाणि ततो बहिः ॥२४॥  
एतत्संपूजनान्मत्यो दारिद्र्यान्मुच्यतेऽचिरात् । रोगापमृत्युदौर्भाग्यजरादोर्वैर्विवर्जितः ॥२५॥

देहान्ते भवभीतेश्च मुच्यते नात्र संशयः । इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातः कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्री छन्दसे नमः। हृदये श्रीवत्रेश्वरीनित्यायै देवतायै नमः। पादयोः हीं शक्तये नमः। नाभौ ऐं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य ममेष्टार्थसिद्धये विनियोगः, इति कृताङ्गलिरुक्त्वा, हींकिलत्रेहीं हृदयाय नमः। हींऐंहीं शिरसे स्वाहा। हींकिंत्रेहीं शिखायै वषट्। हींनित्यहीं कवचाय हुं। हींमदहीं नेत्रवत्राय वौषट्। हींद्रवेहीं अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, दक्षश्रोत्रे हींकिलंहीं नमः। वामे हींत्रेहीं नमः। दक्षनसि हींऐंहीं नमः। वामे हींकिंहीं नमः। दक्ष कपोले हींनिंहीं नमः। वामे हींत्यहीं नमः। दक्षनेत्रे हींमंहीं नमः। वामे हींदंहीं नमः। नाभौ हींदंहीं नमः। गुह्ये हींवेहीं नमः, इति विन्यस्य मूलविद्यया व्यापकं कृत्वा ध्यानादिमानसपूजान्ते द्वादशदलकमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां षट्कोणं तमध्ये त्रिकोणं, द्वादशदलाद्वाहिः षोडशदलं तद्विश्वतुरस्त्रत्रयं चतुर्द्वारयुक्तं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः प्राग्वत् संस्थाप्याभ्यर्थ्यस्थापनादिकमात्मपूजान्तं कृत्वा पीठपूजायां मण्डूकादिपृथिव्यर्चान्ते शोणाव्यौ हेमपोतं तमध्ये रल्सिंहासनं च संपूज्य, धर्मादिषडङ्गपूजान्ते त्रिकोणस्थापकोणमारभ्य ॐ इच्छाशक्त्यै नमः। ज्ञानशूक्त्यै०। क्रियाशक्त्यै० इति संपूज्य, षट्कोणेषु देव्या वामकोणे डाकिण्यै नमः, दक्षिणे राकिण्यै०। पृष्ठकोणे

लाकिन्यै०। पृष्ठवामकोणे काकिन्यै०। पृष्ठदक्षिणकोणे शाकिन्यै०। देव्यग्रकोणे हाकिन्यै नमः, इति संपूज्य, द्वादशदलेषु देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिणयेन हल्लेखायै नमः, क्लेदिन्यै०, क्लिन्नायै०, क्षोभिण्यै०, मदनातुरायै०, निरञ्जनायै०, रागवत्यै०, मदनावत्यै०, मेखलायै०, द्राविण्यै०, वेगवत्यै० इति संपूज्य, षोडशदलेषु कमलायै नमः, कमिन्यै०, कल्पायै०, कलायै०, कलितायै०, कौतुकायै०, किरातायै०, कालायै०, कदनायै०, कौशिक्यै०, कम्बुवाहिन्यै०, कातरायै०, कपटायै०, कीर्त्तिं०, कुमार्यै०, कुङ्गुमायै० इति संपूज्य, चतुरस्त्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य द्वारपार्श्वेषु कोणेषु च प्रादक्षिण्यक्रमेण भगिन्यै०, वेगिन्यै०, नागायै०, चपलायै०, पेशलायै०, सत्यै०, रन्यै०, श्रद्धायै०, भोगलोलायै०, मदायै०, उन्मत्तायै०, मनस्विन्यै० इति संपूज्य, लोकेशार्चादिसर्वं प्रावगत् समापयेदिति। तथा—

मन्त्री लक्ष्मयं जप्त्वा तदशांशं हुनेद् धृतैः । आरग्वधप्रसूनैर्वा प्रसूनैर्बकुलोद्भवैः ॥२६॥

मधूकजैश्च पद्मैर्वा त्रिमध्यतैश्च मन्त्रवित् । चन्द्रचन्दनकस्तूरीकाशमीरसुरभीकृतैः ॥२७॥

तर्पयेद् दिनशस्तद्वत्सलिलैर्भक्तिमान् सुधीः । आत्मानमधिषिद्यच्याथ तर्पयेद् ब्राह्मणानपि ॥२८॥

एवं संसिद्धमन्त्रसु नित्याचार्णनिरतस्तथा । गुरुभक्तः प्रकुर्वीत प्रयोगान् निजवाञ्छितान् ॥२९॥

ध्यान में उदित मण्डल में शक्तियों से सम्प्रत्र शक्तिपीठ में शोणसागर में सोने के जहाज पर सिंहासन पर स्थित देवी का आवाहन करके लाल गन्ध, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य से पूजा करे। पहले त्रिकोण में अंगों की पूजा करे। त्रिकोण में इच्छा, ज्ञान, क्रिया की पूजा करे। तब षट्कोण में डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी की पूजा करे। इसके बाद द्वादशदल कमल में हल्लेखा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, क्षोभिणी, मदनातुरा, निरंजना, रागवती, मदनावती, मेखला, द्राविणी, वेगवती बाह शक्तियों की पूजा करे। तब षोडशदल कमल में कमला, कमिनी, कल्पा, कला, कलिता, कौतुका, किराता, काला, कदना, कौशिकी, कम्बुवाहिनी, कातरा, कपटा, कीर्ति; कुमारी एवं कुङ्गुमा की पूजा करे। चतुरस्त्र में देवी के सामने वाले द्वार पार्श्वों एवं दिक्कोणों में प्रदक्षिण क्रम से भगिनी, वेगिनी, नागा, चपला, पेशला, सती, रति, श्रद्धा, भोगलोला, मदा, उन्मता, मनस्विनी की पूजा करे। तब इन्द्रादि दिव्यालालों और उनके आयुधों की पूजा करके पूजन का समापन करे।

तदनन्तर तीन लाख मन्त्र जप करे। दशांश हवन धी आरग्वध फल या वकुल के फूल, महुआ फूल या कमल को त्रिमधुराक्त करके करे। तर्पण, मार्जन करके ब्राह्मणभोजन कराये। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने पर नित्य अर्चन में निरत रहकर साधक गुरुभक्त बनकर अपना वांछित प्रयोग करे।

### तत्काम्यहोमद्रव्यविधानम्

सहस्रजापी स्थिरधीर्मन्त्रवीर्यविदात्मवान् । यः सोऽपि काम्यान् कुर्वीत प्रयोगान्नायथा क्वचित् ॥३०॥  
यदाज्ञानेन मोहेन चापलेनाथ वाचरेत् । अनर्थक्लेशराजादिपीडाः प्राप्नोति निश्चितम् ॥३१॥  
अरुणोः पङ्कजैर्होर्मं कुर्यात्त्रिमधुराल्पुतैः । मण्डलाल्लभते लक्ष्मीं महतीं श्लाघ्यविग्रहाम् ॥३२॥  
कहाँैः क्षीद्रसंयुक्तैः पूर्णाद्यं तदिनावधि । जुहुयान्त्रित्यशो भक्त्या सहस्रं विकचैः शुभैः ॥३३॥  
तत्तद् दिनेषु पूर्वोक्तान् भोजयेदुक्तरूपतः । तावच्च जप्याद्वोमोऽथ यावत्संख्यं हुतं कृतम् ॥३४॥  
चम्पकैः क्षीद्रससिक्तैः सहस्रहवनाद् ध्रुवम् । लभते स्वर्णनिष्काणां शतं मासेन पूर्ववत् ॥३५॥  
पाटलैर्घृतसंसिक्तैस्त्रिप्रसादात् शतं दशादिमासाल्लभते वित्राणि वसनानि च ॥३६॥  
कर्पूरचन्दनाद्यानि सुगन्धीनि च मासतः । वस्तूनि लभते हृदैरन्वैर्भोगोपयोगिभिः ॥३७॥  
शालीभिः क्षीरसिक्ताभिर्मन्त्रविच्च शतं हुनेत् । तेन शालीसमृद्धिः स्यान्मासैः षड्भिरसंशयम् ॥३८॥  
तिलैहुनेन्रवशात् वर्षादारोग्यमानुयात् । स्वजन्मसु त्रिषु तथा दूर्वाभिर्जुहुयासुधीः ॥३९॥  
निरातङ्को महाभोगः शतं वर्षाणि जीवति । गुदूचीतिलदूर्वाभिः त्रिषु जन्मसु संहनेत् ॥४०॥

**चिरायुः** श्रीयशोधान्यभोगपुण्यादिभागभवेत् । धृतपायसदुर्गम्ये हुतेस्तेषु त्रिषु क्रमात् ॥४१॥

**आयुरारोग्यविभवैः** नृपमान्यो भवेत्तथा । सप्तप्यां कदलीहोमात्सौभाग्यं लभते शुब्रम् ॥४२॥

**दूवात्रिकैस्तु प्रादेशमात्रैः** त्रिस्वादुसंयुतैः । षण्मासादब्दतो वापि रोगानुक्तः सुखी भवेत् ॥४३॥

हजार जपकर्ता, स्थिर बुद्धि, मनवीर्य का जानकार होने पर ही काम्य प्रयोगों को साधक करे; अन्यथा कभी न करे। यदि अज्ञान से, मोह से या चपलता से कोई प्रयोग करता है तो अनर्थ, क्लेश एवं राजादि से पीड़ा उसे निश्चित रूप से ग्राप्त होती है। त्रिमधुरात्क लाल कमल से हवन चालीस दिनों तक करे तो प्रशंसनीय स्वरूप वाली महान् लक्ष्मी प्राप्त होती है। मधुमिश्रित कल्हार के विकसित फूलों से पूर्णिमा से पूर्णिमा तक प्रतिदिन एक हजार हवन करे, पूर्वोक्त ब्राह्मणों को उतने दिनों तक भोजन करावे, जप के बराबर हवन करे तो उक्त फल मिलता है। मधुसिक्त चम्पा के हजार फूलों के हवन से एक माह में एक सौ सोने के सिक्के मिलते हैं। अमावस्या से अमावस्या तक एक महीने धृतसिक्त गुलाब के फूलों से तीन हजार हवन प्रतिदिन करने से विविध भौति के वस्त्र मिलते हैं। कपूर, चन्दनादि सुगन्ध से एक महीने तक हवन करने से इच्छित वस्तुओं के साथ अन्य उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। दूधसिक्त शालि चावल से मनोच्चारण के साथ हवन करने से छः महीनों में शालि चावल की समृद्धि प्राप्त होती है। तिल से नव सौ हवन करने पर एक वर्ष में आरोग्य प्राप्त होता है। अपने तीनों जन्मदिनों में दूर्वा से हवन करने पर साधक निरातंक महाभोग भोगते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहता है। तीनों जन्मदिनों में गुरुच, तिल और दूर्वा के हवन से चिरायु, श्री, यश, धन-धान्य, भोग, युण्यादि से युक्त होता है। धी पायस दूध से हवन तीन जन्मदिनों में क्रम से करने पर आयु-आरोग्य-वैभव के साथ साधक नृपमान्य होता है। सप्तमी में केला के हवन से सौभाग्य प्राप्त होता है। त्रिमधुरात्क बिता भर लम्बा दूवात्रिक के हवन से छः माह या एक वर्ष में रोगमुक्त होकर सुखी होता है।

**तद् दिनेषु जपेद्विद्यां नित्यशः सलिलं स्पृशन् । सहस्रवारं तत्त्वोयैः स्नानं पानं समाचरेत् ॥४४॥**

**पाकाद्यमपि तैव कुर्याद्ग्राविमुक्तये । साध्यर्क्षवृक्षसंचूर्णत्रूषणं सर्वपास्तिलाः ॥४५॥**

**पिष्ठश्च साध्यपादोत्तरजसा च समन्वितम् । कृत्वा पुत्तलिकां तैस्तु हृदये नामसंयुताम् ॥४६॥**

**प्राग्वच्छित्त्वायसैस्तीक्ष्णैः शङ्खैः पुत्तलिकां हुनेत् । एवं दिनैः सप्तकैर्वा त्रिभिर्वैक्दिनेन वा ॥४७॥**

**साध्यो वश्यो भवेच्छीघ्रमतिदूरस्थेऽपि च । तथाविधां पुत्तलिकां कुण्डमध्ये खनेद्वुवि ॥४८॥**

**उपर्यग्निं निधायात्र विद्या दिनशो हुनेत् । त्रिसहस्रं त्रियामायां सर्वपैस्त्रद्रसाप्तुतैः ॥४९॥**

**शतयोजनदूरादप्यानयेद्विनितां बलात् । तां तु पुत्तलिकामर्थमधूच्छिष्टसमविताम् ॥५०॥**

**कृतप्राणप्रतिष्ठां च शमशाने निखेन्निशि । साध्ययोनिं च तत्रैव च्छित्वा दत्त्वा बर्लिं ततः ॥५१॥**

**कृत्वाभिषेकं तां विद्यां प्रजपेच्च शतत्रयम् । अरातेरष्टमे राशौ मासात्रानाविधैरपि ॥५२॥**

**रौगैर्भूतादिसंक्लेशोर्नाशमेति सुनिश्चितम् । यद्यन्तरात्समुद्धत्य सलिले तां खनेन्निशि ॥५३॥**

**क्लेशैस्तैः स विनिर्मुक्तः सुखी जीवति भूतले । साध्यवृक्षेण कृत्वा तां सर्वपाज्यनिवेशिताम् ॥५४॥**

**तोयमध्ये निधायैतत् क्वाथयेदुक्तवासरैः । वैरी घोरज्वरेणार्तः कृते प्राग्वत्सुखी भवेत् ॥५५॥**

**तामेव चण्डिकागोहे तथा बलियुतां खनेत् । साध्यो नरश्चेत्रारी चेच्छासुरायतने खनेत् ॥५६॥**

**तद्विधानेन सततं शत्रुरुम्नादवान् भवेत् । इति ।**

सप्तमी को जल का स्पर्श करके हजार बार मन्त्र जप करे और उसी जल से स्नान करो। उसका पान करे एवं उसी से खाना पकावे-खाये तो रोग से छुटकारा होता है। साध्य नक्षत्रवृक्षचूर्ण त्रूषण सरसों तिल पिष्ठ में साध्य के पदतल की धूल मिलाकर पुत्तली बनावे। उसके हृदय में नाम लिखे। तेज औजार से पुराली को पूर्ववत् काट-काटकर सात दिनों तक तीन दिनों तक या एक दिन हवन करे तो साध्य वश में हो जाता है, बहुत दूर रहने वाली भी वश में होता है। उसी प्रकार पुत्तली बनाकर कुण्ड में गाड़ दे, उसके ऊपर आग जलाकर दिन में तीन हजार हवन सरसों के रस से प्लुत सरसों से करे तो सौ योजन दूर रहने वाली वनिता को भी बलपूर्वक ले आती है। पूर्वोक्त प्रकार की पुत्तली में मोम लगाकर प्राण-प्रतिष्ठा करके

रात में श्मशान में गाइ दे। वहाँ पर साथ्य योनि के जीव की बलि काटकर देवे। अभिषेक करे। तीन सौ विद्या का जप शत्रु की अष्टम राशि में करे तो एक महीने के अन्दर शत्रु नाना प्रकार के रोग और भूतादि से पीड़ित होकर मर जाता है एवं यदि श्मशान में गड़ी पुतली को निकालकर जल में गाड़ दे तब शत्रु क्लेशमुक्त होकर संसार में सुखी जीवित रहता है। साथ्य वृक्ष की पुतली बनाकर सरसों और गोधृत उसमें निवेदित करके जल में डाल कर उसका क्वाथ बनावे तो वैरी बुखार से आर्त होता है। पूर्ववत् मूर्ति को जल में डालने से रोगों सुखी होता है। इसी प्रकार चण्डिका मन्दिर में पुतली को गाड़कर बलि देने से साथ्य नर या नारी पागल होता है। उसी प्रकार शत्रु के घर में पुतली गाइने से वह उन्मादयस्त हो जाता है।

### वत्त्रप्रस्तारिणीमन्त्रान्तरम्

तथा—

अथ वाग्वादिनीक्लिन्नाद्वितीयार्णं तु योजयेत्। माया मेषा द्वादशार्णा वत्त्रप्रस्तारिणी मता ॥१॥

वाग्वादिनी क्लिन्ना पूर्वोक्ता तस्या द्वितीयार्णं द्वितीयार्णस्थाने मायां भुवनेश्वरीबीजं योजयेत्, तत्र स्थितं कामबीजमपास्येत्यर्थः। तथा—

मुनिः स्याद्विन्नास्त्रिष्टुप् छन्दः प्रोक्तोऽस्य देवता । वत्त्रप्रस्तारिणी प्रोक्ता सर्वाजवशंकरी ॥२॥

बीजेनाद्येन चाङ्गानि कल्पयेत्स्तद् क्रमात्सुधीः । ध्यानपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेत् ॥३॥

पूर्ववद्वत्त्रप्रस्तारिणीवत्। हींहींमित्यादिना षडङ्गन्यासः । अन्यत्सुगमम्।

वत्रेश्वरी का अन्य मन्त्र—वत्रेश्वरी का अन्य मन्त्र इस प्रकार है—हीं क्लिन्ने ऐं हीं नित्यमदद्रवे हीं। इसके ऋषि अंगिरा, छन्द त्रिष्टुप्, देवता सर्वाजवशंकरी वत्रेश्वरी हैं। हाँ हीं हूँ से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। ध्यान पूजा आदि सब कुछ पूर्ववत् होता है।

### शिवदूतीमनोरुद्धारादि

अथ शिवदूती, सारसंग्रहे—

भुवनेशी चतुर्थन्तशिवदूतीपदं सहत्। सप्तार्णोऽयं मनुः प्रोक्तः शिवदूत्यास्त्रिवर्गदः ॥१॥

भुवनेशी हीं, चतुर्थन्तशिवदूती शिवदूतै, हन्त्रमः दक्षिणामूर्तिः (२२ प०)—

ऋषी रुद्रोऽस्या गायत्री छन्दः स्यादेवता शिवा । आद्यन्ते बीजशक्ती च मध्यं कीलकमुच्यते ॥१॥

शिवा शिवदूती। तथा—

षडदीर्घस्वरयुक्तेन बीजेनाद्येन कल्पयेत्। षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित् ॥२॥

तेनैव पुटितैरन्यैर्मन्त्राणीर्विन्यसेत् तनौ । श्रोत्रानासाक्षोलाक्षिनाभिषु क्रमतः सुधीः ॥३॥

षष्ठं मनसि विन्यस्य व्यापकं विद्यया न्यसेत् । निदायकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम् ॥४॥

नवरत्नकीरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम् । नानाभरणसंभिन्नदेहकान्तिविराजिताम् ॥५॥

शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभिः । पाणिं खेटं गदां रत्नचषकं वामबाहुभिः ॥६॥

दक्षिणारुद्धुशं खद्गं कुठारं कमलं तथा । दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमविताम् ॥७॥

ध्यात्वैवं पूजयेदेवीं दूतीं दूरितनाशिनीम् । वृत्तद्वयं बहिरूपसं तदद्वयं षडलाम्बुजम् ॥८॥

तथा षडस्त्रमष्टास्त्रं तद्वदष्टदलाम्बुजम् । भूपुरे वहिवासिन्याः कृत्वा तन्मध्यगां शिवाम् ॥९॥

आवाहाय्यर्घयेदेवीं दूतीं दुर्नीतिवारिणीम् । शाक्ते पीठे गन्धपुष्टैरुपचारैः समाहितः ॥१०॥

वृत्तमध्ये द्वितीये च वृत्ते चाङ्गानि पूजयेत् । इच्छाजानकियाशक्तीः त्रिषु कोणेषु पूजयेत् ॥११॥

शिवां वाणीं दूरसिद्धां त्यैविग्रहवतीमपि । नादां मनोन्मनीं षट्सु पत्रेषु परिपूजयेत् ॥१२॥

डाकिन्याद्याः षडस्त्रेषु सर्वस्त्वग्रात्प्रदक्षिणाम् । मूलदेवीसमाकारवण्यिथसमन्विताः ॥१३॥

सुमुखी सुन्दरी सारा सुप्राणा च सरस्वती । समया सर्वगा सिद्धेत्युक्ता अष्टाशशक्तयः ॥१४॥  
 वागीशी वरदा विश्वा विनदा विघ्नकारिणी । वीरा विघ्नहरा विद्या पूज्या: प्रत्राष्टके त्विमाः ॥१५॥  
 विह्लाकर्षिणी लोला नित्या मदनमालिनी । प्रमोदा कौतुका पुण्या पुराणा चतुरस्त्रगाः ॥१६॥  
 पूज्या बाहो लोकपालास्तदस्त्राणि च तद्भवितः । एवं पूजा मया प्रोत्का शिवदत्या यथाविधि ॥१७॥ इति।

**अथ प्रयोगः—**तत्र प्रातःकृत्पादियोगपीठन्यासाने मूलविद्याया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि रुद्राय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीशिवदूतीनित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रीबीजाय नमः। पादयोः नमः शक्तये नमः। नाभौ शिवदूत्यै कीलकाय नमः, इति विन्यस्य सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति प्रागवदुक्त्वा ध्यानादिमानसपूजाने स्वर्णादिपट्टे चन्दनादिना वृत्तद्वयं कृत्वा (तद्वहिः स्वाभिमुखात्रं त्यस्त तद्वहिः पुनर्वृत्तद्वयं तद्वहिः षड्दलपदं) तद्वहिः षट्कोणं तद्वहिरष्टकोणं तद्वहिरष्टदलं कमलं तद्वहिः पूर्वपञ्चमयोद्वारद्वययुक्तं चतुरस्त्रयमिति पूजाचक्रं, निर्माय, संस्थाप्य अर्थस्थापनादिपुष्पोपचारान्ते वृत्तान्तराले षड्ज्ञानि प्रागवत् संपूज्य, त्रिकोणस्याग्रकोणादिप्रादक्षिणेन ॐ इच्छाशक्त्यै नमः। ज्ञानशक्त्यै०। क्रियाशक्त्यै०, इति संपूज्य, षट्डलेषु शिवायै नमः। वाण्यै० दूरसिद्ध्यै० त्यैविग्रहवत्यै० नादायै० मनोन्मन्त्यै० इति संपूज्य, षट्कोणेषु देव्यग्रकोणादिप्रादक्षिणयेन हाकिन्यै नमः। राकिण्यै० शाकिन्यै० लाकिन्यै० काकिन्यै० डाकिन्यै० इति संपूज्य, अष्टकोणेषु सुमुख्यै नमः, सुन्दर्यै० सारायै० सुमनायै० सरस्वत्यै० समयायै० सर्वगायै० सिद्धायै० इति संपूज्य, अष्टदलेषु वागीश्यै नमः, वरदायै० विश्वायै० विनदायै० विघकारिण्यै० वीरायै० विघ्नहरायै० विद्यायै० इति संपूज्य, चतुरसे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य प्रादक्षिणयेन विह्वलायै नमः, आकर्षिण्यै० लोलायै० नित्यायै० मदनायै० मालिन्यै० प्रमोदायै० कौतुकायै० पुण्यायै० पुराणायै० इति संपूज्य, लोकपालार्चादि प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

एकलक्षं जपेनमन्त्रं जुहुयात् साधकोत्तमः । तदृशांशं पयोन्नेन सर्पिरक्तेन मन्त्रवित् ॥१८॥

तर्पयेत्तदशांशेन सुगन्धिसलिलैः शुभैः । आत्मानमभिषिद्व्याथ ब्राह्मणांस्तोषयेद्गुरुम् ॥१९॥

**शिवदूती**—सारसंग्रह में पठित श्लोक का उद्घार करने पर शिवदूती का सप्ताक्षरी मन्त्र होता है—हीं शिवदूत्यै नमः। दक्षिणामूर्ति के अनुसार इस मन्त्र के ऋषि रुद्र, छन्द गायत्री, देवता शिवा हैं तथा हीं बीज, नमः शक्ति और शिवदूत्यै कीलक हैं। षडङ्ग न्यास हाँ हीं हूँ हैं हौँ हैः से किया जाता है। हीं से पुटित मन्त्रवर्णों का न्यास कान, नाक, कपोल, आँख में होता है। पूरी विद्या से व्यापक न्यास किया जाता है। तदनन्तर निम्नवत् ध्यान करे—

निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम् । नवरत्नकीरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम् ।

नानाभरणसंभित्रदेहकान्तिविराजिताम्। शचिस्मितामष्टभूजां स्तुयमानां महर्षिभिः।

पाशं खेटं गदां रत्नचषकं वामबाहुभिः। दक्षिणैरङ्कशं खड्गं कुठारं कमलं तथा।

दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमन्विताम्

ध्यान के पश्चात् मानस पूजन करके सुवर्ण आदि के पट्ट पर चन्दन आदि से दो वृत्त बनाकर, उसके बाहर स्वाभिमुखाग्र विक्रीण, उसके बाहर पुनः दो वृत्त, उसके बाहर षड्दल कमल, उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर अष्टकोण, उसके बाहर अष्टदल कमल, उसके बाहर पूर्व और पश्चिम की ओर द्वारयुक्त तीन चतुरस्र वाले पूजाचक्र को बनाकर स्थापित करके अर्धस्थापन से पुष्पोपचार तक पूजन कर वृत्तों के मध्य में पूर्ववत् षट्डल पूजन करके विक्रीण के अग्रिम कोण से प्रदक्षिण क्रम से ३० इच्छाशक्त्यै नमः, ज्ञानशक्त्यै नमः, क्रियाशक्त्यै नमः: से पूजन कर छः दलों में शिवायै नमः, वाण्यै नमः, दूरसिद्धायै नमः, त्वैविग्रहवत्यै नमः, नादायै नमः, मनोन्मन्यै नमः, से पूजन कर षट्कोण में देवी के सम्मुखस्थ कोण से प्रदक्षिण क्रम से हाकिन्यै नमः, राकिण्यै नमः, शाकिन्यै नमः, लाकिन्यै नमः, काकिन्यै नमः, डाकिन्यै नमः, पूजन कर अष्टकोण में सुमुख्यै नमः, सुन्दर्यै नमः, सारायै नमः, सुमनायै नमः, सरस्वत्यै नमः, समयायै नमः, सर्वगायै नमः, सिद्धायै नमः, पूजन कर अष्टदलों में वागीश्यै नमः, वरदायै नमः, विश्वायै नमः, विनदायै नमः, विघ्नकारिण्यै नमः, वीरायै नमः, विघ्नहरायै नमः, विद्यायै नमः: से पूजन करके चतुरस्र में देवी के अग्रस्थित द्वार के दक्षिण भाग से आरम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से विह्वलायै नमः, आकर्षिण्यै

नमः, लोलायै नमः, नित्यायै नमः, मदनायै नमः, मालिन्यै नमः, प्रमोदायै नमः, कौतुकायै नमः, पुण्यायै नमः, पुराणायै नमः से पूजन कर लोकपालादि का अर्चन पूजा का समापन करे।

तदनन्तर एक लाख मन्त्र जप करे। दशांश हवन टूथ-धी से सिंक अन्न से करे। हवन का दशांश तर्पण सुगच्छित जल से करे। मार्जन करे और ब्राह्मणभोजन कराये।

### शिवदूषीभन्नप्रयोगकाम्यहोमविधिः

एवं संसिद्धमन्त्रस्तु प्रयोगान् कर्तुमर्हति । काम्यहोमविधिं वक्ष्ये सम्यक्सङ्गल्पसिद्धिदम् ॥२०॥  
 येनासौ वाञ्छितं क्षिप्रमवाप्नोति सुनिश्चितम् । वशयेद्वनिता होमाद् गुगुलैस्तिलमित्रितैः ॥२१॥  
 नारिकेलसमोपेतैर्गुडैर्लक्ष्मीमवाप्नुयात् । तथाज्यसिक्तैः कह्लारैः क्षीराक्तैररुणोत्पलैः ॥२२॥  
 त्रिमध्यतैश्शम्पकैश्च प्रसूनैर्बकुल्लोद्भवैः । मधूकजप्रसूनैश्च हुतैः कन्यामवाप्नुयात् ॥२३॥  
 पुनागजैहुतैर्वैख्याण्याज्यैरिष्टमवाप्नुयात् । माहिवैर्महिराजैरजा गच्छैश्च गास्तथा ॥२४॥  
 अवाप्नोति हुतैः साज्यै रत्ने रत्नानि साधकः । शालिपिष्टमर्यां कृत्वा पुतलीं सितसंयुताम् ॥२५॥  
 हद्देशे न्यस्तसाध्याख्यां पचेत्तलाज्ययोर्निशि । तां मन्त्री च दिवा रात्रौ विद्याजपां तु भक्षयेत् ॥२६॥  
 सप्तरात्रप्रयोगेण नरो नारी नुपोऽथवा । दासवच्च समायाति वित्तं प्राणादि चार्पयेत् ॥२७॥  
 हयारिपुष्यैररुणैः सितैर्वा जुहुयात्तथा । त्रिसप्तरात्रान्महतीमवाप्नोति श्रियं नरः ॥२८॥  
 छागमांसैख्निमध्यतैहोमात् स्वर्णमवाप्नुयात् । क्षीराक्तैः शस्यसंपत्रां भुवं प्राप्नोति मण्डलात् ॥२९॥  
 पदाक्षेहृवनाल्लक्ष्मीमवाप्नोति त्रिभिर्दिनैः । समस्तापतारणीयं मोहिनी विश्वरञ्जिनी ॥३०॥

**श्रीकरी शिवदूष्याद्वा प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा। इति।**

इस प्रकार से मन्त्रसिद्धि होने पर प्रयोग करने की अर्हता प्राप्त होती है। अब सम्यक् संकल्प सिद्धिप्रद काम्य होम का वर्णन करता हूँ, जिससे वाञ्छित शीघ्र प्राप्त होता है। तिल और गुगुल मिलाकर हवन करने से बनिता वश में होती है। नारियल और गुड़ के हवन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। आज्यसिक्त कल्हार, दूधसिक्त लाल कमल, त्रिमधुरात् चम्पा, बकुल, महुआ के फूलों के हवन से विवाह होता है, कन्या मिलती है। पुत्राग के हवन से वस्त्र, गोधृत के हवन से इष्ट की प्राप्ति होती है। भैंस के धी से हवन करने पर भैंस, गव्य के हवन से गाय एवं गोधृत और रत्न के हवन से रत्नों की प्राप्ति होती है। शालिचावल के पिष्ट में शक्कर मिलाकर पुतली बनावे। पुतली के हृदय में साध्य नाम लिखे। रात में तेल और धी में उसे पकावे। साधक उसे खाकर दिन-रात जप करे। सात रातों तक ऐसा करने से नर-नारी या राजा वश में होते हैं; वे दास के समान आते हैं और धन-प्राण अर्पण कर देते हैं। लाल या उजले कनैल से तीन रात या सात रातों तक हवन करने से महती श्री की प्राप्ति होती है। त्रिमधुरात् बकरे के मांस के हवन से सोना मिलता है। क्षीरसिक्त छाग मांस के हवन से फसलसम्पन्न भूमि चालीस दिनों में मिलती है। तीन दिनों तक कमलगटे के हवन से लक्ष्मी मिलती है। सभी दुःखों को छुड़ाने वाली मोहिनी, विश्वरञ्जिनी, श्रीकरी यह शिवदूती सभी समृद्धियों को प्रदान करती है।

### त्वरितामन्त्रोद्भारादि

अथ (त्वरिता) सारसंग्रहे—

त्वरितामन्त्रमथ ते वक्ष्यामि सर्वसिद्धिदम् । सर्वापत्तारकं सर्वसंपत्सन्तानसिद्धिदम् ॥१॥

मूर्ध्युग्नदत्तपंक्तिश्च हल्लेखा कवचान्त्यका । दक्षदोःकूर्परोष्ठो स्तो वामदोर्मूलकं ततः ॥२॥

तदन्त्योष्ठावन्तिमं च भृगुणान्तिमरेफयुक् । सशान्तिः खं वामकर्णिबन्दुयुक्सेस्वरोऽन्तिमः ॥३॥

शक्तिरक्षान्तको मन्त्रो द्वादशार्णः समीरितः ।

दत्तपंक्तिः ओकारः, मूर्ध्युक् बिन्दुयुक्, तेन ओं। हल्लेखा भुवनेश्वरीबीजं हीं। कवचं हुं। दक्षदोः कूर्पः

खकारः ओष्ठः ए तेन खे। वामदोर्मूलं चकारः, दन्त्योष्ठो छकारेकारौ ताभ्यां च्छे। अन्तिमः क्षकारः। भृगुः सकारः, णान्तेन तकारेण रेफेण च युक्तः। सशान्तिः ईकारयुतस्तैः स्त्री। खं हकारः, वामर्कणः ऊकारः, बिन्दुरनुस्वारः एतैः हूं। अन्तिमः क्षकारः, स एकारयुतस्ताभ्यां क्षे। शक्तिः हीं, अस्त्रं फट्कारः। तथा—

ऋष्याद्या अर्जुनविराट्वरिताहाः समीरिताः ॥४॥

कूर्मधैः सप्तभिः पूर्वपूर्वहीनैः षडङ्गकः। द्वाभ्यां द्वाभ्यां विना मायां कृत्वा मन्वर्णकान्वयसेत् ॥५॥

कूर्मश्कारः। द्वाभ्यामित्यनेन 'चच्छे हत्' च्छेक्षः शिरः, इत्यादि प्रयोगे वक्ष्यते। नारायणीये तु—  
नवमादितीयानं यदस्या वर्णसप्तकम्। तेनाङ्गानि द्विवर्णानि कर्तव्यान्युपदेशतः ॥६॥

उपदेश इत्यनेन पूर्वपूर्वत्यागः सूचितः। तेन 'खेच हत्, चच्छे शिरः, इत्यादि यथागुरुपदेशं कार्यम्।

कभालकण्ठहन्त्राभिगुह्योरुषु सजानुषु। जङ्घयोः पादयोर्मन्त्री सर्वेण व्यापकं न्यसेत् ॥६॥

लसच्छ्यामतनुं रक्तपङ्गजोद्यत्यदाम्बुजाम्। ताठङ्गाङ्गदविद्योतिरशनानुपुरात्मकैः ॥७॥

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातिभिर्भीमविग्रहैः। द्विद्विक्षमादृष्टानागैः कल्पितोद्यत्सुभूषणाम् ॥८॥

शेषश्च वासुकिर्विप्रौ तक्षककौटकौ नृपौ। वैश्यौ पद्ममहापद्मौ तुर्यौ कुलिकशङ्खपौ ॥९॥

शङ्खपः शङ्खपालः।

पल्लवांशुकसंबीतां शिखिपिच्छकृतैः शुभैः। वलयैर्भूषितभुजां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥१०॥

बर्हिर्बहूकृतापीडां तच्छ्रां तत्पताकिनीम्। गुञ्जाफललसद्व्याविलसत्कुचमण्डलाम् ॥११॥

त्रिनेत्रां चारुवदनां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्। वराभयकरां गण्डद्वयीमुकुरशोभिताम् ॥१२॥

तनुपथ्यलताभुग्नपृथुलस्तनयुग्मकाम्। अरुणायतसनेत्रां सुशोणाधरपल्लवाम् ॥१३॥

विलासमन्दिरं देवीं तरुणीं संसरेत्सुधीः। आसने हेमरचिते त्वष्टसिंहवृतेऽभितः ॥१४॥

सरोजमष्टपदं स्याद्वृत्युग्मं ततो भवेत्। तद्विभूर्पुरद्वन्द्वं पश्चिमद्वारसंयुतम् ॥१५॥

मायापीठोदिता अत्र नवशक्तीः प्रपूजयेत्। त्वरितां वक्ष्यमाणेन विधानेनात्र संयजेत् ॥१६॥

अन्त्यं सदण्डी वर्मथ खं सदण्डी सुधा ऋदे। विद्यद्वान्त्यः सकर्णाग्निरप्येतदद्वन्द्वकं पुनः ॥१७॥

अन्त्यं सनेत्रार्थचन्द्रो गुलगर्जद्वयं वदेत्। उपान्त्यस्वरयुग्मयोम वर्मन्त्यो दीर्घबिन्दुयुग् ॥१८॥

डेन्तं पञ्चाननं हृच्च पीठमन्त्र उदाहतः।

अन्त्यं क्षकारः, सदण्डी सानुस्वारः तेन क्षां। वर्म हुं खं हकारः सदण्डी सानुस्वारः तेन हं। सुधा वकारः। ऋदे स्वरूपं। वियत् हकारः। भान्त्यः मकारः कर्ण उ तेन मु। अग्नी रेफः अपिशब्दादुकारः तेन रु। सुनरेतद् द्वयं मुरु इति। अन्त्यं क्षकारः, सनेत्रः इकारसहितः अर्धचन्द्रो बिन्दुः तेन क्षिं इति। गुलद्वयं गर्जद्वयं चेत्यर्थः। उपान्त्यस्वरो बिन्दुः, तद्युग्म्योम हकारः तेन हं। वर्म हुं। अन्त्यः क्षकारः, दीर्घः आकारः बिन्दुरनुस्वारः तेन क्षां। डेन्तं पञ्चाननं पञ्चाननाय। हत् नमः।

अनेन मनुना दद्यादासनं मूर्तिकल्पना। मूलमन्त्रेण कर्तव्या त्वरितां पूजयेत्ततः ॥१९॥

यथावत् केसरेष्वद्वपूजा कार्या विपक्षिता। प्रणीतां चैव गायत्रीं यजेन्तत्रैव मन्त्रवित् ॥२०॥

तत्रैव सप्तमाष्टमकेसरेषु। षडङ्गानि संपूज्यावशिष्टकेसरयोर्विपक्षितेत्यनेन षडङ्गपूजायां विशेष उक्तः। यथा अत्र देव्यप्रकेसरमारभ्य प्रादक्षिणयेन षट्सु केसरेषु षडङ्गानि संपूज्यावशिष्टकेसरद्वये शक्तिद्वयं पूजयेदिति। उक्तं च मृडानीतन्त्रे—'अष्टसिंहासने पूज्या दले पूर्वादिकं क्रमात्'। इति 'अङ्गं प्रणीतां गायत्रीं' इति तोतलामतेऽपि। 'यजेत् तत्राष्टपत्रेषु (पूर्वाशाद्यङ्गदेवताः। सौम्ये प्रणीतामैशो च गायत्रीमभिपूजयेत्)' इति। पद्मापादाचार्याश्च पूर्वादिष्टसु

केसरेषु) षडङ्गानि संपूज्य उत्तरैशानयोस्भयं पूजयेदिति। प्रपञ्चसारे—(१३.३३) हृकार्याख्या खेचरिचण्डे सच्छेदनी तथा क्षेपणी। भूयः स्त्रियाहृयाहुंकारीक्षेमङ्कर्यश्च संपूज्याः॥१॥ सर्वीवीजा लोकेशायुधभूष-णान्विता दलाग्रेषु' इति लोकेशवाहनमपि ज्ञेयम्। 'इन्द्रादिलोकपालानां वर्णा वाहायुधैः समाः' इति तोतुलामतात्। तथा—फट्कारी चाप्यग्रे सचापशरधारिणी च तद्वाहो॥२॥ सस्वर्णवित्रयष्ठौ द्वाःस्ये पूज्ये पुनर्जयाविजये। कृष्णो बर्बरकेशो लकुडधरः किङ्करश्च तत्पुरतः॥३॥ वर्वरः उद्घृषितः, धूसर इति यावत्। लकुडः गदा। 'कृष्णवर्णो गदापाणिं' रिति सारसंग्रहवचनात्। सोरसंग्रहे—

किङ्कराय रक्षयुगं त्वरिताज्ञास्थिरो भव। कवचान्ते फट्च वदेदनेन मनुना ततः॥१॥  
आरक्तैर्वन्संभूतैर्मोज्जैश्च सुगच्छिभिः। धूपदीपादिभिर्नृत्यगीतैः संपूजयेच्छिवाम्॥२॥  
एवं पूजां विधायाग्रे जपेद्विद्यां सहस्रकम्। शतं वा कृत्होमस्तु प्रागवत्यूजां समापयेत्॥३॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अर्जुनाय ऋषयै नमः। मुखे विराजे छन्दसे नमः। हृदये श्रीत्वरितानित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ॐ बीजाय नमः। पादयोः हीं शक्तये नमः, इति विन्यस्य मम सकलपुरुषार्थसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, चक्षे हृदयाय नमः। क्षेच्छः शिरसे स्वाहा। क्षःस्त्री शिखायै वषट्। स्त्रीहुं कवचाय हुं। हृक्षे नेत्रयाय वौषट्। क्षेफट् अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यानाद्यात्मपूजाने भुवनेश्वरीपीठमध्यर्थ्यावाहनादिपुष्पोचारान्तेऽषट्दलकेसरेषु देव्यग्रादिष्टकेसरेषु षडङ्गानि संपूज्य, अन्तिमकेसरयोः—३० प्रणीतायै० ३० गायत्रै० इति संपूज्य, अष्टदलेषु—३० हृक्यायै०, खेचर्यै०, चण्डायै०, च्छेदिन्यै०, क्षेपण्यै०, स्त्रियै०, हृक्यायै०, क्षेमङ्कर्यै०, इति संपूज्य, देव्यग्रे ३० फट्कायै नमः, देव्यग्रद्वारदक्षवामापार्श्वयोः—३० जयायै०, विजयायै०, इति संपूज्य, द्वाराग्रे एव 'किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञास्थिरो भव हुंफट्' किङ्कराय नमः, इति संपूज्य लोकेशार्चादि प्रागवत् समापयेदिति। अत्र हृक्यार्थदिशक्तीनां लोकेशात्म-कत्वाल्लोकपालार्चा नास्तीति केचित्।

**त्वरिता**—मूलोक्त सारसंग्रह के श्लोकों का उद्धार करने पर बाहर अक्षरों का त्वरिता-मन्त्र होता है—३० हीं हुं खेचछेक्षः स्त्री हुं क्षेहीं फट्। इसके ऋषि अर्जुन, छन्द विराट् एवं देवता त्वरिता हैं। षडङ्ग न्यास चंडे से हृदय, छेक्षः से शिर इत्यादि में किया जाता है।

नारायणीय में कहा गया है कि खेच से हृदय, चंडे से शिर इत्यादि में न्यास गुरु के उपदेशानुसार करना चाहिये।

षडङ्ग न्यास—चंक्षे हृदयाय नमः। चेच्छः शिरसे स्वाहा। क्षः स्त्री शिखायै वषट्। स्त्रीहुं कवचाय हुं। हृक्षे नेत्रयाय वौषट्। क्षे फट् अस्त्राय फट्। मन्त्रवर्णों का न्यास भाल, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, जानु, जंधा, पैरों में करे। पूरे मन से व्यापक न्यास करे। तदनन्तर निम्नवत् ध्यान करे—

लसच्छ्यामतनुं रक्तपङ्कजोद्यतपादाम्बुजाम्। ताटङ्काङ्कदविद्योतिरशनानुपुरात्मकैः ॥

विप्रक्षत्रिविष्टशुद्रजातिभिर्भीमविधैः। द्विद्विक्रमादष्टनागैः कल्पितोद्यत्सुभूषणाम्॥

शेषश्च वासुकिविर्गौ तक्षककोंठकौ नृणौ। वैश्यौ पद्ममहापद्मौ तुर्यौ कुलिकशङ्खपौ॥

पल्लवांशुकसंवीतां शिखिपिच्छकौः शुभैः। वलयैर्भूषितभुजां मणिक्यमुकुटोज्जलाम्॥

बर्द्धबहूवृत्तापीडां तच्छ्रां तत्पत्ताकिनीम्। गुञ्जाफललसद्वाविलसल्कुचमण्डलाम्॥

त्रिनेत्रां चारुवदनां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्। वराभयकरां गण्डद्वयीमुकुरसोभिताम्॥

विलासमन्दिरं देवीं तरुणीं संस्परोत्सुधीः। आसने हेमरचिते त्वष्टसिंहवृतेऽभितः॥

पूजन यन्त्र में पहले अष्टदल कमल बनावे। उसके बाहर दो वृत्त बनावे। उसके बाहर पक्षिम द्वारयुक्त दो भूपुर बनावे।

भुवनेश्वरी पीठोदित नव शक्तियों की पूजा करे। त्वरिता की पूजा इस मन्त्र से विधिवत् करे—क्षं हुं हं वक्रदेहे घुर घुर हिंगुल हिंगुल गर्ज गर्ज हं हं क्षां पञ्चाननाय नमः।

ऋषि न्यास—शिरसि अर्जुन ऋषये नमः, मुखे विराट् छन्दसे नमः, हृदि त्वरिता देवतायै नमः।

मन्त्र न्यास—मूर्धन्य ॐ नमः। भाले हुं नमः। गले खें नमः। हृदि चं नमः। नाभौ छे नमः। गुह्ये क्षं नमः। ऊर्वोः स्त्री नमः। जानुनि हुं नमः। जंघयोः क्षं नमः। पादद्वन्द्वे फट् नमः। मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे।

करन्त्यास—च्छे अंगुष्ठाभ्यां नमः। छे क्षः तर्जनीभ्यां स्वाहा। क्षस्त्री मध्यमाभ्यां वषट्। स्त्री हुं अनामिकाभ्यां हुं। हुंक्ष कनिष्ठाभ्यां नमः। वौषट्। क्षं फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार हृदयादि न्यास करके पूर्ववत् ध्यान करे।

ध्यान के बाद मानस पूजा करके शङ्ख स्थापित करे। सामान्य पद्धति से पीठपूजा करे। केसरों में पूर्वादि क्रम से ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोषात्र्यै नमः, ॐ अधोरायै नमः, ॐ मंगलायै नमः से पूजन करे। मध्य में क्षं हुं हुं वक्र देहे घुर घुर हिंगुल हिंगुल गर्ज गर्ज हं हं क्षां पञ्चाननाय नमः से पूजा करे।

पूर्ववत् ध्यान करे। आवाहन पृष्ठाङ्गलि दान तक सभी कर्म समाप्त करके आवरण पूजा आरम्भ करे। अग्न्यादि कोणों में च्छे गायत्रै हृदयाय नमः, छेक्षः गायत्रै शिरसे स्वाहा। क्षस्त्री गायत्रै शिखायै वषट्। स्त्री हुं गायत्रै कवचाय हुं। हुंक्षे गायत्रै नेत्रयाय वौषट्। दिशाओं में क्षे फट् गायत्रै अस्त्राय फट्।

इसके बाद उत्तर दिशा में और ईशान कोण में प्रणीता और गायत्री की पूजा करे। पद्मदलों में श्रीबीज आगे लगाकर हुंकारी, खेचरी, चण्डा, छेदिनी, क्षेपिणी, स्त्री, हुंकारी और सायुध-भूषण क्षेमझरी की पूजा करे। जैसे—श्रीं हुंकार्यै नमः इत्यादि। तब पद्म के बाहर धनुष-बाणधारिणी फट्कारिणी की पूजा करे। द्वार के दोनों पार्श्वों में ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः से पूजा करे। उसके बाहर किंकराय रक्ष रक्ष त्वरिताऽऽज्ञास्तिरो भव हुं फट् से पूजा करे। इस प्रकार पूजा के बाद देवी के आगे एक हजार जप करे अथवा एक सौ जप करे। हवन करके पूर्ववत् पूजा का समाप्तन करे।

मृडानीतन्त्रे—

त्वरिता देवि शब्दान्ते विद्धहे तूर्णिमुद्धरेत्। विद्यायै धीमहि प्रोक्ता तत्रो देवी प्रचोदयात्॥१॥

गायत्री त्वरितायात् जपात् सान्निध्यकारिणी।

इति गायत्र्युक्ता। प्रपञ्चसारे (१३.३१) —

दीक्षां प्राप्य गुरोरथ लक्षं जप्याद् दशांशकं जुहुयात्।

बिल्वसमिद्धिक्षिमधुरसिक्तभिः साधकः सुसंवत्थीः॥१॥ इति।

सारसंग्रहे—

एवं संस्मृत्य लक्षैकं प्रजपेन्मनुवित्तमः। मध्वक्तविल्वसमिधो जुहुयात् द दशांशतः॥१॥  
सुगम्यिसलिलैश्चैव तर्पयेत्त्वरितां पराम्। आत्मानपर्भिषिच्याथ कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्॥२॥  
एवं सिद्धे मनौ तस्मै नरनारीनराधिषाः। नमस्क्रियां प्रकुर्वन्ति नात्र कार्या विचारणा॥३॥  
देवदानवग्न्यर्थव्यक्षचारणयोषितः। सिद्धविद्याधराणां च योषा ह्यप्सरसस्तथा॥४॥  
विस्पृष्टजघनोरस्काः स्पष्टदोर्मूलमञ्जुलाः। प्रस्त्रिलत्पदविन्यासाः प्रस्त्रिन्दशनांशुकाः॥५॥  
रम्यमीषुभुम्पिलितनयनेन्द्रीवाराश्च ताः। श्लथमानाङ्गवसनाः श्लथकुञ्जितमूर्धजाः॥६॥  
मन्दस्खलितभाषिण्यः प्रसादाकाङ्क्षया मुहुः। सम्यक् शिरोविरचितनत्यञ्जलय उत्कटम्॥७॥  
पश्य वाचं प्रयच्छाशु ह्याश्लेषसुखमेधि नः। एहि रम्यं सुरोद्यानं रंस्यामोऽत्र निजेच्छया॥८॥  
निरातङ्कं सदेत्यादिवादिनीभिरहर्निशाम्। प्रलोभ्यमानो मन्त्रज्ञो यदा विक्रियते न सः॥९॥

तदैत्य वाञ्छितं तस्मै ददाति त्वरिताखिलम् । सञ्जप्य कर्पण्योर्विद्यां यष्ट्या च जपसिद्धया ॥१०॥  
संताङ्गं शीर्षे सहसा मृतमुत्थापयेदसौ ।

मृतं सर्पादिदृष्टिं शेषः ।

मृडानी तन्त्र के अनुसार त्वरिता गायत्री इस प्रकार है—त्वरिता देवि विघ्ने त्वरिताविद्यायै धीमहि तत्रो देवी प्रचोदयात् । प्रपञ्चसार में कहा गया है कि गुरु से दीक्षा प्राप्त करके मन्त्र का एक लाख जप करे । दशांश त्रिमधुरात् बेल की समिधा से हवन करे । सारसंग्रह में कहा गया है कि इस प्रकार देवी का स्मरण करके साधक एक लाख जप करे । मधुसिसु बेल की समिधा से दशांश हवन करे । परा त्वरिता का तर्पण सुवासित जल से करे । अपना मार्जन करे और ब्राह्मणभोजन कराये, तब मन्त्र सिद्ध होता है । मन्त्र सिद्ध होने पर साधक को नर-नारी-नृपति नमस्कार करते हैं । देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, चारण, वनिता, सिद्ध, विद्याधर, युवतियाँ और अप्सराएँ साधक के प्रसन्नता की इच्छा करती हैं और अपने शिर पर सम्प्रक अंजलि बाँधकर कहती हैं कि हम सभी तुम्हारे सुख के लिये हैं, यह सुरों का उद्यान है, तुम अपनी इच्छानुसार इसमें विहार करो । यदि मन्त्रज्ञ निरातंक होकर इन सुन्दरियों के प्रलोभन में नहीं आता तब त्वरिता उसे वाञ्छित वरदान देती है । सर्पदंश से मृत्युक्ति के कान में यह मन्त्र जप कर जपसिद्ध छड़ी से उसके शिर पर प्रहर करे तो मृतक सहसा जीवित हो उठता है ।

तथा—

काय्यहोमविधिं वक्ष्ये यथाविधि विधानवित् । कृत्वा योनिं कुण्डमध्ये समाधायाग्निमत्र ताम् ॥१॥  
योनिं स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणम् ।

संपूर्ज्य पूर्वविधिना देवतां पूर्ववत् सुधीः । तिलसर्षपगोधूमशालिधान्यवैहुनेत् ॥२॥  
त्रिमध्यकैरकशो वा समेतैर्वा समृद्धये । बकुलैश्म्पकै रक्तकहूररुणोत्पलैः ॥३॥  
कैरवैर्मल्लिकाकुन्दमधूकैरन्दिरापतये । अशोकैः पाटलैर्बिल्वैर्जतीविचकिलैः सितैः ॥४॥  
नवैर्नीलोत्पलैरश्वरिपुजैः । कर्णिकारजैः । होमाल्लक्ष्मीं च सौभाग्यमायुर्नित्यं यशो निधिम् ॥५॥  
यद्यद्वि वाञ्छितं सर्वं तत्तदाप्नोति निश्चितम् । दूर्वा गुडूचीमश्त्र्यं वटमारगवधं तथा ॥६॥  
सिताब्जलक्षकं हृत्वा रोगान्मुक्तो नरोऽचिरात् । इक्षुजम्बूनारिकेलमोचागुडसिता हुनेत् ॥७॥  
अचलां लभते लक्ष्मीं भोक्ता च भवति धूवम् । एतेरुदीर्तिराज्यमधुक्षीरप्लौतैहुनेत् ॥८॥  
एकैकर्वनिता वश्या यावज्जीवं धनादिभिः । तैस्तराज्यप्लौतैर्भूपा वश्याः स्युहवनात्ततः ॥९॥  
क्षीराकैस्तैर्हृतैर्मर्त्या वशे तिष्ठन्त्यशेषतः । सर्वपाच्यैहुनेन्मृत्युकाष्ठाग्नौ वैरमृत्यवे ॥१०॥  
तदकैर्वैरियोन्युत्थमांसैरपि च तत्कृते । प्लक्षेन्यनाग्नौ योन्युत्थक्षतजोत्पाचितं चरुम् ॥११॥  
आरुक्षरधृतोपेतं फणिशीर्षसुचा हुनेत् । कृष्णांशुकशिरोवेषः खद्गपाणिश्च रोषवान् ॥१२॥  
निशामध्ये हुनेत्सद्यो निहन्तु वैरिणं हठात् । मृत्युकाष्ठानले तस्य फलैः पत्रैश्च होमतः ॥१३॥

मृत्युः कारस्करः ।

सप्तरात्रादारातेस्तु गजाश्च रोगमान्युः । चतुरङ्गुलजैहोमाच्चतुरङ्गबले रिपोः ॥१४॥  
सप्ताहाद्वोगदुःखार्तिर्भवत्येव न संशयः । मन्त्रजपोदकैः सेकात् क्षेवडशान्तिर्भविष्यति ॥१५॥  
तज्जपतयिष्ठाताच्च तज्जपत्तुलुकोदकात् । होमसंख्या यावती स्याज्जपसंख्या च तावती ॥१६॥  
तत्कर्णरन्धजापाच्च सद्यो न स्युर्विषग्रहाः । तद्यन्तस्थापनं चैव विषभूतादिनाशनम् ॥१७॥  
एवमस्यास्तु विद्याया वैभवं को नु वर्णयेत् । तथायनुग्रहात्तस्याः किञ्चिदुक्तं मया त्विदम् ॥१८॥

वैरियोन्युत्थमांसैर्वैरिनक्षत्रयोनिमांसैरित्यर्थः ।

काय्य हवन—अब यथाविधि काय्य हवन को कहता हूँ । विधान का ज्ञानी योनिकुण्ड में आग्न जलाकर उसमें देवता

का पूजन विधिवत् करे। त्रिमधुराक्त तिल, सरसों, गेहूँ, शालि धान्य से हवन प्रत्येक से अलग-अलग करे या सबों को एक साथ मिलाकर करे तो समृद्धि मिलती है। बकुल, चम्पा, लाल कल्हार, लाल कमल, कुमुद, मल्लिका, कुन्द, महुआ से हवन करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अशोक, गुलाब, बेल, जाती, उजला विचकिल, नया नीलकमल, कनैल, कर्णिकार के हवन से लक्ष्मी, सौभाग्य, आयु, नित्य यश, निधि, सभी बांधितार्थ की प्राप्ति होती है। दूब, गुरुच, पीपल, वट, आरग्वध, उजले कमल से एक लाख हवन करने पर मनुष्य थोड़े ही दिनों में निरोग हो जाता है। ईख, जामुन, नारियल, केला, गुड़, शक्कर मिलाकर हवन करने से स्थिर लक्ष्मी का लाभ होता है और दीर्घकाल तक साधक उसका भोग करता है। गोधृत, मधु, दुध से सिक्त ईख, जामुन, नारियल, केला, गुड़ से अलग-अलग हवन करने पर धन आदि के साथ बनिता आजीवन वश में होती है; इन्हीं को केवल आज्य से सिक्त करके हवन करने से राजा वश में होते हैं। इन्हीं को केवल दूध से अक्त करके हवन करने से सभी मनुष्य वश में हो जाते हैं। मृत्युकाष्ठ कारस्कर की अग्नि में सरसों और गोधृत के मिश्रण से हवन करने पर शत्रु की मृत्यु होती है। वैरी योनि के पशु के मांस को क्षीराक्त करके हवन करने से वैरी की मृत्यु होती है। पाकड़ के लकड़ी की अग्नि में वैरी योनि के पशु के दूध में चंचु रुकाकर हवन करने से और धृतोपेत आरुष्कर का सर्पाकार सुचा से शिर पर काली पगड़ी बाँधकर हाथों में तलवार लेकर आधी रात में हवन करे तो वैरी की मृत्यु हठात् हो जाती है। मृत्युकाष्ठ की अग्नि में उसके फल और पत्तों से हवन सात रातों तक आधी रात में करने से शत्रु के हाथी-घोड़े रोगी हो जाते हैं। मृत्युकाष्ठ की चार अंगुल लम्बी समिधा के हवन से शत्रु की चतुर्ंगिनी सेना एक सप्ताह में रोगी हो जाती है। अभिमन्त्रित जल से अभिषेक करने पर कान की अव्यक्त ध्वनि शान्त हो जाती है। उसके मन्त्र से मन्त्रित छड़ी के आधात से एवं मन्त्रित चुल्लू भर जल के छीटे से हवनसंख्या के बराबर उसके कान में जप से विष नष्ट हो जाता है। उसके यन्त्र के स्थापन से भूत-प्रेतों का नाश होता है। इस प्रकार इस मन्त्र का वैष्व अचिन्त्य है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसकी कृपा से मैंने कुछ का वर्णन यहाँ किया है।

#### नक्षत्रयोनयस्तु तोतुलामते—

अश्वहस्त्यजसर्पाश्च सर्पिणी च बिडालिका । मेषो भिडालकश्चारुभूर्षको गौर्वृष्टस्तथा ॥१॥  
 महिषो व्याघ्रमहिषीव्याघ्रैषीहरिणा: शुनी । वानरो नकुलश्चैव नकुली वानरी तथा ॥२॥  
 सिंहो हयवधुः सिंही छागी हस्तिन्यपि क्रमात् । भानां तु योनयो देवि कथितास्तव सुव्रते ॥३॥  
 अत्र द्वितीयनकुलशब्दोऽभिजिदभिग्रायेणोक्तः, अत एवाष्टाविंशतिरिति।

नक्षत्रयोनियाँ—तोतुलामत के अनुसार अश्विनी से रेवती तक अभिजित् सहित अद्वाईस नक्षत्रों की योनियाँ इस प्रकार हैं—अश्व, गज, छाग, सर्प, सर्पिणी, मार्जारी, छाग, मार्जार, मूषक, मूषक, गाय, बैल, महिष, व्याघ्र, महिषी व्याघ्र, मृता मृगी, श्वान, मर्कट, नकुल, नकुली, मर्कटी, सिंह, अश्वी सिंही छागी, हस्तिनी।

#### अनुग्रहयन्त्राणि

##### सारसंग्रहे—

अथानुग्रहयन्त्राणि वक्ष्यन्तेऽत्र समाप्ततः ।

कोष्ठचतुःषष्ठिं च लिखित्वा तेषु च शर्वाद्यं कुणपादि ।  
 श्रीमनुमालिख्य शिखाशेषं तूर्णामनुं बाहोऽमृतवीतम् ॥१॥  
 काञ्छनपट्टेऽच्छे वसने वा संलिखितं च स्थापितमेतत् ।  
 सस्यसमृद्धिदायिन्यः समये स्युस्तत्र वृष्टयः फलदाश ॥२॥  
 यन्त्रमिदं चानुग्रहसंज्ञं यत्र निखातममङ्गला वार्ता ।  
 तत्र भवेत् सत्यं न काचिच्छ्रीमनुमेन संप्रति वक्ष्ये ते ॥३॥

विबिन्दुका रमाथ सा विषं च दीर्घसंयुतम्। मरुच्च दीर्घसंयुतो विलोमगानिमान् वदेत् ॥४॥  
भृगुश्च कान्तिसंयुतस्तपञ्चमश्च सद्युक्। ह्यनन्तयुक् मरुद्वेत् ज्ञमेयुतं पुनर्वदेत् ॥५॥  
इमान्विलोमगांस्ततश्च मा मरुच्च दीर्घयुक्। धरा च वामनेत्रयुग्मसुन्धरा ह्यनन्तयुक् ॥६॥  
इमान्विलोमगान् पठेत्ततश्च याज्ञमेयुतम्। वदेच्च लापदंचली सुवैपरीत्यगानिमान् ॥७॥  
वदेद्रमामनुर्मतः स सर्वकार्यसाधकः। इति।

चिबिन्दुका रमा श्री इति, सा स्वरूपम्, विषं मकारः, दीर्घः आकारः: तेन मा। मरुत् यकारः:, दीर्घः आकारस्तेन या। विलोमगान् यामासाश्री। भृगुः सकारः, कान्तिः आ तेन सा इति। तपञ्चमः नकारः:, सद्यः ओकारस्तेन नो। अनन्त आ, तद्युक्तो मरुत् यकारः तेन या। ज्ञ स्वरूपं, तत् एयुतं तेन ज्ञ। इमान् विलोमगान् ज्ञेयानोसा। मा स्वरूपं, मरुत् यकारः दीर्घः आ तेन या इति। धरा लकारः, वामनेत्रं इकारः तेन ली, वसुन्धरा लकारः, अनन्तः आ तेल आ। विलोमगान् लालीयामा। या स्वरूपं, ज्ञ एयुतं एकायुक्तं तेन ज्ञ। ला स्वरूपं, ली स्वरूपं, वैपरीत्यगान् लीलाज्ञेया इति।

अनुग्रह यन्त्र—सारसंग्रह के अनुसार पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर समान दूरी पर नव-नव रेखा खींचने से चौंसठ कोष बनते हैं। उनमें श्रीमन्त्र के अक्षरों को लिखे। यन्त्र सोने के पत्र पर अथवा कपड़े पर बनावे। यह यन्त्र जहाँ स्थापित रहता है, वहाँ की भूमि फसलों से भरी रहती है, समय पर वर्षा होती है, फल-फूल खूब होते हैं। यह अनुग्रह यन्त्र जहाँ रहता है, वहाँ नित्य मांगलिक कार्य होते रहते हैं।

अब श्रीमन्त्र को कहता हूँ। श्लोक ४-७ का उद्धार करने पर बत्तीस अक्षरों का श्रीमन्त्र इस प्रकार होता है—श्री सामाया यामासाश्री सानोयाज्ञे ज्ञेयानोसा, मायालीला लालीमाया याज्ञेलाली लीलाज्ञेया।

#### यन्त्ररचनाप्रकारः

अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः—

तत्र प्राक्प्रत्यग्यायता नव रेखा दक्षिणोत्तरायता नव रेखाश्च कृत्वा चतुष्टिकोष्ठयुतं चतुरखं चक्रं परि-कल्प्य, तत्र सर्वोपरिगतपङ्कः प्रथमकोष्ठमारभ्य स्ववामादिदक्षिणान्तक्रमेण पद्मक्तिचतुष्टयगतेषु द्वात्रिंशत्कोष्ठेषु प्रोक्तसर्वतोभद्राख्यलक्ष्मीमन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षराणि विलिख्य, पुनरधोगतपद्मक्तिचतुष्टयेऽपि सर्वाधिःपङ्केः प्रथमकोष्ठं स्वदक्षिणस्थमारभ्य वामान्तमुपर्युपरि पद्मक्तिचतुष्टये तस्यैव मन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षराणि विलिख्य, तद्वाहिः प्रागादिषु चतुर्षु दिक्षु ईशानदीशान्तं चतुरावृत्या तद्वाहरेखासृष्टां त्वरिताविद्यामन्तर्गतवषट्कारामालिख्य तद्वाहिः वमित्यपृतबीजेन वेष्टयेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

चौंसठ कोष वाले यन्त्र के सबसे ऊपर वाले कोष से प्रारम्भ करके अपने बायें से दक्षिणान्त क्रम से चार पंक्तियों के बत्तीस कोषों में लक्ष्मी मन्त्र के बत्तीस अक्षरों को लिखे। फिर उसके नीचे वाली चार पंक्तियों के बत्तीस कोषों में सबसे नीचे वाली पंक्ति में अपने दाहिने से प्रारम्भ करके वामान्त तक बत्तीस अक्षरों को लिखे। उसके बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में ईशान से ईशान तक के यन्त्र की बाहरी रेखाओं को संर्पण करते हुए त्वरिता विद्या के अक्षरों को लिखे। उसके बाहर अमृत बीज ‘वं’ लिखकर वेष्टित करे। यह यन्त्र सर्वकार्यसाधक होता है।

#### यन्त्रान्तरम्

इतः परं प्रवक्ष्ये ते मनोऽन्नं यन्त्रमुक्तपम्। प्राक्प्रत्यग्यायतैः सूत्रैस्तथा दक्षोत्तरायतैः ॥१॥  
दशभिर्दशभिः कुयदिकाशीतिपदानि वै। समान्तरालकान्यत्र मध्यकोष्ठे समालिखेत् ॥२॥  
ससाध्यं टपरं मन्त्री बिन्दुयुक्तं च तद्वाहिः। चतुर्ष्वपि वीथीषु चतुष्कोष्ठात्मिकासु च ॥३॥  
दिग्गतासु क्रमाद्वर्णान् वक्ष्यमाणान् समालिखेत्। चतुर्तीयं वामकर्णयुक्तं बिन्दुविभूषितम् ॥४॥  
विसर्गाद्वयो भृगुस्तोयं श्रेतेशः खेचरी ततः। केवलां च ततः प्राग्वल्लक्ष्मीविद्यां समालिखेत् ॥५॥

उक्तवर्णविहीनेषु कोष्ठेषु मनुवित्तमः । ततस्तुर्णामृतार्णैस्तैर्वेष्टयेद् बहिरुक्तवत् ॥६॥  
मूलविद्याक्षराणयेव वषट्युक्तानि मन्त्रिभिः । फट्काररहितानीह तानि प्रोक्तानि चागमे ॥७॥  
बहिः कुम्भं विदध्याच्च पद्मं तदधरोत्तरम् । इति।

**अथैतद्यन्तरचनाप्रकारः**—तत्र प्राक्प्रत्यग्दणोदक् च समान्तरालानि दश दश सूत्राण्यास्फाल्य एकार्शीतिपदानि विधाय, तत्र मध्यकोष्ठे सविनुक्तुकठकारोदरे साध्यनामालिख्य, तत्कोष्ठपार्श्वस्थ्यपूर्वपरायतपड़क्तिद्वये च संभूय चतस्र्षु पड़क्तिषु चतुश्शतुःकोष्ठात्मिकासु स्वाप्रादिप्रादक्षिण्यक्रमेण ‘जूंसः वषट्’ इति च प्रतिकोष्ठं प्रतिकोष्ठ-मैकैकमध्यन्तरात्रिग्रंगमगत्या विलिख्य, ततः ईशानादनैर्नैर्त्यादिकं च प्रागुक्तप्रीविद्यानुष्ठुबं मध्यवर्तीथिचतुष्टयवर्जमालिख्य सर्वबाहोऽभितः ईशानादीशानं तूर्णामृताक्षराणिण चतुरावृत्त्या प्राप्यत्समालिख्य, सर्वमध्यकोष्ठमवष्टभ्य चतुःकोणस्य तूर्णामृताक्षरामानभ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य तद्वाहोऽङ्गुलमानेन तथा वृत्तान्तरं कृत्वा, अथः उपरि भागे च मध्यतः चतुरङ्गुलान्तरालं वृत्तद्वयं मार्जयित्वा, तदग्रचतुष्टयमानमवकं, समान्तरालमुपरि चतुरङ्गलं कुम्भमुखाकरं यथा भवति तथा समुन्नमय्य तत्कुम्भमुखे तिर्यग्रेखाद्वयं प्रसार्य, तत्कुम्भवीथीयद्यम् अन्योन्यपृष्ठवकारमालया शृङ्गुलास्तुपया अन्तर्मुखया समाप्त्य सर्वोपरि बिन्दुं समालिख्य, कुम्भाधस्तात् पद्मं तत्कर्णिकास्थं कुम्भं यथा भवति तथा समालिख्य प्रोक्तक्रमेण मनीषितेषु विनियोगात् प्रोक्तफलानि भवन्ति।

**अन्य यन्त्र**—इसके बाद उत्तम मनोज्ञ यन्त्र को कहता हूँ। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर बराबर दूरी पर दश-दश रेखा खींचकर इक्यासी कोष्ठ बनावे। मध्य कोष्ठ में ‘ठ’ के उदर में साध्य नाम लिखे। उस कोष्ठ के पार्श्वस्थ पूर्वयतन दो पंक्तियों के चार-चार कोष्ठों में अपने आगे से प्रदक्षिण क्रम से ‘जूं सः वषट्’ प्रतिकोष्ठ में लिखे। तब ईशान से नैर्नैर्त्य तक पूर्वोक्त लक्ष्मी विद्या के अक्षरों को बीच के चार कोष्ठों को छोड़कर लिखे। इसके बाहर ईशान से ईशान तक त्वरिता विद्या के अक्षरों को चारों दिशाओं में लिखे। सबसे बीच वाले कोष्ठ को आधार मानकर त्वरिता विद्या के अक्षरों के बाहर एक वृत्त बनावे। उसके बाहर एक अंगुल मान की दूरी पर दूसरा वृत्त खींचे। दोनों वृत्तों के ऊपर और नीचे चार-चार अंगुल वृत्तों को मिटा दे। ऊपर मर्जित स्थानों में कुम्भ का मुख बनावे। कुम्भ के नीचे कमल बनावे। इस यन्त्र से भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होते हैं।

### यन्त्रान्तरम्

**तथा—**

कुङ्गमैर्ताक्षया वापि लिखितं स्वर्णपट्टके । धवले वसने वापि लेखिन्या स्वर्णजातया ॥८॥  
संपूज्य जपसंसिद्धं स्थापयेद्यत्र तत्र वै । भवेल्लक्ष्मीरतिस्कीता नीरोगाश्च प्रजास्तथा ॥९॥  
गजाश्वपशवस्त्वन्ये प्राणिनः सुखिनो भृशम् । भूतप्रेतपिशाचादपीडासु बिभृयादिदम् ॥१०॥  
अलक्ष्मीशान्तये वश्यसिद्धये सर्वसंपदे । कृत्यामृत्युग्रहक्षेडुरितेभ्यो विमुक्तये ॥११॥  
पुत्रपौत्रैश्वर्यदीर्घार्थ्यसंसिद्धयेऽपि च । इति।

**अन्य यन्त्र**—कुङ्गम या लाक्षा से स्वर्ण पत्र पर या उजले कपड़े पर सोने की लेखनी से यन्त्र बनावे। पूजा करके उसे जप से सिद्ध करके उसे जहाँ स्थापित किया जाता है, वहाँ-वहाँ लक्ष्मी का वास होता है, प्रजा निरोग रहती है, हाथी-घोड़े और अन्य पशु प्राणी बहुत सुखी रहते हैं; भूत-प्रेत-पिशाच, पीड़ाकारक नहीं होते; दरिद्रता नष्ट होती है; वश्य-सिद्ध होती है; सभी सम्पदा मिलती है; कृत्या, मृत्यु, ग्रह, क्षुद्र पीड़ा से मुक्ति मिलती है एवं पुत्र, पौत्र, ऐश्वर्य के साथ दीर्घायु प्राप्त होती है।

**तथा—**

पद्मे दशदलयुक्ते मायां साध्याह्वयसहितां च ।  
ताराद्यर्णालिलखेद् दशपत्रे षट्कोणस्थं क्षितिपुरसंस्थं च ॥१२॥  
कृत्याद्रोहग्रहविनाशमनन्तचोरव्यालादिकभयहरम् ।  
जप्तं दोषाणा विधृतमशोषं राजां युद्धे विजयदमुक्तम् ॥१३॥ इति।

**अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः**—तत्र दशदलपद्मं कृत्वा तत्कर्णिकायां मायाबीजस्योदरे साध्यनामालिख्य, तद्वलेषु मूलविद्यायाः प्रणवादिदशवर्णान् मायाबीजरहितान् विलिख्य, तद्वहिः षट्कोणं कृत्वा तद्वहिश्चतुरसं कुर्यात्। एतदुक्तफलदं भवति। तथा—

विद्याद्वर्णजिठरे साध्यमालिख्य तद्वहिः । अष्टच्छदेषु फइवर्जमालिखेदष्टवर्णकम् ॥१४॥  
कर्णिकास्थं ततोऽञ्जं च मायया वेष्टितं ततः । बहिः कुम्भं विदध्याच्च प्रोक्तलक्षणसंयुतम् ॥१५॥  
एवमन्यैश्च नवभिर्विद्यावर्णीर्यथाक्रमम् । विदध्यान्नव यन्नाणि दशानां च फलं त्विदम् ॥१६॥  
सर्वरक्षां जयं वशं क्षेवेद्ग्रहनाशनम् । स्तम्भं लक्ष्मीयशोधान्यवासांसि स समाप्नुयात् ॥१७॥

**अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः**—तत्राष्टदलं पद्मं विधाय तत्कर्णिकामध्ये विद्याप्रथमहल्लेखां तदुददे विद्याद्यभूत-प्रणवं तन्मध्ये साध्यनाम चालिख्य शोषाण्यष्टौ मन्त्राक्षराणि हल्लेखाद्वयफट्कारविधुराणि क्रमेणाप्रादिप्रादक्षिणयेन अष्टसु दलेषु समालिख्य, तत्पद्मं द्वितीयहल्लेखया उक्तमन्त्रेणावेष्ट्य तद्वहिः प्राग्वत् सबिन्दुक्षृङ्खलितवकाराक्षर-मालोपेतं उपर्यथक्षणं पद्मद्वयोपेतं च कुम्भं कुर्यात्, एतत्रथमयन्त्रम्। एवमस्यैव यन्नस्य कर्णिकामध्ये हल्लेखोदरे विद्यायास्तृतीयाक्षरादीनि शोषाक्षराणि क्रमेणैकमेकं नामगर्भं विन्यस्य तदनन्तरादितत्पूर्वान्तं प्राग्वदेभिरक्षरैदलस्यैः पूर्वोक्तेन सार्थं नव यन्नाणि हल्लेखामध्ये सनामकं फट्कारं समालिख्य प्रणवविधुरैस्तृतीयादिभिः शेषाक्षरैः प्राग्वदलस्थैर्देशमं चेति, एवं दश यन्नाणि कुर्यादिति।

**अन्य यन्त्र**—दशदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में हीं के मध्य में साध्य नाम लिखकर, उसके दलों में मूल विद्या के प्रणवादि दश वर्णों को लिखकर उसके बाहर षट्कोण बनाकर उसके बाहर चतुरस का निर्माण करे। यह यन्त्र उक्त फलप्रद होता है।

**अन्य यन्त्र**—पहले अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में विद्या के प्रथम अक्षर हीं के उदर में ‘ॐ’ लिखे। ३० के उदर में साध्य नाम लिखे। मन्त्र के शेष आठ अक्षरों को हल्लेखा द्वय फट् को छोड़कर क्रम से आगे से प्रदक्षिण क्रम से आठ दलों में लिखे। अष्टदल कमल को हीं से वेष्टित करे। उसके बाहर कुम्भ बनावे।

इसी प्रकार यन्त्र की कर्णिका में हीं के मध्य में विद्या के तृतीयादि शेष अक्षरों में से प्रत्येक को नाम गर्भ कर लिखे। शेष अक्षरों को दलों में लिखे। इस प्रकार कुल नव यन्त्र बनते हैं और हीं के मध्य में नामसहित फट् लिखकर प्रणवरहित शेष अक्षरों को दलों में लिखने से दशम यन्त्र बनता है। इनके फल क्रमशः सर्व रक्षा, जय, वश्य, क्षेवेड, हृदयहनाश, स्तम्भ, लक्ष्मी, यश, धन, वस्त्र आदि की प्राप्ति है।

### तथा—

साध्ययुतं तारकमिह मध्ये कोष्ठशते चैकविंशतिसहितेऽत्र ।

द्वादशाधा शूलमिह शिवाद्यं संलिख्य विंशत्युगवसूशूलम् ॥१८॥

**मूलजप्तं यन्त्रवर्य संपाताज्यसुसंयुतम् । क्षेवेद्ग्रहादि हरति जयलक्ष्मीयशःप्रदम् ॥१९॥**

**अस्यार्थः**—प्राक्प्रत्यग्यायाता दक्षिणोत्तरायाताश्च द्वादश रेखा विलिख्यैकविंशत्युत्तरशतकोष्ठानि कृत्वा, रेखाग्रेषु सर्वेषु त्रिशूलानि विरच्य, तन्मध्यकोष्ठे सप्ताध्यं प्रणवं विलिख्येशानकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिणयेन, प्रवेशगत्या त्वरिताविद्यां प्रणवद्वितीयहल्लेखाविधुरां द्वादशावृत्ति लिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति।

**अन्य यन्त्र**—पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर बाहर-बाहर रेखाओं को खीचकर एक सौ इक्कीस कोष्ठ बनावे। सभी रेखाओं के अग्रभाग में त्रिशूल बनावे। मध्य कोष्ठ में ३० के उदर में साध्य नाम लिखे। शेष कोष्ठों में ईशान से आरम्भ करके त्वरिता विद्या के ३० और द्वितीय हीं को छोड़कर दस अक्षरों को बाहर बाहर लिखे। मूल मन्त्र का जप करे और यन्त्र पर घृत सम्पात करे। यह यन्त्र क्षेवेड, ग्रहादि पीड़ा का नाश करके जय, लक्ष्मी एवं यश प्रदान करता है।

## निग्रहार्थ्यन्त्रोद्धारः

तथा—

एकाशीतिपदं चक्रं कृत्वा तन्मध्यकोष्ठके । रेफोदरे समालिख्य साध्यनाम यथाविधि ॥२०॥  
 लिखेद्वीजचतुर्कं तद्वीथीषु च यथा पुरा । वक्ष्यमाणां ततः प्राग्वत्कालीविद्यां समालिखेत् ॥२१॥  
 चतुःषष्ठिपदेष्वीशादिषु च कुणपादिषु । यममन्त्रावृतं बाह्ये वहिवायुसमावृतम् ॥२२॥  
 निग्रहार्थ्यमिदं यन्त्रं सर्वशत्रुनिर्वहणम् । वहिस्थं पतुरीयं स्याद्वामकर्णेन्दुभूषितम् ॥२३॥  
 प्रथमं बीजमुदितं संवतोऽग्न्यासनेन्दुयुक् । सवामकर्णो ह्यपरं कूर्मान्तार्घ्येन्दुवहियुक् ॥२४॥  
 तृतीयं व्योमवह्न्यर्धिविन्दुभिः परमीतिम् । एतद्वीजचतुर्कं तु शत्रुसंहारकरकम् ॥२५॥

पतुरीयं भक्ताः, वहिस्थं रेफोपरि स्थितं, वामकर्णमूकाराः, इन्दुरनुस्वाराः एतैः भ्रूं संवर्तः क्षकारः, अग्न्यासनेति रेफस्थं, इन्दुरनुस्वाराः, वामकर्णः ऊकाराः तेन क्षूं। कूर्मान्तिः छ, अर्धी ऊकाराः, इन्दुरनुस्वाराः, वहियुक् सरेफः एतैः छूं व्योम हक्काराः, वही रेफः, अर्धी ऊकाराः, बिन्दुरनुस्वाराः एतैः हूं। इति।

विश्रह यन्त्र—ऊपर से नीचे, बाँयें से दाँयें दश रेखा खींचकर इक्यासी कोष्ठों का यन्त्र बनावे। उसके मध्य कोष्ठ में 'र' के उदर में यथाविधि साध्य नाम लिखे। पूर्ववत् उसकी वीथि में चार बीजों को लिखे। तब काली विद्या लिखे। वीथि में लिखे जाने वाले चार बीज हैं—भ्रूं क्षूं हूं हूं। ये चारों बीज शत्रुसंहारकारक होते हैं।

## कालीविद्या

तथा—

क्रोधीशः कान्तिमान् शक्रो वामनेत्रं ततः परम् । कालोऽनन्तयुतो वहिर्विपरीतानिमान् वदेत् ॥२६॥  
 शक्रो युतश्च लोलाक्ष्या भेषो भान्तश्च सद्ययुक् । संवर्तः पुनरेवैतान् विपरीतान् समुद्दरेत् ॥२७॥  
 कालोऽनन्तयुतः सोऽथ सद्ययुक् तृतीयकः । द्विण्टीयुता पूतना च विपरीतानिमान् वदेत् ॥२८॥  
 वहिरन्त्यः पूतना च सा जलस्था वदेदिमान् । विपरीतानियं प्रोक्ता कालीविद्यारिधातिनी ॥२९॥

क्रोधीशः ककाराः, कान्तिराकारस्तेन का, शक्रो ल, वामनेत्रं ईकारस्तेन ली। कालो मकाराः, अनन्त आकारस्तेन मा। वही रा। विपरीतान् रमालीका इति। शक्रो ल, लोलाक्षी ईकारः तेन ली। भेषो नकाराः, भान्तो मकाराः, सद्य ओकारारस्तेन मो। संवर्तः क्ष। विपरीतान् क्षमोनली इति, कालो मकाराः, अनन्त आ तेन मा। स एव सद्ययुक् तेन मो। ततृतीयो द, द्विण्टी ए तद्युतो दे, पूतना त। विपरीतान् तदेमोमा इति। वही रेफः, अन्त्यः क्षकाराः, पूतना त, सैव जले स्थिता वकारोपरि स्थिता तेन त्वा। विपरीतान् त्वतक्षर इति।

काली विद्या—मूलोक्त श्लोक २६ से २९ तक के श्लोकों का उद्धार करने पर काली विद्या इस प्रकार स्पष्ट होती है—कालीमार रमालीका लीनमोक्ष क्षमोनली। मामोदेत तदेमोमा रक्षतत्व त्वतक्षर। यह कालीविद्या शत्रुघातिनी है।

## यममन्त्रोद्धारः

तथा—

वायुः कालोऽनन्तयुतो जलं कान्तिसमन्वितम् । सोमश्च खेचरी तोयं कान्तियुक्त्वा जयान्विता ॥३०॥  
 वायुः कालः कान्तियुतः खेचरी सद्ययुग्विषम् । सोमेशः खेचरी कालः सद्ययुक्खेचरी विषम् ॥३१॥  
 कान्तिमज्जलकान्ती च कालः सद्ययुतः पुनः । पतुरीयो वामकर्णयुतोऽग्निनेत्रवान् पुनः ॥३२॥  
 स एव तादृशो भूयः पतुरीयश्च पूर्ववत् । कालः सद्ययुतस्तोयं कान्तियुक् खेचरीद्वयम् ॥३३॥  
 वहिः सवामनेत्रश्च ततस्तोयं च पूतना । तथाविधा पुनः सैव वहिवामाक्षिसंयुतः ॥३४॥  
 सोमेशः खेचरी चेति यममन्त्र उदाहृतः । सर्वशत्रुक्षयकरो यन्त्रविन्यासतः सदा ॥३५॥

वायुर्यकारः, कालो मकारः अनन्त आकारस्तद्युते तेन मा। जलं वकारः, कान्तिराकारस्तेन वा। सोम ट, खेचरी ट, तोयं व, कान्ति आ तेन वा। सैव कान्तिर्जयाम्बिता तेन मा। वायुः यकारः, कालो म, कान्तिरकारस्तेन मा। खेचरी ट, सद्युक् ओकारयुतं, विषं मकारस्तेन मो। सोमेशः ट, खेचरी ट, कालो म सद्युक् ओकारयुतस्तेन मो। खेचरी ट, विषं मकारः कान्तिमदाकारयुक्तस्तेन मा। जलं व कान्तिः आ तेन वा। कालो म, सद्य ओ तेन मो। पतुरीयो भ, वापकर्णः ऊ तेन भू। अग्निः र, नेत्रं ई तेन रि। सोऽग्निसादृशो नेत्रयुत इकारयुक्तस्तेन रि। पतुरीयो भ, पूर्ववत् ऊकारयुक्तस्तेन भू। कालो म, सद्य ओ तेन मो। तोयं व, कान्तिः आ तेन वा। खेचरीद्वयं टट इति, वह्निः र, वामनेत्रं ई तेन री। तोयं व, पूतना त तेन त्वा। सैव पूतना तथाविधा तकार एव वकारयुत इत्यर्थः, तेन त्व इति। वह्निः र, वामाद्विष्ट ई तेन री। सोमेशः ट खेचरी ट इति।

यमयन्त्र—मूलोक श्लोक ३० से ३४ तक का उद्घार करने पर यमन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—यमावाट टवामाय माटमोट टमोटमा। वामोभूरि रिभूमोवा टटरीत्व त्वरीटट। यह यन्त्र सदा-सर्वदा समस्त शत्रुओं का विनाशकारक होता है।

#### निग्रहन्त्ररचनाप्रकारः

अथैतत्रिग्रहयन्त्ररचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वद्वेदिकायामेकाशीतिपदोपेतं चक्रं विरच्य, तन्मध्यकोष्ठे सबिन्दुकरेफोदरे साध्यनामालिख्य, प्राग्वत् पार्श्वपड़क्तिषु चतुसूषु चतुर्षोषु प्रागुक्तक्रमेण भ्रूंक्षुंहूं ह इति वर्णचतुष्यं आभ्यन्तरान्निर्गमनगत्या अभितः समालिख्य, अभिचार्यः पुरुषश्वेदन्तः काल्यनुष्टुभं बहिर्यममन्त्रं, वनिता चेदन्तर्यममन्त्रं बहिः कालीविद्यां च समालिखेत्। लेखने तु ईशानादिकं निर्ऋत्यादिकं च कालीविद्या, अन्यदा तथा यमन्त्रं (विलिख्य अन्यतरं बहिरीशादिनिर्ऋत्यन्तं निर्ऋत्यादीशान्तं च निरन्तरं द्विर्द्विरालिख्य तद) बहिस्तद्विनिरन्तरं बिन्दुयुक्तं यकरं रेफं च ईशादीशान्तं यथाक्रममन्तर्बहिर्विर्भागेन समालिख्य मनीषितेषु विनियुज्यात्। एतत्रिक्षेपे चाभिचार्यः पुरुषश्वेत् काल्यादिशक्तेरायतनेऽग्ने स्त्री चेढास्तुरायतने एवाग्रभागे अधस्तान्निखनेदिति संप्रदायः। तथा—

सीसकृते नवपटे शावभवे कर्पटके वा। प्रस्तरके वा विषमस्या संलिख्य काकसुपत्रैश्च ॥३६॥

चत्वरके वा कलिवृत्ते स्थापितमेतदरीणां हि। मृत्युकरं व्याधिकरं स्यात्पुत्रवीवियुतत्वकरं च ॥३७॥ इति।

निग्रह यन्त्र—पूर्ववत् इक्यासी कोष्ठ का यन्त्र बनावे। उसके मध्य कोष्ठ में 'र' के उटर में साध्य नाम लिखे। पूर्ववत् बगल के चार कोष्ठों की पंक्तियों में श्रूं क्षूं हूं हूं लिखे। उसके बाद प्रयोग करने वाला यदि पुरुष हो तो अन्दर कालीमन्त्र एवं बाहर यमन्त्र तथा प्रयोक्ता यदि स्त्री हो तो अन्दर यमन्त्र एवं बाहर कालीमन्त्र लिखे।

इस यन्त्र को सीसे पर, नये कपड़े पर या खपड़े पर या पत्थर पर कौए के पंख से लिखकर चौराहे पर या कलि वृक्ष के नीचे स्थापित करने से शत्रुओं की मृत्यु, व्याधि होती है और उनके पुत्र-स्त्री का मरण होता है।

#### तथा—

प्राक्प्रत्ययदक्षिणोदक्ष्य नव सूत्राणि पातयेत्। जायन्ते च चतुष्षष्टिः कोष्ठानि सुसमानि च ॥३८॥

मन्त्री तेष्वीशनैर्ऋत्यदिगाद्यं कालिकामनुम्। विलिख्य यममन्त्रेण प्रोक्त्क्वीजद्येन च ॥३९॥

वेष्यित्वा बहिश्वकं विषेणैव च लेपयेत्। ब्रह्मदण्डया च मर्कद्वया लिपतं जप्तमधोमुखम् ॥४०॥

क्षितं देशादिके यत्र तत्रालक्ष्मीदिः समम्। मारी तु सुस्थिरासाध्या भवेद्वासुररपि ॥४१॥

यन्त्ररचनाक्रमो यथा—तत्र प्राग्वन्त्रभिन्नविभिः सूत्रश्वतुषष्टिकोष्ठकानि कृत्वा तेष्वीशादिकं निर्ऋत्यादिकं चाभिचार्यः पुरुषश्वेदन्तः कालीविद्यां बहिर्यममन्त्रं च, स्त्री चेदन्तर्यममन्त्रं बहिः कालीविद्यां च प्राग्वत् समालिख्य प्राग्वत् सबिन्दुयकाररेफाभ्यां संवेष्य प्रोक्तक्रमेण प्रोक्तेषु स्थानेषु स्थापनात् प्रोक्तफलसिद्धिर्भवति। तथा—

अनुक्तेष्वपि नामानि योजयेत् कोष्ठमध्यतः। लवणोषणमेहाम्बुगृहधूमाग्निसंयुतम् ॥४२॥

श्मशानाङ्गरनिष्ठोत्थनिर्यासो विषमीरितम् ।

ऊषणमूष्ठर इति प्रनोरमाकारैव्याख्यातम् । मेहाम्बु प्रस्त्रवः, अग्निश्चत्रकम् ।

**अन्य यन्त्र**—पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर नव-नव रेखाओं को ब्राह्मण दूरी पर खींचने से चौंसठ कोष्ठ बनते हैं। इसमें ईशान से नैऋत्य तक प्रयोक्ता यदि पुरुष हो तो अन्दर काली मन्त्र और बाहर यम मन्त्र लिखे एवं यदि स्त्री हो तो अन्दर यम मन्त्र एवं बाहर काली मन्त्र लिखो। पूरे यन्त्र से यं रं से बाहर से वेष्टित करे। चक्र के बाहरी भाग में ब्रह्मदण्डी और मर्कटी का लेप लगाकर अथोमुख करके जप करे। इस यन्त्र को जिस देश में गाढ़ दिया जाता है, वहाँ दरिद्रता और रोग होते हैं तथा ऐसी महामारी होती है, जो देवताओं से भी असाध्य होती है। अनुक होने पर भी कोष्ठ मध्य में नमक, ऊष्ण वर्षाजल, रसोईघर का धूआँ एवं चित्रक, श्मशान का अंगार, निष्ठ का निर्यास विष मिलाकर साध्य नाम लिखे।

#### त्रिकण्टकीविद्योद्धारादि

**सारसंग्रहे—**

खों खेऽन्योऽन्यकलायुक्तस्त्रिवर्णेण त्रिकण्टकी । ऋष्यादिकं पुरा प्रोक्तं द्विरुक्ताणैः षडङ्गकम् ॥४३॥

**खं हकारः** उं स्वरूपं तेन हुं खे स्वरूपं। अन्यः क्षकारः अन्यकला-विसर्गः तेन क्षः इति।

नाभेर्नीलनिभामथोऽरुणरुचिं कण्ठात् सिताभाननां तुन्दालभिभिराननैर्युग्मितैर्द्वृत्कटैर्भीषणाम् ।

दीपद्वद्वदराहित्सकमलां चन्द्रोल्लसच्छेखरामुद्यद्वालविलोचनां भयहरां देवीं सदा भावयेत् ॥४४॥

युग्मितैश्चतुर्भिः। दरः शंखः। अरिश्क्रमः। वामाद्यूर्ध्वयोः शंखचक्रे, अन्ययोरन्यतरो। इत्यायुधध्यानम्।

ततः पूर्वोदितेनाथ वर्त्मनामुं भजेत् सूधीः। वर्णलक्षं जपेदन्ते दशांशेन घृतं हुनेत् ॥४५॥

आत्मानं देवतारूपं ध्यात्वा रूपं(बद्ध्वा) करद्वये। शूलमुद्रां ग्रहग्रसं स्पृष्टैवं प्रजपेन्मनुम् ॥४६॥

आशु ग्रहात् प्रमुच्येत नरो मन्त्रप्रभावतः । इति।

सारसंग्रह के अनुसार त्रिकण्टकी के तीन बीज खं खे क्षः हैं। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् हैं। इसकी दो आवृत्ति से षडङ्ग होता है। त्रिकण्टकी देवी का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

नाभेर्नीलनिभामथोऽरुणरुचिं कण्ठात् सिताभाननां तुन्दालभिभिराननैर्युग्मितैर्द्वृत्कटैर्भीषणाम् ।

दीपद्वद्वदराहित्सकमलां चन्द्रोल्लसच्छेखरामुद्यद्वालविलोचनां भयहरां देवीं सदा भावयेत् ॥।

इस प्रकार का ध्यान करके पूजा आदि करे। वर्णलक्ष अर्थात् तीन लाख मन्त्रजप करे। दशांश हवन करे। अपने को देवता रूप मानकर दोनों हाथों से शूलमुद्रा बनाकर ग्रहों से पीड़ित को स्पर्श करके मन्त्र का जप करे। इस मन्त्र के प्रभाव से रोगी तुरन्त निरोग हो जाता है।

#### मन्त्रान्तरम्

**तथा—**

ईशयुक् पूर्वमन्त्रान्त्यौ मध्ये योषिद्वेदियम् । वश्या त्रिकण्टकीविद्या त्यर्णा मन्त्रिभिरीरिता ॥४७॥

पूर्वमन्त्रान्त्यौ खेक्षः इति वर्णो ईशयुतावेकारयुक्तौ, एतद्वयोर्यथे योषित् स्त्री इत्यक्षरं यदि भवेदित्यर्थः। पूर्वोक्तवत्सर्वमस्य कुर्यान्मन्त्री यथाविधि।

पूर्ववत् त्वरितावत्। एतमन्त्रद्वयस्यापि ज्ञेयम्।

पूर्व अक्षर मन्त्र के प्रथम और अन्तिम अक्षरों के बीच में स्त्रीं जोड़ने से त्रिकण्टकी वश्यमन्त्र होता है। इस मन्त्र की सभी क्रियाएँ पूर्वोक्त मन्त्र के समान होती हैं। यथाविधि मन्त्र सिद्ध करके साधना करे।

#### महामायावैष्णवीमन्त्रस्तत्वयोगश्च

**अथ महामाया वैष्णवी उत्तरतन्त्रे—**

हान्तान्तपूर्वो मान्तश्च नान्तो णान्तस्तथैव च । कैकादश आदिषष्ठः खान्तो विष्णुपुरःसरः ॥१॥

एभिरष्टाक्षरैर्मन्त्रः शोणपद्मसमप्रभः। ओंकारं पूर्वतः कृत्वा जप्यः सर्वैस्तु साधकैः ॥२॥

हान्तान्तपूर्वः शकारः, मानो यकारः, नान्त पकारः, णान्तस्तकारः, कैकादश टकारः, आदिषष्ठश्कारः, खान्तः ककारः, विष्णुरकारः, पुरः सर इत्यनेनाकारादिशकारान्तो मन्त्रः उक्तः।

नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप्पूच्च वैष्णवी। देवता मुनिभिः प्रोक्ता सर्वसिद्धिप्रदा तथा ॥३॥  
मूलमन्त्राक्षरैः कुर्यात् त्रिभिस्त्रिभिरनुक्रमात्। एकैकं वर्जयेत् पश्चादङ्गानि षडनुक्रमात् ॥४॥

अकच हत्, कचट शिरः, इत्यादिप्रणवपूर्वं कुर्यात् 'अकचैते सप्रणवाः' इति हयशीर्षवचनात्।

ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे। बाहोरुद्धि पादयोश्च जङ्घयोर्जयने क्रमात् ॥५॥

विन्यसेदक्षराण्यष्टौ ओंकारं च तथा स्मरेत्। शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलम्बिनीम् ॥६॥

चलत्काञ्चनसंभूतकुण्डलोज्ज्वलशालिनीम्। स्वर्णरत्नसमुब्रद्धकीरीटसूत्रधारिणीम् ॥७॥

शुक्लकृष्णारुणैरेत्त्रिभिश्चारुतिभूषिताम्। बन्धुकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम् ॥८॥

कम्बुशीवां विशालाक्षिं सूर्यकोटिसमप्रभाम्। चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम् ॥९॥

दक्षिणोद्धेवं निस्त्रिंशं परेण सिद्धसूत्रकम्। बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभतिवरदायिनीम् ॥१०॥

आनन्दानागनासोरं वृत्तगुल्कां सुपार्णिकाम्। गात्रेण रत्नसम्भं च सम्यगालब्यं संस्थिताम् ॥११॥

किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः। पञ्चाननं पुरः संस्थं निरीक्षन्तीं स्ववाहनम् ॥१२॥

ईदृशीमिक्तिं ध्यात्वा ओंनमः फडिति मस्तके। स्वकीये सुमनो दद्यात्साहमेवं विचिन्त्य च ॥१३॥

पञ्चाननं मण्डलस्य मध्येऽवश्यं प्रपूजयेत्। आवाहनं ततः कुर्याद्वायत्रा शिरसा सह ॥१४॥

महामायायै विद्यहे चण्डिकायै च धीमहि। एवमुक्त्वा ततः पश्चात्त्रो देवी प्रचोदयात् ॥१५॥

ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्यं पुष्टं सधूपकम्। दीपादिकं च दद्यात् मोदकं पायसं तथा ॥१६॥

पुष्पाङ्गलित्रयं दद्याम्भूलमन्त्रेण शोभनम्। एवं संपूज्यं मध्ये तु मन्त्रेणाङ्गानि पूजयेत् ॥१७॥

सिद्धसूत्रं च खड्गं च खड्गमन्त्रेण पूजयेत्। शैलपुत्रीं चण्डघण्टां स्कन्दमातरमेव च ॥१८॥

कालरात्रीं च दिक्पत्रेष्वर्चयेच्यन्दनादिभिः। चण्डिकामथं कूष्माण्डीं तथा कात्यायनीं शुभाम् ॥१९॥

महागौरीं चाग्निकोणे नैर्रह्यादिषु पूजयेत्। ततः संपूज्यं लोकेशांस्तदस्ताणि च मन्त्रवित् ॥२०॥

महामायां नमामीति मूलमन्त्रेण चाष्टधा। पूजयेत्पद्मध्ये तु सुमनोङ्गलिभिस्तथा ॥२१॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥

सप्तधावर्तनं कृत्वा स्तुतिमेनां तु साधकः। पञ्च प्रणामान् कुर्वीत ऐहींश्रीमिति मन्त्रकैः ॥२३॥

योनिमुद्रां ततः पश्चाद् दर्शयित्वा विसर्जयेत्।

**अथ प्रयोगः**—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि नारदाय ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये श्रीवैष्णव्ये महामायायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य मम सर्वार्थीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताङ्गलिरुक्त्वा, अकच हृदयाय नमः। कचट शिरसे स्वाहा। चट्टत शिखायै वषट्। टतप कवचाय हुं। तपय नेत्रयत्रय वौषट्। पयश अस्त्राय फट्, इति मन्त्रैः करण्डङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानानन्तरं 'ॐ नमः फट्' इति स्वशिरसि पुष्टं दत्त्वा मानसपूजादिपरतत्त्वपूजान्ते 'ॐ पञ्चाननाय (नमः)' इत्यन्तं 'श्रीवैष्णवीहागच्छागच्छ' इत्यावाहू मूलेन स्थापनादिपरमीकरणान्तं कृत्वा प्राणस्थापनादिपुष्टोपचारान्ते मूलमन्त्रेण पुष्पाङ्गलित्रयं दत्त्वा प्राणवदङ्गानि संपूज्यं, दुं सिद्धसूत्राय नमः। हाहींहींसः खड्गाय नमः। इति देव्या दक्षिणाथादर्थकरयोः संपूज्याष्टदलेषु देव्यादिद्वातुर्दलेषु ३० शैलपुत्रैः नमः। चण्डघण्टायै० स्कन्दमात्रै० कालरात्रै०, आग्नेयादिदलेषु ३० चण्डिकायै० कूष्माण्डयै० कात्यायन्यै० महागौर्यै०

इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य, इन्द्रादिपूजानन्तरं मूलान्ते 'महामायां नमामि' इति पुष्टाञ्जल्यष्टकं देव्यै समर्प्य धूपादिसर्वं प्रागवत्समर्पयेत्। तथा—

लक्षद्वयं भवेदस्य पुरश्चरणकर्म वै। दशांशहोमश्चाज्येन कर्तव्यस्तर्पणादिकम् ॥२४॥ इति।

तथा—

ॐनमोऽन्ते महामायायै मनुर्वसुवर्णकः । ॐनमोऽन्ते च वैष्णव्यै मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः ॥  
एतमन्त्रद्वयस्यापि सर्वं पूर्वोक्तमाचरेत् । इति।

महामाया वैष्णवी—उत्तर तन्त्र के श्लोक १-२ के उद्धार करने पर महामाया वैष्णवी का अष्टाक्षर मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—अं कं चं टं तं पं यं शं। इसके पहले ॐ लगाने से यह मन्त्र नवाक्षर होता है। साधकों को इसी नवाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये। इस मन्त्र के ऋषि भारद, छन्द अनुष्टुप् और देवता वैष्णवी कहे गये हैं। यह मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है।

प्रातःकृत्य से योगपीठ न्यास तक की क्रिया करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि नारद ऋष्ये नमः, मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः, हृदये श्रीवैष्णव्यै महामायायै देवतायै नमः। तदनन्तर मम सर्वभीष्टसिद्धये विनियोगः—इस प्रकार विनियोग करे। अंगन्यास इस प्रकार करे—अकच हृदयाय नमः, कचट शिरसे स्वाहा, चटत शिखायै वषट्, टत्प कवचाय हुं, तप्य नेत्रत्रयाय वौषट्, पथश अक्षाय फट्। इसी प्रकार करन्यास करे। मन्त्रवर्षा न्यास मुख, पीठ, उदर, बाहु, गुहा, पैरों, जंघों, जघनों में करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलञ्जलिनीम् ॥  
स्वर्णरत्नसमूद्धकिरीटसूत्रधारिणीम् । शुक्लकृष्णारुणैर्नैत्रिलिपिश्वासविभूषिताम् ॥  
बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम्। कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम्॥  
चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम्। दक्षिणोध्वंन निश्चिंशं परेण सिद्धसूत्रकम्॥  
बिश्रीतीं वामहस्ताभ्यामभित्वरदायिनीम्। आनन्दनागनासोरुं वृत्तगुल्कां सुपार्षिकाम्॥  
गात्रेण रत्नस्तम्भं च सम्यगालम्ब्य संस्थिताम्। किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुरुहुः॥  
पञ्चाननं पुरःसंस्थं निरीक्षन्तीं स्ववाहनम्।

ध्यान के पश्चात् ॐ नमः फट् कहकर अपने शिर पर फूल डाले। मानस पूजन करे। परतत्त्व तक पूजा करे। ॐ पञ्चाननाय नमः से पीठमध्य में पूजा करे। महामायायै विज्ञहे चण्डिकायै धीमहि तत्रो देवीं प्रचोदयात् स्वाहाश्री वैष्णवीहागच्छ-गच्छ कहकर देवी का आवाहन करे। मूल मन्त्र से स्थापन से परमीकरण तक की क्रिया करे। प्राण-प्रतिष्ठा से लेकर पुष्पोपचार तक की पूजा क्रिया करे। मूल मन्त्र से तीन पुष्टाञ्जलि देकर प्रणवादि से अंगपूजन करे। दुं सिद्धसूत्राय नमः, हाँ हाँ हाँ से खड़गाय नमः। इत्यादि से देवी के हाथों में आयुधों की पूजा करे।

अष्टदल में देव्यग्र चार दलों में ॐ शैलपुत्रै नमः, चण्डघण्टायै नमः, ॐ स्कन्दमात्रै नमः, ॐ कालरात्रै नमः से पूजन करे। आग्नेयादि दलों में ॐ चण्डिकायै नमः, ॐ कूष्माण्डै नमः, ॐ कात्यायन्यै नमः, ॐ महागौर्यै नमः कहकर प्रदक्षिण क्रम से पूजन करे। इन्द्रादि लोकपालों और उनके आयुधों की पूजा करे। पूजा के बाद मूलमन्त्र महामायां नमामि से आठ पुष्टाञ्जलि देकर धूपादि समर्पित करे। श्लोक २२ का साठ बार पाठ करे। पाँच बार प्रणाम करे। प्रणाम 'ऐ हीं श्री' मन्त्र से करे। योनिमुद्रा दिखाकर विसर्जन करे।

दो लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। दशांश हवन आज्य से करे। तर्पण-मार्जन आदि करे। वैष्णवी के दो अन्य मन्त्र भी हैं, जो निम्नवत् हैं—

१. ॐ नमो महामायायै—यह अष्टाक्षर है।
२. ॐ नमो वैष्णव्यै—यह षडक्षर है।

इन दोनों मन्त्रों का समस्त विधान पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही होता है।

## नित्यकर्मदित्यागे निषित्ताभिधानम्

**कालिकापुरणे—**

अशुचिर्न महामायां पूजयेतु कदाचन । अवश्यं तु स्मरेन्मनं योऽतिभक्तियुतो नरः ॥१॥  
दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणं च न विद्यते । सर्वेषामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं ब्रजेत् ॥२॥  
जानूर्धवक्षतजे जाते नित्यकर्माणि संत्यजेत् । नैमित्तिकं तु तदधः स्वदक्षतो न चाचरेत् ॥३॥  
लोतके तु समुत्पन्ने क्षुरकर्माणि मैथुने । धूमोद्घारे तथा वाने नित्यकर्माणि संत्यजेत् ॥४॥  
द्रव्यभुक्तेऽप्यजीर्णे च नैव भुक्त्वा च किञ्चन । कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा ॥५॥  
जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाद्देषजादृते । नित्यक्रिया निवर्तेत सह नैमित्तिकैः सदा ॥६॥  
जलौकां गूढपादं च कृमिगण्डूपदादिकम् । कामाद्वस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि संत्यजेत् ॥७॥  
विशेषतः शिवापूजां प्रतीमपितृको नरः । याद्वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ॥८॥  
महागुरुनिपाते च काम्यं किञ्चित्र चाचरेत् । आर्तिक्यं ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धं देवक्रियां तथा ॥९॥  
गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्यैव च पाणिना । न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतःपाते च भैरवि ॥१०॥

स्मरेद ध्यायेन्मनसा जपेदित्यर्थः । अतिभक्तियुतः सततेष्टदेवतागतचिन्तो नित्यमपि नाचरेदित्यर्थः । स्वदिति वर्तमानमविवक्षितम् ।

नाभेस्तर्धमधो वापि यस्य क्षरति शोणितम् । अशुचिस्तदहः कर्म कुर्वन्नरकमानुयात् ॥१॥

इति भविष्यपुराणवचनात् भेदादधो जानव्यः नित्यं कुर्यादेवत्यर्थः लोतकेऽश्रुजले । लोतमस्तुणि चोदितमिति विश्वप्रकाशकोषात् । द्रव्येऽत्रादौ । गूढपादः सर्पः । गण्डूपदः किञ्चुलिकः । आर्तिक्यम् ऋत्विजमाक्षिप्य तिरस्कृत्य पाणिनेत्युपलक्षणम् । योगार्णवे—

वानोद्गरे च क्षतजे लोतके च समुद्धवे । गूढपादस्पशनि च उपस्थस्पशनि तथा ॥१॥

रेतःपाते तथा क्षौरे प्रमीतपितृके तथा । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं मनसापि न चाचरेत् ॥२॥

उद्धारे धूमोद्घारे । लोतके क्रन्दनादौ वा ।

क्रन्दनादश्रुपाते तु नित्यनैमित्तिकं त्यजेत् । तदेव हर्षासङ्गातं कर्म कुर्वन्न दुष्प्रति ॥१॥

इति मत्स्यपुराणवचनात् । उपस्थस्पशेऽकामतः । शौचे 'गृहीतशिनश्छोत्थाय' इति तत्स्पशोर्त्तिः । प्रमीतपितृक इत्युपलक्षणम्, तेन मातर्यपि प्रमीतायाम्,

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिभर्वित् । नापि दैवं न वा पैत्रं यावत्यूर्णोऽथ वत्सरः ॥२॥

इति देवीपुराणवचनात् । एतत्सर्वं महामायोपासकपरम् । अथवा सकामपरम् । 'अथ सूतकिनां पूजां वदाम्यागम-बोधिता'मित्यादिप्राक्पूजाप्रकरणोक्तत्त्वसारसंहितावचनात् । इति अन्यथा पुरश्रणप्रकरणे लिखितवचनानां वैयर्थ्यापत्तेः ।

कालिकापुराण में कहा गया है कि अपवित्र अवस्था में महामाया की पूजा कदापि न करे । अति भक्तियुक्त मनुष्य मन्त्र का स्मरण अवश्य करे । दाँत से खून निकलने पर जप न करे । ऐसी अवस्था में सभी मन्त्रों के स्मरण से नरक प्राप्त होता है । घुटनों के ऊपर चोट लगने पर नित्य कर्म न करे । घुटनों के नीचे रक्त गिरने पर नैमित्तिक कर्म न करे । लूटा होने पर, बाल कटवाने पर, मैथुन करने पर, खट्टा डकार आने पर, वमन होने पर नित्य कर्म न करे । अधिक खाने से अजीर्ण होने पर और विना खाये कभी भी नित्य कर्म न करे । नित्य कर्म अशौच होने पर भी करे । जैसे जल और भोजन आवश्यक हैं, वैसे ही नित्य कर्म भी सदा करे । जोंक, कीड़ा एवं केंचुली के हाथ से छूने पर नित्य कर्म न करे । विशेषकर शिवा-पूजन पिता के मरने पर एक वर्ष तक न करे । गुरु की मृत्यु होने पर कोई काम्य कर्म न करे । आर्तिक्य ब्रह्मयज्ञ, श्राद्ध, देवक्रिया,

गुरु का तिरस्कार कर एवं दूसरे विप्र पर प्रहार करके वीर्यस्खलन होने पर भी नित्य कर्म न करे। भविष्यपुराण में कहा गया है कि नाभि से ऊपर अथवा नीचे खून गिरने पर अशौच होता है। उसमें नित्य कर्म करने पर कर्ता नरकगामी होता है।

योगार्णव में कहा गया है कि वमन, डकार, घाव लगने पर, रुदन आदि होने पर, सर्प के स्पर्श होने पर, वीर्यपात होने पर, पितुसम्बन्धी क्षार के बाद नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्म मनसा भी न करे। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि रुदन और अशूपात होने पर नित्य-नैमित्तिक कर्म न करे; लेकिन हर्षजनित रुदन या अशूपात होने पर कर्म करने में कोई दोष नहीं होता। माता-पिता की मृत्यु होने पर अशौच होता है। इसमें एक वर्ष तक देवता-पितर की पूजा न करे। ये सभी बातें महामाया की उपासना से सम्बन्धित हैं अथवा सकाम कर्मों के लिये हैं।

### ब्रह्मास्त्रविद्याबगलामुखीविद्यानम्

अथ ब्रह्मास्त्रविद्या, तत्र श्रीभैरवयामले—

श्रीदेव्युवाच

प्रभो त्वं भैरवश्रेष्ठ सर्वतन्त्रानुजीवक । नानारहस्यसारं च त्वत्रसादाच्छृणोम्यहम् ॥१॥  
दिव्यतन्त्रं महातन्त्रं पूर्वपश्मिन्संज्ञकम् । दक्षिणोत्तरमूर्धं च हृपायाः कथिताः प्रभो ॥२॥  
वश्याकर्षणदिव्यानि मारणोच्चाटनादिकम् । विद्वेषं मोहनं चान्यद् द्विविधं कामनादिकम् ॥३॥  
विस्तारपूर्वं कथितं ज्ञानं न्यासेन तन्मया । इदानीं स्तम्भनं देवं कथयस्व प्रसादतः ॥४॥  
कथयस्व सुरश्रेष्ठ यद्याहं तत्र वल्लभा ।

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महाभागे सर्वतन्त्रार्थसाधिके । न कस्यचिन्मयाख्यातं पृष्ठं वापि न केनचित् ॥५॥  
गुह्याद् गुह्यतरं देवि त्वत्स्नेहातु प्रकाश्यते । अथातः संप्रवक्ष्यामि शृणु चैकाग्रमानसा ॥६॥  
विद्या या परमा गुप्ता महास्तम्भनकारिणी । तारं प्रथममुच्चार्यं स्थिरमायामथोच्चरेत् ॥७॥  
संबोधनपदं देवि वदेच्च बगलामुखीम् । तदग्रे सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम् ॥८॥  
स्तम्भयेति पदं जिह्वां कीलयेति ततः परम् । बुद्धिं विनाशयेत्यस्मात्स्थरमायां पुनर्लिखेत् ॥९॥  
लिखेच्च पुनरोंकारं स्वाहेति पदमन्ततः । षट्ट्रिंशदक्षरा विद्या महास्तम्भनकारिणी ॥१०॥ इति।

**ब्रह्मास्त्र विद्या (बगलामुखी)**—श्रीभैरवयामल में श्री देवी ने कहा कि हे प्रभो! आप भैरवों में श्रेष्ठ हैं और सभी तन्त्रों के अनुसार कार्य करने वाले हैं। अनेक रहस्यों का सार आपकी कृपा से मैंने सुना। महातन्त्र, दिव्य तन्त्र, पूर्व-पश्मिम, दक्षिणोत्तर को आपने कहा। वश्य, आर्कषण, मारण, उच्चाटन, विद्वेषण, मोहन और द्विविध कामनात्मक कर्मों को भी विस्तार से कहा और उसे मैंने जान लिया। अब कृपया स्तम्भन के बारे में कहिये। हे देवश्रेष्ठ! इसे कहिये, यदि मैं आपकी प्रिया हूँ।

श्रीभैरव ने कहा—हे महाभाग! आपको साधुवाद देता हूँ कि आप सर्वतन्त्रसाधिका से मैंने जो कुछ नहीं कहा, उसे आप पूछ रही हैं। गुह्य से गुह्यतर रहस्यों को तुम्हारे स्नेहवश मैंने प्रकाशित किया है। अब मैं जो कहता हूँ, उसे एकाग्रता से सुनो। महास्तम्भनकारिणी यह विद्या परम गुप्त है। श्लोक ७-१० का उद्धार करने पर छत्तीस अक्षरों की महास्तम्भकारिणी विद्या इस प्रकार स्पष्ट होती है—ॐ हीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं नाशय हीं ॐ स्वाहा।

स्थिरमायाबीजोद्धारः

जयद्रथयामले—

पूर्वोक्तमायाबीजे तु व्योमरेफान्तरालके । भूबीजं योजयेदषा स्थिरमाया प्रकीर्तिता ॥१॥

मायाबीजे भुवनेश्वरीबीजे भूबीजं लकारं, सुगममन्यत् (तन्त्रान्तरे 'वहिहीनेन्द्रयुमाया स्थिरमाया प्रकीर्तिता'  
इति मतान्तरम्) भुवनेश्वरीबीजस्य सर्वेषु स्थलेषु उद्घृतत्वात् पूर्वोक्तेत्युक्तिः।

गजानां च रथानां च दुर्जनान् शीघ्रकारिणः । स्तम्भयेच्च महावाचं बृहस्पतिमुखोद्धताम् ॥१२॥  
महापर्वतवृक्षाणां सरितां सागरवजाम् । चतुष्पदां पक्षिणां च सर्पाग्निवायुविद्युताम् ॥१३॥  
स्तम्भयेत्यच्च दिव्यानि मानुष्येषु च का कथा । त्रैलोक्यस्तम्भिनी विद्या देवी श्रीबगलामुखी ॥१४॥

तारं प्रणवं, स्थिरमायां हलीबीजं, संबोधनपदं बगलामुखि, सर्वदुष्टानां स्वरूपं, वाचं स्वरूपं, मुखं स्वरूपं, पदं स्वरूपं, स्तम्भय स्वरूपं, जिह्वां कीलय स्वरूपं, बुद्धिं विनाशय स्वरूपं, स्थिरमायां प्रावद्वीजं, प्रणवमांकारं स्वाहा स्वरूपम् ।

जयद्रथयामल के अनुसार पूर्वोक्त माया बीज हर के अन्तराल में 'ल' कार जोड़ने से स्थिर मायाबीज बनता है। वृहस्पति के मुख से निःसृत वाणी हाथियों, रथों, दुर्जनों का शीघ्र स्तम्भन होता है। महान् पर्वतों, वृक्षों, सागरगामी नदियों, चतुष्पदों, पक्षियों, सर्पों, अग्नियों, वायुओं एवं विद्युतों का भी स्तम्भन इस मन्त्र के प्रभाव से होता है; फिर मनुष्यों के बारे में तो कहना ही क्या है। देवी श्री बगलामुखी की यह विद्या त्रैलोक्य का स्तम्भन करने वाली है।

#### पूजाविधि:

तथा—

नारायण ऋषिक्रिष्णपृ छन्दश्च बगलामुखी । देवता गदिता देवि त्रैलोक्यस्तम्भकारिणी ॥१५॥

स्थिरमाया भवेद्वीजं शक्तिः स्वाहा समीरिता । विनियोगस्तु विख्याताः पुरुषार्थचतुष्पये ॥१६॥

स्थिरमाया च हृदयं शिरश्च बगलामुखी । सर्वदुष्टशिखां न्यस्य कवचं स्तम्भयान्तिकम् ॥१७॥

जिह्वां कीलय नेत्रे च बुद्धिं विनाशयास्त्रकम् ।

सर्वदुष्ट इति समग्रपदस्य ग्रहणं तेन सर्वदुष्टानां शिखायै इति। स्तम्भयान्तिकमित्यनेन वाचं मुखं पदं स्तम्भय  
इति पदचतुष्टयं कवचे प्रोक्तम् सुगममन्यत्।

मूर्धिं भाले धूक्षोर्मध्ये नेत्रयोः श्रोत्रयोर्नेत्रसोः । गण्डयोरोष्योर्वक्त्रे चिबुके च गले प्रिये ॥१८॥

दोःपत्स्तस्तिषु साग्रेषु सन्त्रवणान् न्यसेत्कमात् । एवं न्यासविधिः प्रोक्तस्ततो ध्यानं शृणु प्रिये ॥१९॥

यस्या: स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत्क्षणात् । गम्भीरां च मदोन्मत्तां तप्तकाञ्जनसुप्रभाम् ॥२०॥

चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् । मुद्रां दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम् ॥२१॥

पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम् । हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम् ॥२२॥

पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासनस्थिताम् । एवं ध्यात्वा च देवेशि शत्रुस्तम्भनकारिणीम् ॥२३॥

महाविद्यां महामायां साधकेष्टफलप्रदाम् ।

दक्षिणाध उत्तरयोर्मुद्ररपाशौ, वामाध उत्तरयोर्जिह्वावत्रे, जिह्वां साधकविष्पक्षजनस्येति, 'धृतमुद्ररौरिजिह्वा'-  
मिति वचनात्।

इस मन्त्र के क्रृषि नारायण, छन्द अनुष्टुप्, देवता त्रैलोक्य स्तम्भनकारिणी बगलामुखी है। बीज 'हीं' है और शक्ति स्वाहा है। पुरुषार्थचतुष्पय की सिद्धि के लिये इसका विनियोग होता है। हीं से हृदय में, बगलामुखि से शिर में, सर्वदुष्ट से शिखा में, स्तम्भय से कवच में, जिह्वां कीलय से नेत्र में बुद्धिं विनाशय से अस्त्र में न्यास किया जाता करे।

मन्त्रवर्णों का न्यास—मूर्धा, ललाट, ध्रूमध्य, नेत्र, श्रोत्र, नाक, कपोल, ओष्ठ, मुख, चिबुक, गला, सन्धियों में और आगे मन्त्रवर्णों का न्यास किया जाता है। इस प्रकार न्यास के बाद निम्नवत् ध्यान किया जाता है—

यस्या: स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत्क्षणात् । गम्भीरां च मदोन्मत्तां तप्तकाञ्जनसुप्रभाम् ॥

चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् । मुद्रां दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम् ॥

पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम् । हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम् ॥

पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासनस्थिताम् । एवं ध्यात्वा च देवेशि शत्रुस्तम्भनकारिणीम् ॥  
महाविद्यां महामायां साधकेष्टलप्रदाम् ।

इस प्रकार का ध्यान करने से देवेशि शत्रुस्तम्भनकारिणी महाविद्या महामाया साधक को अभीष्ट फल देती है। देवी के नीचले दाँयें हाथ में मुद्रा एवं ऊपर वाले हाथ में पाश हैं। नीचले बाँयें हाथ में शत्रु की जीभ और ऊपर वाले हाथ में वज्र हैं।

श्रीदेव्युवाच

ध्यानं तु कथितं देव महाशृण्यप्रदायकम् । इदानीं कथयस्वेश पूजनं विधिपूर्वकम् ॥२४॥

श्रीभैरव उवाच

पूजनं शृणु देवेशि साधके सिद्धिदायकम् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं पूजनं त्रिविधं प्रिये ॥२५॥  
भूप्रदेशे मनोरम्ये पुष्पामोदैः सुधूपिते । गोमयेनाथ संलिङ्गे पुष्पप्रकरशोभिते ॥२६॥  
मण्डुपे विधिवत्त्र आसनं तु समर्चयेत् । सौबैर्णे वाथ रौप्ये वा पैत्तले वाथ भूजके ॥२७॥  
कर्पूरागरुकस्तूरीश्रीखण्डकुङ्गमैरपि । लिखेद्यनं प्रयत्नेन लेखिन्या हेमतारया ॥२८॥  
मध्ये योनिं समालिख्य तद्वाहे तु षड्वक्रम् । तद्वाहेऽष्टदलं पद्मं तद्वाहे षोडशच्छदम् ॥२९॥  
चतुरस्त्रयं बाहे चतुर्द्वारोपशोभितम् । इति।

श्री देवी ने कहा—हे देव! आपने महान् आशृण्यप्रदायक ध्यान को कहा है। अब पूजन विधि का वर्णन सम्यक् रूप से कीजिये। श्री भैरव ने कहा—हे देवि! अब साधकों के लिये सिद्धिदायक पूजन-विधि को सुनो। नित्य-नैमित्तिक-काम्य—तीनों प्रकार के पूजनों को कहता हूँ। मनोरम् भूप्रदेश में फूलों से सुगन्धित, धूपित, गोबर से लिपी, पुष्पों से शोभित मण्डप में विधिवत् आसन की पूजा करे। सोना या चाँदी या पीतल या भोजपत्र पर कपूर, अगर, कस्तूरी, चन्दन, कुङ्गम से यन्त्र लिखे। लेखनी सोने की हो। पहले त्रिकोण बनावे, उसके बाहर षट्कोण, तब अष्टदल, तब षोडश दल कमल, तब चार द्वारों से युक्त तीन चतुरस बनावे।

अत्र तु—

यत्र नोक्तं महादेवि पीठं वा पीठशक्तयः । तत्र मायोदितं पीठं ज्ञेयं ता एव शक्तयः ॥३०॥  
तद्वाजेनैव पीठं च यजेन्मायाणुनाथ वा ।

इति श्रीशिवयामलवचनाद्वुवनेश्वरीपीठमध्यर्थ्य तत्र श्रीबगलामुखीमन्यां वा देवीमनुक्तपीठं यजेत्। मायाणुना भुवनेशीबीजेन। तथा—

तत्रावाहा यजेद् देवीं सुपीतैरुपचारकैः । अङ्गानि पूर्वमध्यर्थ्य यथास्थानं महेश्वरि ॥३१॥  
पूर्वद्वारे गणेशं च दक्षिणे वटुकं यजेत् । पश्चिमे योगिनीः पूज्याः क्षेत्रपालं तथोत्तरे ॥३२॥  
ईशानादिनिर्दृत्यन्तं गुरुपङ्कितं समर्चयेत् ।

ईशानादीति तत्रेषु षड्जपूजाक्रमे अग्नीशासुरवायव्येत्युक्तक्रमस्य कल्पितप्राच्यनुसारादीशानस्यादिभूत-माग्नेयं तदारभ्य निर्दृतिदिक्पर्यन्तं गुरुपङ्कितं पूजयेदित्यर्थः। तदा तु यथास्थितवायव्यादीशानान्तं गुरुपङ्कितपूजा कार्येत्यायातम्।

हे महादेवि! जहाँ पर पीठ अथवा पीठशक्तियाँ नहीं कही गई हैं, वहाँ पर शिवयामल के वचनानुसार भुवनेश्वरी पीठ और उनके शक्तियों का उनके बीजमन्त्रों अथवा भुवनेशी-बीज से यजन करना चाहिये। उक्त पीठ पर देवी का आवाहन करके पीले उपचारों से प्रथमतः अंगपूजा करे। पूर्व द्वार पर गणेश की, दक्षिण द्वार पर वटुक की, पश्चिम द्वार पर योगिनियों की एवं उत्तर द्वार पर क्षेत्रपाल की पूजा करे। तदनन्तर ईशान कोण से प्रारम्भ कर नैर्दृत्य कोण तक गुरुपङ्कित का अर्चन करना चाहिये।

तथा—

बगला पूर्वपत्रे तु स्तम्भिनी च ततः परम् ॥३३॥

जम्भिनी मोहिनी वश्या अचला च चला तथा । दुर्द्वरा कल्पणा धीरा कल्पना कालकर्षणी ॥३४॥  
 भ्रामिका मन्दगमना भोगाख्या चैव योगका । एताः षोडशपत्रेषु गन्धपुष्पाक्षतैर्यजेत् ॥३५॥  
 षोडशस्वरसंयुक्ताः संप्रदायात् कुलागमे । यजेच्च प्रतमध्येषु कल्पितु चाष्टपत्रके ॥३६॥  
 ब्रह्माण्याद्याष्ट पूर्वादौ वाहनाकल्पसंयुताः । स्थिरमायाबीजपूर्वाः परिपूज्याः कुलागमे ॥३७॥  
 डादिहान्ताः षडलेषु पूज्याः षट्थातुमातृकाः । लोकेशांश्च तदन्नाणि पूजयेद्वाहातः प्रिये ॥३८॥  
 योनिमध्ये मूलदेवीं त्रिरञ्जलिभिरचर्येत् । धूपदीपसुनैवेद्यगन्धताम्बूलदीपकैः ॥३९॥  
 नीराज्य विधिवत्यशाज्जपसङ्घातां निवेदयेत् । बलित्रयं ततो दद्यात् पीतान्नादीनि साधकः ॥४०॥  
 बलित्रयमित्युपलक्षणं बलिपञ्चकं दद्यादित्यर्थः ।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि नारायणऋषये नमः । मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः । हृदये बगलामुख्यै देवतायै नमः । नाभौ हींबीजाय नमः । गुह्ये स्वाहा शक्तये नमः । पादयोः पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगाय नमः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, हीं हृदयाय नमः । बगलामुखि शिरसे स्वाहा । सर्वदुष्टानां शिखायै वषट् । वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं । जिह्वां कीलय नेत्राभ्यां वौषट् । बुद्धिं विनाशय अस्त्राय फट् । इति करघडङ्गन्यासं कृत्वा, शिरसि ॐ नमः । ललाटे हीं नमः । धूमध्ये बं नमः । दक्षनेत्रे गं नमः । वामे लां नमः । दक्षश्रोत्रे मुं नमः । वामे खिं नमः । दक्षनसि सं नमः । वामे वं नमः । दक्षगण्डे दुं नमः । वामे ष्टां नमः । ऊर्ध्वोष्ठे नां नमः । अथरोष्ठे वां नमः । मुखे चं नमः । चिकुके मुं नमः । गले खं नमः । दक्षबाहुमूले पं नमः । मध्ये दं नमः । मणिबन्धे स्तं नमः । अङ्गुलिमूले स्प्नं नमः । अग्रे यं नमः । वामबाहुमूले जिं नमः । मध्ये हां नमः । मणिबन्धे कीं नमः । अङ्गुलिमूले लं नमः । अग्रे यं नमः । दक्षोरुमूले बुं नमः । जानुनि द्विं नमः । गुल्फे विं नमः । अङ्गुलिमूले नां नमः । अग्रे शं नमः । वामोरुमूले यं नमः । जानुनि हीं नमः । अङ्गुलिमूले स्वां नमः । अग्रे हां नमः, इति विन्यस्य ध्यानाद्यात्मपूजान्ते पूर्वोक्तभुवनेश्वरीपीठं संपूज्य तत्र नवशक्तिपूजान्ते ‘हीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः’ इति समस्तं पीठं संपूज्या-वाहनादिषडङ्गपूजान्ते देव्यगद्वारमारभ्य प्रादक्षिणयेन चतुद्विरिषु, गणेशाय नमः । वटुकाय नमः । योगिनीभ्यो नमः । क्षेत्रपालाय नमः । इति संपूज्य, स्ववामभागे कल्पितप्राच्यनुसारेणाग्नेयादिनिर्वृत्यन्तं गुरुभ्यो नमः । परमगुरुभ्यो नमः । परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । परापरगुरुभ्यो नमः । अस्मदगुरुभ्यो नमः । इति गुरुपद्मक्तिं संपूज्य, षोडशदलेषु देव्य-ग्रादिप्रादक्षिणयेन अं बगलायै नमः स्तम्भिन्यै०, इं जम्भिन्यै०, ईं मोहिन्यै०, उं वश्यायै०, ऊं अचलायै०, ऋं चलायै०, ऋूं दुर्द्वारायै०, लं कल्मषायै०, लूं धीरायै०, एं कल्पनायै०, ऐं कालकर्षिण्यै०, ओं भ्रामिकायै०, औं मन्दगमनायै०, अं भोगायै०, अः योगायै०, इति संपूज्या । अष्टदलेषु प्रादक्षिणयेन—हीं ब्रह्माण्यै नमः, माहेश्वर्यै नमः इत्यादि स्थिरमायाबीजाद्या अष्ट मातृः संपूज्य, अन्तःषट्कोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिणयेन ढां डाकिन्यै नमः । रां राकिण्यै नमः । लां लाकिन्यै नमः । कां काकिन्यै नमः । शां शाकिन्यै नमः । हां हाकिन्यै नमः, इति संपूज्य, मध्ये देवीं पुनर्लिङ्गरूपलविद्या संपूज्य लोकेशपूजादि सर्वं नित्यहोमान्तं कृत्वा बालाक्रकरणोक्तवद्विलित्रयं दत्त्वा शेषं प्रावत् समापयेदिति ।

प्रातःकृत्य से योगपीठ न्यास तक की क्रिया करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे । तदनन्तर ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि नारायण ऋषये नमः । मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः । हृदये बगलामुख्यै देवतायै नमः । नाभौ हीं बीजाय नमः । गुह्ये स्वाहा शक्तये नमः । पादयोः पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगाय नमः । कर-षट्कं न्यास करे—हीं हृदयाय नमः । बगलामुखि शिरसे स्वाहा ।

सर्वदृष्टानां शिखायै वषट्। वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुम्। जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्। बुद्धिं विनाशय अस्वाय फट्। इसी प्रकार करन्यास करे।

**मन्त्रवर्ण न्यास—शिरसि** ॐ नमः। ललाटे हीं नमः। श्रूमध्ये वं नमः। दक्षनेत्रे गं नमः। वामे लां नमः। दक्ष-श्रोत्रे मुं नमः। वामे खिं नमः। दक्षनसि सं नमः। वामे वं नमः। दक्षगण्डे दुं नमः। वामे षां नमः। ऊर्ध्वोष्ठे नां नमः। अधरोष्ठे वां नमः। मुखे चं नमः। चिकुके मुं नमः। गले खें नमः। दक्षबाहुमूले पं नमः। मध्ये दं नमः। मणिबन्धे स्तं नमः। अंगुलि-मूले म्घं नमः। अग्रे यं नमः। वामबाहुमूले जिं नमः। मध्ये हाँ नमः। मणिबन्धे की नमः। अंगुलिमूले लं नमः। अग्रे यं नमः। दक्षोरुमूले बुं नमः। जानुनि दिं नमः। गुल्फे विं नमः। अंगुलिमूले नां नमः। अग्रे शं नमः। वामोरुमूले यं नमः। जानुनि हीं नमः। अंगुलिमूले स्वां नमः। अग्रे हां नमः। इसके बाद ध्यान आदि से आत्मपूजा तक पूर्वोक्त भूवनेश्वरी पीठ पर करे। उसमें नव शक्तियों की पूजा के बाद ‘हीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः’ से समस्त पीठ की पूजा करे। तब देवी का आवाहन करके षडङ्ग पूजा के बाद देवी के आगे वाले द्वार से आरम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से चारों द्वारों में गणेशाय नमः, वटुकाय नमः, योगिनीश्चो नमः, क्षेत्रपालाय नमः से पूजा करे। अपने वाम भाग में कल्पित पूर्व से आगेन्यादि नैऋत्य तक गुरुभ्यो नमः, परमामुहभ्यो नमः, परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, अस्मद् गुरुभ्यो नमः से गुरुपंक्तियों की पूजा करे।

षोडशदल में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से अं बगलायै नमः, आं स्तम्भिन्यै नमः, ई मोहिन्यै नमः, उं वश्यायै नमः, ऊं अचलायै नमः, ऋं दुर्द्वारायै नमः, लं लक्ष्मायै नमः, लृं धीरायै नमः, एं कल्पयायै नमः, ऐं कालकर्षिण्यै नमः, ओं श्रामिकायै नमः, औं मन्दगमनायै नमः, अं भोगायै नमः, अः योगायै नमः—इस प्रकार पूजन करे।

अष्टदल में प्रादक्षिण्य क्रम से हीं ब्रह्मायै नमः, माहेश्वर्यै नमः इत्यादि स्थिर मायाबीज से अष्टमातुका का पूजनकर भीतरी षट्कोणों में देवी के आगे से प्रदक्षिणक्रम से डां डाकिन्यै नमः, रं राकिण्यै नमः, लं लाकिन्यै नमः, कं काकिन्यै नमः, शां शाकिन्यै नमः, हां हाकिन्यै नमः से पूजा करे। मध्य में देवी की तीन मूल विद्या से पूजन कर भूपुर में लोकेशों और उनके आयुधों की पूजा करे। तब धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, ताम्बूल, दीपक, नीराजन करके जप का विधिवत् निवेदन करे। पवित्रारोपण करके दमनक देवी की पूजा करे। नित्य होम करके बाला प्रकरणोक्त विधि से पीले अत्र आदि से तीन बलि प्रदान करे।

### तथा—

<b>साधनं संप्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै। सर्वपीतोपचारेण</b> <b>जपमाला च देवेशि हरिद्राग्रन्थिसंभवा। पीतमासनमारूढः</b> <b>पीतपुष्पार्चनं नित्यमयुतं जपमाचरेत्। दशांशेन कृतो होमः पीतद्रव्यैः सुशोभितैः</b> <b>तर्पणादि ततः कुर्यान्मन्त्रः सिद्ध्यति मन्त्रिणः। साध्यसंज्ञां समुच्चार्य स्तम्भयेति ततः परम्॥४४॥</b> <b>गतिस्तम्भकरी विद्या अरिस्तम्भनकारिणी। मेधां प्रज्ञां च शक्तादीन् देवमानवपत्रगान्॥४५॥</b>	<b>पीताम्बरधरो नरः ॥४१॥</b> <b>पीतध्यानपरायणः ॥४२॥</b> <b>पीतद्रव्यैः सुशोभितैः ॥४३॥</b> <b>परम्॥४४॥</b> <b>स्तम्भयेच्च महाविद्या सत्यं सत्यं वरानने ।</b>
--	--

साधकों के हित के लिये अब इसका साधन कहता हूँ। इसके पूजा के उपचार पीले होते हैं। साधक स्वयं पीला वस्त्र पहने। हरिद्राग्रन्थि की जपमाला हो। पीले आसन पर बैठे। पीत वर्ण का ध्यान करे। नित्य पीले फूलों से पूजा करे। दश हजार जप करे। दशांश हवन पीले द्रव्यों से करे। तब तर्पणादि करे तो मन्त्र सिद्ध होता है। साध्य का नाम उच्चारण करके ‘स्तम्भ्य’ कहने पर स्तम्भन होता है। यह विद्या शत्रु की गति को स्तम्भित करती है। यह शत्रु की मेधा, प्रज्ञा, शास्त्र, देव, मानव एवं सर्वों का स्तम्भन करती है। यह सत्य है, सत्य है।

### साधनादिनिर्णयः

प्रीदेव्युवाच

<b>अधुना साधनं देव शीघ्रप्रत्ययकारकम्। मन्त्रयन्त्रौषधजपहुतादैः</b> <b>साधनं कामितार्थस्य, मन्त्रसाधनस्य प्रागेवोक्तत्वात्।</b>	<b>कथयस्व मे ॥४६॥</b>
--	-----------------------

श्रीभैरव उवाच

शृणु प्राज्ञे महागुप्तं प्रकटीक्रियतेऽधुना । एकान्ते निर्जने रथ्ये शुचौ देशो गृहेऽपि वा ॥४७॥  
कुण्डं सलक्षणं कृत्वा मेखलात्रयशोभितम् । योनिर्वितस्तिमात्रा तु षट्कर्माण्यत्र साधयेत् ॥४८॥  
नानाविधासने देवि क्रमोददिष्टं समाचरेत् । मधुरत्रितिलाङ्गेन वश्यताभानि साधयेत् ॥४९॥  
तथाकर्षणकामस्तु लोणं त्रिमधुरान्वितम् । निष्क्रपैस्तैलयुक्तं विद्वेषणकरं परम् ॥५०॥  
हरितालं हरिद्रां च लवणेनैव संयुतम् । स्तम्भने होमयेदेवि प्रज्ञां चैव गतिं मन्त्रिम् ॥५१॥  
स्तम्भयेदिति शेषः ।

राजिकाष्ठस्य सारेण माहित्या रुधिरेण च । रिष्णां मारणे देवि शमशानाग्नौ हुनेन्निशि ॥५२॥  
राजिकाष्ठसारः आसुरीस्तेहः ।

गृध्राणामपि काकानां गृहधूमयुतेन वै । पक्षेण जुहुयाद् देवि ( शत्रोरुच्चाटनाय वै ॥५३॥  
दूर्वाङ्गुरामृतावलीखण्डाक्षं चतुरझुलाः । लाजांस्त्रिमधुयुक्तांक्षं सर्वरोगोपशान्तये ॥५४॥  
लक्ष्मेकं जपेद् देवि ) ब्रह्मचारी दृढव्रतः । पर्वताश्रे महारण्ये सिद्धशैलमये गृहे ॥५५॥  
सङ्घमे च महानद्योर्निशायामपि साथयेत् । श्वेतब्रह्मतरोमूलपादुकां चैव कारयेत् ॥५६॥  
अलक्षेन तु रागेण रञ्जिता च हरिद्रया । षट्त्रिंशदक्षरीविद्या लक्ष्मेन तु मन्त्रिता ॥५७॥  
शतयोजनमात्रं तु मनश्चिन्तितमात्रतः ।

गच्छेदिति शेषः ।

श्री देवी ने कहा—हे देव! अब आप शीघ्र प्रत्यकारक मन्त्र-यन्त्र-औषध-जप-हवनादि के साधन को कहिये।

श्री भैरव ने कहा कि हे प्राज्ञ! सुनो, महागुप्त को अब मैं प्रकट करता हूँ । एकान्त निर्जन रथ्य पवित्र देश में या अपने घर में सभी लक्षणों से युक्त कुण्ड बनावे । उसे तीन मेखला से सुशोभित करें । एक वित्ता लम्बी योनि बनावे । उसमें षट्कर्म की साधना करे । नाना प्रकार की क्रमोदिष्ट साधना करे । त्रिमधुर मिश्रित तिल, धी से वश्य कर्म में हवन करे । आर्कषण के लिये त्रिमधुराक्त नमक से हवन करे । विद्वेषण के लिये तैलाक्त नीम की पतियों से हवन करे । स्तम्भन में हरताल नमक हल्दी मिलाकर हवन करे । इससे वैरी की प्रज्ञा, गति, मन्त्रि का स्तम्भन होता है । राजिकाष्ठसार एवं धैंस का रुधिर से शमशान में हवन रात में करने से शत्रु की मृत्यु होती है । शत्रु के उच्चाटन के लिये गीध के पंख, कौआ के पंख में रसोई घर की कालिख मिलाकर हवन करे । दूर्वाङ्गुर गुरुच का चार अंगुल का खण्ड लावा और त्रिमधु मिलाकर हवन करने से सभी रोग नष्ट होते हैं । ब्रह्मचारी दृढव्रती होकर पर्वतशिखर पर, जंगल में या सिद्ध प्रस्तर-गृह में एक लाख जप करे । महानदियों के संगम में महानिशा में साधना करे । श्वेत फूल वाले पलाश की पादुका बनवावे । उसे अलता, राग और हल्दी से रंगे । छत्तीस अक्षरों की विद्या के एक लाख जप से उसे मन्त्रित करे तो इच्छा करते ही वह सौ योजन दूर ले जाता है ।

रसं मनःशिलां तालं माक्षिकेण समान्वितम् । पिण्डविभिमन्त्रं लक्ष्मेकं सर्वाङ्गे लेपनं कृतम् ॥५८॥  
अदृश्यकारकं देवि लोके च महदहृतम् । सुरभेरेकवर्णाया धारोण्यां क्षीरमाहरेत् ॥५९॥  
शर्करामधुसंयुक्तं त्रिवारं तेन मन्त्रितम् । पाययित्वा तु हरते विषं स्थावरजङ्गमम् ॥६०॥  
दारिद्र्यमोचनं देवि लक्ष्मेकं जपेन्नरः । दशांशेन कृतो होमः एभिर्द्रव्यैः पृथक्पृथक् ॥६१॥  
लक्ष्मीयुक्तो भवेदेवि दारिद्र्यं नाशयेद् ध्रुवम् ।

मैनसिल के रस, हरताल एवं मधु को एक में पीसकर उसे एक लाख जप से मन्त्रित करे । सारे शरीर में उसका लेप करे तो साथक अदृश्य हो जाता है । संसार में यह महा अद्भुत है । एक वर्ण की गाय के धारोण्य दूध में शक्कर और मधु मिलावे । तीन मन्त्रजप से उसे मन्त्रित कर उसका पान करे तो विष से पीड़ित व्यक्ति के स्थावर-जंगम विष का प्रभाव

समाप्त हो जाता है। दरिद्रता से छुटकारा के लिए एक लाख जप करे। दशांश हवन इन द्रव्यों से पृथक्-पृथक् करे। इससे मनुष्य की दरिद्रता समाप्त हो जाती है और वह लक्ष्मीसुकृ होता है।

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कामनां यन्त्रतः पराम् ॥६२॥

परे वाप्यथ पाषाणे साध्यसंज्ञां तु कारयेत् । आद्यन्ते स्थिरमायां च हरिद्रातालकैर्लिखेत् ॥६३॥  
उन्मत्तरससंयुक्तैर्गर्दं त्रिवलयं लिखेत् । गर्भस्तम्भं गतिस्तम्भं चमत्कारकरी परा ॥६४॥  
करोतीति शेषः ।

अब कामनाप्रायक अन्य यन्त्र बतलाता हूँ। कपड़े या पत्थर पर साध्य का नाम लिखे। मन्त्र के आरम्भ में और अन्त में ‘हीं’ लगाकर हल्दी-हरताल एवं उन्मत्तरस के गाढ़े घोल से तीन आवृति में मन्त्र लिखे। इससे गर्भ का स्तम्भन एवं गतिस्तम्भनरूप चमत्कार होता है।

भूर्जपत्रे समालिङ्ग्य तालोन्मत्तनिशारसैः । षट्कोणं तस्य मध्ये तु विद्यां वलयतो लिखेत् ॥६५॥  
साध्यसंज्ञां विद्यया वेष्टयेदित्यर्थः ।

साध्यसंज्ञां ततो देवि पीतसूत्रेण वेष्टयेत् । चक्रं भ्राम्यत्कुलालस्य विपरीतं तु मृत्तिकाम् ॥६६॥  
वृषभं कारयेत्स्या विलिप्तं तालकेन च । तम्भ्ये निक्षिपेद्यन्त्रमारूढं वृषभोपरि ॥६७॥  
नासायां निक्षिपेद्रज्जुं पीतवल्लेण वेष्टयेत् । बाह्योपचारपूजाभिः स्वगृहे तु प्रपूजयेत् ॥६८॥  
अर्चयेत्तं चतुष्कालं साध्यनामात्र साधकः । दुष्टानां स्तम्भयेद्वक्त्रं साक्षाद्वाचस्यतेरपि ॥६९॥  
अधोमुखं श्मशानस्थं दृढं खर्परमानयेत् । गृहीत्वा वामहस्तेन श्मशानाङ्गारकैर्लिखेत् ॥७०॥  
दक्षहस्तेन देवेशि लिखेत्राम प्रयत्नतः । सप्तधा तु ठकारेण पूरकेणाभिमन्त्रयेत् ॥७१॥  
तन्मध्ये विलिखेद्वीजं त्रिवलीकारतः प्रिये । षष्ठ्यन्तसाध्यनामान्ते मुखं स्तम्भय चालिखेत् ॥७२॥  
बाह्ये न्यस्तं महाबीजं चतुःसंख्यं समालिखेत् । साध्यनामाक्षरं देवि चाभिमन्त्र्याथ विद्यया ॥७३॥  
षष्ठ्यन्तं साधकं चोक्त्वा साध्ये संबोधनं वदेत् । मा भुक्ष्वेति पदं पश्चाद्देदाप्रेडितान्वितम् ॥७४॥  
पीतोपचारैः संपूज्य मुखस्तम्भनमुत्तमम् । एतद्यन्तं वरारोहे श्मशानवसने लिखेत् ॥७५॥  
भेकस्य वदने क्षिप्त्वा पीतसूत्रेण वेष्टयेत् । भूमिष्ठं मण्डलं कृत्वा पीतपुष्टेः समर्चयेत् ॥७६॥  
उत्सारोत्सर्गमन्ते च पदमुच्चारयेत्स्फुटम् । वामपादेन संपूज्य कुलालोद्भवमृत्तिकाम् ॥७७॥

पूरकस्य प्रयोगेण प्रयोगः प्रत्ययावहः ।

भोजपत्र पर हरताल, धूतूर और हल्दी घोल से षट्कोण बनावे। उसके मध्य में साध्य नाम लिखकर विद्या से वेष्टित करे। तब उसे पीले धागे से वेष्टित करे। कुम्हार के चक्र को विपरीत में धुमाकर मिट्टी ग्रहण करे। उससे वृष बनाकर उसे हरताल से लेपित करे। उसके मध्य में वृषभ पर सवार यन्त्र को स्थापित करे। वृषभ के नासा में रस्सी लगावे। उसे पीले वस्त्र से लपेट दे। अपने घर में बाह्य उपचारों से उसकी पूजा करे। चारों समय में साध्य नाम कहकर पूजा करे। तब साक्षात् वृहस्पति के समान मनुष्य का भी मुखस्तम्भन हो जाता है, फिर दुश्टों का तो कहना ही क्या है। श्मशान में अधोमुख पड़े खपड़े को ले आये। उसे बाँयें हाथ से पकड़कर दाँयें हाथ से श्मशान के कोयले से उस पर साध्य नाम लिखे। ठकार के सात पूरक से उसे मन्त्रित करे। उसके मध्य में बीज को त्रिवलि के आकार में लिखे। षष्ठ्यन्त साध्य नाम के बाद मुखं स्तम्भय लिखे। उसके बाहर चार महाबीजों को लिखे। साध्य नामाक्षरों को विद्या से मन्त्रित करे। षष्ठ्यन्त साध्य नाम बोलकर संबोधन करे। तब दो बार भक्षय कहकर पीले उपचारों से पूजा करे। इससे मुख का स्तम्भन होता है। इस यन्त्र को श्मशान के कपड़े पर लिखे। मेढ़क में मुख में इसे रखकर पीले धागे से वेष्टित करे। भूमि पर मण्डल बनाकर पीले फूलों से पूजा करे। उत्सर्ग मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण करके उत्सारण करे। वाम पाद से पूजन कर कुम्हार की मिट्टी से पूरक प्रयोग करे तो कार्य सिद्ध होता है।

आलिखेच्चतुरः पादान् कुञ्जत्वात्कुञ्जतं गतान् ॥७८॥

अन्योन्यं मिलितत्वेन कृतोऽधों(त्वोर्धा)षः समन्ततः । वामदक्षिणसंबन्धात् द्वौ द्वौ पादौ प्रकल्पयेत् ॥७९॥  
 नाम साध्यस्य षष्ठ्यन्तं गतिं च स्तम्भयेति च । पूर्ववन्मायथा नामालिख्य भूबीजमालिखेत् ॥८०॥  
 पादशाखास्तदग्रेषु तन्मध्ये बीजमालिखेत् । पूर्वोक्तेवस्तुभिर्लिख्य पाषाणे वाथ पट्टके ॥८१॥  
 पूर्वोक्तेः संपुटीकृत्य वेष्टयेत् पीततन्तुभिः । शश्यायाः स्थलसंस्थं च खनेत्वातं प्रयत्नतः ॥८२॥  
 वामहस्ते न्यसेद्यन्तं पीतपुष्टैस्तु पूजयेत् । महादाश्र्यदं भद्रे रेतःस्तम्भनमुत्तमम् ॥८३॥  
 शमशानखर्परं ग्राहं शमशानाङ्गारामाहरेत् । मायाबीजं त्रिविधालिख्य साध्यसंज्ञां च मध्यतः ॥८४॥  
 अपसव्येन वलना रेखात्रिवलयानया । वामहस्तेन निखनेत् खर्परं तदधोमुखम् ॥८५॥  
 छादयेद्वामपादेन मलोत्सर्गं तथोपरि । स्तम्भनं चैव देवेशि रिपूणां मुखबन्धनम् ॥८६॥  
 ताटङ्गपत्रमादाय लिखेत्साध्यं तु नामतः । आद्यन्ते विलिखेद्वीजं त्रिविधोत्तरकं लिखेत् ॥८७॥  
 वामहस्तपुटं कृत्वा करपिण्डीयकण्टकात् । सप्तसंख्याकण्टकानि भित्वा चैव पुटीकृतम् ॥८८॥  
 पृथग्विद्यां च चोच्चार्य नाम साध्यस्य साधकः । भाण्डमध्ये क्षिपेत्तं च सौवीरेण च पूरयेत् ॥८९॥  
 स्वगृहे बाह्यदेशे तु वायव्ये चैव कोणके । वामहस्ते खनेत् खातं वामपादेन पूरयेत् ॥९०॥

गतिपतिस्तम्भकारः प्रयोगः प्रत्ययावहः ।

भग्न होने के कारण भग्नता को प्राप्त चारों पादों को लिखे। उन्हें अन्योन्य मिलित रूप में ऊपर-नीचे करके वाम-दक्षिण सम्बन्ध से दो-दो पादों की कल्पना करे। षष्ठ्यन्तं साध्य नाम के साथ गतिं स्तम्भय लिखे। पूर्ववत् माया में नाम लिखकर भूबीज लिखे। पात्रशाखा के आगे से बीज लिखे। पूर्वोक्त वस्तुओं से पत्थर या कपड़े पर लिखे। पूर्वोक्त मन्त्र से सम्पुटित करके पीते धागे से उसे वेष्टित करे। शश्या के नीचे गड्ढा खोदें, बाँयें हाथ से उसमें यन्त्र रखें। पीते फूलों से उसकी पूजा करे। इससे महान् आश्र्यदायक वीर्यस्तम्भन होता है। शमशान का खण्डा लाकर शमशान से कोयला लाकर उस पर तीन बार हीं लिखे। उसके बीच में साध्य नाम लिखे। अपसव्य क्रम से त्रिवलि के आकार की तीन रेखाएँ खीचे। बाँयें हाथ से गड्ढा खोदकर उसमें खण्डे को अधोमुख रखें। उसे बाँयें पैर से ढककर उस पर मलोत्सर्ग करे। इस शत्रुओं के मुख का स्तम्भन होता है। ताटंक पत्र लेकर उस पर साध्य नाम लिखे। उसके आदि और अन्त में त्रिविधोत्तरक बीज लिखे। वाम हाथ से ढककर उसकी पिण्डी बनावे। उसमें सम संख्या में कॉटे गाड़े और ढक दे। विद्या के साथ साध्य साधक का नाम बोलकर उसे वर्तन में डाल दे। सौवीर से उसे भर दे। अपने घर के बाहर वायव्य कोण में बाँयें हाथ से गड्ढा खोदकर उसमें बाँयें पैर से डाल दे। इससे गति का स्तम्भन होता है।

दिव्यस्तम्भकरं देवि नान्यग्रन्थेष्वपीरितम् ॥९१॥

त्वतीत्या कथयाम्यद्य शृणु त्वं प्रियमुत्तमम् । यत्र स्थाने भवेद् दिव्यं देवालयगृहेऽपि वा ॥९२॥  
 तत्र स्थाने लिखेद्विद्यां साधकात्साध्यनामतः । आटरूषस्य पत्राणि परिमृज्य तथोपरि ॥९३॥  
 स्तम्भयेत्सप्त दिव्यानि कृतदोषोऽपि शुद्ध्यति । उत्तरावारुणीमूलं सप्तविद्याभिमन्त्रितम् ॥९४॥  
 जलमध्ये तु तक्षिप्त्वा तेनैव स्नानमाचरेत् । महाकृतस्य दोषस्य कृतदिव्यो विशुद्ध्यति ॥९५॥  
 अथवा दीपमार्गेण रात्रौ कृत्वा तु मण्डलम् । भूर्जपत्रे समालिख्य पूर्वोक्तद्रव्यकेण च ॥९६॥  
 दीपं प्रज्वालयेद्यात्मात्कपिलाज्येन पूरितम् । तावत् दीपयेदीपं यावद्विव्यं प्रशास्यति ॥९७॥  
 एवं ते कथिता भद्रे कामना प्रत्ययावहा । इयं तु परमा विद्या किमन्यत् परिपृच्छसि ॥९८॥ इति।

दिव्य-स्तम्भन अन्य ग्रन्थों में नहीं है, तुम्हारे प्रेमवश कहता हूँ। दिव्य स्थान में, देवालय में या घर में साधक साध्य नाम के साथ विद्या लिखे। आटरूष के पत्तों को मलकर उस पर रख दे। इससे सात दिव्यों का स्तम्भन होता है एवं कृतदोष भी शुद्ध होते हैं। उत्तरा वारुणी मूल को विद्या के सात जप से मन्त्रित करे, उसे जल में डालकर उसी जल से स्नान करे।

इससे महाकृत्या दोष भी समाप्त हो जाता है। अथवा दीपमार्ग से रात में भोजपत्र पर पूर्वोक्त द्रव्यों से मण्डल लिखे। कपिला गाय के धी से दीपक जलावे। यह दीपक तब तक जलावे जब तक दिव्य की शान्ति न हो। हे देवि! इन्हें कामप्रदायक प्रयोगों को मैंने कहा। यह परमा विद्या है। अब और क्या पूछना चाहती हो?

### जयद्रथयामले—

पीताम्बरधरो भूत्वा पूर्वाशाभिमुखस्तः । लक्ष्मेकं जपेऽन्नं हरिद्राग्रस्थिमालया ॥१॥  
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं जपतो ध्यानतत्परः । प्रियङ्गपायसैर्वापि पीतपुष्टैश्च होमयेत् ॥२॥  
कृते होमे दशांशेन सिद्ध्यति बगलामुखी । कुरुते वाग्गतिस्तम्भं दुष्टानां बुद्धिनाशनम् ॥३॥  
जपहोमप्रयोगेषु मन्त्रं चायस्युतं जपेत् ।

एतेन पूर्वं पुरश्चरणत्वेनोक्तायुतजपस्तु प्रयोगसिद्ध्यर्थं प्रयोगारम्भकाले कर्तव्यत्वेनोक्तं इति प्रतीयते, न तु पुरश्चरणत्वेन। अत एवात्रोभयप्रकारे युक्तं इति, तेनैव लक्षजप एवं पुरश्चरणम्। अयं लक्षजपः कृतयुगपरः।

जयद्रथयामल में कहा गया है कि पीला वस्त्र पहनकर पूर्वमुख बैठकर हल्दी की माला से एक लाख मन्त्र-जप करे। नित्य ब्रह्मचारी रहकर ध्यान में लगा रहे। प्रियंग-पुष्प, पायस और पीले फूलों से दशांश हवन करे। इससे बगला सिद्ध होती है और यह शत्रु की बोली, गति को स्तम्भित करती है एवं दुष्टों की बुद्धि का नाश करती है। जप एवं होम प्रयोग में दश हजार मन्त्र का जप करे। पूर्वं पुरश्चरण में जो दश हजार जप करना बताया गया है, वह प्रयोग की सिद्धि के लिये प्रयोगारम्भ काल में करने के लिये कहा गया है; न कि पुरश्चरण के लिये कहा गया है। अतः यहाँ भी दोनों ही प्रकार उक्त है। इसलिये पुरश्चरण एक लाख जप से ही होता है। यह एक लाख जप भी सत्ययुग हेतु कहा गया है।

हरिद्राहरितालाभ्यां जुहुयाल्लवणं निशि । स्तम्भयेत्पञ्च दिव्यानि नात्र कार्या विचारणा ॥४॥  
स्तम्भनेषु च सर्वेषु प्रयोगः प्रत्यावहः । अथवा पीतपुष्टैर्वा त्रिमधक्तैश्च होमयेत् ॥५॥  
ॐकारयोः संमुखयोरूप्त्वाधिःशिरसोलिखेत् । मध्यगं नाम साध्यस्य तद्वाहो चाक्षरद्वयम् ॥६॥  
बीजं द्वितीयवर्गस्य तृतीयं बिन्दुभूषितम् । चतुर्दशस्वरोपेतं संलिखेत् पृथिवीगतम् ॥७॥  
ठकारेण समावेष्य चतुर्ष्कोणपुटं बहिः । तत्कोणरेखासंसक्तं शूलवत्राष्टकं लिखेत् ॥८॥  
त्रिशूलमध्यरेखासु पृथ्वीबीजानि पार्श्वयोः । अष्टस्वपि च कोणेषु तदैकं समालिखेत् ॥९॥  
पृथिव्यान्तरपार्श्वे च मातृकोपरि मण्डलम् । आवेष्य च ततः पश्चात्द्वाहो स्थिरमायया ॥१०॥  
निरोध्याङ्गुशबीजेन नादसंमिलिताङ्गिणा । लिखेत्पूर्वोक्तमावेष्य ठकारं बगलामुखीम् ॥११॥

### बगलामुखीं तद्विद्याम्।

पाषाणपट्टे वाथ पटे हरिद्रोन्मत्तालके। गर्भस्तम्भं गतिस्तम्भं लिखित्वा गाढमाक्रमेत् ॥१२॥

विवादव्यतिरिक्तेषु स्तम्भनकृत्येषु प्रोक्तं यन्न पटे वा पाषाणे विलिख्य अथ ऊर्ध्वं च पाषाणेन निरुद्ध स्थापयित्वा तत्र देवीं पूजयेत्। विवादे तु वक्ष्यमाणविधिं कुर्यात्।

विवादे यन्त्रमालिख्य भूर्जे तैरेव वस्तुभिः । कुम्भकारस्य चक्रस्थां भ्रमन्तीं विपरीतगाम् ॥१३॥  
मृत्तिकां समुपादाय वृषभं कारयेत्ततः । यन्न तदुदरे न्यस्य तालकेन विलिख्य च ॥१४॥  
तत्रासायां विनिक्षिप्य पीतरज्जुं निजे गृहे । अर्चियित्वा चतुर्ष्कोणे नित्यं पीतोपचारकैः ॥१५॥  
दुष्टस्य स्तम्भयत्येव मुखं वाचस्पतेरपि । इति।

हल्दी, हरिताल और नमक मिलाकर रात में हवन करने से दिव्यों का भी स्तम्भन होता है। स्तम्भन में सभी प्रयोग सफल होते हैं। अथवा त्रिमधुराक्त फूलों से हवन करे। ॐकार के सामने ऊपर-नीचे शिर पर और मध्य में साध्य का नाम लिखे। उसके बाहर दो अक्षर लिखे। दो अक्षरों में द्वितीय वर्ग का बीज एवं तृतीय बीज सानुस्वर लिखे। चौदह स्वरों से युक्त

गलौ लिखे। इसे 'ठ' से वेष्टित करो। चारों कोनों के बाहर कोणों में शूल वज्राष्टक बनावे। त्रिशूल मध्य रेखाओं के पार्श्वों में ध्रुवीज आठों कोनों में एक-एक लिखे। भूपुर के अन्तराल को मातृका से वेष्टित करो। उसके बाहर स्थिर माया लिखे। अंकुश बाँज से निरुद्ध पूर्वोक्त ठकार से वेष्टित करो। पत्थर या कपड़े पर हल्दी और धतूर से लिखकर गर्भ स्तम्भय गति स्तम्भय लिखे, उसपर गाढ़ आक्रमण करो। विवाद में भोजपत्र पर मन्त्र लिखकर कुम्हार के चाक को विपरीत घुमाकर उसी मिट्टी से वृषभ बनावे। हरताल से यन्त्र लिखकर वृषभ के उदर में गाढ़ दे। उसके नाक में रस्सी घुसाकर अपने घर में चतुष्कोण में नित्य अर्चन करो तो दुष्ट का स्तम्भन होता है। इससे बृहस्पति का मुख भी स्तम्भित होता है।

#### तद्यन्तरचनाप्रकारः

**अथैद्यन्तरचनाप्रकारः**—तत्र ऋधार्थोमस्तकमोक्तारद्वयमालिख्य तत्याश्र्वगतमन्योन्यसंमुखमोक्तारद्वय-मित्येवमोक्तारचतुष्टयं विलिख्य, तमध्ये साध्यनामालिख्य आंकारयोरन्योन्यसंमुखयोः पाश्वद्वये गलौ इति धराबीजं विलिख्यैतत्सर्वं वृत्तेन संवेष्ट्य, तद्विः पुनर्वृत्तं कृत्वा वृत्तयोरन्तराले मूलं विलिख्य, तद्विहरष्टकोणं कृत्वा तेज्वाने-यादिविद्विक्ष्यकोणचतुष्टयगतरेखाष्टके प्रतिरेखमेकमेकं वक्त्रमिति वज्राष्टकं विद्याय, दिग्गतकोणचतुष्टयस्थरेखाष्टके त्रिशूलाष्टकं कृत्वा, त्रिकोणोदरेषु त्रिशूलमध्यरेखासु त्रिशूलपार्श्वेषु च प्रागुक्तं धराबीजं विलिख्य, वज्रयुक्तचतुरस्य कोणाश्वेषु च तदेव बीजं विलिख्याष्टकोणाद्विवृत्तचतुष्टयं कृत्वा, तदन्तरालवीथीत्रये सर्वाभ्यन्तरवीथ्यां मातुकया संवेष्ट्य तद्वाहवीथ्यां स्थिरमायाबीजेन हींकारेण तद्वाहवीथ्यां क्रोमित्यद्वुशब्दीजेन संवेष्टयेदिति प्रोक्तविधिना प्रोक्तद्रव्यविलिख्य विनियोगात् प्रोक्तफलसिद्धिर्भविति।

**यन्त्रचना प्रकार—**ऊपर-नीचे दो ३०कार लिखे। उन दोनों के सामने दो ३०कार लिखे। इस प्रकार चार ३०कार लिखे। उनके मध्य में साध्य नाम लिखे। ३०कार के अन्योन्य सम्मुख पार्श्वों में धराबीज गलौ लिखे। इनको वृत्त से वेष्टित करो। इस वृत्त के बाहर एक और वृत्त बनाकर दोनों के अन्तराल में मूल मन्त्र लिखे। उसके बाहर अष्टकोण बनावे। चारों कोनों की आठ रेखाओं से एक-एक वज्र बनावे। दिग्गत चार कोनों की आठ रेखाओं में त्रिशूल बनावे। त्रिकोण के उदर में त्रिशूल के मध्य रेखाओं में त्रिशूल के पार्श्वों में पूर्वोक्त धराबीज गलौ लिखे। वज्रयुक्त चतुरस के कोण पार्श्वों में उसी प्रकार बीज लिखे। अष्टकोण के बाहर चार वृत्त बनावे। इनके तीन अन्तरालों में से सबसे पहले वाले अन्तराल में मातृकाओं को लिखे। उसके बाद वाली वीथि में हीं हीं लिखे। उसके बाद वाली वीथि में 'क्रों' बीज लिखे। प्रोक्त द्रव्य से लिखकर विनियोग करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

#### तथा—

दृढं खर्परमादाय श्मशानस्थमधोमुखम्। वामहस्ते समावेश्य तदङ्गारं तु दक्षिणे ॥१६॥  
अङ्गारं 'कोइला' इति न त्वयिः।

अभिमन्यु ठकारेण सप्तधा कृतपूरकः। तस्योदरगतं बीजं वलयाकारमालिखेत् ॥१७॥  
साध्यं मध्ये च षष्ठ्यन्तं तम्भुखं स्तम्भयेति च। पृथ्वीबीजानि चत्वारि व्यस्तशीर्षाणि संलिखेत् ॥१८॥  
ततः परं प्रकुर्वीत यन्त्र देवेशि पूर्ववत्। साध्यसंबोधनं कृत्वा षष्ठ्यन्तं साधकं लिखेत् ॥१९॥  
मा भुंक्ष्वेति पदं पश्चात्तद्वाप्रेडितान्वितम्। पूजयेत् पीतपुष्पाद्यमुखस्तम्भोऽयमुत्तमः ॥२०॥  
पूर्वद्रव्ये: श्मशानोत्थवसने व्यक्तमालिखेत्। भेकस्य वदने क्षिप्त्वा कीलयेत्पीततनुभिः ॥२१॥  
क्षिप्त्वा क्षोण्यां यजेत्पुष्टे: पीतवर्णेन्तु मण्डले। अनुच्चाराद्विं मन्त्रस्य स्फुटमुच्चारमाचरेत् ॥२२॥  
पूरकस्य प्रयोगेण प्रयोगः। प्रत्ययावहः। चत्वरः पादानालिख्य भग्नत्वात्कुञ्जतां गतान् ॥२३॥  
भग्नत्वात् त्रुटितत्वाच्चतुर्था विभक्तत्वादित्यर्थः।

श्मशान में अधोमुख पड़े खपड़े को बाँयें हाथ में लेकर दाँयें हाथ में कोयला लेकर ठकार से उसे सात बार मन्त्रित करो। खप्पर के उदर में बीज को वृत्त में लिखे। उसके मध्य में षष्ठ्यन्त साध्य नाम के साथ मुखं स्तम्भय और चार पृथ्वी

बीज व्यस्त शीर्ष लिखे। तब पूर्वत् यन्त्र बनावे। साध्य को सम्बोधित करके साधक नाम घट्यन्त लिखे। अर्थात् मूल विद्या में सर्वदुष्ट पद की जगह पर अमुकं अमुकस्य मा भुक्ष वा भुक्ष लिखे। पीले फूलों से पूजा करे। मुख-स्तम्भन का यह उत्तम मन्त्र है। यही यन्त्र पूर्वोक्त हल्दी आदि द्रव्यों से श्मशान के वस्त्र पर बनाकर गोली बनावे। जीवित मेड़क के मुख में उस गोली को घुसाकर पीले धागे से मजबूती से बाँध दे। उस मेड़क को भूमि में गड्ढा खोटकर गाड़ दे। उसके ऊपर पीला कपड़ा बिछाकर पूजामण्डल बनावे। उसमें देवी का पूजन पीले फूलों आदि से करे तो अभीष्ट फल मिलता है।

अन्योन्यमिलितव्वेन तं चोर्ध्वाधः समन्ततः । वामदक्षिणसंबन्धं द्वौ पादौ तस्य कल्पयेत् ॥२४॥

आलिखेन्नाम घट्यन्तं गतिं च स्तम्भयेति च । मध्ये लिखित्वा संलिख्य पृथ्वीबीजानि चाग्रतः ॥२५॥

पादाग्रेष्वित्यर्थः । अग्रेषु शाखा इति च। 'अग्रतः पादशाखान्ते परं मध्ये तु संलिखेत्'। पादाभ्यां चतुरस्त्रं प्राप्यते इति सांप्रदायिकाः।

पटे पाषाणपटे वा प्रोक्तैश्चैव त्रिभिन्निभिः । प्राग्वत् संपुटयोगेन बद्ध्वा पीतगुणैर्दृढैः ॥२६॥

गतिस्तम्भो भवत्येवं यन्त्रस्यास्य प्रभावतः ।

चार द्वारायुक्त चतुरस बनाकर उसके मध्य में अमुकस्य गतिं मतिं मुखं स्तम्भय स्तम्भय लिखे। मूल विद्या को चार भाग करके प्रथम पाद को पूर्व द्वार में, दूसरे पाद को पश्चिम द्वार में, तृतीय पाद को उत्तर द्वार में और चतुर्थ पाद को दक्षिण द्वार में लिखे। अक्षरसमूह को चारों दिशाओं में लिखे। चतुष्पाद के आगे चतुरस के चारों कोनों में पूर्वोक्त भूबीज लिखे। पूर्वोक्त द्वारों से यन्त्र को पत्थर पर या कपड़े पर लिखकर पीले धागे से बेष्टित करके उसे दो पत्थरों के बीच में दबा दे। इस यन्त्र के प्रभाव से स्तम्भन होता है।

**शिलातालहरिद्राभिर्वृषभूत्रसमन्वितैः ॥२७॥**

कोकिलाक्षस्य लेखिन्या निजरक्तपटे लिखेत् । साध्यस्य नाम घट्यन्तं कुम्भकेन च वायुना ॥२८॥

स्तम्भनं नात्र संदेहः सप्ताहाज्ञायते ध्रुवम् । शिलातले हरिद्राभिः करपत्रयुगे लिखेत् ॥२९॥

कोकिलस्य च लेखिन्या स्तम्भने रिपुनाम वा । त्रिकोणैः सुसमावेष्य तद्वाहे पार्थिवं पुरम् ॥३०॥

वत्राष्ट्रकैः समोपेतं रेफोडशसंयुतम् । मायाबीजेन संवेष्य चाङ्गुशेन निरोधितम् ॥३१॥

तद्योगं योजयित्वा तु कट्कैर्वलयेत्तः । क्षिप्त्वा वल्मीकिमध्ये तु पाषाणैस्तत्र पूरयेत् ॥३२॥

पश्चात्समारभेद्युद्धं विवादं वापि कारयेत् । गतिस्तम्भो मनःस्तम्भो वाचां स्तम्भस्तथैव च ॥३३॥

जिह्वास्तम्भो विवादे च परास्तो जायते ध्रुवम् । कृष्णकर्पटके यन्त्रं विषरकेन संलिखेत् ॥३४॥

विद्याविदर्भितं नाम जलपद्ये विनिक्षिपेत् । सिक्षकेन भृशं वेष्य दिव्यस्तम्भनमुत्तमम् ॥३५॥

स्तम्भयेत्पञ्च दिव्यानि नात्र कार्या विचारणा । अभिन्नं तु तमेवं तु अनेन विधिना भवेत् ॥३६॥

त्रिषु स्थानेषु कर्तव्यं त्रिकोणमायसे लिखेत् । शिखिपिछ्नेन तमध्ये नाम विद्याविदर्भितम् ॥३७॥

तद्वाहे चार्निवीजेन भावशुद्धोऽपि यो नरः । विषरकेन संलिख्य कपटे तु श्मशानके ॥३८॥

विदर्भितं यस्य नाम श्मशाने भस्ममृत्तिकाम् । गृहीत्वा चाकृतिं कृत्वा यन्त्रं तद्वृदि संक्षिपेत् ॥३९॥

कण्टकैर्वेष्यतेत्ताज्ञः स्मृत्वा विद्यां पुनः पुनः । वेष्यिते प्रभवत्यस्य दुःखं स्यादतिवेदना ॥४०॥

सर्वाङ्गैर्प्रियते विद्धः शूलैश्चैव सुदारुणैः । ब्रह्मां त्रिषु लोकेषु दुर्लभं त्रिदशौरपि ॥४१॥

गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् । गुरुभक्ताय दातव्यं वत्सराथोर्षिताय च ॥४२॥ इति।

दृढमित्यादिभिरुत्तम इत्यन्तैः पञ्चभिः इलोकैर्यन्नान्तरमाह—तत्र श्मशानस्थमधोमुखं खर्परमादाय तद्वामहस्ते निधाय दक्षिणहस्तेन श्मशानाङ्गारं गृहीत्वा तद् द्वयं ठकारेण सप्तधाभिमन्त्रं, तस्मिन् खपरे तेनाङ्गारेण वृत्तं कृत्वा तमध्ये स्थिरमायाबीजं विलिख्य, तमध्ये अमुकस्य मुखं स्तम्भयेति विलिख्य बीजपरितः पूर्वोक्तं बीजं चतुर्दिक्षु

मध्यबीजं तद्विहरषकोणादि सर्वं पूर्वोक्तं यन्नं कृत्वा क्वचित् संस्थाप्य मूलविद्यायां सर्वदुष्पदस्थाने अमुकं अमुकस्य मा भूंक्ष्व मा भूंक्ष्वेति पदं दत्त्वा, पीतोपचारैस्तमिन् यन्त्रे देवीमावाह्य पूजयेत्, मुखस्तम्भो भवति। इदमेव यन्नं पूर्वोक्तहरिद्रादिद्रव्यैः श्मशानवस्त्रे विलिख्य गुलिकीकृत्य, मण्डूकस्य सजीवस्य मुखे विन्यस्य पीतसूत्रेण तम्भुञ्जं दृढं बद्ध्वा, तं मण्डूकं भूमौ खात्वा तदुपरि पीतवर्णं पूजामण्डपं कृत्वा, तत्र देवीं पीतपुष्पादिभिः पूजयेदुक्तफलसिद्धिर्भवति।

**चत्वर इत्यादिभिः** प्रभावत इत्यन्तर्यान्नरमाह—तत्र चत्वर इति दिव्यत्वात्, अयं यन्त्ररचनाप्रकारः, तत्र चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्त्रं कृत्वा तन्मध्ये अमुकस्य गतिं मति मुखं स्तम्भये तत्र चतुर्था विभज्य प्रथमपादमूर्धवर्गत्वा पूर्वद्वारान्तं, द्वितीयापदमधोगत्या पश्चिमद्वारान्तं, तृतीयपादं तिर्थं गत्या उत्तरद्वारान्तं, चतुर्थं पादं तिर्थं गत्या दक्षिणद्वारान्तमिति मध्यलिखिताक्षरसमुदायस्य चतुर्दक्ष विलिख्य, चतुर्षादाग्रेषु चतुरस्त्रस्य चतुर्क्षणेषु पूर्वोक्तं भूबीजं विलिखेदिति पूर्वोक्तद्रव्यवैर्यन्तं पाशाणे वा पट्टे वा विलिख्य, पीतरज्जुभिर्वेष्टयित्वोपर्यद्यः पाशाणेन निरुद्ध्य स्थापनात् पूजनाच्चोक्तफलसिद्धिर्भवति।

**शिलेत्यादिश्लोकाभ्यां** पूर्वोक्तस्यैव यन्त्रस्य लेखनद्रव्यविशेषं लेखनी च लेखनसमये कर्तव्यत्वेनोक्तम्। पुनः शिलेत्यादिभिर्द्वृविमित्यनैः पञ्चभिः श्लोकैः पूर्वोक्तयन्त्रे लेखनविशेषेण प्रयोगविशेषमाह—अयमर्थः, तत्र पूर्वोक्तैरेव द्रव्यैः पूर्वोक्तमेव यन्नं करपत्रद्वये विलिख्य तत्त्वं स्वरविदर्भितं मध्ये नाम विलिख्य तद्यन्तं वृत्तयेणावेष्ट्य तद्विश्वतुरस्त्रं कृत्वा, तद्रेखाचतुर्क्षोष्ठके वत्राष्टकं कृत्वा, प्रतिवत्रपर्श्योः रेफद्वयामिति संभूय रेफबोडशंकं सविन्दुकं विलिख्य, तद्विश्वतुर्तपञ्चकं कृत्वा तदन्तरालचतुरुष्येऽभ्यन्तराले स्थिरमायाबीजेन संवेष्ट्य, बहिरन्तरालत्रयेऽपि अङ्गुशबीजे-वेष्टयित्वा, तन्मध्ये मूलविद्यया विदर्भितं साध्यनाम विलिख्य वेष्टयित्वा, वल्मीकमध्ये निःक्षिप्य पाशाणैः पूरयित्वा प्रत्यहं पूजां कारयेत्। राजा स्वकटकैः शत्रुसैन्यं संवेष्ट्य युद्धमारभेत् विवादकर्ता च विवादं कुर्यात्। एतद्यन्तमुक्तफलदं भवति।

**कृष्णोत्यादिश्लोकाभ्यामेतदुक्तं भवति,** तत्रैतदेव यन्नं कृष्णावस्त्रे विषरक्तमिलितैः पूर्वोक्तद्रव्यविर्लिख्य (तन्मध्ये मूलविद्यया विदर्भितं साध्यनाम विलिख्य) मधूच्छिष्टेन दृढं संवेष्ट्य जलमध्ये निःक्षिप्य तत्र दिव्यं कारयेत्, कृतदोषोऽपि विशुद्धो भवति।

**विषरक्तेनेत्यादिभिः** श्लोकैः पूर्वोक्तस्यैव यन्त्रस्य प्रयोगे (विशेषमाह—तत्र श्मशानवस्त्रे पूर्वोक्तं यन्नं मूलविद्याविदर्भितसाध्यनामगर्भितं विषयुक्तरक्तेन विलिख्य श्मशान-)- भस्ममृद्ध्यां पुतलीं निर्माय तस्या हृदि यन्नं निक्षिप्य विद्यां स्मरन् कण्टकस्तां सर्वाङ्गेषु वेधयेदुक्तफलावाप्तिर्भवति। ततः शत्रुः शीघ्रं प्रियते इति।

शिलाताल एवं हरिद्रा का अंजां-मूत्र से घोल बनाकर कोकिलाक्ष की लेखनी से अपने खून से रंगे वस्त्र पर कुम्भक वायु की दशा में साध्य का पष्ठयन्त नाम लिखने से एक सप्ताह में निश्चित रूप से स्तम्भन होता है। शिलद्ध ताल एवं हरिद्रा से दो करपत्र पर कोकिल की लेखनी से स्तम्भन अथवा शत्रु का नाम लिखकर उसे त्रिकोण से सम्यक् रूप से वेष्टित करके उसके बाहर राजा को वत्राष्टकं एवं सोलह रकार से युक्त कर मायाबीज से वेष्टित कर अंकुश से निरुद्ध करे। तत्पश्चात् उन सबको जोड़कर एक धेर में करके वल्मीक में डालकर पत्थर से ढक दे। तत्पश्चात् युद्ध अथवा विवाद करे तो शत्रु की गति, मन एवं वाणी का स्तम्भन होता है और वह शत्रु राजा युद्ध में पराजित हो जाता है। इसी प्रकार विवाद में जिह्वा का स्तम्भन होने के कारण शत्रु परास्त हो जाता है।

यन्त्र बनाने की विधि यह है कि पूर्वोक्त द्रव्यों से पूर्वोक्त यन्त्र दो करपत्र में लिखे। उसके मध्य में स्वरविदर्भित साध्य नाम लिखे। उस यन्त्र को तीन वृत्तों से वेष्टित करे। उसके बाहर चतुरस्त्र बनावे। उसके चारों कोनों में दो-दो वज्र के अनुसार आठ वज्र बनावे। प्रत्येक वज्र के पार्श्वों में दो रेफ लिखे, जिससे कुल सोलह रेफ होते हैं। ८ पर बिन्दु लगावे। उसके बाहर पाँच वृत्त बनावे। उनसे निर्मित चार अन्तरालों में से आध्यन्तर अन्तराल को हीं से वेष्टित करे। उसके बाद वाले अन्तराल को अंकुश बीज से वेष्टित करे। उसके मध्य में मूल विद्या से विदर्भित साध्य नाम लिखकर वेष्टित करे। इसे दीमक के घर

में गाडे। उस पर पत्थर रखे। प्रतिदिन पूजा करे। तदनन्तर राजा अपनी सेना से शत्रुसेना को धेर का युद्ध आरम्भ करे। विवादकर्ता विवाद प्रारम्भ करे। इससे पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है अर्थात् गति-स्तम्भन, मनस्तम्भन, वाणी-स्तम्भन एवं जिह्वास्तम्भन होता है तथा विवाद में प्रतिद्वन्द्वी परास्त होता है।

काले खपड़े पर विषरक्त से यन्त्र बनावे। उसमें विद्याविदर्भित साध्य नाम लिखकर पानी में डाल दे। इससे पाँच दिव्यों का स्तम्भन होता है। यह निश्चित होता है।

तीन ब्रिकोण मोरसंख से बनावे। उनमें विद्याविदर्भित साध्य नाम लिखे। उसके बाहर अग्निबीज विषरक्त से शमशान के खपड़े पर लिखे। जिसका नाम विदर्भित हो, उसकी आकृति शमशान भस्म और मिट्टी से बनाकर उसके हृदय में यन्त्र छिपा दे। उस आकृति में बार-बार विद्या का स्मरण करके काँटे गड़ावे। ऐसा करने से साध्य को बहुत पीड़ा होती है। उसके सारे शरीर में काँटे चुभाने से दारुण पीड़ा से उसकी मृत्यु हो जाती है। यह ब्रह्मास्त्र तीनों लोकों में देवताओं को भी दुर्लभ है। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये; किसी को नहीं बतलाना चाहिये। गुरुभक्त और छः मास तक उपवास करने वाले को ही इसे प्रदान करना चाहिये।

### बगलामुखीस्तोत्रम्

अथ बगलामुखीस्तोत्रम्। अस्य श्रीबगलामुखीस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान्नारद ऋषिः बार्हच्छन्दांसि बगलामुखी देवता स्थिरमाया बीजं, स्वाहा शक्तिः, कीलय कीलकं, मम सन्निहितानां दूरस्थानां दुष्टानां विरोधिनां पदजिह्वा-मुखबुद्धिस्तम्भनार्थं श्रीपरमेश्वरीप्रीत्यर्थं च जपमहं करिष्ये,

मध्ये सुधाव्यधिमणिमण्डपरत्वेदां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।

पीताम्बराभरणमाल्यवैधूषिताङ्गीं देवीं भजामि धृतमुद्घरवैरिजिह्वाम् ॥१॥

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम् ।

गदाभिधातेन च दक्षिणेन पीताम्बराद्वयां द्विभुजां नमामि ॥२॥

त्रिशूलधारणीमम्बां सर्वसौभाग्यदायिनीम्। सर्वाभरणशोभाद्वयां देवीं ध्यात्वा प्रपूजयेत् ॥३॥  
पीताम्बरां त्रिनेत्रीं च द्विभुजां हाटकोज्ज्वलाम्। शिलापर्वतहस्ताङ्गीं रिपुस्तम्भां मदोत्कटाम् ॥४॥  
वैरिनिर्दलनार्थाय स्मरेतां बगलामुखीम्। गम्भीरां च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम् ॥५॥  
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्। हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम् ॥६॥  
पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासने स्थिताम्। सानन्दमपि देवेशि अरिस्तम्भनकारणीम् ॥७॥  
मदनस्य रतेश्वैव प्रीतिस्तम्भकरीं पराम्। महाविद्यां महामायां साधकस्य बलप्रदाम् ॥८॥  
यस्या: स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत्क्षणात्। वामे पाणावङ्गुशं च तस्याधस्ताद्वरं शुभम् ॥९॥

तस्यैवाधः करे चाक्षसूत्रं च पद्ममुत्तमम् ।

एवं दक्षिणपाणिक्रमतः पाशाभ्याक्षसूत्रपद्मानि। केयूराङ्गदकुण्डलभूषां बालां हिमद्युतिसंस्कृतमुकुटाम् ॥१०॥

तरुणादित्यप्रतिमां कौशेयांशुकलग्ननितम्बाम् ।

तन्वीं कल्पद्रुमाधो हेमशिलायां प्रमुदितचित्तोल्लसत्कान्तिम् ॥११॥

पञ्चप्रेतसमारूढां भक्तजनविविधकामलीलाम् ।

एवंविधां तां बगलां ध्यायेन्मनसि शुद्धेन्दीवरनीलाम् ॥१२॥

चलत्कनककुण्डलोच्छ्वसितचारुगण्डस्थलां लसत्कनकच्च्यकद्युतिविराजिचन्द्राननाम् ।

गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वाङ्गालां स्मरामि बगलामुखीं विमुखिनां मुखस्तम्भनीम् ॥१३॥

पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रलोज्ज्वले मण्डपे यः सिंहा-

सनमौलि (गां वि) पाटितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम् ।

स्वर्णभां करपीडितारिसनां भ्राष्टदाविभ्रमां  
 नित्यं ध्यायति यान्ति यस्य विलयं सद्योऽस्य सर्वापदः ॥२॥  
 मन्त्रस्तावदलं विपक्षदलने स्तोत्रं पवित्रं च ते  
 यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां जैत्रं च चित्रं च ते ।  
 मातः श्रीबगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे  
 त्वन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद्वादिनाम् ॥३॥  
 देवि त्वच्चरणाम्बुजार्चनविधो यः पीतपृष्ठाङ्गलिं  
 भक्त्या वामकरे निधाय च पुर्वन्ती मनोज्ञाक्षरम् ।  
 पीतध्यानपरोऽथ कुम्भकवशाद्वैजं स्मरेत् पार्थिवं  
 तस्यामित्रमुखस्य वाचि हृदये जाडयं भवेत् तत्क्षणात् ॥४॥  
 वादी मूकति रङ्गति क्षितिपतिवैश्वानरः शीतति  
 क्रोधी शास्त्रति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्चति ।  
 गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा मन्त्रितः  
 श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तु भयं नमः ॥५॥  
 दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणं गर्वस्तम्भकरं परं मृगदृशां चेतः समाकर्षणम् ।  
 सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशोः कारुण्यपूर्णमितं मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः ॥६॥  
 मातभञ्जय मद्विपक्षवदनं जिह्वां बलात्कीलय ब्राह्मीं मुद्रय मुद्रयाशु धिषणामुग्रां गतिं स्तम्भय ।  
 शत्रूंश्वर्णय चूर्णयाशु गदया गौराङ्गि पीताम्बरे विघ्नादं बगले हर प्रतिदिनं कारुण्यपूर्णेक्षणे ॥७॥  
 संकष्टे चौरसुष्टे प्रहरणसमये बन्धने वारिमध्ये विद्या-  
 वादे विवादे प्रकुपितनृपतौ दिव्यकाले निशायाम् ।  
 वश्यत्ये स्तम्भने वा रिपुवधसमये दीर्घसूत्रे रणे वा  
 गच्छांस्तिष्ठांस्तिकालं यदि पठति शिवं प्राप्नुयादाशु धीरः ॥८॥  
 मातभैरवि भद्रकालि विजये वाराहि विश्वाश्रये श्रीविद्ये बगले महेशि समये कामेशि वामे रमे ।  
 माताङ्गि त्रिपुरे परात्परतरे स्वर्गापवर्गप्रदे दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि त्राहि माम् ॥९॥  
 त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नोद्यसंछेदिनी योषाकर्षणकारिणी च सुमहदिनौद्यसंछेदिनी ।  
 दुष्टोच्चाटनकारिणी जनमनः संमोहसंदायिनी जिह्वाकीलनवैभवा विजयते ब्रह्माक्षविद्या परा ॥१०॥  
 नित्यं यस्तु मनोहरं स्तवमिमं देव्याः पठेत् सादरं  
 धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाहौ करे वा गले ।  
 राजानो वरयोषितोऽथ करिणः सर्पा मृगेन्द्राः खगास्ते वै  
 यान्ति विमोहितां रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिरा सिद्धयः ॥११॥  
 अनुदिनमभिरामं साधको यन्त्रिकालं पठति भुवनमातुः पूज्यते देववर्गैः ।  
 भवति परमकृत्यं तस्य दुष्टचैव लोके भवति परमसिद्धा लोकमाता परा च ॥१२॥  
 विद्या लक्ष्मीः सर्वसौभाग्यमायुः पुत्राः संप्रदाज्यमिष्टार्थसिद्धिः ।  
 मातः श्रेयः सर्ववश्यत्वसिद्धिः प्राप्ता प्राप्ता भूतलेऽस्मिन् नरेण ॥१३॥  
 यत् कृतं जपसंनाहं गदितं परमेश्वरि । शत्रूणां स्तम्भनाश्रयं तद् गृहण नमोऽस्तु ते ॥१४॥

ब्रह्माक्षमिति विद्यातं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । गुरुभक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥१५॥

इति श्रीरुद्रद्यामले बगलामुखीस्तोत्रं संपूर्णम् ।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-

श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाङ्मये तन्मे त्रयोविंशः श्वासः ॥२३॥



उपर्युक्त स्तोत्रपाठ के पूर्व मूलोक्त विनियोग अवश्य करना चाहिये। इस स्तोत्र के ऋषि भगवान् नारद, छन्द बृहती आदि, देवता बगलामुखी, बीज स्थिरमाया, शक्ति स्वाहा एवं कीलय कीलक हैं। अपने समीपस्थ एवं दूरस्थ दुर्जनों एवं विरोधियों के पैर, जिहा, मुख एवं बुद्धि के स्तम्भन तथा परमेश्वरी बगलामुखी की प्रसन्नता हेतु विनियोग करके जप का संकल्प किया जाता है।

**स्तोत्रार्थ—**अमृतसागर के मध्य में मणिमण्डप की वेदी पर सिंहासन पर अवस्थित देवी पूर्णतः पीले वर्ण की हैं, वे पीले वस्त्र, पीले आभूषण, पीले फूलों की माला से विभूषित हैं। अपने हाथों में मुदार तथा शत्रु की जिहा को धारण करने वाली देवी का मैं भजन करता हूँ। अपने बाँयें हाथ से शत्रु की जिहा को पकड़ कर उसे पीड़ित करती हुई एवं दाहिने हाथ से उस पर गदा से प्रहर करती हुई दो भुजाओं वाली पीले वस्त्रों से सुशोभित देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

विशूल को धारण करने वाली, समस्त सौभाग्य को प्रदान करने वाली एवं समस्त आभूषणों से अलंकृत माँ बगला का ध्यान कर पूजन करना चाहिये। पीले वस्त्रों वाली, तीन नेत्रों वाली, दो भुजाओं वाली, सुनहरे वर्ण वाली, शिला एवं पर्वत को धारण करने वाली, शत्रु को स्तम्भित करने वाली, मद से परिपूर्ण देवी बगला का शत्रु का दलन करने के लिये स्मरण करना चाहिये। गम्भीर, मदोन्मत्त, स्वर्ण कान्ति के समान प्रभा वाली, चार भुजाओं वाली, तीन नेत्रों वाली, कमलासन पर विराजमान, स्वर्णकुण्डल धारण करने वाली, माथे पर अर्धचन्द्र को धारण करने वाली, पीले आभूषण एवं वस्त्र धारण करने वाली, स्वर्ण-सिंहासन पर स्थित, प्रसन्न होती हुई भी शत्रु को स्तम्भित करने वाली, मदन एवं रति का स्तम्भन करने वाली, महाविद्यास्वरूपा, महामायास्वरूपा, साधक को बल प्रदान करने वाली, स्मरणमात्र से ही तीनों लोकों को स्तम्भित करने वाली, बाँयें ऊपरी हाथ में अंकुश एवं नीचे वर, उसी के नीचे अक्षसूत्र एवं कमल धारण करने वाली, दाहिने हाथ में क्रमशः पाश, अभय, अक्षसूत्र एवं कमल धारण करने वाली, केयू-अंगद एवं कुण्डल से अलंकृत, बाल चन्द्रमा को मुकुट में धारण की हुई, तरुण सूर्य के समान दीपितमान, नितम्ब पर कौशेय वस्त्र धारण करने वाली, नववौवना, कल्पवृक्ष के नीचे स्वर्णशिला पर प्रसन्नतापूर्वक पाँच प्रेतों के साथ आरूढ़, भक्तों के लिये नानाविधि कामलीला में तत्पर बगला का मन में ध्यान करना चाहिये।

काञ्छन कुण्डलों के कम्पन होने से सुशोभित कपोलों वाली, स्वर्णप्रिया एवं चम्पापुष्प (या स्वर्ण द्वारा निर्मित लगने वाले चम्पापुष्प) की द्युति से कान्तिमान, चन्द्रबिम्ब-सदृश मुख वाली, अपनी गदा से शत्रु को आहत करने वाली, शत्रु की चञ्चल जिहा को नष्ट करने वाली तथा उसकी वाणी, मन एवं मुख को नष्ट करने वाली भगवती बगलामुखी का चिन्तन (स्मरण) करता हूँ। अमृत-पयोनिधि के मध्य रक्तारविन्दों के मण्डप में मनोज्ञ सिंहासन पर समासीन, शत्रुओं के शिरों को गिराने वाली, प्रेतासन पर आसीन, स्वर्ण की आभा से युक्त, शत्रु की जिहा को पीड़ित करने वाली, गदा को घुमाती हुई भगवती पीताम्बरा बगलामुखी का ध्यान करने-मात्र से समस्त आपत्तियों का क्षणमात्र में ध्वंस हो जाता है। मैं ऐसी पीताम्बरा का ध्यान करता हूँ।

हे अम्बे! आपकी आत्मशक्ति से शत्रुओं का दलन हो जाता है। आपका स्तोत्र अत्यधिक शुचि है, वादी-समूह को नियन्त्रित करने वाल है और विचित्र त्रैलोक्य को जीतने वाल है। हे भगवति! आपका यह अत्यन्त सुन्दर बगलामुखी नाम जिस भी प्राणी के मुख में निवास करता है या जो प्राणी आपका तथा आपके इस मन्त्र का ध्यान करता है, उसके शत्रुओं के मुख का अवश्य ही स्तम्भन हो जाता है। हे देवि! जो लोग भक्ति के साथ आपके श्रीचरणों की अर्चा करने में पीतपुष्पों की अञ्जलि समर्पित करते हैं और स्पष्टाक्षरों से मन्त्र का ध्यान करते हैं तथा कूम्भकपूर्वक आपके बीजमन्त्रों का चिन्तन करते हैं, उन लोगों को शत्रुजन्य वाणी-मन-हृदयगत समस्त पीड़ायें तत्क्षण नष्ट हो जाती हैं।

हे भगवति! आपकी यन्त्रणा से यन्त्रित शत्रु की वाणी मूँह हो जाती है, राजा भी रङ्ग हो जाता है, प्रज्वलित वैश्वानर शीतल हो जाता है, क्रोधी का क्रोध शान्त हो जाता है, दुर्जन सज्जन बन जाता है, वेगवान पद्म हो जाता है, अभिमानी का गर्व बङ्ग हो जाता है और सर्वज्ञ शत्रु भी जड़ हो जाता है। हे कल्याणि! हे लक्ष्मि! हे नित्यसत्ते बगलामुखि! मैं आपका अभिवादन करता हूँ।

हे जननि! दुष्टों को स्तम्भित करने वाला, दुर्निवार्य प्रत्यूहों को नष्ट करने वाला, दारिद्र्य को दूर करने वाला, नृपतियों के भय को विनष्ट करने वाला, सौभाग्य के एकमात्र निवृस्स्वरूप, सम दृष्टि से सबको देखने वाला, करुणा से भरा अमृत-स्वरूप मृत्यु का नाशक आपका शरीर सामने प्रकट हो।

हे माते! मेरे शत्रु के मुख को तोड़ डालिये, उसकी जिह्वा को कीलित कर दीजिये, उसकी समस्त बुद्धि के विकास को नष्ट कर डालिये तथा उसकी वाणी एवं तीव्र गति का शीघ्र स्तम्भन कीजिये। हे देवि बगले! आप अपने कठोर गदा-प्रहार से शत्रुओं को चूर्ण कर डालिये। हे काशण्यर्ण नयनों वाली भगवती बगलामुखि! आप मुझ प्रणत एवं अभिवादनपरायण भक्त के विघ्न-समूह का ध्वंस कीजिये।

भयानक कष्ट उपस्थित होने पर, चोरों द्वारा आक्रान्त होने पर, अपने ऊपर प्रहारकाल में, बन्धन की स्थिति में, जलभय होने पर, शास्त्रसम्बन्धी विवाद में, किसी से विवाद की स्थिति में, राजा के कुपित होने पर, दिव्य समय में, रात्रि में, वश्य अथवा स्तम्भन में, शत्रुवध के समय, निर्जन स्थान में अथवा युद्ध में, जाते हुये अथवा बैठे हुये तीनों कालों में जो कोई यदि इसका पाठ करता है तो वह कल्याण को प्राप्त करता है।

हे माते! हे भैरवि! हे भद्रकालि! हे विजये! हे वाराहि! हे विश्वाश्रये! हे लक्ष्मी! हे श्रि! हे विद्ये! हे समये! हे महेशि! हे बगले! हे कामेशि! हे रमे! हे रामे! मातङ्गि! हे त्रिपुरसुन्दरि! हे परातपरपरे! हे स्वर्गापवर्गप्रदे! हे विश्वेश्वरि! मैं आपका दास हूँ और आपके शरणागत हूँ। देवि! आप अपनी करुणा से मेरी रक्षा कीजिये।

हे जननि! तुम परमा विद्या हो, तुम तीनों लोकों की माता हो, तुम विघ्नसमूह की विनाशिनी हो, तुम कोषाकर्षण की सूत्रधार हो, तुम लोकत्रय में आनन्द का संवर्धन करने वाली हो, तुम दुष्टों का उच्चाटन करने वाली हो और तुम जनमन को समोहित करने वाली हो। शत्रुओं की जिह्वा को कीलित करने वाली हे देवि बगले! जिस प्रकार ब्रह्मा आदि त्रिदेवों का मन्त्र सदैव विजय प्रदान करता है, उसी प्रकार आपका मन्त्र भी सभी क्षेत्रों में विजय प्राप्त करता है अर्थात् साधकों को विजय प्राप्त करता है।

जो व्यक्ति नित्यप्रति इस पवित्र स्तोत्र का श्रद्धापूर्वक पाठ करता है, इस यन्त्र तथा मन्त्र को अपनी भुजा एवं कण्ठ में धारण करता है, उसके समक्ष राजा, शत्रु, मतवाला हस्ती, सर्प एवं सिंह सभी वशीभूत हो जाते हैं। उसके शत्रु स्वयं मोहित हो उठते हैं। उसकी लक्ष्मी एवं सिद्धियाँ भी स्थिर हो जाती हैं।

प्रतिदिन जो साधक माता बगला के इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसकी देवता लोग भी पूजा करते हैं। उसके देखने मात्र से ही लोक के सारे कार्य सम्पन्न होते हैं एवं लोकमाता भी सिद्धि को प्राप्त होती है। हे माते! आपकी कृपा से इस पृथ्वीलोक पर लोगों ने विद्या, लक्ष्मी, सौभाग्य, आयु, पुत्र, सम्पत्ति, राजा, अभीष्टसिद्धि, सर्ववश्यत्वसिद्धि एवं कल्याण प्राप्त किया है। हे देवि! आपके मन्त्रजप के साथ जो मैंने आपकी स्तुति की है, उसे शत्रु के स्तम्भनार्थ आप ग्रहण करो। यह विख्यात ब्रह्मास्त्र नामक स्तोत्र तीनों लोकों में परम दुर्लभ है। यह गुरुभक्त को ही प्रदान करने योग्य है, अन्य किसी को देने योग्य नहीं है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित् श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव

नारायण-कृत भाषा-भाष्य में त्रयोविंश श्वास पूर्ण हुआ



## अथ चतुर्विंशः श्वासः

कालीमन्त्रप्रकरणम्

अथ कालीप्रकरणं, तत्र भैरवतन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महाविद्या: कालिकायाः सुदुर्लभाः । यासां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१॥

नात्र चित्तादिशुद्धिः स्याज्ञारिमित्रादिलक्षणम् । न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम् ॥२॥

न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं न च । य एनां चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकार्यसमृद्धिदाम् ॥३॥

तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः । गद्यपद्यमयी वाणीं सभायां तस्य जायते ॥४॥

तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्ठभां गताः । राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः ॥५॥

दिवारात्रिव्यत्ययं च वशीकर्तुं क्षमो भवेत् । अन्ते च भजते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरः ॥६॥ इति ।

काली प्रकरण—भैरवतन्त्र में भगवान् भैरव ने कहा है कि अब सुदुर्लभ कालिका महाविद्या को कहता हूँ, जिसे जानने-मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। यहाँ पर चित्त आदि की शुद्धि करणीय नहीं है और अरि-मित्र आदि के लक्षण जानने की भी जरूरत नहीं है; समय-असमय आदि प्रयासबाहुल्य भी नहीं है। इसमें न अधिक धन की आवश्यकता है और न ही शरीर के लिये क्लेशकर है। जो इसका चिन्तन करता है, उसके सभी कार्य सम्प्रव होते हैं और समृद्धि मिलती है। उसके हाथ में सभी सिद्धियाँ सर्वदा विराजमान रहती हैं और सभा में उसकी वाणी गद्य-पद्यमयी होती है। उसे देखते ही वादी निष्ठभ हो जाते हैं। राजा भी उसके दास हो जाते हैं तब दूसरों की तो बात ही क्या है। दिन-रात को भी वह वश कर सकता है। देहान्त होने पर देवी का दुर्लभ गणत्व उसे प्राप्त होता है।

श्यामामन्त्रः

अथ श्यामामन्त्रः । तत्र कालीतन्त्रे—

कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिबिन्दुसमन्वितम् । कूर्चयुगमं तथा लज्जायुगलं तदनन्तरम् ॥१॥

दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत् । अन्ते वह्निवधूं दद्याद्विद्याराजी प्रकीर्तिता ॥२॥

मन्त्र्यमाह, रुद्रयामले—

ककाराज्जलरूपत्वात् केवलं मोक्षदायिनी । ज्वलनार्थसमायोगात् सर्वतेजोमयी शुभा ॥१॥

मायाबीजत्रयेणैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी । बिन्दुनां निष्कलत्वाच्च कैवल्यफलदायिनी ॥२॥

बीजत्रयाणां युक्त्या सा केवलं ज्ञानचित्कला । शब्दबीजद्वयेनैव ( शब्दराशिप्रबोधिनी ॥३॥

लज्जाबीजद्वयेनैव ) सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी । संबोधनपदेनैव सदा सञ्चिदिकारिणी ॥४॥

स्वाहया जगतां माता सर्वपापप्रदाहिनी । इति।

एवं वीरतन्त्रे—

अथातः संप्रवक्ष्यामि दक्षिणां कालिकां शुभाम् । कामाक्षरं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ॥१॥

बिन्दुनादसमायुक्तं बीजमेतत्रयं लिखेत् । कूर्चयुगमं ततो देवि लज्जायुगममनन्तरम् ॥२॥

दक्षिणे कालिके चेति संबोधनपदान्वितम् । सप्तबीजं पुनः प्रोच्य स्वाहानं मनुमुद्धरेत् ॥३॥

श्यामा मन्त्र—कालीतन्त्र के मूलोक्त श्लोकों का उद्धार करने पर श्यामा अर्थात् दक्षिणकाली का बाईस अक्षरों का मन्त्र निम्न प्रकार का बनता है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा।

इस मन्त्र का अर्थ रुद्रयामल के अनुसार इस प्रकार है—ककार जलरूप होने के कारण केवल मोक्षदायिनी है। जलनार्थ के समायोग से सर्वतेजोमयी शुभा है। तीन मायाबीज हीं सृष्टि-स्थिति-अन्तकारिणी हैं। बिन्दु निष्कल होने से कैवल्यदायक है। तीन बीजों से युक्त वह केवल ज्ञान चित् कला है। दो शब्दबीज होने से शब्दराशि-प्रबोधिनी हैं। दो लज्जा बीज के कारण सृष्टि स्थिति-अन्तकारिणी है। सम्बोधन पद से देवी सदा सत्रिधिकारिणी है। स्वाहा से जगन्माता और सर्व पापप्रणाशिणी है। वीरतन्त्र में कहा गया है कि दक्षिणकालिका के कल्याणदायक मन्त्र इस प्रकार होते हैं—तीन क्रीं बीज, दो हूं, दो हीं; तदनन्तर दक्षिणे कालिके यह सम्बोधन पद और पुनः पूर्वोक्त सात बीज। उसके बाद अन्त में स्वाहा। इस प्रकार मन्त्र होता है—क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं हीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हीं हीं स्वाहा।

### पूजाप्रयोगः

अथास्य पूजाप्रयोगः—तत्राचमनं भैरवतन्त्रे—

कालिकाभिखित्थिः पीत्वा काल्यादिभिरुपस्येत् । द्वाभ्यामोष्ठौ द्विरुमृज्य चैकेन क्षालयेत्करौ ॥१॥  
मुखघोणेक्षणश्रोत्रनाभ्युरःकं भुजौ क्रमात् । आचम्यैवं भवेत्काली वत्सराणां(तां) प्रपश्यति ॥२॥

आद्यबीजत्रयेण द्विराचमेत्। ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः, इति ओष्ठौ द्विरुमृजेत्। ॐ कुल्लायै नमः, इति करं क्षालयेत्। ॐ कुरुकुल्लायै नमः, इति मुखे। ॐ विरोधिन्यै नमः, इति दक्षिणनासायां। ॐ विप्रचित्तायै नमः, इति वामनासायां। ॐ उत्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः, इति नेत्रयोः। ॐ दीप्तायै नमः, ॐ नीलायै नमः, इति श्रोत्रयोः। ॐ घणायै नमः नाभौ। ॐ बलाकायै नमः, इति वक्षसि। मात्रायै नमः शिरसि। मुद्रायै नमः, मितायै नमः इत्पंसयोः, इति मन्त्राचमनम्। ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते भूतशुद्ध्यन्तं कर्म विधाय, मायाबीजेन यथाविधि प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। तद्यथा—अस्य मनस्य भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दक्षिणकालिका देवता, हीं बीजं, हूं शक्तिः, क्लीं कीलकं पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः। शिरसि भैरवऋषये नमः। मुखे उष्णिकछन्दसे नमः। हृदि दक्षिणकालिकादेवतायै नमः। गुह्ये हीं बीजाय नमः। पादयोः हूं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे क्रीं कीलकाय नमः। तथाच कालीतन्त्रे—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिकछन्द उदाहृतम् । देवता कालिका प्रोक्ता लज्जाबीजं तु बीजकम् ॥१॥

शक्तिस्तु कूर्चबीजं स्यादनिरुद्धसरस्वती । कवित्वार्थं विनियोगः स्यादेवं ऋषिकल्पना ॥२॥

कालीक्रमे—‘कीलकं चाद्यवर्णं स्याच्चतुर्वर्गार्थसिद्धये’ कवित्वार्थं इत्युपलक्षणं, तत्रान्तरे फलान्तर-प्रवणाच्च। कुलचूडामणो—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिकछन्द उदाहृतम् । दक्षिणा कालिका देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ॥१॥ इति।

पूजा प्रयोग—आचमन का विवेचन करते हुये भैरवतन्त्र में कहा गया है कि तीन बीज से दो बार आचमन करे। ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः से दोनों ओठों को मार्जित करे। ॐ कुल्लायै नमः से हाथों को धोये। ॐ कुरुकुल्लायै नमः से मुखशोधन करे। ॐ विरोधिन्यै नमः से दक्षिण नासा का स्वच्छ करे। ॐ विप्रचित्तायै नमः से वाम नासा का शोधन करे। ॐ उत्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः से नेत्रों का स्वच्छ करे, ॐ दीप्तायै नमः। ॐ नीलायै नमः से कानों का शोधन करे। ॐ घणायै नमः से नाभि का शोधन करे। ॐ बलाकायै नमः से वक्ष का शोधन करे। ॐ मात्रायै नमः से शिर का शोधन करे। ॐ मुद्रायै नमः, ॐ मितायै नमः से कन्धों का शोधन करे। यह मन्त्र आचमन होता है। एक वर्ष तक ऐसा करने से काली अपना दर्शन देती है।

तदनन्तर प्रातःकृत्यादि से लेकर योगपीठ न्यास करके भूतशुद्धि करे। मायाबीज से यथाविधि तीन प्राणायाम करे। तब ऋष्यादि न्यास करे। भैरव तन्त्र के अनुसार इसके ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक्, देवता दक्षिणकालिका, बीज हीं, शक्ति हूं एवं कीलक क्लीं हैं। पुरुषार्थ सिद्धि-हेतु इसका विनियोग किया जाता है। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि भैरवऋषये नमः, मुखे उष्णिक् छन्दसे नमः, हृदि दक्षिणकालिकादेवतायै नमः, गुह्ये हीं बीजाय नमः। पादयोः हूं शक्तये नमः। सर्वांगे क्रीं

कीलकाय नमः। कालीतन्त्र में कहा गया है कि इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक, देवता दक्षिण कालिका, बोज हीं एवं शक्ति हीं हैं। कवित्व के लिये इसका विनियोग किया जाता है। कालीक्रम में कहा गया है कि आद्य वर्णं कीलक होता है और चतुर्वर्णं की सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। कुलचूडामणि के अनुसार इस मन्त्र के भैरव ऋषि हैं, छन्द उष्णिक् हैं, देवता दक्षिणा कालिका हैं एवं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति हेतु इसका विनियोग किया जाता है।

अथ कराङ्गन्यासौ, यथा कालीतन्त्रे—

अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते । षट्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ॥१॥ इति।

वीरतन्त्रे—दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत्। तद्यथा—ॐ ह्यं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ हीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, इत्यादि। एवं ॐ ह्यं हृदयाय नमः, इत्यादि। ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इत्यादिना वा। ततो वर्णन्यासः—अंआङ्गुष्ठउंऊंऋंऋूलंतुं नमः, इति हृदये। एंऐंओंऔंअंअःकंखंगंधं नमः, इति दक्षबाहौ। डंचंछंजंझंबंठंडं नमः इति वामबाहौ। पंतंथंदंधंनंपंकंबं नमः, इति दक्षपादे। मंयंरंलंवंशंषंसंहंळंकं नमः, इति वामपादे। विरूपाक्षमते तु सबिन्दुरेष न्यासः, तत्रे पुनर्निर्बिन्दुः। यथा वीरतन्त्रे—‘अआङ्गुष्ठउंऊंऋंऋूलंतुं वै हृदये न्यसेत्’। इत्यादि। कालीतन्त्रेऽपि—‘अआङ्गुष्ठऊंऋंऋूलूः वै हृदये न्यसेत्’ इत्यादि।

कर-अंगन्यास—कालीतन्त्र में कहा गया है कि छः दीर्घ स्वरयुक्त बीजों के पूर्व ॐ लगाकर अङ्गन्यास एवं करन्यास करना चाहिये। वीरतन्त्र में भी इसी का समर्थन किया गया है; जैसे—ॐ ह्यं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ हीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। इसी प्रकार ह्यं हृदयाय नमः अथवा इत्यादि क्रां अंगुष्ठाभ्या नमः इत्यादि। तब वर्णन्यास करे। जैसे—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ऋूं लं लूं नमः हृदये। एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं धं नमः दक्षबाहौ। डं चं छं जं झं जं टं ठं ढं दं नमः वामबाहौ। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः दक्षपादे। मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमः वामपादे। विरूपाक्षमत से बिन्दुसहित ही न्यास करना चाहिये। जैसे कि वीरतन्त्र में कहा है कि अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ऋूं लं लूं का न्यास हृदय में करे। लेकिन तन्त्र में बिन्दुसहित न्यास कहा गया है जैसे कि कालीतन्त्र में कहा गया है कि अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऋू लू लू का न्यास हृदय में करे।

अथ षोडान्यासः, तदुकं वीरतन्त्रे—

केवलां मातुकां कृत्वा मातुकां तारसंपुटाम् । मातुकापुटितं तारं न्यसेत् साधकसत्तमः ॥१॥

श्रीबीजपुटितां तां तु मातुकापुटितं तु तत् । कामेन पुटितां देवीं (तत्पुटं काममेव च ॥२॥

शक्त्या च पुटितां देवीं) शक्तिञ्च तत्पुटां न्यसेत् । हींद्वन्द्वं च पुनर्न्यस्य ऋऋूलूः च पूर्ववत् ॥३॥

मूलेन पुटितां देवीं तत्पुटं मन्त्रमेव च । अनुलोमविलोमेन न्यस्य मन्त्रं यथाविधि ॥४॥

मूलेनाष्टशतं कुर्याद् व्यापकं तदनन्तरम् ।

यथा—ॐ अं अ॒ं, अं अ॑ं अ॒ं, श्रीं अं श्रीं, अं श्रीं अ॑ं, एवं तथैव मातुकापुटितम्। एवं कामपुटितां तां तत्पुटितं कामपू। एवं शक्तिपुटितां तां तत्पुटितां शक्तिं च्यसेत्। तथा हींद्वन्द्वपुटितां तां तु मातुकापुटितं द्वयम्। तथा ऋऋूलूः च पूर्ववत्। एवं मन्त्रपुटितां मातुकां मातुकापुटितं मनुं, पुनरनुलोमविलोमेन मन्त्रं मातुकास्थाने त्यस्य मूलेनाष्टोत्तरशतेन व्यापकं कुर्यात्। एतत्त्वासस्ताराया अपि बोद्धव्यः। ‘इति गुप्तेन दुर्गाया अङ्गषोडा प्रकीर्तिता। ताराया: कालिकायाश्च तमुख्याश्च तथापरा। कृतेऽस्मिन् न्यासवर्णे च सर्वपापं प्रणश्यति’। ततस्तत्त्वन्यासः—मनुं त्रिखण्डं विद्याय प्रथमखण्डान्ते ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, पादादिनाभिपर्यन्तम्। द्वितीयान्ते ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, नाभ्यादिहृदयान्तम्। तृतीयखण्डान्ते ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा, हृदयादिशिरः पर्यन्तम्। तदुकं स्वतन्त्रे—

मूलविद्यात्रिखण्डान्ते प्रणवाद्यैर्यथाविधि । आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वन्यसिं तत्र समाचरेत् ॥१॥ इति।

षोडा न्यास—वीरतन्त्र के अनुसार ॐ अं ॐ, अं ॐ अं, श्रीं अं श्रीं, अं श्रीं अं—इस प्रकार न्यास करे। इसी

प्रकार मातृकापुटित न्यास करे। इसी प्रकार कामपुटित मातृका और मातृकापुटित काम से न्यास करे। इसी प्रकार शक्तिपुटित मातृका और मातृकापुटित शक्ति का न्यास करे। तब दो हीं से पुटित मातृका और दो मातृका से पुटित हीं का न्यास करे। ऋं ऋं लं लं से पूर्ववत् न्यास करे। इसी प्रकार मन्त्रपुटित मातृका और मातृकापुटित मन्त्र; पुनः अनुलोम-विलोम मन्त्र का न्यास मातृका स्थान में करे। मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार व्यापक न्यास करे। इसी प्रकार का न्यास तारा का भी होता है। इसे ही दुर्गा का षोडा अंगन्यास कहते हैं। तारा और कालिका का न्यास मुख्य है। अन्य का न्यास भी इसी प्रकार से होता है। इस न्यास को करने से सभी पाप नष्ट होते हैं।

**तत्त्व न्यास—स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्र को तीन खण्ड में करके प्रथम खण्ड के बाद ३० आत्मतत्त्वाय स्वाहा से पैर से नाभि तक स्पर्श करे। द्वितीय खण्ड के बाद ३० विद्यातत्त्वाय स्वाहा से नाभि से हृदय तक का स्पर्श करे। तृतीय खण्ड के बाद ३० शिवतत्त्वाय स्वाहा कहकर हृदय से शिर तक का स्पर्श करे।**

**अथ बीजन्यासः। तदुक्तं कुमारीकल्पे—**

**ब्रह्मरच्चे भूर्वोमध्ये ललाटे नाभिदेशके । गुहो वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजं क्रमान्वसेत् ॥**

**तद्यथा—आद्यबीजं ब्रह्मरच्चे। द्वितीयं बीजं भूमध्ये। तृतीयं बीजं ललाटे। चतुर्थं बीजं नाभौ। पञ्चमं बीजं गुहो। षष्ठबीजं सर्वाङ्गे। एतत् त्रयं काम्यम्। मूलेन सप्तधा व्यापकं कृत्वा यथाविधि मुद्रां प्रदर्शयेत्। तदुक्तं भैरवीतन्त्रे—‘पञ्चद्वा नवधा वापि मूलेन सप्तधा तथा’ स्वतन्त्रेऽपि—‘मूलेन व्यापकं न्यासं नवधा कारयेद् बुधः’। ततो देवीं व्यायेत्। तद्यथा कालीतन्त्रे—**

**करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥१॥**

**सद्यश्छिन्नशिरःखद्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभ्यं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम् ॥२॥**

**महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिग्म्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्वृधिरच्चिताम् ॥३॥**

**कर्णवितंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् । घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥४॥**

**शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसम्मुखीम्। सृक्कद्वयगलद्रक्तधारविस्फुरिताननाम् ॥५॥**

**घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। (बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्) ॥६॥**

**दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ॥७॥**

**शिवाभिधौररावाभिश्वर्तुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ॥८॥**

**सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥९॥**

**शिवयुग्मेति, घोरकण्ठवितंसेति, प्रेतकर्णपूरोति च, ‘शकुन्तपक्षसंयुक्तबाणकर्णविभूषणाम्’ इति। विगता-सुकिशोराभ्यां कृतकण्ठवितंसिनीमिति’ पठनादुभयमेव पाठः। ध्यानानन्तरं स्वतन्त्रे—**

**अङ्गनाद्विप्रभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णा मुक्तकेशीं स्मिताननाम् ॥१॥**

**महाकालहृदस्थोजस्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शब्दैः सह ॥२॥**

**नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥३॥**

**मृतहस्तमहस्तैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम् ॥४॥**

**रक्तपूण्डमुखाभ्योजां मद्यापानप्रसक्तिकाम्। वह्न्यकशशिनेत्रां तु रक्तविस्फुरिताननाम् ॥५॥**

**विगतासुकिशोराभ्यां कृतकण्ठवितंसिनीम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्वृधिरच्चिताम् ॥६॥**

**श्मशानावह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम्। सद्यश्छिन्नशिरःखद्गवराभीतिकराम्बुजाम् ॥७॥**

**इति ध्यात्वा, मानसोपचारैः संपूज्य अर्द्धस्थापनं कुर्यात्। यथा—स्ववामे भूमौ ‘हुमिति’ अर्द्धस्थापनीयगर्भं त्रिकोणं विलिख्य, तत्रार्थपात्रं संस्थाप्य मूलेन शुद्धजलादिना शंखादिप्रतामपूर्य ‘ॐ हं हृदयाय नमः’ इत्या-**

दिष्ठदङ्गमन्त्रैरनीशासुरवायुषु, अग्रे औं हौं नेत्रव्याय वौषट्। चतुर्दिक्षु हः अस्त्राय फट्, इत्यभ्यर्थ्य, तदुपरि मत्स्यमुदयाच्छाद्य, तदुपरि मूलमन्त्रं दशधा जप्त्वा धेनुमुदया अमृतीकृत्य, अख्लेण संरक्ष्य भूतिनीयोनिमुदे प्रदर्शय, तज्जलं प्रोक्षणीयोपात्रे किञ्चित्निरक्षिप्य, तेनोदकेनात्मानं स्वपूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य पीठपूजामारभेत्।

बीज न्यास—कुमारीकल्प के अनुसार क्रीं से ब्रह्मरन्त्र में, क्रीं से भ्रूमध्य में, क्रीं से ललाट में, हीं से नाभि में, हीं से गुहा में, हुं से मुख में, हुं से सर्वांग में न्यास करो। मूल मन्त्र से सात बार व्यापक न्यास करके यथाविधि मुद्रा प्रदर्शित करे। भैरवी तन्त्र के अनुसार व्यापक न्यास पाँच बार अथवा नव बार तथा मूल मन्त्र से सात बार करे। स्वतन्त्र तन्त्र में भी कहा गया है कि मूल मन्त्र से नव बार व्यापक न्यास करे। तब देवी का ध्यान इस प्रकार करे—

करालवदनां घोरां मुक्तकेरीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्॥  
 सद्यश्छत्रिशिरःखड्गवामाथोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभयं वरदं चैव दक्षिणाथोर्ध्वपाणिकाम्॥  
 महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिग्म्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचिताम्॥  
 कर्णावतसंतानीतशयुग्मभ्यानकाम्। घोरदंश्ट्रां करालास्तां पीनोन्नतपयोधराम्॥  
 श्वानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविष्फुरिताननाम्॥  
 घोररावां महाराद्वैं शमशानालयवासिनीम्। (बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितान्विताम्)॥  
 दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचौच्याम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्॥  
 शिवाभिघोररावाभिश्तुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्॥  
 सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोहुम्। एवं संचिन्तयेक्तालीं शमशानालयवासिनीम्॥

स्वतन्त्र तन्त्र के अनुसार ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है—

अञ्जनाद्विग्रभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णा मुक्तकेरीं स्मिताननाम्॥  
 महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंश्ट्रां शवैः सह॥  
 नागयज्ञोपवीताक्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम्॥  
 मृतहस्तसहस्रस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवाकोटिसहस्रस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्॥  
 रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यापानप्रसक्तिकाम्। वहर्यकशशिनेत्रां तु रक्तविष्फुरिताननाम्॥  
 विगतासुकिशोरभ्यां कृतकर्णावतसिनीम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचिताम्॥  
 शमशानावहिमध्यस्थां ब्रह्मकेशवनन्दिताम्। सद्यश्छत्रिशिरःखड्गवामाभीतिकराम्बुजाम्॥

उपर्युक्त दोनों प्रकार के ध्यानों में से कोई एक ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करके अर्थ का स्थापन करे। जैसे— भूमि पर त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में हुं लिखे। उस पर अर्थपत्र स्थापित करके मूल मन्त्र से जलादि से शंखादि पात्र को भरे। ३० हां हृदयाय नमः इत्यादि षड़ग्रं मन्त्र से अग्नि-ईशान-नैऋत्य-वायव्य में; आगे ‘ओं हौं नेत्रव्याय वौषट्’ से चारों दिशाओं में एवं ‘हः अस्त्राय फट्’ से अर्चन करे। उसे मत्स्य मुद्रा से आच्छादित करे। मूल मन्त्र का दश बार जप करे। धेनु मुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्र मन्त्र से संरक्षण करे। भूतिनी-यानि मुद्रा दिखावे। उस जल में से कुछ प्रोक्षणी पात्र में लेकर अपना और पूजाद्रव्यों का अभ्युक्षण करके पीठपूजा करे।

### पूजायन्त्रीपूजादि

अस्याः पूजायन्त्रम्—आदौ बिन्दुं स्वबीजं भुवनेश्वरीं च विलिख्य, ततस्त्रिकोणं तद्वाहो त्रिकोणचतुष्टयं वृत्तमष्टदलं पद्मं पुनर्वृत्तं चतुर्द्वारात्मकं भूगृहं यन्त्रमारभेत्। ततः पीठपूजा, कुमारीकल्पे—

पीठपूजां ततः पश्चादाधारशक्तिपूर्वकम्। प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च ॥१॥

सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा। शमशानं पारिजातं च तन्मूले रलवेदिकाम् ॥२॥

तस्योपरि मणे: पीठं न्यसेत्साधकसत्तमः। चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाश्श शवमुण्डकान् ॥३॥

प्रकार मातृकापुटित न्यास करे। इसी प्रकार कामपुटित मातृका और मातृकापुटित काम से न्यास करे। इसी प्रकार शक्तिपुटित मातृका और मातृकापुटित शक्ति का न्यास करे। तब दो हीं से पुटित मातृका और दो मातृका से पुटित हीं का न्यास करे। ऋं ऋं लं लूं से पूर्ववत् न्यास करे। इसी प्रकार मन्त्रपुटित मातृका और मातृकापुटित मन्त्र; पुनः अनुलोम-विलोम मन्त्र का न्यास मातृका स्थान में करे। मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार व्यापक न्यास करे। इसी प्रकार का न्यास तारा का भी होता है। इसे ही दुर्गा का बोढ़ा अंगन्यास कहते हैं। तारा और कलिका का न्यास मुख्य है। अन्य का न्यास भी इसी प्रकार से होता है। इस न्यास को करने से सभी पाप नष्ट होते हैं।

**तत्त्व न्यास—स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्र को तीन खण्ड में करके प्रथम खण्ड के बाद ३० आत्मतत्त्वाय स्वाहा से पैर से नाभि तक स्पर्श करे। द्वितीय खण्ड के बाद ३० विद्यातत्त्वाय स्वाहा से नाभि से हृदय तक का स्पर्श करे। तृतीय खण्ड के बाद ३० शिवतत्त्वाय स्वाहा कहकर हृदय से शिर तक का स्पर्श करे।**

**अथ बीजन्यासः। तदुक्तं कुमारीकल्पे—**

**ब्रह्मरन्त्रे भूवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके। गुह्ये वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजं क्रमान्वसेत्॥**

**तद्यथा—आद्यबीजं ब्रह्मरन्त्रे। द्वितीयं बीजं भ्रूमध्ये। तृतीयं बीजं ललाटे। चतुर्थं बीजं नाभौ। पञ्चमं बीजं गुह्ये। षष्ठबीजं सर्वाङ्गे। एतत् त्रयं काम्यम्। मूलेन सप्तधा व्यापकं कृत्वा यथाविधि मुद्रां प्रदर्शयेत्। तदुक्तं भैरवीतन्त्रे—‘पञ्चद्वा नवधा वापि मूलेन सप्तधा तथा’ स्वतन्त्रेऽपि—‘मूलेन व्यापकं न्यासं नवधा कारयेद् बुधः।। ततो देवीं ध्यायेत्। तद्यथा कालीतन्त्रे—**

**करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥१॥**

**सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभ्यं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम् ॥२॥**

**महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिग्म्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्वृधिरचर्चिताम् ॥३॥**

**कर्णावितंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्। घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥४॥**

**शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसम्मुखीम्। सृक्षकद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ॥५॥**

**घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। (बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्) ॥६॥**

**दत्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ॥७॥**

**शिवाभिधोररावाभिश्वतुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ॥८॥**

**सुखप्रसन्नवदनां स्मराननसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥९॥**

**शिवयुग्मेति, घोरकण्ठावितंसेति, प्रेतकर्णपूरोति च, ‘शकुन्तपक्षसंयुक्तबाणकर्णविभूषणाम्’ इति। ‘विगता-सुकिशोराभ्यां कृतकण्ठावितंसिनीमिति’ पठनादुभ्यमेव पाठः। ध्यानान्तरं स्वतन्त्रे—**

**अङ्गनाद्रिप्रभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णा मुक्तकेशीं स्मिताननाम् ॥१॥**

**महाकालहृदस्थोजस्थितां पीनययोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शब्दैः सह ॥२॥**

**नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥३॥**

**मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम् ॥४॥**

**रक्तपूणमुखाभ्योजां मद्यापानप्रसक्तिकाम्। वह्न्यकशशिनेत्रां तु रक्तविस्फुरिताननाम् ॥५॥**

**विगतासुकिशोराभ्यां कृतकण्ठावितंसिनीम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्वृधिरचर्चिताम् ॥६॥**

**श्मशानावह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववदिताम्। सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवराभीतिकराम्बुजाम् ॥७॥**

**इति ध्यात्वा, मानसोपचारैः संपूज्य अर्द्धस्थापनं कुर्यात्। यथा—स्ववामे भूमौ ‘हुमिति’ अर्द्धस्थापनीयगर्भं त्रिकोणं विलिख्य, तत्रार्धपात्रं संस्थाप्य मूलेन शुद्धजलादिना शंखादिप्रतामपूर्य ‘३० हां हृदयाय नमः’ इत्या-**

दिष्ठदङ्गमन्त्रैरग्नीशासुरवायुषु, अये औं हौं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु हः अस्त्राय फट्, इत्यभ्यर्थ्य, तदुपरि मत्स्यमुदयाच्छाद्य, तदुपरि मूलमन्त्रं दशथा जप्त्वा धेनुमुदया अमृतीकृत्य, अस्त्रेण संरक्ष्य भूतिनीयोनिमुदे प्रदर्शय, तज्जलं प्रोक्षणीपात्रे किञ्चित्रिक्षिप्य, तेनोदकेनात्मानं स्वपूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य पीठपूजामारभेत्।

बीज न्यास—कुमारीकल्प के अनुसार क्रीं से ब्रह्मरन्त्र में, क्रीं से भ्रूमध्य में, क्रीं से ललाट में, हीं से नाभि में, हीं से गुहा में, हुं से मुख में, हुं से सर्वांग में न्यास करे। मूल मन्त्र से सात बार व्यापक न्यास करके यथाविधि मुद्रा प्रदर्शित करे। भैरवी तन्त्र के अनुसार व्यापक न्यास पाँच बार अथवा नव बार तथा मूल मन्त्र से सात बार करे। स्वतन्त्र तन्त्र में भी कहा गया है कि मूल मन्त्र से नव बार व्यापक न्यास करे। तब देवी का ध्यान इस प्रकार करे—

करालवदनां धोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्॥  
सद्यश्छत्रिशःखड्गवामाधोर्धकराम्बुजाम्। अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्धपाणिकाम्॥  
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिग्म्बराम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचिताम्॥  
कर्णावितंसतानीतशयुग्मभयानकाम्। धोरदंष्ट्रां करालासां पीनोन्नतपयोधराम्॥  
श्वानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्कद्रव्यगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्॥  
घोरशावां महाराद्रीं शमशानालयवासिनीम्। (बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्)॥  
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्॥  
शिवाभिर्घोररावाभित्तुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्॥  
सुखप्रसन्नवदनां स्मेरणनसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत्कालीं शमशानालयवासिनीम्॥

स्वतन्त्र तन्त्र के अनुसार ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है—

अञ्जनाद्विग्रभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णा मुक्तकेशीं स्मिताननाम्॥  
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां धोरदंष्ट्रां शवैः सह॥  
नागयज्ञोपवीताळ्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषिताम्॥  
मृतहस्तसहस्रस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवाकोटिसहस्रस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्॥  
रक्तपूर्णमुखाभ्योजां मद्यापानप्रसक्तिकाम्। वहर्यकरशिनेत्रां तु रक्तविस्फुरिताननाम्॥  
विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावितंसीनाम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचिताम्॥  
शमशानावहिमध्यस्थां ब्रह्मकेशवन्दिताम्। सद्यश्छत्रिशःखड्गवाभीतिकराम्बुजाम्॥

उपर्युक्त दोनों प्रकार के ध्यानों में से कोई एक ध्यान करके मानसोपचारों से पूजा करके अर्ध का स्थापन करे। जैसे— भूमि पर त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में हुं लिखे। उस पर अर्थपत्र स्थापित करके मूल मन्त्र से जलादि से शंखादि पात्र को भरे। ३० हां हृदयाय नमः इत्यादि षडङ्ग मन्त्र से अग्नि-ईशान-नैऋत्य-वायव्य में; आगे ‘ओं हौं नेत्रत्रयाय वौषट्’ से चारों दिशाओं में एवं ‘हः अस्त्राय फट्’ से अर्चन करे। उसे मत्स्य मुद्रा से आच्छादित करे। मूल मन्त्र का दश बार जप करे। धेनु मुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्र मन्त्र से संरक्षण करे। भूतिनी-योनि मुद्रा दिखावे। उस जल में से कुछ प्रोक्षणी पात्र में लेकर अपना और पूजाद्रव्यों का अभ्युक्षण करके पीठपूजा करे।

### पूजायन्त्रपीठपूजादि

अस्याः पूजायन्त्रम्—आदौ बिन्दुं स्वबीजं भुवनेश्वरीं च विलिख्य, ततस्त्रिकोणं तद्वाहो त्रिकोणचतुष्टयं वृत्तमष्टदलं पद्मं पुनर्वृत्तं चतुर्द्वारात्मकं भूगृहं यन्त्रमारभेत्। ततः पीठपूजा, कुमारीकल्पे—

पीठपूजां ततः पश्चादाधारशक्तिपूर्वकम्। प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च ॥१॥

सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा। शमशानं पारिजातं च तमूले रलवेदिकाम् ॥२॥

तस्योपरि मणे: पीठं न्यसेत्साधकसत्तमः। चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाश्श शवमुण्डकान् ॥३॥

‘धर्माधर्मादींश्चेत्’त्यादि। ततः पीठन्यासोक्ताधारशक्त्यादि हीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं संपूज्य, केसरेषु पूर्वादितः ‘इच्छाज्ञानक्रियाशैव कामिनी कामदायिनी। रती रतिप्रियानन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी’। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। तदुपरि ‘हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः’ पीठस्योत्तरे गुरुपूजा। पुनर्धर्यात्वा पुष्पाङ्गलावानीय मूल-मन्त्रकल्पितमूर्तौ आवाहयेत्। ‘देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव’। ततो मूलमुच्चार्य ‘अमुके देवि इहावह २ इह तिष्ठ २ इह सत्रिधेहि २ इह संनिरुद्धस्व २’। ततो हुमित्वगुण्ठय अङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य, धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य, भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्शय प्राणप्रतिष्ठां विधाय मूलेन पाद्यादिभिः पूजयेत्। मूलमुच्चार्य अमुकदेवतायै एतत्याद्य नमः। इदमर्थ्य स्वाहा। इदमाचमनीयं स्वधा। स्नानीयं निवेदयामि। पुनराचमनीयं स्वधा। एष गन्धो नमः। एतानि पुष्पाणि वौषट्। ततो मूलेन पुष्पाङ्गलिं दत्त्वा मूलमुच्चार्य एष दीपो नमः। ततो घण्टां संपूजयेत्—‘ॐ जगद्ध्यनि मन्त्रमातः स्वाहा’ इति घण्टां संपूज्य वादयन् धूपं दत्त्वा दीपं दृष्टिपर्यन्तं दद्यात्। ततो मूलेन पुष्पाङ्गलित्रयं दत्त्वा यथोपत्रं नैवेद्यं दद्यात्।

पूजा यन्त्र—पहले ‘हीं’ लिखे। उसके बाहर चार त्रिकोण, वृत्त और अष्टदल बनावे। फिर वृत्त बनाकर उसके बाहर चार द्वारों से युक्त चतुरस्र धूपु बनावे। तदनन्तर पीठ पूजा करे। कुमारीकल्प में कहा गया है कि पीठन्यासोक्त आधारशक्ति आदि का पूजन ‘हीं ज्ञानात्मने नमः’ से करे। केसर में पूर्वादि क्रम से इच्छा, ज्ञान, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, नन्दा का पूजन आठी दिशाओं में करने के बाद बीच में मनोन्मनी की पूजा करे। सर्वत्र नाम के आदि में प्रणव एवं अन्त में नमः लगाकर पूजा करे। उसके ऊपर ‘हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः’ से पूजा करे। पीठ के उत्तर में गुरुपूजन करे। फिर ध्यान करके पुष्पाङ्गलि लेकर मूल मन्त्र से कल्पित मूर्ति का आवाहन करे। जैसे—

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥

तब मूल मन्त्र कहकर ‘अमुके देवि इहावह इहावह इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सत्रिधेहि इह संनिरुद्धस्व इह सत्रिधेहि’ कहकर आवाहन करे। तब हुं से अवगुण्ठन करे। अंगमन्त्र से सकलीकरण करे। धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। परमीकरण मुद्रा से परमीकरण करे। भूतिनीयोनिमुद्रा दिखाकर प्राणप्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र से पाद्यादि से पूजा करे। जैसे— मूल मन्त्र कहकर अमुकदेवतायै एतत्याद्य नमः। इदमर्थ्य स्वाहा। इदमाचमनीयं स्वधा। स्नानीयं निवेदयामि। पुनराचमनीयं स्वधा। एष गन्धो नमः। एतानि पुष्पाणि वौषट्। तब मूल मन्त्र से पुष्पाङ्गलि देकर मूल मन्त्र कहकर एष दीपो नमः कहकर ॐ जगद्ध्यनि मन्त्रमातः स्वाहा कहकर घण्टा का पूजन करके उसे बजाकर धूप-दीप दिखावे। तब मूल मन्त्र से तीन पुष्पाङ्गलि देकर यथोपत्र नैवेद्य निवेदित करे।

ततः आवरणपूजामारभेत्। ततः ‘अमुके देवि आवरणं ते पूजयामि’ इत्याज्ञां गृहीत्वा, केसरेषु अग्निकोणे ॐ हाँ हृदयाय नमः। इशाने ॐ हीं शिरसे स्वाहा। नैऋत्ये ॐ हूं शिखायै वषट् वायो ॐ हैं कवचाय हुं। आग्नेये ॐ हौं हैत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ॐ हृः अस्त्राय फट्। ततो बहिः षट्कोणे ॐ काल्यै नमः, एवं कपालित्यै०, कुल्लायै०, कुरुकुल्लायै०, विरोधित्यै०, विप्रचित्यायै० नमः उत्रायै०, उग्रप्रभायै० दीपायै०, ( इत्यन्तत्यस्ते। नीलायै०, धनायै०, बलाकायै०, इति द्वितीयत्रयस्ते। मात्रायै०, मुद्रायै० ) मितायै नमः इति तृतीयत्रयस्ते। ‘सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः। तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः सुचिस्मिताः। दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्वर्भृत्समन्विताः।’ इति ध्यात्वार्थयेत्। ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादिकमेण ॐ ब्राह्मण्यै नमः, एवं नारायण्यै०, माहेश्वर्यै०, चामुण्डायै०, कौमार्यै०, अपराजितायै०, वाराहै०, नारसिंहै०। एता गन्धादिभिः संपूज्य, पत्राग्रे असिताङ्गादिभैरवान् पूजयेत्। ततो मूलेन पुष्पाङ्गलित्रयं दद्यात्। ततः पाद्यादिना देव्या दक्षिणे भागे महाकालं पूजयेत्। कुमारीकल्पे—‘देव्याश्च दक्षिणे भागे महाकालं प्रपूजयेत्।’ हृक्षीयांरांलांवांहांकों महाकालं भैरव सर्वविघ्नान् नाशय २ हींश्रीफट्स्वाहा। अनेन पाद्यादिभैराग्यं त्रिस्तर्पयित्वा मूलेन देवीं पञ्चोपचारैः पूजयेत्। तथाच कालीतन्त्रे—‘महाकालं यजेद्यात्मात् पश्चाद् देवीं प्रपूजयेत्। ततो देवीं ध्यायेत्। ततो यथाशक्ति जपित्वा गुह्यत्यादिना जपं देव्या वामहस्ते समर्पयेत्। ततः स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्गं

प्रणामं कुर्यात्। श्रीजगन्मङ्गलं नामकवचं पठेत्। ततस्तत्तेजः पुष्ट्रेण सार्थं हृदि आरोपयेत्। (ततो निवेद्यं निवेदयित्वा) तत्रैवेद्यं किञ्चित् 'उच्छिष्ठचण्डालिन्यै नमः' इत्यैशाश्यां दिशि दत्ता शेषं शिष्ठेभ्यो दद्यात्। किञ्चित् स्वीकृत्य पादोदकं किञ्चित् पीत्वा, निर्मल्यं धृत्वा यथेच्छं विहरेदिति। ततो मूलेनाष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं 'पुष्टं च चन्दनं धृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्। सर्वसिद्धियुतो भूत्वा भैरवो वत्सराद्ववेत्' इति। अस्य पुरश्चरणं लक्ष्मद्वयजपः। तत्क्रमस्तु कालीतन्त्रे—  
लक्ष्मेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः। रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शश्यायां लक्ष्मानतः॥१॥ इति।

**व्यवस्थामाह स्वतन्त्रतन्त्रे—**

दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जपेत्रः। ततस्तस्य दशांशेन हविषाग्नौ समर्पयेत्॥१॥ इति।

अत्राङ्गस्य कालान्तरमाह, नीलसारस्वततन्त्रे—'लक्ष्मेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः। अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्ष्मेकं तथैव च। दशांशं होमयेन्मन्त्री दशांशमभिषेचयेत्' इति सांप्रदायिकाः। वस्तुतस्तु कुमारीकल्पे—  
लक्ष्मेकं जपेन्मन्त्री हविष्याशी दिवा शुचिः। रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शश्यायां लक्ष्मानतः॥१॥

एवं लक्ष्मद्वयं जप्त्वा तद्वशांशेन मन्त्रवित्। अयुत् होमयेद् देवि दिवारात्रिप्रभेदतः॥२॥

इति दर्शनाद् दिवा लक्षं जप्त्वा तद् दशांशहोमं कुर्यात्। रात्रौ लक्षं जपित्वा रात्रावेव तद्वशांशहोमं कुर्यात्,  
इति रहस्यार्थः।

आवरण पूजन—‘अमुके देवि आवरणं ते पूजयामि’ कहकर आज्ञा लेने के बाद केसर में आवरण-पूजन करे। जैसे उसके अग्निकोण में ॐ हाँ हृदयाय नमः, ईशान में ॐ हीं शिरसे स्वाहा, नैर्देत्य में ॐ हूं शिखायै वषट्, वायव्य में ॐ हैं कवचाय हुं, आग्नेय में ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चारों दिशाओं में ॐ हः अख्याय फट्। तदनन्तर बाहर षट्कोण में ॐ काल्यै नमः, कपालिन्यै नमः, कुल्लायै नमः, कुरुकुल्लायै नमः, विरोधिन्यै नमः, विप्रचित्यायै नमः, उग्रायै नमः, उग्रप्रभायै नमः, दीप्तायै नमः से प्रथम त्रिकोण में; तब दूसरे त्रिकोण में नीलायै नमः, घनायै नमः, बलाकायै नमः से एवं तीसरे त्रिकोण में मात्रायै नमः, मुद्रायै नमः, मितायै नमः से पूजन करो। सभी का इस प्रकार ध्यान करें—

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः। तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः सुचिस्मिताः॥

दिग्म्बरा हसन्मुख्यः स्वस्वर्भृत्यसमन्विताः।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि क्रम से ॐ ब्राह्मण्यै नमः, नारायण्यै नमः, माहेश्वर्यै नमः, चामुण्डायै नमः, कौमार्यै नमः, अपराजितायै नमः, वाराह्यै नमः, नारसिंहै नमः कहते हुये इनका पूजन गन्धादि से करे। दलों के अग्रभाग में असितांगादि भैरवों की पूजा करे। तब मूल मन्त्र से तीन पुष्ट्राङ्गलि प्रदान करे। तब देवी के दाँयें भाग में महाकाल का पूजन पाद्यादि से करे।

कुमारीकल्प में कहा भी गया है कि देवी के दक्षिण भाग में महाकाल की पूजा करनी चाहिये। हूं क्षौं यां रां लां वां हां क्रों महाकालभैरव सर्वविघ्नान नाशय नाशय हीं श्री फट् स्वाहा' इस मन्त्र से पाद्यादि से महाकाल की पूजा करके तीन बार तर्पण करे। तब मूल मन्त्र से देवी का पूजन पञ्चोपचार से करो। कालीतन्त्र में भी कहा है कि महाकाल का पूजन करके देवी का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर देवी का ध्यान करके यथाशक्ति जप करके गुह्यादि से जप को देवी के वाम हस्त में समर्पित करे। तब स्तुति करके प्रदक्षिणा करे और अष्टाङ्ग प्रणाम करो। श्रीजगन्मङ्गल नामक कवच का पाठ करो। तब देवी के तेज को पुष्ट के साथ हृदय में ले आये। तब निवेदित नैवेद्य में से कुछ लेकर 'उच्छिष्ठचाण्डालिन्यै नमः' से ईशान दिशा में उच्छिष्ठ चाण्डालिनी को निवेदित करो। बचे हुए नैवेद्य में से कुछ स्वयं खाकर पादोदक का पान करो। निर्मल्य धारण करके इच्छानुसार विहार करो। तब मूल मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित पुष्ट, चन्दन धारण करके साधक तीनों लोकों को वश में कर सकता है एवं एक साल में सर्वसिद्धियुक्त भैरव हो जाता है। इस मन्त्र का पुरश्चरण दो लाख जप से होता है। पुरश्चरण का क्रम कालीतन्त्र में कहा गया है कि हविष्याशी होकर दिन में एक लाख जप करे एवं रात में मुख में पान खाकर शश्या पर जाकर एक लाख जप करो। स्वतन्त्र तन्त्र में कहा गया है कि दिन में हविष्य का भक्षण कर पवित्र रहकर एक लाख जप

करे और उसका दशांश हवन करे। समय-व्यवस्था प्रदर्शित करते हुये। नीलसारस्वत तन्त्र में कहा गया है कि दिन में सदाचार का पालन करते हुये हविष्य-भक्षण कर एक लाख जप करे एवं रात्रि में अपवित्र रहते हुये भी एक लाख जप करे। उसके दशांश होम करे और उसका दशांश अभिषेक करे। कुमारी कल्प में कहा गया है कि दिन में हविष्याशी रहकर पवित्र रहकर एक लाख जप करे। रात में मुख में पान दबाकर शस्या पर जाकर एक लाख जप करे। इस प्रकार दो लाख जप कर मन्त्रवित् साधक उसके दशांश रूप में दस हजार दिन में और दस हजार रात में हवन करे। इससे स्पष्ट है कि दिन में एक लाख जप और दश हजार हवन करे तथा पुनः रात में एक लाख जप कर दश हजार हवन करे।

मन्त्रान्तरतपूजाप्रकाराः

अत्र मन्त्रभेदाः—

वर्गाद्यं वहिसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम् । एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ॥  
त्रिगुणस्तु विशेषणं सर्वशास्त्रप्रबोधकः ।

पूजादिकं तु—प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं कर्म विधाय पूर्वोक्ता ऋषिच्छन्दोदेवता विच्यस्य वर्णन्यासं कृत्वा कराङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा—ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यामित्यादि। एवं क्रां हृदयायेत्यादि कल्पयेत्। एवं—‘षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि देशिकः’। अन्यतर्स्वं पूर्ववत्। अनयोः पुरश्चरणं लक्षजपः। तथा च सिद्धेश्वरीतन्त्रे— एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं विधानतः। तदशांशं विधानेन होमयेत्साधकोत्तमः ॥१॥ मायाद्वयं कूर्चयुग्मं ऐन्द्रानं मादनत्रयम्। मायाबिन्दीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ॥२॥ संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्घरेत्। एकविंशाक्षरो मन्त्रस्ताराद्यः कालिकामनुः ॥३॥

इन्द्रस्य समीपे ऐन्द्रं रेफित्यर्थः। तेन प्रणवं मायाद्वयं कूर्चयुग्मं निजबीजद्वयं दक्षिणेकालिके निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयमित्येकविंशत्यक्षरः। अस्य पूजादिकं दक्षिणावत्। पुरश्चरणं तु लक्षजपः। होमस्तु तदशांशतः। स्वाहान्तश्च त्रयोविंशाक्षरोऽयं मनुराजकः। स्वाहां विनैकविंशत्यक्षरः कामप्रदो मनुः ॥४॥ विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहाप्रणववर्जिता। ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ॥५॥

स्वतन्त्रे—

प्रणवं पूर्वमुद्घृत्य हल्लेखाबीजमुद्घरेत्। रतिबीजं समुद्घृत्य पपञ्चमं भगान्वितम् ॥१॥ ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराजी प्रकीर्तिता ।

रतिबीजं निजबीजम्। तथाच चामुण्डातन्त्रे—‘रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशाक्षररूपिणी’ इति कवचे प्रतिपादितम्। तेन प्रणवो माया निजबीजं पपञ्चममेकारयुक्तं वह्निवल्लभा।

अस्य पूजा—प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। अस्य मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, विराट् छन्दः, सिद्धिकाली ब्रह्मरूपा त्रिभुवनेश्वरी देवता, निजबीजं बीजं, लज्जा शक्तिः। वर्णन्यासकराङ्गन्यासौ च दक्षिणावत्। ध्यानं तु—

खद्गोद्धिनेन्दुबिभूत्वद्भूतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा  
सव्ये पाणी कपालाद्वलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती ।  
दिग्वल्ला बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटादैर्युता दीपतजिह्वा  
पायान्त्रीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा ॥

एवं ध्यात्वा पूजादिकं दक्षिणावत् कुर्यात्। पुरश्चरणं त्वेकविंशतिसहस्रजपः। तदुक्तं कालीतन्त्रे—

जपेद्विंशतिसाहस्रं सहस्रैकेन संयुतम्। होमयेत् तदशांशेन मृदुपुष्येण मन्त्रवित् ॥१॥ इति। प्रकारान्तरं विश्वसारे—

मूलबीजं ततो माया लज्जाबीजं ततः परम् । महाविद्या महाकाल्या महाकालेन भाषिता ॥१॥  
वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम् । एतत्रयं क्रमेणैव तदन्ते वह्निवल्लभा ॥२॥

निजबीजत्रयं फट् वह्निवल्लभा (३) निजबीजत्रयं कूर्चबीजं लज्जा पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा (४)।  
वाग्भवं नमः मूलबीजं पुनस्तदेव कालिकायै वह्निवल्लभा (५)।

अस्य पूजाप्रयोगः—प्रातःकृत्यादिप्राणायामानं विद्याय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् अस्यैकादशाक्षरस्य दक्षिणामूर्तिः  
ऋषिः, पङ्क्षिः छन्दः, कालिका देवता, शिरोमुखहृदयेषु ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य ध्यायेत् । तथा—

चतुर्भुजा कृष्णावर्णा मुण्डमालाविभूषिता । खड्गं च दक्षिणे पाणौ बिभ्रतीन्दीवरद्वयम् ॥१॥  
कर्त्रीं च खर्षरं चैव क्रमाद्वामे सुविभ्रती । द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रती शिरसा द्वयीम् ॥२॥  
मुण्डमालाधरा शीर्षे ग्रीवायामपि चापराम् । वक्षसा नागहारं च विभ्रती रक्तलोचना ॥३॥  
कृष्णावस्थधरा कठ्यां व्याघ्रजिनसमन्विता । वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ॥४॥  
विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवद्वयम् । सादृहासा महायोररावयुक्ता सुभीषणा ॥५॥ इति।

एवं ध्यानम् । अन्यतर्स दक्षिणावत् । पूर्वोक्तानां मन्त्राणां च सर्वं दक्षिणावद्वोद्धव्यम् । अस्य पुरश्चरणं  
लक्षद्वयजपः । अन्यासां मन्त्रवर्णसंख्यलक्षजपः । तदुक्तं तत्रैव—

लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरश्चरणकर्मणि । अन्यासां वर्णलक्षं तु कथितं पद्मयोनिना ॥१॥ इति।

मन्त्रभेद—एकाक्षर मन्त्र ‘क्री’ सर्व कामफल-प्रदायक महामन्त्र है । ‘क्रीं क्रीं क्रीं’ विशेषतः सर्वशास्त्रप्रबोधक है।

प्रयोग—प्रातःकृत्य से प्राणायाम तक के कर्म करने के बाद पूर्वोक्त ऋषि छन्द देवता का न्यास करके वर्ण न्यास करे । कर न्यास, अंग न्यास करे । जैसे ‘क्रां अंगुष्ठायां नमः क्रां हृदयाय नमः’ इत्यादि । षडङ्ग न्यास करके अन्य सभी विधि पूर्ववत् सम्पन्न करे । एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है । जैसा कि सिद्धेश्वरीतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार ध्यान के बाद विधिपूर्वक एक लाख मन्त्रजप करे । उसका दशांश हवन विधिपूर्वक करे ।

अन्य इक्कीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—३० हीं हीं हुं हुं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं हीं हीं । इसकी पूजा भी पूर्व मन्त्र के समान ही है । एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है और उसका दशांश हवन किया जाता है ।

उपर्युक्त इक्कीस अक्षर के मन्त्र में ‘स्वाहा’ जोड़ने से ही तेर्वेस अक्षरों का एक अन्य मन्त्र हो जाता है । यह मन्त्रराज है । स्वाहा के बिना इक्कीस अक्षरों का मन्त्र कामप्रद है । स्वाहा एवं प्रणव के बिना बीस अक्षर का मन्त्र महाविद्या है । दक्षिण कालिका मन्त्र के समान ही इन सबका ध्यान-पूजन आदि होता है ।

स्वतन्त्रं तन्त्रोक्तं श्लोक के उद्धार करने पर मन्त्र होता है—३० हीं क्रीं मे स्वाहा । इसे विद्यारज्ञी कहते हैं ।

इसकी पूजा का क्रम यह है कि प्रातःकृत्यादि से प्राणायाम तक की क्रिया के बाद ऋष्यादि न्यास करे । इस मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द विराट्, देवता ब्रह्मस्वरूपा सिद्धिकाली त्रिभुवनेश्वरी, बीज क्रीं एवं शक्ति हीं हैं । मन्त्रवर्ण न्यास, करन्यास एवं अङ्गन्यास दक्षिणाकालिका के समान ही हैं । इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

खड्गोद्धिनेन्दुबिम्बस्वदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा सर्वे पाणौ कपालाद्वलदमृजमयो मुक्तकेशी पिबन्ती ।

दिवस्ता बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीपजिह्वा पायानीलोत्पलाभा रविशशिविलसकृण्डलालीढपादा ।।

इस प्रकार ध्यान के बाद इसकी पूजा आदि दक्षिण कालिका के समान करे । इक्कीस हजार जप से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है । जैसा कि कालीतन्त्र में कहा भी है—इक्कीस हजार जप करे एवं उसका दशांश हवन कोमल पृष्ठ से करे ।

विश्वसार तन्त्र में इसके तीन मन्त्र बताये गये हैं—१. क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा, २. क्रीं क्रीं क्रीं हुं स्त्रीं स्वाहा, ३. ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा ।

**पूजाप्रयोग—**प्रातःकृत्यादि से प्राणायाम तक की क्रिया के बाद ऋष्यादि न्यास करे। इस एकादशाक्षर मन्त्र के दक्षिणामूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द एवं कालिका हैं; इनका न्यास क्रमशः शिर, मुख एवं हृदय में करने के बाद निम्नवत् ध्यान करे—

खड्गोद्धित्रेन्दुबिम्बस्वदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा सव्ये पाणौ कपालाद्वलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती।

दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीपतिज्ञापा पायानीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा॥

ध्यान के बाद अन्य सभी कर्म दक्षिणा कालिका के समान करे। पूर्वोक्त सभी मन्त्रों की समस्त विधियाँ दक्षिण कालिका के समान ही हैं। इसका पुरश्वरण दो लाख जप से होता है। अन्य मन्त्रों में वर्णलक्ष जप होता है; जैसा कि कहा भी है—पुरश्वरण में दो लाख जप करे। अन्य मन्त्रों का जप वर्णलक्ष होता है—यह ब्रह्मा ने कहा है।

**भेदास्तु—**(१) निजबीजं कूर्चबीजं माया दक्षिणेकालिके वहिवल्लभा। (२) निजबीजं कूर्च लज्जा दक्षिणेकालिके फट्। (३) मूलबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं दक्षिणेकालिके पूर्वषष्ठीजानि वहिवल्लभा। (४) निजबीजं वहिवल्लभा। (५) निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं वहिवल्लभा। (६) मूलबीजं कूर्च लज्जा वहिसुन्दरी। (७) मूलबीजं दक्षिणेकालिके वहिवल्लभा। (८) निजबीजं कूर्च माया पुनस्तान्येव वहिवल्लभा। (९) मूलद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं पुनस्तान्येव वहिवल्लभा। (१०) मूलत्रयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं पुनस्तान्येव वहिवल्लभा। (११) हृदयं वाग्भवं मूलद्वयं कालिकायै ठद्वयं। (१२) हृदयं पाशद्वयं अङ्गुशद्वयमन्नं वहिजाया कालि कालिके दीर्घतनुच्छदं भुवनेशी कूर्चमस्त्रम् (१३) लज्जाबीजं क्रोधमस्त्रम् एतासां पूजादिकं सर्वं दक्षिणावत्। एषां पूजा—प्रातःकृत्यादिप्राणायामानं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। एषां दक्षिणामूर्तिर्त्रष्टिः पङ्क्षिश्छन्दः दक्षिणाकाली देवता, अन्यत् सर्वं दक्षिणावद्वेदव्यम्। अस्यास्तु पुरश्वरणं लक्षजपः।

**मन्त्र के भेद—**१. क्री हूं हीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।

२. क्री हूं स्त्री दक्षिणे कालिके फट्।

३. क्री क्रीं हूं हुं हीं हीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हुं हीं हीं स्वाहा।

४. क्रीं स्वाहा।

५. क्रीं क्रीं हूं हुं ऐं ऐं स्वाहा।

६. क्रीं हूं ऐं स्वाहा।

७. क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।

८. क्रीं हूं हीं स्वाहा।

९. क्रीं क्रीं हूं हुं हीं हीं स्वाहा।

१०. क्रीं क्रीं हूं हुं ऐं ऐं स्वाहा।

११. नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।

१२. नमः आं आं क्रों क्रों स्वाहा क्रीं क्रीं हूं हीं हुं फट्।

१३. ऐं हैं फट्।

इन सबों की पूजनादि समस्त प्रक्रियायें दक्षिण कालिका के समान होती हैं। प्रातःकृत्यादि से लेकर प्राणायाम तक की क्रिया के बाद ऋष्यादि न्यास करे। इन मन्त्रों के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति एवं देवता दक्षिणा काली हैं। अन्य समस्त विधियाँ दक्षिण कालिका के समान ही होती हैं। इनका पुरश्वरण एक लाख जप से होता है।

**एतासां पूजायन्त्रं कालीतत्रे—**

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्विन्यसेत्। ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम्॥१॥

ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः। वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्वपुरमेकम्॥२॥ इति।

**कुमारीकल्पे—**'मध्ये तु बैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम्' इति। यन्त्रनिर्माणपात्रं मुण्डमालातन्त्रे—

ताप्रपात्रे कपाले वा श्मशानकाष्ठनिर्मिते । शनिभौमदिने वायि शरीरे मृतसंभवे॥  
स्वर्णरूप्येऽथवा लोहे चक्रं कार्यं विधानतः । इति।

इनका पूजा यन्त्र कालीतन्त्र के अनुसार इस प्रकार का होता है—पहले त्रिकोण बनावे। उसके बाहर पुनः त्रिकोण बनाये। उसके बाहर भी त्रिकोण बनाये। इस प्रकार तीन त्रिकोण बनाने के बाद उनके बाहर वृत्त बनाकर अष्टदल कमल बनावे। उसके बाहर वृत्त बनावे। सबके बाहर एक भूपुर बनावे। कुमारीकल्प के अनुसार इसके मध्य में वैन्दव चक्र को हीं से विभूषित करके बनावे।

**यन्त्रनिर्माण पात्र—मुण्डमाला तन्त्र में कहा गया है कि इस यन्त्र को ताप्रपत्र पर या कपाल पर या श्मशानकाष्ठ से निर्मित पटरे पर अथवा शनिवार या भौमवार को मृत मनुष्य के शरीर पर बनावे। सोना-चाँदी अथवा लोहे के पत्र पर यन्त्र बनावे।**

एतासां प्रमाणं विश्वसारतन्त्रे—

अथ पञ्चाक्षरी विद्यां शृणुष्व कमलानने । प्रजापतिं समुद्धत्य वह्न्यारुदं प्रजापतिम् ॥१॥

चतुर्थस्वरसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम् । द्विगुणं च ततः कृत्वा डेन्तं च कालिकापदम् ॥२॥

स्वाहान्ता कथिता विद्या प्रिय एकादशाक्षरी । ऋषिः स्याद्वक्षिणामूर्तिः पञ्जिश्छन्द उदाहृतम् ॥३॥

परात्परतरा शक्तिः कालिका देवता स्मृता । एकादशाक्षरी विद्या कालिकायाः सुदुर्लभा ॥४॥

लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरक्षरणकर्मणि । अन्यासां वर्णलक्षं स्यात्कथितं पद्मयोगिना ॥५॥ इति।

अन्यासां पञ्चाक्षरीप्रभृतीनाम् । अस्या ध्यानम्—‘चतुर्भुजा कृष्णवर्णा’ इत्यादि।

इन मन्त्रों का प्रमाण विश्वसार तन्त्र के अनुसार इस प्रकार है—एकादशाक्षर मन्त्र है—कं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पर्किं एव देवता परात्परा शक्ति कालिका हैं। कालिका की यह एकादशाक्षरी विद्या अत्यन्त दुर्लभ है। पुरक्षरण में इसका दो लाख जप होता है। अन्य पञ्चाक्षरी आदि मन्त्रों के लिये ब्रह्मा ने वर्णलक्ष जप कहा है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिता । खड्गं च दक्षिणे पाणौ बिभ्रतीन्दीवरद्वयम् ॥

कर्तीं च चर्पिं चैव क्रमाद्वाप्ते सुबिग्रही । द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रती शिरसा द्वीयोम् ॥

मुण्डमालाधारा शीर्षे ग्रीवायामपि चापाम् । वक्षसा नागहारं च विभ्रती रक्तलोचनाम् ॥

कृष्णवस्त्रधरा कट्ठां व्याप्राजिनसमन्विता । वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ॥

विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवद्वयम् । साङ्घासा महाधोरावयुक्ता सुभीषणा ॥

मूलबीजं ततो मायां लज्जाबीजं ततः परम् । दक्षिणे कालिके चैति अखान्ता समुदीरिता ॥६॥

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां विंशतिवर्णकाम् । यस्याः प्रसादमात्रेण भवेद्भूमिपुरन्दरः ॥७॥

मूलबीजद्वयं दद्यात् ततः कूर्चद्वयं वदेत् । लज्जायुग्मं समुद्धत्य संबुद्ध्यन्तं पदद्वयम् ॥८॥

पूर्ववत्स्त्रं दथा बीजान्यन्ते च वह्निसुन्दरी । ऋषिः स्याद्वक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम् ॥९॥

देवता कथिता सद्भिः काली दक्षिणपूर्विका । अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥१०॥

निजबीजं समुद्धत्य तदत्ते वह्निसुन्दरीम् । भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो नानातन्त्रसमन्वितः ॥११॥

अष्टाक्षरी तु या प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता । निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं ततः ॥१२॥

स्वाहान्ता कथिता विद्या (सर्वकामफलप्रदा) । निजं कूर्चं तथा लज्जा तदन्ते वह्निसुन्दरी ॥१३॥

पञ्चाक्षरी महाविद्या पञ्चवक्त्र ऋषिः स्मृतः । नवाक्षरीं महाविद्यां शृणुष्व कमलानने ॥१४॥

निजबीजत्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुग्मं ततः । स्वाहान्ता कथिता विद्या) सर्वसंपत्करी मता ॥१५॥

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां तां च नवाक्षरीम् । मूलबीजं समुद्धत्य संबुद्ध्यन्तं पदद्वयम् ॥१६॥

स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वशत्रुक्षयङ्करी । अथवाष्टाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलानने ॥१७॥  
 निजबीजं ततः कूर्चं ततो मायां समुद्भरेत् । पुनस्तान्येव उच्चार्य स्वाहान्ता मोक्षदायिनी ॥१८॥  
 अथापरां प्रवक्ष्यामि दशतत्त्वसमन्वितम् । मूलद्वयं कूर्चयुगं तथा लज्जाद्वयं तथा ॥१९॥  
 पुनस्तान्येव बीजानि तदन्ते वह्निसुन्दरी । चतुर्दशाक्षरीं विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥२०॥  
 ब्रह्मत्रयं समुद्भूत्य रतिवह्निसमन्वितम् । नादबिन्दुसमायुक्तं लज्जाकूर्चद्वयं ततः ॥२१॥  
 पुनः क्रमेण चोद्भूत्य वह्निजायावधिर्मनुः । षोडशीयं समाख्याता विद्या कल्पद्रुमोपमा ॥२२॥ इति।

मायातन्त्रे—

हृदयं वाग्भवं देवि निजबीजयुगं ततः । कालिकायै पदं चोकत्वा तदन्ते वह्निसुन्दरी ॥१॥

तन्त्रान्तरे—

नमः पाशाङ्कुशौ द्वेधा फट्स्वाहाकालिकालिके । दीर्घतनुच्छदं कालीमनुः पञ्चदशाक्षरः ॥१॥

अस्य पुरश्चरणं लक्ष्यजपः । तथाच—

लक्षसंख्यं जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये । एतासां पूजनं चैव दक्षिणावत् सुरेश्वरि ॥२॥

मत्स्यसूक्ते—‘लज्जाबीजं ततः क्रोधं फडन्ता त्र्यक्षरीं भवेत्’ इति कालीमन्त्राः।

दशाक्षरी विद्या—क्री हीं ऐ दक्षिणे कालिके फट्।

विशाक्षरी विद्या—साधक को पृथ्वी पर इन्द्रसदृश प्रतिष्ठित करने वाला बीस अक्षरों का अन्य मन्त्र है—क्री क्री हूं हूं हीं ही दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति एवं देवता दक्षिण कालिका हैं।

त्र्यक्षरी विद्या—क्रीं स्वाहा। इसके ऋषि भैरव हैं।

अष्टाक्षरी विद्या—क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा। यह मन्त्र सर्वकाम-फलप्रद है।

षड्क्षरी विद्या—क्री हूं हीं स्वाहा। इसके ऋषि पञ्चवक्त्र हैं।

नवाक्षरी विद्या—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा। यह समस्त सम्पत्तियों को देने वाली है।

अन्य नवाक्षरी विद्या—क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा। यह समस्त शत्रुओं का विनाश करने वाली है।

अन्य अष्टाक्षरी विद्या—क्रीं हूं हीं क्रीं हूं हीं स्वाहा। यह मोक्षदायिनी है।

चतुर्दशाक्षरी विद्या—क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा। दश तत्त्वसमन्वित यह विद्या धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को देने वाली है।

षोडशाक्षरी विद्या—क्रीं क्रीं हीं हीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं हीं हीं हूं हूं स्वाहा। यह षोडशी विद्या कल्पवृक्ष के समान फलदायिनी है।

एकादशाक्षरी विद्या—माया तन्त्र के अनुसार एकादशाक्षरी विद्या है—ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।

अन्य पञ्चदशाक्षरी विद्या—तन्त्रान्तरों में पञ्चदशाक्षरी विद्या इस प्रकार कही गई है—नमः नमः आं आं क्रों क्रों फट् स्वाहा कालिके हूं। इसके ऋष्यादि चतुर्दशाक्षर मन्त्र के समान ही हैं। एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। पूजन विधि दक्षिणकालिका के समान है।

मत्स्यसूक्त के अनुसार त्र्यक्षरी विद्या इस प्रकार है—हीं हूं फट्।

गुह्यकालीमन्त्रभेदाः

अथ गुह्यकाली विश्वसारे—

अथ वक्ष्ये महेशानि विद्यां सर्वफलप्रदाम् । चतुर्वर्गप्रदाम्

साक्षात्महापातकनाशिनीम् ॥१॥

सर्वसिद्धिप्रदां विद्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायनीम् । गुह्यकालीमहाविद्यां त्रैलोक्ये चातिदुर्लभाम् ॥२॥  
 इन्द्रदिरुदं वर्गाद्यं रतिबिन्दुसमन्वितम् । त्रिगुणं च तथा कृत्वा ईशानं च समुद्धरेत् ॥३॥  
 षष्ठस्वरसमायुक्तं बिन्दुनादकलान्वितम् । द्विगुणं च ततः कृत्वा ईशानद्वयमुद्धरेत् ॥४॥  
 वामाक्षिवह्निसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम् । तदुहो कालिके प्रोक्त्वा अथवा दक्षिणे वदेत् ॥५॥  
 सप्तबीजं पुनः पूर्वक्रमेण योजयेत्ततः । वह्निजायाविधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी ॥६॥  
 अथवेति गुह्येकालिके दक्षिणेकालिके वा मन्त्रः ।

कामबीजं तथा कूर्चं तदन्ते भुवनेश्वरी । गुह्ये च कालिके वापि तथा बीजद्वयं भवेत् ॥७॥  
 स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता । एषा तु षोडशी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥८॥

अस्यार्थः—आदौ निजबीजं कूर्चं मायां ततः संबोधनपदद्वयं ततो निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं वह्निवल्लभा ।  
 ‘कामबीजद्वयं हत्वा भवेद्विद्या चतुर्दर्शी’ । अस्य मन्त्रस्येति शेषः ।

सप्तबीजं पुरा प्रोक्तं गुह्ये च कालिके पुनः । स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥९॥

एषापि चतुर्दशाक्षरी । तथा—

दक्षिणे पदमाभाष्य भवेत् पञ्चदशाक्षरी । कामबीजं समुद्धत्य सम्बुद्ध्यन्तं पदद्वयम् ॥१०॥  
 पुनः कामं तदन्ते च दयाद्वहेश्व सुन्दरीम् । एषा नवाक्षरी विद्या गुह्यकाल्याः समीरिता ॥११॥  
 दक्षिणे पदमाभाष्य भवेद्विद्या दक्षाक्षरी । कामबीजं परित्यज्य अथवा षोडशाक्षरी ॥१२॥

तेन षोडशाक्षरविद्यायाः कामबीजाभावे पञ्चदशी भवती । एतासां पूजनं तु—  
 पूर्ववत्त्वासवर्गेस्तु पूर्ववत् पूर्येच्छिवाम् । पूर्ववच्च जपेद्विद्यां सर्वं पूर्ववदेव हि ॥१३॥  
 बलिदानं तथा मन्त्रं पूर्ववत् परिकल्पयेत् ।

बलिमन्त्रस्तु—ॐहींहोहेहि परमेशानि जगम्नातर्जगतां जननि गृह्ण २ मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं  
 कुरु कुरु ॐहींहोहेहि फट् ॐकालिकायै नमः फट् स्वाहा । यद्वा गुह्यकाल्या अयं बलिमन्त्रः, हूनमो एहि २  
 गुह्यकालिके गृह्ण ३ मम शत्रून् नाशय २ खादय २ तुरु २ छिन्दि २ सिद्धिं देहि २ हुं २ स्वाहा । तथायमासनमन्त्रः—  
 ॐहूं सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः, गुह्यकाल्यै हूं नमः ।

गुह्य काली मन्त्र—विश्वसार तन्त्र के अनुसार गुह्यकाली विद्या समस्त फलों को देने वाली, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्रदायिनी, महान् पापों का नाश करने वाली, समस्त सिद्धियों को देने वाली एवं भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करने वाली है । यह महाविद्या तीनों लोकों में अति दुर्लभ है ।

इक्कीस अक्षरों की यह विद्या इस प्रकार है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा । यह त्रैलोक्य का मोहन करने वाली है । इसके अतिरिक्त षोडशाक्षरी गुह्यकाली विद्या इस प्रकार है—क्रीं हूं हीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा । यह धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप फल को देने वाली है । एक अन्य चतुर्दशाक्षरी विद्या है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं गुह्यकाली का पञ्चदशाक्षरी मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं दक्षिणे कालिके स्वाहा । उपर्युक्त में गुह्ये के बदले दक्षिणे लगाने से यह मन्त्र बना है । नवाक्षरी विद्या है—क्रीं गुह्ये कालिके क्रीं स्वाहा । इस मन्त्र में गुह्ये के स्थान पर ‘दक्षिणे’ लगाने से यही दशाक्षर हो जाता है । इसी प्रकार षोडशाक्षरी विद्या में से ‘क्रीं’ हटा देने पर पञ्चदशाक्षरी विद्या सम्पन्न होती है ।

पूजन—श्यामा मन्त्र के समान ही न्यास करके तत्सदृश ही देवी का पूजन करे । पूर्ववत् विद्या का जप करे । इसकी समस्त विधियाँ श्यामा मन्त्र के समान ही हैं । बलिदान तथा यन्त्र की कल्पना भी पूर्ववत् ही की जाती है । बलिमन्त्र इस प्रकार है ।

**कालि का बलि मन्त्र—**ॐ हीं एहोहि परमेशानि जगन्मातर्जगतां जननि गृह गृह मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं  
कुरु कुरु ॐ हूं हीं फट् कालिकाये नमः फट् स्वाहा।

**गुह्यकाली का बलि मन्त्र—**हूं नमे एहि एहि गुह्यकालिके गृह गृह मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय तुरु  
तुरु छिन्दि छिन्दि सिद्धिं देहि देहि हुं हुं स्वाहा।

आसन मन्त्र इस प्रकार है—ॐ हूं सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः, गुह्यकालये हूं नमः।

#### भद्रकाली विद्या

**भद्रकाल्यादयो विद्या:** कथ्यन्ते सुरसुन्दरि । कामबीजादिकं बीजं सप्त पूर्वापरे यजेत् ॥१४॥

**भद्रकालीं तथा डेन्तां बीजमध्ये नियोजयेत् । स्वाहान्ता कथिता विद्या विंशद्वर्णात्मिका परा ॥१५॥**

**चतुर्वर्गप्रदा विद्या भद्रकाली शुभावहा ।**

**भद्रकाली विद्या—**भद्रकाली की विंशाक्षरी विद्या इस प्रकार है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं भद्रकाल्यै क्रीं क्रीं क्रीं  
हूं हूं हीं हीं स्वाहा। यह कल्याणदायिनी भद्रकाली विद्या धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग को प्रदान करने वाली है।

#### शमशानकालीविद्या

**सप्तबीजं समुद्भूत्य शमशानकालिके तथा ॥१६॥**

**पुनर्बीजं क्रमेणैव स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा । विंशत्येकाक्षरी विद्या शमशानकालिका मता ॥१७॥**

**शमशान काली—**शमशान काली की एकविंशाक्षरी विद्या है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं शमशानकालिके क्रीं क्रीं क्रीं  
हूं हूं हीं हीं स्वाहा। यह विद्या समस्त सिद्धियों को देने वाली है।

#### महाकालीविद्या

**बीजानि चोच्चरेत्यूर्वं महाकालिपदं ततः । तदन्ते सप्तबीजानि स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा ॥१८॥**

**विंशत्यर्णा महाविद्या महाकाल्याः प्रकीर्तिता ।**

**एतासां जपपूजनं दक्षिणावत् । विशेषस्तु—भूपुरे इन्द्रादिवत्रादीन् पूजयेत् । गृहस्य पूर्वादिद्वारेषु विष्णुं शिवं  
सूर्यं गणेशं पूजयेत् । तत्रैव—**

**भूपुरे लोकपालांश्च तदस्त्राणि ततो बहिः । भूपुरेषु चतुष्कोणे पूजयेत्क्रमतः सुधीः ॥१९॥**

**विष्णुं शिवं तथा सूर्यं गणेशं पूजयेत् ततः ।**

**महाकाली विद्या—**महाकाली की विंशाक्षरी विद्या है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं महाकालि क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं  
स्वाहा। महाकाली की यह विंशाक्षरी महाविद्या सर्वसिद्धिदा कही जाती है। इन सभी का जप-पूजन दक्षिण कालिका के समान  
होता है। विशेष यह है कि भूपुर में इन्द्रादि के वत्रादि आयुधों की पूजा होती है एवं घर के पूर्वादि द्वारों में विष्णु, शिव, सूर्य,  
गणेश की पूजा करनी चाहिये। जैसा कि कहा भी है—भूपुर में लोकपालों की तथा बाहर उनके आयुधों की पूजा करे। भूपुर  
के चारों कोणों में विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश की पूजा करे।

#### पूजायन्त्रम्

**अथास्याः पूजायन्त्रम्—**

**त्रिकोणं चैव षट्कोणं नवकोणं मनोहरम् । त्रिवृतं चाष्टपत्रं च सुकिञ्जलकसमन्वितम् ॥२०॥**

**भूपुरत्रितारूढं योनिमण्डलमण्डितम् । त्रिपञ्चारमिदं चक्रं सर्वतत्रेषु कीर्तितम् ॥२१॥**

**त्रिकोणं त्रिकोणाकारमित्यर्थः । ध्यानं तु—**

**महामेघप्रभां देवीं कृष्णवस्त्रपिधायनीम् । ललज्जिह्वां घोरदंष्ट्रां घोररावां हसम्मुखीम् ॥२१॥**

नागहारलतोपेतां चन्द्रार्धकृतशेषराम्। द्यां लिखन्तीं जटामेकां (लेलिहानासवं स्वयम् ॥२२॥  
 नागयज्ञोपवीताङ्गीं ) नागशश्यानिषेदुषीम्। पञ्चाशन्युण्डसंयुक्तनरपालां महोदरीम् ॥२३॥  
 सहस्रफणसंयुक्तमनन्तं शिरसोपरि । चतुर्दिशु नागफणावेष्टितां गुह्यकालिकाम् ॥२४॥  
 तक्षकसर्पराजेन वामकङ्कणभूषिताम्। अनन्तनागराजेन कृतदक्षिणकङ्कणाम् ॥२५॥  
 नागेन्द्ररशनाहारकल्पितां रत्ननूपुराम्। द्विभुजां चिन्तयेदेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२६॥  
 नरदेहसमारब्धकुण्डलश्रुतिमण्डिताम् । प्रसन्नवदनां सौम्यां नवरत्नविभूषिताम् ॥२७॥  
 नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां शिवगे(मो)हिनीम्। अद्वहासां महाभीमां साधकाभीष्टदायिनीम् ॥२८॥

जटामेकां धारयन्तीमिति शेषः। अनन्तं शिरसोपरि दथर्तीमिति शेषः। गुह्येत्युपलक्षणम्। पूजादिकं तु दक्षिणावत् कार्यम्, इति कालीमन्त्राः।

**पूजन यन्त्र**—पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर षट्कोण, नवकोण, तीन वृत्त, अष्टदल कमल और तीन भूपुर बनाकर उसके ऊपर योनिमण्डल बनावे। यह त्रिपंचार नामक चक्र सभी तन्त्रों में बताया गया है। पूजन के पश्चात् भद्रकाली आदि का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

महामेघप्रभां देवीं कृष्णवस्थपिथायिनीम्। ललज्जिहां घोरदंष्ट्रां घोररावां हसन्मुखीम्॥  
 नागहारलतोपेतां चन्द्रार्धकृतशेषराम्। द्यां लिखन्तीं जटामेकां (लेलिहानासवं स्वयम्॥  
 नागयज्ञोपवीताङ्गीं) नागशश्यानिषेदुषीम्। पञ्चाशन्युण्डसंयुक्तनरपालां महोदरीम्॥  
 सहस्रफणसंयुक्तमनन्तं शिरसोपरि । चतुर्दिशु नागफणावेष्टितां गुह्यकालिकाम्॥  
 तक्षकसर्पराजेन वामकङ्कणभूषिताम्। अनन्तनागराजेन कृतदक्षिणकङ्कणाम्॥  
 नागेन्द्ररशनाहारकल्पितां रत्ननूपुराम्। द्विभुजां चिन्तयेदेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्॥  
 नरदेहसमारब्धकुण्डलश्रुतिमण्डिताम् । प्रसन्नवदनां सौम्यां नवरत्नविभूषिताम्॥  
 नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां शिवगे(मो)हिनीम्। अद्वहासां महाभीमां साधकाभीष्टदायिनीम्॥

शेष समस्त पूजा-विधान दक्षिणाकालिका के समान ही होता है।

#### ताराप्रकरणम्

अथ ताराप्रकरणम्—

अथ भेदान् प्रवक्ष्यामि तारिण्याः सर्वसिद्धिदान्। येषां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तस्तु साधकः ॥१॥

कवितां लभते शुद्धामर्गलविजृम्भिणीम्। पाणिडत्यं सर्वशास्त्रेषु धनधान्यपतिर्भवेत् ॥२॥

राजद्वारे सभायां च विवादे व्यवहारके । सर्वत्र जयमानोति बृहस्पतिरिवापरः ॥३॥ इति।

**तारा**—समस्त सिद्धियों को देने वाली तारा के मन्त्रभेदों को जानने-मात्र से ही साधक जीवन्मुक्त हो जाता है; उसे शुद्ध कविता करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और उस कविता में अर्नगल कुछ नहीं रहता। उसे सभी शास्त्रों में पाणिडत्य प्राप्त होता है, धन-धान्य का स्वामित्व प्राप्त होता है, राजद्वार, सभा में, विवाद-व्यवहार में सर्वत्र विजय जीत होती है एवं वह दूसरे बृहस्पति के समान हो जाता है।

#### ताराविद्याभेदाः

तथाच मत्यसूक्ते—

मायाबीजं समुद्धृत्य तारकं वह्निसंयुतम्। मायाबिन्दुस्वरयुतं द्वितीयं बीजमुद्धृतम् ॥१॥

कूर्चबीजं त्रुतीयं च फट्कारं तदनन्तरम्। संपूर्णं सिद्धमन्त्रं तु रश्मपञ्चकसंयुतम् ॥२॥

रश्मपञ्चकं वर्णपञ्चकमित्यर्थः (एकजटापक्षे रश्मपञ्चकं वर्णपञ्चकं, नीलसरस्वतीपक्षे प्रणवमित्यर्थः)।

लीलया वाक्प्रदा चेति तेन नीलसरस्वती । तारकत्वात्सदा तारा सुखमोक्षप्रदायिनी ॥३॥  
उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता । इति।

**ताराणवि—**  
वसिष्ठाराधिता विद्या न तु शीघ्रफला यतः । अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ॥१॥  
ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्यचित् ।

तारामन्त्र—मत्स्यसूक्त के अनुसार ‘ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्’ तारा की यह पञ्चाक्षरी विद्या पूर्णरूपेण सिद्ध विद्या है। लीलापूर्वक वाक्प्रदा होने के कारण इसे ही नीलसरस्वती कहते हैं। तारकत्व की शक्ति होने से तारा सुख-मोक्षदायिनी है। यह कठिन विपत्तियों से बचाती है; इसीलिये इसे उग्रतारा कहते हैं।

ताराणव में कहा गया है कि वसिष्ठ द्वारा आराधित यह विद्या शीघ्र फल प्रदान करने वाली न होने के कारण मुनि के दारुण शाप से शापित है; फलस्वरूप यह विद्या कभी भी फलदात्री नहीं होती।

### शापोद्धारविद्या वधूबीजोद्धारश्च

**शापोद्धारमाह—**  
चन्द्रबीजं त्रपान्तत्रं बीजोपरि नियोजितम् । ततः प्रभृति विद्येयं वधूरिव यशस्विनी ॥१॥  
फलिनी सर्वविद्यानां जयिनी जयकाङ्क्षिणाम् । विषक्षयकरी विद्या अमृतत्वप्रदायिनी ॥२॥  
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते ।

**एकवीराकल्पेऽपि—**  
लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्चबीजं तथाच फट् । एषा पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी ॥१॥

**तथा च तत्रैव—**  
षोडशव्युज्ञनं वह्विमाक्षिबिन्दुसंयुतम् । चन्द्रबीजसमारूढं वधूबीजमिदं स्मृतम् ॥१॥

वधूबीजं स्त्रींकारम् । तथा च विश्वसारे—‘स्वबीजं च महेशानि वधूबीजं प्रकीर्तितम्’ इति। नीलतन्त्रे—  
तारायाः पञ्चवर्णेण श्रीमन्त्रीलसरस्वती । सर्वभाषामयी शुद्धा सर्वमायैर्नमस्कृता ॥१॥ इति।

**ताराणवेऽपि—**  
अनुत्तरं समुद्धृत्य मायोत्तरमतः परम् । पपञ्चमसमायुक्तं पञ्चरश्मि प्रकीर्तितम् ॥१॥  
जीवनी मध्यमा पश्चादेकाक्षी तदनन्तरम् । उग्रदर्पं ततो दद्यादस्त्रं देवि प्रकाशितम् ॥२॥

**एकाक्षी स्त्रीं,** एतेन सर्वत्र शापोद्धारः । पञ्चाक्षरीमधिकृत्य तत्रे—  
श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी । एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदा ॥१॥  
वाग्भावाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी । वितारैकजटा वैषा महामुक्तिकरी मता ॥२॥  
तारास्वरहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती । कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतत्रेषु गोपिता ॥३॥  
एषा क्रमगता प्राप्ता मतभेदादनेकथा ।

एषा पञ्चाक्षरी। तदेवाह—‘पञ्चाक्षरी एकजटा ताराभावे महेश्वरि। ताराद्या तु भवेदेवि श्रीमन्त्रीलसरस्वती।  
उग्रतारा त्र्यक्षरी च महानीलसरस्वती’ कुल्लुका च। अन्यासां विद्यानामेकटजैव देवता प्रकृतित्वात्।

शापोद्धार—सभी बीजों पर ऐं हीं नियोजित करने से यह विद्या वधू के समान यशस्विनी होती है। सभी विद्याओं का फल देने वाली, जय चाहने वालों को जय देने वाली, विष का नाश करने वाली, अमृतत्व प्रदान करने वाली यह विद्या है। इस मन्त्र के ज्ञानमात्र से ही साधक संसार में विजयी होता है। एकवीराकल्प के अनुसार पञ्चाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—  
ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्। ‘स्त्रीं’ वधूबीज है। नीलतन्त्र में कहा गया है कि तारा की यह पञ्चाक्षरी विद्या नीलसरस्वती है। यह

सर्वभाषामयी है, पूर्णतः शुद्ध है और सभी आन्नायों द्वारा नमस्कृत है। ताराणव में कहा गया है कि 'ॐ ह्रीं स्त्री हूं फट्' यह पञ्चाक्षरी मन्त्र है। पञ्चाक्षरी के सम्बन्ध में तत्र में कहा गया है कि—

१. श्री ह्रीं श्री हूं फट्—यह पञ्चाक्षरी विद्या सर्वतोमुखी है।
  २. ह्रीं ह्रीं श्री हूं फट्—यह पञ्चाक्षरी विद्या सकलेष्टदा है।
  ३. ऐं ह्रीं श्री हूं फट्—यह पञ्चाक्षरी विद्या वागीशत्व-प्रदायिनी है।
  ४. बिना प्रणव के एकजटा विद्या महान् मुक्ति देने वाली है।
५. अस्त्रहित तारा त्रिवर्णा नीलसरस्वती है; यही सभी तत्रों में गुप्त रूप से स्थित कुल्लुका है। ये सब क्रम में प्राप्त होते हैं और इनके अनेक भेद होते हैं।

### एतासां विद्यानां साधनस्थानम्

एतासां साधनस्थानं नीलतत्त्वे—

एकलिङ्गे शमशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे। (शवस्योपरि मुण्डे वा जले वाकण्ठपूरिते ॥१॥  
संग्रामभूमौ योनौ वा स्थले वा विजने वने) तत्रस्थः साधयेद्योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥२॥ इति।

तत्रैव—

पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरभीक्षते। तदेकलिङ्गमात्यातं तत्र सिद्धिरुत्तमा ॥१॥ इति।

अन्यत्रापि—

उज्जटे पर्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे। देवागारे च शून्ये च निर्जनैकान्तवेशमनि ॥१॥ इति।

वीरतत्त्वेऽपि—

शून्यागारे शमशाने यदि जपति जडस्त्वेकलिङ्गे तडागे  
गङ्गागर्भे गिरौ वा शुचिविमलमतिः सर्वदा भक्तियुक्तः।  
विद्यां श्रीनीलवाण्या भुवनजनपतिः सर्वशास्त्राधिकेता  
देहान्ते योगिमुख्यः परमसुखपदं ब्रह्म निर्वाणमेति ॥१॥ इति।

ताराचमनं भैरवतत्त्वे—

ताराभेदैस्त्रिभिः पीत्वा मायया क्षालयेत्करम्। स्त्रीं हूं औष्ठौ द्विरुमृज्य फट्कारैः क्षालयेत्करम् ॥१॥  
आस्यनासेक्षणश्रोत्रनाभिवक्षःशिरोभुजान् । वैरोचनादिभिः स्पृष्टवा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥

आचम्य भैरवो भूत्वा वत्सरातां प्रपश्यते ।

ताराभेदैरिति—उत्तरातारा एकजटा नीलसरस्वती च। वैरोचनादयस्तु—वैरोचनशंखपाण्डुरपद्मानाभ(असि-  
ताङ्ग)मामकनामकतारकपाण्डुरपद्मान्तकथमान्तकविद्यान्तकनरकान्तकाः सच्चुर्थीप्रिणवादिनमोन्तकाः इति।

साधन स्थान—नीलतत्त्व में कहा गया है कि तारामन्त्र की साधना एकलिङ्ग के समीप, शमशान में, शून्य गृह में, चौराहे पर, शव के ऊपर, शव के मुण्ड पर या कण्ठ तक जल में की जाती है। युद्धभूमि में, योनि में या सूने जंगल में बैठकर योगी को त्रिभुवनेश्वरी विद्या की साधना करनी चाहिये।

नीलतत्त्व में ही यह भी कहा गया है कि पाँच कोश के अन्दर दूसरा लिङ्ग न दिखाइ देने पर द्रष्टव्य एकमात्र लिङ्ग ही एकलिंग होता है। उसके समीप साधना करने से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। अन्यत्र भी कहा गया है कि है—उज्जट स्थान में, पर्वत पर, निर्जन स्थान में, चौराहे पर, मन्दिर में या शून्य स्थान में अथवा निर्जन एकान्त घर में साधना करनी चाहिये। वीरतत्त्व में भी कहा गया है कि शून्यागार, शमशान, एकलिङ्ग, तालाब, गंगा के बीच में, पहाड़ पर पवित्रतापूर्वक एकाग्र मन से सदा भक्तियुक्त होकर नीलसरस्वती का जो जप करता है, उसे लोकों एवं लोगों का स्वामित्व एवं समस्त शास्त्रों का अर्थ-ज्ञातृत्व प्राप्त होता है एवं देहान्त होने पर निर्वाण का सुख प्राप्त होता है।

तारा का आचमन—भैरव तन्त्र में कहा गया है कि तारा के तीन भेदों से जलपान करे। हीं से हाथ धोये। स्त्री हूं से दोनों ओढ़ों का मार्जन करे। फट् से हाथ धोये। मुख, नाक, आँख, कान, नाभि, वक्ष, शिर, हाथ, गला के स्पर्श करने से साधक सभी पापों से मुक्त हो जाता है और आचमन करके वह साक्षात् भैरवस्वरूप हो जाता है एवं एक वर्ष में तारा का दर्शन प्राप्त करता है। तारा के भेद उग्रतारा, एकजटा एवं नीलसरस्वती हैं।

### तत्पूजाप्रयोगः

अथ पूजा—प्रातःकृत्यादिस्नानान्तं कर्म विद्याय यागस्थानं गत्वा 'ॐ वत्रोदके हुंफट् स्वाहा' इति मन्त्रेण जलमधिष्ठाय एतज्जलं पूजार्थं विद्याय तत्र किञ्चिदन्यजले निक्षिप्य तेनैव वारिणा 'ॐ ह्रीं विशुद्धं सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुंफट् स्वाहा' इति हस्तपादौ प्रक्षालन्यं कुलकुशान् सुवर्णरजतरूपान् यथासंख्येन हस्ते दत्त्वा 'ॐ ह्रींस्वाहा' इत्याचम्य पीठं विचिन्तयेत्। कुलकुशास्तु—

सुवर्णं रजतं चैव जपपूजादिकर्मसु। कुशकार्यकरं प्रोक्तं न तु वन्याः कुशाः कुशाः ॥३॥ इति।

ततः—

जलशङ्खं करे कृत्वा तिष्ठेद् द्वारि महेश्वरि। क्षालयेद्वस्तपादौ च वक्ष्यमाणेन वर्तमना ॥१॥ इति।

मत्स्यसूक्ते—‘तारं वत्रोदके हुंफट् स्वाहा जलमधिष्ठितम्’ तथाच—

(तारं) लज्जा विशुद्धान्ते सर्वपापानि चैव हि। शमयान्ते त्वशेषान्ते विकल्पपदमुच्चरेत् ॥१॥

अपनयान्ते वर्म फट् स्वाहा पादविशुद्धये। ॐ माया वहिजाया च तथा चाचमने मनुः ॥२॥ इति।

तथा—

इमशानं तत्र सञ्चिन्त्य तत्र कल्पदूरं स्मरेत्। तन्मूले मणिपीठं च नानामणिविभूषितम् ॥१॥

नानालङ्कारभूषाढङ्यं मुनिदेवैश्च शोभितम्। शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरवितम् ॥२॥

चतुर्दिक्षु शिवामुण्डचिताङ्गारस्थिभूषितम्। तमध्ये भावयेदेवीं यथोक्तथ्यानयोगतः ॥३॥

इति ध्यात्वा 'ॐ मणिधरि वत्रिणि महाप्रतिसरे हुंफट् स्वाहा' इति शिखाबन्धनं कुर्यात। सामान्यार्थं विद्याय, फट् इति त्रिवारं संग्रोक्ष्य गां गणेशाय नमः। एवं वां वटुकाय०, क्षां क्षेत्रपालाय०, यां योगिनीभ्यो नमः। इति द्वारं संपूज्य वास्तुपुरुषं पूजयेत्। शिखाबन्धनानन्तरं मत्स्यसूक्ते सामान्यार्थ्यमाह—

फडित्युक्त्वा हृदापूर्य तारेण दश मन्त्रयेत्। फटा द्वारं प्रोक्षयेच्च बीजेनाभ्यर्चयेत्सुरान् ॥१॥

गांवांक्षांयां च बीजानि तान्युक्तानि महेश्वरि। गणेशं वटुकं क्षेत्रपालं च योगिनीर्यजेत् ॥२॥

डेन्तानेतांश्च सर्वान्ते हन्मन्त्रं विलिखेतः। पूजयित्वा ततो गेहं प्रविशेद् गृहमध्यतः ॥३॥

ब्रह्माणं वास्तुदेवं च तारादिहृदयान्तकम्। इति।

ॐ रक्षरक्षहुंफट् स्वाहा इति जलसेकाद भूमिं शोधयेत्। 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुंफट् स्वाहा' इति नाराचमुद्रया अक्षतप्रक्षेपेण वामपार्णिधातत्रयेण (भौमानूर्ध्वतालत्रयेणान्तरिक्षगान् दिव्यदृष्ट्या दिव्यानिति) त्रिविधविघ्नान् दिव्यान्तरिक्षभौमानुत्सारयेत्। 'ॐ पवित्रवत्रभूमे हुंफट् स्वाहा' इति भूमिभिन्न्य तत्र कोमलकम्बलविष्टराद्यासनानि यथाप्रातान्यास्तीर्थं 'ॐ आः सुरेखे वत्रेरेखे हुंफट् स्वाहा' इति रक्तचन्दनगन्धपुष्पादिना समभ्यर्च्य स्वस्तिकदिक्रमेण तत्रोपविशेत्। तदुक्तं मत्स्यसूक्ते—

मृदुकोमलमासीनो हृन्येषु कम्बलेषु च। विष्ट्रेषु समासीनः साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ॥१॥

(संग्रामे पतितं बालं संपादितमचूडकम्। षण्मासनिःसृतं प्राप्य चितायां वा तदन्तिके ॥२॥) इति। तन्त्रचूडामणौ—

(तत्र मृद्वासनं देवीपीठमन्त्रेण पूजयेत् । तारं प्रेक्षकामपीठाय हृदयान्तोऽयमीरितः ॥१॥  
तत्र बद्धासनं वीरः स्वात्मानं शोधयेत्ततः ।) इति।

**पूजा**—प्रातःकृत्य से आरम्भ कर स्नान तक करने के बाद पूजास्थान में जाकर ‘ॐ’ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा’ मन्त्र से जल लेकर इस जल को पूजा के लिये रखे। उसमें से थोड़ा जल दूपरे जल में मिलाकर उसी जल से ‘ॐ ह्यं विशुद्ध सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा’ कहकर हाथ-पैर धोये। सोना-चाँदीरूपा कुलकुश यथासंख्य हाथों में लेकर ‘ॐ ह्यं स्वाहा’ कहकर आचमन करके पीठ का चिन्तन करे।

**कुलकुश**—सोना और चाँदी जप-पूजा आदि कर्म में कुश का काम करते हैं; न कि जंगली कुश। इसीलिये इन्हें कुलकुश कहते हैं।

तदनन्तर जलपूर्ण शंख को हाथों में लेकर द्वार पर बैठकर यथाविधि हाथ-पैर का प्रक्षालन करे। ‘ह्यं विशुद्ध सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा’ पादविशुद्धि के लिये कहे। ‘ॐ ह्यं स्वाहा’ से आचमन करे। वहाँ पर शमशान का चिन्तन करे। उसमें कल्पद्रुम का स्मरण करे। उसकी जड़ में नाना मणियों से सुशोभित मणिपीठ का चिन्तन करे एवं ऐसी कल्पना करे कि वह मणिपीठ नाना अलंकार-भूषा से अलंकृत एवं मुनि-देवताओं से शोभित है। वहाँ मांस-अस्थि ली हुई गीदिङ्गाँ प्रसन्नता से विचर रही हैं। चारों दिशायें गीदिङ्गाँ के मुण्ड, चिता के अंगार एवं हड्डी से सुशोभित हैं। उसके बीच में यथोक्त ध्यान योग से देवी के स्थित होने की भावना करे।

इस प्रकार ध्यान करके ३०० मणिधरि वत्रिणि महाप्रतिसरे हुं फट् स्वाहा’ मन्त्र से शिखा-बन्धन करे। सामान्यार्थ्य स्थापित करके ‘फट्’ से तीन बार प्रोक्षण करे। गां गणेशाय नमः, वां वटुकाय नमः, क्षां क्षेत्रपालाय नमः, यां योगिनीभ्यो नमः से द्वारो का पूजन करके वास्तुपुरुष की पूजा करे। शिखा-बन्धन के बाद मत्स्य सूक्त में सामान्यार्थ्य का विधान इस प्रकार बताया गया है—‘फट्’ मन्त्र से पात्र में जल भरे, दश ‘ॐ’ के जप से उसे मन्त्रित करे। फट् से द्वार का प्रोक्षण करे। बीज से देवताओं की पूजा करे। गां वां क्षां यां बीजों से गणेश, वटुक, क्षेत्रपाल और योगिनियों की पूजा करे। सभी नामों को चतुर्थन्त करके नमः लगावे। पूजन करके यागमण्डप में जाकर मध्य में ब्रह्मा और वास्तुदेवता का पूजन उनके नाम के पहले ३०० और बाद में नमः लगाकर करे।

‘ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा’ से जल छींटकर भूमि का शोधन करे। ‘ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा’ मन्त्र कहकर नाराच मुद्रा से अक्षत फेंककर बाँयों ऐड़ी से तीन धात करके भूमि में स्थित विघ्नों का, तीन ताली बजाकर अन्तरिक्ष के विघ्नों का और दिव्य दृष्टि से दिव्य विघ्नों का—इस प्रकार तीनों प्रकार के विघ्नों का उत्सारण करे। ‘ॐ पवित्रवत्रभूमे हुं फट् स्वाहा’ से भूमि को मन्त्रित करे। उस पर कोमल कम्बल-कुश आदि का आसन बिछाये। ३०० आः सुरेषे वज्ररेषे हुं फट् स्वाहा’ से लाल चन्दन, गन्ध, पुष्पादि से उसकी अर्चन करके स्वस्तिकादि क्रम से आसन पर बैठे। मत्स्य सूक्त में कहा गया है कि मृदु कोमल आसन पर या कम्बल पर या कुशा पर बैठकर उत्तम सिद्धि की साधना करे। युद्ध में मृत बालक, जिसका चूड़ाकरण न हुआ हो, छः माह बाद निकालकर उसके समीप अथवा चिता के समीप बैठकर यह साधना करनी चाहिये।

तन्त्रचूडामणि में कहा गया है कि उस कोमल आसन की देवी के पीठमन्त्र से पूजा करे। यह मन्त्र है—३०० प्रेक्षकामपीठाय नमः। तदनन्तर साधक वीरासन में बैठकर अपना शोधन करे।

#### कोमलासनलक्षणम्

कोमलादिलक्षणमाह श्रीक्रमे—

(वीरासनाद्यभावे तु मृतासनं शृणु प्रिये) । पञ्चवर्षोत्तरं यावन्मृतं बालमचूडकम् ॥१॥  
षण्मासाभ्यन्तरं चैव दशमासाच्च पूर्वकम् । गर्भच्युतमृतं बालं गर्भाष्टिमात्पुरःसरम् ॥२॥

एतत्कोमलमित्याहुर्विष्टरेषु कुशेषु वा । इति।

**तथाच तन्त्रे—**

अवृत्तचूडको बालो हीनोपनयनः पुमान् । यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं बिदुः ॥३॥  
पञ्चमे वर्षे पञ्चमवर्षे पूर्णे ।

कोमल आसन का लक्षण—श्रीक्रम में कहा गया है कि वीरासनादि के अभाव में मृतासन सुनो। पाँच वर्ष से अधिक उम्र के मृत बालक, जिसका चूड़ाकरण न हुआ हो, जिसकी उम्र पाँच वर्ष छः माह और दश माह के बीच में हो, उसका कोमलासन बनावे। गर्भच्युत मृत बालक, जिसकी मृत्यु आठवें माह में हुई हो, उससे कोमलासन बनावे। या कुश के विष्टर पर बैठे। जिसका चूड़ाकरण और उपनयन न हुआ हो, ऐसे पाँच वर्ष के मृत बालक के शव से कोमलासन बनावे।

### आसनपरिमाणम्

**आसनपरिमाणमाह—**

एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरस्ते समन्ततः । विशुद्धे आसने कुर्यात्संस्कारं पूजनं बुधः ॥४॥

कृष्णसारव्याघ्रचर्माद्यपि आसनम् । 'कृष्णसारद्वीपिचर्म अचूडं कम्बलं तथा। पीतं च श्वेतवर्णं वा आसनाय प्रकल्पयेत्। प्रोतं च विस्तेरणाथ हृथिवा कुण्डलीकृतम्' इत्यादि। विष्टरेष्वित्यादि कुशपत्रशतकेन वटुकं निर्माय तत्र शवप्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । तत्रैव—

ॐकारं आः सुरेखे च वत्ररेखे ततः परम् । हुंफट्स्वाहा च कुर्यात् मण्डलं च शवासने ॥५॥

वीरासनेनोपविश्य संपूज्यासनमेव च । चतुरस्ते चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥६॥ इति।

'ॐणिधिर वत्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष मां हुं फट् स्वाहा' इति वस्त्राञ्छले रक्षाग्रिं बन्धयेत्। 'ॐआःहुंफट् स्वाहा' इति व्यापकतया कायवाक्यतं शोधयेत्। 'ॐ पुष्टकेतुराजाहं शताय सम्यक्संबन्धाय । ॐ पुष्टे पुष्टे महापुष्टे सुपुष्टे पुष्टभूषिते पुष्टचयावकीर्णं हुं फट् स्वाहा' इति च पुष्टादि मन्त्रमयं कृत्वा स्वर्णादिपीठे गोरोचनकुङ्कमादिलिपे 'ॐआः सुरेखे वत्ररेखे हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेणाथोमुखत्रिकोणगर्भाष्टदलपद्मं वृत्तं चतुरस्ते चतुर्द्वारयुक्तं यन्त्रमुद्धरेत्। पद्मस्य पूर्वादिदलेषु मन्त्राक्षराणि लिखेत्। तथाच कुलचूडामणौ—

ततः कुलरसेनैव पीठं निर्माय यत्नतः । आः सुरेखे वत्ररेखे हुंफट् स्वाहा समन्वितम् ॥१॥

मन्त्रेणानेन संलिख्य वसुपत्रं मनोहरम् । चतुरस्ते चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥२॥

कुलरसेन स्वयंभूरसेन। वर्णलिखनप्रकारमाह फेत्कारीये—

सयोर्निं चन्दनेनाष्टपत्रं वृत्तं लिखेत्ततः । मृद्वासनं समासाद्य मायां पूर्वदले लिखेत् ॥१॥

मध्यबीजं द्वितीये फमुत्तरे पश्चिमे तु टम् । मध्ये बीजं लिखेत्तारं भूतशुद्धिमथाचरेत् ॥२॥

तदुक्तं गन्धवर्णे—

षट्कोणान्तर्गतं पद्मं भूबिम्बद्वितयं पुनः । चतुरस्ते चतुर्द्वारमेवं वा यत्नमालिखेत् ॥३॥  
(तन्मध्ये विलिखेन्मन्त्री ताराप्रणवमेव च ।)

बीजलेखनं तु पूर्ववत्।

आसन परिमाण—एक हाथ या दो हाथ लम्बा-चौड़ा चतुरस विशुद्ध आसन पर बैठकर पूजन संस्कार करना चाहिये।

काले हरिण या बाघ के चमड़े का आसन भी उपयुक्त होता है। काला मृग, हाथी का चमड़ा, अचूड़ बालक, कम्बल, पीला या उजला वस्त्र का आसन भी उपयुक्त होता है। एक सौ कुशों से वटुक बनाकर उस शव में प्राणप्रतिष्ठा करके उसका आसन बनावे।

'ॐ आः सुरेखे वत्ररेखे हुं फट् स्वाहा' से मण्डल बनाकर शव रखकर वीरासन में बैठकर आसन की भी पूजा करे।

चतुरस्र चार द्वारयुक्त मण्डल लिखे। ॐ मणिधरि वत्तिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष मां हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से वक्त्र के छोर पर रक्षाबन्धन करे। 'ॐ आः हुं फट् स्वाहा' से व्यापक रूप से काया-वाणी और चित्त का शोधन करे। 'ॐ पुष्टकेतुराजाहते शताय सम्यक् सम्बन्धाय ॐ पुष्टे पुष्टे महापुष्टे, सुपुष्टे, पुष्टभूषिते, पुष्टचयावकीर्णं हुं फट् स्वाहा' से पुष्टादि को मन्त्रमय बनाकर। स्वप्नादि पीठ पर गोरोचन, कुड्डुमादि के लेप से 'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से अधोमुख त्रिकोण के भीतर अष्टदल पद्म, वृत्त, चतुरस्र चार द्वारयुक्त यन्त्र बनावे। कमल के पूर्वादि दलों में मन्त्र का अक्षर लिखे। जैसा कि कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि तदनन्तर कुलरस अर्थात् स्वयम्भू रस से यत्नपूर्वक पीठ की रचना करे। 'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र का जप करते हुए यन्त्र बनावे। इसी मन्त्र से अष्टपत्र बनाकर उसके बाहर द्वारों से युक्त चतुरस्र मण्डल बनावे।

फेल्कारिणी तन्त्र के अनुसार यन्त्र में वर्णलेखन का क्रम इस प्रकार है—चन्दन से पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर अष्टपत्र और वृत्त बनावे। उस पर कोमलासन बिछाकर पूर्वदल में हीं लिखे। मध्य बीज द्वितीय दल में लिखे। उत्तर में 'फं' लिखे। पश्चिम में 'टं' लिखे। मध्य में बीज और ॐ लिखे। तब भूतशुद्धि करे। गन्धर्व तन्त्र में कहा है कि षट्कोण में कमल बनावे। उसके बाहर दो भूपुर चतुरस्र चार द्वारों से युक्त बनावे। यह यन्त्र का रूप है। उसके मध्य में साधक तारा और प्रणव लिखे। इसमें बीजलेखन पूर्ववत् किया जाता है।

### सारस्वतविशेषयन्त्रान्तरम्

नीलतन्त्रेऽपि सारस्वतार्थिनां तु विशेषेण यन्त्रान्तरमुक्तम्।  
व्योमेन्द्रौरसामार्कणिकमध्यां द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरं वर्गोल्लासिवसुच्छं वसुमतीगेहेन संवेष्टितम्।  
ताराधीश्वरवारिवर्णविलसद्विक्कोणसंशोभितं यन्त्रं नीलतन्त्रोः परं निगदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥

(बिन्दुस्त्रिकोणं च षड्स्त्रयुक्तं वृत्तं तथाष्टारमलं त्रिवृत्तम् ।

सभूपुरं चैकजटाविलासगेहं मया यन्त्रमिदं प्रदष्टिम् ॥) इति।

(एवमेतेषामन्यतमं विरच्य पुरतो निधायार्चयेत्) पीठस्य पूर्वद्वारे ॐहींगां गणपतये नमः। पीठस्य दक्षिणे ॐहींवां वटुकाय नमः। पीठस्य पश्चिमोत्तरयोः ॐहींकां क्षेत्रपालाय नमः। ॐहींयां योगिनीभ्यो नमः। ततो मध्ये श्मशानाय नमः। कल्पवृक्षाय नमः। तन्मूले मणिपीठाय नमः। नानालंकारेभ्यो नमः, मुनिभ्यः०, देवेभ्यः०, बहुमांसास्थिमोदमानाभ्यः शिवाभ्यो नमः। चतुर्दिक्षु शवमुण्डचिताङ्गस्थिभ्यो नमः। इति सर्वत्र नमोऽन्तेन पूजयेत्। अष्टदलेषु अग्न्यादि ॐलक्ष्यै नमः। ॐसरस्वत्य०। ॐप्रत्य०। ॐकीर्त्य०। ॐकान्त्य०। ॐतुष्ट्य०। ॐपुष्ट्यै नमः। एवमुत्तरोत्तरमध्यर्थं तस्य मध्ये हसौः सदाशिवमहाप्रेतासनाय नमः। तदुक्तं सिद्धसारस्वते—

लक्ष्मीः सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च। कीर्तिः कान्तिश्च तुष्टिश्च पुष्टिश्चेत्यष्ट शक्तयः ॥१॥

देव्या नीलसरस्वत्या: पीठशक्तय ईरिताः। इति।

वीरतन्त्रे—'तन्मध्ये पूजयेद् देव्या वाहनं शवमेव च' इति, ततो भूतशुद्धिं कुर्यात्। यथा—स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा हंस इति मन्त्रेण कुण्डलिनीं जीवात्मानं वैलोच्येन चतुर्विंशतितत्त्वानि सुषम्पावर्त्मना परमेजसि संयोज्य, कुम्भकेन हींकारं रक्तवर्णं नाभौ ध्यात्वा तदुद्घूताग्निं लिङ्गशरीरं संदह्य, स्त्रींकारं पीठवर्णं हृदि विचिन्त्य (तदुद्घूतवायुना तद्दस्म प्रोत्सारयेत्। ततो रेचकेन हूँकारं श्वेतवर्णं शिरसि विचिन्त्य) तदुद्घूतेनामृताम्बुना तदस्थि प्लावितं कृत्वा समस्तमपगतव्यथं विश्वमयं शारीरमाल्लावयेत्। तथाच श्रुतिः—

षट्त्रिंशत् तत्त्वानि शारीरमिति। तत आत्मानमपगतव्यथं निर्मलं देवताधिया ध्यायेत्। तस्मिन् विश्वव्यापक अमृतवारिणि आः कारे रक्तपङ्कजं ध्यात्वा तदुपरि टांकारात् श्वेतपङ्कजं विचिन्त्य, तदुपरि नीलसत्रिभं हूँकारं ध्यात्वा तदुपरि हुंबीजभूषितां कर्त्रिकां ध्यायेत्। तदुपरि देवतां 'आंहींकों स्वाहा' इति एकादशवारं जपन् प्राणान् प्रतिष्ठाप्त ध्यायेदिति। तदुक्तं फेल्कारीये—

मायां नाभौ रक्तवर्णा ध्यात्वा तज्जातवहिना। शुष्कं कर्मार्थकं देहं दाधं संचिन्तयेत्तः ॥१॥  
 स्त्रीकां हृदि पीतार्थं तदुद्धूतेन वायुना। भस्म प्रोत्सारितं कृत्वा ललाटे चिन्तयेतः ॥२॥  
 कूर्चं तुषारवर्णार्थं तदुद्धूतामृतेन च। तदस्थि प्लावितं कृत्वा तारात्मानं विचिन्तयेत् ॥३॥  
 सर्वव्यथा विनिर्मुक्तं निर्मलं देवतामयम्। भूतशुद्धिं विधायेत्यं शून्यं विश्वं विचिन्तयेत् ॥४॥  
 निलेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं देवतामयम्। अन्तरिक्षे ततो ध्यायेदाः काराद्रक्तपङ्कजम् ॥५॥  
 (भूयस्तस्योपरि ध्यायेद्वांकारात् श्वेतपङ्कजम्। तस्योपरि पुनर्धर्येद् हुंकारं नीलसंनिभम् ॥६॥  
 ततो हूंकारबीजातु कर्त्रिकां बीजभूषिताम्।) भूयस्तस्योपरि ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम् ॥७॥ इति।

ततो ध्यानम्—

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्। खर्वा लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मवृतां कटौ ॥८॥  
 नवयौवनसंपन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्। चतुर्भुजां ललज्जिहां महाभीमां वरप्रदाम् ॥९॥  
 खद्गर्कर्त्रिसमायुक्तसव्यतेरभुजद्वयाम्। कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ॥१०॥  
 पिङ्गोत्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षेभ्यभूषिताम्। बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ॥११॥ इति।

नीलतन्त्र में भी विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप से यन्त्रान्तर का वर्णन किया गया है। वहाँ कहा गया है कि बिन्दु त्रिकोण के बाहर पट्टकोण वृत्त अष्टपत्र तीन वृत्त भूपुर से बना यन्त्र एकजटा का विलासगृह है। इस प्रकार का यन्त्र बनाकर अपने सामने रखकर उसकी पूजा करे। पीठ के पूर्व द्वार पर ३० हीं गां गणपतये नमः, पीठ के दक्षिण में ३० हीं वां वटुकाय नमः, पीठ के पश्चिम में ३० हीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः, उत्तर में ३० हीं यां योगिनीभ्यो नमः, मध्य में शमशानाय नमः से पूजा करे। कल्पवृक्षाय नमः एवं उसके मूल में मणिपीठाय नमः, नानालंकरेभ्यो नमः, मुनिभ्यो नमः, देवेभ्यो नमः एवं बहुमांस-अस्थिमोदमानाभ्यः शिवाभ्यो नमः से पूजा करे। चारों दिशाओं में ‘शवमुण्डचितांगास्थिष्यो नमः’ से पूजा करे।

अष्टदल में अग्निकोण से आरम्भ करके ३० लक्ष्यै नमः, ३० सरस्वत्यै नमः, ३० रत्यै नमः, ३० प्रीत्यै नमः, ३० कीर्त्यै नमः, ३० कान्त्यै नमः, ३० तुष्यै नमः, ३० पुष्ट्यै नमः से पूजा करे इस प्रकार उत्तरोत्तर पूजा के बाद उसके मध्य में हस्तौः सदाशिवमहाप्रेतासनाय नमः से पूजन करे। सिद्धसारस्वत में देवी नीलसरस्वती के पीठ की शक्तियों के नाम इस प्रकार बताये गये हैं—लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि और पुष्टि।

वीरतन्त्र में कहा है कि उसके मध्य में देवी के वाहन और शव की पूजा करे। तब भूतशुद्धि करे। जैसे—अपनी गोद में हाथों को उत्तान करके ‘हंस’ मन्त्र से कुण्डलिनी और आत्मा को विलोम क्रम से चौबीस तत्त्वों को सुषुप्ता मार्ग से परम तेज से जोड़े। कुम्भक से ‘हीं’ का ध्यान नाभि में लाल वर्ण का करे। उससे उत्पन्न अग्नि में लिङ्गशरीर को भस्म करे। ‘स्त्री’ का चिन्तन हृदय में पीले वर्ण का करे। इससे उत्पन्न वायु से भस्म को उड़ा दे। तब रेचक से श्वेत वर्ण के हुंकार का चिन्तन शिर में करे। उससे उत्पन्न अमृत जल से अस्थि का प्लावन करे। तब विश्वमय शरीर को प्लावित करे। श्रुति भी कहती है कि छत्तीस तत्त्वों से यह शरीर निर्मित है। तब स्वयं को व्याधरहित निर्मल देवता बुद्धि से ध्यान करे। उसमें विश्व व्यापक अमृत जल आः कार में लाल कमल का ध्यान करे। उसके ऊपर टांकार से श्वेत कमल का ध्यान करे। उसके ऊपर नीलसदृश हूंकार का ध्यान करे। उसके ऊपर हुं बीजभूषित देवता का ध्यान करे। उसके ऊपर ‘आं हीं क्रों स्वाहा’ के ग्यारह जप से देवता में प्राण-प्रतिष्ठा कर उसका ध्यान करे। जैसा कि फेल्कारी तन्त्र में कहा भी है—नाभि में ‘हीं’ का ध्यान लाल वर्ण का करे। उससे उत्पन्न अग्नि से कर्मार्थक देह के दाध होने का चिन्तन करे। हृदय में ‘स्त्री’कार का ध्यान पीले रंग का करे। उससे उत्पन्न वायु से भस्म को उड़ा दे। ललाट में बर्फ के रंग के ‘हुं’कार का चिन्तन करे। उससे उत्पन्न अमृत से अस्थियों को प्लावित करे। आत्मा का चिन्तन ३५कार के रूप में करे। इससे सभी व्यथाओं से मुक्त साधक निर्मल देवतामय बन जाता है। इस प्रकार की भूतशुद्धि के बाद साधक विश्व का चिन्तन शून्य रूप में करे। निलेपं निर्गुण शुद्ध आत्मा के देवतामय होने की भावना करे। तब अन्तरिक्ष में ‘आः’ का ध्यान लाल कमल के रूप में करे। उसके ऊपर ‘टं’कार का ध्यान श्वेत कमल के रूप में

करे। फिर उसके ऊपर नीलसदृश हुंकार का ध्यान करे। तब हुंकार बीज से कर्त्रिका के भूषित होने की भावना करे। उसके ऊपर अपनी आत्मा को तारा रूप में देखे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम् । खर्वा लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ ॥

नवयौवनसंपन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् । चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम् ॥

खडगर्किंसमायुक्तसव्येतरभुजद्रव्याम् । कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ॥

पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् । बालाकंमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ॥

पञ्चमुद्राविभूषितामिति, ललाटे श्वेतास्थिपट्टिकाचतुष्टयान्वितकपालपञ्चकान्वितामित्यर्थः। श्रीशङ्कराचार्येणायुक्तं—‘विचित्रास्थिमालां ललाटे करालां कपालं च पञ्चान्वितं धारयन्ती’मिति। ततः प्राणायामः, वामनासापुटेन मूलं चतुर्वर्णं जप्त्वा वायुं पूरयेत्। तदनु नासापुटौ धृत्वा घोडशवारजपेन वायुं कुम्भयेत्। तदनु दक्षिणनासापुटेन वाराष्टकावतनिन रेचयेत्। पुनर्दक्षिणेनापूर्य वामेन रेचयेत्। पुनर्वर्मिनापूर्य दक्षिणेन रेचयेत्, इति प्राणायामत्रयं भवति। तत ऋष्यादिन्यासः। तद्यथा—शिरसि अक्षोभ्यक्रृष्णे नमः। मुखे बृहतीछन्दसे नमः। हहि श्रीमदेकजटादिदेवताभ्यो नमः। मूलाधारे हूं बीजाय नमः। पादयोः फट् शक्तये नमः। शोषाण्यक्षराण्युच्चार्य सर्वाङ्गे स्त्रींकीलकाय नमः। तदुक्तं वीरतन्त्रे—

अक्षोभ्य ऋषिरेतस्या बृहती छन्द ईरितम् । नीलासरस्वती देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता ॥१॥

हूंबीजमस्त्रं शक्तिः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदा । इति।

इस प्रकार ध्यान करने के बाद प्राणायाम करे। मूल मन्त्र के चार जप से पूरक वाम नासा से करे। दोनों नासापुटों को बन्द करके मूल मन्त्र के सोलह जप से कुम्भक करे। तब दाँये नासापुट से रेचक मूल मन्त्र के आठ जप से करे। फिर दक्षिण नासा से पूरक करके वाम नासा से रेचक करे। फिर वाम से पूरक करके दक्षिण से रेचक करे। यह तीन प्राणायाम होता है। तब ऋष्यादि न्यास करे। जैसे—शिरसि अक्षोभ्यक्रृष्णे नमः। मुखे बृहतीछन्दसे नमः। हहि श्रीमदेकजटादिदेवताभ्यो नमः। मूलाधारे हूं बीजाय नमः। पादयोः फट् शक्तये नमः। शोष अक्षरों को कहकर सर्वांग में स्त्रीं कीलकाय नमः। से न्यास करे। वीरतन्त्र में कहा भी है—इसके ऋषि अक्षोभ्य, छन्द बृहती एवं तीनों लोकों में गुप्त नीला सरस्वती देवता हैं। हूं बीज है और फट् शक्ति है। यह देवी धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्रदान करने वाली है।

ततः कालीतन्त्रोक्तमातृकान्यासः। तथा चोक्तम्—‘यथा काली तथा नीला तत्कमान्मातृका न्यसेत्’। तद्यथा—अंआङ्गिर्उक्तंऋत्यूलं नमो हहि। एंऐंओंओंअंअंःकंखंगंधं नमो दक्षभुजे। डंचंछंझंजंटंठंडं नमो वामभुजे। णंतंथंदंथंनयंकंबंभं नमो दक्षिणजङ्घायां। मंयरंलंवंशंसंहंक्षं नमो वामजङ्घायां। ततः कराङ्गन्यासौ—हां अखिलवाग्रूपिण्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। हीं अखण्डवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां नमः। हूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां नमः। हैं विष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां नमः। हीं रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः। हः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। हां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः। हीं अखण्डवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा। हूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्। हैं विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुं। हीं रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्रत्रयाय वौषट्। हः सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्। अङ्गुलिनिर्णय उक्तः। अयं तु नीलसरस्वतीपक्षे। तथाच तारामधिकृत्य सिद्धसारस्वते—

अखिलवाग्रूपिणीं प्रोच्य हृदयाय नमो वदेत्। अखण्डवाग्रूपिणीति शिरसे वह्निवल्लभा ॥१॥

ब्रह्मवाग्रूपिणीत्युक्त्वा शिखायै वौषटित्यथ । विष्णुवाग्रूपिणीं प्रोच्य कवचाय हुमादिशेत् ॥२॥

रुद्रवाग्रूपिणीत्युक्त्वा नेत्राभ्यां वौषटित्यपि । सर्ववाग्रूपिणीमुक्त्वा अस्त्राय फडिति स्मरेत् ॥३॥

षट्दीर्घमायया चैव बीजान्ते तानि योजयेत्। इति।

हां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। हीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा। हूं वत्रोदके मध्यमाभ्यां वषट् हैं उग्रजे अनामिकाभ्यां हुं। हीं महाप्रतिसरे कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। हः पिङ्गोग्रैकजटे करपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु न्यसेत्।

काली तन्त्रोक्त मातृका न्यास में कहा गया है कि जैसी काली हैं, वैसी ही नीला हैं; इसलिये क्रमशः मातृका न्यास करना चाहिये; जैसे—अं आं ई उं ऊं ऋं लूं नमो हादि। एं ऐं ओं ओं अं अः कं खं गं घं नमो दक्षभुजे। डं चं छं जं झं झं टं ठं डं नमो वामभुजे। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्षिणजंघायाम्। मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमो वाम-जंघायां। तब करांग न्यास करे।

करन्यास—हाँ अखिलवाग्रूपिण्यै अंगुष्ठाभ्यां नमः। हाँ अखण्डवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां नमः। हूँ ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां नमः है। विष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां नमः। हाँ रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां नमः। हः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि न्यास—हाँ अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः। हाँ अखण्डवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा। हूँ ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्। है विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुं। हाँ रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्रयाय वौषट्। हः सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्। यह नील सरस्वती के पक्ष में है। सिद्धसारस्वत के अनुसार तारा का न्यास इस प्रकार किया जाता है—अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः। अखण्डवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा। ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्। विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुम्। रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्राभ्यां वौषट्। सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्। इनके पहले षडीर्ध हीं अर्थात् हाँ हीं हूँ हैं हैं हः जोड़े। जैसे—हाँ एकजटायै अंगुष्ठाभ्यां नमः। हाँ तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा। हूँ वज्रोदके मध्यमाभ्यां वषट्। हैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां हुं। हाँ महाप्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां वौषट्। हः पिंगोग्रैकजटे करपृष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार हृदयादि में न्यास करे।

### तथाच एकजटामधिकृत्य नीलतन्त्रे—

बीजान्ते एकजटायै हृदयं परिकीर्तितम्। तारिण्यै शिरसे तद्वद्व्रोदके शिखा ततः ॥१॥  
उग्रजटे च कवचं महाप्रतिसरे तथा। पिङ्गोग्रैकजटे तद्वनेत्रात्रे परिकीर्तयेत् ॥२॥

### षट्दीर्धया मायया च बीजान्ते नाम वाचयेत्।

अत्र वर्णन्यासपीठन्यासौ न लिखितौ, अनुकृत्वात्। तथाच फेत्कारीये—‘अत्रोक्तमाचरेत् सम्यग् नान्योक्तमाचरेद् बुधः’। कालीषोढा वा कर्तव्या। ततो मूलमुच्चार्य शिर आदिपादपर्यन्तं पादादिशिरोन्तं हृदयादिमुखपर्यन्तमिति व्यापकत्रयं न्यस्तेत्। ततोऽर्धस्थापनं तद्यथा—स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्त्रमण्डलं कृत्वा, तत्र साधारं पात्रं निधाय मूलविद्यया जलादिनापूर्य रक्तचन्दनबिल्वपत्राणि अक्षतादीनिक्षिप्य, अर्धयाग्नीशासुरवायुमध्ये दिक्षु च—हाँ अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः, इत्यादि। हाँ एकजटायै हृदयाय नमः, इत्यादि वा षडङ्गानि विन्यस्य, अर्धपात्रं मत्स्यमुद्रायाच्छाद्य मूलमन्त्रं दशधा जपेत्। तथाच—‘दशकृत्वो जपेद्विद्वां देवताभावसिद्धये’ इति। ततोऽस्त्रेण संरक्ष्य धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य तेजोमयं तज्जलं विभाव्य किञ्चित् प्रोक्षणीयापत्रे निक्षिप्य, तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य पूजामार्भेत्। भूतशुद्ध्यनन्तरं वा। तथाच फेत्कारीये—

भूतशुद्धिं विधायेत्यमर्घादिस्थापनं चरेत्। प्राणायामं ततः कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ॥१॥ इति।

ततः पुष्पाङ्गलिं विरच्य आत्माभेदेन देवीं ध्यायेत्। तद्यथा—

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्गिशवहद्वोराद्वहासा परा खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परधरा हूँकारबीजोद्धवा ।

खर्वा नीलविशालापिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता जाडयं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ॥

एवं विभाव्य, करकलितदूर्वक्षितरक्तचन्दन(वज्रपुष्पादि)मिलितदिनकरकिरणरुणकुसुमाङ्गलौ मातृकायन्त्रं ध्यात्वा हृदयान्मूलमन्त्रतेजोमयीं शुद्धज्ञानवैतन्यमयीं षट्चक्रभेदेन शिरःस्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमशिवं प्रापय्य क्रियासमभिव्याहारेण तदमृताम्बुधौ विश्राप्य तदमृतलोलीभूतां चैतन्यानन्दमयीं तां प्रवहन्नासापुटादानीय मूलेन कल्पितमूर्तीवावाहयेत्।

एकजटा के सम्बन्ध में नीलतन्त्र में कहा है कि—स्त्री एकजटायै हृदये। तारिण्यै शिरसे। वज्रोदके शिखायां। उग्रजटे

कवचे। महाप्रतिसरे नेत्रे। पिंगोग्रैकजटे अस्त्राय फट्—इस प्रकार न्यास करे। इन सबके पहले षड्दीर्घ हीं लगाये।

अकथित होने के कारण यहाँ वर्ण न्यास-पीठ न्यास लिखित नहीं है। फेत्कारी तन्त्र में कहा गया है कि उक्त के अनुसार ही आचरण करे; अनुक का आचरण न करे। अथवा काली षोडा न्यास करे। तब मूल मन्त्र कहकर शिर से लेकर पैरों तक हृदय से मुख तक तीन बार व्यापक न्यास करे। तब अर्ध्य इस प्रकार स्थापन करे—अपने वाम भाग में त्रिकोण वृत्त चतुरस्र मण्डल बनावे। उस पर आधार रखकर पात्र रखे। मूल मन्त्र से उसमें जल, रक्त चन्दन, बेलपत्र, अक्षत डाले। अर्ध्य के अग्नि, ईशान, नैऋत्य, वायव्य, मध्य तथा दिशाओं में हाँ अखिलवायाग्रूषिण्यै हृदयाय नमः अथवा हाँ एकजटायै हृदयाय नमः इत्यादि से षड्ङ्ग न्यास करे। अर्ध्यपत्र को मत्स्य मुद्रा से ढके। मूल मन्त्र दश बार जप करे। कहा भी है कि देवताभाव की सिद्धि के लिये विद्या का दश बार जप करना चाहिये। तब अत्र से उसका संरक्षण करे। धेनु-योनि मुद्रा दिखाकर उसे तेजोमय जल में से कुछ जल प्रोक्षणी पात्र में लेकर उस जल से अपना और पूजोपकरणों का अभ्युक्त्वा करके पूजा प्रारम्भ करे अथवा भूतशुद्धि के पक्षात् पूजा प्रारम्भ करे; जैसा कि फेत्कारी तन्त्र में कहा भी है—भूतशुद्धि करके अर्ध्य स्थापन करे। तत्पश्चात् प्रणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे। तब पुष्टाञ्जलि लेकर अपने और देवी में अभेद मानकर इस प्रकार ध्यान करे—

प्रत्यालीढपदार्पिणशवहद्वोराङ्गाहासा परा खद्गेन्दीवरकर्तिर्खर्परधा हृकारबीजोद्भवा।

खर्वा नीलविंशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता जाडयं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्॥

तब हाथों में दूब, अक्षत, लाल चन्दन, वज्रपुष्टादि लेकर सूर्यकिण के समान लाल कुसुमाङ्गलि में मातृका यन्त्र का ध्यान करे। शुद्ध ज्ञान-चैतन्यमयी, तेजोमयी मूल मन्त्र को हृदय से षट्चक्र-भेदन करते हुए शिरःस्थित सहस्रदल कमलकर्णिका में परम शिव से मिला दे। उनके मिलन से क्षरित अमृत अम्बुधि में विश्राम करके उस अमृत से लोलीभूत चैतन्यानन्दमयी को प्रवहनासापुट से लाकर मूल मन्त्र से कल्पित मूर्ति में आवाहित करे।

**तन्त्रान्तरे—**

देवीं सुषुम्णामार्गेण चानीय ब्रह्मरन्धकम् । वहन्नासापुटे ध्यायेन्निर्यन्तीं स्वाङ्गलिस्थिते ॥१॥

पुष्टे आरोप्य तत्पुष्टं प्रतिमादौ निधापयेत् । देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ॥२॥

यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव ।

ततः पूर्वोक्तक्रमेणावाहनादिकं कृत्वा योन्यादिपञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत्। 'आवाहनादिमुद्राभिः पञ्चमुद्राः प्रदर्शये' दिति भैरवीयात्। तास्तु मुद्राप्रकरणेऽनुसन्धेयाः। 'आंहींक्रों स्वाहा' इति प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। ततः 'ॐ श्रीमदेकजटे वज्रपुष्टं हूंफट् स्वाहा' इत्यनेन षोडशोपचारेण पञ्चोपचारेण वा पूजयेत्। 'ताराद्यमग्निजायान्तमुदीर्घ यजनं चरेत्'। तारः कूर्धस्तदादि हूंफडित्यर्थः। स च वह्निजायान्त इति। (ॐ भगवत्येकजटे हौंविशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हूंफट् स्वाहा। पाद्यं नमः। तारिणि ह्रूमिदमाचनीयं स्वथा। हीं मणिधरि वत्रिणि) महाप्रतिसरे इदमर्थ्य स्वाहा। हींकपालिनि मधुपर्क स्वथा। श्रीमदेकटजे इदमाचमनीयं सुगान्धिजलं नमः। गन्यपुष्ट्योर्विशेषस्त्वयम्—'परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णिदिग्नन्तरम्। गृहणं परमं गन्यं कृपया परमेश्वरि' श्रीमदेकजटे एष गन्यो नमः। 'तुरीयवनसंभूतं नानागुणमनोहरम्। आनन्दसौरभं पुष्टं गृहतां परमेश्वरि' इयं वचोरचना विद्याधराचार्यसंमता। महातन्त्रे तारिणीनिर्णये—'प्रणवं भगवत्येकजटे माया ततः परम्। (विशुद्धधर्मगात्रिः सर्वपापानि तत्परम्। शमय सर्वविकल्पानपनय हूंफट् शिरः। अयं पाद्यमनुर्देवि आचमनीयमनुं श्रणु। तारं वत्रिणि मायेति तारो माया ततः परम्।) मणिधरि वत्रिणीति महाप्रतिसरे मनुः। माया कपालिनि मन्त्रो मधुपर्के सुरेश्वरि' ततो योनिमुद्रां प्रदर्शय, देवि आज्ञापय भगवत्या: परिवारान् पूजयामि, इति प्रार्थ्य आवरणान् पूजयेत्। तथा केसरेषु अग्नीशासुरवायामुद्यथे दिक्षु च षड्ङ्गानि पूजयेत्। आग्नेयां हाँ एकजटे हृदयाय नमः। ऐशान्यां हीं तरिणी शिरसे स्वाहा। नैऋत्यां हूं वज्रोदके शिखायै वषट्। वायव्यां हैं कपालिनि कवचाय हूं। मध्ये हीं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दक्षु हृः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट्।

नीलसरस्वतीपक्षे तु—हां अखिलवाग्रूपिण्ये हृदयाय नमः, इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत्। ततो देव्या मौलौ ‘अक्षोभ्यवज्रपुष्टं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहा’ इति संपूजयेत्। तदुक्तं भैरवीये—

वज्रपुष्टं प्रतीच्छेति हूंफट् स्वाहेति मन्त्रतः। एतमन्त्रे नाममात्रं भिन्नं चैवं न संशयः॥  
अनेन मनुना सर्वान् परिवारान् समर्चयेत्।

सर्वत्र प्रणवः। तदुक्तं तत्रैव—प्रणवं वह्निजायानं वज्रपुष्टं विनिक्षिपेत्।'

तन्मात्रर में कहा गया है कि देवी को सुषुमा मार्ग से ब्रह्मरङ्ग में लाकर प्रवहमान नासापुट से अपनी अङ्गलि में स्थित पुष्पों में आने की भवना करे। उस फूल को प्रतिमादि पर रखे और इस प्रकार कहे—

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥।

तदनन्तर पूर्वोक्त क्रम से आवाहनादि करके भैरवीवचन के अनुसार योनि आदि पाँच मुद्रा दिखाये। ‘आं हीं क्रों’ से प्राणप्रतिष्ठा करके ‘ॐ श्रीमदेकजटे वज्रपुष्टं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहा’ से षोडशोपचार या पञ्चोपचार से पूजा करे। जैसे—ॐ भगवति एकजटे हीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हूं फट् स्वाहा पाद्यं नमः। तारिणी हां इदम् आचमनीयं स्वधा। हीं मणिधरि वत्रिणि महाप्रतिसरे इदमर्थ्यं स्वाहा। हीं कपालिनि मधुपर्कं स्वधा। श्रीमदेकजटे इदम् आचमनीयं सुगन्धिजलं नमः। गन्धं इस मन्त्र से निवेदित करे—परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिग्नत्तरम्। गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि। श्रीमदेकजटे एष गन्धं-पुष्ट निवेदन के ये मन्त्र विद्याधराचार्य-सम्पत हैं।

तारिणीनिर्णय के अनुसार ॐ भगवति एकजटे हीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हूं फट् शिरः। यह पाद्य मन्त्र है। आचमनीय मन्त्र है—ॐ वत्रिणि हीं मणिधरि वत्रिणि महाप्रतिसरे। हीं कपालिनि’ मधुपर्क का मन्त्र है। तब योनिमुद्रा दिखाये। ‘देवि आज्ञापय, भगवत्या: परिवारान् पूजयामि’ इस प्रकार प्रार्थना करके आज्ञा लेकर आवरणपूजा करे। केसर में आनेयदि कोणों, मध्य में एवं दिशाओं में षडङ्गों की पूजा करे।

अग्नि कोण में हां एकजटे हृदयाय नमः। ईशान में हीं तारिणि शिरसे स्वाहा। नैर्झत्य में हूं वज्रोदके शिखायै वषट्। वायव्य में हैं कपालिनि कवचाय हूं। मध्य में हौं प्रतिसरे नेत्रवयाय वौषट्। चारों दिशाओं में हः पिंगोग्रैकजटे अस्त्राय फट्। नीलसरस्वती के पक्ष में ‘हां अखिलवाग्रूपिण्ये हृदयाय नमः।’ इत्यादि से षडङ्ग पूजा करे। तब देवी के शिर पर ‘अक्षोभ्यवज्रपुष्टं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहा’ से पुष्ट अर्पण करे। इन मन्त्रों में नाममात्र की ही भिन्नता है। इन मन्त्रों से सभी परिवारों का अर्घन करना चाहिये।

### तारागुरुक्तित्रयम्

ततः पीठस्योत्तरे वायव्यादीशानपर्यन्तं गुरुपङ्किं पूजयेत्। तथाच ताराचूडामणौ—

अथ तारागुरुन् वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदान्। ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकण्ठो वृषध्वजः॥१॥

दिव्योद्याः सिद्धिदा देवि सिद्धोद्याङ्गु तत्त्वतः। वशिष्ठः कूर्मनाथश्च मीननाथो महेश्वरः॥२॥

हरिनाथो मानवौधानथ वक्ष्यामि तद्गुरुन्। तारावती भानुमती जया विद्या महोदरी॥३॥

सुखानन्दः परानन्दः पारिजातः कुलेश्वरः। विरुपाक्षः फेरवी च कथितं तारिणीकुलम्॥४॥

अशक्तश्चेदक्षोभ्यमात्रं पूजयेत्। ततः पूर्वादिदलमूले—

महाकाल्यथ रुद्राणी भया भीमा तथैव च। घोरा च भ्रामरी चैव महारात्री च सप्तमी॥५॥

अष्टमी भैरवी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत्।

ततः पूर्वादिचतुर्दलेषु वामावर्तेन, हां वैरोचनशंखाण्डुरपद्मनाभासिताङ्गान् पूजयेत्। ततः वह्न्यादिचतुर्दलेषु दक्षिणावर्तेन मामकनामकपाण्डुरतारकान् पूजयेत्। ततः पूर्वादिद्वारेषु पद्मान्तकयमान्तकविद्यान्तकनरकान्तकान्

पूजयेत्। तथाच सिद्धसारस्वते—

तथा वैरोचनं शङ्खपाणदुरं पद्मनाभकम् । असिताङ्गं यजेन्मन्त्री दिक्षिवद्वदिचतुर्दले ॥१॥

नामकं मामकं चैव पाणदुरं तारकं तथा । वह्यादिकचतुष्कोणे मन्त्रैः स्वैः स्वैः क्रमाद्यजेत् ॥२॥

द्वारपूर्वादितस्तद्वत् पद्मान्तकयमान्तकौ । विघ्नान्तकं समभ्यर्थं पूजयेन्नरकान्तकम् ॥३॥ इति।

नीलतन्त्रे—‘वामवर्तक्रमेणैव पूजयेदङ्गदेवता’ इति। ततो बलिं दद्यात् ‘पूजान्ते भोजनादौ च बलिं मन्त्रेण दापयेत्’। तत्र क्रमः—स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्मण्डलं कृत्वा पूष्टस्तमभ्यर्थं, तत्र विहितबलिद्रव्यभरितं साधारं पात्रं निधाय तद्वामाङ्गुष्ठानामाभ्यां स्पृष्ट्वा ‘ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतबलिं गृह्ण २ गृह्णापय २ मम सर्वशान्तिं कुरु २ परविद्यामाकृष्ट्य २ त्रुट २ छिन्थि २ सर्वजगद्वशमानय ह्रींस्वाहा’ इति त्रिः पठित्वा बलिं दद्यात्।

तदनन्तर पीठ के उत्तर भाग में वायव्य से ईशान तक गुरुपंक्ति की पूजा करे। उनका कथन ताराचूडामणि में इस प्रकार किया गया है—ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, नीलकण्ठ, वृषध्वज—ये चार दिव्यौषध सिद्धिप्रदायक हैं। वसिष्ठ, कूर्मानाथ, मीननाथ, महेश्वर, हरिनाथ—ये सिद्धौघै हैं। मानवौषध गुरुओं में ताराती, भानुमती, जया विद्या मोहदरी, सुखानन्द, परानन्द, परिजात, कुलेश्वर, विरुपाक्ष और फेर्ती हैं। यही तारिणीकुल है। ये सभी तारागुरु दृष्ट एवं अदृष्ट फलों को प्रदान करने वाले हैं। इन सभी के पूजन में अशक्त होने पर केवल अक्षोभ्य की पूजा करे। तदनन्तर पूर्वादि दलों में वामावर्त क्रम से महाकाली, रुद्राणी, भया, भीमा, धोरा, ब्रामरी, महारात्री, सप्तमी, अष्टमी भैरवी की पूजा करे। चतुर्दल में पूर्वादि वामावर्त क्रम से वैरोचन, शङ्ख, पाण्डुर, पद्मनाभ, असितांग की पूजा करे। तब अग्निकोणादि चार दलों में दक्षिणावर्त क्रम से मामक, नामक, पाण्डुर, तारक की पूजा करे। पूर्वादि द्वारों में पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक, नरकान्तक की पूजा करे। जैसा कि सिद्धसारस्वत में कहा गया है—पूर्वादि चार दलों में वैरोचन, शङ्ख, पाण्डुर, पद्मनाभ, असितांग की पूजा करे। अग्न्यादि चारों कोनों में उनके मन्त्रों से नामक, मामक, पाण्डुर और तारक की पूजा करे। पूर्वादि द्वारों में पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक और नरकान्तक की पूजा करे। नीलतन्त्र में कहा गया है कि वामावर्त क्रम से ही अंगदेवता का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर बलि प्रदान करे। पूजा के अन्त में भोजन के आरम्भ में मन्त्रपूर्वक बलि प्रदान करना चाहिये। उसका क्रम यह है कि अपने वामभाग में त्रिकोण वृत्त चतुरस्मण्डल बनाकर पुष्ट से उसकी पूजा करके बलिद्रव्य से पूर्ण विहित पात्र आधार पर रखें। उसे बाँयें अंगूठे और अनामा से सर्पं करके ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीत बलिं गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्ट्य त्रुट त्रुट छिन्थि छिन्थि सर्वजगद्वशमानय ह्रींस्वाहा—इस मन्त्र को तीन बार पढ़कर बलि प्रदान करे।

#### बलिमन्त्रः

तथाच सिद्धसारस्वते बलिमन्त्रः—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्यं हल्लेखां च ततः परम् । एकजटे पदान्ते च महाशब्दमुदीरयेत् ॥१॥

यक्षाधिपदमाभाष्यं पतये पदतो मया । उपनीतपदं चोक्त्वा बलिं गृह्णेति च द्विधा ॥२॥

गृह्णापय द्विधा प्रोक्त्वा मम सर्वपदं तथा । शान्तिं कुरु द्विधा चैव परविद्यामनन्तरम् ॥३॥

द्विधाकृष्ट्येति च ब्रूयात्कुट छिन्थीति च द्विधा । सर्वजगत्पदं चोक्त्वा वशमानय इत्यनु ॥४॥

माया स्वाहेति मन्त्रोऽयं बल्यादौ विहितः स्मृतः । इति।

ततो रहस्यमालया निगदेनोपांशुना मानसेन वाष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जपेत्। तथाच—

अष्टोत्तरशतं जाप्य याव(द्विंश)ज्जीवितसंख्या । सहस्रं वा जपेद् देवि नित्यपूजाविधौ पुनः ॥५॥

अशक्तश्वेद्विशत्यन्तं नूनं जपेत्। तथाच नीलतन्त्रे—‘सहस्रं शतं विंशतिं वा जपेद्रहस्यमालया’ तत्र जपरहस्यं यथा—मूलाधारस्वाधिलानमणिपूरकेषु यथासंख्यां बीजत्रयव्याप्तिं तडिल्कोटिभास्वरां परस्परानुस्यूतां विभाव्य सर्वतेजोमयं फट्कारं विश्रान्तिरूपं ध्यात्वा उच्चारयेत्।

**बलि मन्त्र**—सिद्धसारस्वत में बलिमन्त्र इस प्रकार बताया गया है— ॐ हीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतबलिं गृहं गृहं गृहापय गृहापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृथ्य त्रुट् त्रुट् छिस्थि छिस्थि सर्वजगत् वशमानय हीं स्वाहा। यही मन्त्र बलि आदि के लिये कहा गया है।

बलिदान के पश्चात् रहस्यमाला से वैखरी, उपांशु या मानसिक जप एक हजार आठ या एक सौ आठ बार करे। जैसकि कहा गया है कि नित्य पूजा में मनकों की संख्या के बगाबर एक सौ आठ अथवा एक हजार आठ जप करना चाहिये। अशक्त होने पर बीस जप अवश्य करना चाहिये। नीलतन्त्र एक हजार में कहा गया है कि एक सौ या बीस बार रहस्यमाला पर जप करे। जप के सन्दर्भ में कहा गया है कि मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूर में अभित तेजःस्वरूप तीनों बीजों को अनुस्पृत मानकर पूर्ण तेजः समन्वित 'फट्' को विश्रान्तिरूप समझते हुये मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

### मन्त्रध्यान-विद्याहेत्पौ

तथाच नीलतन्त्रे—

मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि जपात्सर्वज्ञदायकम् । मन्त्रध्यानान्महेशानि शुद्ध्यते ब्रह्महा यतः ॥१॥  
मूलरञ्चे तु हल्लेखां सूर्यकोटिसमप्रभाम् । स्वाधिष्ठाने पीतवर्णं द्वितीयं तु विभावयेत् ॥२॥  
नाभौ जीमूतसंकाशं कूर्चबीजं महाप्रभम् । अख्बीजं हृदि ध्यायेत्कालाग्निसदृशप्रभम् ॥३॥  
मूलादिब्रह्मरस्त्रान्तं सर्वा विद्यां विभावयेत् । सूर्यकोटिप्रतीकाशां योगिभिर्दृष्टपूर्विकाम् ॥४॥

इत्येवं यथाशक्ति जपित्वा समर्प्य नित्यहोमादिकं चरेत् । तदुक्तं सोमसिद्धान्ते—

नाजप्तः सिद्ध्यते मन्त्रो नाहुतश्च फलप्रदः । नानिष्ठो यच्छते कामान् तस्मात्वितयमाचरेत् ॥१॥  
पूजया लभते पूजां जपात्सिद्धिनं संशयः । विभूतिं चाग्निकार्येण सर्वसिद्धिं च विन्दति ॥२॥ इति

नीलतन्त्रेऽपि—

विद्याहोमं प्रवक्ष्यामि सर्वा सिद्धिं च विन्दति । सपर्यासर्वमापाद्य बलिपूर्वं चरेद्विधिम् ॥१॥  
ततो जपं तर्पणं च चरेत् साधकसत्तमः । बलिवश्यादिकं चैव ब्राह्मणः समुपाचरेत् ॥२॥  
विधिवदग्निमानीय क्रव्यादेभ्यो नमस्तदा । मूलमन्त्रं समुच्चार्यं कुण्डे वा स्थिण्डलेऽपि वा ॥३॥  
भूमौ वा संस्तरेदग्निं व्याहृतिप्रतियेन तु । स्वाहान्तेन त्रिधा कृत्वा षडङ्गत्रितयं ततः ॥४॥  
ततो देवीं समावाह्य मूलेन षोडशाहुतीः । हुत्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा विसृजेद्विन्दुमण्डले ॥५॥

ततो विसर्जनानं कर्म समाप्तयेत् । अस्य पुरुष्करणं लक्षजपः । तद् दशांशो होमः । तथाच—  
एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्ष्मनन्धीः । रहस्यमालामादाय लक्ष्मेकं सदा जपेत् ॥६॥

रहस्यमाला यथा—

अक्समात्रिहिता सिद्धिर्भाशङ्काक्षमालया । पञ्चाशन्मणिभिर्माला निर्मिता सर्वसिद्धिदा ॥७॥

महाशङ्काभावेऽपि स्फाटिकी माला करत्वा । तथाच—‘महाशङ्केऽप्यशक्तश्चेत् स्फाटेऽकीमालया जपेत्’।

नीलतन्त्र में कहा गया है कि अब सर्वज्ञतादायक मन्त्रध्यान को कहता हूँ। हे महेशानि! इस मन्त्रध्यान से ब्रह्महत्या का पाप भी नष्ट हो जाता है। मूलाधार में करोड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त हीं और स्वाधिष्ठान में पीते रंग के महाप्रभ त्रीं की भावना करे। नाभि के मणिपूर में जीमूत वर्ण के महाप्रभ कूर्चबीज हूँ का ध्यान करे। कालाग्नि के समान प्रकाशित अख्बीज फट् का ध्यान हृदय में करे। मूलाधार से ब्रह्मरञ्च तक सम्पूर्ण विद्या की भावना करे। यह विद्या करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित और योगियों द्वारा पूर्व में प्रत्यक्ष की गई है। इसका यथाशक्ति जप कर जप-समर्पण करके नित्य हवनादि करे। जैसा कि सोमसिद्धान्त में कहा भी है—केवल जप से मन्त्र सिद्ध नहीं होता और न ही आहुति फलप्रद होती है। साथ ही अनिष्ट कामना भी पूरी नहीं होती। इसलिये जप, होम और इष्ट का ध्यान करना चाहिये। पवित्रता से पूजा और जप करने पर सिद्धि मिलती

है, हवन से वैभव और सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। नीलतन्त्र में भी कहा गया है कि विद्या होम को कहता हूँ, जिससे सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। समस्त पूजन करने के पश्चात् विधिवत् बलि प्रदान करे। तदनन्तर जप एवं तर्पण करके ब्राह्मण विधिवत् बलिवैश्वदेवादि करे। विधिवत् अग्नि लाकर क्रव्याद आदि को नमस्कार करे। मूल मन्त्र का उच्चारण कर कुण्ड में स्थण्डिल में या भूमि पर अग्नि का संस्तरण तीन व्याहतियों से स्वाहा के साथ तीन बार करके तीन बार घड़ङ्ग करे। तब देवी को आवाहित कर मूल मन्त्र से सोलह आहुति से हवन करके स्तुति-प्रणाम करे तब उसे चन्द्रमण्डल में विसर्जित करे। तत्पश्चात् विजर्णनात् कर्म समाप्त करे। इसका पुश्त्रण एक लाख जप से होता है और उसका दशांश हवन होता है। कहा भी है कि इस प्रकार की क्रिया के बाद हविष्याणी एकाग्र होकर एक लाख जप करे। रहस्यमाला लेकर एक लाख जप सदैव करे। रहस्यमाला के सम्बन्ध में कहा गया है कि महाशङ्क की माला से अकमात् सिद्धि मिलती है। पचास मणियों की माला सर्वसिद्धिदा होती है। महाशङ्क की माला के अभाव में स्फटिक की माला से जप करना चाहिये।

### कुल्लुकाज्ञानावश्यकता

तारामन्त्रे तु कुल्लुकाया ज्ञानमावश्यकम्। तथाच मत्स्यसूक्ते—

कुल्लुकां च न जानाति महामन्त्रं जपेत्रः। पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुलो भवेत्॥७॥ इति।

### मायातन्त्रे—

कुल्लुकां धारयेच्छीर्णे लिखित्वा भुज्यपत्रके। राजद्वारे सभायां च विजयी भवति ध्रवम्॥१॥

एवमुक्तेन जप्त्वा तु तद्शांशस्य होमतः। तद्शांशं तर्पणं तद्शांशं ब्राह्मोजनम्॥२॥

तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकार इहोच्यते।

### ततो गुरुदक्षिणामाचरेत्। तथाच सिद्धसारस्वते—

एवं जपं पुरा कृत्वा दशांशमसितोत्पलैः। आज्याकैर्जुह्यान्मन्त्री तद्शांशेन तर्पणम्॥१॥

कालागरुद्रवोपेतैर्विमर्गाच्यवारिभिः। तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकार इहोच्यते॥२॥

जले चावाह्य विधिवत्पाद्यादैरुपचारकैः। संतर्प्य विधिवदेवीं परिवारान् सकृत्सकृत्॥३॥ इति।

### अभिषेको यथा—

देवीबुद्ध्यात्मनात्मानं संपूर्ज्य साधकोत्तमः। तारिणीं सिद्ध्यामीति जलं मूर्धिं विनिक्षिपेत्॥४॥ इति।

तारामन्त्र में कुल्लुका का ज्ञान आवश्यक है; जैसाकि मत्स्य सूक्त में कहा है—जो मनुष्य कुल्लुका को जाने बिना महामन्त्र जपता है, वह या तो मृत्यु को प्राप्त होता है अथवा पागल हो जाता है। मायातन्त्र में कहा भी है कि भोजपत्र पर लिखित कुल्लुका को शिर पर धारण करे। कुल्लुका को इस प्रकार धारण करके राजद्वार में अथवा सभा में निश्चित ही साधक विजयी होता है। इस उक्ति के अनुसार जप करने बाद दशांश हवन करे, दशांश तर्पण करे और दशांश ब्राह्मणभोजन कराये। दशांश तर्पण परादेवी का करे। तदनन्तर गुरु को दक्षिण प्रदान करे। सिद्धसारस्वत में भी कहा है कि इस प्रकार जप के बाद दशांश हवन श्वेत कमल में धी लगाकर करे, हवन का दशांश तर्पण करे। काला आग द्रव जल में मिलाकर विमल गन्धित जल से परादेवी का तर्पण इस प्रकार करे—जल में देवी और उनके परिवार का आवाहन करके पाद्यादि उपचारों से पूजन करके विधिवत् तर्पण करे। तर्पण के बाद इस प्रकार अभिषेक करे—अपने को देवी मानकर साधक आत्मपूजा करे और 'तारिणी सिंचयामि' कहकर जल को अपने शिर पर छींटकर मार्जन करे।

### रहस्यपुरश्वरणम्

#### अथ रहस्यपुरश्वरणम्। यथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्वरणमिष्यते। कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम्॥१॥

पञ्चग्रन्थेन मिलितं चन्दनादैर्विशेषतः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्धमानतः कानने वने॥२॥

तत्र तद् दिवसे रात्रौ सहस्रं परिमाणतः । एकाकी प्रजपेमन्त्रं स भवेत्कल्पपादपः ॥३॥  
अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥४॥  
सूर्योदयं समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम् । तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥५॥ इति।

मुण्डमालातन्त्रे—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । शरत्काले चतुर्थादिनवस्थन्तं विशेषतः ॥१॥  
भक्तिः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम् । जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये ॥२॥  
अष्टम्यादिनवस्थन्तुपवासपरो भवेत् । कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णाष्टमी भवेत् ॥३॥  
सहस्रसंख्ये जपे तु पुरश्चरणमिष्यते । कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवस्थन्तं महोत्सवे ॥४॥  
अष्टमीं नवमीं रात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः । दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्यमांसादिभिर्युतम् ॥५॥  
षट्सहस्रं जपेमन्त्रं नित्यं भक्तिपरायणः । चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी ॥६॥  
तावज्जप्त्वा महेशानि पुरश्चरणमिष्यते । केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धा भवन्ति हि ॥७॥

इत्यादिकं वीरसाधनाद्याचारादि प्रागुक्तं बोद्धव्यम्।

रहस्य पुरश्चरण—अथवा दूसरे प्रकार का पुरश्चरण कहता हूँ। मंगल या शनिवार को एक नरमुण्ड ले आये। पञ्चगव्य में चन्दनादि मिलाकर उसमें उसे डुबो दे। जंगल की भूमि में एक विता गहरा खोदकर उसे गड़ दे। मंगल और शनिवार की रात में अकेले उस पर बैठकर एक सहस्र जप निर्जन अन्धकार में करे। इससे साधक कल्पवृक्ष के समान हो जाता है।

अथवा दूसरे प्रकार का पुरश्चरण करे। दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी में सूर्योदय से सूर्योस्त तक निरातंक जप करे तो जापक सभी सिद्धियों का स्वामी होता है।

मुण्डमाला तन्त्र में दूसरे प्रकार का पुरश्चरण इस प्रकार कहा गया है—शरत् काल में विशेष रूप से चतुर्थी से नवमी तक भक्तिसहित देवी की पूजा करके रात में अकेले निर्जन अन्धकार में एक हजार जप करे। अष्टमी-नवमी में उपवास करे। कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके अगली कृष्णाष्टमी तक तीस दिनों में प्रतिदिन एक हजार जप करे। इससे पुरश्चरण पूर्ण होता है। तदनन्तर कृष्ण चतुर्दशी से नवमी तक महोत्सव करे। तदनन्तर अष्टमी-नवमी में की रात्रि विशेष पूजा करे। दशमी में पारण मांस-मछली के साथ करे। नित्यं भक्तिपरायण होकर चतुर्दशी से चतुर्दशी तक छः हजार जप करे तो पुरश्चरण पूर्ण होता है। केवल जप करने से ही मन्त्र सिद्ध होता है।

ताराभेदः

अथ श्यामातारयोर्मन्त्राणां लघुद्वारकमस्तु तत्रान्तरे—  
ताराभेदा अथोच्यन्ते शीग्रसिद्धिप्रदायिनः । वह्निवामाक्षिबिन्दाद्या कामिका भुवनेश्वरी ॥१॥  
भुवनेशी वर्मरुद्धा फडन्ता प्रणवादिका । सप्ताक्षरी महाविद्या विरिञ्छिसमुपासिता ॥२॥

‘ॐत्रीहीहीहूं फट्’ इति स्वरूपम्। तथा—

वाक्शक्तिः कमला कामो हंसोऽनुग्रहसर्गवान् । वर्मोश्वरारे वर्मस्त्रं विष्णवच्या द्वादशाक्षरी ॥३॥

‘ऐंहींश्रीकल्तींसौः हुं उग्रतारे हुं फट्’ इति स्वरूपम्। तथा—

तारं वर्म शिवा कामो मनुसर्गयुतो भृगुः । वर्मस्त्रिमेषा सप्ताणा सिद्धिदा विष्णुसेविता ॥४॥

‘ॐहुंहींकल्तींसौः हुं फट्’ इति स्वरूपम्।

एतयोः पञ्चमे बीजे सकारो हादिरन्तिमः । तदा विद्याद्वयं प्रोक्तं चतुर्मुखसमर्थितम् ॥५॥

‘ऐंहींश्रीकल्तींहसौः हुं उग्रतारे हुं फट् । ॐहुंहींकल्तींहसौः हुं फट्’ इति स्वरूपद्वयम्। ‘तारो माया वर्ममाया

**वर्माखं च रसाक्षरी। 'ॐ ह्रीं हं ह्रीं हुं फट्' इति स्वरूपम्।**

श्यामा एवं तारा के मन्त्रों के लघु उद्धार क्रम तन्नान्तर में इस प्रकार कहा गया है—शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले तारा के मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. ॐ त्रीं ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। यह सप्ताक्षरी मन्त्र ब्रह्मा द्वारा उपासित है।
२. ऐं ह्रीं श्रीं कर्तीं सौः हुं उग्रतारे हुं फट्। यह द्वादशाक्षरी मन्त्र विष्णु द्वारा उपासित है।
३. ॐ हुं ह्रीं कर्तीं सौः हुं फट्। यह विष्णु द्वारा उपासित सप्ताक्षरी मन्त्र है।
४. ऐं ह्रीं श्रीं कर्तीं हसौः हुं उग्रतारे हुं फट्।
५. ॐ हुं ह्रीं कर्तीं हसौः हुं फट्। यह दोनों मन्त्र ब्रह्मा द्वारा उपासित है।
६. ॐ ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। यह षड्क्षर मन्त्र है।

#### एकजटाविद्याभेदः

तथा—

हरिरग्नित्रिमूर्तीन्दुयुग्वर्घपुटिताद्रिजा । अस्त्रान्ता पञ्चवर्णेयं प्रोक्ता एकजटाह्या ॥६॥

'त्रीं हं ह्रीं हुं फट्' इति स्वरूपम्। तथा—

रेपशान्तीन्दुयुग् णान्तो वर्माखं कामवाग्भवे । नारायणोपासितेयं पञ्चाणीं सर्वसिद्धिदा ॥७॥

'त्रीं हुं फट्क्लीऐं' इति स्वरूपम्।

अमूषामष्टविद्यानामृषिः शक्तिर्विशिष्ठजः । गायत्रीतारके छन्दोदेवते परिकीर्तिते ॥८॥

न्यासं तु पूर्ववत् कृत्वा ध्यायेतारां हृदम्बुजे ।

श्वेताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं सद्भूषणां चन्द्रकलावतंसाम् ।

कर्त्रीकपालाञ्छितपाणिपद्मां तारां त्रिनेत्रां प्रभजेऽखिलदर्शी ॥९॥

जपपूजादिकं सर्वमासां पूर्ववदाचरेत् । मधुयुक्तरमास्नेन होमाद् विद्यानिधिर्भवेत् ॥१०॥

रक्तां वशे स्वर्णवर्णां स्तम्भने यारणेऽसिताम् । उच्चाटने धूम्रवर्णां शान्तौ श्वेतां स्मरेदिमाम् ॥११॥

भूरिणा किमिहोकेन विद्या एताः प्रसाधिताः । पूरयन्त्यखिलं नृणां मनोरथमिह ध्रुवम् ॥१२॥ इति।

तथा—

मायाहृदगवत्येकजटे मम जलं स्थिरा । वह्यासनगता पुष्यं प्रतीच्छानलवल्लभा ॥१३॥

द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रस्तारादि पूर्वसिद्धिदः ।

'ॐ ह्रीं नमो भगवत्येकजटे मम वत्रपुष्यं प्रतीच्छ स्वाहा' इति स्वरूपम्।

ऋषिः पतञ्जलिश्छन्दो गायत्रेकजटा पुनः । देवता दीर्घषट्काद्यमायया स्यात् षडङ्गकम् ॥२१॥

ध्यानार्चनप्रयोगांस्तु कुर्यात् पूर्वोक्तमन्तवत् । इति।

एकजटा मन्त्र के भेद इस प्रकार है—

१. त्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। यह पञ्चाक्षर मन्त्र है।

२. त्रीं हुं फट् कर्तीं ऐं। यह पञ्चाक्षरी मन्त्र नारायण द्वारा उपासित है।

उपर्युक्त आठों विद्याओं के ऋषि वसिष्ठपुत्र शक्ति हैं, छन्द गायत्री है और देवता तारा है। पूर्ववत् न्यास करके हृदय कमल में तारा का इस प्रकार ध्यान करे—

श्वेताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं सद्भूषणां चन्द्रकलावतंसाम् । कर्त्रीकपालाञ्छितपाणिपद्मां तारां त्रिनेत्रां प्रभजेऽखिलदर्शी ॥।

इनके जप-पूजादि पूर्ववत् ही किये जाते हैं। मधुयुक्त परमात्मा से हवन करने पर साधक विद्या का खजाना हो जाता

है। देवी का ध्यान वश्य कर्म में लाल वर्ण का, स्तम्भन में स्वर्ण वर्ण का, मारण में काले वर्ण का, उच्चाटन में धूम वर्ण का एवं शान्ति में श्वेत वर्ण का करना चाहिये। बहुत क्या कहा जाय, इस विद्या के साधन से निश्चित रूप से मनुष्य के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

३५ हीं नमो भगवति एकजटे मम वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा। यह बाईंस अक्षरों का एकजटा का मन्त्र पूर्ण सिद्धि प्रदान करने वाला है।

इसके ऋषि पतञ्जलि, छन्द गायत्री और देवता एकजटा है। हाँ हीं हूँ हैं हैं हैं: से इसका षड्ङ्ग न्यास किया जाता है। पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही इसके ध्यान, पूजन एवं प्रयोग होते हैं।

### नीलसरस्वतीविद्याभेदविधिः

तथा—

रमा माया हसौ व्यापिन्यासूढौ सर्गसंयुतौ । वर्माञ्चं नीलभगुरस्वत्यै ठद्यमीरितः ॥२२॥  
प्रणवाद्यो मनुः सर्वसिद्धिदो मनुवर्णकः ।

'ॐ श्रीहींहसौः हुंफट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा' इति स्वरूपम्।

ऋष्याद्या ब्रह्म गायत्री तथा नीलसरस्वती । नेत्रचन्द्रेन्दुनेत्राङ्गनेत्रार्णरङ्गकल्पना ॥२३॥  
मन्त्रोत्थितैरथो ध्यायेद् देवीं सर्वेषसिद्धिदाम् ।

घण्टां शिरः शूलमसिं कराग्रैः संबिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसाम् ।

प्रमर्षतीं पादतले पशुं तां भजे मुदा नीलसरस्वतीं त्वाम् ॥२४॥

जपपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदीरितम् । विशेषाज्जयदा वादे विद्येयं साधिता नृणाम् ॥२५॥ इति।

तथा—

माया सैवानन्तयुक्ता वर्महृत्युता पुनः । तारा महापदाद्या सा भृगुब्रह्मानलान्तिमाः ॥२६॥  
दुस्तरं तारयद्वन्द्वं तरयुमं च ठद्यम्। द्वात्रिंशदर्णा ताराद्या मुनिभिः पूर्ववन्मता ॥२७॥

'ॐ हींहाँहुं नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरं तारय २ तर २ स्वाहा' इति स्वरूपम्। तथा—

विद्याराज्ञीमयो वक्ष्ये सुरेन्द्रस्यपि दुर्लभाम् । लब्ध्वा यां मानवाः स्वेष्टान् साधयन्त्यच्चने रताः ॥१॥

वाड्माया श्रीर्मनोजन्मा हंसोऽनुग्रहबिन्दुयुक् । कामः शक्तिश्च वाबीजं फान्तो लार्यशबिन्दुयुक् ॥२॥

ख्लीबीजं नीलतारे स्यात् सम्बूध्यन्ना सरस्वती । अत्री सरेफौ क्रमतः शेषवामाक्षिसयुतौ ॥३॥

सानुस्वारा कामबीजं फान्तो मांसाग्निबिन्दुकः । सर्गी भृगुवर्गहल्लेखा रमा कामश्च सौद्वयम् ॥४॥

सर्गान्तं भुवनेशानी स्वाहा द्वात्रिंशदक्षरा । महाविद्या समाख्याता सेविता भोगमोक्षदा ॥५॥

'ऐंहींश्रींकलींसौंकर्तींहींएङ्गुँस्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्वांत्रींकलींब्लूंसःऐंहींश्रींकलींसौःसौःहीं स्वाहा' इति स्वरूपम्।

तथा—

ब्रह्मानुष्टुप् सरस्वत्योर्मन्याद्या अङ्गकल्पना । पञ्चपञ्चाष्टपञ्चेषुयुगार्णैर्मन्त्रसंभवैः ॥६॥

नौकासनां सर्पविभूषणाङ्गां कर्त्रीं कपालं चषकं त्रिशूलम् ।

करैर्दधानां नममुण्डमालां त्र्यक्षीं भजे नीलसरस्वतीं ताम् ॥७॥

१. ३५ श्रीं हीं हसौः हुं फट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा। चौदह अक्षरों का यह मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है।

इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता नीलसरस्वती हैं। मन्त्र के २, १, १, २, ६, २ अक्षरों से षड्ङ्ग न्यास किया जाता है। तदनन्तर समस्त मनोरथों को देने वाली देवी का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

घण्टां शिरः शूलमसिं कराग्रैः संबिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसाम्। प्रमर्षतीं पादतले पशुं तां भजे मुदा नीलसरस्वतीं त्वाम् ॥

इसके जप-पूजादि सब कुछ पूर्ववत् ही होते हैं। इस विद्या की साधना से विशेष रूप से वाद-विवाद में जप प्राप्त होता है।

मुनियों द्वारा स्वीकृत तारा का बत्तीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—३० हीं हां हुं नमस्तारायै महातारायै सकल-दुस्तरं तारय तर तर स्वाहा।

इन्द्र को भी दुर्लभ विद्याराजी विद्या है, जिसे प्राप्त करके उसके अर्चन में रत होकर मनुष्य अपने समस्त मनोरथ को पूर्ण करता है। विद्याराजी विद्या इस प्रकार है—ऐं हीं श्रीं क्लीं सौं: क्लीं हीं ऐं ब्लूं स्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः: ऐं हीं श्रीं क्लीं सौं: सौं: हीं स्वाहा। बत्तीस अक्षरों की इस महाविद्या के साधना से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् और देवता सरस्वती हैं। मन्त्र के ५, ५, ८, ५, २, २ वर्णों से षड्ङ्ग न्यास किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

नौकासनां सर्पविभूषणाङ्कां कर्तीं कपालं चषकं त्रिशूलम्। करैर्दधानां नममुण्डमालां त्र्यक्षीं भजे नीलसरस्वतीं ताम्॥

चतुर्लक्ष्मं जपेद्विद्यां किंशूकैर्मधुरान्वितैः। दशांशं जुहुयाद्वाहौ श्रद्धापूर्वमतन्द्रितः ॥८॥

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना। आदौ त्रिकोणं षट्कोणमष्टषोडशपत्रके ॥९॥

द्वात्रिंशत्पत्रमञ्जं स्याच्चतुःषष्ठिदलं ततः। त्रिरेखाढ्यधरागेहं चतुरस्त्रमतः परम् ॥१०॥

एवं यन्नं समालिख्य बाह्यतः पूजनं चरेत्। चतुरस्त्राग्निकोणेषु विघ्नेशं परिपूजयेत् ॥११॥

वायुकोणे क्षेत्रपालमीशाने भैरवं तथा। नैऋते योगिनीस्त्वचर्च्या वामभागे गुरुं यजेत् ॥१२॥

भूगृहस्याद्यरेखायामणिमा लघिमा तथा। महिमा चेशिता पूज्या वशिता कामपूरणी ॥१३॥

गरिमा प्राप्तिरित्येतः पूज्या: पूर्वादिदिक्कमात्। धरागृहस्य रेखायां द्वितीयायां तु भैरवान् ॥१४॥

असिताङ्गो रुश्छण्डः क्रोधोन्मत्तकपालिनः। भीषणश्वाथ संहार एतेऽष्टौ भैरवाः स्मृताः ॥१५॥

भूगोहतृतीयायां रेखायां भातरः पुनः। ब्राह्मी माहेश्वरी चाथ कौमारी वैष्णवी तथा ॥१६॥

वाराहीन्द्राणिका चैव चामुण्डा सप्तमी स्मृता। महालक्ष्मीर्दलेष्वचर्च्याः पूर्वादिषु यथाक्रमम् ॥१७॥

इत्यमाद्यावृत्तिं चेष्ट्वा योनिमुद्रां प्रदशयेत्। चतुःषष्ठिदले पद्मे शक्तीरचेंच्च तावतीः ॥१८॥

कुलेशीं कुलनदा च वागीशीं भैरवी तथा। उमा श्रीं शान्तपा चण्डा धूग्रा काली कपालिनी ॥१९॥

महालक्ष्मीश्च कङ्काली रुद्रकाली सरस्वती। वाग्वादिनी च नकुली भद्रकाली शशिप्रभा ॥२०॥

प्रत्यङ्गिरा सिद्धलक्ष्मीरमृतेशी च चण्डिका। खेचरी भूचरी सिद्धा कामाख्या हिङ्गुला धरा ॥२१॥

जया च विजया चाथ जिता नित्यापराजिता। विलासिनी तथा घोरा चित्रा मुथा धनेश्वरी ॥२२॥

सोमेश्वरी महाचन्द्रा विद्या हंसी विनायका। वेदगर्भा तथा भीमा उग्रा वैद्या च सदतिः ॥२३॥

उग्रेश्वरी चन्द्रगर्भा ज्योत्स्ना सत्या यशोवती। कुलिका कामिनी कामा ज्ञानवत्यथ डाकिनी ॥२४॥

राकिणी लाकिनी चाथ काकिनी शाकिनीत्यपि। हाकिनीति चतुःषष्ठिशक्तयः सिद्धिदायिकाः ॥२५॥

दशयेत् खेचरीमुद्रां द्वितीयावरणेऽर्चिते। द्वात्रिंशत्पत्रमध्ये तु पूज्या एतास्तु शक्तयः ॥२६॥

किराता योगिनी वीरा वेताला यक्षिणी हरा। ऊर्ध्वकेशी च मातङ्गी मोहिनी वंशवर्द्धिनी ॥२७॥

मालिनी ललिता दूती मनोजा पद्मिनी धरा। बर्बरी छत्रनेत्री विचर्चिका ॥२८॥

मातुका दूरदर्शा च क्षेत्रेशी रङ्गिनी नदी। शान्तिर्दीप्ता वत्रहस्ता धूग्रा श्रेता सुमङ्गला ॥२९॥

इच्छा तृतीयावरणं बीजमुद्रां प्रदशयेत्। ततः षोडशपत्रेषु पूज्याः षोडशशक्तयः ॥३०॥

मुद्धा श्रीः कुरुकुल्ला च त्रिपुरा तोतला क्रिया। रतिः प्रीतिस्तथा बाला सुमुखी श्यामलालिवा ॥३१॥

पिशाची च विदारी च शीतला वत्रयोगिनी। सर्वेश्वरीति संपूज्य सृणिमुद्रां प्रदशयेत् ॥३२॥

अष्टपत्रे स्वस्वमन्त्रैर्यजेदष्ट सरस्वतीः। इति।

पुरश्रण के लिये इस विद्या का जप चार लाख करे। श्रद्धापूर्वक निरालस होकर उसका दशांश हवन मधुगान्वित पलाश के फूलों से करे। विहित मार्ग से पूर्वोक्त पीठ पर पूजा करे। पूजन यन्त्र हेतु पहले त्रिकोण बनावे। उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर अष्टदल पद्म, उसके बाहर षोडशदल पद्म, उसके बाहर बत्तीस दल पद्म, उसके बाहर चौंसठ दल पद्म और उसके बाहर तीन भूपुर बनाये। इस प्रकार के यन्त्र को बनाकर सामने स्थापित करके पूजा करे।

चतुरस के अग्नि कोण में गणेश की पूजा करे। वायव्य में क्षेत्रपाल की, ईशान में भैरव की और नैऋत्य में योगिनियों की पूजा करे। वाम भाग में गुरुओं की पूजा करे। बाहर से भूपुर की पहली रेखा में अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, कामपूरणी, गरिमा एवं प्राप्ति की पूजा पूर्वादि क्रम से करे। भूपुर की दूसरी रेखा में आठ भरवों की पूजा करे, वे हैं—असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण, संहरा। भूपुर की तृतीय रेखा में अष्टमातुकाओं की पूजा करे; वे हैं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्नी, चामुण्डा और महालक्ष्मी। इनकी पूजा भी पूर्वादि क्रम से प्रथमावरण में करे और योनिमुद्रा दिखावे।

चौंसठ दल में चौंसठ शक्तियों की पूजा करे, वे हैं—कुलेशी, कुलनन्दा, वार्गीशी, भैरवी, उमा, श्री, शान्ता, चण्डा, धूम्रा, काली, कपालिनी, महालक्ष्मी, कंकाली, रुद्रकाली, सरस्वती, वाग्वादिनी, नकुली, भद्रकाली, शशिप्रभा, प्रत्यंगिरा, सिद्धलक्ष्मी, अमृतेशी, चण्डिका, खेचरी, भूचरी, सिद्धा, कामाख्या, हिंगुला, धरा, जया, विजया, जिता, नित्या, अपराजिता, विलासिनी, घोरा, चित्रा, मुष्ठा, धनेश्वरी, सोमेश्वरी, महाचंद्रा, विद्या, हंसी, विनायका, वेदार्पा, भीमा, उग्रा, वैद्या, सद्गति, उग्रेश्वरी, चन्द्रगर्भा, ज्योत्स्ना, सत्या, यशोवती, कुलिका, कामिनी, कामा, ज्ञानवती, डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी। ये चौंसठ शक्तियाँ सिद्धिदायिनी हैं। इन्हें खेचरी मुद्रा दिखाये। यह द्वितीयावरण का पूजन होता है।

बत्तीस पत्रों में पूज्या शक्तियों के नाम ये हैं—किराता, योगिनी, वीरा, वेताला, यक्षिणी, हरा, ऊर्ध्वकेशी, मातंगी, मोहिनी, वंशवर्द्धिनी, मालिनी, ललिता, दूती, मनोजा, पद्मिनी, धरा, बर्बरी, छत्रहस्ता, रक्तनेत्री, विचर्चिका, मातृका, दूरदर्शिका, क्षेत्रेशी, रंगिनी, नदी, शान्ति, दीप्ता, वज्रहस्ता, धूम्रा, श्वेता, सुमंगला, इच्छा। तृतीयावरण में इनका पूजन कर बीजमुद्रा दिखावे।

चतुर्थ आवरण में षोडश दल में पूज्या सोलह शक्तियाँ ये हैं—मुग्धा, श्रीः, कुरुकुल्ला, त्रिपुरा, तोतला, क्रिया, रति, प्रीति, बाला, सुमुखी, श्यामलाविला, पिशाची, विदारी, शीतला, वज्रयोगिनी एवं सर्वेश्वरी। इन्हें पूजकर सृणिमुद्रा दिखावे। पञ्चम आवरण अष्टदल कमल में अपने-अपने मनों से आठ सरस्वती की पूजा करे।

#### वागीश्वरीमन्त्रः

ता यथा—

तारो हृल्लोहितः सत्यो वैकुण्ठानन्तसंयुतः । भृगुर्नेशब्दरूपे वाग् माया कामो वद द्वयम् ॥१॥  
वाग्वादिन्यनिकान्तान्तो मन्त्रो वेदाक्षिवर्णवान् । अनेन मनुना पूर्वपत्रे वागीश्वरीं यजेत् ॥२॥

'ॐनमः पद्मासनं शब्दरूपे ऐंहींकर्त्तीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा' इति वागीश्वरीमन्त्रः ॥१॥

वागीश्वरी मन्त्र—३० नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐं हीं कर्त्तीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा'। इस मन्त्र से पूर्व पत्र में वागीश्वरी की पूजन करे।

#### चित्रेश्वरीमन्त्रः

वराहंसचक्रेन्द्रसंयुता भुवनेश्वरी । वदयुग्मं च चित्रेश्वरि वाग्बीजानलप्रिया ॥

द्वादशार्णेन मनुना वहौ चित्रेश्वरीं यजेत् ।

'हसकलहीं वदवद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा' इति चित्रेश्वरीमन्त्रः ॥२॥

चित्रेश्वरी मन्त्र—अग्निकोण में चित्रेश्वरी की पूजा करे। इनका द्वादशाक्षरी मन्त्र इस प्रकार है—हसकलहीं वदवद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा।

## कुलजामन्त्रः

तथा—

वाग्बीजं कुलजे वाक्य सरस्वत्यनलाङ्गना । एकादशार्णमनुना कुलजां दक्षिणे यजेत् ॥४॥  
 ‘ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा’ इति कुलजामन्त्रः ॥३॥

कुलजा मन्त्र—दक्षिण पत्र में कुलजा का पूजन उनके एकादश वर्ण वाले इस मन्त्र से करे—ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा ।

## कीर्तीश्वरीमन्त्रः

वाड्माया श्रीवर्दद्वन्द्वं कीर्तीश्वरि वसुप्रिया । त्रयोदशार्णेन यजेन्नैरूर्त्ये कीर्तिनायिकाम् ॥५॥  
 ‘ऐं हीं श्रीं वद वद कीर्तीश्वरि स्वाहा’ इति कीर्तीश्वरीमन्त्रः ॥४॥

कीर्तीश्वरी मन्त्र—नैरूर्त्य पत्र में कीर्ति नायिका की पूजा त्रयोदश वर्ण वाले इस मन्त्र से करे—ऐं हीं श्रीं वद वद कीर्तीश्वरि स्वाहा ।

## अन्तरिक्षसरस्वतीमन्त्रः

वाड्माया चान्तरिक्षान्ते सरस्वति च ठद्ययम् । रव्यर्णेन यजेत् प्रत्यगन्तरिक्षसरस्वतीम् ॥६॥  
 ‘ऐं हीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा’ इति अन्तरिक्षसरस्वतीमन्त्रः ॥५॥

अन्तरिक्ष सरस्वती मन्त्र—पश्चिम पत्र में अन्तरिक्ष सरस्वती की पूजा उनके इस द्वादशाक्षरी मन्त्र से करे—ऐं हीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा ।

## घटसरस्वतीमन्त्रः

वराहहंसचण्डीशजनार्दनकृशानुयुक् । सेन्दुर्योनिश्च नकुलिभृगुरधेन्दुयुग्मनुः ॥७॥

अरुणाभृगुशिख्यगिनसंयुता शान्तिरिन्दुयुक् । वाड्मायाश्रीषुबीजानि घाँ घटान्ते सरस्वति ॥८॥  
 घटे वदतरद्वन्द्वं रुद्राज्ञया युता मम । अभिलाषं कुरुद्वन्द्वं प्रेयसी कृष्णवर्त्मनः ॥९॥

गुणवेदार्णेन यजेद्वायौ घटसरस्वतीम् ।

‘हसखफें हसाँ हसफीं ऐं हीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूंसः घीं घटसरस्वति घटे वदतर वदतर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा’ इति घटसरस्वतीमन्त्रः ॥६॥

घटसरस्वती मन्त्र—वायव्य पत्र में घटसरस्वती की पूजा उनके तैतालीस अक्षरों वाले इस मन्त्र से करे—हस्खे हस्खौः हस्खीः ऐं हीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः घीं घटसरस्वति घटे वदतर वदतर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा ।

## नीलामन्त्रः

भूधरेन्द्रयुतोऽर्धीशो ब्रिन्दाव्यो वें वदद्वयम् । त्रीहुंफट् नववर्णेन नीलामर्चेन्दुदग्दिशि ॥१०॥

‘ब्लूंवे वद वद त्रीहुंफट्’ इति नीलामन्त्रः ॥७॥

नीला मन्त्र—उत्तर दिशा के पत्र में नीला की पूजा इस नवाक्षरी मन्त्र से करे—ब्लूं वें वद वद त्रीं हुं फट् ।

## किणिसरस्वतीमन्त्रः

वाग्बीजमधराक्रान्तो नकुली बिन्दुमान् पुनः । शान्तिच्छ्राद्यमाकाशं किणिद्वन्द्वं सदृग्जलम् ॥११॥

कूर्मद्वन्द्वं भगाक्रान्तं नवार्णेनामुना यजेत् । मन्त्रेनेशानदिग्भागे किणिसज्जं सरस्वतीम् ॥१२॥

‘ऐं हीं हीं किणि किणि विच्चे’ इति किणिसरस्वतीमन्त्रः ॥८॥

किणि सरस्वती मन्त्र—ईशान कोण के पत्र में किणि सरस्वती की पूजा इस नवार्ण मन्त्र से करे—ऐं हीं हीं किणि किणि विच्चे । इस प्रकार पञ्चम आवरण की पूजा करके क्षोभमुद्रा दिखावे ।

पञ्चमावृतिमाराध्य क्षोभमुद्रां प्रदर्शयेत् । डाकिन्याद्याः पूर्वमुक्ताः षट्कोणे षट् प्रपूजयेत् ॥१३॥  
दर्शयेद् द्राविणीमुद्रां षष्ठावरणपूजने । परा बाला भैरवीति पूजनीयान्निकोणके ॥१४॥  
सप्तमावृतिपूजायां मुद्रां कुर्याच्च कर्षणीम् ।

**षष्ठ आवरण—**पूर्वोक्त डाकिनी आदि की पूजा षट्कोण में करे। षष्ठावरण की पूजा में द्राविणी मुद्रा दिखावे।  
**सप्तम आवरण—**त्रिकोण में परा बाला भैरवी की पूजा करे। सप्तम आवरण की पूजा में आकर्षणी मुद्रा दिखावे।

### ताराबलिद्रव्यम्

इत्यं संपूज्य तारेशीं मनोऽभीष्टमवान्युत् ॥१५॥

गणेशाय क्षेत्रपालयोगिन्यै भैरवाय च । तारायै चापि वितरेद्वलिं नित्यं चतुष्पथे ॥१६॥  
मांसमाषान्नशाकाज्यपायसापूपकादिकम् । बलिद्रव्यं समाख्यातं तेनेष्टं सा प्रयच्छति ॥१७॥

तारेशी की इस प्रकार की पूजा से मनोरथ पूरा होता है। गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनी, भैरव, तारा की बलि नित्य चौराहे पर देवे। मांस, माष, अन्न, शाक, आज्य, पायस, पूआ आदि बलि द्रव्य कहे गये हैं। इनकी बलि देने से अभीष्ट की सिद्धि होती है।

### गुणधेदेन त्रिधा ध्यानम्

तस्या ध्यानं त्रिधा वच्चि सत्त्वादिगुणभेदतः । श्वेताम्बराढ्यां हंसस्थां मुक्ताभरणभूषिताम् ॥१८॥  
चर्तुवक्त्रामष्टभुजैर्दधानां कुण्डिकाम्बुजे । वराभये पाशशक्ती अक्षस्त्रक्षुष्मालिके ॥१९॥  
शब्दपाथोनिधौ ध्यायेत्सुष्टिध्यानं समीरितम् । रक्ताम्बरां रक्तसिंहासनस्थां हेमभूषिताम् ॥२०॥  
एकवक्त्रां वेदसंख्यैर्भूजैः संबिभृतीं क्रमात् । अक्षमालां पानपात्रमभयं वरमुत्तमम् ॥२१॥  
श्वेतद्वीपस्थितां ध्यायेत्स्त्रिस्थितध्यानं समीरितम् । कृष्णाम्बराढ्यां नौसंस्थामस्थ्याभरणसंयुताम् ॥२२॥  
नववक्त्रां भुजैरष्टादशभिर्दधतीं वरम् । अभयं परशुं दर्वीं खड़गं पाशुपतं हलम् ॥२३॥  
भिण्डं शूलं च मुशलं कर्णीं शक्तिं त्रिशीर्षकम् । संहाराळं वज्रपाशीं खट्वांगं गदया सह ॥२४॥  
रक्ताम्भोद्धौ स्थितां ध्यायेत्संहारध्यानमीदशम् । कर्मसु कूरसौम्येषु ध्यायेन्मन्त्री यथातथा ॥२५॥

सत्त्वादि गुणधेद से उसके तीन प्रकार के ध्यान निम्नवत् हैं—

१. सुष्टि ध्यान—शब्दपाथोनिधि में स्थित देवी का सुष्टिध्यान इस प्रकार किया जाता है—

श्वेताम्बराढ्यां हंसस्थां मुक्ताभरणभूषिताम् । चर्तुवक्त्रामष्टभुजैर्दधानां कुण्डिकाम्बुजे ।  
वराभये पाशशक्ती अक्षस्त्रक्षुष्मालिके ।

२. स्थिति ध्यान—श्वेत द्वीपस्थित देवी का ध्यान स्थितध्यान कहलाता है, जो इस प्रकार है—

रक्ताम्बरां रक्तसिंहासनस्थां हेमभूषिताम् । एकवक्त्रां वेदसंख्यैर्भूजैः संबिभृतीं क्रमात् ।  
अक्षमालां पानपात्रमभयं वरमुत्तमम् ।

३. संहार ध्यान—रक्त सागर में स्थित देवी का ध्यान संहारध्यान कहलाता है, जो इस प्रकार है—

कृष्णाम्बराढ्यां नौसंस्थामस्थ्याभरणसंयुताम् । नववक्त्रां भुजैरष्टादशभिर्दधतीं वरम् ।

कूर-सौम्य कर्मों के अनुसार साधक ध्यान करे।

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री गिरा वाचस्पतिर्भवेत् । दूर्वोत्थया च लेखिन्या रोचनारसयुक्तया ॥२६॥  
बालस्याच्छ्रनालस्य जिह्वायां विलिखेन्मनुम् । संप्राप्ते चाष्टमे वर्षे सर्वशास्त्रज्ञतामियात् ॥२७॥  
अयुतमन्त्रसंजप्तां वचां बालककण्ठतः । बधीयात् पूर्वसंप्रोक्तं बलिं दद्याद्विधानतः ॥२८॥

द्वादशे वत्सरे प्राप्ते भक्षिता सा कवित्वकृत् । ज्योतिष्मतीभवं तैलं कर्षमात्रं तु मन्त्रितम् ॥२९॥  
उपरागे जलस्थो यो जग्धा वाचस्पतिर्भवेत् । चतुष्पथे इमशाने वा हित्वा लज्जां भयं तथा ॥३०॥  
जपेच्छवं समारह्य विद्यां तत्परमानसः । शृणोत्यसाक्षमुं शब्दं निशीथे जपतत्परः ॥३१॥  
पारगो भव विद्यानां सर्वसिद्धिमाप्नुहि ।

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने पर साधक वाणी से वाचस्पति हो जाता है। दूब की लेखनी से गोरोचन की स्याही से नाल न कटे हुये बालक के जीभ पर मन्त्र लिखे। इससे बालक आठ वर्ष की उम्र में सभी शास्त्रों का जानकार हो जाता है। दश हजार मन्त्रजप से मन्त्रित वच बालक के गले में बाँधकर विधिपूर्वक पूर्वोक्त बलि प्रदान करे। बाहर वर्ष की उम्र में उसे खाकर बालक कविता करने लगता है। सोलह ग्राम ज्योतिष्मती के तेल को मन्त्रित करके ग्रहणकाल में जल में खड़े होकर जो खाता है, वह वाचस्पति हो जाता है। चौराहे में या इमशान में लज्जा-भय छोड़कर शव पर चढ़कर जो तत्पर मन से विद्या का जप करता है, वह रात में यह शब्द सुनता है—विद्याओं में पारंगत हो जाओ एवं सभी सिद्धियों को प्राप्त करो।

### विद्वत्कुलसमुद्भूतमष्टवर्ष शिशुद्वयम् ॥३२॥

उपवेश्य तथोर्मूर्धिं करौ द्याज्जपेन्मनुम् । वेदान्तन्यायसंयुक्त्या विवदेते उभावपि ॥३३॥  
यः कौतुकी स आश्र्यं विद्यायाः पश्यतु शूद्रम् । विधाय वेदिकां रम्यां विजने कदलीवने ॥३४॥  
तत्रासीनो जपेद्विद्यामेकलक्षं विधानतः । दासीचालितदोलायामारुदां सुस्मिताननाम् ॥३५॥  
पुनागचंपकाशोकधरां विधिनसंस्थिताम् । एवं ध्यायन् भगवतीं बलिं द्याज्जपान्ततः ॥३६॥  
एवं कुर्वन्नरः सर्वमधीष्टं लभ्तेऽचिरात् । निर्वासाः विशिखाः प्रेतभूमिष्ठो यो जपेन्मनुम् ॥३७॥  
अयुतं कृष्णभूताहे स वाक्सिद्धिमवाप्नुयात् । विद्यां सौख्यं धनं पुष्टिमायुः कीर्तिबलं स्त्रियः ॥३८॥

रूपं कामयमानेन तारा सेव्या निरन्तरम् । इति।

विद्वानों के कुल में उत्पन्न आठ वर्ष के दो लड़कों को बैठकर उनके माथे पर हाथ रखकर मन्त्र जप करे। इससे दोनों बालक वेदान्त एवं न्याययुक्त वाणी बोलने लगते हैं। जो कौतुकी हों, वे इस विद्या का आश्र्य अवश्य देखें। निर्जन केले के जंगल में सुन्दर वेदी बनावे। उस पर बैठकर विधान से एक लाख जप करे एवं इस प्रकार देवी का ध्यान करे—

दासीचालितदोलायामारुदां सुस्मिताननाम् । पुनागचंपकाशोकधरां विधिनसंस्थिताम् ॥

इस प्रकार का ध्यान करके देवी को जप के अन्त में बलि प्रदान करे। ऐसा करने से साधक अल्प काल में ही सभी अभीष्ट प्राप्त कर लेता है। इमशान में जो साधक निर्वस्त्र खुली शिखा होकर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी भौमवार में दश हजार जप करता है, उसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। विद्या, सौख्य, धन, पुष्टि, आयु, कीर्ति, बल, स्त्री, रूप की लालसा वाले को निरन्तर तारा की पूजा करनी चाहिये।

### मन्त्रान्तरोद्धारः

एकवीराकल्पे—  
लिखेत् खं कूर्चसंयुक्तं रौद्रं त्रैगुण्यमेव च । विधिविष्णुमहेशानां स्वशक्त्या क्रमयोगतः ॥१॥  
एषा मता महाविद्या सर्वसिद्धिप्रदा सदा ।

अस्यार्थः, खं स्वरूपं, रौद्रं, प्रासादं, त्रैगुण्यं प्रणवं, विधिशक्तिर्वाग्भवं, विष्णुशक्तिः रमाबीजं, महेश-शक्तिभूवनेश्वरीबीजम् । 'खंहूहसौः३०ऐंश्रीहंहीं' ध्यानाचन्द्रप्रयोगश्च पूर्ववद्वेत्। प्रणवं भूवनेश्वरीं हां कूर्चबीजं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय प्रणवयुग्मं वह्निजाया। तथा च नीलतत्रे—

प्रणवं पूर्वमुद्भूत्य हल्लेखाबीजमुद्भरेत् । गगनं शेषसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम् ॥१॥  
कूर्चबीजं च हृदयं तारायै च समुद्भरेत् । सकलदुस्तरं तारय तारयेति तथा प्रनः ॥२॥

तारयुग्मं वहिजाया मन्त्रोऽयं सुरपादपः। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाचरेत्॥३॥

‘ॐ ह्रीं हौं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ॐ ॐ स्वाहा’ अस्या पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः। तदुक्तं तत्रैव—‘चतुर्लक्षजपेनास्या: सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति च’ मायातन्त्रे—

तारा चोग्रा महोग्रा च वत्रा नीला सरस्वती। कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृताः॥१॥

उष्णवर्णगतो जीवो निगमस्वरसंयुतः। नादबिन्दुसमाक्रान्तस्तत्त्वरशिमसमन्वितः॥२॥

कपितं वामकर्णस्थं नादाद्यविन्दुशेखरम्। पार्श्वान्त्यं च तथा जान्त्यं शवान्तं परिकीर्तितम्॥३॥

मध्यादिमायाकूर्चान्तं द्वितीयं मन्त्रमुद्भूतम्। विपरीतं त्रिधा ज्ञेयं कूर्चाद्यं च तुरीयकम्॥४॥

मायादिकं च कूर्चान्तं पञ्चमं परिकीर्तितम्। मायामध्यगतं षष्ठं द्वितीयान्तं च सप्तमम्॥५॥

अष्टमं कूर्चमध्यं स्यादेवं भेदाष्टकं भवेत्।

उष्णवर्णो रेफः। जीवो हकारः। निगमस्वरः ईकारः। तत्त्वरशिमर्थधूबीजम्। कपिलो हकारः। शवान्तं फडन्तम्। तेन पञ्चाक्षर उद्भूतः। फडन्तश्चैका विद्या। तेन पञ्चाक्षरश्च प्रकृतिः। मध्यादिति, तेन वधूमाया कूर्च फट्। विपरीतमिति, तेन कूर्चवधूमायाफट्। कूर्चेति कूर्चमायावधूफट्। मायावधूकूर्च फट्। वधूमायाकूर्च फट्। मायाकूर्चवधूफट्। अष्टममिति वधूकूर्चमायाफट्। स्पष्टं यथा—ह्रीं ह्रीं हौं फट्॥१॥ स्त्रीं ह्रीं हौं फट्॥२॥ हूं ह्रीं हौं फट्॥३॥ हूं ह्रीं हौं फट्॥४॥ ह्रीं हौं हौं फट्॥५॥ ह्रीं हौं हौं फट्॥६॥ हूं हौं हौं फट्॥७॥ हूं हौं हौं फट्॥८॥ इति,

ऋषिः स्यादष्टकश्छन्दोऽनुष्टुप्य देवता तथा। शम्भुपली महेशानि चतुर्वर्गेषु योजयेत्॥६॥

त्र्यक्षरस्यैव भेदोऽयं फटौ यत्र न तत्र वै। जाये तु त्र्यक्षरं ज्ञेयं च्यासे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥७॥

काललक्षं जपेन्मन्त्रमेवमुक्तेन वर्त्मना। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाचरेत्॥८॥ इति।

‘प्रणवं तारे तुतारे तत्ता स्वाहा’ तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे—

प्रणवं पूर्वमुद्भूत्य तारे तुतारे च तथा। तत्ता स्वाहेति मन्त्रोऽयं दशाक्षर उदाहतः॥९॥ इति।

अस्या ध्यानं स्वतन्त्रतन्त्रे—

श्यामवर्णा त्रिनयनां द्विभुजां रक्तपङ्कजे। विभ्राणं बहुरूपाभिर्बहुवर्णाभिरावृताम्॥१॥

शक्तिभिः स्मेरवदनां स्मेरमौक्तिकभूषणाम्। रत्नपादुक्योन्यस्तपादाम्बुजयुगां स्मरेत्॥२॥

अस्या: पूजादिकं सर्वं पूर्ववत्। पुरश्चरणं तु दशलक्षजपः। तदुक्तं तत्रैव—

वर्णलक्षं जपेद्वीमान् नियमेन यथाविधि। दशांशं जुहुयान्मन्त्री धृतात्मै रक्तपुष्पकैः॥१॥

‘वाभवं भुवनेश्वरी प्रणवं वाभवं भुवनेश्वरी फट् स्वाहा’ तदुक्तं मातृकार्णवे—

वाग्भवं कुलदेवी च तारकं वाग्भवं तथा। हल्लेखा चाक्षमन्त्रान्ते वहिजायावधिर्मनुः॥१॥

अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो वेदमातुरुन्तमः। पञ्चाङ्गान्यस्य मन्त्रस्य पञ्चबीजैः प्रकल्पयेत्॥२॥

अस्त्रं शोषाक्षरैर्न्यस्य कृतकृत्यो भवेन्नरः। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत्॥३॥ इति।

एकवोक्त श्लोक के उद्धार करने पर मन्त्र होता है—ॐ ह्रीं हौं हूं हसौः ३० ऐं ह्रीं श्रीं। यह महाविद्या सदैव सर्वसिद्धिं देने वाली होती है। इसके ध्यान-अर्चन-प्रयोग पूर्ववत् होते हैं।

नीलतन्त्र के मूलोक्त श्लोकों के उद्धार करने पर मन्त्र होता है—ॐ ह्रीं हौं हूं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ३० ३० स्वाहा। इसके ध्यान-पूजादि पूर्ववत् होते हैं। चार लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है।

मायातन्त्र में कहा गया है कि तारा, उग्रा, महोग्रा, वत्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी और भद्रकाली—ये आठ तारा के स्वरूप हैं। इनके मन्त्र इस प्रकार के हैं—१. ह्रीं श्रीं हौं फट् २. श्रीं ह्रीं हौं फट् ३. हूं ह्रीं हौं फट् ४. हूं ह्रीं श्रीं फट्।

५. हीं स्त्रीं हूं फट्। ६. स्त्रीं हीं हूं फट्। ७. हीं हूं स्त्रीं फट्। ८. स्त्रीं हूं हीं फट्।

इनके ऋषि अष्टक, छन्द अनुष्ठृत तथा देवता शम्भुपत्नी हैं। चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिये इनका विनियोग किया जाता है। जिनमें 'फट्' नहीं होते। वे ऋक्षर मन्त्र के ही भेद हैं। ऋक्षर का जप होता है और न्यास में फट् सहित का प्रयोग होता है। पूर्वोक्त विधान से तीन लाख मन्त्रजप से इसका पुरश्वरण होता है। ध्यान-पूजादि सभी पूर्ववत् होते हैं।

गन्धर्वतन्त्र के मूलोक्त श्लोक का उद्घार करने पर दशाक्षर मन्त्र होता है ३० तारे तुतारे तत्ता स्वाहा। स्वतन्त्र तन्त्र के अनुसार इसका ध्यान श्लोक १-२ है। इसके पूजादि सभी पूर्ववत् होते हैं। इसका पुरश्वरण दश लाख जप से होता है; जैसा कि वहाँ पर कहा भी है—नियम से विधिवत् वर्ण लक्ष जप करे। दशांश हवन धृतात्क लाल फूलों से करे।

मातृकार्णव के मूलोक्त श्लोक १ के उद्घार करने पर अष्टाक्षर मन्त्र होता है—ऐं हीं ३० ऐं हीं फट् स्वाहा। इस अष्टाक्षर मन्त्र को उत्तम वेद माता कहा जाता है। पाँच बीजों—ऐं हीं ३० ऐं हीं से पञ्चाङ्ग न्यास करे। फट् स्वाहा से न्यास करने पर मनुष्य कृतकृत्य होता है। ध्यान-पूजादि सब कुछ पूर्ववत् किया जाता है।

#### पद्मावतीमन्त्रोद्भारः

मत्स्यसूक्ते—

प्रणवं पूर्वमुद्भृत्य पद्मेयुगमं तथैव च । महापद्मेपदं ब्रूयात् पद्मावति पदं ततः ॥१॥

माये स्वाहेति मन्त्रोऽयं प्रोक्तः सप्तदशाक्षरः । पूजा पूर्ववदुद्दिष्टा अर्धरात्रे चतुष्प्यथे ॥२॥

जपमस्याचरेद्यस्तु स स्याद् द्रुतकविस्तथा । हंसश्च प्रणवं माया वधूः कूर्चश्च हंसकः ॥३॥

अष्टाक्षरी महाविद्या हंसाद्यन्ता सुदुर्लभा ।

हंसः प्रणवं माया वधूबीजं कूर्चं हंसः। तदुक्तं स्वच्छन्दसंग्रहे—

शिवबीजं महेशानि शक्तिबीजं ततः परम् । बिन्दुसर्गसमायुक्तं वेदाद्यं तदथः क्रमात् ॥

मायाक्षीवर्मबीजान्तं हंसबीजमुदाहृतम् । एषा त्वष्टाक्षरी विद्या कथिता भूति दुर्लभा ॥

पञ्चाक्षरी च या विद्या हंसाद्यन्ता महोदया । केवलं त्वत्प्रयत्नेन तव स्नेहात् प्रकीर्तिता ॥

अनवोर्जपूजादीन् पञ्चाक्षरीवदाचरेत् ।

अथ श्यामातारायोर्लघुपूजानुकमणिकाप्रसिद्धमन्त्राणामुद्भारक्रमः प्रदर्शयते। तत्रादौ श्यामाया उत्तरतन्त्रे—

वग्द्याद्यां वह्नियुतं रतिबिन्दुसमन्वितम् । त्रिगुणं च ततः कूर्चयुगमं लज्जायुगं ततः ॥१॥

दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववच्च ततः पुनः । ठद्वयेन समायुक्तं मन्त्रमेन विदुर्बधा: ॥२॥ इति।

'क्रीक्रीक्रीहूंहूंहीं दक्षिणेकालिके क्रीक्रीक्रीहूंहूंहींस्वाहा'—अयं मन्त्रराजः। कालिकायै विद्यहे श्यमानवासिन्यै धीमहि तशो घोरा प्रचोदयात्—इति कालीगायत्री। 'क्रीहूंस्त्रीहूंफट्'—इति कालिकायाः कुललिका। 'ऐंहींश्रीऐं परायै अपरायै परापरायै विरूपायै हस्तौः सदाशिवमहाप्रतेपद्यासनाय नमः'—इति कालिकायाः पीठमन्त्रः। 'सिंहव्याघ्रमुखी वृग्मेषमुखी गजवाजिमुखी बिडालमुखी क्रोष्टमुखी हस्वदीर्घमुखी लम्बोदरमुखी हस्वजडा काकजडा लम्बोष्ठी प्रलम्बोष्ठी'—एताः कालिकाया द्वारपालिकाः। '३०हूं महाकाल प्रसीद २ हीं २ स्वाहा'—इति महाकालमन्त्रः। '३०वज्रोदके हूं फट् स्वाहा'—इति जलग्रहणमन्त्रः। '३०हींस्वाहा, ३०हींसुविशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापनिशामयाशेषविकल्पानपनय हूं स्वाहा'—इति मन्त्रद्वयं पादप्रक्षालने। '३०मणिधरि वत्रिणि शिखरिणि सर्ववंशकरिणि महाप्रतिसरे हूं फट् स्वाहा'—इति शिखाब्ध्यनमन्त्रः। '३०रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा'—इति भूमिसेचनमन्त्रः। '३० सर्वविद्धानुत्सारय हूं फट् स्वाहा'—इति विद्धोत्सारणमन्त्रः। '३० पवित्रवत्रभूमे हूं फट् स्वाहा'—इति भूम्यभिमन्त्रणमन्त्रः। 'आः सुरेखे वत्रोरेखे हूं फट् स्वाहा'—इति आसनपूजामन्त्रः। '३०हीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः'—इत्यासनमन्त्रः। '३०शताभिषेके शताभिषेके हूं फट् स्वाहा'—इति पुष्पाधिष्ठानमन्त्रः। '३०पुष्पकेतुराजाहृते शताय सम्यक् समृद्धाय,

पुष्टे पुष्टे महापुष्टे सुपुष्टे पुष्टसंभवे पुष्टचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा'—इति पुष्टाभिमन्त्रमन्त्रः। 'ॐआंहूं फट् स्वाहा'—इति कायवाकिच्चत्तशोधनमन्त्रः। 'रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा'—इत्यात्मरक्षामन्त्रः। 'प्रह्लादामन्दनाथाख्यः सनकानन्द एव च। कुमारानन्दनाथश्च वशिष्ठानन्द एव च॥ क्रोधानन्दः शुकानन्दो ध्यानानन्दस्त्वतः परम्। बोधानन्दस्ततश्चैव कुलाख्यः गुरवः स्मृताः'—इति कुलगुरवः। 'श्रीगुरुः परमगुरुः परापरगुरुः परमेष्ठिगुरुः'—एते सामान्यगुरुवः। 'महादेवी महादेवस्तथा त्रिपुरभैरवः'—इति दिव्यौद्धैः। 'ब्रह्मानन्दः पूर्णदेवश्चलचित्तश्चलाचलः। कुमारः बोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः। माया मायावती चैव सिद्धौद्धैः संप्रकीर्तिः'—एते सिद्धौद्धैः। 'विमलः कुशलश्चैव भीमसेनः सुकाकरः। मीनो गोरक्षकश्चैव भौमदेवः प्रजापतिः। मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनौ। सन्तोषः समयानन्दो मानवौद्धैः प्रकीर्तिः'—एते संप्रदायगुरुवः। 'इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी। रती रतिप्रियानन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी'—इति कालिकायाः पीठशक्तयः।

मत्स्य सूक्त के मूलोक्त श्लोकों का उद्घार करने पर पदावती का मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट होता है—ॐ पदे पदे महापदे पदावति हीं स्वाहा। इसकी पूजा पूर्ववत् करके आधी रात में चौराहे पर जो इसका जप करता है, वह तुरन्त कवि हो जाता है। दूसरा मन्त्र है—हंसः ॐ हीं स्त्री हूं हंसः। यह अष्टाक्षरी महाविद्या दुर्लभ है।

स्वच्छन्दसंग्रह के मूलोक्त श्लोक का उद्घार करने पर मन्त्र होता है—हं हीं ॐ हीं स्त्री हूं हंसः। यह अष्टाक्षरी विद्या पृथ्वी पर दुर्लभ है। पञ्चाक्षरी विद्या हंसः हीं हंसः को मैने तुहरे स्नेहवश प्रकाशित किया है। इनका पूजनादि पञ्चाक्षरी के समान करना चाहिये।

यथामा मन्त्र का उद्घारक्रम उत्तरतन्त्र में इस प्रकार बताया गया है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—यह मन्त्रराज है। 'कालिकायै विद्याहे इमशानवासिन्यै धीमहि तत्रो धोरा प्रचोदयात्—यह काली गायत्री है। क्रीं हूं स्त्रीं हीं फट्—यह काली कुल्लुका है। कालिका का पीठमन्त्र इस प्रकार है—ऐ हीं श्रीं ऐं परायै अपरायै परापारायै विरुपायै हस्तौः सदाशिवमहप्रेतपादासनाय नमः। सिंहव्याघ्रमुखी, मृगमेषमुखी, गजवाजिमुखी, बिडालमुखी, क्रोष्टुमुखी, हस्तवदीर्घमुखी, लम्बोदरमुखी, हस्तवजंगा, काकजंगा, लम्बोषी एवं प्रलम्बोषी—ये कालिका की द्वारपालिका हैं।

महाकालमन्त्र है—ॐ हूं महाकाल प्रसीद हीं हीं स्वाहा। जलप्रहण मन्त्र है—ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा। पादप्रशालन के दो मन्त्र हैं—१. ॐ हीं स्वाहा एवं २. ॐ हीं सुविशुद्धर्धमग्नि सर्वपापनिशामयाशेषविकल्पानपनय हूं स्वाहा। शिखाबध्यन का मन्त्र है—ॐ मणिधरि वत्रिणि शिखिणि सर्ववंशकरिणि महाप्रतिसरे हुं फट् स्वाहा। भूमिसेचन मन्त्र है—ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा। विघ्नोत्सारण मन्त्र है—ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा। भूमि अभिमन्त्रण मन्त्र है—ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहा। आसन-पूजा मन्त्र है—आः सुरेष्वे वज्रेरेष्वे हुं फट् स्वाहा। आसन मन्त्र है—ॐ हीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः। पुष्टाधिष्ठान मन्त्र है—ॐ शतोभिषेकशताभिषेके हुं फट् स्वाहा। पुष्ट अभिमन्त्रण मन्त्र—ॐ पुष्टकेतुरार्जाहते शताय सम्प्यक् समृद्धाय पुष्टे पुष्टे महापुष्टे सुपुष्टे पुष्टसम्भवे पुष्टचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा। काय, वाणी एवं चित का शोधन मन्त्र है—ॐ आं हूं फट् स्वाहा। आत्मरक्षा मन्त्र है—रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

कुलगुरु इस प्रकार है—प्रह्लादामन्दनाथ, सनकानन्दनाथ, कुमारानन्दनाथ, वशिष्ठानन्दनाथ, शुकानन्दनाथ, ध्यानानन्दनाथ, बोधानन्दनाथ। सामान्य गुरु है—श्रीगुरु, परमगुरु, परापरगुरु और परमेष्ठिगुरु। दिव्यौद्धै है—महादेवी, महादेव और त्रिपुरभैरव। सिद्धौद्धै है—ब्रह्मानन्द, पूर्णदेव, चलचित्त, चलाचल, कुमार, बोधन, वरद, स्मरदीपन, माया और मायावती। सम्प्रदाय गुरु हैं—विमल, कुशल, भीमसेन, सुकाकर, मीनानाथ, गोरख, भीमदेव, प्रजापति, मूलदेव, रन्तिदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, सन्तोष, समयानन्द। इन्हें मानवौद्ध कहते हैं। कालिका की पीठशक्तियाँ हैं—इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, आनन्दा और मनोन्मनी।

#### श्यामामन्त्राणां प्रसिद्धोद्घारक्रमः

अथ मन्त्रभेदाः—'क्रीं इत्येकाक्षरः। 'क्रींक्रींक्रीं' इति त्र्यक्षरमन्त्रः। 'क्रींहूंहीं' इत्यपि त्र्यक्षरः। 'क्रींक्रींहूंहूंहीं'

इति षडक्षरः। 'ऐंहूंहींहूंहूं फट् स्वाहा' इत्यष्टाक्षरः। 'क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा' इति दशाक्षरः। 'हूंहूंक्रीं दक्षिणे हूंहूं स्वाहा' इत्यन्यो दशाक्षरः। 'ॐ हींक्रीं स्वाहा' इति कालीहदयम्। 'क्रींहूंहीं दक्षिणेकालिके क्रींहूंहूं स्वाहा' इति चतुर्दशाक्षरी। 'ॐ हींहूंहूंक्रींक्रीं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींहूंहूंहूंहीं स्वाहा' इति एकविंशाक्षरी। 'ॐ हींहूंहूंक्रींक्रींक्रीं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींक्रींहूंहूंहींहीं स्वाहा' इति त्रयोविंशाक्षरी। 'हींहूंहूंहूंक्रींक्रींक्रीं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींक्रींहूंहूंहींहीं हीं' इति विश्वत्यक्षरी। 'ॐहूंक्रीं मे स्वाहा' इति षडक्षरी। 'क्रींहींहीं' इति त्रयक्षरी। 'क्रींक्रींक्रीं स्वाहा' इति पञ्चाक्षरी। 'क्रींहूंहूंक्रींहूंहीं स्वाहा' इति अष्टाक्षरी। 'ऐं नमः क्रींक्रींकालिकायै स्वाहा' इति एकादशाक्षरी। 'क्रींहूंहीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' इत्यप्येकाशदशाक्षरी। 'क्रींहूंहीं दक्षिणे कालिके फट्' इति दक्षाक्षरी। 'क्रींक्रींहूंहूंहीं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींहूंहूंहींहीं स्वाहा' इति विंशाक्षरी। 'क्रीं स्वाहा' इति त्रयक्षरी। 'क्रींक्रीं कालिकायै स्वाहा' इत्यष्टाक्षरी। 'क्रींहूंहीं स्वाहा' इति पञ्चाक्षरी। 'क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' इति नवाक्षरी। 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंहींहींक्रींक्रींक्रींहूंहूंहींहीं स्वाहा' इति षोडशाक्षरी। 'नमः ऐंक्रींक्रीं कालिकायै स्वाहा' इत्येकादशाक्षरी। 'नमः आंओक्रोंक्रोंफट् स्वाहा' इति नवाक्षरी। 'काकिकालिके हूंहींहूंफट्' इत्यपि नवाक्षरी। 'क्रींक्रींक्रींफट् स्वाहा' इति षडक्षरी। 'क्रींक्रींक्रींक्रींक्रींक्रीं स्वाहा' इत्यष्टाक्षरी। 'क्रींक्रींहूंहूंहींहींक्रींक्रींहूंहूंहींहीं स्वाहा' इति चतुर्दशाक्षरी। 'क्रींहूंहींक्रींहूंहूं स्वाहा' इति दशाक्षरी। 'क्रींक्रींहूंहूंहींहींक्रींक्रींहूंहूंहींहीं स्वाहा' विंशाक्षरी। 'नमः आंक्रोंआंक्रों फट् स्वाहा कालिकालिके हूं' इति पञ्चदशाक्षरी। 'हींहूं फट्' इति त्रयक्षरी। अथ वश्ये प्रागुक्तद्वाविंशद्वृणन्ते—'हूंहींहींक्रींक्रीं' इति पञ्चबीजानि संयोजयेत्॥२७॥ अथाकर्षं 'हूंहींक्रीं मूलं हूंहींक्रीं'॥२८॥ 'हूंहींक्रीं दक्षिणेकालिके स्वाहा हूंहींक्रीं' इत्यव्याकर्षं केचिद्वदन्ति॥१४॥ 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंहींहीं गुह्येकालिके क्रींक्रींक्रींहूंहूंहींहीं स्वाहा'॥२१॥ 'क्रींहूंहीं गुह्येकालिके क्रींक्रींहूंहूंहींहीं स्वाहा' इति षोडशाक्षरी। 'क्रींहूंहीं गुह्येकालिके हूंहूंहींहीं स्वाहा' इति चतुर्दशाक्षरी। 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंहींहींदक्षिणेकालिके स्वाहा' इति पञ्चादशाक्षरी। 'क्रींगुह्येकालिकेक्रीं स्वाहा' इति नवाक्षरी। 'क्रीं दक्षिणेकालिके क्रीं स्वाहा' दशाक्षरी। 'हूंहींहींहीं दक्षिणे कालिके हूंहींहीं स्वाहा' इति षोडशाक्षरी। इति गृह्यकाली।

बलिमन्त्रस्तु—ऐंहींऐहोहि परमेशानि जगन्मातर्जगतां जननि गृह २ मम बलिं सिद्धिं देहि २ शत्रुक्षयं कुरु २ ॐ हूँहीफट् ॐकालिकायै नमः फट् स्वाहा' अयं दक्षिणकालिकायाः बलिमन्त्रः। 'हूँनमः ऐहोहि गुह्यकाल्यै गृह २ मम शत्रून् नाशय २ खादय २ तुरु २ छिन्चि २ सिद्धिं देहि २ हूँ २ स्वाहा' अयं गुह्यकाल्या: बलिमन्त्रः। 'ॐ हूँ सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः गुह्यकाल्यै हूँ नमः' इति गुह्यकाल्यासनमन्त्रः। 'हौं कालि महाकालि किणि २ फट् स्वाहा'॥१४॥ इयं भद्रकाली। 'क्रींक्रींक्रींहूँहींहीं भद्रकाल्यै क्रींक्रींक्रींहूँहींहीं स्वाहा'॥१२॥ इयं शमशानकालिका। 'क्रींक्रींक्रींहूँहींहीं महाकालि क्रींक्रींक्रींहूँहींहीं स्वाहा' इति महाकालीमन्त्रः। 'ॐ क्षेष्ठेक्रंक्रं पशुं गृहणहुं फट् स्वाहा' इति महाकालीमन्त्रः। 'गृध्रकणि २ विरूपाक्षि २ लम्बस्तनि २ महोदरि २ उत्पादय २ हुफट् स्वाहा' अयमपि महाकालीमन्त्रः। ऐंहींश्रीकंती कालिके क्लींश्रीहींऐं इति शमशानकालीमन्त्रः।

श्यामा के अन्य मन्त्र—श्यामा के प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है—

१. एकाक्षर—क्रीं।
  २. अक्षर—क्रीं क्रीं क्रीं।
  ३. क्रीं हूं हीं—अक्षर।
  ४. क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हीं—षडक्षर।
  ५. ऐं हूं हीं हूं हूं फट् स्वाहा—अष्टाक्षर।
  ६. क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा—दशाक्षर।
  ७. हैं हीं क्रीं दक्षिणे हैं हीं स्वाहा—दशाक्षर।

८. ॐ हीं क्रीं स्वाहा—काली हृदय।
९. क्रीं हूं हीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं हीं स्वाहा—चतुर्दशाक्षर।
१०. ॐ हीं हीं हूं हूं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—एकविंशाक्षर।
११. ॐ हीं हीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—त्रयोर्विंशाक्षर।
१२. हीं हीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं—विंशाक्षर।
१३. ॐ हीं क्रीं मे स्वाहा—षडक्षर।
१४. क्रीं हीं हीं—त्र्यक्षर।
१५. क्रीं क्रीं स्वाहा—पञ्चाक्षर।
१६. क्रीं हूं हीं क्रीं हूं हीं स्वाहा—अष्टाक्षर।
१७. ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा—एकादशाक्षर।
१८. क्रीं हूं हीं दक्षिणे कालिके स्वाहा—एकादशाक्षर।
१९. क्रीं हूं हीं दक्षिणे कालिके फट—दशाक्षर।
२०. क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—विंशाक्षर।
२१. क्रीं स्वाहा—त्र्यक्षर।
२२. क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा—अष्टाक्षर।
२३. क्रीं हूं हीं स्वाहा—पञ्चाक्षर।
२४. क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा—नवाक्षर।
२५. क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—षोडशाक्षर।
२६. नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा—एकादशाक्षर।
२७. नमः ओं ओं क्रों क्रों फट् स्वाहा—नवाक्षर।
२८. काकि कालिके हूं हीं हूं फट्—नवाक्षर।
२९. क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा—षडक्षर।
३०. क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा—अष्टाक्षर।
३१. क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—चतुर्दशाक्षर।
३२. क्रीं हूं हीं दक्षिणे कालिके फट्—दशाक्षर।
३३. क्रीं हूं हीं क्रीं हूं हीं स्वाहा—अष्टाक्षर।
३४. क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं हीं हीं स्वाहा—विंशाक्षर।
३५. नमः आं क्रों आं क्रों फट् स्वाहा कालिकालिके हूं—पञ्चदशाक्षर।
३६. हीं हूं फट्—त्र्यक्षर।

वश्य में पूर्वोक्त बाईस वर्णों वाले मन्त्र के अन्त में हूं हीं हीं क्रीं क्रीं—इन पाँच बीजों को जोड़ने से सत्ताइस अक्षरों का मन्त्र बनता है। आकर्षण में पूर्वोक्त द्वाविंशाक्षर में हूं हीं क्रीं हूं हीं क्रीं—इस प्रकार अद्वाईस अक्षरों का मन्त्र बनता है। कुछ के मत से आकर्षण में हूं हीं क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा हूं हीं हीं क्रीं—यह चतुर्दशाक्षर मन्त्र होता है।

१. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—एकविंशाक्षर।
२. क्रीं हूं हीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—षोडशाक्षर।
३. क्रीं हूं हीं गुह्ये कालिके हूं हूं हीं हीं स्वाहा—चतुर्दशाक्षर।
४. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं दक्षिणे कालिके स्वाहा—पञ्चदशाक्षर।
५. क्रीं गुह्ये कालिके क्रीं स्वाहा—नवाक्षर।

६. क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा—दशाक्षरा।

७. हूं हीं हीं दक्षिणे कालिके हूं हूं हीं स्वाहा—पोडशाक्षरा ये सभी गुहाकाली के मन्त्र हैं।

दक्षिणकालिका का बलिमन्त्र है—ऐं हीं एहोहि परमेशानि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण गृह्ण मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु ॐ हूं हीं फट् ॐ कालिकायै नमः फट् स्वाहा। गुह्य काली का बलि मन्त्र है—हूं नमः एहोहि गुह्यकाल्यै गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय तुरु तुरु छिन्नि छिन्नि सिद्धिं देहि देहि देहि हूं हूं स्वाहा। गुह्य काली का आसन मन्त्र है—३० हूं सदाशिवमहप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः गुह्यकाल्यै हूं नमः।

भद्रकाली का मन्त्र है—हीं कालि महाकालि किणि किणि फट् स्वाहा। यह चतुर्दशाक्षर है। भद्रकाली का अन्य विशास्कर मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं भद्रकालै क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा। शमशान कालिका का मन्त्र है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं शमशानकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं स्वाहा—२२ अक्षर। महाकाली का मन्त्र है—क्रीं क्रीं हूं हूं हीं हीं महाकालि क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हीं हीं स्वाहा। महाकाली का अन्य मन्त्र है—३० क्षेण क्रें क्रें पशुं गुहाण हूं फट् स्वाहा। महाकाली का अन्य मन्त्र है—गृध्रकणीं गृध्रकणीं विरूपाखि विरूपाखि लम्बस्तनि लम्बस्तनि महोदरि महोदरि उत्पादय उत्पादय हुं फट् स्वाहा। ऐं हीं श्रीं कर्तीं श्रीं हीं हीं ऐं—यह शमशान काली का मन्त्र है।

#### तारामन्त्रोद्घारक्रमः

अथ तारामन्त्राः—‘ॐहींश्चौहींफट्’ ५। पीठमन्त्रः प्रावत् द्वारपालाः प्रावत्। पीठशक्तयस्तु—

लक्ष्मीः सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च। कीर्तिः शान्तिश्च पुष्टिश्च तुष्टिरित्यष्ट शक्तयः ॥

सारासंग्रहे—

रतिः प्रीतिः प्रिया कान्तिः कामिनी काममालिनी। कन्दर्पदलनी दुर्गा भाविनी नव शक्तयः ॥

अन्यत्र—

मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीर्धृतिस्मृतिबुद्ध्यः। विशेष्वरीति संप्रोक्ताः पीठस्य नव शक्तयः ॥ इति।

तन्नान्तरे—

महाकाली च रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च। घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिस्तथैव च॥

भैरवी च तथा प्रोक्ता पीठस्य वसुशक्तयः। इति।

प्रागुक्ता एव दशमन्त्राः कुलगुरवश्च। संप्रदायगुरवस्तु—

ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकण्ठो वृषध्वजः। आनन्दाथशब्दान्ता दिव्योद्याः कथिताः प्रिये ॥

वशिष्ठः कूर्मनाथश्च यीननाथो महेश्वरः। हरिनाथश्च सिद्धैद्याः कथिता वीरवन्दिते ॥

तारावती भानुमती जया विद्या महोदरी। सुखः परः पारिजातस्ततश्चैव कुलेश्वरः ॥

विरूपाखः फेरवी च मानवौद्याः प्रकीर्तिताः। इति।

अथ मन्त्रभेदाः—‘ॐत्रीहींहुंहींफट्’ ७। ‘ऐंहींश्रीकल्लीसौःहुं उत्तरारे हुंफट्’ १२। ‘ॐहुंहींकल्लीसौःहुंफट्’ ७।

‘ॐहुंहींकल्लीहंसौःहुंफट्’ ७। ‘ॐहींहुंहींहुंफट्’ ६। ‘त्रीहींहींहुंफट्’ ५। ‘त्रीहूंफट्कल्लीऐ’ ५। ‘ऐंहींश्रीकल्लीहींऐब्लूस्ट्रींनीलतारे सरस्वति द्रावीकल्लीब्लूंसःऐंहींश्रीकल्लीसौःसौःहीं स्वाहा’ ॥ ३२। ‘ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐंहींकल्लींवदवद वाग्वादिनि स्वाहा’—इति वागीश्वरीमन्त्रः। ‘हसकल्लींवद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा’—इति चित्रेश्वरी। ‘ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा’—इति कुलजा। ‘ऐंहींत्रीं वदवद कीर्तिश्वरि स्वाहा’— इति कीर्तिश्वरी। ‘ऐंहीं अन्तरिक्षसरस्वत्यै स्वाहा’—इत्यन्तरिक्षसरस्वती। ‘हसखफ्रीं हसफ्रीं ऐंहींश्रीद्रावीकल्लीब्लूंसः धीं घटसरस्वति घटे वदतर वदतर रुद्राज्ञा ममाभिलाषं कुरु २ स्वाहा’ इति घटसरस्वती। ‘ब्लूंवें वदवद त्रीहुं फट्’—इति नीलामन्त्रः। ‘ऐंहींहांहुं किणि किणि विच्चे’—इति किणिसरस्वती। ‘खेंहींञ्चऐंश्रीहीं’—इति महाविद्या। ‘ऐंहींहांहुं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ३०३०स्वाहा’ ॥ २५॥

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा नीला सरस्वती। कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृताः ॥

तारा प्रागुक्तादौ। 'स्त्रीहींफट्'—इत्युग्रा। 'हूँस्त्रीहीं फट्'—इति महोग्रा। 'हूँहींस्त्री फट्'—इति वज्रा। 'हींस्त्री फट् हूँ'—इति नीला। 'स्त्रीहीं फट् हूँ'—इति सरस्वती। 'हींहूँ फट् स्त्री'—इति कामेश्वरी। 'हींहूँस्त्री फट्'—इति भद्रकालीतारा। 'ॐतरे तुतरे तत्ता स्वाहा'। १०। 'ऐंहींअँऐंहीं फट् स्वाहा'। १। 'ॐपद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति हींहूँ स्वाहा'। १७। 'हंसः ॐहींस्त्रीहूँ हंसः'। १८। 'स्त्रीहींहूँ नीलसरस्वती'। १९। 'हंसः ॐहींस्त्रीहूँ फट् हंसः'। १९। 'ॐहीं एकजटे महायक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृहं २ स्वाहा'—इति बलिमन्त्रः। 'खेंहैंअँऐंश्रीहीं'। ६।

तारामन्त्र है—ॐ हीं स्त्री हूँ फट्—पञ्चाक्षर। इसके पीठमन्त्र एवं द्वारापाल पूर्ववत् ही हैं। पीठशक्तियाँ हैं—लक्ष्मी सरस्वती रति प्रीति कीर्ति शान्ति पुष्टि तथा तुष्टि। सारसंग्रह में नव शक्तियाँ कही गई हैं; वे हैं—रति, प्रीति, प्रिया, कान्ति, कामिनी, काममालिनी, कर्दपदलनी, दुर्गा और भाविनी। अन्यत्र मेथा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, सृति, बुद्धि और विश्वेश्वरी—नव पीठशक्तियाँ कथित हैं। तमन्त्रात्मत्रे महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और भैरवी—ये आठ शक्तियाँ कथित हैं। इनके दश मन्त्र और कुलगुरु पूर्ववत् ही हैं। सम्प्रदायगुरु हैं—उद्धर्केश, व्योमकेश, नीलकण्ठ और वृषध्वज। आनन्दनाथ शब्दान्त दिव्यौषध है। सिद्धौषध है—वसिष्ठ, कूर्मनाथ, मीननाथ, महेश्वर और हरिनाथ। मानवौषध गुरु हैं—तारावती, भानुमती, जया, विद्या, महोदरी, सुख, पर, परिजात, कुलेश्वर, विरुपाक्ष और फेरवी।

तारा के मन्त्र हैं—१. ॐ श्रीहींहूँहींहूँ फट्—सात अक्षर। २. ऐंश्रीश्रीकल्तीसौःतुँ यतरे हुंफट्—बारह अक्षर। ३. ॐ हुंहींकल्तीसौः हुंफट्—सात अक्षर। ४. ॐहुंहींकल्तीहूँसौः हुंफट्—सात अक्षर। ५. ॐहींहूँहींहूँ फट्—षड्क्षर। ६. श्रीहींहूँहूँ फट्—पञ्चाक्षर। ७. श्रीहूँफट्कल्तीऐं—पञ्चाक्षर। ८. ऐंश्रीश्रीकल्तीहींऐंलूँसी नीलतरे सरस्वति द्रांत्रीकल्तीब्लूँसः ऐंश्रीश्रीकल्तीसौःसोःहीं स्वाहा—द्वारिंशाक्षर। ९. ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐंहींकल्ती बदवद वागवादिनि स्वाहा—चतुर्विशाक्षर। यह वाणीश्वरी मन्त्र है। १०. हसकलहीं बद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा—यह चित्रेश्वरी मन्त्र है। ११. ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा—यह कुलजा का मन्त्र है। १२. ऐंहींश्री बदवद कीर्तीश्वरि स्वाहा—यह कीर्तीश्वरी का मन्त्र है। १३. ऐंहीं अन्तरिक्षसरस्वत्ये स्वाहा—यह अन्तरिक्ष सरस्वती का मन्त्र है। १४. हसखफ्री हसैं हसफ्रीं ऐंहींश्रीद्रांत्रीकल्तीब्लूँसःधीं घटसरस्वति घटे बदतर बदतर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा—यह घटसरस्वती का मन्त्र है। १५. ब्लूँवें बद बद श्रीहूँ फट्—यह नीला का मन्त्र है। १६. ऐंहींहूँ किणि किणि विच्चे—यह किणि सरस्वती का मन्त्र है। १७. खेहैंअँऐंश्रीहीं—यह महाविद्या है। १८. ऐंहींहूँ नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय अँ ॐ स्वाहा—यह पञ्चविंशाक्षर तारामन्त्र है।

तारिणी के आठ रूप हैं—तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी और भद्रकाली। तारा का मन्त्र पूर्व में कथित है। उग्रा का मन्त्र है—स्त्री हीं हूँ फट्। महोग्रा का मन्त्र है—हूँस्त्रीहीं फट्। वज्रा का मन्त्र है—हूँहींस्त्री फट्। नीला का मन्त्र है—हींस्त्री फट् हूँ। सरस्वती मन्त्र है—स्त्रीहीं फट् हूँ। कामेश्वरी मन्त्र है—हींहूँ फट् स्त्री। भद्रकाली तारा का मन्त्र है—हींहूँस्त्री फट्। तारा का अन्य मन्त्र है—ॐतरे तुतरे तत्ता स्वाहा—दशाक्षर। ऐंहींअँऐंहीं फट् स्वाहा—अष्टाक्षर। ३५पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति हींहूँ स्वाहा—सप्तदशाक्षर। हंसः: ॐहींस्त्रीहूँ हंसः:—अष्टाक्षर। स्त्रीहींहूँ नीलसरस्वती—नवाक्षर। हंसः: ॐहींस्त्रीहूँ फट् हंसः:—नवाक्षर। ॐहीं एकजटे महायक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृहं गृहं स्वाहा—यह बलिमन्त्र है। खेहैंअँऐंश्रीहीं—षड्क्षर।

#### पञ्चदशीभेदाः

अथ महाविद्या षोडशी। तत्रादौ पञ्चदशी—'कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं' इति कामराजविद्या। 'हसकहलहीं हसकहलहीं सकलहीं' इति लोपामुद्रोपासिता। 'कहएईलहीं हकएईलहीं सकएईलहीं' इयं मनूपासिता। 'सहकएईलहीं सहकएईलहीं हसकएईलहीं' इति चन्द्रोपासिता। 'हसकएईलहीं हसकएईलहीं सहकएईलहीं' इयं कुबेरोपासिता। 'कएईलहीं हसकएईलहीं सहसकलहीं' इयमगस्त्योपासिता। 'सहईलहीं सहकलहीं सकलहीं' इयं नन्द्युपासिता। 'हसकलहीं सहकलहीं सकहलहीं' इयं सूर्योपासिता। 'हसकलहीं हसकलहीं सकलहीं' इयं शिवोपासिता। 'कएईलहीं हसकहलहीं सहसकलहीं' इयं शिवोपासिता।

इयं विष्णुपासिता। 'हसकलहीं सकहसकलहीं सहकहलहीं' इयं स्कन्दोपासिता। 'कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं' इयमिन्द्रोपासिता। 'कएईलहरीहरी हसकहलहरीहरी सकलहरीहरी' इयं दुर्वासोपासिता। 'कएईलहीं हकहलहीं हसकलहीं' इयमुन्मनी। 'कएईलहीं हकहलहीं सहकलहीं' इयं वरुणोपासिता। 'कएईलहीं हकहलहीं सहकलहीं' इयं धर्मराजोपासिता। 'कसकलहीं हसलकलहीं सकलरलहीं' इयं वायुपासिता। 'हसकलहीं हसककहलहीं सकलरलहीं' इयं नागराजोपासिता। 'कहरलरहीं हकलरहलहीं सरकलरहीं' इयं वायुपासिता। 'कएईरलहीं हकहलरहीं सहकरहीं' इयं नारायणोपासितेयम्। 'कएईलहीं हकहसरहीं हसकलहीं' ब्रह्मोपासितेयम्। 'हसकलहीं हकहसरहीं हसकलहीं' नारायणोपासितेयम्। एते शुद्धाः १२५। अशुद्धाः १२५। शुद्धाशुद्धाः १२५। शब्लाः १२५। एवं शतं भेदाः।

पञ्चदशी के भेद—कामराज विद्या है—कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं। लोपामुद्रोपासिता विद्या है—हसकहलहीं हसकलहीं। मनूपासिता विद्या है—कहएईलहीं हकएईलहीं सकएईलहीं। चन्द्रोपासिता विद्या है—सहकएईलहीं सहकहएईलहीं हसकएईलहीं। कुबेरोपासिता विद्या है—हसकएईलहीं हसकहलहीं सहकएईलहीं। अगस्त्योपासिता विद्या है—कएईलहीं हसकईलहीं सहसकलहीं। नन्द्युपासिता विद्या है—सहईलहीं सहकलहीं सकलहीं। सुर्योपासिता विद्या है—हसकलहीं सहकलहीं सकहलहीं। शिवोपासिता विद्या है—हसकलहीं हसकलहीं सकलहीं हसकलहसकलसकलहीं। विष्णुपासिता विद्या है—कएईलहीं हसकहलहीं सहसकलहीं सर्वैलहीं सहकहलहीं सकलहीं। स्कन्दोपासिता विद्या है—हसकलहीं सकहसकलहीं सहकहलहीं। इन्द्रोपासिता विद्या है—कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं। दुर्वासोपासिता विद्या है—कएईलहरीहरी हसकहलहरीहरी सकलहरीहरी। उन्मनी विद्या है—कएईलहीं हकहलहीं हसकलहीं। वरुणोपासिता विद्या है—कएईलहीं हकहलहीं सहकलहीं। धर्मराजोपासिता विद्या है—कएईलहीं हकहरीहीं सहकलहीं। वह्न्युपासिता विद्या है—कसकलहीं हसलकलहीं सकलरलहीं। नागराजोपासिता विद्या है—हसकलहीं हसककहलहीं सकलरलहीं। वायुपासिता विद्या है—कहरलहीं हकलरहलहीं सरकलरहीं। बुधोपासिता विद्या है—कएईरलहीं हकहलरहीं सहकरहीं। ईशानोपासिता विद्या है—कहलहीं हकहलरलहीं सकलहीं। रत्युपासिता विद्या है—कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं। नारायणोपासिता विद्या है—कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं। कर्मसुकलहीं कर्मसुकलहीं। ब्रह्मोपासिता विद्या है—कएईलहीं हकहसरहीं हसकलहीं। जीवोपासिता विद्या है—हसकलहीं हकहसरहीं हसकलहीं। इस प्रकार ये पच्चीस शुद्ध विद्यायें हैं। इसी प्रकार अशुद्ध पच्चीस, शुद्धाशुद्ध पच्चीस एवं शब्ल के भी पच्चीस भेद होते हैं। कुल मिलाकर एक सौ भेद होते हैं।

#### पञ्चमीभेदा:

अथ पञ्चमीभेदाः—(१) 'कएईलहीं हसकलहीं कहयलहीं हसकलहीं' (२)। कएईलहीं हसकलहीं हकहलहीं कहयलहीं सहकलहीं। (३) सकहलहीं कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं हकलसहीं। (४) सकहलहीं कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं ईएकलहीं। (५) 'कएकलहीं कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं सहकलहीं'। (६) ईएकलहीं कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं हकलसहीं। (७) 'ईएकलहीं कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं सहकलहीं'। (८) 'ईएकलहीं कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं हकलसहीं'। (९) कएईलहीं हसकलहीं हसकहलहीं हकहलहीं सकलहीं। (१०) 'कएईलहीं हसकलहीं हसकहलहीं सकलसहीं सकलहीं'। (११) 'कएईलहीं हसकलहीं सहकलहीं सकलहीं'। (१२) कएईलहीं हसकलहीं सहकहलहीं सकलहीं सहकलहीं। 'कहलहीं कएईलहीं हसकहलहीं हसकलहीं हकलसहीं'। एषा प्रावदष्टधा। अन्या चतुर्थी १२॥। 'कहसलहीं कएईलहीं हसकहलहीं हसकलहीं सकलहीं'। एषा पूर्वदष्टधा। अन्या चतुर्थी। एवं षट्त्रिंशद् ३६ भेदाः पञ्चम्याः। एतासां पञ्चमीविद्यानां श्रींहींहि इति बीजत्रयं संपुत्त्वनाद्यन्तयोः संयोज्य, मध्यस्थकामराजकूटत्रयादौ कामराजबीजं संयोज्य जपो विद्येयः।

पञ्चमी के भेद—१. कएईलहीं हसकलहीं हकहलहीं कहयलहीं हसकलहीं। २. कएईलहीं हसकलहीं हकहलहीं

कहयलहीं सहकलहीं। ३. सकहलहीं करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं हकलसहीं। ४. सकहलहीं करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं सकलहीं ईएकलहीं। ५. कएकलहीं करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं सहकलहीं। ६. ईएकलहीं करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं हकलसहीं। ७. ईकलहीं करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं सहकलहीं। ८. ईकलहीं करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं हकलसहीं। ९. करईलहीं हसकलहीं हसकहलहीं हकहलहीं सकलहीं। १०. करईलहीं हसकलहीं हसकहलहीं सकलसहीं सकलहीं। ११. करईलहीं हसकलहीं सहकलहीं सहकलहीं सकलहीं। १२. करईलहीं हसकलहीं सहकहलहीं सकलहीं सहकलहीं। १३. करईलहीं हसकलहीं सकलहीं—यह पूर्वत् आठ प्रकार का है। अन्य चार मिलाकर बारह भेद होते हैं। कहसलहीं करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं—यह पूर्वत् आठ प्रकार का है। अन्य चार मिलाकर इसके भी बारह भेद होते हैं। इस प्रकार पञ्चमी के कुल छत्तीस भेद होते हैं। इन पञ्चमी विद्याओं को ‘श्रीहीं’ इन तीन बीजों से सम्पुटित करके आदि और अन्त से जोड़कर मध्यस्थ कामराज कूटत्रय के आरम्भ में कामराज बीज को जोड़कर जप करना चाहिये।

### सुन्दरीभेदः

अथ सुन्दरीभेदः—‘ईएकलहीं हसकहलहीं सकलहीं’ इति प्रथमसुन्दरी १। एईकलहीं हसकहलहीं सकलहीं २। ‘करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं’ इत्यनन्तसुन्दरी ३। ‘सहकलहीं हसकहलहीं सकलहीं’ इति पञ्चिमानायसुन्दरी ४। हससकलहीं हसकहलहीं सकलहीं’ इत्युत्तरानायसुन्दरी ५। ‘हसहीं कहहीं सहहीं’ इयं रुद्रयोगिनी पूर्वामायसुन्दरी ६। ‘कलहीं कहलहीं सकलहीं’ इति दक्षिणामायसुन्दरी ७। ‘कहक्षमलहीं हसकहलहीं सकलहीं’ इत्यूर्ध्वामाये शिवसुन्दरी ८। ‘सहक्षमलहीं सहकहलहीं सकलहीं’ इत्यूर्ध्वामाये शक्तिसुन्दरी ९। ‘हक्षमलहीं हसकहलहीं सकलहीं’ इति सर्वसुन्दरी १०। सहकलहीं हकहलहीं कहकलहीं’ इति सौभाग्या ११। ‘हकलसहीं कहलसहीं कलसहीं’ इयं भाषा १२। ‘हसकलहीं हलकहसहीं सकलहीं’ इयं सृष्टि: १३। ‘हलकसहीं कसहलसहीं कहसलहीं’ इति स्थिति: १४। ‘हलकसहीं हसकलहीं हहसलहीं’ इति संहति: १५। ‘लकसहीं सहकलहीं हससहकहीं’ निराख्या १६। ‘कहकलसहीं हससहकहीं सहकहीं’ निराख्या १६। ‘हकलसहीं हकहलहीं हसकलहीं’ स्वप्नावती १७। ‘कहलसहीं कहयलहीं कससलहीं’ इयं मधुमती १८। ‘करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं हकहलहीं कहकलहीं’ ततः पञ्चम्याः पञ्चकूटम्। इयमेकादशकूटा। एवं पट्टिंशत्यपञ्चमीनां पञ्चपञ्चकूटयोजनेनैकादशकूटा। एवं शुद्धाशुद्धादिभेदैः सह त्रिचतुष्पञ्चदस्साठनवकूटयोजनेन सुन्दरीभेदा बहवः सन्ति। जपे तु सर्वासां सुन्दरीविद्यानामाद्यन्तेषु प्रागुक्तबीजत्रयसंपुटीकरणमावश्यकम्।

सुन्दरी के भेद—१. ईएकलहीं हसकहलहीं सकलहीं (प्रथमसुन्दरी)। २. एईकलहीं हसकहलहीं सकलहीं। ३. करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं (अनन्तसुन्दरी)। ४. सहकलहीं हसकहलहीं सकलहीं (पञ्चिमानायसुन्दरी)। ५. हससकलहीं हसकहलहीं सकलहीं (उत्तरानायसुन्दरी)। ६. हसहीं कहहीं सहहीं (रुद्रयोगिनी पूर्वामायसुन्दरी)। ७. कलहीं कहलहीं सकलहीं (दक्षिणामायसुन्दरी)। ८. कहक्षमलहीं हसकहलहीं सकलहीं (ऊर्ध्वामाय में शिवसुन्दरी)। ९. सहक्षमलहीं सहकहलहीं सकलहीं (इत्यूर्ध्वामाय में शक्तिसुन्दरी)। १०. हक्षमलहीं हसकहलहीं सकलहीं (सर्वसुन्दरी)। ११. सहकलहीं हकहलहीं कहकलहीं (सौभाग्या)। १२. हलकसहीं कहलसहीं कलसहहीं (भाषा)। १३. हसकलहीं हलकहसहीं सकलहीं (सृष्टि)। १४. हलकसहीं कसहलसहीं कहसलहीं (स्थिति)। १५. हलकसहीं हसकलहीं हहसलहीं (संहति)। १६. लकसहीं सहकलहीं हससहकहीं, कहकलसहीं हससहकहीं सहकहीं (निराख्या)। १७. हकलसहीं हकहलहीं हसकलहीं (स्वप्नावती)। १८. कहलसहीं कहयलहीं कससलहीं (मधुमती)। करईलहीं हसकहलहीं सकलहीं सहकलहीं हकहलहीं कहकलहीं के पश्चात् पञ्चमी के पाँच कूट। ये ग्यारह कूट होते हैं। इस प्रकार छत्तीस पञ्चमी के पाँच पाँच कूटों को जोड़ने से ग्यारह कूट होते हैं। इस प्रकार शुद्धाशुद्धादिभेद के साथ तीन, चार पाँच, छः, सात, आठ, नव कूटों को जोड़ने से सुन्दरी के असंख्य भेद होते हैं। जप के समय समस्त सुन्दरी विद्याओं के आदि और अन्त में पूर्वोक्त बीजत्रय से सम्पुटीकरण आवश्यक होता है।

## श्रीविद्यापद्धतिः

अथ दशविद्यान्तर्गतत्वेन संक्षेपतः श्रीविद्यायाः पद्धतिः। तद्यथा—तत्र प्रातः कृत्यादिप्राणायामान्तं विद्याय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। अस्य श्रीत्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिरूपिः, पङ्क्षशङ्कः, त्रिपुरसुन्दरी देवता, वाग्भवं बीजं, कामराजं कीलकं, तार्तीयं शक्तिः, पुरुषार्थचतुष्टयसिद्धये विनियोगः। शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पङ्क्षशङ्कदसे नमः। हृदि त्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः। गुह्ये वाग्भवबीजाय नमः। पादयोः तार्तीयशक्तये नमः। सर्वाङ्गै कामराजकीलकाय नमः इति। तथा समयार्के—

त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तये तथा। ऋषये नमः शिरसि पङ्क्षये छन्दसे नमः ॥१॥  
मुखे त्रिपुरसुन्दर्दद्यै देवतायै नमो हृदि ।

तथाच वाग्भवादिस्वरूपं दक्षिणामूर्तौ—

निः सरन्ति महामन्त्रा महाग्नेशं स्फुलिङ्गवत्। तथैव मातृका वर्णा निः सृता वाग्भवात् प्रिये ॥१॥

अत एव तदेव स्याद्वाग्भवं बीजमुच्यते। योषित्युरुषरूपेण स्फुरन्ती विश्वमातृका ॥२॥

महामोहेन देवेशि कीलयन्ती जगत्यत्यम्। अतस्तत्कीलकं देवि तेज सौभाग्यगर्विता ॥३॥

पालयन्ती जगत् सर्वं तेनेयं शक्तिरुच्यते। इति।

ज्ञानार्णवे—

बीजं तु वाग्भवं शक्तिस्तार्तीयं कीलकं ततः। कामराजं महेशानि बीजन्यासस्ततः परम् ॥ इति।

अथ वशिन्यादिन्यासः—यथा, अं१ ६० ब्लू वशिनीवाग्देवतायै नमः ब्रह्मरन्त्रे। कं ५० कलहीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः ललाटे। चं ५० नवलीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः भूमध्ये। टं ५० यलूं विमलावाग्दे- वतायै नमः कर्णयोः। तं ५० जमरीं अरुणावाग्देवतायै नमः हृदये। पं ५० हसलवयूं जयिनीवाग्देवतायै नमः नाभौ। यं ५० झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः आधारे। शं ५० क्षम्तरीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः सर्वाङ्गे। तथाच ज्ञानार्णवे—

अवर्गान्ते लिखेद्वीजं रेफान्ते बक्षमान्वितम्। वामकर्णविशोभाड्यं बिन्दुनादाङ्कितं प्रिये ॥१॥

वशिनीं पूजयेद्वाचां देवतां देवि सुप्रते। कवर्गान्ते महेशानि कलहीं बीजमुत्तमम् ॥२॥

कामेश्वरीं समुच्चार्यं वादेवीं पूजयेत्तः। चवर्गान्ते धान्तलान्तक्षमातुर्यस्वरान्वितम् ॥३॥

मोदिनीं पूजयेद्वाचां नादबिन्दुविभूषितम्। टवर्गान्ते वायुबीजं भूमिपूर्वं महेश्वरि ॥४॥

वामकर्णेन्दुकिन्नाड्यं विमलां वागधीश्वरीम्। तवर्गान्ते जमयान्तं वामनेत्रविभूषितम् ॥५॥

बिन्दुनादाङ्कितं बीजं वाग्देवीमरुणां यजेत्। पवर्गान्ते व्योमचन्द्रक्षमातोयानिलसंयुतम् ॥६॥

ऊकारस्वरसंयुक्तं बिन्दुनादकलान्वितम्। जयिनीं पूजयेद्वाचां देवतां वीरवन्दिते ॥७॥

यवर्गान्ते जान्तकाले रेफवायुसम्वितम्। वामकर्णेन्दुशोभाड्यं सर्वेशीं परिपूजयेत् ॥८॥

क्षमवह्निगतं तुर्यस्वरेण परिवेष्टितम्। बिन्दुनादकलाक्रान्तं कौलिनीं वाचमर्चयेत् ॥९॥

शवर्गान्ते महेशानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये। शिरोललाटभूमध्यकर्णहन्त्राभिगोचरे ॥१०॥

आधारे व्यूहके यावत् न्यसेद् देवि परां प्रिये। इति।

अथ करन्यासः—अं मध्यमाभ्यां नमः। आं अनामिकाभ्यां नमः। सौः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। आं तर्जनीभ्यां नमः। सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अथाङ्गन्यासः—ऐं हृदयाय नमः। क्लीं शिरसे स्वाहा। सौः शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हुं। क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अख्याय फट्। ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यायेत्। यथा—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्। पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे ॥

इति ध्यात्वा, मानसोपचारैः संपूज्य आनन्दोऽहमिति विभाव्य शङ्खस्थापनं कुर्यात्। यथा—श्रीचक्रपुरतः स्ववामे षट्कोणमध्ये त्रिकोणं विलिख्य, तत्र त्रिपादिकां संस्थाप्य मूलेन षट्कोणं पूजयेत्। फट् इति शङ्खं प्रक्षाल्य तत्र गन्धपुष्पादिकं निश्चिप्य, मूलेन जलेनापूर्य मण्डलादिकं पूजयेत्। मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः इति त्रिपादिकायाम्। अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति शंखे। उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जले। ततः 'गङ्गे च यमुने वैव' इत्यादिना तीर्थमावाहा, हुं इत्यबगुणं षडङ्गेन संपूज्य, धेनुपुदां प्रदर्श्य, मूलमष्टधा जप्त्वा तज्जलं किंचित् प्रोक्षणीतोये निश्चिप्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्षेत्। तददक्षिणे पाद्यादिपात्रं संस्थाप्या-सनपूजामारभेत्। यथा उपर्युपरि यन्त्रस्य—उ० आधारशक्तये नमः। एवं प्रकृतये०, कूर्मय०, अनन्ताय०, पृथिव्य०, रसाम्बुधये०, रत्नदीपाय०, नन्दनोद्यानाय०, रत्नमण्डपाय०, कल्पवृक्षाय०, रत्नवेदिकाय०, रत्नसिंहासनाय नमः। पीठोपरि बैन्दवचक्रे—हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। बैन्दवे—हसरैं हसकलरीं हसरौः इति मन्त्रेण मूर्ति संकल्प्य त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा पूर्ववद् ध्यात्वा, प्रवहन्नासापुटेन तेजोमयं पुष्पाञ्जलावानीय ३० महापद्मवानातः स्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहते मातरेहोहि परमेश्वरी॥' इति मूर्तैः संस्थाप्यावाहनादि यथाशक्त्युपचारेण पूजां विद्याय षडङ्गानि पूजयेत्। अग्नीशासुरवायुमध्ये दिक्षु च, वााभवकूटमुच्चार्यं हृदयाय नमः। कामराजमुच्चार्यं शिरसे स्वाहा। शक्तिकूटमुच्चार्यं शिखायै वषट्। पुनर्वाग्भवकूटमुच्चार्यं कवचाय हुं। कामराजमुच्चार्यं नेत्रत्रयाय वौषट्। शक्तिकूटमुच्चार्यं अत्थाय फट्। ततो मध्यप्राक्त्रयस्यमध्येषु गुरुपङ्किं पूजयेत्। ऐहोंश्रींगुरुपङ्किभ्यो नमः। इँ गुरुपादुकाभ्यो नमः। एवं पुरमगुरुं तत्पादुकां, परापरगुरुं तत्पादुकां, आचार्यं तत्पादुकां च पूजयेत्।

**संक्षेपतः:** श्रीविद्या-पद्धति—प्रातःकृत्यादि से आरम्भ कर प्राणायाम-न्यास आदि के बाद ऋष्यादि न्यास करे। इस त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्दं पंक्ति, देवता त्रिपुरसुन्दरी, बीज वााभव, कीलक कामराज और शक्ति तारीय है। पुरुषार्थ-चतुष्टय की सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

**ऋष्यादि न्यास—**शिरसि दक्षिणा मूर्तिक्रिष्टये नमः। मुखे पंक्तिछन्दसे नमः। हृदि त्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः। गुह्ये वााभवबीजाय नमः। पादयोः तारीयशक्तये नमः। सवर्णे कामराजकीलकाय नमः। इसी को समयार्क में भी बताया गया है। दक्षिणामूर्ति के अनुसार वााभव आदि का स्वरूप इस प्रकार है—महा अग्नि की चिनगारी के समान महामन्त्र निकलते हैं, उसी प्रकार मातुका वर्ण भी वााभव से निकलते हैं; इसीलिये इसे वााभव बीज कहते हैं। स्त्री-पुरुष रूप से विश्वमातुका का स्फुरण होता है। ये तीनों लोकों को महामोह से कीलित करती हैं, इसीलिये इसे कीलक कहा जाता है। यह सौभाग्यर्विता सारे संसार का पालन करती है, इसीलिये इसे शक्ति कहा जाता है। ज्ञानार्णवं में कहा गया है कि वााभव बीज है, शक्ति तारीय है और कीलक, कामराज है। तदनन्तर बीजन्यास का स्थान है।

**ज्ञानार्णव-**न्यास इस प्रकार किया जाता है—अं१ दं ब्लूं वशिनीवाग्देवतायै नमः ब्रह्मरन्त्रे। कं ५ लं कलहीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः ललाटे। चं ५ नवलीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः भ्रूमध्ये। टं ५ यूं यिमलावाग्देवतायै नमः कर्णयोः। तं ५ जमरीं अरुणावाग्देवतायै नमः हृदये। पं ५ हसलवयूं जयिनीवाग्देवतायै नमः नाभौ। यं ४ झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः आधारे। शं ५ क्षमरीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः सर्वांगे।

**कर्त्त्यास—**अं मध्यपाभ्यां नमः। आं अनामिकाभ्यां नमः। सौः कनिष्ठाकाभ्यां नमः। अं अंगुष्ठाभ्यां नमः। आं तर्जनीभ्यां नमः। सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अंगन्यास—ऐं हृदयाय नमः। कलीं शिरसे स्वाहा। सौः शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हूं। कलीं नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अस्त्राय फट्। अङ्गन्यास के पश्चात् मूल मन्त्र व्यापक न्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्। पांशांकुशशरांश्वापं धारयन्तीं शिवां भजे॥

ध्यान के बाद मानसोपचारों से पूजा करके 'आनन्दोऽहम्' की भावना कर इस प्रकार शङ्खस्थापन करे—अपने वाम भाग में श्रीचक के आगे षट्कोण में त्रिकोण बनाकर उस पर त्रिपादिका स्थापित करे। मूल मन्त्र से षट्कोण में पूजा करे। फट् से शङ्ख को धोये। उसमें गन्ध, पूष्टादि छोड़े। मूल मन्त्र से जल भरे। मण्डलादि की पूजा करे। मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः से त्रिपादिका में पूजा करे। अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः से शंख में पूजा करे। उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः से जल में पूजा करे। तदनन्तर गंगे च यमुने चैव' इत्यादि से तीर्थों का आवाहन करके हूं से अवगुण्ठन करके षट्कोण पूजा करे। धेनुमुदा दिखावे। मूल मन्त्र को आठ बार जप कर उसमें से कुछ जल प्रोक्षणी पात्र में लेकर उससे अपना और पूजा उपकरणों का अभ्युक्षण करे। उसके दर्ये भाग में पाद्यादि पात्रों को स्थापित करके आसनपूजा आरम्भ करे। जैसे कि यन्त्र के ऊपर-ऊपर ॐ आधारशक्तये नमः, प्रकृतये नमः, कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, पृथिव्यै नमः, रसाम्बुधये नमः, रत्नदीपाय नमः, रत्नमण्डपाय नमः, कल्पवृक्षाय नमः, रत्नवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय नमः। पीठ के ऊपर वैन्दव चक्र में हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। बिन्दु में हसरै हसकलरीं हसरैः मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके त्रिखण्डा मुद्रा बाँधकर पूर्ववत् ध्यान करके प्रवहमान नासापुष्ट से तेजोमय पुष्टाङ्गलि में लाकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—

ॐ महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतिहं मातरेहोहि परमेश्वरि॥

इसी के साथ मूर्ति स्थापित करके आवाहनादि यथाशक्ति उपचारों से पूजा करके षट्कोण पूजा करे। आग्नेयादि कोणों, मध्य एवं दिशाओं में वाघव कूट से हृदयाय नमः, हसकहलहीं शिरसे स्वाहा, सकलहीं शिखायै वषट्। काईलहीं कवचाय हूं, हसकहलहीं नेत्रत्रयाय वौषट्, सकलहीं अस्त्राय फट्। तब त्रिकोण में गुरुपंक्ति की पूजा करे—ऐं हौं श्रीं गुरुपंक्तिभ्यो नमः, ऐं हौं श्रीं गुरुपादुकाभ्यो नमः, ऐं हौं श्रीं परमगुरुपादुकाभ्यो नमः। ऐं हौं श्रीं परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः, ऐं हौं श्रीं आचार्यपादुकाभ्यो नमः।

अथावरणपूजा—तत्र चतुरस्त्रय प्रथमरेखायां—३ अणिमादृष्टेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवं मध्यरेखायां—३ ब्राह्म्यादृष्टेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अन्तरेखायां—३ सर्वसंक्षोभिण्यादिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। सर्वत्रावरणपूजायां श्रीपादुकापदप्रयोगः। तथाच तन्नान्तरे—

श्रीपदं पूर्वमुच्चार्यं पादुकापदमुद्धरेत्। पूजयामि नमः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः ॥१॥ इति।

चक्राग्रे ३ त्रिपुराचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्त्रचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, इत्यर्थ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्। त्रिपुरापदव्युत्पत्तिस्तु वाराहीये—

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्रिदशैरर्विता पुरा। त्रिपुरेति तदा नाम कथितं देवतैस्तत्र ॥१॥ इति।

तर्पणं तु वामहस्तेन। तथाच स्वतन्त्रतत्रे—

अङ्गुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तेन पार्वति। तर्पयेत् सुन्दरीं दिव्यां समुद्रां च सवाहनाम् ॥१॥

ततः षोडशदले—अं १६ ऐं हौं श्रीं कामाकर्षिण्यादिषोडशनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—३ त्रिपुरेश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वाशापारपूरके षोडशदलंचक्रे त्रिपुरेश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: कामाकर्षिण्याद्या गुप्तयोगिन्यः समुद्राः इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततोऽष्टदले—३ अनङ्गकुसुमादिवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—३ त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्री-पादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसंक्षोभकरे अष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्य गुप्ततरयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततश्चतुर्दशारचक्रे—३ सर्वसंक्षेपिण्यादित्तुर्दशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—३ त्रिपुरवा-सिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसौभाग्यदायके चतुर्दशारचक्रे त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वसंक्षेपिण्यादयः संप्रदाययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततो बहिर्दशारचक्रे—३ सर्वसिद्धिप्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—३ त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे, त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वसिद्धिप्रदायदशदेव्यः कुलकौलिन्यादियोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततोऽन्तर्दशारचक्रे—३ सर्वज्ञादिदशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—३ त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरक्षाकरे अन्तर्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वज्ञादिदशदेव्योनिगर्भयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततोऽष्टारचक्रे—३ वशिन्याद्याष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरोगहराष्ट्रारचक्रे त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या रहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

अत्रान्तररात्रयत्रे मूलविद्यया षडङ्गानि पूजयेत्। ततोऽग्रकोणे ३ कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। दक्षिणकोणे ३ वद्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। वामकोणे ३ भगमालिनीनित्याश्रीपादुकां पूज-यामि नमः। चक्राग्रे ३ त्रिपुरार्षिकाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसिद्धिप्रदेत्यस्त्रचक्रे बाणपाशाङ्कुशविभूषितान्तराले त्रिपुरार्षिकाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता कामेश्वर्याद्या रहस्यातिरहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्।

ततो बिन्दुमध्ये—३ श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इत्यादि वारत्रयं पूजयेत्। वामे ३ योनिसुमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—३ त्रिपुरभैरवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वानन्दमये परब्रह्मस्वरूपिण्यै बैन्दवचक्रे त्रिपुरभैरवीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वचक्रेश्वरीयोगिन्यः समुद्राः सवाहनाः सपरिवाराः सायुधाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, इति मूलदेव्यै समर्पयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्याः पुरश्चरणं लक्षजपः। तथाच वामकेश्वरतन्त्रे—

तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद् देवीस्वरूपदृक् । किंशकैर्हवनं कुर्याद्वांशं च वरानने ॥१॥

**कुसुम्भकुसुमैविपि मधुरत्रयमित्रितैः । इति।**

आवरण पूजा—चतुरस की प्रथम रेखा में ऐं हीं श्रीं अणिमाद्याष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः; मध्य रेखा में ऐं हीं श्रीं ब्राह्मणाद्याष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अन्तिम रेखा में ऐं हीं श्रीं सर्वसंक्षेपिण्यादिसुमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। सभी आवरण पूजा में ‘श्रीपादुकां पूजयामि’ का प्रयोग होता है। तन्वान्तर में भी कहा गया है कि पहले ‘श्री’ पद कहकर तब पादुकां पूजयामि नमः, कहकर पूजा करनी चाहिये।

चक्र के आगे—ऐं हीं श्रीं त्रिपुराचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। ‘अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरसचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु’ कहकर अर्थजल मूल देवी को समर्पित करो। वाराही तन्त्र के अनुसार त्रिपुरा शब्द को व्युत्पत्ति इस प्रकार है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वादि तीन देवता से पहले अर्थित होने के कारण देवता तुर्हे त्रिपुरा नाम से पुकारते हैं। बायाँ हाथ से तर्पण करे; जैसा कि स्वतन्त्र तन्त्र में कहा भी है—बाँये हाथ की अनामा-अंगुष्ठ को मिलाकर मुद्रा एवं वाहन सहित दिव्य सुन्दरी का तर्पण करे।

तदनन्तर षोडश दल में—अं १६ ऐं हीं श्रीं कामाकर्षिण्यादिषोडशनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्र के आगे—३ त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वाशापरिपूरके षोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता कामाकर्षिण्याद्या गुप्तयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु कहकर अर्थजल मूल देवी को समर्पित करे।

अष्टदल में—ऐं हीं श्रीं अनंगकुमारादिदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्र के आगे ऐं हीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः अनंगकुमाराद्या गुप्ततरयोगिन्यः समुद्राः इत्यादि से अर्थ्यजल मूल देवी को समर्पित करे।

चतुर्दशार चक्र में—ऐं हीं श्रीं सर्वसंक्षेपभिण्यादिचतुर्दशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्र के आगे ऐं हीं श्रीं त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः अनंगकुमाराद्या गुप्ततरयोगिन्यः समुद्राः इत्यादि से अर्थ्यजल मूल देवी को समर्पित करे।

बहिर्दशार चक्र में—ऐं हीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्र के आगे ऐं हीं श्रीं त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वार्थसाधके चक्रे त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदाद्या दशदेव्यः कुलकालिन्यादियोगिन्यः समुद्राः इत्यादि से अर्थ्यजल मूल देवी को समर्पित करे।

अनन्तर्दशार चक्र में—ऐं हीं श्रीं सर्वज्ञादिदशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्र के आगे ऐं हीं श्रीं त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वज्ञादिदशदेव्यो निर्गर्भयोगिन्यः समुद्राः इत्यादि से मूल देवी को अर्थ्यजल समर्पित करे।

अष्टारचक्र में—ऐं हीं श्रीं वशिन्यादृष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्र के आगे ऐं हीं श्रीं त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरोगहराष्ट्रचक्रे त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिका धिष्ठिते एताः वशिन्याद्या रहस्ययोगिन्यः समुद्राः इत्यादि से मूल देवी को अर्थ्यजल समर्पित करे।

त्रिकोण के अन्तर्गत में मूल विद्या से षडङ्ग पूजन करे। अग्र कोण में ऐं हीं श्रीं कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। दक्षिणकोण में—ऐं हीं श्रीं वज्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। बाम कोण में—ऐं हीं श्रीं भगमालिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसिद्धिद्वये चक्रे बाणपाशांकुशविभूषितन्तराले त्रिपुराम्बिकाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता कामेश्वर्यादिरहस्यातिरहस्ययोगिन्यः समुद्राः इत्यादि से मूल देवी को अर्थ्यजल समर्पित करे।

बिन्दु चक्र में—ऐं हीं श्रीं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। बाँयें भाग में ऐं हीं श्रीं योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्र के आगे—ऐं हीं श्रीं त्रिपुरभैरवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वानन्दमये चक्रे पञ्चद्वास्वरूपिणि वैन्दवचक्रे त्रिपुरभैरवीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वचक्रेश्वरीयोगिन्यः समुद्राः सवाहाना: सपरिवारा: सायुधा पूजिता: तर्पिता: सन्तु नमः—कहकर मूल देवी को अर्थ्यजल समर्पित करे। तब धूप-दीपादि विसर्जनात्म कर्म कके पूजा समाप्त करे। इसका पुरश्रण एक लाख जप से होता है। जैसा कि वामेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि पूजा स्थान में बैठकर अपने को देवीस्वरूप समझते हुये एक लाख जप करे। दशांश हवन पलाश के फूलों से अथवा मधुरत्रय-मिश्रित कुसुम्ख के फूलों से करे।

#### श्रीविद्याविशेषपद्धतिः

अथ श्रीविद्याविशेषपद्धतिः; यथा—

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय रत्रिवासः परित्यज्य, गुरुं यथोक्तरूपं ध्यात्वा, ‘ऐं हीं श्रीं हसखफङ्गे हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं हस्तौः स्तौः अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः’ अमुकशक्तयम्भाश्रीपादुकां पूजयामि नमः, इति स्मृत्वा मानसैगन्यादिभिः पूजयेत्। यथा—ऐं हीं श्रीं लंपृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः, कनिष्ठाभ्यां। ऐं हीं श्रीं हं आकाशात्मकं पुर्वं समर्पयामि नमः, अङ्गुष्ठाभ्यां। इँ वं वाक्यात्मकं धूपं समर्पयामि नमः, तर्जनीभ्यां। इँ रं वह्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः, मध्यमाभ्यां। इँ वं अप्रतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः, अनामिकाभ्यां। इँ ऐं ताम्बूलं समर्पयामि नमः, अञ्जलिना। यथा विशुद्धेश्वरे—

एवं ध्यात्वा पुनश्चैवं पञ्चभूतात्मकैर्यजेत्। गन्धतत्त्वं पर्थिवं तु कनिष्ठाङ्गुलियोगतः ॥१॥  
पुष्पमाकाशात्मकं च अङ्गुष्ठाभ्यां समर्पयेत्। वाक्यात्मकं महाधूपं तर्जनीभ्यां समर्पयेत् ॥२॥

तेजोमयं महादीपं मध्यमाद्वययोगतः । अमृतात्मकनैवेद्यमनामिकायुगेन च ॥३॥

नमस्कारेणाञ्जलिना ताम्बूलं च समर्पयेत् । सृतं तु स्वस्वबीजान्ते सर्वान्ते तु नमस्किया ॥४॥

ततो योन्यञ्जलिमुद्रे प्रदश्य नमस्कृत्य स्तुतिं कुर्यात् । 'अखण्डमण्डलाकार'मित्यादि । शेषं सामान्यपद्धत्युक्त-क्रमेण कुर्यात् ।

**श्रीविद्या विशेष पद्धति**—ब्राह्म मुहूर्त में उठकर रात में पहने वस्त्र को बदलकर यथोक्त रूप में गुरु का ध्यान करके 'ऐं हीं श्रीं हसखफें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं हसौः स्त्रौः अमुकानन्दनाथश्रीपाटुकां पूजयामि नमः, अमुकशक्त्यम्बाश्रीपाटुकां पूजयामि नमः' ऐसा ध्यान करके मानिसक; गन्धादि से पूजन करे; जैसे—ऐं हीं श्रीं लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः कनिष्ठाभ्यां ऐं हीं श्रीं आकाशात्मकं पुर्णं समर्पयामि नमः अंगुष्ठाभ्यां, ऐं हीं श्रीं यं वाय्वात्मकं धूर्णं समर्पयामि नमः तर्जनीभ्यां, ऐं हीं श्रीं रं वहयात्मकं दीपं समर्पयामि नमः मध्यमाभ्या । ऐं हीं श्रीं वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः अनामिकाभ्यां, अञ्जलि से ऐं हीं श्रीं एं ताम्बूलं समर्पयामि नमः । जैसा कि विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा भी गया है—इस प्रकार फिर से ध्यान करके पञ्चभूतात्मक पूजा करे। पार्थिव गन्धं तत्त्व को कनिष्ठा अंगुलि के योग से समर्पित करे। आकाशात्मक पुष्ट को दोनों अंगुलों से समर्पित करे। वाय्वात्मक महाधूप को दोनों तर्जनी के योग से समर्पित करे। तेजोमय महादीप को दोनों मध्यमा अंगुलियों के योग से प्रदान करे। अमृतात्मक नैवेद्य को दोनों अनामिकाओं से समर्पित करे। नमस्काररूप अञ्जलि से ताम्बूल प्रदान करे। सबों में उनके-उनके बीज के साथ नमः जोड़े । तदनन्तर योनिमुद्रा दिखाकर 'अखण्डमण्डलाकार' इत्यादि से स्तुति करें। शेष क्रिया सामान्य पद्धति में उक्त क्रम से सम्पन्न करें।

#### श्रीविद्याविशेषस्नानम्

अथ श्रीविद्याया विशेषस्नानम् । वैदिकस्नानं विधायाचमनं कृत्वा षडङ्गनि विधाय, क्रों इत्यद्वुशमुद्रया सवितुर्पूर्णडलात् तीर्थमावाहा, मूलविद्याया: शक्तिमुच्चार्य योनिमुद्रां तज्जले निक्षिप्य, धेनुयोनिमुद्रे प्रदश्य मूलवागभवबीजेन दशवारमधिमन्त्र, आनन्दामृतवारिमध्यस्थां देवीं विचिन्त्य मूलविद्या सप्तवारमधिमन्त्र तनुखारबिन्दविनिर्गतामृत-धाराबुद्ध्या मूलेन सप्तवारमात्मानमधिविच्च, पुनरेकविंशतिवारं मूलविद्यामुच्चरन् तज्जले देवीपादारबिन्दाधोगलदमृत-धारया त्रिवारं निमज्ज्योत्तया, पुनर्योनिमुद्रया सप्तवारं त्रिवारं वा शिरस्यभिषेकं विधाय तत्रैवाचामेत् । यापले तु—

बालाबीजत्रयैः पीत्वा द्वाभ्यामोष्ठो प्रमार्जयेत् । दुर्गाभ्यां च त्रिकं मृज्य मायया क्षालयेत्करम् ॥१॥

श्रीमायावाक्पराकामत्रिपुटायोनिवर्तुलैः । कामकलाङ्गुशाभ्यां च मुखनासाक्षिकणकान् ॥२॥

नाभ्युरस्कं भृजौ स्पृष्टवाप्यधिकारी जपाचने । आचम्यैवं यजेद् दुर्गा जीवम्नुक्तो भवेन्नरः ॥३॥

दशावृतः । यथा—ऐंक्लींसौः इति पिबेत् । हींश्रीं इति ओष्ठौ द्विः प्रमार्जयेत् । दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा इति मार्जयित्वा । हीं इति करक्षालनम् । श्रीं मुखे, हींऐं नसोः, सौः क्लीं चक्षुषोः, हींश्रींक्लीं कर्णयोः । ऐं नाभौ, हीं वक्षसि, ईं दक्षांसे, क्रों वामांसे, इति स्पृष्टवा, तीरमागत्यानुपहते वाससी परिधाय मूलमन्त्राभिमन्त्र-तशुद्धयज्ञभस्मना त्रिपुण्ड्रं त्रिरेखात्मकमर्धचन्द्राकृतिं विधायाधर्मर्णान्तं कृत्वा तर्पणं कुर्यात् । तथाच—

षडङ्गान्यपि विन्यस्य तीर्थमद्वुशमुद्रया । क्रोंमन्त्रेण समाकृष्ट ततः सवितुर्पूर्णडलात् ॥४॥

शक्तिबीजं समुच्चार्य निक्षिपेद्योनिमुद्रया । धेनुमुद्रयोनिमुद्रे ततस्तत्र प्रदश्येत् ॥५॥

मूलवागभवबीजेन मन्त्रयित्वाथ देवताम् । आनन्दामृतवारीणां मध्यस्थां परिचिन्तयेत् ॥६॥

देवीपुखारबिन्दाच्च निर्गतामृतधारया । सप्तकृत्वो जपेद्विद्यामाभिष्ठेत्स्वकां तनुम् ॥७॥

एकविंशतिवाराणि जपेद्विद्यामनन्तरम् । देवीपादारबिन्दाधोगलदमृतधारया ॥८॥

वारत्रयं ततः पश्चात् निमज्ज्योतीर्थं साधकः । योनिना च तथा देवी मूर्धिं सेकं समाचरेत् ॥९॥

त्रिसप्त वा तथा वारान् सेचयेत्साधकाग्रणीः । ततस्तीरं समासाद्य कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥१०॥

उचिते वाससी पश्चात्परिदध्यादनन्तरम् । आचम्य प्राङ्मुखो भूत्वा मूलमन्त्राभिमन्त्रम् ॥११॥

धृत्वा भालतले भस्म पूर्ववच्छीगुरुं स्मरेत् । सूर्यमण्डलासिन्यै देवतायै ततः परम् ॥१॥  
 अर्द्धमङ्गलिनादाय गायत्रा च त्रिरुक्षिष्ठेत् । यथाशक्ति जपेद् देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम् ॥१०॥  
 तर्पणार्थं समाचाय प्राणानायम्य साधकः । वसून् रुद्रांस्तथादित्यांस्तथैवाद्विरसं ततः ॥११॥  
 देवान् गाश्च ततो ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रहानपि । लोपामुद्रामहत्यां चानुसूयामृषितीर्थके ॥१२॥  
 नक्षत्रराशियोगांश्च करणनि यथाक्रमम् । चतुर्थीवह्निजायानं देवतीर्थेन तर्पयेत् ॥१३॥  
 मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यं क्रुमेव च । वसिष्ठं च भरद्वाजं गौतमागस्त्यनामकौ ॥१४॥  
 अग्निष्वात्तान् बहिष्पदः पितृंश्च स्वपितृक्रमम् । त्रिधा डेन्तं हृदन्तं च पितृतीर्थेन तर्पयेत् ॥१५॥  
 भैरवान् क्षेत्रपालांश्च कुमारीयोगिनीसत्था । भूतानि सर्वसत्त्वानि तृप्यन्त्वन्तानि तर्पयेत् ॥१६॥

ततो देवीं तर्पयेत् । दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—‘तर्पणं च ततः कुर्याद् देवर्षिपितृपूर्वकम्’ । ततस्तस्मिन्नले त्रिकोणवृत्तचतुरसं विभाव्य, गणेशवटुकौ चक्रवामदक्षिणतः संतर्प्य, त्रिकोणवृत्तचतुरसान्तराले ईशानादिवायव्यान्तां वक्ष्यमाणगुरुपङ्क्षं सन्तर्प्य, त्रिकोणमध्ये साध्यसिद्धासनमन्त्रैवक्ष्यमाणैः संतर्प्य, जले भगवतीमावाह्य परमामृतधारया त्रिवारं पूर्वोक्तक्रमेण संतर्प्य, त्रिकोणेषु कामेश्वर्यादिदेवीत्रयं वक्ष्यमाणसमयविद्यया संतर्प्य, चतुरस्त्रकोणेष्वङ्ग-देवतास्तर्पयेत् । तत आवरणदेवतानां तर्पणम् । ततः सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा ‘हंसः सोह’मित्युपस्थाय सवित्रमण्डले तीर्थं निधाय यत्वचनो यागस्थानमागच्छेत् ।

श्रीविद्या का विशेष स्नान—वैदिक स्नान करके आचमन करके षडङ्ग न्यास करे । ‘क्रो’ इस अंकुशमुद्रा से सूर्य मण्डल से तीर्थों का आवाहन करे । मूल विद्या के साथ हीं कहकर उस जल में योनिमुद्रा बनावे । धेनु-योनि मुद्रा दिखावे । मूल मन्त्रसहित वाभव बीज से दश बार उसे अभिमन्त्रित करे । आनन्दामृत जल के मध्य में स्थित देवी का चिन्तन करे । मूल विद्या के सात जप से मन्त्रित करे । उनके मुख से निकली अमृतधारा बुद्धि से मूल मन्त्र द्वारा सात बार अपना अभिवेचन करे । पुनः इक्कीस बार मूल विद्या कहकर उस जल में देवी के पादारबिन्दों से निकली अमृत धारा से तीन बार आप्लावित होकर फिर योनिमुद्रा से सात बार या तीन बार अपना अभिवेचन करे और वहीं पर आचमन करे । रुद्रयामल में कहा गया है कि तीनों बालाबीजों—ऐं क्लीं सौः से जल पीकर दोनों ओरों का मार्जन हीं श्रीं से करे । दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा से हाथों को मले । हीं से हाथों को धोये । श्रीं से मुख, हीं ऐं से नासापुटों सौ को, क्लीं से आँखों को, हीं श्रीं क्लीं से कानों को, ऐं से नाभि को, हीं से वक्ष को, ईं से दक्षांस को और क्रीं से वामांस को स्पर्श करे । तट पर आकर वस्त्र बदले । मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित शुद्ध यज्ञभस्म से त्रिरेखात्मक अर्द्धचन्द्राकार त्रिपुण्ड कार अघमर्षण करके तर्पण करे । कहा भी है—

षडङ्ग न्यास करके अंकुश मुद्रा क्रों मन्त्र से सूर्यमण्डल से तीर्थों को आकर्षित करे । हीं का उच्चारण करके योनिमुद्रा निक्षिप्त करे । धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा दिखावे । मूल वाभव बीज से मन्त्रित करे । देवता का चिन्तन अमृत जल के मध्य में करे । देवी के मुखारबिन्द से निकली अमृताधारा से सात विद्या का जप करके अपने शरीर का सेचन करे । इसके बाद विद्या का जप इक्कीस बार करे । देवी के पादारबिन्द के नीचे से निकली अमृताधारा में तीन डुबकी लगावे । इसके बाद नहाकर योनिमुद्रा से देवी की मूर्धा पर अभिषेक करे । ऐसा तीन बार या सात बार करे । तब जल से बाहर निकलकर तट पर यथेष्पित कर्म करे । उचित वस्त्र पहनकर आचमन करे । पूर्वमुख बैठकर मूल मन्त्र से मन्त्रित भस्म से ललाट में तिलक करे । श्री गुरु का स्मरण करे । तब सूर्यमण्डलवासिनी देवता को गायत्री मन्त्र से तीन अर्ध्यञ्जलि प्रदान करे । परमाक्षरी देवी का यथाशक्ति जप करे । तर्पण के लिये आचमन करके प्राणयाम करो । वसुओं, रुद्र, आदित्य, अंगिरा, देवों, गायों, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ग्रह, लोपामुद्रा, अहल्या, अनुसूया, ऋषि, तीर्थ, नक्षत्र, राशि, योग, करण को यथाक्रम नाम में चतुर्थी के साथ स्वाहा जोड़कर देवतीर्थ से तर्पण कर मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, अगस्त्य, अग्निष्वात, बहिष्पद, पितरों एवं अपने पितृक्रम से तीन बार चतुर्थी के बाद नमः जोड़कर पितृतीर्थ से तर्पण करे । भैरव, क्षेत्रपाल, कुमारी, योगिनी, भूत सभी सत्त्वों का ‘तृप्यन्तानि’ कहकर तर्पण करे । तब देवी का तर्पण करे । दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा भी है कि तदनन्तर देव,

ऋषि, पितृतर्पण करे। तब उस जल में त्रिकोण, वृत्त, चतुरस्र कल्पित करके गणेश, वटुक का चक्र के बाम, दक्षिण में तर्पण करे। त्रिकोण वृत्त चतुरस्र के अन्तराल में ईशान से वायव्य तक विहित गुरुपंक्ति का तर्पण करे। त्रिकोण के मध्य में साध्य सिद्धासन मन्त्र से विहित तर्पण करे। जल में भगवती का आवाहन करके परमामृत धारा से तीन बार पूर्वोक्त क्रम से तर्पण करे। त्रिकोण में कामेश्वरी आदि तीन देवियों का विहित समय विद्या से तर्पण करे। चतुरस्र के कोणों में अंगदेवताओं का तर्पण करे। तब आवरण देवताओं का तर्पण करे। तब सूर्य को अर्थ देकर 'हसः सोह' कहकर उपस्थान करके सूर्यमण्डल में तीर्थों को स्थापित करके यागस्थान में आये।

यागस्थानं तु कालीकुलसद्ब्रावे—

अरण्यं स्वल्पकामानां सिद्ध्यर्थं पूजनं हितम् । निष्कामानां मुमुक्षुणां गृहे शस्तं सदाचर्ननम् ॥१॥

ऋषीणां मुनिमुख्यानां दीक्षितानां द्विजन्मनाम् । गृहेऽपि यजनं शस्तं रसैर्वा चेक्षुसंभवैः ॥२॥ इति।

कुलार्णविऽपि—

एकान्ते निजने रथे देशे बाधाविवर्जिते । सुखासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युद्भूमुखः ॥१॥ इति।

तत्रादौ सूर्यपूजा। तदुक्तं रुद्रयामले—

आदित्यं पूजयेददौ प्रत्यक्षं लोकसाक्षिणम् । अन्यथा नैव सिद्धिः स्यात्कल्पकोटिशतैरपि ॥१॥ इति।

वृहत्सत्वराजेऽपि—

मूलेन(सानं तु) विधिवत्सन्ध्यां तर्पणं सूर्यपूजनम् । पूजालये तथागत्य पञ्चमीपूजनं चरेत् ॥१॥ इति।

ततः पूजामण्डपमागत्य, ॐआत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐविद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐशिवतत्त्वाय स्वाहा, इत्यनेनाच्यव्य सामान्यार्थं विधाय द्वारपूजां कुर्यात्। तद्यथा—बालाया द्वारमध्युक्ष्य दक्षिणावामपाश्चर्योरुपर्यथः ऐंहींश्रींगं गणपतये नमः। इँ दुं दुर्गायै नमः। इँ वां वटुकाय नमः। इँ क्षां क्षेत्रपालाय नमः। इँ द्वारश्रीयै नमः। इँ देहन्त्यै नमः। ततो वामपादपुरस्सरं गृहं प्रविश्य, अग्न्यादिकोणोषु इँ गणपतये नमः। इँ दुं दुर्गायै नमः। इँ वां वटुकाय नमः। इँ क्षां क्षेत्रपालाय नमः। मध्ये ३ रत्नमण्डपाय नमः। दिक्षु इँ कामदेवाय रत्यै नमः। इँ वसन्ताय ग्रीत्यै नमः। इँ गं गणपतये नमः। इँ सां सरस्वत्यै नमः। इँ श्री श्रीयै नमः। इति। सोमभुजगावल्याम्—‘सरस्वतीं श्रियं मायां दुर्गा च तदनन्तरम्। भद्रकालीं ततः स्वस्तिं स्वाहां चैव शुभ्द्वारीम्। गौरीं च लोकधारीं च तथा वार्णीश्वरीमपि’ इति। एता: पूजयेत्। ततः ऐंहींश्रीं रक्तवर्णद्वादशशक्तिसहिताय दीपनाशयाय नमः, इति पृष्ठाङ्गलित्रयं मुच्छेत्। विश्वसारे—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले । विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥१॥

इति प्रसाद्य। ‘पृथिव्य त्वया धृता लोकाः’ इति निवेद्य, ततोऽस्त्रेण वामपार्णिघातत्रयेण भौमान् विघ्नानुत्सार्य, अस्त्रेण जलेनान्तरक्षिगान्, श्रीबालाय्यस्ततिगमदृष्ट्यवलोकनेन दिव्यविघ्नानुत्सार्य, सिद्धार्थक्षतकुसुमान्यादाय ‘इँ अपसर्पन्तु ते भूताः’ इत्यादिना क्षिप्त्वा विघ्नानुत्सार्य, सिद्धार्थक्षतकुसुमान्यादाय रक्षेत्। ततो नैर्वत्यां इँ ब्रह्मणे नमः, इँ वास्त्वविधिपतये नमः, इँ आधारशक्तिकमलासनाय नमः, इत्यासनं संपूज्य तत्रोपविश्य, भूतशुद्धिमातृकान्यासादिप्राणायामानं विधाय ऋष्यादित्यासं कुर्यात्। कल्पसूत्रे यद्यपि वाव्यग्निसलिलात्मकप्राणायामैः शोषणदाह-नप्लावनरूपां भूतशुद्धिं विधाय त्रिः प्राणानायम्य मातृकान्यासं कुर्यात्। इति नियमः, तथापि मातृकान्यासानन्तरं प्राणायामो बोद्धव्यः। तथाच तन्नान्तरे—

भूतशुद्धिं विधायेत्यं मातृकान्यासामाचरेत्। प्राणायामत्रयं कृत्वा न्यासानन्यान् समाचरेत् ॥१॥ इति।

यथा—शिरासि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पङ्किच्छन्दसे नमः। हृदि श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। गुह्ये वाग्भवबीजाय नमः। पादयोः शक्तिकूटशक्तये नमः। सर्वाङ्गे कामराजकीलकाय नमः। तथाच तन्नान्तरे—

ऋषिं न्यस्येमूर्धिं देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे । देवतां हृदये चैव बीजं तु गुह्यदेशके ॥१॥  
शक्तिं च पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ।

**यागस्थान**—कालीकुलसद्ब्राव में कहा गया है कि छोटी कामनाओं के लिये जंगल में पूजा करनी चाहिये। निष्काम मुमुक्षुओं के लिये अपने घर में ही पूजन प्रशस्त होता है। ऋषियों, मुनियों, दीक्षितों, द्विजों को घर में पूजन ईख के रस से करना प्रशस्त होता है।

कुलार्णव में भी कहा गया है कि एकान्त निर्जन रम्य बाधारहित देश में सुखासन पर पूर्व मुख बैठकर साधना करनी चाहिये। रुद्रयामल के अनुसार पहले लोकसाक्षी सूर्य का पूजन करना चाहिये; अन्यथा सौ करोड़ कल्पों में भी सिद्धि नहीं मिलती। बृहस्तवराज में भी कहा गया है कि मूल मन्त्र से विधिवत् सन्ध्या, तर्पण और सूर्यपूजन करने के बाद पूजागृह में आकर पञ्चमी का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर पूजागृह में आकर ३० आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ३० शक्तितत्त्वाय स्वाहा कहकर तीन आचमन करके सामान्यार्थ स्थापित करके द्वारपूजा करे। जैसे—बाला मन्त्र से द्वार का अभ्युक्षण करके दाँयें-बाँयें तथा ऊपर-नीचे ऐं हीं श्रीं गं गणपतये नमः, ऐं हीं श्रीं दु दुर्गायै नमः, ऐं हीं श्रीं वां वटुकाय नमः, ऐं हीं श्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः, ऐं हीं श्रीं द्वारात्रियै नमः, ऐं हीं श्रीं देहल्लै नमः कहकर पूजन करे। तब बाँयों पैर आगे बढ़ाकर गृह में प्रवेश करे। अग्न्यादि कोणों में ऐं हीं श्रीं गणपतये नमः, ऐं हीं श्रीं दु दुर्गायै नमः, ऐं हीं श्रीं वां वटुकाय नमः, ऐं हीं श्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः, मध्य में ऐं हीं श्रीं रत्नमण्डपाय नमः; दिशाओं में—ऐं हीं श्रीं कामदेवाय रत्यै नमः, ऐं हीं श्रीं वसन्ताय प्रीत्यै नमः, ऐं हीं श्रीं गं गणपतये नमः, ऐं हीं श्रीं सां सरस्वत्यै नमः, ऐं हीं श्रीं श्रीं श्रियै नमः से पूजा करे। सोमभुजगाबलि में कहा गया है कि क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी, माया, दुर्गा, भद्रकाली, स्वस्ति, स्वाहा, शुभंकरी, गौरी, लोकधात्री तथा वागीश्वरी की पूजा करे। तब ऐं हीं श्रीं रत्नवर्णद्वादशशक्तिसहिताय दीपनाथाय नमः कहकर पूष्पाञ्जलि प्रदान करे। विश्वसार तथा के अनुसार ‘समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपलि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमत्वं मे’ कहकर भूमि को प्रणाम करे। ‘पृथिव त्वया धृता लोका’ से निवेदन करे। तब अख मन्त्र से बाँयों एँड़ी को तीन बार पटक कर पृथ्वी के विघ्नों का उत्सारण करे। अख मन्त्र फट् कहकर अन्तरिक्ष में जल छीटकर अन्तरिक्ष के विघ्नों का उत्सारण करके बाला का ध्यान करते हुये तिरछी दृष्टि से दिव्य विघ्नों का उत्सारण करके सरसों अक्षत फूल लेकर ‘ऐं हीं श्रीं अपसर्पन्तु ते भूता’ से उन्हें छीटकर विघ्नों का उत्सारण करे। सिद्धार्थ अक्षत फूल लेकर रक्षा करे। तब नैऋत्य में ऐं हीं श्रीं ब्रह्मणे नमः, ऐं हीं श्रीं वास्त्वधिपतये नमः, ऐं हीं श्रीं आधारशक्तिमलासनाय नमः से आसन की पूजा करके उस पर बैठे। भूतशुद्धि, मातृका न्यासादि प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे। कल्पसूत्र के अनुसार वायु, अग्नि, सलिलात्मक प्राणायाम से शोषण दाहन, प्लावनरूपा भूतशुद्धि करके तीन प्राणायाम करके मातृका न्यास करने का यद्यपि नियम है, तथापि मातृका न्यास के बाद प्राणायाम करना चाहिये। तन्नान्तर में भी कहा गया है कि भूत शुद्धि करके प्राणायाम करे, तब मातृका न्यास करे। तीन प्राणायाम करके अन्य न्यासों को सम्पन्न करे। जैसे—शिरसि दक्षिणामूर्तित्रृपये नमः। मुखे पंक्तिर्घन्दसे नमः। हहि श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। गुह्ये वाभवबीजाय नमः। पादयोः शक्तिकूटशक्तये नमः। सर्वगी कामराजकीलकाय नमः। जैसा कि कहा भी है—ऋषि का न्यास मूर्धा में, छन्द का मुख में देवता का हृदय में, बीज का गुह्य देश में, शक्ति का पैरों में और कीलक का न्यास सर्वांग में करना चाहिये।

ततः करन्यासः। यथा—अं मध्यमाभ्यां नमः। अं अनामिकाभ्यां नमः। सौः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। अं तर्जनीभ्यां नमः। सौः करतलपृष्ठाभ्यां नमः। तथाच नवरलेश्वरे—

एतद्विजद्विरावृत्या मध्यमाद्युलीषु च। शुद्धिं करस्य कुर्वीत तलयोः पृष्ठयोरपि ॥१॥

चतुर्थान्तिसंयुक्तनाममन्त्रैः पृथक् पृथक्। बालाबीजत्रयं पूर्वं तथा त्रिपुरसुन्दरि ॥२॥

आत्मानं रक्षेति कुर्याद्रक्षां हहि स्मृशन्। तथैवाक्ष्रेण मुद्रया कुर्याद् दिग्बन्धनं ततः ॥३॥

ततो बालान्ते अमृतार्णवासनाय नमः पादयोः। बालान्ते त्रिपुरसुन्दरीपोताम्बुजासनाय नमः जानुद्वये। हींकलींसौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यात्मासनाय नमः ऊरुद्वये। यामलतन्त्रे—

अमृतार्णवशब्दान्ते आसनाय ततो नमः । पादयोर्विन्यसेत्यशाद्वालान्ते त्रिपुरेश्वरी ॥१॥  
पोताम्बुजासनायान्ते नमो जानुनि विन्यसेत् । हींकलींसौः त्रिपुरेत्युक्त्वा सुन्दरीति पदं ततः ॥२॥  
डेन्तं देव्यासनं चान्ते नम ऊरद्वये व्यसेत् ।

हैंहकलींहसौ त्रिपुरवासिनीचक्रासनाय नमः, स्फुरद्वये । हसैं हसकलीं हसौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमो गुह्या । हींकलींब्लैं त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमो नाभिदेशो । हसरैं हसकलरीं हसरौः त्रिपुराम्बापर्यङ्कशक्तिपीठासनाय नमो, वक्षसि । ततो मूलविद्यान्ते श्रीमहत्रिपुरभैरवीसदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमो ब्रह्मरन्धे । तथाच चामले—

हैंहकलींहसौरन्ते च त्रिपुरवासिनीति च । चक्रासनायेत्यमुना स्फुरद्वये परिविन्यसेत् ॥१॥  
हसैंहसकलींहसौश्वेति त्रिपुराश्रीपदं ततः । सर्वमन्त्रासनायान्ते नमो गुह्ये प्रविन्यसेत् ॥२॥  
हींकलींब्लैं त्रिपुरमालिन्यन्ते साध्यसिद्धपदं वदेत् । आसनाय नम इति नाभिदेशो प्रविन्यसेत् ॥३॥  
हसैं हसकलरीं हस्तैरन्ते त्रिपुराम्बापदं ततः । पर्यङ्कपीठासनं डेन्तं नमो वक्षसि विन्यसेत् ॥४॥  
त्रिकूटविद्याबीजान्ते महात्रिपुरभैरवी । सदाशिवमहाप्रेतपदात् पद्मासनाय च ॥५॥  
नम इत्यमुना ब्रह्मरन्धस्थाने प्रविन्यसेत् ।

करन्यास—अं मध्यमाभ्यां नमः । अं अनामिकाभ्यां नमः । सौः कनिष्ठकाभ्यां नमः । अं अंगुष्ठाभ्यां नमः । नमः । सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । जैसा कि नव रत्नेश्वर में कहा भी है—इन बीजों की मध्यमा आदि अंगुलियों में दो आवृत्ति से हाथ की, हस्ततल की एवं हस्तपृष्ठ की शुद्धि करे । चतुर्थी और नमः लगाकर पृथक्-पृथक् नाममन्त्रों से करे । बाला बीजत्रय के बाद त्रिपुरसुन्दरि कहकर ‘आत्मानं रक्ष रक्ष’ कहकर हृदय का सर्पण करे । अखमुद्रा से दिग्बन्ध करे । तब ऐं कलीं सौं अमृतार्णवासनाय नमः से पैरों में, ऐं कलीं सौं त्रिपुरसुन्दरीपोताम्बुजासनाय नमः से जानुओं में, हीं कलीं सौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यात्मासनाय नमः से दोनों उरुओं में न्यास करे । जैसा कि यामलतन्त्र में अमृतार्णवासनाय नमः से पैरों में न्यास करे । ऐं कलीं सौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यासनाय नमः से दोनों उरुओं से न्यास करे । हैंहकलींहसौः त्रिपुरवासिनीचक्रासनाय नमः से दोनों स्फुरों में, हसैंहसकलींहसौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः से गुह्य में हीं कलीं ब्लैं त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमः से नाभि में, हसरैं हसकलरीं हसरौः त्रिपुराम्बापर्यङ्कशक्तिपीठासनाय नमः से मैं और तब मूल विद्या के अन्त में श्रीमहत्रिपुरभैरवीसदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः, ब्रह्मरन्ध में न्यास करे । कहकर जैसा कि यामल में कहा भी है—हकलींहसौः त्रिपुरवासिनीचक्रासनाय नमः से नितम्बों में न्यास करे; हसैंहसकलींहसौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः से गुह्य में न्यास करे, हीं कलीं ब्लैं त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमः से नाभि में न्यास करे, हसरैं हसकलरीं हसरौः त्रिपुराम्बापर्यङ्कशक्तिपीठासनाय नमः से वक्ष में न्यास करे और ऐं हीं श्रीं महत्रिपुरभैरवीसदाशिव महाप्रेतासनाय नमः से ब्रह्मरन्ध में न्यास करे ।

अथ षडङ्गन्यासः—ऐं सर्वज्ञताशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः । कलीं नित्यतृप्तिशक्तिश्रीमहा- त्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा । सौः अनादिबोधशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट् । ऐं स्वतन्त्रशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं । कलीं नित्यमलुप्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय बौद्धट् । सौः अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट् । तथाच नवरत्नेश्वरे—

सर्वज्ञता नित्यसुतृपता च अनादिबोधश्च स्वतन्त्रता च ।

अलुप्तशक्तित्वमनन्तता च षडाहुरङ्गनि बुधाः शिवायाः ॥१॥ इति ।

तथाच—‘बीजान्ते नाम संयोज्य जातियुक्तं षडङ्गकम्’ । ततो वशिन्यादिन्यासः । स च संक्षेपप्रयोगे उक्तः । ततो नवयोन्यात्मकन्यासः । तथाच—‘बालाया त्रिपुरेशान्या नवयोन्यात्मकं न्यसेत्’ । प्रयोगस्तु भैरवीप्रकरणे उक्तः । पुनर्बालां समुच्चार्यं गोलकत्वेन चिन्तयेत् । पुनर्बालां समुच्चार्यं चतुरस्तं विचिन्तयेत् ।

षडङ्ग न्यास—ऐं सर्वज्ञताशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः, कलीं नित्यतृप्तिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे

स्वाहा, सौः अनादिबोधशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै षष्ठ्, ऐं स्वतन्त्रशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं, कलीं नित्यमलुप्त-शक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रयाय वौषट्, सौः अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्। जैसा कि नवरत्नेश्वर मे कहा भी है—सर्वज्ञता, नित्यसुतृप्तता, अनादिबोध, स्वतन्त्र, अलुपतशक्ति और अनन्तता—इन छः से देवी के षडङ्ग का न्यास करे।

वशिण्यादि न्यास—इसे पूर्व में संक्षिप्त प्रयोग में कह दिया गया है।

नवयोन्यात्मक न्यास—बाला त्रिपुरेशानी का नवयोन्यात्मक न्यास करे। इसका प्रयोग भैरवी प्रकरण मे कहा गया है। फिर बाला कहकर गोलकत्व के रूप में चिन्तन करे। फिर बाला कहकर चतुरस्त का चिन्तन करे।

अथ पीठन्यासः। यथा मूलवागभवमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके रुद्रात्मशक्ति-श्रीकामेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नमः, आधारे। द्वितीयकूटमुच्चार्य, सूयचक्रे पूर्णिगिरिपीठे षष्ठेशनाथात्मके विष्वात्मशक्तिश्रीवत्रेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नमो हृदि। तृतीयकूटमुच्चार्य सोमचक्रे जालन्धरपीठे उड्हीशनाथात्मके ब्रह्मात्म-शक्तिश्रीभगमालिनीदेवीश्रीपादुकायै नमः ललाटे। त्रिकूटमुच्चार्य परब्रह्मचक्रे उड्हियानपीठे श्रीचर्यानाथात्मके ब्रह्मात्म-शक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीश्रीपादुकायै नमो ब्रह्मरन्ध्रे।

अथ तत्त्वन्यासः—वाग्भवमुच्चार्य, आत्मतत्त्वव्यापिकायै श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दर्दर्थे नमो आधारे। कामराजमुच्चार्य, विद्यातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्दर्थे नमो हृदये। तृतीयकूटमुच्चार्य, शिवतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्दर्थे नमो ललाटे। त्रिकूटमुच्चार्य, सर्वतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्दर्थे नमः ब्रह्मरन्ध्रे।

ततः पञ्चदशीन्यासः—यथा मूले हृदि चक्षुषोः कर्णयोः नसोर्मुखे भुजयुगपृष्ठजानुयुगलनाभिषु प्रत्येकं नमोऽनन्तं मूलवर्णं च्यसेत्।

पीठ न्यास—कर्णेलहीं अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके रुद्रात्मशक्तिश्रीकामेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नमः—आधार पर, हसकहलहीं सूर्यचक्रे पूर्णिगिरिपीठे षष्ठेशनाथात्मके विष्वात्मशक्तिश्रीवत्रेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नमः—हृदय में। सकलहीं सोमचक्रे जालन्धरपीठे उड्हीशनाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिश्रीभगमालिनीदेवीश्रीपादुकायै नमः—ललाट में। कर्णेलहीं हसकहलहीं सकलहीं परब्रह्मचक्रे उड्हियानपीठे श्रीचर्यानाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीश्रीपादुकायै नमः—ब्रह्मरन्ध्र में।

तत्त्व न्यास—कर्णेलहीं आत्मतत्त्वव्यापिकायै श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दर्दर्थे नमः—आधार में। हसकहलहीं विद्यातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्दर्थे नमः—हृदय में। सकलहीं शिवतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्दर्थे नमः—ललाट में। कर्णेलहीं हसकहलहीं सकलहीं सर्वतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्दर्थे नमः—ब्रह्मरन्ध्र में।

पञ्चदशी न्यास—मूलाधार, हृदय, नेत्रों, कानों, नासा छिद्रों, मुख, दोनों भुजाओं, पीठ, जानुओं और नाभि में प्रत्येक वर्ण का न्यास नमः लगाकर करने से पञ्चदशी न्यास सम्पन्न होता है। जैसे, कं नमः, एं नमः इत्यादि।

अथ षोडशीन्यासः—

ब्रह्मरन्ध्रे च संपूर्णा विद्यां रक्तां विचिन्तयेत्। सौभाग्यदण्डिनीं मुद्रां वामांसे भावयेत्सुधीः ॥१॥  
रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां वामपादतले च्यसेत्। व्यापकान्ते योनिमुद्रां मुखे क्षिप्त्वाभिवन्द्य च ॥२॥

पुनर्ब्रह्मरन्ध्रे मणिबन्धे ललाटे मालिकायां षोडशार्णन् न्यसेत्। ततः—

पादयोर्जह्वयोजन्मोः कट्ट्यामस्युनि पृष्ठके। नाभौ पार्श्वद्वये चापि स्तनयोरंसयोस्तथा ॥३॥

करयोर्ब्रह्मरन्ध्रे च वदने भुवि पार्वति। कर्णप्रदेशे च तथा करवेष्टनयोः क्रमात् ॥४॥

इति संहारन्यासः।

अथ स्थितिक्रमः—करयोरङ्गलीषु पञ्च। ब्रह्मरन्ध्रे मुखे हृदि त्रयम्। नाभ्यादिपादपर्यन्तमेकम्। कण्ठात्रा-भिर्यन्तमपरम्। ब्रह्मरन्ध्रात् कण्ठपर्यन्तमकम्। पादयोः पञ्चाङ्गलीषु पञ्च।

**अथ सुष्टिन्यासः—**ब्रह्मरन्धे ललाटे नेत्रे श्रवणे ग्राणे ओष्ठे दन्ताध ऊर्ध्वे जिह्वायां चिबुके पृष्ठे सर्वाङ्गे हृदि स्तनयोः कुक्षी लिङ्गे च षोडशार्णिन् विन्यसेत्।

षोडशी न्यास—ब्रह्मरन्ध में सम्पूर्ण विद्या का चिन्तन लाल रंग में करे। बाँयें कन्धे पर सौभाग्यदण्डनी मुद्रा की भावना करे। वाम पादतल में रिपुजिह्वा ग्रह मुद्रा का न्यास करे। व्यापक न्यास करके मुख में योनि मुद्रा लगाकर स्तुति करे।

फिर ब्रह्मरन्ध, मणिबन्ध, ललाट, मालिका में सोलह वर्णों का न्यास करे। तब पैरों, जंघाओं, जानुओं, कपर, पीठ, नाभि, दोनों पार्श्वों, स्तनों, कन्धों, हाथों, ब्रह्मरन्ध, मुख, भवों, कानों, करवेष्टनों में क्रम से न्यास करे। यही संहार न्यास कहलाता है।

स्थिति न्यास—हाथ की पाँचों अंगुलियों, ब्रह्मरन्ध, मुख, हृदय, नाभि से पैरों तक, कण्ठ से नाभि तक, ब्रह्मरन्ध से कण्ठ तक और पैरों की पाँचों अंगुलियों में स्थिति न्यास करे।

सुष्टिन्यास—ब्रह्मरन्ध, ललाट, नेत्र, कान, नाक, ऊपर-नीचे के ओष्ठ जीभ, चिबुक, पीठ, सर्वांग, हृदय, स्तन, कुक्ष, लिङ्ग में सोलह वर्णों का न्यास करे।

**अथ षोडान्यासः—**ऐंहींश्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः शिरसि। ॐ विघ्नराजहीभ्यां नमो मुखवृत्ते। ॐ इं विनायकपुष्टिभ्यां नमो दक्षचक्षुषि। ॐ ईं शिवोत्तमशान्तिभ्यां नमो वामचक्षुषि। ॐ उं विघ्नहतुष्टिभ्यां नमो दक्षकर्णे। ॐ ऊं विघ्नकर्तुर्सरस्वतीभ्यां नमो वामकर्णे। ॐ ऊं विघ्नराजरतिभ्यां नमो दक्षनसि। ॐ ऋं गणनायकमेधाभ्यां नमो वामनसि। ॐ लूं एकदन्तकान्तिभ्यां नमो दक्षगण्डे। ॐ लूं द्विदन्तकामिनीभ्यां नमो वामगण्डे। ॐ एं गजवक्रमोहिनीभ्यां नमः ओष्ठे। ॐ ऐं निरञ्जनजटाभ्यां नमः अधरे। ॐ ओं कपर्दितीव्राभ्यां नमो ऊर्ध्वदने। ॐ ओं दीर्घमुखज्वालामुखीभ्यां नमः अधोदने। ॐ अं शङ्कुकर्णनदाभ्यां नमो ब्रह्मरन्धे। ॐ अः वृष्टव्यजस्वरसाभ्यां नमो मुखे। ॐ कं गणनाथकामरूपिणीभ्यां नमो दक्षस्कन्धे। ॐ खं गजेन्द्रशुभ्राभ्यां नमो दक्षकूपेरि। ॐ गं शूर्पकर्णजयिनीभ्यां नमो मणिबन्धे। ॐ धं त्रिनेत्रसतीभ्यां नमो अङ्गुलिमूले। ॐ डं लम्बोदरविनेशाभ्यां नमो अङ्गुल्यग्रे। ॐ चं महामो(ना)दस्वरूपिणीभ्यां नमो वामस्कन्धे। ॐ छं चतुर्मुखकामदाभ्यां नमः कूपेरि। ॐ जं सदाशिवमदविह्लाभ्यां नमः वाममणिबन्धे। ॐ झं आमोदविकटाभ्यां नमो वामाङ्गुलिमूले। ॐ जं दुर्मुखधूप्राभ्यां नमो वामाङ्गुल्यग्रे। ॐ टं सुमुखभूतिभ्यां नमो दक्षिणकट्ट्यधः। ॐ ठं प्रमोदभूतिभ्यां नमो जानुनि। ॐ डं एकपादसतीभ्यां नमो गुरुक्षे। ॐ ढं द्विजिह्वराभ्यां नम अङ्गुल्याधः। ॐ अं शूरमानुषीभ्यां नम अङ्गुल्यग्रे। ॐ तं वीरमकरध्वजाभ्यां नमो वामकट्ट्यः। ॐ थं षणमुखविकर्णभ्यां नमो जानुनि। ॐ दं वरदधूकुटीभ्यां नमो गुल्फे। ॐ धं वायदेवलज्जाभ्यां नमो अङ्गुल्यधः। ॐ नं वक्तुण्डदीर्घघोणाभ्यां नम अङ्गुल्यग्रे। ॐ पं द्विरदधनुर्धराभ्यां नमो दक्षपार्श्वे। ॐ फं सेनानीयामिनीभ्यां नमः वामपार्श्वे। ॐ वं ग्रामिणीरात्रिभ्यां नमः पृष्ठे। ॐ भं मत्तचण्डिकाभ्यां नमः नाभौ। ॐ मं विमलशशिप्रभाभ्यां नमः उदरे। ॐ यं मत्तवाहनलोलाक्षीभ्यां नमः हृदि। ॐ रं जटिलचपलाक्षीभ्यां नमः दक्षस्कन्धे। ॐ लं मुषिण्ड्रद्विद्ध्यां नमः ककुदि। ॐ वं खड्गिण्डर्भगाभ्यां नमः वामस्कन्धे। ॐ शं वरेण्यसुभगाभ्यां नमः हृदयादिदक्षहस्ते। ॐ षं वृषकेतुशिवाभ्यां नमः हृदयादिवामहस्ते। ॐ सं भक्ष्यप्रियदुर्गाभ्यां नमः हृदयादिदक्षपादे। ॐ हं गणेशगृहप्रियाभ्यां नमः हृदयादिवामपादे। ॐ लं मेघनादकामिनीभ्यां नमः हृदयाद्युदरे। ॐ क्षं गणेश्वरकालजिह्वाभ्यां नमः मुखे। एतान् नमोऽन्तान् विन्यसेत्।

षोडा न्यास—ऐं हीं श्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः—शिर में। ऐं हीं श्रीं ओं विघ्नराजहीभ्यां नमः—मुख में मध्य में। ऐं हीं श्रीं इं विनायकपुष्टिभ्यां नमः—दाँयाँ नेत्र। ऐं हीं श्रीं ईं शिवोत्तमशान्तिभ्यां नमः—बाँयाँ नेत्र। ऐं हीं श्रीं उं विघ्नहतुष्टिभ्यां नमः—दाँयाँ कान। ऐं हीं श्रीं ऊं विघ्नकर्तुर्सरस्वतीभ्यां नमः—बाँयाँ कान। ऐं हीं श्रीं ऋं विघ्नराजरतिभ्यां नमः—दाँयाँ नास्य छिद्र। ऐं हीं श्रीं ऋं गणनायकमेधाभ्यां नमः—बाँयाँ नासाछिद्र। ऐं हीं श्रीं ऊं एकदन्तकान्तिभ्यां नमः—दाँयाँ गाल। ऐं हीं श्रीं लृं द्विदन्तकामिनीभ्यां नमः—बाँयाँ गाल। ऐं हीं श्रीं एं गजवक्रमोहिनीभ्यां नमः—ओठ। ऐं हीं श्रीं ऐं निरंजनजटाभ्यां नमः—अधर। ऐं हीं श्रीं ओं कपर्दितीव्राभ्यां नमः—ऊर्ध्वदन। ऐं हीं श्रीं ऐं शंकुकर्णनदाभ्यां

नमः—ब्रह्मरन्थ। ऐं हीं श्रीं अः वृषध्वजस्वरसाभ्यां नमः—मुख। ऐं हीं श्रीं कं गणनाथकामरूपिणीभ्यां नमः—दक्षस्कन्थ। ऐं हीं श्रीं चं गजेन्द्रशुभ्राभ्यां नमः—दक्षकूर्पर। ऐं हीं श्रीं गं शूर्कर्णजयिनीभ्यां नमः—मणिबन्ध। ऐं हीं श्रीं घं त्रिनेत्रसतीभ्यां नमः—अङ्गुलिमूल। ऐं हीं श्रीं डं लम्बोदरविघ्नेशाभ्यां नमः—अङ्गुल्यग्र। ऐं हीं श्रीं चं महामो(ना)दस्वरूपिणीभ्यां नमः—वामस्कन्थ। ऐं हीं श्रीं छं चतुर्मुखकामदाभ्यां नमः—कूर्पर। ऐं हीं श्रीं जं सदाशिवमदविह्लाभ्यां नमः—वाममणिबन्ध। ऐं हीं श्रीं झं आमोदविकटाभ्यां नमः—वामाङ्गुलिमूल। ऐं हीं श्रीं चं दर्मुखधूमाभ्यां नमः—वामाङ्गुल्यग्र। ऐं हीं श्रीं टं सुमुखभूतिभ्यां नमः—कमर के दाँये। ऐं हीं श्रीं ठं प्रमोदभूतिभ्यां नमः—जानुओं में। ऐं हीं श्रीं डं एकपादसतीभ्यां नमः—गुल्फ में। ऐं हीं श्रीं ढं द्विजिहरमाभ्यां नमः—अङ्गुलि के नीचे। ऐं हीं श्रीं णं शूमानुषीभ्यां नमः—अङ्गुलि के आगे। ऐं हीं श्रीं तं वीरम-करध्वजाभ्यां नमः—कमर के बाँये। ऐं हीं श्रीं थं षणमुखविकर्णभ्यां नमः—जानु। ऐं हीं श्रीं दं वरदध्रुक्टीभ्यां नमः गुल्फ। ऐं हीं श्रीं धं वामदेवलज्जाभ्यां नमः—अङ्गुलि के नीचे। ऐं हीं श्रीं नं वक्रठुण्डदीर्घयोगाभ्यां नमः—अङ्गुल्यग्र। ऐं हीं श्रीं पं द्विरथनुर्धाराभ्यां नमः—दक्षपार्श। ऐं हीं श्रीं फं सेनानीयमिनीभ्यां नमः—वामपार्श। ३ वं ग्रामिणीरात्रिभ्यां नमः—पृष्ठ। ऐं हीं श्रीं धं मत्तचण्डिकाभ्यां नमः—नाभि। ऐं हीं श्रीं मं विमलशशिप्रभाभ्यां नमः—उदर। ऐं हीं श्रीं यं मत्तवाहनलोलाक्षीभ्यां नमः—हृदय। ऐं हीं श्रीं रं जटिलचपलाक्षीभ्यां नमः—दक्षस्कन्थ। ऐं हीं श्रीं लं मुण्डऋद्धिभ्यां नमः—ककुद। ऐं हीं श्रीं वं खड्गिदुर्भगाभ्यां नमः—वामस्कन्थ। ऐं हीं श्रीं शं वरेण्यसुधाभ्यां नमः—हृदयादि दक्षहस्त। ऐं हीं श्रीं धं वृक्षकेतुशिवाभ्यां नमः—हृदयादि वामहस्त। ऐं हीं श्रीं सं भक्ष्यप्रियदुर्गाभ्यां नमः—हृदयादि दक्षपाद। ऐं हीं श्रीं हं गणेशाग्नुप्रियाभ्यां नमः—हृदयादि वामपाद। ऐं हीं श्रीं ळं मेघनादकामिनीभ्यां नमः—हृदयादि उदरान्त। ऐं हीं श्रीं क्षं गणेशकालजिहाभ्यां नमः—मुख।

अथ ग्रहन्यासः—३ अं १६ आं आदित्यसचिभ्यां नमो हृदये। ३ अं ४ सं सोममेधाभ्यां नमो धूमध्ये। ३ कं ५ अं अङ्गारकरक्ताभ्यां नमो नेत्रत्रये। ३ अं ५ बुधज्ञानरूपाभ्यां नमो हृदयोपरि। ३ अं ५ बृं वृहस्पतियशस्विनीभ्यां नमः—कण्ठे। ३ अं ५ शुं शुक्राहादिनीभ्यां नमो हृदये। ३ अं ५ शं शनैश्वरशक्तिभ्यां नमो नाभौ। ३ अं ४ रं राहुकृष्णाभ्यां नमो वक्षसि। ३ अं ४ लं क्षं कं केतुवायवीभ्यां नमो गुह्ये। तथाच ज्ञानार्णवे—‘सुररूपं हृदि न्यसेत् यवर्गेण शशी ततः। ध्रूयुरो’ इत्यादि।

ग्रहन्यासः—३ अं १६ आं आदित्यसचिभ्यां नमः—हृदय में। ३ अं ४ सं सोममेधाभ्यां नमः—धूमध्य में। ३ कं ५ अं अङ्गारकरक्ताभ्यां नमः—नेत्रत्रय में। ३ अं ५ बुधज्ञानरूपाभ्यां नमः—हृदय के ऊपर। ३ अं ५ बृं वृहस्पतियशस्विनीभ्यां नमः—कण्ठ में। ३ अं ५ शुं शुक्राहादिनीभ्यां नमः—हृदय में। ३ अं ५ शं शनैश्वरशक्तिभ्यां नमः—नाभि में। ३ अं ४ रं राहुकृष्णाभ्यां नमः—वक्ष पर। ३ अं ४ लं क्षं कं केतुवायवीभ्यां नमः—गुह्य में।

अथ नक्षत्रन्यासः—३ अं ५ अश्विन्यै नमो ललाटे। ३ अं ५ भरण्यै नमो दक्षनेत्रे। ३ अं ५ ईंडुं कृतिकायै नमो वामनेत्रे। ३ अं ५ ऋंकूल्लूं रोहिण्यै नमो दक्षकर्णे। ३ अं ५ मृगशीर्षायै नमो वामकर्णे। ३ अं ५ आद्रायै नमो दक्षनासिकायां। ३ अं ५ ओं औं पुनर्वसवे नमो वामनासिकायां। ३ अं ५ कं पुष्यायै नमो कण्ठे। ३ अं ५ खं गं अश्लेषायै नमो दक्षस्कन्थे। ३ अं ५ धं गं धं मधायै नमो वामस्कन्थे। ३ अं ५ चं पूर्वफाल्गुन्यै नमो दक्षकूर्परे। ३ अं ५ छं जं उत्तराफाल्गुन्यै नमो वामकूर्परे। ३ अं ५ झं हस्तायै नमो दक्षमणिबन्धे। ३ अं ५ ठं चं चित्रायै नमो वाममणिबन्धे। ३ अं ५ डं स्वात्यै नमो दक्षहस्ततले। ३ अं ५ दं दं विशाखायै नमो वामहस्ततले। ३ अं ५ तं धं अनुराधायै नमो नाभौ। ३ अं ५ धं ज्येष्ठायै नमो दक्षकर्णटौ। ३ अं ५ नं पं भूलायै नामे वामकर्णटौ। ३ अं ५ बं पूर्वाशाढायै नमो दक्षक्षोरा। ३ अं ५ भं उत्तराशाढायै नमो वामोरा। ३ अं ५ मं श्रवणाय नमो दक्षजानुनि। ३ अं ५ यं धनिष्ठायै नमो वामजानुनि। ३ अं ५ लं शतभिषायै नमो दक्षगुल्फे। ३ अं ५ वं पूर्वाभाद्रपदायै नमो वामगुल्फे। ३ अं ५ षं हं उत्तराभाद्रपदायै नमो दक्षपादतले। ३ अं ५ लं क्षं रेवत्यै नमो वामपादतले।

नक्षत्रन्यासः—३ अं ५ अश्विन्यै नमः—ललाट में। ३ अं ५ भरण्यै नमः—दक्ष नेत्र में। ३ अं ५ ईंडुं कृतिकायै नमः—वाम नेत्र में। ३ अं ५ ऋंकूल्लूं रोहिण्यै नमः—दक्ष कर्ण में। ३ अं ५ मृगशीर्षायै नमः—वाम कर्ण में। ३ अं ५ आद्रायै नमः—दक्ष नासिका में। ३ अं ५ ओं औं पुनर्वसवे नमः—वाम नासिका में। ३ अं ५ कं पुष्यायै नमः—कण्ठ में। ३ अं ५ खं गं अश्लेषायै नमः—दक्ष स्कन्थ में। ३ अं ५ धं मधायै नमः—वाम स्कन्थ में। ३ अं ५ चं पूर्वफाल्गुन्यै नमः—दक्ष कूर्पर में। ३ अं ५ छं जं उत्तराफाल्गुन्यै नमः—वाम कूर्पर।

में। ३ इं इंब्र हस्तायै नमः—दक्ष मणिबन्ध में। ३ उंठं चित्रायै नमः—वाम मणिबन्ध में। ३ डं स्वात्यै नमः—दक्ष हस्ततल में। ३ छं दण्ठ विशाखायै नमः—वाम हस्ततल में। ३ तथंदं अनुराधायै नमः—नाभि में। ३ धं ज्येष्ठायै नमः—दक्ष कटि में। ३ नंपंके मूलायै नमः—वाम कटि में। ३ बं पूर्वांशादायै नमः—दक्ष ऊरु में। ३ भं उत्तरांशादायै नमः—वाम ऊरु में। ३ मं श्रवणाय नमः—दक्ष जानु में। ३ यं धनिष्ठायै नमः—वाम जानु में। ३ लं शतभिषायै नमः—दक्ष गुल्फ में। ३ वंशं पूर्वाभाद्रपदायै नमः—वाम गुल्फ में। ३ षंसंहं उत्तराभाद्रपदायै नमः—दक्ष पादतल में। ३ ठंक्षं रेवत्यै नमः—वाम पादतल में।

अथ योगिनीन्यासः—३ अं १६ डमलवरयूं डाकिन्यै मां रक्ष २ त्वगात्मने नमः कण्ठे। ३ कं ५ चं५ उंठं रारीरूरंमलवरयूं राकिन्यै मां रक्ष २ असुगात्मने नमो हृदये। ३ उंडंण्ठंतं ५ पंकं लांलांलूलूलमलवरयूं लाकिन्यै मां रक्ष २ मांसात्मने नमः नाभौ। ३ बंभंमयंयंतंलं कांकीकूंकमलवरयूं काकिन्यै मां रक्ष २ मेदात्मने नमः स्वाधिष्ठाने। ३ वंशंषंसं सांसासुसमलवरयूं साकिन्यै मां रक्ष २ मज्जात्मने नमो मूलाधारे। ३ हंलंक्षं हांहीहूंहमलवरयूं हाकिन्यै मां रक्ष २ अस्थ्यात्मने नमो भ्रूमध्ये। एवमसृक्मांसमेदमज्जास्थीनि राकिण्यादिषु योज्यानि।

योगिनीन्यास—३ अं १६ डमलवरयूं डाकिन्यै मां रक्ष रक्ष त्वगात्मने नमः—कण्ठे। ३ कं ५ चं५ उंठं रारीरूरंमलवरयूं राकिन्यै मां रक्ष रक्ष असुगात्मने नमः—हृदये। ३ उंडंण्ठंतं ५ पंकं लांलांलूलूलमलवरयूं लाकिन्यै मां रक्ष रक्ष मांसात्मने नमः—नाभि में। ३ बंभंमयंयंरंलं कांकीकूंकनलवरयूं काकिन्यै मां रक्ष रक्ष मेदात्मने नमः—स्वाधिष्ठान में। ३ वंशंषंसं सांसासुसमलवरयूं साकिन्यै मां रक्ष रक्ष मज्जात्मने नमः—मूलाधार में। ३ हंलंक्षं हांहीहूंहमलवरयूं हाकिन्यै मां रक्ष रक्ष अस्थ्यात्मने नमः—भ्रूमध्ये। इसी प्रकार असृक् मांस मेद मज्जा अस्थियों को राकिणी आदि के साथ जोड़ा चाहिए।

अथ राशिन्यासः—३ अंआङ्गई मेषराशये नमो दक्षपादे। ३ उंऊं वृषराशये नमो दक्षवृषणे। ३ ऋंऋंलंलूं मिथुनराशये नमो दक्षकुक्षौ। ३ एंएं कर्कटराशये नमो दक्षोरसि। ३ ओंओं सिंहराशये नमो दक्ष-बाहुमूले। ३ अंः शं ६ कन्याराशये नमो दक्षमस्तके। ३ कं ५ तुलाराशये नमो वाममस्तके। ३ चं ५ वृश्चिकराशये नमो वामबाहुमूले। ३ टं ५ धनूराशये नमो वामहृदये। ३ तं ५ मकरराशये नमो वामकुक्षौ। ३ पं ५ कुम्भराशये नमो वामवृषणे। ३ यं ४ मीनराशये नमो वामपादे।

राशिन्यास—३ अंआङ्गई मेषराशये नमः—दक्षपाद में। ३ उंऊं वृषराशये नमः—दक्ष वृषण में। ३ ऋंऋंलंलूं मिथुनराशये नमः—दक्ष कुक्षि में। ३ एंएं कर्कटराशये नमः—दक्ष ऊरु में। ३ ओंओं सिंहराशये नमः—दक्ष बाहुमूल में। ३ अंः शं ६ कन्याराशये नमः—दक्ष मस्तक में। ३ कं ५ तुलाराशये नमः—वाम मस्तक में। ३ चं ५ वृश्चिकराशये नमः—वाम बाहुमूल में। ३ टं ५ धनूराशये नमः—वाम हृदय में। ३ तं ५ मकरराशये नमः—वाम कुक्षि में। ३ पं ५ कुम्भराशये नमः—वाम वृषण में। ३ यं ४ मीनराशये नमः—वाम पाद में।

अथ पीठन्यासः—३ अं वाराणसीपीठाय नमः। ३ आं कामरूपपीठाय नमः। ३ इं नेपालपीठाय नमः। ३ ईं पौण्ड्रवर्धनपीठाय नमः। ३ उं पुरस्थिरपीठाय नमः। ३ ऊं कान्यकुञ्जपीठाय नमः। ३ उं पूर्णशैलपीठाय नमः। ३ उं अर्द्धपीठाय नमः। ३ लं आग्नातकेश्वरपीठाय नमः। ३ लं एकाम्रपीठाय नमः। ३ एं तिस्तोत्पीठाय नमः। ३ ऐं कामपोटपीठाय नमः। ३ ओं भृगुनगरपीठाय नमः। ३ ओं केदारपीठाय नमः। ३ अं चन्द्रपुरपीठाय नमः। ३ अः श्रीपुरपीठाय नमः। ३ कं ओंकारपीठाय नमः। ३ खं जालन्धरपीठाय नमः। ३ गं मालवपीठाय नमः। ३ धं भद्रपीठाय नमः। ३ उं देवीकोटपीठाय नमः। ३ चं गोकर्णपीठाय नमः। ३ छं मारुतेश्वरपीठाय नमः। ३ जं मङ्गलकोटपीठाय नमः। ३ झं अदृहासपीठाय नमः। ३ जं सवीरजपीठाय नमः। ३ उं राजगृहपीठाय नमः। ३ ठं महापथपीठाय नमः। ३ उं कोलगिरिपीठाय नमः। ३ ढं ऐलापुरपीठाय नमः। ३ णं वाणीश्वरपीठाय नमः। ३ तं जयन्तीपीठाय नमः। ३ थं उज्जयिनीपीठाय नमः। ३ दं चत्रित्रीपीठाय नमः। ३ धं क्षीरिकापीठाय नमः। ३ नं हस्तिनापुरपीठाय नमः। ३ पं उड्हीशपीठाय नमः। ३ फं प्रथागपीठाय नमः। ३ बं षष्ठीपुरपीठाय नमः। ३ भं मायापुरपीठाय नमः। ३ मं जलेश्वरपीठाय नमः। ३ यं मलयगिरिपीठाय नमः। ३ रं श्रीशैलपीठाय नमः।

नमः। ॐ लं महामेरुपीठाय नमः। ॐ वं गिरिपीठाय नमः। ॐ शं महेन्द्रपीठाय नमः। ॐ षं वामनपीठाय नमः। ॐ सं हिरण्यपीठाय नमः। ॐ हं महालक्ष्मीपुरपीठाय नमः। ॐ क्षं उड्हीयानपुरपीठाय नमः। ॐ क्षं छायाच्छत्रपीठाय नमः। एतानि नमोनानि मातृकास्थानेषु कर्तव्यानीति षोढान्यासः। अयं षोढान्यासो मातृकान्यासानन्तरं कर्तव्य इति।

**षीठन्यास—** ॐ अं वाराणसीपीठाय नमः, ॐ आं कामरूपपीठाय नमः, ॐ इं नेपालपीठाय नमः, ॐ ईं पौण्ड्रवर्धनपीठाय नमः, ॐ उं पुरस्थिरपीठाय नमः, ॐ ऊं कान्यकुञ्जपीठाय नमः, ॐ ऋं पूर्णशैलपीठाय नमः, ॐ ऋं अर्वधपीठाय नमः, ॐ लं आप्रातकेश्वरपीठाय नमः, ॐ लृं एकाप्रीठाय नमः, ॐ एं तिसोत्पीठाय नमः, ॐ एं कामकोटिपीठाय नमः, ॐ ओं भृगुनगरपीठाय नमः, ॐ ओं केदारपीठाय नमः, ॐ अं चन्द्रपुरपीठाय नमः, ॐ अः श्रीपुरपीठाय नमः, ॐ कं ओंकारपीठाय नमः, ॐ खं जालथरपीठाय नमः, ॐ गं मालवपीठाय नमः, ॐ षं भद्रपीठाय नमः, ॐ ङं देवीकोटपीठाय नमः, ॐ चं गोकर्णपीठाय नमः, ॐ छं मारुतेश्वरपीठाय नमः, ॐ जं मङ्गलकोटपीठाय नमः, ॐ झं अद्वृहासपीठाय नमः, ॐ जं सवीरजपीठाय नमः, ॐ टं राजगृहपीठाय नमः, ॐ ठं महापथपीठाय नमः, ॐ डं कोलागिरिपीठाय नमः, ॐ ढं ऐलापुरपीठाय नमः, ॐ णं वाणीश्वरपीठाय नमः, ॐ तं जयन्तीपीठाय नमः, ॐ थं उज्जयनीपीठाय नमः, ॐ दं चरित्रापीठाय नमः, ॐ धं क्षीरिकापीठाय नमः, ॐ नं हस्तिनापुरपीठाय नमः, ॐ धं उड्हीशपीठाय नमः, ॐ फं प्रयागपीठाय नमः, ॐ बं षष्ठीपुरपीठाय नमः, ॐ भं मायापुरपीठाय नमः, ॐ मं जलेश्वरपीठाय नमः, ॐ यं मलयगिरिपीठाय नमः, ॐ रं श्रीशैलपीठाय नमः, ॐ लं महामेरुपीठाय नमः, ॐ वं गिरिपीठाय नमः, ॐ शं महेन्द्रपीठाय नमः, ॐ षं वं वामनपीठाय नमः, ॐ सं हिरण्यपीठाय नमः, ॐ हं महालक्ष्मीपुरपीठाय नमः, ॐ क्षं उड्हीयानपुरपीठाय नमः—यह षोढा न्यास मातृका स्थानों में करना चाहिए। साथ ही इसे मातृका न्यास के बाद करना चाहिए।

**अथ त्रिपुरान्यासः—** तथाच तन्नान्तरे ‘त्रिपुरान्यासं ततः कुर्यात् सर्वकामार्थसिद्ध्ये। आसां तु न्यासमात्रेण सदाशिवो भवेन्नरः।’ ॐ अं कामिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ आं मालिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ इं मदनात्रिपुरायै नमः। ॐ ईं उन्मादिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ उं द्राविणीत्रिपुरायै नमः। ॐ ऊं ऊं खेचरीत्रिपुरायै नमः। ॐ ऋं घण्टिकात्रिपुरायै नमः। ॐ ऋं कलावतीत्रिपुरायै नमः। ॐ लूं ब्लेदिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ लूं शिवदूरीत्रिपुरायै नमः। ॐ एं सुभगात्रिपुरायै नमः। ॐ एं भगावहात्रिपुरायै नमः। ॐ ओं विद्वेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ॐ औं सिद्धीश्वरीत्रिपुरायै नमः। ॐ अं उग्रात्रिपुरायै नमः। ॐ अः महोग्रात्रिपुरायै नमः। ॐ कं कपालिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ खं व्यापिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ गं सुभगात्रिपुरायै नमः। ॐ धं वाणीश्वरीत्रिपुरायै नमः। ॐ डं कालिकात्रिपुरायै नमः। ॐ चं पिङ्गलात्रिपुरायै नमः। ॐ छं भगसर्पिणीत्रिपुरायै नमः। ॐ जं सुन्दरीत्रिपुरायै नमः। ॐ झं नीलपताकात्रिपुरायै नमः। ॐ जं महासिद्धेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ॐ टं अमोघात्रिपुरायै नमः। ॐ ठं रत्नमालात्रिपुरायै नमः। ॐ ढं मङ्गलात्रिपुरायै नमः। ॐ छं विजयात्रिपुरायै नमः। ॐ णं भगमालिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ तं रौद्रीत्रिपुरायै नमः। ॐ थं योगेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ॐ दं अस्त्रिकात्रिपुरायै नमः। ॐ धं अद्वृहासात्रिपुरायै नमः। ॐ नं व्योमव्यापिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ पं वक्त्रेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ॐ फं क्षेत्रिणीत्रिपुरायै नमः। ॐ बं शास्त्रवीत्रिपुरायै नमः। ॐ भं अनङ्गात्रिपुरायै नमः। ॐ मं लोकेश्वरीत्रिपुरायै नमः। ॐ यं रक्तात्रिपुरायै नमः। ॐ रं सुस्थात्रिपुरायै नमः। ॐ लं शुक्लात्रिपुरायै नमः। ॐ वं अपराजितात्रिपुरायै नमः। ॐ शं संवर्तात्रिपुरायै नमः। ॐ षं विमलात्रिपुरायै नमः। ॐ सं अधोरात्रिपुरायै नमः। ॐ हं भैरवित्रिपुरायै नमः। ॐ लं अमोघात्रिपुरायै नमः। ॐ क्षं सर्वकर्षणीत्रिपुरायै नमः। एता नमोऽन्तेन मातृकास्थानेषु विन्यसेत्।

**त्रिपुरान्यास—** तन्नान्तर में कहा गया है कि समस्त काम एवं अर्थ की सिद्धि के लिये त्रिपुरान्यास करना चाहिये। इस न्यास को करने मात्र से ही साधक साक्षात् सदाशिव के समान हो जाता है। मातृका स्थानों में यह न्यास इस प्रकार होता है—३ अं कामिनीत्रिपुरायै नमः, ॐ आं मालिनीत्रिपुरायै नमः, ॐ इं मदनात्रिपुरायै नमः, ॐ ईं उन्मादिनीत्रिपुरायै नमः, ॐ उं द्राविणीत्रिपुरायै नमः, ॐ ऊं ऊं खेचरीत्रिपुरायै नमः, ॐ ऋं घण्टिकात्रिपुरायै नमः, ॐ ऋं कलावतीत्रिपुरायै नमः, ॐ लूं ब्लेदिनीत्रिपुरायै नमः, ॐ लूं शिवदूरीत्रिपुरायै नमः, ॐ एं सुभगात्रिपुरायै नमः, ॐ एं भगावहात्रिपुरायै नमः, ॐ औं सिद्धीश्वरीत्रिपुरायै नमः, ॐ अं उग्रात्रिपुरायै नमः, ॐ अः महोग्रात्रिपुरायै नमः, ॐ कं कपालिनीत्रिपुरायै नमः, ॐ खं

व्यापिनीत्रिपुरायै नमः; ३ गं सुभगात्रिपुरायै नमः; ३ धं वागीश्वरीत्रिपुरायै नमः; ३ डं कालिकात्रिपुरायै नमः; ३ चं पिङ्गलात्रिपुरायै नमः; ३ छं भगसर्पिणीत्रिपुरायै नमः; ३ जं सुन्दरीत्रिपुरायै नमः; ३ झं नीलपताकात्रिपुरायै नमः; ३ झं महासिद्धेश्वरीत्रिपुरायै नमः; ३ टं अमोघात्रिपुरायै नमः; ३ ठं रत्नमालात्रिपुरायै नमः; ३ डं मङ्गलात्रिपुरायै नमः; ३ ढं विजयात्रिपुरायै नमः; ३ णं भगमालिनीत्रिपुरायै नमः; ३ तं रौद्रीत्रिपुरायै नमः; ३ थं योगेश्वरीत्रिपुरायै नमः; ३ दं अस्त्रिकात्रिपुरायै नमः; ३ धं अद्वहासात्रिपुरायै नमः; ३ नं व्योमव्यापिनीत्रिपुरायै नमः; ३ पं व्रजेश्वरीत्रिपुरायै नमः; ३ फं क्षेमिणीत्रिपुरायै नमः; ३ बं शाम्भवीत्रिपुरायै नमः; ३ भं अनङ्गात्रिपुरायै नमः; ३ मं लोकेश्वरीत्रिपुरायै नमः; ३ यं रत्नात्रिपुरायै नमः; ३ रं सुस्थात्रिपुरायै नमः; ३ लं शुक्लात्रिपुरायै नमः; ३ वं अपराजितात्रिपुरायै नमः; ३ शं संवर्तीत्रिपुरायै नमः; ३ सं अधोरात्रिपुरायै नमः; ३ हं भैरवीत्रिपुरायै नमः; ३ ळं अमोघात्रिपुरायै नमः; ३ क्षं सर्वांकिणीत्रिपुरायै नमः।

अथ कामरतिन्यासः। यथा—ऐंहींश्रींकलीं अं कामरतिभ्यां नमः। ४ आं कामदप्रीतिभ्यां नमः। ४ इं कान्तकामिनीभ्यां नमः। ४ ईं ईं श्रान्तिमोहिनीभ्यां नमः। ४ उं काममधुकरकलाभ्यां नमः। ४ ऊं कामाचारविलासिनीभ्यां नमः। ४ ऋं कामिकल्पलताभ्यां नमः। ४ ऋूं कोमलश्यामलाभ्यां नमः। ४ लं कामवर्द्धकशुचिस्मिताभ्यां नमः। ४ लूं कामविजयाभ्यां नमः। ४ एं रमणविशालाक्षीभ्यां नमः। ४ ऐं श्रमणलेलिहानाभ्यां नमः। ४ ओं रतिनाथदिग्भाराभ्यां नमः। ४ औं रतिप्रियरमाभ्यां नमः। ४ अं रात्रिनाथकुञ्जिकाभ्यां नमः। ४ अः स्मरसेनकानाभ्यां नमः। ४ कं रमणनित्याभ्यां नमः। ४ खं निशाचरकल्याणीभ्यां नमः। ४ गं नन्दकमोहिनीभ्यां नमः। ४ घं नन्दनकामदाभ्यां नमः। ४ ङं डं मदनसुलोचनाभ्यां नमः। ४ चं नन्दयित्रसुलापिनीभ्यां नमः। ४ छं निशाचरमर्दिनीभ्यां नमः। ४ जं रतिसखकलहप्रियाभ्यां नमः। ४ झं पुष्पधन्ववराक्षीभ्यां नमः। ४ झं जं महाधनुःसुमुखीभ्यां नमः। ४ टं भ्रामणीनलिनीभ्यां नमः। ४ ठं भ्रमणजटिनीभ्यां नमः। ४ डं भ्रममाणपालिनीभ्यां नमः। ४ ढं भ्रमशिखिनीभ्यां नमः। ४ झं भ्रान्तमुग्धाभ्यां नमः। ४ तं भ्रामकरमाभ्यां नमः। ४ थं भृङ्गभ्रमाभ्यां नमः। ४ दं भ्रान्तचारलोलाभ्यां नमः। ४ धं भ्रामावहसुचञ्चलाभ्यां नमः। ४ नं मोहनदीर्घजिह्वाभ्यां नमः। ४ पं मेचकमद्रिभ्यां नमः। ४ फं मुग्धलोलाक्षीभ्यां नमः। ४ बं मोहवर्धनभृङ्गिनीभ्यां। ४ भं मोहकपाटलाभ्यां नमः। ४ मं मन्मथमदनाभ्यां नमः। ४ यं मतङ्गभ्रमालिनीभ्यां नमः। ४ रं भृङ्गनायक-हंसिनीभ्यां नमः। ४ लं गायकविश्वतोमुखीभ्या नमः। ४ वं गीतजगदानन्दिनीभ्यां नमः। ४ शं नर्तकरञ्जिनीभ्यां नमः। ४ षं लोककान्तिभ्यां नमः। ४ सं उमत्तकलकण्ठीभ्यां नमः। ४ हं मत्तकवृकोदरीभ्यां नमः। ४ ळं विलासिमेघश्यामाभ्यां नमः। ४ क्षं कामवर्धनसोम्पत्ताभ्यां नमः। एता नपोऽन्ता मातृकास्थानेषु विच्यसेत्।

कामरतिन्यास—कामरति न्यास मातृका स्थानों में इस प्रकार किया जाता है—ऐंहींश्रींकलीं अं कामरतिभ्यां नमः; ४ आं कामदप्रीतिभ्यां नमः; ४ इं कान्तकामिनीभ्यां नमः; ४ ईं श्रान्तिमोहिनीभ्यां नमः; ४ उं काममधुकरकलाभ्यां नमः; ४ ऊं कामाचारविलासिनीभ्यां नमः; ४ ऋं कामिकल्पलताभ्यां नमः; ४ ऋूं कोमलश्यामलाभ्यां नमः; ४ लं कामवर्द्धकशुचिस्मिताभ्यां नमः; ४ लूं कामविजयाभ्यां नमः; ४ एं रमणविशालाक्षीभ्यां नमः; ४ ऐं श्रमणलेलिहानाभ्यां नमः; ४ ओं रतिनाथदिग्भाराभ्यां नमः; ४ औं रतिप्रियरमाभ्यां नमः; ४ अं रात्रिनाथकुञ्जिकाभ्यां नमः; ४ अः स्मरसेनकानाभ्यां नमः; ४ कं रमणनित्याभ्यां नमः; ४ खं निशाचरकल्याणीभ्यां नमः; ४ गं नन्दकमोहिनीभ्यां नमः; ४ घं नन्दनकामदाभ्यां नमः; ४ ङं डं मदनसुलोचनाभ्यां नमः; ४ चं नन्दयित्रसुलापिनीभ्यां नमः; ४ छं निशाचरमर्दिनीभ्यां नमः; ४ जं रतिसखकलहप्रियाभ्यां नमः; ४ झं पुष्पधन्ववराक्षीभ्यां नमः; ४ झं जं महाधनुःसुमुखीभ्यां नमः; ४ टं भ्रामणीनलिनीभ्यां नमः; ४ ठं भ्रमणजटिनीभ्यां नमः; ४ डं भ्रममाणपालिनीभ्यां नमः; ४ ढं भ्रमशिखिनीभ्यां नमः; ४ झं भ्रान्तमुग्धाभ्यां नमः; ४ तं मोहनदीर्घजिह्वाभ्यां नमः; ४ पं मेचकमद्रिभ्यां नमः; ४ फं मुग्धलोलाक्षीभ्यां नमः; ४ बं मोहवर्धनभृङ्गिनीभ्यां; ४ भं मोहकपाटलाभ्यां नमः; ४ मं मन्मथमदनाभ्यां नमः; ४ यं मतङ्गभ्रमालिनीभ्यां नमः; ४ रं भृङ्गनायक-हंसिनीभ्यां नमः; ४ लं गायकविश्वतोमुखीभ्या नमः; ४ वं गीतजगदानन्दिनीभ्यां नमः; ४ शं नर्तकरञ्जिनीभ्यां नमः; ४ षं लोककान्तिभ्यां नमः; ४ सं उमत्तकलकण्ठीभ्यां नमः; ४ हं मत्तकवृकोदरीभ्यां नमः; ४ ळं विलासिमेघश्यामाभ्यां नमः; ४ क्षं कामवर्धनसोम्पत्ताभ्यां नमः।

अथ षोडशनित्यान्यासः। षोडशनित्या यथा ज्ञानाणवि—  
 प्रथमा सुन्दरी नित्या महात्रिपुरसुन्दरी । कामेश्वरी समाख्याता तथैव भगमालिनी ॥१॥  
 नित्यक्लिन्ना च भेरुण्डा तथैव वहिवासिनी । वज्रेश्वरी च दूती च त्वरिता कुलसुन्दरी ॥२॥  
 नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला । ज्वालामालिनिचित्रान्ताः पञ्चदशः प्रकीर्तिः ॥३॥ इति।

एतासां मन्त्रास्तु ज्ञानाणवि—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्यामण्डलमुत्तमम् । (१) बालां तारं च हत्यान्ते कामेश्वरिपदं वदेत् ॥१॥  
 इच्छाकामफलस्यान्ते प्रदे सर्वपदं ततः । ततः सत्त्ववशं भूयः करि सर्वजगत्यदम् ॥२॥  
 क्षोभणान्ते करि ब्रूयाङ्कुंकात्रयमालिखेत् । पञ्चबाणान् समालिख्य संहारेण कुमारिकाम् ॥३॥  
 एषा कामेश्वरी नित्या प्रसङ्गात्कथिता शिवे । (२) वाग्भवं भगशब्दान्ते भुजे भगिनि चालिखेत् ॥४॥  
 भगोदरि भगाङ्गे च भगमाले भगावहे । भगगुहो भगप्रान्ते तथायोनि भगान्तिके ॥५॥  
 निपातिनि च सर्वान्ते ततो भगवशङ्करि । भगरूपे ततो लेख्यं नीरजायतलोचने ॥६॥  
 नित्याक्लिन्ने भगप्रान्ते स्वरूपे सर्व चालिखेत् । भगानि भे ह्यानयान्ते वदेऽथ समालिखेत् ॥७॥  
 रेते सुरेते च भगक्लिन्ने क्लिन्नप्रवे ततः । क्लेदय द्रावय चाथ सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ॥८॥  
 अमोघे भगविच्छे च क्षुभ्यं क्षोभय सर्व च । सत्त्वान् भगेश्वरि ब्रूयाद्वाग्भवं ब्लूजमादिकम् ॥९॥  
 भेंक्लूमोंब्लूं च हेंक्लूंहें च क्लिन्ने ततः परम् । सर्वाणि च भगान्यन्ते मे वशमानयेति । च ॥१०॥  
 स्त्रीबीजं च हरप्रान्ते बलेमात्मकमक्षरम् । भुवनेशीं समालिख्य विद्येयं भगमालिनी ॥११॥  
 (३) पराबीजं समुच्चार्य नित्यक्लिन्ने मदद्रवे । अग्निजायान्वितो मन्त्रो नित्यक्लिन्नेयमीरिता ॥१२॥  
 (४) प्रणवं पूर्वमुच्चार्य तथाङ्कशयुगं वदेत् । तन्मध्ये विलिखेद् देवि हरोमात्मकमक्षरम् ॥१३॥  
 चवर्गमन्त्यहीनं च विलिखेद्विसंस्थितम् । चतुर्दशस्वरोपेतं बिन्दुनादाङ्कितं पृथक् ॥१४॥  
 वहिजायान्विता विद्या भेरुण्डा देवता भवेत् । (५) परां विलिख्य वह्यनुवासिन्यै नम इत्यपि ॥१५॥  
 अष्टार्णेयं महेशानि देवता वहिवासिनी । (६) नित्यक्लिन्नां समालिख्य मुखे तारं समालिखेत् ॥१६॥  
 हल्लेखान्ते फरेमान्ते चन्द्रबीजं विसर्गवत् । चतुर्दशाक्षरी विद्या देवी वज्रेश्वरी भवेत् ॥१७॥  
 (७) पराबीजं समुच्चार्य शिवदूती च डेयुता । हृदन्तोऽयं मनुर्देवि दूती(त्या:) सर्वसमृद्धिदः ॥१८॥  
 (८) ॐकारबीजमुच्चार्य परां कवचमालिखेत् । खे च छे क्षः समालिख्य स्त्रीबीजं च समालिखेत् ॥१९॥  
 हुंकारं क्षे परां चाक्षं विद्येयं त्वरिता भवेत् । (९) सर्वसिंहासनमयी बालैव कुलसुन्दरी ॥२०॥  
 (१०) बालया पुटिं कुर्यात्तथा वै नित्यभैरवीम् । पञ्चबाणांश देवेशि नित्या शक्राक्षरी भवेत् ॥२१॥  
 पञ्चाक्षरी बाणबीजैर्नित्येयमपरा भवेत् । (११) प्रणवं भुवनेशानीं फरेमात्मकमक्षरम् ॥२२॥  
 ब्लूमात्मकं द्वितीयं च भुवनेश्यङ्कुशं ततः । नित्यशब्दं समुद्भूत्य संबोध्या च मदद्रवा ॥२३॥  
 कवचं चाङ्कुशं माया नित्या नीलपताकिनी । (१२) बानं कालसमायुक्तं रेफं शक्रस्वरान्वितम् ॥२४॥

बिन्दुनादाङ्कितं देवी विद्येयं विजया भवेत् ।

यद्वा—

बानं कालाग्निवायुश्च शक्रस्वरविभूषितः । नादबिन्दुकलायुक्तो विद्येयं विजया भवेत् ॥२५॥  
 (१३) चन्द्रं वारुणसंयुक्तं तारबीजं समालिखेत् । चतुर्थ्यन्तां ततो देवि विलिखेत्सर्वमङ्गलाम् ॥२६॥  
 हृदन्तोऽयं मनुर्देवि विद्येयं सर्वमङ्गला । (१४) तारं हृद्वगवत्यन्ते ज्वालामालिनि देवि च ॥२७॥  
 द्विरुच्चार्यं च सर्वान्ते भूतसंहारकात्मिके । जातवेदसि संलिख्य ज्वलन्तिपदयुग्मकम् ॥२८॥  
 ज्वलेति प्रज्वलद्वन्द्वं हुंकारत्रयमालिखेत् । वहिबीजत्रयं हुं च अस्त्रस्वाहान्तिवो मनुः ॥२९॥

इयं नित्या महादेवि ज्वालामालिनिका परा । (१५) कवर्गन्तं स्वरान्तं च शक्तस्वरिभूषितम् ॥३०॥  
 बिन्दुनादकलाक्रान्तं विचित्रा परमेश्वरि । अकारादिषु सर्वेषु स्वरेषु क्रमतो यजेत् ॥३१॥  
 (१६) अः स्वरे परमेशानि श्रीविद्यां विश्वविग्रहाम् । स्वरवद्विन्यसेद्विद्यां नीराजयतलोचने ॥३२॥  
 एतेन ताः षोडशसु स्वरस्थानेषु विन्यसेत् ।

यथा—(१) ॐ ऐं हीं श्रीं अं एं कल्तीं सौः ॐ नमः कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वजग-  
त्क्षोभणकरि हुं हुं हुं द्रां द्रीं कल्तीं ब्लूं सूः सौः कल्तीं एं (४६) कामेश्वरीनित्याकलायै नमः। (२) ॐ आं एं भगाभुजे भगिनि  
भगोदरि भगाज्ञे भगामाले भगावहे भगगुहे भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशङ्करि भगरूपे नित्यकिलन्ने भगास्वरूपे  
सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगकिलन्ने किलन्नद्रवे क्लेदय द्रावय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि अमोधे भगविच्चे  
क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं ब्लूं भेब्लूं मों ब्लूं हं ब्लूं हें किलन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं रब्लों हीं  
(१४५) भगामालिनीनित्याकलायै नमः। (३) ॐ इं हीं नित्यकिलन्ने मदद्रवे स्वाहा (११) नित्यकिलन्नाकलायै नमः।  
(४) ॐ इं ॐ क्रों हौं क्रों च्छों छ्रों झ्रों झ्रों स्वाहा (१०) भेरुणडानित्याकलायै नमः। (५) ॐ उं हीं  
वह्निवासिन्यै नमः। (६) वह्निवासिनीनित्याकलायै नमः। (७) ॐ उं हीं फ्रेंसः नित्यकिलन्ने मदद्रवे स्वाहा (१४)  
वत्रेश्वरीनित्याकलायै नमः। (८) ॐ ऋं हीं शिवदूत्यै नमः। (९) शिवदूतीनित्याकलायै नमः। (१०) ॐ ऋं  
अं हीं हुं खं चउक्षः स्त्रीं हुं श्रीं हीं फट् (१२) त्वरितानित्याकलायै नमः। (११) ॐ लं एं कल्तीं सौः कुलसुन्दरीनित्याकलायै  
नमः। (१२) ॐ लं एं कल्तीं सौः हसकलरडैं हसकलरडौं हसकलरडौः द्रां द्रीं कल्तीं ब्लूं सूः सौः कल्तीं एं नित्यानित्याकलायै  
नमः। अथवा ऐहीं श्रीं लूं द्रां द्रीं कल्तीं ब्लूं सूः नित्येत्यादि। (१३) ॐ उं ॐ फ्रें ब्लूं हीं क्रों नित्यमदद्रवे हुं क्रों हीं  
नीलपताकानित्याकलायै नमः। (१४) ॐ ऐं भमरों विजयानित्याकलायै नमः। अथवा ॐ ऐं भमरयों विजयेत्यादि।  
(१५) ॐ आं स्वों सर्वमङ्गलायै नमः सर्वमङ्गलानित्याकलायै नमः। (१६) ॐ आं ॐ उं नमो भगावति ज्वालामालिनि  
देवि २ सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति २ ज्वल २ प्रज्वल २ हुं हुं रं रं हुं फट् स्वाहा ज्वालामालिनीनित्याकलायै  
नमः। (१७) ॐ अं अं चक्रों विचित्रानित्याकलायै नमः। (१८) ॐ अः मूलविद्यामुच्चार्य महारिपुरसुन्दरीनित्याकलायै  
नमः। यद्या—४ अः कामेश्वरीनित्याकलायै नमः। इति षोडशविद्यान्यासः। अस्मिन काले वा सष्ठिस्थितिन्यासः। कार्याः।

**घोडश नित्या न्यास**—ज्ञानार्थ में घोडश नित्यायें इस प्रकार कही गई है—प्रथम स्थान पर त्रिपुरसुन्दरी है। शेष भगमालिनी, नित्यकिलत्रा, भेरण्डा, वहिवासिनी, वज्रेश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्यानित्या, नीलपत्ताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनी और चित्रा—ये पन्द्रह नित्यायें हैं।

ज्ञानार्णव के अनुसार इनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. ॐ ऐहीश्रीअंगेकतीसौः ३०नमः कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वजगत्सोभणकरि हुंहुंहुंद्रीकलीब्लूंसः-  
सौःकलीऐँ (४६) कामेश्वरीनित्याकलायै नमः।

२. ३० ऐं हीं श्री आं ऐं भगभुजे भगिनि भगोदारि भगाङ्गे भगमाले भगावहे भगागुहो भगयेनि भगनिपातिनि सर्वभग-वशङ्करि भगारुपे नित्यकिलत्रे भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वररे रेते सुरोते भगकिलत्रे किलन्द्रवे क्लेदय द्रावय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि अमोधे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐंलूङ्बत्तुंभेल्मूळ्हूङ्बत्तुं किलत्रे सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्थी-हरब्लेहीं (१४५) भगमालिनीनित्यकलायै नमः।

३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा (११) नित्यक्लिन्नाकलायै नमः।

४. ॐ ऐं हीं श्रीं ईं ॐ क्रों हौं क्रों चौं छौं ज्ञौं स्वाहा (१०) भेरुण्डानित्याकलायै नमः।

५. ॐ ऐं ह्लीं श्रीं उं ह्लीं वह्निवासिन्यै नमः (८) वह्निवासिनीनित्याकलायै नमः

६. ॐ ऐं हीं श्रीं ॐ ॐ हीं फ्रेसः नित्यक्लित्रे मदद्रवे स्वाहा (१४) वज्रेश्वरीनित्याकलायै नमः।

७. ॐ एं ह्रीं श्रीं ऋं ह्रीं शिवदत्यै नमः (७) शिवदतीनित्याकलायै नमः

੮. ਅੱ ਏਂ ਹੀਂ ਸ਼੍ਰੀ ਋ਣੁ ਅੱਹੀਂਖੇਚਛੇਖ: ਸ਼੍ਰੀਹੰਸ਼ੇਹੀਂ ਫਟ (੧੨) ਲਵਿਤਾਨਿਤਾਕਲਾਯੈ ਨਮ:

९. ॐ ऐं हीं श्री लं ऐकलीसौः कुलसुन्दरीनित्याकलायै नमः।

१०. ॐ ऐं हीं श्री लं ऐकलीसौः हसकलरडै हसकलरडैः द्रांद्रीकलीब्लूंसः सौःक्लीऐं नित्यानित्याकलायै नमः। अथवा ऐहीश्रीलं द्रांद्रीकलीब्लूंसः नित्येत्यादि।

११. ॐ ऐं हीं श्री एं ३०हीफेल्हूंहीको नित्यमटद्रवे हुंक्रोहीं नीलपताकानित्याकलायै नमः।

१२. ॐ ऐं हीं श्री एं भमरौ विजयानित्याकलायै नमः। अथवा ४ ऐं भमरयौ विजयेत्यादि।

१३. ॐ ऐं हीं श्री ओ स्वो सर्वमङ्गलायै नमः सर्वमङ्गलानित्याकलायै नमः।

१४. ॐ ऐं हीं श्रीं औं ३० नमो भगवति ज्वालामालिनि देवि २ सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति २ ज्वल

२ प्रज्वल २ हुंहुंहुं रंरं हुंफट् स्वाहा ज्वालामालिनीनित्यकलायै नमः।

१५. ॐ ऐं हीं श्रीं अं चकों विचित्रानित्याकलायै नमः।

१६. ॐ ऐं हीं श्रीं अः मूलविद्यामुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरीनित्याकलायै नमः। यद्वा—४ अः कामेश्वरीनित्याकलायै नमः।

अथ प्रकटयोगिनीन्यासः—मूलाधारे, ऐंहींश्रीं प्रकटयोगिनीभ्यो नमः। स्वाधिष्ठाने, ३ गुप्तयोगिनीभ्यो नमः। नाभौ, ३ गुप्ततरयोगिनीभ्यो नमः। हृदि, ३ संप्रदायरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। कण्ठे, ३ कुलकौलिनीयोगिनीभ्यो नमः। भ्रूमध्ये, ३ निर्गर्भयोगिनीभ्यो नमः। नादे, ३ रहस्ययोगिनीभ्यो नमः। नादान्ते, ३ अतिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। ब्रह्मरन्त्रे, ३ परमातिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः।

प्रकट योगिनी न्यास—मूलाधार में—ऐंहींश्रीं प्रकटयोगिनीभ्यो नमः। स्वाधिष्ठान में—ऐं हीं श्रीं गुप्तयोगिनीभ्यो नमः। नाभि में—ऐं हीं श्रीं गुप्ततरयोगिनीभ्यो नमः। हृदय में—ऐं हीं श्रीं संप्रदायरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। कण्ठ में—ऐं हीं श्रीं कुलकौलिनीयोगिनीभ्यो नमः। भ्रूमध्य में—ऐं हीं श्रीं निर्गर्भयोगिनीभ्यो नमः। नाद में—ऐं हीं श्रीं रहस्ययोगिनीभ्यो नमः। नादान्त में—ऐं हीं श्रीं अतिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। ब्रह्मरन्त्र में—ऐं हीं श्रीं परमातिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः।

अथायुधन्यासः—द्रांद्रीकलीब्लूंसः यांरांलांवांशांधं संमोहनाय कामेश्वरधनुषे नमः। यां ५ द्रां ५ थं संमोहनाय कामेश्वरीधनुषे नमः। एतद् हृयं वामाधोहस्ते द्रां ५ यां ५ जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः। यां ५ द्रां ५ जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः। दक्षिणाधःकरो द्रां ५ यां ५ आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः। यां ५ द्रां ५ हीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः। वामोध्वें द्रां ५ यां ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वराङ्कुशाय नमः। यां ५ द्रां ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वर्यङ्कुशाय नमो दक्षिणोध्वें।

आयुध न्यास—बाँये हाथ में नीचे—द्रांद्रीकलीब्लूंसः यांरांलांवांशांधं संमोहनाय कामेश्वरधनुषे नमः, यां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः द्रां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः थं संमोहनाय कामेश्वरीधनुषे नमः। दाँये हाथ में नीचे—द्रां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः यां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः, यां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः द्रां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः, बाँये हाथ में ऊपर—द्रां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः यां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः, यां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः द्रां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः हीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः। दाहिने हाथ में ऊपर—द्रां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः यां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वराङ्कुशाय नमः, यां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः द्रां द्रां द्रीं कलीं ब्लूं सः क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वर्यङ्कुशाय नमः।

ततो वक्ष्यमाणक्रमेण कामकलां ध्यात्वा न्यसेत्।

एवं कामकलास्त्रपं देवतामयमात्मनः। वपुर्विचिन्त्य शिवयोरायुधध्यानमाचरेत् ॥१॥

द्रांद्रींकलीब्लूंसः इत्येते कामबाणा प्रकीर्तिः। यांरांलांवांशामिदं कामेश्वीबाणपञ्चकम् ॥२॥

द्रादीनि पश्चाद्यादीनि धंसंमोहनशब्दतः। डेन्तं कामेश्वरधनुर्डेनमोऽनं समुद्धरेत् ॥३॥

अनेन च स्ववामाधोहस्ते संधारयेद्द्वनुः। यादिद्रादीनि थं डेन्तं संमोहनपदोपरि ॥४॥

कामेश्वरीधनुर्डेनं नमोन्तमित्यधःकरो वामे देव्यास्तथा मन्त्री धारयेदक्षवं धनुः ॥५॥

द्रादीयादीनि जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरं पदम्। बाणेभ्यो नम इत्येवं दक्षिणाधःकरे निजे ॥६॥

शैवान् प्रविन्यसेद्वाणान् पौष्ट्रान् साधकसत्तमः । यादिद्वादीनि जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरीपदम् ॥७॥  
 ब्राह्मणो नम इत्येवं दक्षिणाधः करे निजे । देव्या: प्रविन्यसेद्वाणान् पौष्ट्रानपि च साधकः ॥८॥  
 द्रादियादीनि भूयोऽपि मुखवृत्तं सविन्दुकम् । स्याद्वशीकरणायेति कामेश्वरपदं ततः ॥९॥  
 पाशाय नम इत्यन्तं वामोधर्वे विन्यसेत्करे । यादिद्वादीनि गगनं वहिवामाक्षिबिन्दुमत् ॥१०॥  
 स्याद्वशीकरणायेति ततः कामेश्वरीपदम् । पाशाय नम इत्येवं वामोधर्वे विन्यसेत्करे ॥११॥  
 द्रादियादीनि क्रों सर्वस्तम्भनाय पदं ततः । कामेश्वरपदात्यश्वादङ्गुशाय नमो लिखेत् ॥१२॥ इति।  
 दक्षिणोधर्वकरे चैवं विन्यसेदङ्गुशं ततः । यादिद्वादीनि क्रों सर्वस्तम्भनाय ततः परम् ॥१३॥  
 कामेश्वरीपदादुर्धर्वमङ्गुशाय नमो लिखेत् । दक्षिणोधर्वकरे देव्या विन्यसेदङ्गुशं ततः ॥१४॥

ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा नवमुद्राः प्रदर्शयेत् । यथा—द्रां सर्वसंक्षेपिणीं, द्रीं सर्वविद्राविणीं, क्लीं आकर्षिणीं, ब्लूं सर्ववेशिनीं, सः सर्वोन्मादिनीं, क्रों महाङ्गुशां, हसखफे खेचरीं, हसौः बीजमुद्रां, ऐं योनिमुद्राम्।

**कामकला न्यास**—अपने आत्मा और शरीर को कामकलारूप देवता मानकर शिव के आयुधों का ध्यान करे। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः—ये कामबाण हैं। यां रां तां वां शां—ये कामेशी के बाणपञ्चक हैं। द्रां द्रीं थं धं सर्वसम्मोहनाय कामेश्वरधनुषाय नमः से अपने निचले बाँयें हाथ में धनुष धारण करे। यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सम्मोहनाय कामेश्वरी धनुषाय नमः से निचले दाँयें हाथ में देवी का इस्तुधनुष धारण करे। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः से अपने निचले दक्षिण हाथ में पौष्ट्र बाणों को धारण करे। या रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः जं जृम्भणेभ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः से दाँयें निचले हाथ में पौष्ट्र बाणों को धारण करे। साधक देवी के पुष्टबाणों का न्यास करे। द्रां द्रीं ब्लूं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः से ऊपरी बाँयें हाथ में न्यास करे। यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः हीं आं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः से बाँयें ऊपरी हाथ में न्यास करे। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वरांकुशाय नमः से दाँयें ऊपरी हाथ में न्यास करे। यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं शः क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वर्यकुशाय नमः से दाँयें ऊपरी हाथ में न्यास करे। तब मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके नव मुद्रा दिखावे। द्रां से सर्वसंक्षेपिणीं, द्रीं से सर्वविद्राविणीं, क्लीं से आकर्षिणीं, ब्लूं से सर्ववेशिनीं, सः से सर्वोन्मादिनीं, क्रों से महांकुशा, हसखफे से खेचरी, हसौः से बीज मुद्रा एवं ऐं से योनिमुद्रा दिखावे।

### न्यासकालस्तु योगिनीहृदये—

प्रातःकालेऽथवा पूजासमये होमकर्मणि । जपकाले वापि तासां विनियोगः पृथक्पृथक् ॥१॥  
 पूजाकाले समस्तं वा कुर्यात् साधकसत्तमः । इति।

### ततो ध्यानं यथा—

ततः पद्मनिभां देवीं बालाकंकिरणोज्जवलाम् । जपाकुसुमसङ्काशां	दाढिमीकुसुमोपमाम् ॥१॥
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्गुमारुणसत्रिभाम् । स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्गिणीजालमण्डिताम् ॥२॥	
कालालिकुलसङ्काशकुटिलाकपल्लवाम् । प्रत्यग्राउणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम् ॥३॥	
किञ्चिद्धर्देन्दुकुटिललाटमृदुपट्टिकाम् । पिनाकिधनुराकारभूलतां	परमेश्वरीम् ॥४॥
आनन्दमुदितोल्लासलीलान्दोलितलोचनाम् । स्फुरन्मयूरिखसङ्काशविलसद्वेमकुण्डलाम् ॥५॥	
सुगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्रमृतमण्डलाम् । विश्वकर्मविनिर्माणसुत्रसुस्पष्टनासिकाम् ॥६॥	
ताप्रविद्वुभिष्माभरक्तौष्ठीमपृतोपमाम् । स्मितमाध्युर्यविजितामध्युर्यरससागराम् ॥७॥	
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् । कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणालललितैर्भुजैः ॥८॥	
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् । कराम्बुजनखज्योतिर्वितानितनभःस्थलाम् ॥९॥	
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् । त्रिवलीवलयायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ॥१०॥	
लावण्यसरिदावर्ताकारनाभिविभूषिताम् । अनर्घरत्नघटितकाञ्छीयुतनिम्बिनीम् ॥११॥	

नितम्बबिष्वद्विरदोमराजिवराङ्गुशाम्	। कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम्	॥१२॥
लावण्यकुमुकाकारजानुमण्डलबभ्युराम्	। लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम्	॥१३॥
गृढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम्	। तनुदीर्घाङ्गुलीस्वच्छनखराजिविराजिताम्	॥१४॥
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिर्घृष्टचरणाम्बुजाम्	। शीतांशुशतसङ्खाशकान्तिसन्तानहसिनीम्	॥१५॥
लौहित्यजितसिद्धरजपादादिमरागिणीम्	। रक्तवस्त्रपरीथानां पाशाङ्गुशकरोद्यताम्	॥१६॥
रक्तपद्मनिविष्टां तु रक्ताभरणभूषिताम्	। चतुर्भुजां त्रिनेत्रां तु पञ्चबाणधनुर्धराम्	॥१७॥
कर्पूरशकलोम्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम्	। महामृगमदोदामकुङ्गुमारुणविग्रहाम्	॥१८॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वभरणभूषिताम्	। जगदाहादजननीं जगद्रक्षनकारिणीम्	॥१९॥
जगदाकर्षणकर्णि जगत्कारणरूपिणीम्	। सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम्	॥२०॥
सर्वलक्ष्यीमयीं नित्यां सर्वशक्तिमयीं शिवाम् । एवं ध्यायेत्यरेशानीं महात्रिपुरसुन्दरीम्		॥२१॥ इति।

एवं रूपमात्मानं ध्यात्वा मानसैः पूजयेत् । तद्यथा—हृत्यामध्ये देवीं विभाव्य कुण्डलिनीपात्रस्थेन सहस्रारम्भेन पाद्य देव्याश्वरणयोर्देयात् । ततो मनश्चार्थं दत्त्वा सहस्रदलपद्मभृङ्गारगलितपरमामृतजलेनाचमनीयं मुखे । चतुर्विंशतितत्त्वेन, गन्धं च अहिंसां विज्ञानं क्षमां दयां चालोभमहोममात्सर्यमायामनहङ्कारमरागमदेषमिन्द्रियाणि दशैतानि पुष्टाणि च प्रदापयेत् । वायुरुपं धूंपं, तेजोरुपं च दीपम्, अम्बरं चामरं, सूर्यं दर्पणं, चन्द्रं छंगं, पद्मं च मेखलां, आनन्दहारसूत्रमुज्ज्वलं, अनाहतध्वनिमयीं घण्टां निवेदयेत् । ततः सुधारसाम्बुधिं मासपर्वतं ब्रह्माण्डपूरितं पायसं च दत्त्वा, ‘मनोनर्तकसंतालैः शृङ्गारादिरसोद्भवैः । नृत्यैर्गतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत् परमेश्वरीम्’ । एवं संपूज्याभेदेन जपः कार्यः । ततो बहिः पूजामारभेत् । तत्राद्यर्थस्थापनम् । प्रथमं सामान्यार्थम् । तत्र क्रमः—आदौ स्ववामे जलेन चतुरसं विधाय तदत्वंत्तमालिखेत् । ॐ मण्डलाय नमः इति पूष्टैरभ्यर्थ्य, तत्र साधारं पात्रं स्थापयित्वा बालया तमभ्यर्थ्यं शुद्धजलेन तमापूर्यं ‘ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीहृदयाय नमः, इत्यादिक्रमेण षड्ङ्गानि संपूज्यं तदुपरि मूलमष्ठ्या जपेत् ।

**न्यासकाल**—योगिनी हृदय के अनुसार ग्रातःकाल अथवा पूजा के समय, हृवन कर्म के समय और जप के समय उनके विनियोग अलग-अलग करे । अथवा पूजा के समय सबों का न्यास करे । तब महात्रिपुरसुन्दरी का मूलोक्त ध्यान करे ।

अपना ध्यान इस रूप में करके मानसिक पूजा करे । हृदय कमल में देवी की भावना करके कुण्डलिनी पात्र में स्थित सहस्र अमृत से देवी के चरण में पाद्य अर्पण करे । मानसिक अर्थं देकर सहस्र दल पद्म के केसरों से स्वित परमामृत जल से मुख में आचमनीयं देवे । चौबीस तत्त्वों से गन्धं, अहिंसा, विज्ञानं, क्षमा, दया, लोभं, मोहं, मात्सर्वं अमाया, अनहंकार राग, द्वेष, इन्द्रियाँ—इन दशों को फूल चढ़ावे । वायुरुपं धूपं, तेजोरुपं दीपकं, अम्बररुपं, चामरं, सूर्यरुपं, दर्पणं, चन्द्ररुपं, छत्रं, पद्मरुपं, मेखला, आनन्दा हाररुपं उज्ज्वलं सूत्रं, अनाहत ध्वनिमयी घण्टा निवेदित करे । तब अमृतमय जल मांसरुप पर्वतं, ब्रह्माण्डपूरितं पायसं अर्पण करे । तब मनोहर नृत्यं, गीतं, वाद्यादि से परमेश्वरी को सन्तुष्ट करे । इस प्रकार पूजा करके अभेद भावना से मन्त्रप्रय करे । तब बाह्य पूजा प्रारम्भ करे । पहले सामान्य अर्थ-स्थापन करे । अपने बाँयें भाग में जल से चतुरस बनाकर उसमें वृत बनावे । ‘ॐ मण्डलाय नमः’ से फूलों से अर्चन करे । उस पर आधार और पात्र रखे । ऐं हीं सौः से उसकी पूजा करो । उसमें शुद्ध जल भरे । ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीहृदयाय नमः इत्यादि से क्रम से षड्ङ्गों की पूजा करो । उसके ऊपर मूल मन्त्र का आठ बार जप करे ।

ततो विशेषार्थस्थापनम् । तत्पात्रं तु तत्त्वान्तरे—

पात्रं काञ्छनकाचरूप्यजनितं मुक्ताकापालोद्भवं विश्वामित्रमयं च कामदमिदं हैमं श्रिये स्फाटिकम् ।

ताप्रं प्रीतिदमिष्टसिद्धिजनकं श्रीनारिकेलोद्भवं कापालं स्फुटमत्र सिद्धिजनकं मुक्तिप्रदं मौक्तिकम् ॥१॥ इति।

नवरत्नेश्वरे—

नरपात्रं महेशानि विज्ञेयं चोत्तमोत्तमम् । नारिकेलोद्भवं पात्रं ज्ञेयं चोत्तमकल्पकम् ॥१॥

रत्नपात्रं च सुश्रोणि ज्ञेयं चोत्तममध्यमम् । मध्यमोत्तमगं बैत्वं ब्रह्मवृक्षजमेव च ॥२॥  
 कल्पं च मध्यमं प्रोक्तं मृणमयं कल्पमध्यमम् । वश्याकर्षणकर्मणि हेमपात्रेषु शोभने ॥३॥  
 शान्तिके पौष्टिके वापि राजतं कारयेतिये । लोहपात्रं विजानीयान्मारणोच्चाटने तथा ॥४॥  
 स्तम्भकार्येषु पाषाणं विद्वेषे लोहमृणमयम् । सर्वकार्येषु कर्तव्यं विश्वामित्रं च सुव्रते ॥५॥  
 कुलोत्सादनकार्येषु काचपात्रं विशिष्यते । काष्ठपात्रं विजानीयान्मन्त्राराधनकर्मणि ॥६॥  
 नरपात्रं तु गृहीयाद्बुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । दृष्ट्वार्घ्यपात्रं देवेशि ब्रह्माद्या देवताः सदा ॥७॥  
 नृत्यन्ति सर्वयोगिन्यः प्रीताः सिद्धिं ददत्यपि । इति ।

**विशेषार्थ स्थापन**—विशेषार्थ हेतु तनान्तर के अनुसार सोना, चाँदी, मोती, कपाल का पात्र विश्वामित्रमय होता है। सोने का पात्र कामदायक होता है। सफ्टिक का पात्र श्रीप्रद होता है। ताम्बे का पात्र प्रीतिदायक होता है। नारियल का पात्र इष्टसिद्धि देने वाला होता है। कपाल पात्र सिद्धि देने वाला एवं मोती का पात्र मुक्तिप्रद होता है।

नवरत्नेश्वर के अनुसार मनुष्य के कपाल का अर्थपात्र उत्तमोत्तम पात्र होता है। नारियल का पात्र उत्तम जानना चाहिये। रत्नपात्र उत्तम मध्यम माना जाता है। बित्व और ब्रह्मवृक्ष की लकड़ी से निर्मित पात्र मध्यमोत्तम होता है। कल्पपात्र मध्यम होता है और मृत्तिका-निर्मित पात्र सामान्य रूप से मध्यम होता है। वश्य एवं आकर्षण कर्म में सोने का पात्र एवं अच्छा होता है। शान्ति एवं पौष्टिक कर्म में चाँदी का पात्र प्रशस्त होता है। मारण एवं उच्चाटन में लोहे का पात्र ग्राह्य है। स्तम्भन कार्य में पत्थर का पात्र एवं विद्वेषण में लोहा और मिट्टी का पात्र ग्राह्य है। सभी कार्यों के लिये विश्वामित्र का पात्र उत्तम होता है। कुलोत्सादन कर्म से काच का पात्र विशेष रूप से ग्राह्य होता है। मन्त्राराधन कर्म में काष्ठपात्र लेना चाहिये। नरपात्र भोग और मोक्ष देने वाला होता है। अर्घ्यपात्र को देखकर ब्रह्मादि देवता खुरी से नाचने लगते हैं एवं सभी योगिनियाँ प्रसंग होकर सिद्धि प्रदान करती हैं।

#### सामान्यविशेषार्थयोरावश्यकत्वम्

**सामान्यविशेषार्थयोरावश्यकत्वमाह तत्रैव—**

एकपात्रं न कुर्वीत यदि साक्षात्महेश्वरः । मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति आपदश्च पदे पदे ॥१॥

इह लोके दरिद्रः स्यान्मृते च पशुतां व्रजेत् ।

इत्यादि पात्रलक्षणं ज्ञेयम् । तत आत्मश्रीचक्रयोर्मध्ये सामान्यार्थ्यजलेन त्रिकोणवृत्तषट्कोणाचतुरस्तमण्डलं कृत्वा त्रिकोणमध्ये मूलविद्या मध्यं संपूज्य, त्रिकोणे प्रत्येकं कूटं पूजयेत् । अग्न्यादिकोणक्रमेण षट्कोणे मूलविद्या द्विरावृत्त्या षडङ्गानि पूजयेत् । तत्र त्रिपादिकां संस्थाप्य, ऐंहींश्रीं मं अर्णिमण्डलाय दशकलात्मनेऽर्घ्यपात्राधाराय नमः, इत्याधारं संपूज्य तत्र वृत्ताकारेण वह्नेदेश कलाः पूजयेत् । यथा—ऐंहींश्रीं यं धूप्रायै नमः । ३ ऊं र नीलवरण्यै नमः । ३ ऊं लं कपिलायै नमः । ३ ऊं वं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः । ३ ऊं शं ज्वालिन्यै नमः । ३ ऊं षं हेम(तेजो)वर्त्यै नमः । ३ ऊं सं हव्यवाहनायै नमः । ३ ऊं हं कव्यवाहनायै नमः । ३ ऊं छं रौद्रैयै नमः । ३ ऊं क्षं संकर्षिण्यै नमः । इति संपूज्य, तदुपरि पात्रं संस्थाप्य, पूर्ववत् तत्र मन्त्रमालिख्य संपूज्य च, ऐंहींश्रीं क्लीं अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मनेऽर्घ्यपात्राय नमः, इति संपूज्य वृत्ताकारेण सूर्यस्य द्वादशकलाः पूजयेत् । यथा—ऐंहींश्रीं कंभं तपिन्यै नमः । ३ ऊं खंबं तापिन्यै नमः । ३ ऊं गंकं धूप्रायै नमः । ३ ऊं धंपं विबुधायै नमः । ३ ऊं डंनं बोधिन्यै नमः । ३ ऊं चंधं कालिन्यै नमः । ३ ऊं छंदं शोषिण्यै नमः । ३ ऊं जंथं वरेण्यायै नमः । ३ ऊं झांतं आकर्षिण्यै नमः । ३ ऊं जंणं मायायै नमः । ३ ऊं ठंडं विवस्वत्यै नमः । ३ ऊं ठंडं हेमप्रभायै नमः इति संपूज्य, ऐंहींश्रीं सौः सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, इत्यनेन मूलेन च जलादिनापूर्व, पूर्ववत्तमालिख्य त्रिकोणे अकथादित्रिरेखं हक्षीं च मध्ये चिन्तयेत् । ततः पूर्ववत् संपूज्य, ४ ऊं सोममण्डलाय षोडशकलाव्याप्त्यात्मनेऽर्घ्यमृताय नमः, इति संपूज्य वृत्ताकारेण सोमकलाः पूजयेत् । यथा—ऐंहींश्रीं अं अमृताय नमः । एवं ३ ऊं मानदायै नमः । ३ ऊं इं तुष्ट्यै नमः । ३ ऊं ईं पुष्ट्यै नमः । ३ ऊं प्रीत्यै नमः । ३ ऊं ऊं ऋत्यै नमः । ३ ऊं ऋं प्रियै

नमः। ॐ क्रूं क्रियायै नमः। ॐ लं स्वधायै नमः। ॐ लूं रात्रै नमः। ॐ एं ज्योत्स्नायै नमः। ॐ ऐं हैमवत्यै नमः। ॐ आं छायायै नमः। ॐ औं पूर्णायै नमः। ॐ अं विद्यायै नमः। ॐ अं अमावास्यायै नमः। इति संपूज्य, मध्ये—हंसः आत्मने नमः। ततो हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट्, हसक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वौषट्, इति संपूज्य, मत्स्यमुद्रया तज्जलमाच्छाद्य मूलविद्यामष्टधा जपेत्। धूपदीपादीन् निवेद्य नव मुद्राः प्रदर्श्य, ब्रह्मप्रयं तज्जलं किञ्चित् पात्रान्तरे निःक्षिप्य, मूलेन तज्जलेनात्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्ष्य सर्वं ब्रह्मप्रयं कुर्यात्। 'पूजासमाप्तिर्यावत् स्यात् तावदर्थं न चालयेत्' इति समयाङ्के।

सामान्य और विशेषार्थ पात्र का आवश्यकत्व—नवरत्नेश्वर में ही कहा गया है कि यदि साक्षात् महेश्वर भी कर्ता हों तो भी एक पात्र नहीं लेना चाहिये। इससे मन्त्र पराइयुक्त होते हैं और पग-पग पर आपत्तियाँ आती हैं। साथ ही कर्ता इस संसार में दरिद्र होता है और देहान्त के बाद पशु योनि को प्राप्त होता है।

तदनन्तर अपने और श्रीचक्र के बीच में सामान्यार्थ जल से त्रिकोण वृत षट्कोण मण्डल बनाकर त्रिकोणमध्य में मूल विद्या से अर्थ देकर तीनों कोनों में प्रत्येक कूट की पूजा करे। अन्यादि कोण के क्रम से षट्कोण में मूल विद्या की दो आवृत्ति से षड्ङों की पूजा करे। उस पर त्रिपादिका रखकर 'ऐं हीं श्रीं मं अग्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्थप्राप्ताधाराय नमः' से आधार की पूजा करे। वृत्ताकार में वहि के दश कलाओं की पूजा करे, जैसे—ऐं हीं श्रीं यं धूमायै नमः। ऐं हीं श्रीं रं नीलवर्णायै नमः। ऐं हीं श्रीं लं कपिलायै नमः। ऐं हीं श्रीं वं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। ऐं हीं श्रीं शं ज्वालिन्यै नमः। ऐं हीं श्रीं घं हेमवत्यै नमः। ऐं हीं श्रीं सं हव्यवाहनायै नमः। ऐं हीं श्रीं हं कव्यवाहनायै नमः। ऐं हीं श्रीं छं रोद्रवै नमः। ऐं हीं श्रीं क्षं संकर्षिण्यै नमः। इस प्रकार पूजा करके उसके ऊपर पात्र-स्थापन करे। पूर्ववत् वहाँ मन्त्र लिखकर पूजा करे। 'ऐं हीं श्रीं क्लीं अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने अर्थप्राप्ताय नमः' से अर्थ की पूजा कर वृत्ताकार मण्डल में सूर्य के बारे कलाओं की पूजा इस प्रकार करे—ऐं हीं श्रीं कं भं तपिन्यै नमः। ऐं हीं श्रीं खं बं तापिन्यै नमः। ऐं हीं श्रीं गं फं धूमायै नमः। ऐं हीं श्रीं घं पं विबुधायै नमः। ऐं हीं श्रीं ढं नं बोधिन्यै नमः। ऐं हीं श्रीं चं धं कलिन्यै नमः। ऐं हीं श्रीं छं दं शोषिण्यै नमः। ऐं हीं श्रीं जं धं वरेण्यायै नमः। ऐं हीं श्रीं झं तं आकर्षिण्यै नमः। ऐं हीं श्रीं जं यं मायायै नमः। ऐं हीं श्रीं टं ढं विवस्वत्यै नमः। ऐं हीं श्रीं ठं डं हेमप्रभायै नमः। तदनन्तर ऐं हीं श्रीं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः एवं मूल मन्त्र से पात्र में जल भरे। पूर्ववत् यन्त्र लिखकर त्रिकोण में अकथादि रेखा के मध्य में हं-क्षों का चिन्तन करे। तब पूर्ववत् पूजा करके 'ऐं हीं श्रीं सौः उं सोममण्डलाय षोडशकलाव्याप्त्यात्मने अर्थमृताय नमः' से पूजा करके वृत्ताकार में सोमकला की पूजा करे; जैसे—ऐं हीं श्रीं अं अमृतायै नमः। ऐं हीं श्रीं आं मानदायै नमः। ऐं हीं श्रीं इं तुष्ट्यै नमः। ऐं हीं श्रीं ईं पुष्ट्यै नमः। ऐं हीं श्रीं उं प्रीत्यै नमः। ऐं हीं श्रीं ऊं रत्यै नमः। ऐं हीं श्रीं ऋं श्रियै नमः। ऐं हीं श्रीं ऋं क्रियायै नमः। ऐं हीं श्रीं लं स्वधायै नमः। ऐं हीं श्रीं लूं रात्रै नमः। ऐं हीं श्रीं एं ज्योत्स्नायै नमः। ऐं हीं श्रीं एं हैमवत्यै नमः। ऐं हीं श्रीं ओं छायायै नमः। ऐं हीं श्रीं औं पूर्णायै नमः। ऐं हीं श्रीं अं विद्यायै नमः। ऐं हीं श्रीं अः अमावास्यायै नमः। इस प्रकार पूजा करके मध्य में हंसः आत्मने नमः से पूजा करो। तदनन्तर हसक्षमलरयूं आनन्दभैरवाय वषट्, सहक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वौषट् से पूजन करके मत्स्यमुद्रा से उस जल का आच्छान कर मूल विद्या का आठ बार जप करो। तत्पश्चात् धूप-दीपादि निवेदित करके नव मुद्रा दिखाये। ब्रह्मप्रय उस जल में से कुछ जल दूसरे पात्र में लेकर मूल मन्त्र से उस जल से अपना और पूजोपकरणों का अध्यक्षण करके सबों को ब्रह्मप्रय बना दे। जब तक पूजा समाप्त न हो तब तक अर्थजल को न छूये—ऐसा समयाङ्क में कहा गया है।

सुन्दरीविद्या अङ्गदेवतापूजा तु अर्थस्थापनानन्तरम्। तथाच—

आत्मानं यागवस्त्रूनि प्रोक्षयित्वा यथाक्रमम्। चिन्मयं तत् सदा भक्त्या चिन्तयेन्नन्त्रविज्ञमः॥

तस्माच्चक्रचतुर्दिशि क्रमवशान्निर्माय चक्रं शुभं सूर्यं हस्तिमुखं परं स्मरहरं गोपालमेवं तथा।

ध्यात्वावाहू च तांस्ततो बहुविधैः पुष्टैश्च पाद्यादिभिर्नानाद्रव्यसुगन्धिमोदकफलैरुद्वासयेत् स्वे हृदि ॥ इति।

ततो महाचक्रे—उँ अमृताम्भोनिधये नमः। एवं रत्नद्वीपाय नमः, नानावृक्षमहोद्यानाय नमः, कल्पवृक्ष-

वाटिकायै नमः, संतानवाटिकायै नमः, हरिचन्दनवाटिकायै नमः, मन्दारवाटिकायै नमः, पारिजातवाटिकायै नमः, कदम्बतरुवाटिकायै नमः, हेमप्राकाराय नमः, पुष्परागरलप्राकाराय नमः, पद्मरागरलप्राकाराय नमः, गोमेद-रत्नप्राकाराय नमः, इन्द्रनीलरत्नप्राकाराय नमः, वज्ररत्नप्राकाराय नमः, वैद्युर्यरत्नप्राकाराय नमः, मुक्तारत्नप्राकाराय नमः, विद्वुरत्नप्राकाराय नमः, माणिक्यरत्नप्राकाराय नमः, माणिक्यमण्डपाय नमः, सहस्रस्तम्भमण्डपाय नमः, अमृतवापिकायै नमः, आनन्दवापिकायै नमः, विमर्शवापिकायै नमः, बालातपोद्वाराय नमः, चन्द्रिकोद्वाराय नमः, महाशृङ्गारपरिखायै नमः, महापद्माटव्यै नमः, चिन्तामणिगृहराजाय नमः, पूर्वाम्नायपूर्वद्वाराय नमः, दक्षिणाम्ना-यदक्षिणद्वाराय नमः, पश्चिमाम्नायपश्चिमद्वाराय नमः, उत्तराम्नायउत्तरद्वाराय नमः, रत्नद्वीपवलयाय नमः, महासिंहासनाय नमः, ब्रह्मयैकमञ्जपादाय नमः, विष्णुमयैकमञ्जपादाय नमः, रुद्रमयैकमञ्जपादाय नमः, ईश्वरमयैकमञ्जपादाय नमः, सदाशिवमयमञ्जफलकाय नमः, हंसतूलमहोपथानाय नमः, कौसुभास्तरणाय नमः, महावितानिकायै नमः, महाजबनिकायै नमः। तदुपरि हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। ततः पुनर्धर्त्यात्मा, त्रिखण्डामुद्रां तदुपरि शिखरे मातृकायन्ने समानीय 'ऐंहींश्रीं सौः त्रिपुरसुन्दरीमूर्तिं कल्पयामि' इति बिन्दौ कल्पितमूर्तिवावाहयेत् 'हसरैं हसकलरीं हसरौं' इत्युच्चार्य—

महापद्मवनान्तःस्थे                    कारणानन्दविग्रहे । सर्वभूतहिते                    मातरेहेति                    परमेश्वरि ॥ इति ॥

बैन्दवचक्रे परचितिमावाहा, आवाहनादिप्राप्रतिष्ठान्तं कर्म समाप्य बाणकोदण्डपाशाङ्कुशादिमुद्राः प्रदशयेत्। ततो यथोपचारैः संपूज्य त्रिथा सन्तर्पयेत्। तत्रायं क्रमः—सव्यहस्ताङ्कुष्ठानामानखाग्रेण धृतश्रीपात्रार्घ्यबिन्दुना अन्यहस्तक्षिप्तपूष्याक्षतैः 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं तर्पयामि' इति त्रिस्तर्पयेत्। तदुक्तं स्वतत्रतन्त्रे—

अङ्कुष्ठानामिकायोगद्वामहस्तस्य                    पार्वति । तपर्येत्सुन्दरीं देवीं समुद्रां च सवाहनाम् ॥  
तर्पणानि                    ततो देव्याङ्गिवारं                    मूलविद्यया । अङ्कुष्ठानामिकाभ्यां                    तु नखैर्निर्दिष्टमुद्भूतम् ॥  
श्रीपात्रस्थोदकं                    बिन्दुं तर्पयेत्कुलनायिकाम् । अङ्कुष्ठो भैरवो देवि अनामा चण्डिका प्रिये ॥  
सव्येन हस्तयोगेन तर्पयेद्वा कुलश्वरीम् । इति।

विशेषस्तु—

अङ्कुष्ठानामिकाभ्यां तु वश्यकर्मणि तर्पयेत् । अङ्कुष्ठमध्यमाभ्यां तु शान्तिकर्मणि तर्पयेत् ॥  
तर्जन्यङ्कुष्ठयोगेन                    तर्पयेदभिचारके । कनिष्ठाङ्कुष्ठयोगेन स्तम्भने तर्पयेत् प्रिये ॥

अर्थ-स्थापन के बाद सुन्दरी विद्या से अंगदेवता की पूजा यथाक्रम करके अपना और यागवस्तुओं के प्रोक्षण के बाद मन्त्रवित् उसका चिन्तन सदैव चिन्मय रूप में करे।

चक्र के चारों ओर क्रमशः शुभ चक्र बनाकर सूर्य-गणेश-शिव-गोपाल का ध्यान करते हुये उनका आवाहन करके बहुत प्रकार के फूलों, पादादि नाना द्रव्यों तथा सुगन्धित मोटक फलों से अपने हृदय में उद्वासित करे।

तब महाचक्र में इस प्रकार पूजन करे—३० अमृताम्भोनिधये नमः, रत्नद्वीपाय नमः, नानावृक्षमहोद्यानाय नमः, कल्पवृक्षवाटिकायै नमः, सन्तानवाटिकायै नमः, हरिचन्दनवाटिकायै नमः, मन्दारवाटिकायै नमः, पारिजातवाटिकायै नमः, कदम्ब-तरुवाटिकायै नमः, हेमप्राकाराय नमः, पुष्परागप्राकाराय नमः, पद्मरागप्राकाराय नमः, गोमेदरत्नप्राकाराय नमः, इन्द्रनीलरत्नप्राकाराय नमः, वज्ररत्नप्राकाराय नमः, वैद्युर्यरत्नप्राकाराय नमः, मुक्तारत्नप्राकाराय नमः, विद्वुरत्नप्राकाराय नमः, माणिक्यमण्डपाय नमः, सहस्रस्तम्भमण्डपाय नमः, अमृतवापिकायै नमः, आनन्दवापिकायै नमः, विमर्शवापिकायै नमः, बालात-पोदगाराय नमः, चन्द्रिकोद्वाराय नमः, महाशृङ्गारपरिखायै नमः, महापद्माटव्यै नमः। चिन्तामणिगृहराजाय नमः, पूर्वाम्नायपूर्वद्वाराय नमः, दक्षिणाम्नायदक्षिणद्वाराय नमः, पश्चिमाम्नायपश्चिमद्वाराय नमः, उत्तराम्नाय उत्तरद्वाराय नमः, रत्नद्वीपवलयाय, महासिंहासनाय नमः, ब्रह्मयैकमञ्चपादाय नमः, विष्णुमयैकमञ्चपादाय नमः, रुद्रमयैकमञ्चपादाय नमः, ईश्वरमयैकमञ्चपादाय नमः, सदाशिवमय-

मंचफलकाय नमः, हंसतूलमहोपधानाय नमः, कौसुभास्तरणाय नमः, महावितानिकायै नमः, महाजवनिकायै नमः से पूजन करे। उसके ऊपर सदाशिवमहाप्रेतपश्चासनाय नमः से पूजा करो। तब फिर ध्यान करके विखण्डा मुद्रा बाँधकर उसके शिखर पर मातृकायन्त्र लाकर 'ऐं हीं श्रीं सौः त्रिपुरसुन्दरीमूर्ति कल्पयामि' से बिन्दु में कल्पित मूर्ति का आवाहन करे। 'हसरैं कलकलरैं हसरैं' का उच्चारण करके इस प्रकार कहे—

महापद्म वनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्योहि परमेश्वरि॥

वैन्दव चक्र में परचित का आवाहन करके आवाहनादि से प्राण-प्रतिष्ठा तक के कर्म समाप्त करके बाण, कोदण्ड, पाश और अंकुश मुद्रा दिखावे। तदनन्तर यथोपचारों से पूजा करके तीन बार तर्पण करे। उसका क्रम इस प्रकार है—बाँयें हाथ की अंगुष्ठ एवं अनामा के नग्नाग्र से श्रीपात्रार्थ बिन्दु लेकर दाँयें हाथ में पुष्पाश्रत लेकर श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी तर्पयामि' कहकर तीन बार तर्पण करे। जैसा कि स्वतन्त्र तन्त्र में कहा भी है—बाँयें हाथ के अंगुष्ठे और अनामिका से सुन्दरी देवी का तर्पण समुद्रा सवाहना तीन बार करे। तब मूल विद्या से देवी का तर्पण तीन बार करे। अंगूठा-अनामिका के नखों से निर्दिष्ट लेकर तर्पण करे। कुलनायिका का तर्पण श्रीपात्र के जलबिन्दु से करे। अंगूठा को धैरव और अनामिका को चण्डिका कहा गया है। बाँयें हाथ के योग से कुलेश्वरी का तर्पण करे।

वशीकरण में अंगुष्ठे और अनामिका से तर्पण करे। शान्ति कर्म में अंगुष्ठे और मध्यमा से तर्पण करे। अभिचार कर्म में तर्जनी और अंगूठे के योग से तर्पण करे। स्तम्भन में कनिष्ठा और अंगुष्ठ के योग से तर्पण करे।

ततो देव्या अङ्गे षडङ्गानि पूजयेत्। यथा—ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः। कलीं नित्यत्रिपतिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा। सौः अनादिबोधशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट्। ऐं स्वतन्त्र-शक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं। कलीं नित्यमलुपशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अनन्तशक्ति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्। ततः स्वशरीरे कामकलां भावयेत्। तथाच—

बिन्दुं संकल्प्य वक्त्रं तु तदधश्श कुचद्वयम् । तदधः सपरार्थं तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्॥ इति।

ततस्तिथिनित्या अर्चतेऽत्। महात्रयसे वामावर्तेन अकारादिपञ्च, ऊकारादिपञ्च, एकारादिपञ्च विभाव्य मध्ये विसर्ग, तेषु वामावर्तेन शुक्लपक्षे कामेश्वर्यादिविचित्रान्तं, कृष्णपक्षे विचित्रादिकामेश्वर्यन्तं पूजयेत्। तद्यथा—प्रतिपदि अकारे ऐंहींश्रीं तत्त्वमन्त्रं चोच्चार्यं कामेश्वरीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवं आकारे द्वितीयायां भगमालिनीं, इकारे तृतीयायां नित्यविलन्नां, इकारे चतुर्थ्या भेरुण्डां, उकारे पञ्चम्यां वहिवासिनीं, ऊकारे पञ्चांश्यां महावज्रेश्वरीं, ऋकारे सप्तम्यां शिवदूतीं, ऋकारे अष्टम्यां त्वरितां, लकारे नवम्यां कुलसुन्दरीं, लृकारे दशम्यां नित्यां, एकारे एकादश्यां नीलपताकां, ऐकारे द्वादश्यां विजयां, ओकारे त्रयोदश्यां सर्वमङ्गलां, औकारे चतुर्दश्यां ज्वालामालिनीं, अंकारे पौर्णमास्यां विचित्रां, विसर्गं त्रिपुरसुन्दरीं पूजयेत्। कृष्णपक्षे एवं विचित्रादिकामेश्वर्यन्तं पूजयेत्। पूजामन्त्रस्तु तन्नान्तरे—

श्रीपदं पूर्वमुच्चार्यं पादुकांपदमुद्दरेत् । पूजयामि नमः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः॥ इति।

तदनन्तर देवी के अंग में षडङ्ग पूजा करे। जैसे हृदय में ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः। कलीं नित्यत्रिपतिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा। सौः अनादिबोधशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्। ऐं स्वतन्त्रशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं। कलीं नित्यमलुपशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्। तब अपने शरीर में कामकला की भावना करे। कहा भी है—बिन्दु को मुख मानकर उसके नीचे दो बिन्दुओं को स्तन माने, उसके नीचे सपरार्थ अधोमुख चिन्तन करे। तदनन्तर तिथिनित्या का अर्चन महात्रिकोण की रेखाओं में वामावर्त क्रम से अकारादि पाँच ऊकारादि पाँच और एकारादि पाँच की भावना करके मध्य में अः की भावना करे। उनमें शुक्ल पक्ष में वामावर्त क्रम से कामेश्वरी से विचित्रा तक और कृष्ण पक्ष में विचित्रा से कामेश्वरी तक की पूजा करे। जैसे—प्रतिपदा को अकार में ऐं हीं श्रीं के बाद उस मन्त्र को कहकर कामेश्वरी नित्या कला श्री पादुकां पूजयामि नमः। इसी प्रकार आकार में द्वितीया में भगमालिनी, इकार

में तृतीया में नित्य क्लिन्ना, इकार में चतुर्थी में भेरुण्डा, उकार में पञ्चमी में वह्निवासिनी, ऊकार में षष्ठी में महावज्रेश्वरी, ऋकार में सप्तमी में शिवदूली, ऋकार में अष्टमी में त्वरिता, लुकार में नवमी में कुल-सुन्दरी, लुकार में दशमी में नित्या, एकार में एकादशी में नीलपताका, ऐकार में द्वादशी में विजया, ओकार में ब्रयोटशी में सर्वमंगला, औंकार में चतुर्थशी में ज्वालामालिनी, अंकार में पूर्णमासी में विचित्रा और अःकार में त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करे। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में विचित्रा से कामेश्वरी तक की पूजा करे। तन्नान्तर में पूजामन्त्र इस प्रकार कहा गया है—श्रीपद के पश्चात् ‘पादुकां’ पद कहकर पूजयामि नमः कहे। तब अंगदेवता की पूजा करे।

ततो मध्ये प्राक्क्यस्ममध्येषु गुरुपङ्किं पूजयेत्। तथा—

आनन्दनाथशब्दान्ता विज्ञेया: परमेश्वरि। अम्बान्ता गुरवः प्रोक्ताः स्त्रीलङ्घा वीरवन्दिते ॥ इति।

तद्यथा—ऐंहींश्रीं परप्रकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवं परशिवं०, परशक्त्यम्बां०। एवं कौलेश्वरीं०, शुक्लदेवीं०, कुलेश्वरं०, कामेश्वर्यम्बिकां, एते दिव्योद्धाः। भोगं, क्लिन्नं०, समयं०, वेदं, सहजं०, एते सिद्धोद्धाः। गगनं०, विश्वं०, विमलं०, मदनं०, भुवनं०, नीलं०, एते मानवौद्धाः। ततो गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुं केवलं गुरुं वा। एते कामराजविद्यायास्तद्घटितायाश्च गुरवः। लोपायास्तद्घटितायाश्च परमशिवं, कामेश्वर्यम्बिकां, दिव्योद्धां, महीषं, सर्वानन्दं, प्रज्ञादेवीं, प्रकाशं (७) एते दिव्योद्धाः। दिव्यं, चित्रं, कैवल्यं, दिव्याम्बां, महोदयं (५) एते सिद्धोद्धाः। चिद्विश्वशक्तिः, रमानन्दः, कमलः, परानन्दो, मनोहरः, स्वात्मानन्दः, प्रतिभाः। एते मानवौद्धाः। ततः पूर्ववद् गुरुत्रयमेकं वा पूजयेत्।

अथ सामान्यगुरुपङ्किं पूजयेत्। ऐंहींश्रीं गुरुभ्यो नमः। एवं ॐ गुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परमगुरुभ्यो नमः। ॐ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परापरगुरुभ्यो नमः। ॐ परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः। आचार्येभ्यो नमः। आचार्यपादुकाभ्यो नमः। सर्वत्रादौ त्रितारी द्वितारी वा योज्या। तथाच ज्ञानार्णवे—

मायात्लक्ष्मीमयं बीजयुग्मं पूर्वकमेण हि। कथितं योजयेद् देवि तत्रयं वा परेश्वरि ॥ इति।

कल्पसत्रे सर्वेषां मन्त्राणामादौ त्रितारी—‘वाड्माया कमला चेति’। ततस्त्वैलोक्यमोहनादिसृष्टिचक्रे, ४३ हसरीं सहीं श्रीं कलहीं पूर्वाम्बायउभ्यनीदेवीश्रीपादुकांपू०। स्थितिचक्रे, ऐंक्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले हसी॒ दक्षिणामायभोगिनीदेवीश्रीपादुकांपू०। ततः सर्वसौभाग्यादिसंहारात्मकत्रिचक्रे, ४४ हसखफ्रे॑ हसी॒ ओं नमो, भगवति हस(ख)फ्रे॑ कुञ्जिके हसां हसूं अघोरे घोरे (अ)घोरमुखि छांछी किणि किणि विच्छे, विलोमतः पूर्वोक्तानि बीजानि च पश्चिमामायकुञ्जिकादेवीश्रीपादुकांपू०। सर्वचक्रे, ४५ हसखफ्रे॑ महाचण्डयोगेश्वरि उत्तरामायकालिकादेवीश्रीपादुकांपू०। ततो बैन्दवे, शैवदर्शनाय नमः। तत्परितः शाक्तदर्शनाय नमः। भूबिष्ठे ब्रह्मदर्शनाय नमः। शिवस्य वामपतो वैष्णवदर्शनाय नमः। सृष्टिचक्रे सूर्यदर्शनाय नमः। स्थितिचक्रे बौद्धदर्शनाय नमः। ततोऽग्नीशासुरवायव्यमध्ये (दिक्षु च) मूलेन षडङ्गनि पूजयेत्। तथाच ज्ञानार्णवे—

अथाङ्गावरणं कुर्यात् श्रीविद्यामनुसंभवम्। अग्नीशासुरवायव्यमध्ये

दिक्षवङ्गपूजनम् ॥

तब मध्य में त्रिकोण और पूर्व के मध्य में गुरुपंक्ति की पूजा करे। पुरुष गुरुओं में आनन्दनाथ लगाकर एवं स्त्री गुरुओं में अम्बा लगाकर पूजा करे। जैसे—ऐंहींश्रीं परप्रकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इसी प्रकार परशिव, परशक्त्यम्बा, कौलेश्वरी, शुक्लदेवी, कुलेश्वर, कामेश्वर्यम्बिका—ये सभी दिव्योद्धाः हैं। भोग, क्लिन्न, समय, वेद, सहज—ये सभी सिद्धोद्धाः हैं। गगन, विश्व, विमल, मदन, भुवन, नील—ये सभी मानवौद्धाः हैं। तदनन्तर गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुं अथवा केवल गुरु—ये सभी कामराजविद्या के गुरु हैं। लोपा विद्या के दिव्योद्धाः परमशिव, कामेश्वर्यम्बिका, दिव्योद्धाः, महीषं, सर्वानन्द, प्रज्ञादेवी, प्रकाश हैं। दिव्यं, चित्रं, कैवल्यं, दिव्याम्बां, महोदयं सिद्धोद्धाः हैं। चिद्विश्वशक्तिः, रमानन्द, कमल, परानन्द, मनोहर, स्वात्मानन्द,

प्रतिभा—ये मानवीघ हैं। तदनन्तर पूर्ववत् गुरुत्रय अथवा एक गुरु का पूजन करें।

तब सामान्य गुरुपंक्ति की पूजा करें। जैसे—ऐहींश्री गुरुभ्यो नमः। एवं ॐ गुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परापरगुरुभ्यो नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः। आचार्येभ्यो नमः। आचार्यपादुकाभ्यो नमः। सर्वत्रादै त्रितारी द्वितारी वा ज्ञानार्णव में कहा भी है कि हीं श्रीं—यह बीजयुग्म पूर्वक्रम से जोड़े अथवा तीनों को जोड़े। कल्पसूत्र के अनुसार सभी मन्त्रों के पहले त्रितारी ऐं हीं श्रीं लगाना चाहिये। तदनन्तर त्रैलोक्यमोहनादि सृष्टि चक्र में—४ हसरी सहीं श्रीं कलहीं पूर्वमाया उन्मनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। स्थितिचक्र में ऐं विलम्बे कलीं मटदर्वे कुले हसौः दक्षिणामायभोगिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। तदनन्तर सर्वसौभाग्यादि संहरात्मक त्रिचक्र में ४ हसखफे हसौः ॐ नमो भगवति हसखफे कुञ्जिके हस्तां हस्तु अधोरे धारे अधोर-मुखि छां छां किणि किणि विच्चे के बाद विलोप क्रम से पूर्वोक्त बीजों को कहकर पश्चिमामायकुञ्जिकादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। सर्वचक्र में ४ हसखफे महाचण्डयोगेश्वरि उत्तरामायकालिकादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। वैन्दव चक्र में शैवदर्शनाय नमः, उसके चारों ओर शक्तदर्शनाय नमः, भूपुर में ब्रह्मदर्शनाय नमः, शिव के बायें भाग में वैष्णवदर्शनाय नमः, सृष्टि चक्र में सूर्यदर्शनाय नमः, स्थितिचक्र में बौद्धदर्शनाय नमः कहकर पूजन करें। तब आग्नेयादि कोणों, मध्य एवं दिशाओं में मूल मन्त्र से षडङ्ग पूजा करें। जैसा कि ज्ञानार्णव में कहा भी है—विद्या मन्त्रसम्भूत अंगावरण पूजा आग्नेयादि कोण, मध्य एवं दिशाओं में करें।

ततो बाह्यचतुरस्य पश्चिमादिद्वारचतुष्टयेषु अणिमादिसिद्धीः पूजयेत्। पश्चिमादिनियमस्तु गुप्तार्थं—  
यदाशाभिमुखो मन्त्री त्रिपुरां परिपूजयेत्। देवीपश्चात्ततः प्राची प्रतीची त्रिपुराग्रतः ॥

ॐ अणिमासिद्धिश्रीपाठ०। ॐ लघिमासिद्धिश्रीपाठ०। ॐ महिमासिद्धिश्रीपाठ०। ॐ ईशित्वसिद्धिश्रीपाठ०।  
वायव्यादिकोणचतुष्टयेषु, ॐ वशित्वसिद्धिश्रीपाठ०। ॐ प्राकाम्यासिद्धिश्रीपाठ०। ॐ भक्तिसिद्धिश्रीपाठ०। ॐ  
इच्छासिद्धिश्रीपादुकां०। अथः ॐ प्राप्तिसिद्धिश्रीपाठ०। ऊर्ध्वे ॐ सर्वज्ञसिद्धिश्रीपाठ०। मध्यचतुरस्य पश्चिमादिद्वारचतुरष्टयेषु,  
ॐ आं ब्रह्माणीश्रीपाठ०। ॐ ईं माहेश्वरीश्रीपाठ०। ॐ ऊं कौमारीश्रीपाठ०। ॐ ऋं वैष्णवीश्रीपाठ०। वाय्वादिचतुष्कोणेषु,  
ॐ लृं वाराहीश्रीपाठ०। ॐ ऐं इन्द्राणीश्रीपाठ०। ॐ ऊं चामुण्डाश्रीपाठ०। ॐ अः महालक्ष्मीश्रीपाठ०। आभ्यन्तरचतुरस्य  
पश्चिमादिद्वारचतुष्टयेषु, ॐ द्रां सर्वसंक्षेपिभिणीमुद्राश्रीपाठ०। ॐ द्रीं सर्वविद्राविषीमुद्राश्रीपाठ०। ॐ क्लीं सर्वक-  
र्षिणीमुद्राश्रीपाठ०। ॐ ब्लूं सर्ववशङ्कीमुद्राश्रीपाठ०। वाय्वादिकोणचतुष्टयेषु, ॐ सः; सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपाठ०। ॐ क्रों  
महाङ्कुशामुद्राश्रीपाठ०। ॐ हसखफे खेचरीमुद्राश्रीपाठ०। ॐ हसौः सर्वबीजमुद्राश्रीपाठ०। अथः ॐ ऐं योनिमुद्राश्रीपाठ०।  
ऊर्ध्वे ॐ ऐंक्लीसौः त्रिखण्डामुद्राश्रीपाठ०। चक्राये संपूर्णचक्रे ॐ त्रैलोक्यमोहनचतुरस्यचक्राय नमः। अंआंसौः  
त्रिपुराश्रीपादुकां पूजो। एतस्या दक्षिणे ॐ द्रां सर्वसंक्षेपिभिणीमुद्राश्रीपाठ०। वामे ॐ आं अणिमासिद्धिश्रीपाठ०। ॐ  
चार्वाकिर्दर्शनाय नमः। अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्यचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः  
समुद्राः सवाहानाः ससिद्धयः सायुधाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजितासर्पिताः सन्तु, इत्यर्थजलेन मूलदेव्यै  
समर्पयेत्। द्रां इति सर्वसंक्षेपिभिणीं मुद्रां प्रदर्शयेत्। ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, कलीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, सौः  
शिवतत्त्वाय स्वाहा, इति त्रिवारमर्घ्योदकेन तर्पयेत्।

ततः षोडशदलेषु पश्चिमदलादारभ्य वामावर्तेन, ॐ आं कामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। एवं सर्वत्र कलापद्रयोगः।  
तथाच नवरत्नेश्वरे—‘विलोमेन यजेदेता: क्रमान्त्रित्याकला: पुनः’। ॐ आं बुद्ध्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ ईं  
अहङ्कारकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ ईं शब्दाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ ऊं स्पृश्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०।  
ॐ ऊं ऋपाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ ऋं रसाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ गन्धाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०।  
ॐ लृं चित्ताकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ लृं धैर्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ एं सृत्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०।  
ॐ ऐं नामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ आं बीजाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०। ॐ आं आत्माकर्षिणीनित्याकलाश्रीपाठ०।

३ अं अपृताकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। ३ अः शरीराकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा०। चक्राग्रे सर्वशापरिपूरकघोडश-कलाचक्राय नमः। ३ ऐंकलीसौः त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे द्वीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपा०। वामे लघिमासिद्धिश्रीपा०। ३ बौद्धदर्शनाय नमः। अत्र सर्वशापरिपूरकघोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामाकर्षण्याद्या गुप्तयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। द्वीं इति सर्वविद्राविणीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति पूर्ववत्।

अष्टदलचक्रे पूर्वादिचतुर्दलेषु, वामावर्तेन, ३ कं ५ अनङ्गकुसुमादेवीश्रीपा०। ३ चं अनङ्गमेखलादेवी-श्रीपा०। ३ टं ५ अनङ्गमदनादेवीश्रीपा०। ३ तं ५ अनङ्गमदनातुरादेवीश्रीपा०। आनेयादिचतुर्दलेषु, ३ पं ५ अनङ्गरेखादेवीश्रीपा०। ३ यं ४ अनङ्गवेगिनीदेवीश्रीपा०। ३ शं ४ अनङ्गज्ञाशादेवीश्रीपा०। ३ ळं क्षं अनङ्ग-मालिनीदेवीश्रीपा०। चक्राग्रे ३ सर्वसंक्षेभणाष्टदलचक्राय नमः। ३ ऐंकलीसौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे ३ क्लीं सर्वकर्षिणीमुद्राश्रीपा०। वामे ३ महिमासिद्धिश्रीपा०। जिनेन्द्रदर्शनाय नमः। अत्र सर्वसंक्षेभणाष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। क्लीं इति सर्वकर्षिणीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति समानम्।

चतुर्दशारचक्राग्राच्च समारभ्य वामावर्तेन पश्चिमादि दक्षिणं यावत्, ३ सर्वसंक्षेभणीशक्तिश्रीपा०। एवं ३ सर्वविद्राविणीश्रीपा०। ३ सर्वकर्षिणीश्रीपा०। ३ सर्वाह्वादिनीश्रीपा०। ३ सर्वसंमोहिनीश्रीपा०। ३ सर्वजृभणीश्रीपा०, ३ सर्वसत्त्ववशङ्करीश्रीपा०, ३ सर्वरञ्जनीश्रीपा०, ३ सर्वोन्मादिनीश्रीपा०, ३ सर्वार्थसाधिनी-श्रीपा०, ३ सर्वसंपत्तिपूरणीश्रीपा०, ३ सर्वमन्त्रमयीश्रीपा०, ३ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्तिश्रीपा०। इति सर्वत्र। चक्राग्रे सर्वसौभाग्यदायकचतुर्दशारचक्राय नमः। ३ हैं हक्तीं हसौः त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राश्रीपा०। वामे ३ ईशित्वसिद्धिश्रीपा०। ३ सांख्यमीमांसान्यायदशनिभ्यो नमः। अत्र सौभाग्यदायक-चतुर्दशारचके त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसंक्षेभणीशक्तिश्रीद्याः शक्तयः संप्रदाययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, इति समानम्।

बहिर्दशारचक्राग्रं समारभ्य वामावर्तेन पश्चिमाददक्षिणान्तम्, ३ सर्वसिद्धिप्रदाश्रीपा०, ३ सर्वसंपत्त्रदा०, ३ सर्वप्रियङ्करी, ३ सर्वमङ्गलकारिणी, ३ सर्वकामप्रदा०, ३ सर्वदुःखविमोचिनी०, ३ सर्वमृत्युप्रशमनी०, ३ सर्वविघ्ननिवारिणी०, ३ सर्वज्ञसुन्दरी०, ३ सर्वसौभाग्यदायिनीदेवीश्रीपा०। इति सर्वत्र। चक्राग्रे सर्वार्थसाधक-बहिर्दशारचक्राय नमः। ३ हैं हक्तीं हसौः त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे ३ सः सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपा०। वामे वशित्वसिद्धिश्रीपा०। ३ ब्राह्मवैदिकदर्शनाय नमः। अत्र सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदाद्याः देव्यः कुलकौलिनीयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। सः सर्वोन्मादिनीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। इति समानम्।

अन्तर्दशारचक्राच्च समारभ्य पश्चिमाद् दक्षिणान्तं, ३ सर्वज्ञादेवीश्रीपा०, ३ सर्वशक्तिमयी०, ३ सर्वैश्वर्यदायिनी०, ३ सर्वज्ञामयी०, ३ सर्वव्याधिविनाशिनी०, ३ सर्वाधारस्वरूपिणी०, ३ सर्वपापहरा०, ३ सर्वानन्दमयी०, ३ सर्वरक्षास्वरूपिणी०, ३ सर्वेम्पितफलप्रदादेवीश्रीपा०। एवं सर्वत्र। चक्राग्रे—३ सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्राय नमः। होंकलींबे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दणिणे क्रों महाङ्कुशमुद्राश्रीपा०। वामे ३ प्राकाम्यसिद्धिश्रीपा०। ३ सौरदर्शनाय नमः। अत्र सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वज्ञाद्या देव्यो निर्गर्भयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। क्रों महाङ्कुशां मुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति समानम्।

ततोऽष्टारचक्राच्च समारभ्य पश्चिमादि दक्षिणान्तं यावत्, ३ अं १६ रबलूं वशिनीवान्देवताश्रीपा०। ३ कं ५ कलहीं कामेश्वरीश्रीपा०। ३ चं ५ नवलीं मोदिनीवादेवताश्रीपा०। ३ टं ५ यलूं विमलावादेवताश्रीपा०। ३

तं ५ जमरीं अरुणावागदेवताश्रीपा०। ३३ पं ५ हसलवयूं यज्यनीवागदेवताश्रीपा०। ३३ यं ४ झामरयूं सर्वेश्वरीवागदेवताश्रीपा०। ३३ शं ४ क्षमरीं कौलिनीवागदेवताश्रीपा०। चक्राग्रे ३३ सर्वरोगहराष्ट्रारचक्राक्य नमः। ह्रीश्रीसौः त्रिपुरासिद्धिनित्याश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे हसखफ्रे खेचरीमुद्राश्रीपा०। वामे ३३ भुक्तिसिद्धिश्रीपा०। ३३ वैष्णवदर्शनाय नमः। अत्र सर्वरोगहराष्ट्रारचक्रे त्रिपुरासिद्धिचक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या योगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। हसखफ्रे खेचरीमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति समानम्।

त्रिकोणबाहोऽग्रतो वामावर्तेन पश्चिमादि दक्षिणान्तं यावत्, ३३ द्वांद्रीकलीब्लूंसः यांरांलांवांशां कामेश्वर-कामेश्वरीजृम्भणबाणेभ्यो नमः। ३३ द्वां ५ यं ५ धं थं सर्वसंमोहनाय कामेश्वरकामेश्वरीधनुषे नमः। ३३ द्वां ५ यं ५ आंहींवशीकरणाय कामेश्वरकामेश्वरीपाशाय नमः। ३३ द्वां ५ यं ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वरकामेश्वर्यद्वुशाय नमः।

ततस्त्रिकोणाग्रदक्षिणोत्तरकोणेषु, मूलवागभवमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके रुद्रात्म-शक्तिकामेश्वरीश्रीपा०। कामराजमुच्चार्य सूर्यचक्रे पूर्णगिरिपीठे बष्टीशनाथात्मके विष्वात्मशक्तिवत्त्रेश्वरीदेवीश्रीपा०। शक्तिकूटमुच्चार्य सोमचक्रे जालन्धरपीठे उड्हीशनाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिभगमालिनीदेवीश्रीपा०। चक्राग्रे सर्वसिद्धि-प्रदाद्यचक्राक्य नमः। हसरेैं हसकलरौं हसकलरौं त्रिपुराम्बाशक्तिनित्याकलाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे हसौः बीजमुद्राश्रीपा०। वामे इच्छाशक्तिश्रीपा०। ३३ शाक्तदर्शनाय नमः। अत्र सर्वसिद्धिप्रदाद्यचक्रे बाणचापापाशाङ्कुशभूषितान्तराले त्रिपुराम्बाचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामेश्वर्याद्या अतिरहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। हसौः बीजमुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इति समानम्।

ततो बैद्यवचक्रे, मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्री० इति त्रिः संपूज्य, चक्राग्रे ३३ सर्वानन्दमयबैद्यवचक्राक्य नमः। मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपा०। एतस्या दक्षिणे ऐं योनिमुद्राश्रीपा०। वामे ३३ प्राप्तिसिद्धिश्री०। ३३ मोक्षसिद्धिश्रीपा०। ३३ शैवदर्शनाय नमः। कुलोङ्गीशे यथा—

ततो मूलं समुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरीम्। पूजयेद् देवतास्तुं बिन्दौ चक्रेश्वरीं पुनः॥

यथा नवरत्नेश्वरे—  
बौद्धं ब्राह्मं तथा सौरं शैवं वैष्णवमेव च। शाक्तं षष्ठं तु विज्ञेयं चक्रं षडदर्शनात्मकम्॥

रुद्रयामलेऽपि—  
चतुरसं बौद्धभेदं ब्राह्मं वै षोडशच्छम्। वैष्णवं शैवभेदं च मन्त्रसं सौरमुच्यते॥  
अष्टासं द्विदशारस्तु मध्यं शाक्तं समीरितम्।

तदनन्तर चतुरस के बाहर पश्चिमादि चार द्वारों में अणिमादि सिद्धियों की पूजा करे। गुप्ताणव के अनुसार पश्चिमादि साधन के नियम इस प्रकार हैं—जिधर मुख करके मन्त्री त्रिपुरा की पूजा करता है, देवी त्रिपुरा के पीछे प्राची और आगे प्रवीची (पश्चिम) दिशा होती है। तदनन्तर आवरण पूजन इस प्रकार करे—

३३ अणिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ लघिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ रुद्रिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ इशित्व-सिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। वायव्यादि चार कोणों में—३३ वशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ प्राकाय्यासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ भक्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ इच्छासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। नीचे—३३ प्राप्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ऊपर—३३ सर्वज्ञसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ ईं माहेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ ईं माहेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ ऊं ब्रह्माणीश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ ऊं वैष्णवीश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ ऊं चामुण्डाश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ अः महालक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ द्वीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ क्लीं सर्वकर्षणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ३३ ब्लूं सर्ववशङ्कीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। वायव्यादि चार कोण में—

३ सः सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ऋं क्रों महाङ्ग्रासामुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ३ हसखफ्रे खेचरीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ३ हसौः सर्वबीजमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। अथः ३ ऐं योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। ऊपर— ३ ऐं ऐक्लीसौः त्रिखण्डामुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में— ३ द्रां सर्वसंक्षेभिणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँये— ३ अं अणिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ चार्वाकदर्शनाय नमः। अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्त्रक्षक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्या: प्रकटयोगिन्यः समुद्राः सवाहा: ससिद्धयः सायुधाः सपरिवारः सर्वोपचारैः पूजितास्त्पिता: सन्तु—इस प्रकार अर्थं जल मूल देवी को समर्पित करो। द्रां से सर्वसंक्षेभिणीं मुद्रा दिखाये। ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, कलीं विद्यतत्त्वाय स्वाहा, सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा—तीन बार अर्थं जल से तर्पण करे।

तदनन्तर घोडश दल में पश्चिम दल से आरम्भ करके वामावर्त से— ३ अं कामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ अं बुद्ध्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ इं अहङ्काराकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ई शब्दाकर्षिणी-नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ उं स्पस्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ऊं ऊपाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ऊं रसाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ऊं गन्धाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ऊं लं चिताकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ऊं लं धैर्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ऊं एं स्मृत्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ एं एं नामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ओं बीजाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ औं आत्माकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ अं अमृताकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। ३ अं शरीराकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—सर्वाशापरिपूरकघोडशकलाचक्राय नमः। ३ ऐं ऐक्लीसौः त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में—द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँये—लघिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ बौद्धदर्शनाय नमः। अत्र सर्वाशापरिपूरकघोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: कामाकर्षिण्याद्या गुपत्योगिन्यः समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करो। द्रीं से सर्वविद्राविणीं मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

अष्टदल चक्र में पूर्वादि चार दलों में वामावर्त क्रम से— ३ कं ५ अनङ्गकुसुमादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ चं अनङ्ग-मेखलादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ टं ५ अनङ्गमदनादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ तं ५ अनङ्गमदनातुरादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। आग्नेयादि चार दलों में—पं ५ अनङ्गरेखादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ यं ४ अनङ्गवेगीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ शं ४ अनङ्गाङ्गादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ळं क्षं अनङ्गमालनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे— ३ सर्वसंक्षेभिणीष्टदलचक्राय नमः। ३ ऐं ऐक्लीसौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के दक्षिण में— ३ कलीं सर्वाकर्षिणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के दक्षिण में— ३ बाँये सर्वविद्राविणीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के बाँये— ३ महिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। जिनेन्द्रदर्शनाय नमः। अत्र सर्वसंक्षेभिणीष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुपत्तरयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करो। कलीं से सर्वाकर्षिणीं मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करे।

चतुर्दशार चक्र के आगे से बाँयों तरफ से— ३ सर्वसंक्षेभिणीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि। एवं ३ सर्वविद्राविणीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ सर्वाकर्षिणीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ सर्वाहादिनीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ सर्वसंमोहिनीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ सर्वस्त-भिनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वजूम्बिनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वसत्त्ववशङ्करीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वरञ्जनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्गीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—सर्वसौभाग्यदायकचतुर्दशारचक्राय नमः से पूजन करो। ३ हैं हक्कीं हसौः त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँये— ३ ईश्वत्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ सांख्यमीमांसान्यायदर्शनेभ्यो नमः से पूजन करो। अत्र सौभाग्यदायकचतुर्दशारचक्रे त्रिपुरवासिनी-चक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वसंक्षेभिण्याद्या शक्तयः संप्रदाययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करो। ब्लूं से सर्ववशङ्करी मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करो।

बहिर्दशार चक्र में आगे से आरम्भ करके वामावर्त क्रम से— ३ सर्वसिद्धिप्रदाश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वसंपत्त्राश्रीपादुकां

पूजयामि, ३ सर्वप्रियङ्करीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वमङ्गलकारिणीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वदुःखविमोचनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वपृथुग्रामनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वविघ्ननिवारिणीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वाङ्गसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वसौभाग्यदायिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—सर्वार्थसाधकबहिर्शारचक्राय नमः से पूजन करो। ३ हसौः हसकल्तीं हसौः निपुणश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में—३ सः सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँये—वशित्वसिद्धश्रीपादुकां पूजयामि। ३ ब्राह्मवैदिकदर्शनाय नमः से पूजन करो। अत्र सर्वार्थसाधके बहिर्देशारचक्रे त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वसिद्धप्रदाया: देव्यः कुलकौलिनीयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करो। सः सर्वोन्मादिनी मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करो।

अन्तर्दशारचक्र में आगे से आराध कक्षे वामावर्त क्रम से—३ सर्वशादेवीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वशक्तिमयीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वैश्वर्यदायिनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वज्ञनमयीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वव्याधिविनाशनीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वधारस्वरूपिणीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वपापहराश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वानन्दमयीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वरक्षास्त्ररूपिणीश्रीपादुकां पूजयामि, ३ सर्वेषितफलप्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—३ सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्राय नमः से पूजन करो हींक्लींब्लं त्रिपुरामालिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दण्णण में—क्रोः महाङ्गुशमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँये—३ प्राकार्यसिद्धश्रीपादुकां पूजयामि। ३ सौरदर्शनाय नमः। अत्र सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्रे त्रिपुरामालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता: सर्वज्ञाया देव्यो निगर्भयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करो। क्रोः महाङ्गुशां मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करो।

तदनन्तर अष्टर चक्र में आराध से वामावर्त क्रम से—३ अं १६ खलूं वशिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ कं ५ कलहीं कामेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि। ३ चं ५ नवलीं मोटिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ टं ५ यत्नं विमलावाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ तं ५ जर्मरीं अरुणावाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ पं ५ हसलवयूं जयिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ यं ४ झामरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। ३ शं ४ क्षमरीं कौतिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे—३ सर्वरोगहराष्ट्रारचक्राय नमः। हींश्रीसौः निपुरासिद्धनित्याश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में—हसखफे खेचरीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँये—३ भृक्तिसिद्धश्रीपादुकां पूजयामि। ३ वैष्णवदर्शनाय नमः। अत्र सर्वरोगहराष्ट्रारचक्रे त्रिपुरासिद्धाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याया योगिन्यः समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करो। हसखफे से खेचरी मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करो।

त्रिकोण के बाहर आगे से वामावर्त क्रम से पश्चिम से दक्षिण की ओर—३ द्रांद्रीक्लींब्लूंसः यांरांलांवांशां कामेश्वर-कामेश्वरीजृम्भणवाणेभ्यो नमः, ३ द्रां ५ यां ५ धं थं सर्वसंप्रोहनाय कामेश्वरकामेश्वरीधनुषे नमः, ३ द्रां ५ यां ५ आंहीवशीकरणाय कामेश्वरकामेश्वरीपाशाय नमः, ३ द्रां ५ यां ५ क्रोः सर्वस्त्वभनाय कामेश्वरकामेश्वर्दुशाय नमः से पूजन करो।

तदनन्तर त्रिकोण के आगे से दक्षिण उत्तर कोणों में—मूल मन्त्र एवं वाग्भव कूट का उच्चारण कर अग्निचक्र में कामगिर्यालये मिशेशनाथात्मके रुद्रात्मस्तकिकामेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि। कामराज कूट का उच्चारण कर सूर्यचक्र में पूर्णिणिरिपीठे षष्ठीशनाथात्मके विष्वात्मस्तकिभवेश्वरीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। शक्तिकूट का उच्चारण कर सोमचक्र में जालन्धरीपीठे उड्डीश-नाथात्मके ब्रह्मात्मस्तकिभग्मालिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि। चक्र के आगे सर्वसिद्धप्रदादैचक्राय नमः से पूजन करो। हसरै हसकलरौं हसकलरौं त्रिपुराम्बाशक्तिनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि। इसके दक्षिण में हसौः बीजमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँये इच्छाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ शाक्तदर्शनाय नमः। अत्र सर्वसिद्धप्रदादैचक्रे बाणचापपाशाङ्गुशभूषितान्तराले त्रिपुराम्बाशक्रनायिकाधिष्ठिते एता: कामेश्वर्याद्या अतिरहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि से मूल देवी को समर्पित करो। हसौः से बीज मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा से तर्पण करो।

तदनन्तर बैन्दव चक्र में मूल विद्या का उच्चारण कर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि से तीन बार पूजन कर चक्र के आगे ३ सर्वनन्दमयबैन्दवचक्राय नमः, मूल का उच्चारण कर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि।

इसके दक्षिण में ऐं योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि। बाँयें ३ ग्राप्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ मोक्षसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि। ३ शैवदर्शनाय नमः। कुलोड्डीश तन्त्र में कहा भी है कि तदनन्तर मूल मन्त्र कहकर महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा बिन्दु में चक्रेश्वरी के रूप में करे।

नवत्लेश्वर में कहा गया है कि बौद्ध, ब्राह्म, सौर, शैव, वैष्णव, शाक—षट्दर्शनात्मक श्रीचक्र होता है। रुद्रयामल में भी कहा है कि चतुरस्र में बौद्ध, षोडशदल में ब्राह्म, अष्टर में वैष्णव, बहिर्देशार में शैव एवं अन्तर्देशार में सौर दर्शन है। मध्य में शाक हैं। इन स्थानों में इन दर्शनों की पूजा होती है।

इत्युक्तस्थाने तत्तदर्शनपूजा। अत्र सर्वानन्दमये वैन्दवे चक्रे परब्रह्मस्वरूपिणीपरापरशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी-समस्तचक्रनायिकासंवित्तिरूपाचक्रनायिकाधिष्ठिते त्रैलोक्यमोहन-सर्वशाशापरिपूरक-सर्वसंक्षेपभकारक-सर्वसौभाग्यदायक-सर्वार्थसाधक-सर्वरक्षाकर-सर्वरोगहर-सर्वसिद्धिप्रद-सर्वानन्दमयश्रीचक्रसमुन्मीलित-समस्तप्रकट-गुप्तगुप्ततरसंप्रदाय-कुलकौलिनी-निगर्भरहस्यातिरहस्य-परापरहस्य-समस्तयोगिनीपरिवृत्त-श्रीत्रिपुरा-त्रिपुरेशी-त्रिपुरसुन्दरी-त्रिपुरवासिनी-त्रिपुराश्री-त्रिपुरमालिनी-त्रिपुरसिद्धा-त्रिपुराम्बा-तत्त्वक्रनायिकावन्दित-चरणकमला श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नित्यादेवी सर्वचक्रेश्वरी-सर्वमन्त्रेश्वरी-सर्वविद्येश्वरी-सर्वपीठेश्वरी-सर्वकामेश्वरी-सर्ववीरेश्वरी-त्रैलोक्यमोहनी-जगदुत्पत्तिमातृका-सर्वचक्रमयी-तत्त्वक्रनायिकासहिता समुद्रा ससिद्धिः सायुधा सवाहना सपरिवारा सर्वोपचारैः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी परापरया सपर्यया पूजिता तर्पिताऽस्तु, इति विशेषार्थोदका-क्षतकुसुमैः प्रथानदेव्या वामहस्ते समर्पयेत्।

ततो नवमुद्राः प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा, इति त्रिरथ्योदिकेन तर्पयेत्। ततो गन्धपूष्टदूर्वक्षितमाल्यादीनि दत्त्वा, ऐं इत्युक्त्वा घण्टां वादयन् मूलमुच्चार्य—

ॐ वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आग्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति धूपं दद्यात्। ततो मूलमुच्चार्य—

स्वप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

इति दीपं दद्यात्। ततो मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यं नैवेद्यं कल्पयामि नमः। इति दद्यात्।

सर्वानन्दमय वैन्दव चक्र में परब्रह्मस्वरूपिणी परापर शक्ति महात्रिपुरसुन्दरी समस्त चक्रनायिकासंवित्तिरूपा चक्रनायिकाधिष्ठिते त्रैलोक्यमोहन, सर्वशा परिपूरक, सर्वसंक्षेपभकारक, सर्वसौभाग्यदायक, सर्वार्थसाधक, सर्वरक्षाकर, सर्वरोगहर, सर्वसिद्धिप्रद, सर्वानन्दमय श्रीचक्र-समुन्मीलित समस्त प्रकट गुप्त-गुप्ततर सम्प्रदाय, कुल-कौलिनी, निगर्भ रहस्यातिरहस्य, परापर रहस्य, समस्त योगिनी परिवृत श्री त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरसिद्धा, त्रिपुराम्बा, तत्त्वक्रनायिका-वन्दित चरणकमला श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नित्यादेवी सर्वचक्रेश्वरी, सर्वमन्त्रेश्वरी, सर्वविद्येश्वरी, सर्वपीठेश्वरी, सर्वकामेश्वरी, सर्ववीरेश्वरी, त्रैलोक्यमोहनी, जगदुत्पत्तिमातृका, सर्वचक्रमयी, तत्त्वक्रनायिकासहित मुद्रासहित सिद्धिसहित आयुधसहित वाहनसहित परिवारसहित श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की समस्त उपचारों द्वारा परापर सपर्या से पूजन करे। इस प्रकार विशेष अर्थं जल-अक्षत-फूल को प्रधान देवी के बाँयें हाथ में समर्पित करे। तब नव मुद्रा दिखाकर ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा एवं सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा से तीन बार अर्थं जल से तर्पण करे। तब गन्ध, पूष्ट, धूप, अक्षत, माला आदि देकर ‘ऐं’ कहकर घण्टावादन करके। मूल मन्त्र कहकर निम्न मन्त्र के साथ धूप प्रदान करे—

ॐ वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आग्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

तदनन्तर मूल मन्त्र कहकर निम्न श्लोक पढ़ कर दीपक दिखावे—

स्वप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

तदनन्तर मूल मन्त्र कहकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यं नैवेद्यं कल्पयामि नमः से नैवेद्य समर्पित करे।

ततो नित्यहेमं कुर्यात्। तद्यथा—परिष्ठियं भूमौ पूलमुच्चार्थं प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, षडङ्गेनाहुतिषट्कं। ततः स्ववामे त्रिकोणं वृत्तं चतुरस्तं कृत्वा, ऐंहीन्त्रीं व्यापकमण्डलाय नमः इति संपूर्ज्य—

अर्धान्त्रं पूर्णसलिलं स्थापयेत्तत्र भाजनम् । त्रिधा पठन् कलावर्णमनुं दद्याद्वलिं ततः ॥

३५ हीं सर्वविघ्नकृद्धयः सर्वभूतेभ्यो हुं स्वाहा, इति सामान्याद्योदकेन दत्त्वा मुद्रां प्रदर्शयेत्। ततो वटुकादिभ्यो बलिं दद्यात्। ईशानवायुनिर्दृतिवह्निकोणेषु त्रिकोणवृत्तमण्डलानि कृत्वा, तेषु वां वटुकाय नमः। यां योगिनीभ्यो नमः। गां गणपतये नमः। क्षाणं क्षेत्रपालाय नमः। इति पादादिभिः संपूज्य तेषु द्रव्यभरितपात्रणि निक्षिप्य बलिं दद्यात्। 'एहोहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय २ सर्वोपचारसहितं बलिं गृहू २ स्वाहा' इत्यनेन मन्त्रेण वटुकाय बलिं दत्त्वा वामाङ्गुष्ठानामिकायोगेन मुद्रां प्रदर्शयेत्।

ऊर्ध्व ब्रह्माणडतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा

पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा ।

**क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिमांसैः**

प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥

‘यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा’ इत्यनेन बलिं दद्यात्। वामहस्ताङ्गुष्ठतर्जनीमध्य-  
मानामाभिर्योन्याकारेण मुद्रां प्रदर्शयेत्। ‘क्षांक्षीक्षूक्षेंक्षीक्षः स्थानक्षेत्रपाल धूपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा’ इत्यनेन  
क्षेत्रपालबलिं हरेत्। वाममुष्टेस्तर्जनीं सरलां कृत्वा मुद्रां दर्शयेत्। ‘गांगींगूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय  
बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा’ इत्यनेन गणपतये बलिं हरेत्। वामामुष्टेमध्यमाङ्गुलिं दण्डवत् कृत्वा मुद्रां प्रदर्शयेत्।  
भैरवीविद्या चैतद्वृलित्यत्पृथ्यं कर्तव्यम्। सर्वान्ते भूतबलिर्वा। तत्रे बलिमधिकत्य—

अदत्त्वा वटुकादीनां यः पूजयति चण्डिकाम् । पूजा च विफला तस्य देवीशापश्च जायते ॥

तदनन्तर नित्य हवन करे। एतदर्थं भूमि का परिसंचय करके मूल मन्त्र कहकर प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, षडङ्ग मन्त्र से छः आहुति प्रदान करे। तब अपने वाम भाग में त्रिकोण वृत्त चतुरस्र बनाकर ऐं हीं श्रीं व्यापकमण्डलाय नमः से पूजा करके आधा अन्न और जल से पूर्ण पात्र स्थापित करे। कलावर्ष का तीन पाठ करके बलि प्रदान करे। बलिप्रदान मन्त्र है और ॐ हीं सर्वविघ्नकृदभ्यः सर्वधूरेभ्यो हुं स्वाहा। सामान्य अर्थं जल देकर मुद्रा दिखावे। तब वटुकादि का बलि दान करे। ईशान, वायु, नैऋत्य, अग्निकोर्णों में त्रिकोण वृत्त मण्डल बनाकर उनमें वां वटुकाय नमः, यां योगिनिभ्यो नमः, गां गणपतये नमः, क्षां क्षेत्रपालाय नमः, से पाद्य आदि से पूजकर उन्हें द्रव्यपूर्ण पात्र देकर बलि प्रदान करे। एहोहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृहं गृहं स्वाहा' इस मन्त्र से वटुक को बलि देकर वामांगुष्ठ-अनामिका के योग से मुद्रा प्रदर्शित करे।

ऊर्ध्व ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा

क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिमांसैः प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्ध्याः ॥

कहते हुये यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा मन्त्र कहकर योगिनियों को बलि देवे। बाँयें हाथ के अंगूठे तर्जनी मध्यमा अनामा से योन्याकार मुद्रा दिखावे। 'क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्थानक्षेत्रपाल धूपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' से क्षेत्रपाल को बलि अर्पित करे। बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को सीधा रखकर मुद्रा दिखावे। 'गं गं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' मन्त्र से गणपति को बलि प्रदान करे। बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर मध्यमा को सीधा रखकर मुद्रा दिखावे। भैरवी विद्या से चार बलि देना चाहिये। सबके बाद भूतबलि प्रदान करे। बलि के सम्बन्ध में तन्त्र में कहा

गया है कि वटुकादि को बलि दिये बिना जो चण्डिका की पूजा करता है, उसकी पूजा विफल होती है और देवी उसे शाप देता है।

ततो मूलदेव्यै आचमनोयादिकं दत्त्वा सुवासितं ताम्बूलं तद्यात्। तत आरात्रिकं दद्यात्। तद्यथा—सुवर्ण-कांस्यादिभाजने कुङ्गुमादिना बालायाश्वकं विलिख्य, तत्र कर्पूरगर्भिण्या वर्त्त्य धृतपूरितानष्टयोनिष्वष्ट प्रदीपान् निधाय, मध्ये पिष्टकादिरचितमस्तकोपरि महादीपं संस्थापयेत्। ‘श्रीहींग्लौस्तूँप्लौँलूँहींश्री इति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण चाभ्यन्व्य तत्पात्रं मस्तकान्तं समुद्धत्य नववारं नीराजयेत्। तथाच ज्ञानार्णवे—

आरात्रिकमतः कुर्यात् सर्वकामार्थसिद्धये । सौवर्णे राजते कांस्ये स्थालके परमेश्वरि ॥

कुङ्गुमेन लिखेद्यन्तं नवकोणं मनोहरम् । चन्द्रस्तुं चरुं कृत्वा तम्भ्ये मस्तके शिवे ॥

दीपमेकं विनिक्षिप्य वसुकोणेऽष्ट दीपकान् । यवगोधूममुद्गादिरचितान् शर्करायुतान् ॥

चण्काहितशोभाभिः शोभितान् धृतपूरितान् । अभिमन्त्र्य महेशानि रत्नेश्वर्या ततः परम् ॥ इति।

ततो मूलमुच्चार्य—

समस्तचक्रक्रेशीयुते देवि नवात्मिके । आरात्रिकमिदं भद्रे गृहण मम सिद्धये ॥ इति।

ततशक्रमुद्रां प्रदर्शयेत् । ततो विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । इति संक्षेपश्रीविद्यापद्धतिः ।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्गराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-

श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे चतुर्विंशः श्वासः ॥२४॥



तदनन्तर मूल देवी को आचमनीय आदि देकर सुवासित ताम्बूल प्रदान करके आरती करे । एतदर्थं सोना-कांस्यादि के पात्र में कुङ्गुमादि से बालाचक्र बनाकर उसमें कर्पूरगर्भिणी बत्ती और धृतपूर्ण आठ दीपकों को आठ त्रिकोणों में रखकर मध्य में पिष्टकादि से निर्मित महादीपक रखे । ‘श्री हीं ग्लौ स्तूँ प्लौ न्तूँ हीं श्री’ के साथ मूल मन्त्र से पूजा करके उस पात्र को मस्तक तक ले जाकर नव बार आरती दिखावे । जैसा कि ज्ञानार्णवे में कहा है कि सभी कामनाओं की सिद्धि के लिये आरती करे । सोना, चाँदी या कांसे की थाली में कुङ्गुम से नव कोण यन्त्र बनावे । उसमें चन्द्रस्तुं चरु रखकर दीपक रखे । आठ कोनों में आठ दीपक रखे । यव-गेहूँ-मुद्रादि रचित शर्करायुक्त चण्कादि शोभा से शोभित धृतपूर्ण दीपकों को रत्नेश्वरी से मन्त्रित आरती करे । तब करके मूल मन्त्र कहकर—

समस्तचक्रक्रेशीयुते देवि नवात्मिके । आरात्रिकमिदं भद्रे गृहण मम सिद्धये ॥

कहकर आरती समर्पित करते हुये चक्रमुद्रा दिखावे और तब विसर्जनान्तं कर्म करके पूजा का समापन करे ।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णवं तत्र के कपिलदेव

नारायण-कृत भाषा-भाष्य में चतुर्विंश श्वास पूर्ण हुआ





## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of  
hinduism  
server!



## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of  
hinduism  
server!

‘श्रीविद्या’ शब्द श्रीत्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र एवं उसके अधिष्ठात्री देवता—इन दोनों का बोधक है। सामान्यतया ‘श्री’ शब्द ‘लक्ष्मी’ अर्थ में प्रसिद्ध है; परन्तु हारितायन संहिता, ब्रह्माण्डपुराण-उत्तरखण्ड आदि पुराणोंमें वर्णित आख्यायिकाओं के अनुमार ‘श्री’ शब्द का मुख्य अर्थ ‘महात्रिपुरसुन्दरी’ ही है। श्री महालक्ष्मी ने महात्रिपुरसुन्दरी की चिरकाल-पर्यन्त आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उनमें एक वरदान ‘श्री’ की आख्या से लोक में ख्याति प्राप्त करने का भी है। अस्तु; ‘श्री’ शब्द का ‘महालक्ष्मी’ अर्थ तो गौण ही है; मुख्य अर्थ है—‘श्री’ अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की प्रतिपादिका विद्या—मन्त्र = ‘श्रीविद्या’। वाच्य एवं वाचक का अभेद मानकर इस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता भी ‘श्रीविद्या’ ही सिद्ध होती है। इस श्रीविद्या के उपासकों को लौकिक फल तो प्राप्त होते ही हैं; आत्मज्ञानी को प्राप्त होने वाला शोकोत्तीर्णतारूप फल भी श्रीविद्यापासकों को निश्चित रूप से प्राप्त होता है; साथ ही यही फल ब्रह्मविद्या से भी प्राप्त होता है; अतः फलैक्य होने के कारण श्रीविद्या ही ब्रह्मविद्या है—यह निर्विवाद सत्य प्रतिष्ठापित होता है।

‘श्रीविद्या’ का साङ्घोपाङ्घ विवेचन करने वाला सर्वप्रामाणिक महनीय ग्रन्थ ‘श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्’ न केवल श्री विद्या; अपितु दश महाविद्याओं के विशद् विवेचन के साथ-साथ शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, सौर आदि सभी मन्त्रों एवं उनके तत्त्व यन्त्रों से पाठक को साक्षात्कार कराने वाला एक बृहत्काय ग्रन्थ है। स्वामी विद्यारण्य यति द्वारा छत्तीस श्लासों में गुम्फित यह ग्रन्थरत्न पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रूप दो खण्डों में समुपलब्ध है। अंग-उपांगसहित श्रीविद्या के सविधि विवेचन के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं के भी मन्त्र-यन्त्रों का समग्र रूप में विवेचन, उनके उपसना की विधि एवं उपसना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फलों को भी स्पष्टतया अभिव्यक्त करना इस ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों में जहाँ किसी भी उपास्य देवता के एक, दो, चार अथवा कतिपय प्रमुख मन्त्र-यन्त्रों का ही विवेचन उपलब्ध होता है; वही इस ग्रन्थ में विवेच्य समस्त देवी-देवताओं के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी मन्त्र-यन्त्रों को उनकी विधियों सहित स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है; फलस्वरूप सम्बद्ध देवता के किसी भी मन्त्र-यन्त्र अथवा उसकी विधि को जानने के लिये साधक को किसी अन्य ग्रन्थ का अवलम्ब ग्रहण करने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं रह जाती। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रीविद्यारण्ययति-प्रणीति ‘श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्’ एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो साधक के समस्त कामनाओं की पूर्ति करने में सर्वतोभवेन समर्थ है।

अस्तु; यह ग्रन्थ अद्यावधि अपने मूल स्वरूप में ही, बिना किसी भाषा-टीका के उपलब्ध था, जिससे जिज्ञासु साधकों को आराधना में पग-पग पर दुरुह कठिनाइयों का अनुभव होता था एवं ग्रन्थ के तात्पर्य से अवगत ने हो पाने के कारण वे बार-बार विशयग्रस्त हो जाते थे। इसी को हृदयङ्गम कर तन्त्रग्रन्थों के ख्यातिनाम भाषा-भाष्यकार श्री कपिलदेव नारायण ने इस विशालकाय ग्रन्थ को भाषा टीका से अलंकृत कर सर्वनहद्य बनाने का साहसिक प्रयास किया है। सर्वजनसुलभ इस हिन्दी भाष्य द्वारा श्री नारायण ने कृटाक्षर में निबद्ध मन्त्र-यन्त्रों को भी स्पृट करके साधकों का महनीय उपकार किया है।

पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध के विभाजन से दो भागों में विभक्त यह विशालकाय ग्रन्थ भाषा-भाष्य से अलंकृत होने के फलस्वरूप और भी बृहद् कलेवर को प्राप्त हो गया: फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सौकर्य को दृष्टिगत कर इसे पाँच भागों ( पूर्वार्द्ध-दो भाग एवं उत्तरार्द्ध-तीन भाग ) में प्रकाशित किया जा रहा है। वृहत्तन्त्रसार, देवीरहस्य आदि मूल ग्रन्थों को सर्वजनसंवेद्य भाषा भाष्य से विभूषित कर सर्वजन सुलभ बनाने वाले विद्वान् भाष्यकार श्री कपिलदेवनारायण द्वारा प्रयोगपरक भाषा भाष्य से अलंकृत यह ग्रन्थ जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का शमन करने में सर्वविधि समर्थ होगा—इसमें विचिकित्सा के लिये लेशमात्र भी स्थान नहीं है।